

हिन्दी में नीति-काव्य का विकास

हिन्दी में नीति-काव्य का विकास

(सं० १६०० वि० तक)

(दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी०
उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

डा० रामसरूप शास्त्री 'रसिकेश'

एम० ए० (हिन्दी संस्कृत) पी-एच० डी०

प्राध्यापक, हुंसरज कासेज

तथा

दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली

दिल्ली विश्वविद्यालय की हिन्दी अनुसंधान परिषद्
के निमित्त

दिल्ली पुस्तक सदन,

बिहारी, पटना, जयपुर

द्वारा प्रकाशित

प्रकाशक
दिल्ली पुस्तक सभन,
बेमसो रोड दिल्ली

•

③ १९६२ रामसरूप घाली

•

सूच्य : २०००

•

मुद्रक
रामसरूप घाली,
राष्ट्र भारती प्रेस
कृषा बेसात दिल्ली।

समर्पण

अकथ्य भावनाओं सहित
पूज्य पिठा
श्री मंगल सैन जी
के
कर-कमलों में
सादर समर्पित



हमारी योजना

'हिन्दी में नीति-काम्य का विकास-स० १९०० वि० तक' हिन्दी अनुसंधान परिषद् ग्रन्थमासा का छम्बीसवाँ पुष्प है। हिन्दी अनुसंधान परिषद् दिल्ली-विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग की संस्था है। परिषद् के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं हिन्दी का हिमम विषयक मवेयणारमक अनुधीमम तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

यह तक परिषद् की ओर से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं—एक तो वे जिन में प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का हिन्दी-रूपांतर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है दूसरे वे जिन पर दिल्ली-विश्वविद्यालय की ओर से पी० एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है; और तीसरे वे जिनका अनुसंधान के साथ—उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों के साथ—प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ हैं—(१) हिन्दी काव्यात्मकारसूत्र (२) हिन्दी कथोक्तिजीवित (३) धरस्तु का काव्य-शास्त्र, (४) हिन्दी काव्यादास, (५) अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग (हिन्दी अनुवाद) (६) पारंपार्य काव्यशास्त्र की परम्परा (७) काव्य-कला (होरेस-रूठ) (८) सौन्दर्य-शास्त्र (९) हिन्दी अग्निव्य मारती तथा (१०) हिन्दी मादयवण। द्वितीय वर्ग के ग्रन्थ हैं—(१) मध्यकालीन हिन्दी-कवयिनिर्मा, (२) हिन्दी मादक उद्भव और विकास (३) सूफी मत और साहित्य (४) अपभ्रंस-साहित्य (५) रामावतंसम सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य (६) मूर की काव्यकला, (७) हिन्दी में अमरपीठ काव्य और उसकी परम्परा (८) मैथिलीकरण मुष्क कवि और भारतीय संस्कृति के आस्थाता (९) हिन्दी नीति परम्परा के प्रमुख धारार्थ (१०) मठिराम कवि और धारार्थ (११) आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्यसिद्धान्त तथा (१२) हज्र माया के वृत्तशास्त्र में मादुप अविष्ट। तीसरे वर्ग के अन्तर्गत तीन ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है—(१) अनुसंधान का स्वरूप, (२) हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध तथा (३) अनुसंधान की प्रक्रिया।

प्रस्तुत ग्रन्थ द्वितीय वर्ग का ठेरुवाँ प्रकाशन है जिस हून हिन्दी-काव्य-अमर्षों की सेवा में अविष्ट कर रहे हैं। इसके लेखक डॉ० रामसवरूप वास्वी हिन्दी-संस्कृत के

नीति की मौलिक काव्य-कृतियों का ही नहीं, धनुर्धर तथा संप्रह्वारमक-रचनाओं का भी संश्लिष्ट विवरण दे दिया गया है जिससे परबर्ती ग्रन्थों को कुछ उपयोगी संकेत मिल सकें।

प्रस्तुत ग्रन्थ दो खण्डों में विभाजित है—१ भूमिका २ शोध। यद्यपि भूमिका-खण्ड में भी बहुत सी मौलिक-सामग्री प्रस्तुत की गई है तथापि येरा वास्तविक प्रतिपाद्य शोध-खण्ड में ही उपलब्ध है। भूमिका-खण्ड में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में नीति की परिभाषा प्रकृत धीर नीतिकाम्य के काव्यत्व पर प्रकाश डाला गया है। वैदिक संस्कृत पालि, प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी भाषाओं के साहित्य तथा कोशों के प्रबन्धों से मुझे 'उचित व्यवहार' ही नीति की सर्वोत्तम परिभाषा प्रतीत हुई। विद्वानों ने राजनीति, धर्मनीति, कृत्रिम नीति, सरल नीति आदि नीति के कई सम्भव भेद किये हैं परन्तु मैंने नीति का बर्णन या किया है—वैयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक धार्मिक इतर प्राणि विषयक धीर मिश्रित नीति। इस बर्णन में व्यक्ति को केन्द्र मानकर अन्तः उसके व्यवहार-क्षेत्र को विस्तृत किया गया है। पहले तो मनु विचार था कि धर्मनीति और राजनीति को भी विवेच्य-क्षेत्र में समाविष्ट कर मू परंतु जब अपनी साहित्यिक यात्राओं में इन विषयों के विज्ञान साहित्य को देखा तब विस्तार भय से विषय को संकुचित रचना ही उचित समझा। जब मैंने धर्म राजनीति वेद काल मृत्यु पुनर्जन्म मोक्ष आदि का उत्सेह मिश्रित नीति में ही कर दिया है। कई लोग नीतिकाम्य का काव्यत्व ही स्वीकार नहीं करते इसलिए इसी अध्याय में उनके आक्षेपों का भी निराकरण कर दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में नीति की परम्परा का उल्लेख किया गया है क्योंकि इसके बिना हिन्दी के नीति काव्य का विकास समझ में नहीं आ सकता। इसमें क्रमशः वैदिक, संस्कृत पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के नीति-काव्यों का विश्लेषण कराया गया है। संस्कृत तथा अपभ्रंश नीतिकाम्य का परिचय प्राथमिक विस्तार से देना पड़ा क्योंकि प्रथम भाषा ने हिन्दी नीतिकाम्य को सबसे अधिक प्रभावित किया और दूसरी तो उसकी जननी ही है।

शोधखण्ड में सात अध्याय हैं। प्रथम पाँच अध्यायों में हिन्दी के नीति काव्य का विकास दिखाया गया है। यदि अध्ययन काल की ही दृष्टि से किया जाय तो तीन अध्याय पर्याप्त थे। परन्तु गौर-काव्यों की रचना आदि काल में ही अवलोकित नहीं हो गई, परबर्ती कालों में भी होती रही। जहाँ प्रथम अध्याय में गानों की कृतियों के काव्यों के नीतिकाम्य का विश्लेषण किया गया है वहाँ द्वितीय अध्याय में सतय गौर-काव्यों के नीतिरत्न पर प्रकाश डाला गया है। श्रवण बोरेनाथ सुरन आदि कवियों के नीति काव्य का परिचय आदि काल में देना अनुचित होगा भव सब गौर कवियों को नीति की प्राथमिक समता के कारण, एक ही अध्याय में रखा गया है। इसी प्रकार मक्ति काल में जो सप्तकाव्य शूलीकाव्य रामकाव्य और हनुमत्काव्य की पारदर् उद्धृत हुईं

हमारी योजना

'हिन्दी में नीति-काव्य का विकास-सं० १६०० वि० तक' हिन्दी अनुसंधान परिषद् ग्रन्थमाला का छम्बीसवाँ पुष्प है। हिन्दी अनुसंधान परिषद् दिल्ली-विराज विद्यालय के हिन्दी विभाग की संस्था है। परिषद् के मुख्यालय जो उद्देश्य हैं हिन्दी भाष्य-विषयक पक्षेपणात्मक अनुसंधान तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

यह एक परिषद् की ओर से बनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं—एक तो वे ग्रन्थों में प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का हिन्दी-रूपान्तर, विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है; दूसरे वे ग्रन्थों पर दिल्ली-विश्वविद्यालय की ओर से पी० एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है, और तीसरे वे, ग्रन्थों का अनुसंधान के साथ—उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों के साथ—प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

प्रथम वर्ष के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ हैं—(१) हिन्दी काव्यात्मकसूत्र (२) हिन्दी कविक्रियाविधि (३) परम्परा का काव्य-साक्ष्य, (४) हिन्दी काव्यादर्श, (५) अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग (हिन्दी अनुवाद), (६) पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा (७) काव्य-कला (होरेस-कृत) (८) सौन्दर्य-शास्त्र (९) हिन्दी अमिताभ भारती तथा (१०) हिन्दी नाट्यदर्पण। द्वितीय वर्ष के ग्रन्थ हैं—(१) मध्यकावीन हिन्दी-कविमित्रिणी, (२) हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास (३) सूफी मठ और साहित्य (४) अष्टांग-साहित्य (५) रामायणसम्बन्ध सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य (६) मूर की काव्यकला, (७) हिन्दी में अमरवीत काव्य और उसकी परम्परा (८) वैदिकीकरण युक्त कवि और भारतीय संस्कृति के आत्मा (९) हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य, (१०) मतिराम कवि और भाषा (११) धार्मिक हिन्दी कवियों के काव्यसिद्धान्त तथा (१२) एक भाषा के इष्टकाव्य में भाष्य-मन्त्र। तीसरे वर्ष के अन्तर्गत तीन ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है—(१) अनुसंधान का स्वरूप, (२) हिन्दी के स्वीकृत शोध प्रबन्ध तथा (३) अनुसंधान की प्रक्रिया।

प्रस्तुत ग्रन्थ द्वितीय वर्ष का ठेकड़ा प्रकाशन है जिसे हम हिन्दी-काव्य-मन्त्रों की सेवा में अर्पित कर रहे हैं। इसके लेखक डॉ० रामसूर्य दासी हिन्दी-संस्कृत के

हमारी योजना

'हिन्दी में नीति-शास्त्र का विकास-सं० १९०० वि० तक' हिन्दी अनुसंधान परिषद् द्वारा प्रकाशित का छापीसर्वा पुष्प है। हिन्दी अनुसंधान परिषद् दिल्ली-विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग की संस्था है। परिषद् के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं हिन्दी साहित्य विषयक मनुष्यात्मक अनुसंधान तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तक परिषद् की ओर से अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रन्थ तीन प्रकार के हैं—एक तो वे ग्रन्थों में प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का हिन्दी-रूपांतर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है; दूसरे वे ग्रन्थों पर हिन्दी-विश्वविद्यालय की ओर से पी० एच० डी० की उपाधि प्रदान की गई है, और तीसरे वे ग्रन्थों का अनुसंधान के साथ—उसके सिद्धांत और व्यवहार दोनों पक्षों के साथ—प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

प्रथम वर्ष के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रन्थ हैं—(१) हिन्दी काव्यासंस्कारसूत्र (२) हिन्दी बहोक्तिजीवित (३) अरस्तू का काव्य-शास्त्र, (४) हिन्दी काव्यादर्श, (५) अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग (हिन्दी अनुवाद) (६) पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा (७) काव्य-कला (होरेस-कृत) (८) सौन्दर्य-तत्त्व (९) हिन्दी धर्मशास्त्र मारसी तथा (१०) हिन्दी नाट्यरूपण। द्वितीय वर्ष के ग्रन्थ हैं—(१) मध्यकालीन हिन्दी कविविनिर्वा (२) हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास (३) सूफ़ी मठ और साहित्य (४) अष्टादश-साहित्य (५) रामायण-सम्प्रदाय: सिद्धांत और साहित्य (६) मूर की काव्यकला, (७) हिन्दी में अमरगीत काव्य और उसकी परम्परा (८) मणिसीकरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आस्था, (९) हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य (१०) मतिराम कवि और आचार्य, (११) आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्यसिद्धांत तथा (१२) ब्रज भाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति। तीसरे वर्ष के अन्तर्गत तीन ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है—(१) अनुसंधान का स्वरूप (२) हिन्दी के स्वीकृत धीमे प्रबन्ध तथा (३) अनुसंधान की प्रक्रिया।

प्रस्तुत ग्रन्थ द्वितीय वर्ष का ठेकड़ा प्रकाशन है जिसे हम हिन्दी-साहित्य-मर्मज्ञों की सेवा में अर्पित कर रहे हैं। इसके लेखक डॉ० रामचरण शास्त्री हिन्दी-संस्कृत के

अत्यन्त अनुसंधी प्राध्यापक हैं जो देश विभाजन से पूर्व ११ वर्ष तक डी० ए०-बी० कामेज लाहौर, में अध्यापन करते रहे और गत १४ वर्षों से हृदराज कामेज, दिल्ली तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध इनके पाँच वर्ष के अनुसंधान का निष्पत्त है जिसमें ११३ कवियों के १११ मीति-काम्यों का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए हिन्दी-मीति-काम्य के विकास का सम्यक् विश्लेषण किया गया है। लेखक ने अपनी सभी साहित्यिक यात्राओं में अनेक अप्रकाशित हिन्दी-मीति-काम्या का अध्ययन किया है जिसका आलोचनात्मक अध्ययन पहली बार हिन्दी-संसार के सम्मुख उपस्थित हुआ है। इस अध्ययन के फलस्वरूप निस्संकोच कहा जा सकता है कि प्राचीन हिन्दी-मीति-काव्य षड-शौच रचनाओं तक ही सीमित न था अपितु कुछ और परिमाण दोनों की वृद्धि से बहु धर्यत विस्तृत, गम्भीर एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप था। डा० शास्त्री ने निश्चय ही अपने प्रबन्ध द्वारा हिन्दी के शोधपरक साहित्य को समृद्ध बनाने में उत्तुल्य योगदान किया है।

परिपद् की प्रकाशन-योजना को कार्यान्वित करने में हमें हिन्दी की अनेक प्रकाशन-संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिपद् की ओर से कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं।

हिन्दी अनुसंधान परिपद्
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
कार्तिक-पूर्णिमा २०११ वि०

नवेन्द्र
अध्यक्ष

प्राक्कथन

पत्र सम् १९२३ ई० में मैंने 'हिन्दी में नीतिकाम्य का विकास' पर अध्ययन प्रारम्भ किया तब विदित न था कि इसी विषय पर कोई अन्य विद्वान् भी धनुसघाम कर रहे हैं या नहीं। दो-एक वर्ष के बाद ज्ञात हुआ कि श्री भोमानाथ ठिपारी एम० ए० को जोर का विषय भी मयमग यही है। उस समय मैंने बिस्वी विरवविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष और अपने निरीक्षक डा० मोग्ज एम० ए० जी० सिद् से विषय-परिचर्चा के सम्बन्ध में परामर्श किया। उन्होंने यह सम्मति दी कि विषय व्यापक है, धनुसघामियों के दृष्टिकोण पृथक्-पृथक् हो सकते हैं, प्रथ कार्य जारी रखना चाहिए। सो कार्य चलता चला।

सौभाग्य से जब डा० ठिपारी यहीं धा गये तब उनके प्रबन्ध की हस्तलिखित प्रति देखन का अवसर प्राप्त हुआ। यह दृष्ट कर संतोष हुआ कि उनका और मरा दृष्टिकोण पृथक्-पृथक् है। उनके प्रबन्ध में तो नीति के विभिन्न विषयों पर विभिन्न नीतिक्रमियों के विचारों का विवेचन करत हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं और प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी के नीतिकाम्य का विकास से नीतिकाल की समाप्ति तक का कार्यक्रम तथा प्रवृत्तिक्रम से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उमरा अध्ययन का अधिकतर प्रकाशित नीतिकाम्यों पर निम्न है परन्तु मुझे हस्त-लिखित नीतिकाम्य अधिक देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार मैं दोनों प्रबन्ध एक दूसरे के पूरक हैं और धारा है कि उन पाठकों की निम्नांशा धान्य करने में सहायक होंगे जो नीतिकाम्य के अध्ययन में बहिरपठे हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में नीति के समय साठ मुख्य और इतने ही सामान्य नीति-क्रमियों का परिचय दिया गया है। इस संख्या में नायक-वि, सप्त सूची राम-वि, इत्यु-वि, शृंगारी-वि और संघर्षकार सम्मिलित नहीं हैं। प्रमुख कवियों का संक्षिप्त जीवन-वृत्त तथा उनकी कृतियों की समीक्षा प्रस्तुत की गई है और सामान्य कवियों का संक्षिप्त निवेद्य कर दिया गया है। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर काव्य-विषय की समीक्षा भी दे दी गई है।

जनसुबुध नीतिक्रमियों में से अधिकतर ऐसे हैं जिनकी अप्रकाशित कृतियाँ मुझे जानकर के समय जैन संघासम सेठिया जैन प्रपासय धनुष सन्तुष पुस्तकालय तथा श्री मोतीचन्द धन्नाथजी के पुस्तक भण्डार में जयपुर के पुरातत्व मन्दिर काले छात्रों के संघों काफेद छात्र संघाद लेखियों के मन्दिर और विद्यालय पुस्तकालय में उदयपुर के सरस्वती भण्डार और साहित्य-मन्थान में तथा नागरी प्रचारिणी सभा कापी के तथासंपह और यात्रिक संघ में प्राप्त हुई। उक्त कृतियों में से अधिकतर के नाम और संवेन मात्र मम हो शोध-विचरणों में प्राप्त ही जाई परन्तु नीतिकाम्य की दृष्टि से उनका विस्तृत विवेचन अभी तक नहीं प्रकाशित नहीं हुआ। इस प्रबन्ध में

प्रथम अनुसंधान प्राम्पापक हैं जो देश विभाजन से पूर्व १२ वय तक जी० ए०-जी० कासेज साहीर, में प्रकाशित करते रहे और वय १४ वर्षों से हंसराज कासेज, दिल्ली तथा दिल्ली-विश्वविद्यालय में नाम कर रहे हैं। प्रस्तुत प्रथम इनके पाँच वर्ष के अनुसंधान का निष्पत्ति है जिसमें ११४ कवियों के १२२ नीति-काव्यों का सामोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए हिन्दी-नीति-काव्य के विकास का सम्पूर्ण विश्लेषण किया गया है। लेखक ने अपनी सभी साहित्यिक यात्राओं में अनेक प्रकाशित हिन्दी-नीति-काव्यों का श्लेषण किया है जिसका सामोचनात्मक अध्ययन पहली बार हिन्दी-संसार के सम्पूर्ण उपलब्ध हो रहा है। इस अध्ययन के फलस्वरूप निस्संकोच कहा जा सकता है कि प्राचीन हिन्दी-नीति-काव्य इस-पाँच रचनाओं तक ही सीमित न था अपितु कुछ और परिमाण दोनों की दृष्टि से बहु अत्यंत विस्तृत सम्मीर एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप था। डॉ० सासवी ने निरक्षर ही अपने प्रथम द्वारा हिन्दी के शोधपरक साहित्य को समृद्ध करने में स्तुत्य योगदान किया है।

परिपद् की प्रकाशन-योजना को कार्यान्वित करने में हमें हिन्दी की अनेक प्रकाशन-संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिपद् की ओर से कृतज्ञता-आपन करते हैं।

हिन्दी अनुसंधान परिपद्,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
कार्तिक-पूर्णिमा २०१६ दि०

नयेन्द्र
सम्बल

प्राक्कथन

जब सन् १९३३ ई० में मैंने 'हिन्दी में नीतिकाम्य का विकास' पर अध्ययन प्रारम्भ किया तब विदित न था कि इसी विषय पर कोई अन्य विशान् भी अनुसन्धान कर रहे हैं या नहीं। दो-एक वर्ष के बाद ज्ञात हुआ कि श्री मोहानाथ तिवारी एम० ए० की धोज का विषय भी लगभग यही है। उस समय मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष और अपने निरीक्षक डा० नयेन्द्र एम० ए० जी० सिद् से विषय-परिवर्तन के सम्बन्ध में परामर्श किया। उन्होंने यह सम्मति दी कि विषय व्यापक है, अनुसन्धितसुधों के दृष्टिकोण पृथक-पृथक हो सकते हैं, परन्तु कार्य जारी रखना चाहिए। सो कार्य चलता रहा।

सोभाग्य से जब डा० तिवारी यहीं आ गये तब उनके प्रबन्ध की हस्तलिखित प्रति देखने का अवसर प्राप्त हुआ। यह बख्तर कर सतोप हुआ कि उनका और मेरा दृष्टिकोण पृथक-पृथक है। उनके प्रबन्ध में ता नीति के विभिन्न विषयों पर विभिन्न नीतिकवियों के विचारों का विवेचन करत हुए निष्कण प्रस्तुत किये गये हैं और प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी के नीतिकाम्य का आदिकाल से रीतिवास की समाप्ति तक कालक्रम तथा प्रवृत्तिक्रम से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उनका अध्ययन तो अधिकतर प्रकाशित नीतिकाम्यों पर निम्न है परन्तु मुझे हस्त-लिखित नीतिकाम्य अधिक देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार ये दोनों प्रबन्ध एक दूसरे के पूरक हैं और धारा है कि उन पाठकों की जिज्ञासा शांत करने में सहायक होगी जो नीतिकाम्य के अध्ययन में रुचि रखते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में नीति के अग्रमम साठ मुख्य और इतने ही सामान्य नीति-कवियों का परिचय दिया गया है। इस संख्या में माप-कवि सप्त सूफी राम-कवि हृदय-कवि शृंगारी कवि और संप्रहकार सम्मिलित नहीं हैं। प्रमुख कवियों का संक्षिप्त जीवन-वृत्त तथा उनकी कृतियों की समीक्षा प्रस्तुत की गई है और सामान्य कवियों का संक्षिप्त निर्देश कर दिया गया है। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर काल-विशेष की समीक्षा भी दी गई है।

सर्वप्रथम नीतिकवियों में से अधिकतर ऐसे हैं जिनकी अप्रकाशित कृतियाँ मुझे आकाश के समय जन प्रयातय सेठिया जैन प्रयातय अनूप सक्लत पुस्तकालय तथा श्री मोतीचन्द लखानवी के पुस्तक भंडार में जयपुर के पुरतलक मंदिर आसे छाबड़ों के मंदिरों आदि घास्र भंडार डोलियों के मंदिर और विद्याभूषण पुस्तकालय में जयपुर के सरस्वती-भंडार और साहित्य-सरयाम में तथा मापरी प्रचारिणी समा-कारी के समारंभह और यात्रिक संघ में प्राप्त हुए। उन कृतियों में से अधिकतर के नाम और संकेत मात्र मसे ही शोध-विचारणों में प्राप्त हो जाएँ परन्तु नीतिकाम्य की दृष्टि से उनका विस्तृत विवेचन अभी तक नहीं प्रकाशित नहीं हुआ। इस प्रबन्ध में

अत्यन्त अनुसंधानी प्राध्यापक हैं जो देश विभाजन से पूर्व १५ वर्ष तक डी० ए०-बी० कामेज साहौर, में अध्यापन करते रहे और वत १४ वर्षों से हुंसराज कामेज, दिल्ली तथा दिल्ली-विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध इनके पाँच वर्ष के अनुसंधान का निष्कर्ष है जिसमें ११९ कवियों के १५५ नीति-काम्यों का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए हिन्दी-नीति-काम्य के विकास का सम्मक विश्लेषण किया गया है। सेरुफ ने अपनी सन्धी साहित्यिक यात्रामें में अनेक अप्रकाशित हिन्दी-नीति-काम्यों का अन्वेषण किया है जिसका आलोचनात्मक अध्ययन पहली बार हिन्दी-संसार के सम्मुख उपस्थित हो रहा है। इस अध्ययन के फलस्वरूप निष्कर्षों का कहा जा सकता है कि प्राचीन हिन्दी-नीति-काम्य दस-पाँच रचनाओं तक ही सीमित न वा अधिकतम कुछ और परिमाण बोलों की दृष्टि से बहु अत्यन्त विस्तृत गम्भीर एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुबन्धन वा। डा० धारत्री ने निश्चय ही अपने प्रबन्ध द्वारा हिन्दी के शोधपरक साहित्य को समृद्ध करने में स्तुत्य योगदान किया है।

परिपत्र की प्रकाशन-योजना का कार्यान्वित करने में हमें हिन्दी की अनेक प्रकाशन-संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिपत्र की ओर से कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं।

हिन्दी अनुसंधान परिपत्र
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली
कार्तिक-पूर्णिमा २०११ वि०

नमोऽ
अध्यक्ष

प्राक्कथन

जब सन् १९२३ ई० में मीने 'हिन्दी में नीतिकाम्य का विकास' पर अध्ययन आरम्भ किया तब विदित न था कि इसी विषय पर कोई अन्य विद्वान् भी अनुसन्धान कर रहे हैं या नहीं। दो-एक वर्ष के बाद ज्ञात हुआ कि श्री मानानाथ तिवारी एम० ए० की खोज का विषय भी लगभग यही है। उस समय मीने दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष और अपने निरीक्षक डा० नगेश एम० ए० बी० लिट् स विषय-परिचय के सम्बन्ध में परामर्श किया। उन्होंने यह सम्मति दी कि विषय व्यापक है, अनुसन्धान-पूर्वकों के दृष्टिकोण पृथक-पृथक हो सकते हैं, अथवा जारी रखना चाहिए। सो कार्य चलता रहा।

सौभाग्य से जब डा० तिवारी यहीं आ गये तब उनका प्रबन्ध की हस्तलिखित प्रति देखन का अवसर प्राप्त हुआ। यह देख कर सतोष हुआ कि उनका और मरा दृष्टिकोण पृथक-पृथक है। उनके प्रबन्ध में ता मीति के विभिन्न विषयों पर विभिन्न नीतिकार्यों के विचारों का विवेचन करत हुए निष्कप प्रस्तुत किये गये हैं और प्रस्तुत प्रबन्ध में हिन्दी के नीतिकाम्य का आधिकारिक से गीतिकाम्य की समाप्ति तक आसन्न तथा प्रकृतिकम से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उनका अध्ययन तो अधिकतर प्रकाशित नीतिकार्यों पर निम्न है परन्तु मुझे हस्त-लिखित नीतिकाम्य अधिक देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस प्रकार में दोनों प्रबन्ध एक दूसरे के पूरक हैं और प्राया है कि उन पाठकों की जिज्ञासा सन्त करने में सहायक होने जो नीतिकाम्य के अध्ययन में रचि रहते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ में मीति के लगभग साठ मुख्य और इतने ही सामान्य नीति-कार्यों का परिचय दिया गया है। इस संख्या में नाय-कवि सप्त मुष्ठी राम-कवि इत्युक्त कवि शृंगारी कवि और संप्रहकार सम्मिलित नहीं हैं। प्रमुख कवियों का संक्षिप्त जीवन-वृत्त तथा उनकी कृतियों की समीक्षा प्रस्तुत की गई है और सामान्य कवियों का संक्षिप्त निवेदन कर दिया गया है। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर कास विशेष की समीक्षा भी दे दी गई है।

अनुसन्धान नीतिकार्यों में से अधिकतर ऐसे हैं जिनकी अप्रकाशित कृतियाँ मुझे आकरने के समय जैन संभालय सेठिया धर्म प्रपासय अनुप सस्कृत पुस्तकालय तथा श्री मोतीलाल खजानधी के पुस्तक भंडार में जयपुर के पुरातन मंदिर काले साबड़ों के मंदिरों आनर शास्त्र भंडार टोपियों के मंदिर और बिटामुपण पुस्तकालय में जयपुर के सरस्वती-भंडार और साहित्य-मस्जान में तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सभासदों और यात्रिक संघ में प्राप्त हुईं। उन कृतियों में से अधिकतर के नाम और संकेत मात्र अने ही खोज-विचारणों में प्राप्त ही आएँ परन्तु नीतिकाम्य की दृष्टि से उनका विस्तृत विवेचन अभी तक नहीं प्रकाशित नहीं गया। इस प्रबन्ध में

नीति की मौलिक काव्य-कृतियों का ही नहीं अनुचित तथा संघातमय-रचनाओं का भी संक्षिप्त विवरण दे दिया गया है जिससे परवर्ती धर्मग्रन्थों को कुछ उपयोगी संकेत मिल सकें।

प्रस्तुत प्रबन्ध दो खण्डों में विभाजित है—१. भूमिका २. शोध। यद्यपि भूमिका-खण्ड में भी बहुत सी मौलिक-सामग्री प्रस्तुत की गई है तथापि मेरा वास्तविक प्रतिपाद्य शोध-खण्ड में ही उपस्थित है। भूमिका-खण्ड में दो अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में नीति की परिभाषा प्रकार-धीर नीतिकाम्य के साम्यत्व पर प्रकाश डाला गया है। वैदिक संस्कृत पाणि प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी भाषाओं में साहित्य तथा कौशलों के व्यवसायिक से मुक्त उचित व्यवहार ही नीति की सर्वोत्तम परिभाषा प्रतीत हुई। विद्वानों ने राजनीति, धर्मनीति, कूटनीति, सरस नीति आदि नीति के कई अन्वय भव किये हैं परन्तु मैंने नीति का वर्गीकरण यों किया है—वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक आर्थिक इतर प्राणि विषयक और मिश्रित नीति। इस वर्गीकरण में व्यक्ति को केन्द्र मानकर क्रमशः उसके व्यवहार-क्षेत्र को विस्तृत किया गया है। पहले तो मेरा विश्वास था कि धर्मनीति और राजनीति को भी विवेच्य-क्षेत्र में समाविष्ट कर मू परन्तु जब अपनी साहित्यिक-साधनों में इन विषयों के विशाल साहित्य को देखा तब विस्तार भय से विषय को संकुचित रखना ही उचित समझा। जब मैंने धर्म राजनीति इस काम मृत्यु, पुनर्जन्म मोक्ष आदि का उत्सव मिश्रित नीति में ही कर दिया है। कई सौव नीतिकाम्य का साम्यत्व ही स्वीकार नहीं करते इसलिए इन्हीं अध्याय में उनके आश्लेषों का भी निराकरण कर दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में नीति की परम्परा का उत्सव किया गया है क्योंकि इसके बिना हिन्दी के नीति काव्य का विकास समझ में नहीं आ सकता। इसमें क्रमशः वैदिक, संस्कृत पाणि प्राकृत और अपभ्रंश के नीति-काव्यों का विश्लेषण कराया गया है। संस्कृत तथा अपभ्रंश नीतिकाम्य का परिचय अधिक विस्तार से देना पड़ा क्योंकि प्रथम भाषा ने हिन्दी नीतिकाम्य को सबसे अधिक प्रभावित किया और दूसरी तो उसकी जननी ही है।

शोधखण्ड में सात अध्याय हैं। प्रथम पाँच अध्यायों में हिन्दी के नीति काव्य का विकास दिखाया गया है। यदि अध्ययन काम की ही दृष्टि से किया जाता तो तीन अध्याय पर्याप्त थे। परन्तु धीर-काव्यों की रचना आदि काम में ही व्यस्त नहीं हो गई, परवर्ती काव्यों में भी होती रही। जहाँ प्रथम अध्याय में नाट्य और कौशलों के काव्यों के नीतिकाम्य का विश्लेषण किया गया है वहाँ द्वितीय अध्याय में समग्र धीर-काव्यों के नीतिवत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य गोरेशान सूत्रन आदि कवियों के नीति काव्य का परिचय आदि काम में देना अनुचित होता परन्तु सब धीर कवियों को नीति की प्राथिक समता के कारण एक ही अध्याय में रखा गया है। इसी प्रकार अन्तिम काम में दो संस्कृत सूक्तिकाव्य रामकाव्य और इष्टकाव्य की चारों उद्धृत हुईं

ने ऐतिहासिक के अन्त तक प्रभावित होती रहीं। इस लिए जहाँ तृतीय अध्याय में प्रमुख नीति-कवियों, अरुन्धती दरबार के नीति-कवियों अनुवादकों और पुष्कर नीतिकवियों का कविता और कृतितः परिचय दिया गया है वहीं अतुल्य अध्याय में सप्तों, सूक्तियों रामकवियों और इष्टकवियों की रचनाओं के नीतिवत्त्व का पार जगों में सामूहिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

ऐतिहासिक में जहाँ आशा से अधिक कवियों ने मौलिक स्वतन्त्र नीतिकार्यों का प्रसूयन किया वहाँ कई एक ने प्राचीन नीतिकार्यों के अनुवाद भी किए। फिर श्रुगारिक कवियों की रचनाओं में भी स्पष्ट रूप से नीति पाई जाती है और काव्य-संग्रहों में भी। इनके अतिरिक्त कुछ साधारण नीति-कवियों के स्पष्ट पद्य या कृतियाँ मिलती हैं। इन पद्यकवि साहित्यकारों का पृथक-पृथक विवरण पंचम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

छठे अध्याय में पूर्ववर्ती नीतिकार्यों का हिन्दी नीतिकार्य पर भाव और नसा की दृष्टि से प्रभाव दिखाना गया है। चूँकि इस विषय पर डॉ० तिवारी भी सविस्तर लिख चुके हैं और प्रस्तुत प्रबन्ध में भी अनेक प्रकार का उदाहरण है अतः इस अध्याय को अतिव्यापकता ही उचित प्रतीत हुआ। यद्यपि प्रत्येक काव्य तथा प्रवृत्ति के नीतिकार्य का मूर्धाकन उक्त-उक्त अध्याय में ही किया गया है तथापि अन्तम अध्याय में उपसंहार रूप में अपने अन्तम अध्यायन का निष्कर्ष दे दिया गया है।

अपने अध्यायन का उपसंहार करते समय मुझे सम्झे था कि इतने नीतिकार्य उपसंहार भी होने या नहीं जिन पर एक प्रबन्ध लिखा जा सके। परन्तु जब उपसुक्त स्वानों और पुस्तक-भण्डारों में जाकर संशोधनकार्य का अवसर प्राप्त हुआ तब संशय निवृत्त हो गया। अब तो ऐसा समझा है कि उत्तर भारत के अध्याय भण्डारों में भी खोज करने पर नीति-विषयक अनेक उपयोगी काव्य मिल सकते हैं।

इसके अतिरिक्त काव्यों के अर्थलोक का अवसर मुझे मिला है ने भी संशोधन कवित्व और उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उनसे सिद्ध होता है कि हिन्दू विद्या के अन्तर्गत ही प्रत्येक समी ने स्वतन्त्र काव्यों या स्पष्ट पद्यों के रूप में ऐसी रचनाएँ की हैं जो सरलता-पूर्वक अर्थ-समुदाय का पद्य प्रदर्शन करती हैं।

यह सती भाति जानते हुए कि आजकल बहुपरिमाण प्रबन्ध प्रयत्नीय नहीं समझ जाते हैं प्रस्तुत प्रबन्ध को अत्यधिक अनावश्यक अक्षरों और पुनःपुनः सामग्री से बचाने का यथासंभव प्रयास किया है। इसी उद्देश्य से अनुचित तथा अनावश्यक कृतियाँ और पुनःपुनः कवियों तथा उनके काव्यों का परिचय भी अतिशय ही दिया गया है। इतने पर भी यदि यह प्रबन्ध अक्षर-सहित नहीं हो सका तो इसके कई कारण हैं। प्रथम, उन लोगों के अर्थ का निरसन मिताक्षर आवासक या जो नीतिकार्य के काव्यत्व का ही विवेचन करते हैं। द्वितीय, प्रबन्ध में हिन्दी के नीतिकार्य का विकास स्पष्ट करना या अतः पूर्ववर्ती भाषाओं के नीतिकार्यों पर कुछ विस्तृत प्रकाश डालना अनिवार्य था। तृतीय, नीतिकार्य नीति-कवियों की ही कृतियों में प्राप्त नहीं करना,

नाथों कीर-कवियों चतुर्षु सुप्रियों रामकवियों, कृष्णकविया और गूंगादी कवियों की रचनाओं में भी विकीर्ण है। यद्यपि इस प्रासंगिक नीतिकाम्य की उपेक्षा भी अर्थात्सनीय थी। अतुल्य तुलसीदास रक्षीम गम युव धाकीदास वीनदयास धादि प्रमुख नीति कवियों के नीतिकाम्य की दृष्टि से विस्तृत अध्ययन के बिना हिन्दी-नीतिकाम्य का विकास दुर्बोध रहता। और अन्त में सबसे बड़ा कारण है वह प्रचुर मौलिक हस्त लिखित सामग्री जो सौभाग्यवश साहित्यिक यात्राओं में मेरे हाथ लगी। इस सामग्री का उपमाण भी मेरे सांख्यिक रूप से ही किया है। इतने पर भी यदि यह प्रबन्ध उक्त कारणों से कुछ बढ़ा हुआ गया तो विवशता के लिए मैं क्षम्य हूँ।

परीक्षक महोदयों ने प्रबन्ध-परीक्षा के पश्चात् कृपा-सूचक जो प्रमुख सुझाव दिये थे उनके प्रचुर प्रथम में यथा-सम्भव परिवर्तन कर दिये गये हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के पाठों को मेरे कई कारणों से प्रायः अक्षुण्ण रहने दिया है। यथा है विना पाठक अध्ययनकाल में स्वयं ही उनका संशोधन कर लेंगे।

प्रस्तुत विषय का अध्ययन डॉ० नरेन्द्र डी-सिन्हा के निर्योचन में उपलब्ध हुआ। मैं हमारे प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। राजस्थान के प्रसिद्ध विद्वान् श्री अरविन्द नाइटा का मैं विशेष ध्यानी हूँ जिनके समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर, में मुझे एक मास तक अनेक पुस्तकें देखने का सुव्यस्य प्राप्त हुआ। इनके अतिरिक्त मैं दिल्ली के श्री पन्नासाह जैन और श्री परमानन्द जैन असीमंज(एटा), के श्री कामठाप्रसाद जैन हापुड़ के डॉ० रामबल भाट्टाज आराणसी के डॉ० वासुदेवधरल अजमेर उदमपुर के मुनि कान्तिदास तथा डॉ० मोतीसाह मेनारिया और अजमेर के मुनि विनविजय डॉ० मधुरासाह पुणेहित रामगोपाल तथा श्री कस्तूरचंद काठलीबास का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या पत्र-व्यवहार द्वारा मेरी अनेक प्रकार से सहायता की। यही पर मैं उपर्युक्त साहित्यिक तथा धार्मिक संस्थाओं के संचालकों के प्रति कृतज्ञता-भरसैन भी अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनकी सेवा से मुझे अनेक हस्तलिखित और प्रकाशित ग्रन्थ देखने की सुविधा प्राप्त हुई। मैं उन विद्वानों को भी हार्दिक कृतज्ञता देता हूँ जिनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची परिशिष्ट में दी गई है और अन्त में दिल्ली पुस्तक-सदन के संचालकों के प्रति भी ध्याना प्रकट करता हूँ जिन्होंने प्रबन्ध के मुद्रणकाल में स्तुत्य सहयोग दिया है।

श्रीवाग्निरेण्य गुरुगुरु गुणमत्सा मनीषिणः ।
प्राज्ञतास्य अज्ञतां मकरन्दमिवालयः ॥

श्री—१४१

आरवा निकेतन

राजेन्द्र नगर दिल्ली

कार्तिक-पूर्णिमा २०११ वि०

—राजसहज

विषय-सूची

विषय

पृष्ठ-संख्या

हमारी योजना

प्राबल्यन

सूचिका-खण्ड (१ १२८)

प्रथम अध्याय—नीति की परिभाषा और प्रकार तथा नीति-काव्य का काव्यत्व

३—३३

(क) नीति की परिभाषा, ३ व्युत्पत्त्यात्मक तथा प्रकृतिगत ३, वैदिक साहित्य में नीति के धर्म ३, प्राचीन महाकाव्यों में नीति के धर्म ४ अभिजात संस्कृत साहित्य में नीति के धर्म ७ संस्कृत के नीति-साहित्य में नीति के धर्म, ९, हिन्दी-साहित्य में नीति के धर्म १२-कोशों में नीति के धर्म १३। (ख) नीति के प्रकार, १३ (ग) नीति काव्य का काव्यत्व १८-प्रथम पाक्षेप की परीक्षा २८ द्वितीय पाक्षेप की परीक्षा २९, विदेशीय विद्वानों का मत २४ काव्य का मुख्य प्रयोजन २५, नीति-काव्य का प्रयोजन, २७ काव्य में नीति-काव्य का स्थान, २८ निष्कर्ष ३२

द्वितीय अध्याय—भारतीय साहित्य में नीति-काव्य की परम्परा

३४—१२८

वैदिक साहित्य में नीति-काव्य ३४ संस्कृत का नीति-काव्य, ४३ रामायण ४३ महाभारत ४३, पुराण ४९ समीक्षा ५१ महाकाव्य, ५२, लघुकाव्य ५४ ऐतिहासिक काव्य, ५६ जम्बू काव्य ५७ मुक्तक काव्यों में नीति, ५८ दुस्य काव्यों में नीति ६२, नीति-काव्यों में नीति ६३, प्रत्यक्ष नीति-काव्य ६३, अन्वय-पदेशिक नीति-काव्य, ७१, सुभाषित-संग्रहों में नीति-काव्य ७२ संस्कृत के नीति-काव्य की सामोचना ७३ पाणिनाया का नीति-काव्य ८२ पाणिनीय नीति-काव्य की समीक्षा ८४ साहित्यिक प्राकृतों का नीति-काव्य ८७ प्राकृत नीति-काव्य की समीक्षा ९३ अथ-प्रथम का नीति-काव्य १०३ धार्मिक साहित्य १०३ ऐदिक

नापों कीर-कवियों सत्तों सृष्टियों रामकवियों, कल्याणियों और शृंगारी कवियों की रचनाओं में भी विचौल्य है। अतः इस प्रासंगिक भीतिकाम्य की उपेक्षा भी अवाञ्छनीय थी। अतुल्य सुसजीवाय रहीम रम्य बृन्द बाजीराव वीनवपान आदि प्रमुख भीति कवियों के भीतिकाम्य की दृष्टि से विस्तृत अध्ययन के बिना हिन्दी-भीतिकाम्य का विकास दुर्बोध रहता। और अन्त में सबसे बड़ा कारण है वह प्रचुर मौलिक हस्त लिखित सामग्री जो सीमानामय साहित्यिक यात्राओं में मेरे हाथ लगी। उस सामग्री का उपयोग भी मैंने आंशिक रूप से ही किया है। इसने पर भी यदि यह प्रबन्ध उक्त कारणों से कुछ बड़ा हो गया तो पिछड़ता के लिए मैं क्षत्य्य हूँ।

परीपत्र महोदयों ने प्रकाश-परीक्षण के पश्चात् इया-सूचक जो प्रमुख सुमन्य विषयों से उनके अनुसार प्रबन्ध में यथा-सम्भव परिवर्तन कर दिये गये हैं। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों के पाठों को मैंने कई कारणों से प्रायः अक्षुण्ण रहल दिया है। याथा है किन्तु पाठक अध्ययनकाल में स्वयं ही उनका संशोधन कर लेंगे।

प्रस्तुत विषय का अध्ययन डॉ० नयेन्द्र भी-निहट्ट के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। मैं इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। रायस्थान के प्रसिद्ध विद्वान् श्री अणवरत्न नाट्टा का मैं विशेष आभारी हूँ जिनके समय बँत अन्वालय बीकानेर, में मुझे एक मास तक अनेक पुस्तकें बेखर्चे का सुव्यस्य प्राप्त हुआ। इनके अतिरिक्त मैं बिस्वी के श्री पन्नालाल जैन और श्री परमानन्द जैन असीरगंज (पटना) के श्री कामताप्रसाद जैन हापुड़ के डॉ० रामरत्न भारद्वाज, बाराणसी के डॉ० बामुदेवसरण अणबान उदयपुर के मुनि कान्तिदास्य तथा डॉ० मोठीलाल मैनारिया और जयपुर के मुनि जिनबिजय डॉ० मन्वरासाल पुरोहित राममोपाल तथा श्री कस्तूरचंद कासलीवाल का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या पत्र-व्यवहार द्वारा मेरी अनेक प्रकार से सहायता की। यहाँ पर मैं उपयुक्त साहित्यिक तथा धार्मिक संस्थाओं के संभासकों के प्रति कृतज्ञता-भरसँन भी अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनकी कृपा से मुझे अनेक हस्तलिखित और प्रकाशित ग्रन्थ देखने की सुविधा प्राप्त हुई। मैं उन विद्वानों को भी हार्दिक अभ्यवाह देता हूँ जिनकी प्रकाशित पुस्तकों की सूची परिशिष्ट में दी गई है और अन्त में बिस्वी पुस्तक-संरक्षण के संभासकों के प्रति भी आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने प्रबन्ध के सुप्रभास्य में स्तुत्य सहयोग दिया है।

श्रीधामिनिरस्य पुष्पु पुष्पुलस्य मनीषिणः ।

पांसुलपास्य मन्त्र्या मन्त्रन्वभिवालयः ॥

श्री—१४१

आरदा निकेतन

राजेन्द्र नगर बिस्वी

आदिक-पुष्पिमा २०११ वि०

—रामसदय

मन्त्रों और सूक्तियों के नीतिकाम्य की तुलना ३६१ निष्कर्ष ३६४
(ग) रामनाम्य में नीतितत्त्व (३६५ ४२०) व्यक्तिक नीति ३६६
पारिवारिक नीति ३७४ सामाजिक नीति ४०६ धार्मिक नीति
४०२, इतर प्राणिविषयक नीति, ४०६ मिथित नीति ४०६, राम
नाम्य पर एक दृष्टि ४१५, प्रमुख विशेषताएँ ४२०

(घ) कृष्णनाम्य में नीति तत्त्व (४२० ४२६) वैयक्तिक नीति,
४२१ पारिवारिक नीति, ४२४ सामाजिक नीति ४२६ धार्मिक नीति
४३६, इतर-प्राणिविषयक नीति, ४३६, मिथित नीति ४४० कृष्ण
नाम्य पर एकदृष्टि ४४५, रामनाम्य और कृष्णनाम्य ४५३ प्रमुख
विषयताएँ ४५६

पञ्चम अध्याय—रीतिकाल का नीतिकाम्य

४५७-६२७

(१) प्रमुख नीतिकवि (४५८ ५८४) जसराज (विनहर्ष) ४५९,
सुकदेव ४६१ हेमराज ४६२ श्रिया भगवतीदास ४६३ सखी-
बन्धन ४६५ वृत्र ४६७ धर्मसिंह ४८१ विनय मूर्ति, ४८५
बालनाथ ४८६, घनर घनम्य ४८६, देवीदास ४८७ केदारदास
बैन ४८९ गोपाल जानक, ४८९ रघुराम ४९४, किसन ४९६
भूपरदास ४९७, नाथ ५००, चाचा हितबुन्दाधनदास ५०२,
गिरिधर कविराय ५०४ विनय मक्ति, ५१० आनन्दार ५११
नाथुराम (नाबिबा) ५१४ मणुपति भारती, ५१६ स्वामदास
५१७ कृपाराम बारहठ ५१८ बाकीदास ५१९ बत्तास ५४६
मनरंगनाथ ५४७ रघुनाथ ५४९ कुचनन ५५० शीतलदास
गिरि ५५७ गुणाल कवि ५७२ केसीदास ५७८ महदही ५७८
मानिकदास ५७९ मनराम ५७९ मूर्खभद्र जोषाई, ५८१ श्रीपा-
दिकोद चरित ५८२, बाजार मूर जो संवाद ५८३

(२) नीति-ग्रंथों के अनुवादक कवि (५८४ ८९) अर्धसिंहदास ५८४,
नयनसिंह ५८४ कृष्ण कवि ५८५ द्वारकानाथ सरस्वती ५८५,
देवीचन्द्र ५८६ ब्रजनिधि, ५८६ जम्नराम ५८७, उम्मेद राम
५८७ विष्णुगिरि ५८८

(३) शृंगारी कवियों का नीतिकाम्य (५८९ ६०८) व्यक्तिक नीति
५९० पारिवारिक नीति ५९२ सामाजिक नीति ५९४ धार्मिक
नीति ६०० इतर प्राणिविषयक नीति ६०१ मिथित नीति ६४
धामाकता ६०५, निरुप ६०७

(४) संघ-ग्रंथों में नीतिकाम्य ६०८ ११

(५) पुरुष नीतिकवि ६११ ६१५

साहित्य, ११२, अथर्व-व-नीति-काव्य की समीक्षा, ११३ नीतिकार्य परम्परा का निष्कर्ष १२३

द्वितीय-सर्ग (१२६-१४१)

प्रथम अध्याय—शादिकाम का नीति काव्य १४१ १४१
नाम-काव्य में नीति-तत्त्व, १४१, पुस्तक के पाठ्य में नीति-तत्त्व १४२

द्वितीय अध्याय—वीरकाव्य में नीति-तत्त्व १४२ १५०
वैयक्तिक नीति १४२ पारिवारिक नीति, १४५, सामाजिक नीति, १४६, धार्मिक नीति १५० इतर प्राणि-विषयक नीति १५१; मिथिल नीति १५२, वीरकाव्यों के नीति-काव्य पर एक दृष्टि १५६, निष्कर्ष १५०

तृतीय अध्याय—मलिकाल का नीति-काव्य १५१ १६०

(१) मलिकाल के प्रमुख नीति-कवि (१८२-२४०) पद्मानाभ, १८२ ठकुरसी १८३ छेहल, १८५, गो० तुमचीदास १८७ यन्नाभनी, १९९, देवीदास २०१, जईराम २०५, धामकवि २११, बनारसी दास २१७ सुभरदास २२६, बाबिसद २३५, बाग, २३७ राजसमुद्र २४० कुयलवीर, २४१, भाल (?) २४३ लवीक्षा, २४३

(२) धकवरी बरवार के कवि, (२४७-२८६) महापाव नखरि २४८ राजा टोडर मल, २५७ बहा २५८ रंग २६३, खीन २७० सिद्दासलोकन, २८२

(३) धमुबादक कवि (२८५-८८) बनारसीदास, २८६

(४) कृतकाल नीति कवि २८८-९०

चतुर्थ अध्याय—मलिकाल में नीति-तत्त्व २९१ ४५६

(क) अर्थ-काव्य में नीति-तत्त्व (२९१ ३२०) वैयक्तिक नीति २९२-पारिवारिक नीति २९३, सामाजिक नीति २९७ धार्मिक नीति ३०५, इतर-प्राणि-विषयक नीति ३०७ मिथिल नीति ३०८ भालो बना ३१२ प्रमुख विशेषताएँ ३१६

(ख) मूर्खी-काव्य में नीति-तत्त्व (३२०-३६४) श्रेयकथानक ३२० वैयक्तिक नीति, ३२१ पारिवारिक नीति ३२८ सामाजिक नीति ३३२ धार्मिक नीति ३३६ इतर प्राणिविषयक नीति ३३६ मिथिल नीति ३३९, श्रेयकथानकों के नीतिकार्य पर एक दृष्टि: विषय ३४८ भारतीय नीति-काव्य का प्रभाव ३४९ विदेशी प्रभाव ३५० स्फुट रचनाएँ ३५३ स्फुट मूर्खी काव्य पर एक दृष्टि ३५७

सूत्रों और सूक्तियों के नीतिकाम्य की तुलना ३६१ निरूपण ३६४
(ग) रामकाम्य में नीतितत्त्व (३६५ ४२०) वैयक्तिक नीति ३६६
पारिवारिक नीति, ३७४ सामाजिक नीति ३८६, धार्मिक नीति
४०२, इतर-प्राणिविषयक नीति, ४०६ मिथित नीति, ४०६, राम
काम्य पर एक नृष्टि ४१५, प्रमुख विशेषताएँ ४२०

(घ) कृष्णकाम्य में नीति तत्त्व (४२० ४३६) वैयक्तिक नीति,
४२१ पारिवारिक नीति, ४२४ सामाजिक नीति ४२६ धार्मिक नीति
४३६ इतर-प्राणिविषयक नीति, ४३६, मिथित नीति, ४४० कृष्ण
काम्य पर एक नृष्टि, ४४५, रामकाम्य और कृष्णकाम्य ४३३ प्रमुख
विशेषताएँ ४३६

पंचम अध्याय—रीतिकाल का नीतिकाम्य

४२७-६२७

(१) प्रमुख नीतिकवि (४२८ ५८४) अश्वमेध (विनहर्ष) ४२६,
सुकदेव ४६१ हेमराज ४६२; मीमा भगवतीबास ४६३ मधुमी
बस्मन ४६५ कृष्ण ४६७ धर्मसिंह ४८१ जिनरंग सूरि, ४८५,
बालकम्प, ४८६, अक्षर अनय ४८६, देवीदास ४८७ केसवदास
बैन ४८६ गोपाल जानक, ४८६, रघुराम ४९४ क्रिष्ण ४९६
भूधरदास ४९७ भाष ५००, आशा हितकृष्णदास ५०२,
मिरभर कविराम ५०४ विनय भक्ति ५१० आनसार, ५११
माधुराम (भाषिया) ५१४ यणपति भारती, ५१६ स्यामदास
५१७ कृपादास बारहठ ५१८ बाँकीदास ५१६ वेवाल ५४६
मनरामदास ५४७ रघुनाथ ५४६ कुम्भजन ५५० दीनदयाल
मिरि, ५५७ मुपास कवि ५७२, केसोदास ५७८ भद्रवरी ५७८
मानिकदास ५७६ मनराम ५७६, मूलभेद चौपाई ५८१ प्रिया
विनोद चरित ५८२ बाठार पुर भी उबाव ५८३

(२) नीति-ग्रंथों के अनुवादक कवि (५८४ ६६) जयसिंहदास ५८४
नमसिंह ५८४, कृष्ण कवि ५८५ इतरकानाथ सरस्वता ५८५,
देवीकम्प ५८६ अजनिधि, ५८६, चम्पनराम ५८७ छम्मेद राम,
५८७, विष्णुमिरि ५८८

(३) ग्रंथारी कवियों का नीतिकाम्य (५८६ ६०८) वैयक्तिक नीति,
५८० पारिवारिक नीति ५८२ सामाजिक नीति ५८४ धार्मिक
नीति, ६०० इतर प्राणिविषयक नीति ६०१ मिथित नीति, ६०४;
पासोचना ६०५ निरूपण ६०७

(४) संघ-ग्रंथों में नीतिकाम्य ६ ८ ११

(५) पुरुष नीतिकवि ६११ ६१५

साहित्य ११२ अथवा स्व-नीति-काव्य की समीक्षा ११३ नीतिकार्य परम्परा का निष्कर्ष १२३

दोष-संग्रह (१२६—६४१)

प्रथम अध्याय—धार्मिकता का नीति काव्य १३१ १४१
नाब-काव्य में नीति-तत्त्व १३१ सुसरो के काव्य में नीति-तत्त्व १३६

द्वितीय अध्याय—बीरकाव्य में नीति-तत्त्व १४२ १५०
वैयक्तिक नीति १४२ पारिवारिक नीति १४५, सामाजिक नीति, १४६, धार्मिक नीति १६० इतर प्राणि-विषयक नीति, १६१, मिथित नीति १६२ बीरकाव्यों के नीति-काव्य पर एक दृष्टि १६६, निष्कर्ष १८०

तृतीय अध्याय—मत्तिकाव्य का नीति-काव्य १८१-२६०

(१) मत्तिकाव्य के प्रमुख नीति-कवि (१८२ २४०) पद्मनाभ १८२, ठकरसी १८३ छीहम, १८३, गो० तुमसीदास १८७ रत्नावली, १९६, बेबीबास २०१ उर्वरदास २०३, जानकवि २११ बनारसी बास २१७ सुभद्रदास, २२६, बाबिनन्द २३३, बामि २३७ राजतमुर २४० कुचनबीर, २४१ नाम (?), २४३ समीक्षा २४५

(२) धरुवरी दरबार के कवि, (२४७-२५६) महापात्र मच्छि, २४८ राजा टोडर मल २४७ बड़ा २४८ रण २६३, खीम, २७० सिहाबसोकन, २८२

(३) समुदायक कवि (२८६-८८) बनारसीदास, २८६

(४) फुटकन नीति कवि २८८-९०

चतुर्थ अध्याय—मत्तिकाव्य में नीति-तत्त्व २९१ ४३६

(क) सम्य-काव्य में नीति-तत्त्व (२९१ ३२०) वैयक्तिक नीति २९२ पारिवारिक नीति २९५ सामाजिक नीति २९७ धार्मिक नीति, ३०३, इतर-प्राणि-विषयक नीति ३०७ मिथित नीति ३०८ सामो बना ३१२ प्रमुख विशेषताएँ ३१६

(ख) सूफी-काव्य में नीति-तत्त्व (३२० ३६४) प्रेमकथानक ३२० वैयक्तिक नीति ३२१ पारिवारिक नीति, ३२८ सामाजिक नीति ३३२ धार्मिक नीति ३३६ इतर-प्राणि-विषयक नीति ३३६ मिथित नीति ३३६, प्रेमकथानकों के नीतिकार्य पर एक दृष्टि: विषय ३४४ भारतीय नीति-काव्य का प्रभाव ३४६, विदेशी प्रभाव ३५१, स्पष्ट रचनाएँ ३५३ स्पष्ट सूफी काव्य पर एक दृष्टि ३५४

मन्त्रों और सूक्तियों के नीतिकाम्य की तुलना ३६१ निष्कप १६४
 (य) रामकाव्य में नीतितत्त्व (३६३ ४२०) व्यक्तिक नीति ३६६
 पारिवारिक नीति ३७४ सामाजिक नीति ३८६ धार्मिक नीति
 ४०२, इतर प्राणिक्रियक नीति, ४०६ मिथित नीति ४०६, राम
 काव्य पर एक दृष्टि ४१३, प्रमुख विशेषताएँ ४२०

(घ) कृष्णकाव्य में नीति तत्त्व (४२० ४२६) व्यक्तिक नीति,
 ४२१ पारिवारिक नीति, ४२४ सामाजिक नीति ४२६ धार्मिक नीति
 ४३६ इतर प्राणिक्रियक नीति ४३६, मिथित नीति ४४० कृष्ण
 काव्य पर एक दृष्टि ४४३, रामकाव्य और कृष्णकाव्य ४२३ प्रमुख
 विशेषताएँ ४२६

पंचम अध्याय—नीतिकाम्य का नीतिकाम्य

४२७-६२७

(१) प्रमुख नीतिकवि, (४२८ १८४) जसराज (जिनहर्ष) ४२६,
 सुकदेव ४६१ हेमराज ४६२, भैया मगवतीदास ४६३ सखी
 बसम ४६५, कुल ४६७, धर्मसिंह ४८१ जिनरंग सूति, ४८३,
 बालचन्द्र ४८६, अक्षर अमन्य ४८६, देवीदास ४८७ केसवदास
 जैन ४८६, गोपाल जानक, ४८६, रघुराम ४९४ किसन, ४९६
 मुरारदास, ४९७, राम १००, बाबा हितकृष्णचनदास १०२
 मिरिभर कविराय १०४ जिनय भक्ति ११० ज्ञानसार, १११
 नाबूराम (नाथिया) ११४ मणपति भारती, ११६ त्यागदास,
 ११७ कृपाराम बारहठ ११८ बांकीदास ११६ बैवाल, १४६
 मनरमदास १४७ रघुनाथ १४६ कुचनन ११०, दीनदयाल
 विरि, १२७ गुपाल कवि १७२, केसीदास १७८, मङ्गरी १७८
 मानिकदास १७६ मनराम १७६ मूलभेद जीपाई, १८१ श्रीया
 विनोद चरित १८२, बाठार मूर गो संवाद १८३

(२) नीति-सर्वों के अनुवादक कवि (१८४ ८६) अर्धसिंहदास १८४-
 मदनसिंह १८४, कृष्ण कवि १८३ इतरकाम्य सरस्वता १८३,
 देवीचन्द्र १८६, अत्रनिधि १८६ चन्दनराम १८७ उम्मेद राम
 १८७ विष्णुगिरि १८८

(३) शृंगारी कवियों का नीतिकाम्य (१८६ ६०८) व्यक्तिक नीति
 १९० पारिवारिक नीति १९८, सामाजिक नीति १९८ धार्मिक
 नीति ६० इतर प्राणिक्रियक नीति ६०१ मिथित नीति ६०४
 धामाचना ६०३ निष्कप ६०७

(४) मंथन-सर्वों में नीतिकाम्य ६०८ ११

(५) फुल्ल नीतिकवि ६११ ६१३

रीतिकामीन नीतिकाम्य की समीक्षा ११३	रीतिकामीन नीतिकाम्य
की प्रमुख विषयताएँ, ६२५	
षष्ठ अध्याय—पूर्ववर्ती नीतिकाम्य का हिन्दी नीतिकाम्य पर प्रभाव	६२८ ६३४
भाष ६२८, भाषा ६३१, रस ६३२, मर्मकार ६३२, वाक्यविधान	
६३३, टीसी ६३४, उभय, ६३४	
सप्तम अध्याय—उपलंकार	६३५ ६४१
कथिक विकास ६३५, मूर्त्यांकन ६३५, तुलनात्मक मूर्त्यांकन ६३८,	
परिमाणु ६३८, अर्थ विषय, ६३८; मीलिकता ६३९, उपयोपिता	
६३९, काव्य-सौष्ठव ६४०, निष्कर्ष, ६४१	
प्रथम परिशिष्ट—हस्तलिखित ग्रंथों की सूची	६४२ ६४४
द्वितीय परिशिष्ट—प्रकाशित ग्रंथों की सूचियाँ व संकेत	६४५ ६५२
अनुक्रमणी—	६५३ ६५९
अन्य सूची	६६० ६६९



(१)

भूमिका-खण्ड

प्रथम अध्याय

नीति की परिभाषा और प्रकार तथा नीति-काव्य का काव्यत्व

(क) नीति की परिभाषा

ध्रुत्वसूयात्मक तथा प्रबलित धर्म—संस्कृत का शब्द “नीति” प्राणार्थक वातु ‘नी’ (नीम्)¹ तथा भाषावक प्रत्यय ‘ति’ (कितन्)² के संयोग से निष्पन्न होता है। इसलिये “नीति” (पान) तथा “अनीति” (अध्वयम) के समान ‘नीति’ का धर्म भी नयन (से जाना) वा प्रापण (पहुँचाना) ही है। परन्तु पान यह प्राय लभित (धर्म प्रापक वा सख्यसाधक) व्यवहार के धर्म में प्रयुक्त होता है।

वहिक साहित्य में नीति के धर्म—संहिताओं बाह्यों धारण्यों तथा उप निषदों में “नीति” धर्म स्वतन्त्र रूप में तो अपसम्प नहीं होता, परन्तु समासास्त में इसका प्रयोग अनेकप्रकार मिल जाता है। जैसे—

१—अनुनीति नो वदतो मित्रो नयतु विद्वान्।³

मित्र और वरुण हमें कौटिल्य-रहित नीति (प्रापण) द्वारा अनीष्ट फल दिसाएँ। यहाँ नीति के पूर्य “अनु” का प्रयोग मह प्रबलित करता है कि प्रायः नीति में कुछ धानुर्य मिश्रित रहता है।

२—नामी धामस्य धृतयः प्रलीतिरस्तु सुनुता।⁴

हे प्रकल्पित करने वाले मरुत देवताओं, तुम्हारी बाणी हमारे लिए धन कुछ साने बालो हो।

१ खीम् प्रापण। तिङ्नास्त कौमुदी (नियमशागर प्रेस बम्बई, १९३५ ई०) पृष्ठ ४००।

२ तिभ्यां कितन्, कालिदि, अष्टाध्यायी—३ ३-६४।

३ अश्वेद १।६०।१; प्र०—धरविन्द धामम पीडबरी। सामलभाष्य—अनुनीत्या अनुनयनेन।

४ कौटिल्यराहितेनापमनेन नयतु अमिमत्तं फलं प्रापयतु।

तिङ्नास्तनात्प भाष्य—कौटिल्यस्यैव नयनेन नैवध्वमुत्तमस्याह प्रति प्रापयेत्। अश्वेद १।६०।१०, सामल भाष्य—(हे कल्पितार मरुत) पुष्करोया भारत प्रलीतिरस्तु, धरमवप पनानां प्रलीप्ती भवतु।

प्रथम अध्याय

नीति की परिभाषा और प्रकार तथा नीति-काव्य का काव्यत्व

(क) नीति की परिभाषा

ध्रुत्वत्प्रकारक तथा प्रबलित अर्थ—संस्कृत का शब्द “नीति” प्रायणार्थक वातु “नी (णीञ्)” तथा भावापक प्रत्यय “ति” (वित्) के संयोग से निष्पन्न होता है। इसलिये “नीति” (पान) तथा “अनीति” (अध्यायन) के समान “नीति” का अर्थ भी नयन (ले जाना) वा प्राण (पहुँचाना) ही है। परन्तु आज यह प्राय उचित (अर्थ प्राणक वा सदयसाधक) व्यवहार के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

बौद्धिक साहित्य में नीति के अर्थ—संहिताओं आह्वयों आरम्भकों तथा उपनिषदों में “नीति” शब्द स्वतन्त्र रूप में तो उपलब्ध नहीं होता, परन्तु समासान्त में इसका प्रयोग अनेकत्र मिल जाता है। जस—

१—ऋजुनीति नो बभूवो मित्रो नयतु विद्वान् ।^१

मित्र और बरण हमें कौटिल्य-रहित नीति (प्राण) द्वारा अमीष्ट फल दिसाएँ। यहाँ नीति के पूर्व ‘ऋजु’ का प्रयोग यह दर्शाता है कि प्रायः नीति में कुछ अन्याय मिश्रित रहता है।

२—वामो वामस्य धृतयः प्रलीतिरस्तु सुनृता ।^२

हे प्रकल्पित करने वाले मरुत देवताओं पुम्हारी बाली हमारे लिए धन कुछ साने बासी हो।

१ छोजू प्राण । सिद्धान्त कौमुदी (निलयसागर प्रेस बम्बई, १९३८ ई०) पृष्ठ ४०० ।

२ सिद्धार्थ वित्तु, बालिनि, अष्टाध्यायी—१ ३-६४ ।

३ ऋग्वेद १।६०।१, प्र०—अरविम्ब आभम पांडवरी । सायणभाष्य—ऋजुनीत्या ऋजुनयनेन ।

४ कौटिल्यरहितेनायमनेन नयतु अमिदन्तं फलं प्रापयतु ।

सिद्धार्थनायक भाष्य—कौटिल्यनयनेन नयनेन नित्यध्रुत्वत्प्रकारकं प्रति प्रापयेत् । ऋग्वेद १।६०।२० सायण भाष्य—(हे कल्पितारः मरुत) सुप्महीषा वाक् प्रलीतिरस्तु, अस्मदय धनानां प्रलीयी मरुतु ।

३—यथा यजुषाम्प्रतीतिमेतामप देवानां यममीर्षयति ।^१
जब यह प्राणापहारक दण्ड के पास जा पहुँचता है तब यह देवताओं का

बसबर्ती बन जाता है ।

४—इन्द्रो वृषभबृणोषधर्ष्यतीति प्रमायिताममिताह् बर्षंतीति ।^२
प्रवृत्त बर्षों बाल इन्द्र ने वृष का पर लिया तथा युद्ध में वृषों के प्रहारों के

निवारण बर्ष करने वाले इन्द्र ने मायावी वसुओं का अत्यधिक बर्ष किया ।^३ इसी
मन्त्र के 'बर्षंतीति' शब्द का अर्थ महोत्तर ने 'नाता रूपवाची' अर्थात् कपटी वसुओं
को अनेक रूप प्राप्त करके मारने वाला (इन्द्र) किया है । इससे कपटी लोगों के प्रति
नीति के व्यवहार की ध्वनि भी निकलती है ।

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि वैदिक साहित्य में नीति शब्द चार अर्थों में
व्यवहृत हुआ है—

- १—प्राण अर्थात् पहुँचाना
- २—साने वाली
- ३—से जाने वाली
- ४—बर्ष व्यवहार

प्राचीन महाकाव्यों में 'नीति' के अर्थ

वैदिक साहित्य में तो समास रहित नीति शब्द का प्रयोग नहीं मिलता
रन्तु हमारे महाकाव्यों—रामायण और महाभारत—में यह शब्द उच्चका पर्यायवाची
अर्थों में अनेकों अर्थों पर प्रयुक्त हुआ है । जैसे—

१—धी रामचन्द्र के शृणो के उत्प्रेय में बाल्मीकि कहते हैं—
बुद्धिमत् नीतिमान् पापनी धीमान्बुद्धिबहूषः ।^४

धी रामचन्द्र बुद्धिमान्, नीति-कुशल सुवक्ता तथा अनुनायक थे । तिल

अपर्व-१८।२।३

तामसमाध्य—यमुनीतिम्—यसून् प्राणम् नयति लोकांतरमिति यमुनीति-

प्राणापहारी देवता ताम् ।

अध्या ३।१४।३

यसमाध्य—अप प्रवृत्त नीति दम यस्य सः । तथा यमनीति- युद्धे परमहा
नीति निवारणकर्मा इन्द्र मायिनो वसुरान् प्रकर्षेणाबबोत् ।

इति यमनाम (विषु ३।७) । बर्षं नाताकर्षं नयति प्राप्नोति बर्षंतीति
अपवाची (महोत्तर भाष्य) ।

यसम् (तिलकव्याख्यासमेतम्) तिलकसागर प्रम १६२ धातुकांड, सर्ग
श्लोक ६ । तिलक—नीति काम्यकारिप्रसिद्धराजनीतिः यही, १।१।६ ।

कात्यायन्यास्या के रचयिता राम के मत में इस स्वस पर नीति वरु राजनीति का भाषक है।

२—वास्मीकि ने दशरथ के अमात्यों को 'नीतिशास्त्रविद्येयमा' १ अर्थात् नीति शास्त्र के विद्येय ज्ञाता कहा है। कहता अनावरणक होगा कि यहाँ नीति का अर्थ राजनीति से ही है।

३—राम के राजतिसक के प्रसंग में मन्वरा कौन्वेयी को प्रभावित करती हुई कहती है कि राजा के सभी सुत सिंहासनासीन नहीं हुआ करते। क्योंकि—

स्वाप्यमानेषु सर्वेषु सुमहानमयो भवेत्।^२

सभी के अभिषिक्त होने पर बड़ा भारी अनय हुआ जाएगा। तिसककार ने 'अनय' का अर्थ अन्वयाय (अनीति अनुचित व्यवहार) किया है।

४—वास्मीकि रामायण में मन्त्रियों के पुण्य-अणु में 'नय' शब्द का व्यवहार राजनीति के अर्थ में भी हटिपोचर होता है—

हितार्थाच्च नरेन्द्रस्य जायते नमघणुषा।^३

'वे मन्त्री नरेन्द्र (दशरथ) के हितार्थ तथा नीति के नेत्रों से सदा जागरित रहते थे। यहाँ प्रसंग-अनय से 'नीति' शब्द की राजनीतिपरकता अस्पष्ट है।

५—महाभारत के उद्योग पर्व के ३१-४० अध्याय विदुरनीति के नाम से प्रख्यात हैं। इनमें स प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में 'विदुरनीति' पद वर्तमान है। इस से स्पष्ट है कि इन अध्यायों का विषय नीति है। इन अध्यायों के परिचासन से स्पष्ट हो जाता है कि नृप-अठस्य और सोरु-अठस्य दोनों का ही भाति कहा गया है।^४

(१) नृपकृतस्य—स्त्री-विषयक भासक्ति जुमा शिकार, मद्यपान वचन की कठोरता अत्यन्त कठोर संभ देना और धन का दुरुपयोग करना—ये सात दुःखदायी दोष राजा को सदा त्याग देने चाहिएँ। इन स दुःख-भूत राजा भी त्राम भट्ट हो जाते हैं।^५

(२) सोरु-अठस्य—मनुष्य दिन में बह काम करे जिस से रात में सुप्त से रहे और षाठ मास के कार्य करे जिन से शोभासा गुण स भौत जाए।^६

६—महाभारत में नीति वरु पुष्पिकाओं मात्र में ही नहीं मूसरुनों में भी उपसग्य होता है। जैसे—

१ बही, १।८।१६

२ बही, १।८।२३ । तिसक—अनयो अन्वयाय ईव्यथा परस्परप्रजावीदनरुप्य ।

३ बही, १।७।१९

४ इति श्रीमहाभारते, उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि विदुरनीतिपारये, अध्यायः (विचारात्ता प्रेस पूना, भाग ३ १९३१ ई०)

५. विदुरनीति शोभा प्रेस वीररानुट, २०११ वि० अध्याय १, श्लोक ६६ ६७ ।

६ बही अध्याय ३ श्लोक ६७

(१)—ब्रह्मी ब्रह्मवैतान्तिम् नीतिरस्मि जिवीवताम् १

गीता की संस्कृत टीकाएँ धनैक विद्वानों ने की हैं परन्तु इस दशोक में प्राये हुए 'नीति' शब्द के अर्थ में कोई वैयक्तिक मति नहीं होता। स्वामी संकराचार्य ने नीति शब्द को ज्यों-का-त्यों रहने दिया है।^१ आनन्दबिरि धीर मधुसूदन ने 'नीति' का अर्थ ऐसा दिया किया है जो जय के उपाय का प्रकाशक हो।^२ नीलकण्ठ धीर ब्रह्मपति के मत में जय का साधन या हेतु ही नीति है।^३ श्रीधर ने कामादि उपायों को ही नीति कहा है।^४ श्रीगणेश के प्रहरी मधुबादक ने 'नीति' का अर्थ कूटनीति (दिप्लोमैसी) ^५ महात्मा गांधी ने 'नीति = धीर डॉ॰ राधाकृष्णन् म 'विवेकपूर्वक नीति' (बाइबलवादिनी) ^६ किया है।

इन टीकाकारों का सम्मेलन इस बात को सिद्ध करता है कि यहाँ 'नीति', उस उपाय साधन या हेतु का कहा गया है जिस से लक्ष्य स्व शत्रुओं पर विजय पाने में समर्थ होते हैं और वह राजनीति का ही एक अंग है।

(२) नीति शब्द भयवृषोता के अन्तिम दशोक में भी व्यवहृत हुआ है—

यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पापों षुर्धर ।

तत्र श्रीविजयोभूतिष्णुवा नीतिमतिर्मन ॥^७

इस दशोक की टीका में आनन्दबिरि तो मौन रहे हैं परन्तु जेप सभी आचार्यों ने नीति का अर्थ नव (नातिर्नय) दिया है। सोकमाय तिमक ^८ महात्मा गांधी ^९ धीर डॉ॰ राधाकृष्णन् ^{१०} ने यहाँ नीति शब्द का अर्थ नीति अर्थात् उपाय (मोरे

१ भयवृषोता १०१३७

२ नीतिरस्मि जिवीवता जेतुमिच्छताम् (संकराचार्य) भयवृषोता निर्लभ सावर प्रेत बर्ही, १९३६ : पृष्ठ ४६३

३ नीतिर्गर्भो धर्मस्व जयोपायस्य प्रकाशक (आनन्दबिरि) बर्ही, पृष्ठ ४६३
नीतिर्गर्भो जयोपायस्य प्रकाशको अहमस्मि (मधुसूदन) बर्ही पृष्ठ ४६३

४ जेतुमिच्छता ब्रह्मभक्त नीतिरस्मि (नीलकण्ठ) बर्ही, पृष्ठ ४६३
जेतुमिच्छता जयहेतुनीतिरहम् (ब्रह्मपति) बर्ही पृष्ठ ४६३

५ कामाद्युपायकथा नीतिरस्मि (श्रीधर) बर्ही, पृष्ठ ४६३

६ गीतारहस्य का आनन्दबिरि सीताराम कृत अंग्रेजी अनुवाद, पूना, १९३६ भाग २, पृष्ठ १०७०

७ महात्मा गांधी अनासक्तिभोग भई विस्मो, १९४४ पृष्ठ १४९

८ डॉ॰ राधाकृष्णन् भयवृषोता लंदन, १९४९, पृष्ठ ९६७

९ भयवृषोता १०१३७ ॥

१० तिमक गीता रहस्य अंग्रेजी अनुवाद, भाग २; पृष्ठ १२०९

११ गांधी, अनासक्तिभोग; पृष्ठ १४२

१२ राधाकृष्णन्, भयवृषोता (लंदन, १९४९ ई॰) पृष्ठ ९६३

लिटी) किया है।^१

उक्त कतिपय उद्धरणों से निष्कप यह निष्कर्षता है कि नीति वा नय शब्द हमारे महाकाव्यों में निम्नांकित अर्थों का प्रतिपादन करता है—

(१) नृप, मंत्री आदि के शासन-सम्बन्धी कर्तव्य

(२) अथ का शासन वा हेतु

(३) साम दाम आदि उपाय

(४) कूटनीति (डिप्लोमेसी)

(५) उचित वा म्याम्य लोक-व्यवहार

(६) विवेकपूर्ण नीति (बाह्य पासिटी)

इनमें से २-४ तक के अर्थ प्रथम में और छठा अर्थ पाँचवें में अन्तर्भूत हो जाता है। इस प्रकार दो ही मुख्यार्थ अवशिष्ट रहते हैं—राजनीति तथा उचित व्यवहार (सामान्य नीति)।

अभिजात संस्कृत साहित्य में नीति के अर्थ

बौद्धिक साहित्य तथा प्राचीन महाकाव्यों के पर्याप्त अभिजात संस्कृत साहित्य में भी नीति वा नय शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर विभिन्न अर्थों में किया गया है। कालिदास भारवि भाष भवभूति, भी हर्ष आदि की अमरकृतियों में इन अर्थों के प्रयोग तथा अर्थ द्रष्टव्य हैं—

१—जब राजण द्वारा व्यवहृत विभीषण राम की धरण में पहुँचा, तब कालिदास के शब्दों में—

तस्मै निशाचरैरुदर्ये प्रतिशुभात् रायकः ।

काले प्रसु समाख्या फलं वप्सन्ति नीतयः ॥^२

‘रायक ने उस विभीषण को राक्षसाभिपति बनाने की प्रतिज्ञा की। समय पर काम में साईं हुई कूटनीतियाँ^३ आये बसकर अवश्य फल देती हैं।’

१ यहाँ प्रथमपक्ष यह कह देना भी अशुक्त न होया कि राजनीति के लिए महा भारत में राजधर्म^१ और इच्छनीति^२ अर्थों का तथा राजनीति-शास्त्र के लिए राज्यात्म^३ का प्रयोग भी देखने में आता है।

(१) शास्त्रिपत्र, १ १३० अध्यायों की पुष्पिका)

(२) शास्त्रिपत्र, अध्याय ३६, श्लोक ७८)

(३) महाभारत आदि पर्व, अध्याय १४०, श्लोक २,४)

*अभिजात—कलातिकृत।

२ कालिदास रघुवंश, १२।६६

३ सं०—सीताराम अतुर्वरी कालिदास संपावलि कापी, २००१ वि०, रघुवंश १२।६६ की टीका।

(१)—बड़ी समपतामस्मि नीतिरस्मि विपीयताम् ।^१

पीठा की संस्तुत टीकाएँ अनेक विद्वानों ने की हैं परन्तु इस श्लोक में प्राये हुए 'नीति' शब्द के अर्थ में कोई अंतर नहीं होता। स्वामी शंकराचार्य ने नीति शब्द को ज्यों-ता-स्यों रहने दिया है।^२ धानशुभिरि धीर मयसुवन मे 'नीति' का अर्थ देखा गया है जो जय के उपाय का प्रकाशक हो।^३ नीलकण्ठ धीर जनपति के मत में जय का साधन या हेतु ही नीति है।^४ धीवर ने सामासिक उपायों को ही नीति कहा है।^५ पीठा रहस्य के अज्ञेय अनुशासन ने 'नीति' का अर्थ कूटनीति (डिप्लोमेसी) महात्मा गांधी ने 'नीति = धीर हों राधाहृष्यन्' में विवेकपूर्ण नीति (राजनीति) प किया है।

इन टीकाकारों का साम्प्रदाय इसी बात को सिद्ध करता है कि यहाँ 'नीति' उस उपाय साधन या हेतु को कहा गया है, जिस से उत्पत्ति एवं शत्रुओं पर विजय पाने में समर्थ होते हैं धीर यह राजनीति का ही एक अंग है।

(२) नीति शब्द मतस्यगीता के अन्तिम श्लोक में भी व्यवहृत हुआ है—
यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पाशो धनुर्धर ।
तत्र भीविजयोपुतिश्रुवा नीतिमतिर्मम ॥^६

इस श्लोक की टीका में धानशुभिरि तो मीन रहे हैं परन्तु शेष सभी प्राचार्यों ने नीति का अर्थ सब (शांतिर्नम) किया है। शंकराचार्य तिलक 'महात्मा गांधी' धीर हों राधाहृष्यन्^७ ने यहाँ नीति शब्द का अर्थ नीति अर्थात् उपाय (नोरे

१. भयवद्गीता १.०।३८

२. नीतिरस्मि विपीयतां जेतुमिच्छताम् (शंकराचार्य) भयवद्गीता निर्लभ्य साधर प्रेत बरहै ११३३ : पृष्ठ ४६३

३. नीतिकर्मियो समस्य जयोपायस्य प्रकाशक (धानशुभिरि) बरहै पृष्ठ ४६३

४. नीतिकर्मियो जयोपायस्य प्रकाशको मयसुवस्मि (मयसुवन) बरहै पृष्ठ ४६३

५. जेतुमिच्छतां जयसाधनं नीतिरस्मि (नीलकण्ठ) बरहै पृष्ठ ४६३

६. जेतुमिच्छतां जयहेतुनीतिरहम् (जनपति) बरहै पृष्ठ ४६३

७. सामासुपायकथा नीतिरस्मि (धीवर) बरहै पृष्ठ ४६३

८. पीठा रहस्य का भासकर पीठाराम हृदय अंगेसी अनुशासन, पुनः, १९३६ भाग २ पृष्ठ १०७७

९. महात्मा गांधी अनासक्तियोप नई दिल्ली, १९४४ पृष्ठ १४९

१०. डा राधाहृष्यन् भयवद्गीता लंबन १९४९, पृष्ठ २१७

११. भयवद्गीता १.०।७५ ॥

१२. तिलक गीता रहस्य अज्ञेय अनुशासन, भाग २; पृष्ठ १२०९

१३. गांधी, अनासक्तियोप; पृष्ठ २४२

१४. राधाहृष्यन्, भयवद्गीता (लंबन, १९४९ ई०) पृष्ठ ३२३

उपर्युक्त अक्षरों तथा उनकी प्रामाणिक टीकाओं से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि अमिताभ संस्कृत साहित्य में 'नीति' शब्द निम्नांकित अर्थों का प्रकाशक है—

१—कूटनीति

२—संविधिग्रहादि पाठगुण्यमयो राजनीति

३—विशेषपूर्वक कार्य-विधि

४—अपनी उन्नति अर्थात् नीति अर्थात्

५—कार्य-साधक अथवा अथवा युक्ति

उपर्युक्त अर्थपत्रक पर धम्मरीर हस्तात् करने से ज्ञात होता है कि प्रथम तथा द्वितीय अर्थ राजनीति के अर्थभूत हो जाते हैं और तृतीय तथा पंचम अर्थ उचित व्यवहार के। अतुष अथ वस्तुतः नीति का अर्थ न होकर अत्यन्त ही जो नीति का साम्य है। इस प्रकार नीति का दो ही अर्थ हो सकते हैं—राजनीति और उचित व्यवहार। इनमें ही द्वितीय अर्थ ही इस प्रबन्ध का विशेष्य विषय है।

संस्कृत के नीति-साहित्य में 'नीति' के अर्थ

पीछे उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त नीति शब्द के अर्थ स्पष्ट करने का यत्न किया गया है जिनकी रचना तो हुई थी किसी अन्य ग्रंथ से परन्तु जिनमें नीति शब्द व्यवहृत हुआ प्रसंग-नष्ट। अथ नीति शब्द का वाच्य उन अर्थों में देखना समीचीन होगा जिनकी रचना का सक्ष्य ही नीति प्रतिपादन था।

अथवा राजनीतिज्ञ आणवय क नाम से तीन पुस्तकें उपलब्ध होती हैं—'कौटिल्याचार्यशास्त्र', आणवय-सूत्र और आणवय-नीति। 'कौटिल्याचार्यशास्त्र' में कहा गया है—

'नयानयो वण्डनीत्या'^१

अर्थात् राजा को उचित तथा अनुचित व्यवहार^२ की विषय वण्डनीति से ग्रहण करनी चाहिए।

आणवय-सूत्र में कुल ५७१ सूत्र हैं। कुछ सूत्रों में नीति शब्द निस्सन्देह राजनीति का वाचक है परन्तु एक सूत्र में वह सामान्य नीति का उल्लेख है। जैसे—

(क) 'राज्यवर्धनार्थं नीतिशास्त्रम्'^३

१ सं०—शाम शास्त्री, कौटिलीयमप्यशास्त्रम् (मैसूर, १९२४ ई०) अधिकरण १, अध्याय २।

२ नयानयो—एकसपीडिप्ट एंड इनएकसपीडिप्ट। कौटिलीयमप्यशास्त्रम् का साम शास्त्री इत अर्थवर्धनी अनुवाद (मैसूर, १९२६ ई०) पृष्ठ ६

३ कौटिलीयम् अप्यशास्त्रम् के परिशिष्ट में 'आणवयसूत्रम्', सूत्र ४३

२—भारवि ने किरातार्जुनीय में 'नय' शब्द को अनेकवचन व्यवहृत किया है। उसके टीकाकार मल्लिनाथ ने अथिक्तर स्थलों पर 'नय' का अर्थ 'नीति' किया है पर कहीं-कहीं 'राजनीति' तथा 'विवेकपूर्णक कृत कार्य' भी किया है। जैसे, बुर्जोअ का प्रतिविमि का रहस्य जानने के लिए प्रेषित बनवासी किरात लौटकर युधिष्ठिर को सूचित करता है—

तथातुमावीर्यमर्षोचि धम्मया निपुणतत्त्वं नयवर्त्म विद्विषाम् ।^१

'यह आपका ही प्रभाव है जिससे मैंने धनुषों के रहस्यमय संविधिग्रहादि छह गुणों के प्रयोग^२ को जान लिया है।

भारवि अन्वय कहते हैं—सर्पेर का धर्मकार पवित्र ज्ञान है पवित्र ज्ञान का धर्मकार शान्ति है शान्ति का धर्मकार पराक्रम धीर पराक्रम का धर्मकार विवेक-पूर्णक कार्य-विधि द्वारा सिद्धि-प्राप्ति है ।^३

३—माघ ने द्विसुपासत्रय में—

✓ वात्समीव्य परवपान्निर्घर्म नीतिरिच्छीयती ।^४

कहकर अपनी कृति धीर धनु की हानि को ही नीति का सार कहा है।

४—धीरुर्द-कृत 'नैपथ्य चरित' महाकाव्य में 'ग्याम्य व्यवहार' के अर्थ में नीति शब्द का प्रयोग हुआ है। जब लक्ष इन्द्र के कपट को टाक गया तब उसने—

✓ आचरतनुभितामय वासीमात्रेवं हि कुदिसेपु न नीति ।^५

कपट के धनुषम ही वासी का प्रयोग किया क्योंकि कुदिसों से शत्रुता का व्यवहार नीति नहीं अपितु कपटी के प्रति कपटी होना ही स्वाभ (नीति) है ।^६

५—अनपुति-विरचित 'मासतीमाचन' नाटक में 'नीति' शब्द कार्यसाधक उपाय^७ तथा कृतनीति^८ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

१ भारवि किरातार्जुनीय, १।६

२ नयवर्त्म वायुस्यप्रयोग, किराताजु नीय, १।६ पर मल्लिनाथ की टीका।

३ शुक्ति ध्रुवपति अर्तुं ययुः प्रथमस्तस्य नयस्यलोकिया।

प्रथमाभरत्तं पराक्रमः स नयत्पादितविद्विसुवणः। (किरात० २।१२)

मल्लिनाथ की व्याख्या—स पराक्रमः नयावादिता नीतिसंपादित, विवेकपूर्णकेंद्रि यावत्।

४ माघ द्विसुपासत्रय १।३०, मल्लिनाथ की टीका—वात्सम्य उदयो कुदिस परस्य शत्रोव्यानिर्घानिः, इति इयम्, इच्छी यत्वाचती, नीतिर्नीतिर्तुप्रहः।

५ धी इर्कं, नैपथ्यचरित, ३।१०३ तथा उस पर बरारामल की टीका।

६ कप्यात्तं विद्वेषात्तु वा मनवतीनीतिविपयैत्तु वा। सं०—एय० धार० कामे, मासती-माचन बर्बई १६२८ ई० १।३; नीति=श्रीवाइव।

७ नयस्य कर्म मनवास्याः सुमेवसो नीतिः विधेर्व्यापिः। अही; १।३ के नीति। नीति—विष्णोमेवो।

उपर्युक्त अन्तरणों तथा इनकी प्रामाणिक टीकाओं से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि अभिजात संस्कृत साहित्य में 'नीति' शब्द निम्नांकित अर्थों का प्रकाशक है—

- १—कूटनीति
- २—संधिविषयहादि पाद्मुष्ममयी राजनीति
- ३—विवेकपूर्वक कार्य-विधि
- ४—अपनी उन्नति धन की अवनति
- ५—आय-साधक उपाय अथवा युक्ति

उपर्युक्त अर्थवचक पर धर्मोत्तर हृत्पाठ करने से ज्ञात होता है कि प्रथम तथा द्वितीय अर्थ राजनीति के अन्तर्भूत हो जाते हैं और तृतीय तथा पंचम अर्थ उचित व्यवहार के। अतुर्ग अर्थ अस्तुतः नीति का अर्थ न होकर सदयमान है जो नीति का साम्य है। इस प्रकार नीति क दो ही अर्थ शेष रहते हैं—राजनीति और उचित व्यवहार। इनमें भा द्वितीय अर्थ ही इस प्रकरण का विवेच्य विषय है।

संस्कृत के नीति-साहित्य में 'नीति' के अर्थ

पीछे उन्हीं ग्रन्थों में प्रयुक्त नीति शब्द के अर्थ स्पष्ट करने का यत्न किया गया है जिनकी रचना तो हुई थी किसी अन्य ग्रन्थ से परन्तु जिनमें नीति शब्द व्यवहृत हुआ प्रथम-वच। अब नीति शब्द का वाच्य उन ग्रन्थों में देखना समीचीन होगा जिनकी रचना का लक्ष्य ही नीति प्रतिपादन था।

प्रख्यात राजनीतिज्ञ आणक्य के नाम से तीन पुस्तकें उपलब्ध होती हैं—
 १ 'कौटिल्यायणाख्य आणक्य-सूत्र' और 'आणक्य नीति'। 'कौटिल्यायणाख्य' में कहा गया है—

'नयानयो दण्डनीत्या'^१

अर्थात् राजा को उचित तथा अनुचित व्यवहार^२ की शिक्षा दण्डनीति से ग्रहण करनी चाहिए।

आणक्य-सूत्र में कुल २७१ सूत्र हैं। कुछ सूत्रों में नीति शब्द निस्सन्देह राजनीति का वाचक है परन्तु एक सूत्र में बहु सामान्य नीति का उल्लेख है। जैसे—

(क) 'राज्यवर्धनाय नीतिपात्रम्'^३

१ सं०—आम आश्री, कौटिलीयमयाशास्त्रम् (संस्कृत, १९२४ ई०) अधिच्छरण १, अध्याय २।

२ नयानयो—एषस्योद्विष्टं एंड इतएषस्योद्विष्टं। कौटिलीयमयाशास्त्रम् का आम आश्री हृत अर्थवचो अनुवाद (संस्कृत १९२९ ई०) पृष्ठ ६

३ कौटिलीयम् अयशास्त्रम् के परिशिष्ट में 'आणक्यसूत्रम्', सूत्र ४३

(ख) 'नीतिप्रामाण्ययो राजा' १

(घ) 'नीतिज्ञो वैशकातो परीक्षेत्' २

इसमें से पहले दो सूत्रों में 'नीति' राजनीति का घोर तीखरे में सामान्य नीति का अर्थ देता है। यहाँ यह बात सदैव करने की है कि यद्यपि इस सूत्रद्वय का नामांतर आशुष्य राजसूत्र ३ भी मिलता है तो भी इसमें संकड़ों सूत्र सामान्य नीति के हैं। अर्थात्—

न नीमास्या गुरवः ४; विद्वान्यतो बुद्धिबिनाशी ५ धारिः ।

'आशुष्यनीति' सम्भवतः प्राचीनतम पुस्तक है जिसके नाम का नीतिकाम्य सामान्य नीति या साक्ष्यब्यहारे का अर्थ है। इसमें राजनीति के अनेक नाम-मात्र हैं और इसकी रचना भी राजकुमारों के अध्याय यहाँ 'भोक्तारो हितकाम्यया' ६ हुई थी।

'सुक नीति' के कुल चार अध्यायों में से तृतीय अध्याय का विषय सामान्य नीति है। इस ग्रन्थ में 'नीति' शब्द 'राजनीति' तथा आशुष्य ब्यहारे दोनों का बोधक है। अर्थात्—

अतः सदा नीतिसारसमम्यसैत्सलसी नृपः ७ (राजनीति)

अथ साधारणं नीतिकाम्यं सर्वेषु बोध्यते ८ (सामान्यनीति)

महर्षि के 'नीतिशास्त्र' का विषय निम्नोक्त रूप से सामान्य नीति है।

उसमें—

(क) नीतिः साधुजनैः नयो नृपजनैः विद्वन्जनैश्चार्जवम् । ९

(ख) निम्नस्तु नीतिकिपुला धरि वा स्तुवन्तु १०

यै उपसम्पन्नाम 'नय' और 'नीति' शब्द कमरा अधिकाधिक ब्यहारे तथा जोकोचित ब्यहारे के अर्थ में प्रायः हैं।

१ अही, सूत्र ४८

२ अही, सूत्र ११२

३ आशुष्यराजसूत्रं, प्र०—आर्य प्रकाशन मध्यम आशुष्यराजसूत्रं नामकं दिल्ली ।

४ आशुष्य सूत्र, सूत्र ४१२

५ अही सूत्र ४४०

६ आशुष्यनीतिवर्णन, प्र०—मोक्षार्थं पुस्तकालय, मयूरा; प्रथम संस्करण; अध्याय १ पृष्ठ ३ ।

७ अर्थात्—विद्वान्, सुकनीति; बौद्धोत्तर इति प्रोक्तं, अर्थात् १२८२ वि० ११५

८ अही, ३।१

९ अर्थात्—डी० डी० कोसम्बी, अतः सदा नृपः भारतीय विद्याभवन अर्थात्, १२४६ ई० पृष्ठ ११, पृष्ठ १५ । संस्कृत श्लोक 'नयो नीतिः' ।

१० अही पृष्ठ ४४।७२ । संस्कृत श्लोक—नीतिकिपुलाः नयविद्यारवा ।

पंचतन्त्र^१ और हितोपदेश^२ को इन ग्रन्थों में भी 'नीतिशास्त्र' कहा गया है। यद्यपि इनकी रचना विवेकहीन और उग्रमार्गवादी नृपकुमारों के शिक्षार्थ की गई थी तो भी प्रत्येक विद्वान् जानता है कि ये सामान्य नीति से प्रपूर्ण हैं। यही कारण है कि राजाओं ने इन्हें जनता में भी प्रचारित किया। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि नीतिशास्त्रों में सामान्य व्यवहार राजनीति से मिश्रित रहता था। सोमदेव के सुभाषमक ग्रन्थ 'नीतिवाक्यामृत'^३ के विषय में भी यह बात सर्वथा सत्य है।^४ यद्यपि उदाना और कुहस्पति के सुविख्यात षषशास्त्र प्राप्त नहीं उपलब्ध नहीं होते तो भी उनके आदिम श्लोकों को 'नीतिवाक्यामृत' के एक धमातनामा टीकाकार ने संशुद्ध किया था। उनसे यह तो ज्ञात होता है कि उनकी रचना राजाओं के सुख के लिए हुई थी परन्तु निश्चित रूप से यह बताना असम्भव है कि उनमें भी सामान्य नीति का मिश्रण था या नहीं। चूँकि सक्त टीकाकार ने लिखा है कि 'नीतिवाक्यामृत' प्रायः संग्रहात्मक ग्रन्थ है जो उन तथा अन्य नीति-शास्त्रों पर प्रबलम्बित है, अतः सम्भावना यही है कि नीति के उन नामधेय प्रख्यात ग्रन्थों में भी नीतिवाक्यामृत के समान राजनीति व सामान्य नीति मिश्रित रही होगी।

डा द्विवेदी ने नीतिमंजरी नामक लोकव्यवहार-शिक्षक ग्रन्थ में 'एवं कर्तव्यमेवं न कर्तव्यमित्यात्मनो मो धर्मः सा नीतिः'^५ इन शब्दों में काम करने की उचित रीति को ही नीति कहा है।

चौदहवीं से अठारहवीं शती तक 'राजनीतिरत्नाकर' 'राजनीति मयूख' आदि ग्रन्थों की रचना हुई, जिनका विषय जैसा कि नामों से ही स्पष्ट है, राजनीति है, सामान्य नीति नहीं।

सक्त विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

- १—नीति-ग्रन्थ ग्रन्थों में नीति शब्द राजनीति के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है और सामान्य नीति के अर्थ में भी।
- २—नीति-विषयक प्रारम्भिक ग्रन्थ राजाओं की शिक्षा के लिए लिखे गए।
- ३—उन ग्रन्थों में प्रसववशात् लोकव्यवहार की भी प्रचुर सामग्री पा गई है।
- ४—परन्तु काल में प्रायः सामान्य नीति के लिए नीति शब्द और राजनीति के लिए राजनीति शब्द प्रचलित हो गया।

१ अर्थात् य इव नित्यं नीतिशास्त्रं शृणोति च। न परामर्शमाप्नोति दास्यदपि कदापन। पञ्चतन्त्र पवित्रत पुरतकालय काशी, १९५२ ई० पृष्ठ ६।१०।

२ हितोपदेश निर्गुणसागर मुद्रणालय, बम्बई १९४९ ई० प्रस्ताविका, पृष्ठ-३१।

३ इत इव ए विषयत्तर चाक एविषय एव वासिष्ठियत—के० पी० व्यासदास, हिन्दू वासिष्ठो, बँसगौर १९३३ ई० पृष्ठ ४।

४ डा द्विवेदी नीतिमंजरी; (प्र०—हृदिहरमंडल, कास भेरव, बाराणसी १९३३ ई०) पृ० १।

- (क) नीतिशास्त्राप्तुगो राजा' १
 (ग) नीतिसो देशकालो पटीलो २

इसमें छे पहले दो सूत्रों में 'नीति' राजनीति का और तीसरे में सामान्य नीति का अर्थ देता है। यहाँ यह बात सधय करने की है कि यद्यपि इस सूत्रत्रय का माया म्तर आणवय राजसूत्र' ३ नी मिसठा है तो भी इसमे छेकड़ों सूत्र सामान्य नीति के हैं। जैसे—

न मोमात्या सुरव' ४ जिह्वायसो वृद्धिबिनासो ५ धारि ।

आणवयनीति' सम्भवत प्राचीनतम पुस्तक है जिसके नाम का नीतिग्रन्थ सामान्य नीति या लोकम्यबहार का वाचक है। इसमें राजनीति के समोक नाम-मात्र हैं और इसकी रचना भी राजकुमारों के सिदार्ये मही 'लोकगां शिवकाम्ययो' ६ हुई थी। 'सुक नीति के कुम बार धम्म्यायों में छे तृतीय धम्म्याय का विषय सामान्य नीति है। इस पन्थ मे नीति' शब्द 'राजनीति' तथा धाचारण्य ब्यवहार दोनों का बोधक है। जैसे—

घत धरा नीतिशास्त्रमभ्यसेछलतो नृप । ७ (राजनीति)
 धम धाचारण्य' नीतिशास्त्र सब्धु बोध्यते । ८ (सामान्यनीति)
 मर्तुहृदि के 'नीतिशातक' का विषय निबिचाररूप छे सामान्य नीति है ।

ससमें—

- (क) नीति' सामुग्रमे नयो नृपग्रमे विद्वन्ग्रनेप्यार्जवम् । ९
 (ख) निष्पन्नु नीतिनिपुणा धदि वा स्तुवन्नु । १०

ये उपलभ्यमान 'नय' और 'नीति' शब्द कमरा समिबेक ब्यवहार तथा लोकोचित ब्यवहार के अर्थ में आए हैं ।

१ बही, सूत्र ४८

२ बही सूत्र ११९

३ आलकयराजसूत्रं, प्र०—धार्य प्रकाशन मण्डल, लाजपतराय मार्केड दिल्ली ।

४ आलकय सूत्र सूत्र ४३२

५ बही, सूत्र ४४०

६ आलकयनीतिवर्षस्य प्र०—योगेशंन पुस्तकालय, मधुप; प्रथम संस्करण धम्म्याय १ पद्य ३ ।

७ धतु०—मिहिरचन्द्र सुकनीति; बेंकरोवर स्टीम प्रेस बम्बई, १९२२ वि० १।१

८ बही ३।१

९ सं०—डी० डी० कोसम्बि, अतकत्रयम् भारतीय विद्याभवन बम्बई, १९४६ ई० पृष्ठ ११, पद्य १२ । संस्कृत शीका 'नयो नीतिः' ।

१० बही पृष्ठ ४४।७२ । संस्कृत शीका—नीतिनिपुणा नयविभारवा ।

पंचतन्त्र^१ और हितोपदेश^२ को इन ग्रन्थों में भी 'नीतिशास्त्र' कहा गया है। यद्यपि इनकी रचना विवेकहीन और जग्यार्गामी गुणकुमारों के शिक्षार्थ की गई थी तो भी प्रत्येक विद्वान् जानता है कि ये सामान्य नीति से प्रयुक्त हैं। यही कारण है कि राजाधों ने इन्हें जगता में भी प्रचारित किया। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि नीतिशास्त्रों में सामान्य व्यवहार राजनीति से मिश्रित रहता था। सोमदेव के मूत्रात्मक ग्रन्थ 'नीतिवाक्यामृत'^३ के विषय में भी यह बात उक्त सत्य है।^४ यद्यपि उसका और बृहस्पति के सुविख्यात अर्पणास्त्र पात्र कहीं उपलब्ध नहीं होते तो भी उनके प्रादिम श्लोकों को 'नीतिवाक्यामृत' के एक अज्ञातमाता टीकाकार ने चम्पूत किया था। उनसे यह तो ज्ञात होता है कि उनकी रचना राजाधों के सुख के लिए हुई थी परन्तु निश्चित रूप से यह बताना असम्भव है कि उनमें भी सामान्य नीति का मिश्रण था या नहीं। श्रुति उक्त टीकाकार ने लिखा है कि 'नीतिवाक्यामृत' प्रायः संग्रहात्मक ग्रन्थ है जो उन तथा अन्य नीति-शास्त्रों पर अवलम्बित है, अतः सम्भावना यही है कि नीति के उन सामान्य प्रख्यात ग्रन्थों में भी नीतिवाक्यामृत के सामान्य, राजनीति व सामान्य नीति मिश्रित रही होगी।

छा द्विवेदी ने नीतिमंजरी नामक लोकव्यवहार-शिक्षक ग्रन्थ में 'एवं कर्तव्यमेवं न कर्तव्यमित्यादिनामो यो धर्मः सा नीतिः'^५ इन शब्दों में काय करने की उचित रीति को ही नीति कहा है।

चौपहली से अठारहवीं शती तक 'राजनीतिरत्नाकर' 'राजनीति मयूख' आदि ग्रन्थों की रचना हुई, जिनका विषय जैसा कि नामों से ही स्पष्ट है, राजनीति है, सामान्य नीति नहीं।

उक्त विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

१—नीति-परक ग्रन्थों में नीति शब्द राजनीति के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है और सामान्य नीति के अर्थ में भी।

२—नीति-विषयक प्रारम्भिक ग्रन्थ राजाधों की शिक्षा के लिए लिखे गए।

३—उन ग्रन्थों में प्रसंगबद्ध लोकव्यवहार की भी प्रचुर सामग्री पाई गई है।

४—परबर्ती काल में प्रायः सामान्य नीति के लिए नीति शब्द और राजनीति के लिए राजनीति शब्द प्रचलित हो गया।

१ अर्थात् य एवं विरयं नीतिशास्त्रं शृणोति च। न परामर्शमाप्नोति दास्यदपि कदापि न। पंचतन्त्र पण्डित पुस्तकालय कान्पी, १९३२ ई० पृष्ठ ६।१०।

२ हितोपदेश निलयसागर मुद्रणालय, बम्बई १९४९ ई० प्रस्ताविका, पृष्ठ-२१।

३ इट इट ए मिश्रतत्पर धातु एषिषस एव पातिदिवस—के० पी० बाल्कृष्ण हिन्दू पाणिनी बगसीर १९३३ ई० पृष्ठ ८।

४ छा द्विवेदी नीतिमंजरी, (प्र०-हृद्विहर्मजल काल भंड, बाण्डर-सी १९३३ ई०) पृ० १।

हिन्दी साहित्य में नीति

हिन्दी के कवियों की कृतियों में 'नीति' शब्द का प्रथम प्रायः सन्नी घर्षों में हुआ है जिनमें प्रथमती धार्मिक में । निम्नांकित कतिपय उदाहरणों से ज्ञात कथन की पुष्टि हो जाती है—

- १—अरुण सरोवर मरिह मीन मन रहत एक रस नीति ।
तुम निरतुन बाहु पर अरुण शूर कोन यह नीति ॥^१
सुरदास (अंकित मा स्वाम्य व्यवहार)
- २—पन्नपारि धसि नीति धृति सम्यत सज्जन कर्हि ।
धसि लोचहु सन प्रीति करिय जानि निज-परम-हित ॥^२
तुलसीदास (धर्मसाधक व्यवहार)
- ३—मुनि मुनीसु कह बचन लघीति । कछ न राम तुम्ह राकहु नीति ।^३
तुलसीदास (मर्यादा)
- ४—साज दान अरु बंड विवेका । तुम उर बर्ताहु नाब कह बैदा ।
नीति धर्म के अरुण सुहाये । धसि जिय जानि नाय यहि धाये ॥^४
तुलसीदास (राजनीति)
- ५—सैबक सदन स्वामि ध्यापमनु । मंगल भुन धर्मपल बनु ।
तबहि बचित अत मोलि सप्रीति । पठइय काज नाब धसि नीति ॥^५
तुलसीदास (प्रथमित लोकव्यवहार)
- ६—नीति विपुल जिन्ह कह अप लीका । धर तुम्हार तिन्ह कर लन लीका ।^६
तुलसीदास (सहाचार)
- ७—नीत न नीति पलीतु हूँ जी बरिये बहु जोरि ।
साएँ धरबे जो बुटै, तो नीतिरिये करोरि ॥^७
बिहारी (बीजनवापन का डैम)

१ सं०—अंबुसुतारे बाकपेयी, सूर सागर, (भा० प्र० सप्त, काशी, १००७ वि०)
द्वितीय अंक पृ० १३३८ ।

२ सं०—ध्यापनुस्वरदास, रामचरित मानस, ईशियन प्रेत प्रयाग; पृष्ठ १०६६

३ वही पृ० २०६

४ वही पृ० २६१

५ वही, पृ० ३३६

६ वही पृ० ४६७

७ सतसई सप्तक पृ० ६५४७६

८—जो जसो तिहुँ तसिये करिये नीति प्रकास ।

कठिन काठ भेदै अमर मृदु अरविन्द निवास ॥^१

शून्य (वाक्यानुसार व्यवहार)

९—सब नीतिय की नीति यह, राज रक जो कोइ ।

समय वलि क अनुसर, अंत सुयी बहु होई ॥^२

अशांत कवि (समयानुकूल व्यवहार)

उपयुक्त तथा इसी प्रकार के अन्य अवतरणों पर दृष्टपात करने से ज्ञात होता है कि हिन्दी के कवियों में प्रायः निम्नलिखित अर्थों में 'नीति' शब्द प्रयुक्त किया है—

१—उचित व्यवहार (विद्वानुसाराणुसार व्यवहार)

२—दर्शनार्थक व्यवहार

३—प्रशंसित व्यवहार

४—जीवनयापन की विधि

५—सदाचार

६—राजनीति

कोशों में 'नीति' के अर्थ—साहित्य रचना के पश्चात् कोशकार उपलब्ध साहित्य तथा शब्दों के प्रशंसित अर्थों के आधार पर कोश-संकलन किया करते हैं। संस्कृत ग्राह्य तथा हिन्दी के कोशों में 'नीति' शब्द के जो अर्थ उपलब्ध होते हैं वे नीचे दिए जाने हैं—

संस्कृत-कोशों में 'नीति' शब्द के अर्थ—संस्कृत के विभिन्न कोशों में 'नीति' शब्द बिन बिन अर्थों में व्यवहृत हुआ है। प्रायः उन सभी का अर्थ वाचस्पत्य तथा शब्दार्थ विज्ञानमणि नामक कोशों में कर दिया गया है। उक्त कोशों में 'नीति' के निम्नलिखित अर्थ दिए गए हैं।^३

१—गुणानि द्वारा उन्न राजविद्या (राजनीति)

२—उन्नत शास्त्र (राजनीति के अर्थ)

३—प्राप्त (प्राप्त करना प्राप्त कराना)

४—नय (उचित व्यवहार)

५—नानि का परिप्लवनी देखो

६—(युद्ध में) जय का उपाय

७—साम दान आदि उपाय

१ कही पृ० ३३१ । ६८६

२ नायरी प्रचारिणी मन्ना बाणी पालिक संघ १७५३१, पृ० १, पंक्ति १ ।

३ वाचस्पत्य कोश तथा शब्दार्थ विज्ञानमणि कोश ।

८—धर्मप्रापक व्यवहार^१

प्रस्तुत प्रबन्ध में हमारा सम्बन्ध जोये तथा पाठकों धर्म से ही है। धर्मार्थ ऐसा व्यवहार जो देश-काल-यात्र के अनुकूल हो और धर्म का साधक हो।

प्राकृत मापदण्डों के कोशों^२ में 'एीह' (नीति) शब्द के निम्नलिखित धर्म दिये गए हैं—

१—राजनीति

२—व्यवहारविधि (समाज नीति)

३—ध्याय

४—उचित व्यवहार

प्रस्तुत प्रबन्ध का विशेष सम्बन्ध उपरोक्त धर्मों में से द्वितीय तथा तृतीय धर्म से है।

हिन्दी के कोशों^३ में नीति के प्रायः निम्नांकित धर्म उपलब्ध होते हैं—

१—व्यवहार का ढंग।

२—कामसंचालन का साधारणतः सिद्धान्त।

३—सोक-व्यवहार के निर्वाह के लिए नियत किया गया साधारण।

४—सोकचरण की ऐसी पद्धति जिससे निज कल्याण हो और दूसरे को हानि न पहुँचे।

५—काय-विशेष की सिद्धि के लिए काम में जाई जाई जाने वाली युक्ति।

६—चतुराई भरी बात

७—प्रीतिरस

८—योजना

९—किसी राष्ट्र या संस्था द्वारा स्वकर्म-संचालन के लिए नियत की गई कार्यपद्धति।

१०—से जाले की क्रिया, भाव या डंभ।

११—राजनीति।

१२—प्राप्ति

१ नीति: (श्री०) नीयते अनीयन्ते धर्मा धर्मानया वा—नी + क्तन् (बाधस्पत्य कोश १८७१ ई०)

२ १—गुलाबचन्द, धर्म मापदण्ड कोश १९१० ई०

२—रत्नचन्द, " १९२७ ई०

३—हरगोविन्ददास पाइय-सह-सहस्रस्यो कलकत्ता १९८२ वि०

४ १—हिन्दी शब्दकोश, नापरो प्रकाशित्री समा काशी

२—सहस्र हिन्दी कोश ज्ञानमण्डल, काशी।

१३—मेट देना

१४—सम्बन्ध

१५—सहारा

प्रस्तुत प्रबंध के प्रतिपाद्य विषय का सम्बन्ध उक्त प्रथम पाठ शर्तों से ही है। यही दृष्टि से देखने पर ये पाठों शर्तें उचित व्यवहार में मन्तव्य हो जाते हैं और यही शर्तें हमें भी प्रतीत हैं।

(ख) नीति के प्रकार

उचित व्यवहार (कर्तव्य) का नाम नीति है, यह हम अमर कह चुके हैं। परन्तु सर्वसाधारण के लिए व्यवहार के धोषित्य-मनोचित्य का निर्णय करना कठिन है। सञ्जन तो सदा यही चाहते हैं कि संसार भर के लोग स्वस्व बुद्धियानु, परिश्रमी, सहायारी परोपकारी आदि बनें जिससे संसार स्वयं बन जाए। परन्तु पृथ्वी पर सञ्जनों का ही नहीं दुर्जनों का भी निवास है। वे दूसरों के हितों की उपेक्षा कर जैसे-जैसे अपना उम्मी सोचा करना चाहते हैं। यही कारण है कि विद्वानों को नीति के मुख्य दो भेद करने पड़े—सरल नीति और कूटनीति। सरल नीति को श्रेष्ठ नीति धर्म-नीति और सिद्ध-नीति तथा कूटनीति को चोर-नीति और धातु-नीति भी कहते हैं। सञ्जनों के प्रति सरल नीति से बचना चाहिए और दुर्जनों के प्रति कूटनीति से।^१ इसी को दूसरे शब्दों में उचित व्यवहार कहते हैं।

ज्यों ही मनुष्य शोचक को पार करता है त्यों ही उसे कर्तव्य धा बेरते हैं और ऐसे बेरते हैं कि जब तक वह जोड़ित स्वतन्त्र और अनुमत्त रहता है जब तक उसके मुहल नहीं हो सकता। शून्य ये कर्तव्य उसे अनेक शर्तों में रहत हुए प्राप्त करने पड़ते हैं अतः नीति को भी अनेक प्रकारों या भेदों में विभक्त किया जा सकता है। उक्त दृष्टि से नीति के निम्नलिखित सात प्रकार हैं —

१—वैयक्तिक

२—पारिवारिक

३—सामाजिक

४—धार्मिक

१ नीति प्रकार—नीतिद्विवेचिता धर्मशास्त्रप्रामाण्यमेवतः ।

धर्मशास्त्रे संबन्धतो द्विधा सा यथायथम् ॥

द्विधा धर्मानुबन्धा स्याद् घोरा कीदृश्यगमिता ।

साध्याचारः साधुनेति स्यादाद् योग्या इत्येदंभेदे ॥

(मुद्राराक्षस नाटक पर दुर्द्वाराज की टीका प्र०—विरुपसागर प्रेस धर्मई १८९६ ई० उपोद्घात, पृष्ठ ४८ ४९)

३—राजनीति

१—इतर प्राणि-सम्बन्धी

७—मिश्रित

१—वैयक्तिक नीति—व्यक्ति समाज का अंग है। बिना उसे व्यक्ति निर्जन बन या गिरि-गुहा आदि में रहते हैं, वेग का जीवन तो समाज में ही व्यतीत होता है। चाहे कोई मानव जन-समूह में रहे या समाज में उसे सम्पूर्ण जीवन-यापन के लिए कुछ वैयक्तिक कर्तव्यों का पालन करना ही होया।

उन कर्तव्यों के निर्धारणार्थ मनुष्य ने व्यक्तिगत को तीन धर्मों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) शरीर (ख) मन या बुद्धि (ग) आत्मा। इसी के आधार पर वैयक्तिक नीति के भी निम्नलिखित तीन उपभेद हैं—शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक नीति।

(क) शारीरिक नीति—जीवन में साकस्य-प्राप्ति के लिए स्वास्थ्य और पुष्टि निरन्तर आवश्यक है। इसलिये मीरोग तथा हृष्ट-मुष्ट होने के लिए उचित खान-पान व्यायाम आदि की ओर पूरा ध्यान देना मनुष्य का कर्तव्य हो जाता है। भोजन व्यायाम आदि में जित बातों का ध्यान रखना चाहिए, उन्हें भोजन तथा व्यायाम सम्बन्धी नीति कह सकते हैं, परन्तु इतने अधिक विस्तार में जाना हमें अभीष्ट नहीं है।

(ख) मानसिक या बौद्धिक नीति—प्रायः बौद्धिक विकास के कारण ही मानव इतर धनीय सृष्टि से उत्कृष्ट माना जाता है। इसलिये ज्ञान प्राप्ति द्वारा मस्तिष्क को सम्भवतः बनाकर जीवन को अधिकधिक सुखी तथा समृद्ध बनाना उसका कर्तव्य हो जाता है। इसलिये अध्ययन-अभ्यास आदि के विषय मात्रा और विधि की ओर सतर्क रहना प्रत्येक धीमान् मानव के लिए आवश्यक है।

(ग) आत्मिक नीति—शरीर और बुद्धि के बीच से मुक्त होने पर भी जो मनुष्य आत्मिक सुखों से होना होता है वह अपने तथा समाज के लिए अधिक-अधिक हो जाता है। हृष्ट-मुष्ट और बुद्धिमान् लोग भी अरि-हीन होने की दशा में सफल हो सकते हैं। इसलिये व्यक्तिगत के सच्चे विकास के लिए मानव का कर्तव्य ही जाता है कि वह काम श्रेय आदि दोषों को नियन्त्रण में रखे तथा बीरता उदारता विवेकियता आदि गुण धारण करके वास्तव जीवन तथा वास्तव्य में अपने कर्तव्यों का पालन करे।

२—पारिवारिक नीति—कामक परिवार में जन्म लेता है और वहीं पालित पोषित होता है। वहीं पर वह माता-पिता आदि सुक-जनों सहित भाइयों तथा बड़ो-ठियो से उचित व्यवहार करने के प्रथम पाठ ग्रहण करता है। गृहस्थ बनने पर वह अपने परिवार का निर्माण करता है। जब उपर्युक्त सम्बन्धियों के दृष्टिकोण पत्नी उत्पन्न तथा अन्य परिवजनों से भी उचित व्यवहार करने ही वह जीवन-यापन को सफल बना सकता है। इन सम्बन्धियों से उचित व्यवहार को पारिवारिक नीति

रहते हैं।

३ सामाजिक नीति—प्रत्येक परिवार एक ऐसे विशाल मानव-समाज का अंग है जो अनेक घरों मलों यहाँ जातियों तथा उपजातियों में विभक्त है। सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित रखने के लिए समय-समय पर अनेक नियमोपनियम बनते रहते हैं। प्रत्येक घर में अनेक जाति आदि के लोग अपने-अपने घरों में अनेकों आदि से एक प्रकार का व्यवहार करते हैं और विधियों तथा विभिन्न वर्गों आदि से दूसरे प्रकार का। इस प्रकार की नीति को हम सामाजिक नीति कह सकते हैं।

४ धार्मिक नीति—धर्म (धन) के बिना सम्यक लोक-यामा असम्भव है। धर्म से मृत्यु-व्यंगत आश्चर्यकरताएँ मानव का घेरे रहती हैं और जब तक वे धरणी रहती हैं, मनुष्य कुचित रहता है। उनकी पूर्ति के लिए धर्म अनिवार्य है और धर्म की प्राप्ति के लिए नीति परमावश्यक है। सब तो यह है कि नीतिशास्त्र धर्मशास्त्र का ही एक अंग है। लोक-व्यवहार से अलग मनुष्य का अनाद्य होता असम्भव-सा है। धर्म का महत्त्व उन्नतित सुख-दुःख धर्म प्राप्ति के उपाय, धर्म का विवरण समाज के धार्मिक सम्बन्ध धर्म और उसके पानापान लोभ कुपणता धार्मिक-विद्या आदि धार्मिक नीति के अनेक अन्तर्गत भेद क्रिये जा सकते हैं।

५ राजनीति—जब एक सामान्य गृहस्थ को सुशासना से गृहस्थी बनाने के लिए पर्याप्त कौशल से काम लेना पड़ता है तब एक शासक को समस्त देश पर सुशासन करने तथा दूसरे देश के साथ सम्यक निर्वाह के लिए कितनी निपुणता की आवश्यकता होती है, यह कहना अनावश्यक है।

शासक और मन्त्रियों को स्वदेश की रक्षा, शांति तथा हर प्रकार के अशुभ के लिए पय-पय पर नीति-निर्धारण करना पड़ता है। सामान्य धर्म द्वारा की गई नीति की कुछ तो प्रायः उसी व्यक्ति या उसके परिवार का अहित करती है परन्तु राजनीति की भूमि तो सारे राष्ट्र को भूमि में मिला देती है। सामान्य धर्म और भेद नामक उपाय तथा अनेक विग्रह धर्म, शासन, संभव है भीमान नामक परन्तु राजनीति के अहित अंग है।

६ अन्तः-प्राप्ति-सम्बन्धी नीति—जो मनुष्य कितना ही अहित-सम्य होता है वह अन्तः ही दूसरों के सुख-दुःख में सहानुभूति प्रदर्शित करता है। अशुभ मनुष्य - मानुषिक मांस को भी अशुभ मानता या परन्तु नीतिमान् मानवों ने निरीह और उपकारक पशु पक्षियों को भी अपना अन्तः माना है। इसलिए अनेकों अर्थ हिंसा को अहितकार्य माना जाता है। इनसे सम्बन्धित व्यवहार को अन्तः-प्राप्ति-सम्बन्धी नीति कह सकते हैं।

७ विहित नीति—मनुष्य प्रायः अपने धर्म या धर्म में रहता है परन्तु उसकी दृष्टि वहीं तक सीमित नहीं होती। वह अपने व्यवहार में अन्तः के अर्थों का ध्यान नहीं रखता। कभी-कभी स्व-प्राप्त और वि-प्राप्त स्वदेश तथा विदेश इह लोक तथा

परसोक का भी ध्यान रक्त होता है। समय भी परिवर्तित होता रहता है और ऋतुएँ भी। प्रत्येक कार्य करने का कोई उचित समय वा स्थान होता है। कुछ मनुष्य काम को प्रयत्न मात्रकर स्व वर्तमान निश्चित करते हैं ता कुछ पुरुषान को। इस प्रकार के विषयों को नियत नीति की दृष्टि में समाविष्ट कर सकते हैं।

हमारा धर्मोपदेश—उक्त छान प्रकार की नीतियों में से राजनीति का क्षेत्र प्रत्यक्ष विस्तृत है। इसलिये हमने प्रस्तुत प्रकरण में उसका विवेचन समीचीन नहीं समझा। शेष शैक्षणिक, पारिवारिक आदि छद्म नीतियाँ ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध समाजशास्त्र के सामान्य व्यवहार से है। इसलिये हमने अपने विवेचन क्षेत्र को उन्हीं तक सीमित रखा है।

(ग) नीतिकाम्य का फायदा

दो धारणायें—यदि इतना मान लिया जाय कि उचित व्यवहार का नाम नीति है तो इसे मानने में भी कोई विप्रतिपत्ति नहीं आती बल्कि उचित व्यवहार के प्रति पारक काम्य का नाम नीति-काम्य है। परन्तु कुछ लोग इस विचार से सहमत न होकर नीतिकाम्य के काम्यत्व पर दो धारणायें करते हैं—

- (१) नीति-काम्य पक्ष या सूक्ति हो सकता है किन्तु काम्य नहीं।
- (२) काम्य का प्रयोजन आह्लाद है। नीति-काम्य का प्रयोजन कर्तव्य-निर्धारण, अथवा नीति-काम्य काम्य नहीं।

प्रथम धारणायें की परीक्षा—हम पहले पहले धारणायें को लेते हैं। श्रुति पक्ष सूक्ति और काम्य का स्वरूप सम्यक् समझे बिना इस धारणायें का तात्पर्य प्रकृत नहीं हो सकता अतः पहले तीनों का भेद जान लेना चाहिए। तब तक समय, यदि बर्ष मात्रा आदि समय के नियम पालन करने वाली रचना पक्ष नहीं आती है।^१ अन्वेष से कहें तो सम्बोधन रचना-नाम पक्ष है। अर्थ-व्यवहार या अर्थ-व्यवहार आदि से अन्वेष उचित को सूक्ति कहते हैं। पक्ष तथा सूक्ति में अन्तर यह है कि पक्ष के लिए तो संवीत-तत्त्व अर्थात् अर्थ-व्यवहार है परन्तु सूक्ति पक्ष और पक्ष दोनों में हो सकती है। पक्ष अपने संवीत-तत्त्व के कारण अर्थ-व्यवहार-निर्माण को ही आशयित करता है परन्तु सूक्ति जहाँ अर्थ-व्यवहार के कारण अर्थ-व्यवहार होता है वहीं अर्थ-व्यवहार आदि के कारण अर्थ-व्यवहार को भी प्रभावित करती है। जिस पक्ष अर्थ-व्यवहार रचना में अर्थ-व्यवहार आदि का कोई अर्थ-व्यवहार विद्यमान हो वह पक्ष नहीं रहती सूक्ति पक्ष की अधिकारिणी बन जाती है। अतः पक्ष और सूक्ति के स्वरूप के विषय में विद्वानों में ईदाम नहीं है, बस ही काम्य के स्वरूप के सम्बन्ध में सामान्य नहीं है। विद्यमान दो-दोई अर्थ-व्यवहार

१ राजेश्वर द्विवेदी साहित्य शास्त्र का पारिवारिक अर्थ-व्यवहार (आचारशास्त्र पक्ष अन्वेष, दिल्ली १९२२ ई०) पृ० २४०।

वर्षों में देव विदेश के अस्तव्य विद्वानों ने काव्य को विविध परिभाषाओं में सीमित करने का भरसक उद्योग किया परन्तु दृष्टिकोणों की विभिन्नता और काव्य की व्यापकता के कारण पुसुतया सफल नहीं हुए। प्रत्येक धासोचक ने 'मुग्धे-मुग्धे मतिभिन्ना' के अनुसार काव्य-स्वरूप को समझा और "तुग्ध-तुग्ध सरस्वती" के अनुरूप उसकी परिभाषा बना दी। उन्होंने इतने पर ही संतोष नहीं किया अपनी पूर्ववर्तिनी परिभाषाओं के बीच भी दिखावे और अपनी परिभाषा को निर्णय सिद्ध करने का मल भी किया। परन्तु जसा व्यवहार उन्होंने पूर्ववर्ती विद्वानों से किया वैसे ही परवर्ती पंडितों से प्राप्त भी किया। इस प्रकार बाद विवाद तो पर्याप्त और पर्याप्त काम तक होता रहा परन्तु काव्य का स्वरूप मयेष्ट रूप से स्पष्ट न हुआ। सब तो यह है कि हृदय-मन्दिष विषयों की परिभाषा-बद्ध करना प्रति दुष्कर कार्य है। यही कारण है कि कविता-स्वरूप-विषयक प्रश्न के उत्तर में सेंट ग्रामस्टाइन ने कहा था— यदि न पूछो तो जानता हूँ और पूछो तो नहीं जानता। ✓

यहाँ कहा जा सकता है कि यद्यपि काव्य परिभाषा की पकड़ में सरसतया नहीं आता तथापि काव्य को अकाव्य से पृथक् करने के लिए प्रवृत्त परिभाषाओं में से कोई-न-कोई माननी घयवा कोई मई बनानी पड़ेगी। यदि प्राचीनों से ही काम चल जाए तो नव-निर्माण निरर्थक होगा। इसलिए पहले प्राचीन परिभाषाओं पर ही दृष्टि पात करना उचित है।

हमें न भामह के काव्य-मसाल "ध्वन्यार्षो संहिती काव्यम्"^१ से संतोष होता है न इन्द्र के "ननु ध्वन्यार्षो काव्यम्"^२ से। कारण काव्य-मसाल का निर्माण कछे समय इनकी दृष्टि धार और घय (काव्य का चरीर) के साहचर्य पर रही अन्दर धात्मा में न पैठ सकी। कला-दश की मार संबन्ध-मात्र तो निरसन्देह हो गया पर भाष्यल निराम्त उपेक्षित रह गया।

मम्मट के काव्य मसाल "उदयोपी चन्द्रार्षो सगुणावनसहृनी पुन क्वापि"^३ का हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन"^४ में विधानाय ने "प्रतापरद्वयोभूयल"^५ में और द्वितीय बाम्भट ने 'काव्यानुशासन'^६ में लगभग अनुकरण ही किया। इन सभी ने

- १ गिरिकाम्यताद धानस कतिञ्च करेट एससेञ्च शू इम्योरिमा युञ्च द्विपो (दिल्ली १९४३ ई०) पृ० २१८
- २ भामह काव्यालकार (धोषया संसृत संशोध वाली १९८३ वि०) ११९
- ३ दश्ट : काव्यालकार (निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९२८ ई०) २११
- ४ मम्मट : काव्यप्रकाश (चौखमा विद्यामन्थन, १९३३ ई०) ११४
- ५ हेमचन्द्र : काव्यानुशासन (निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९३४ ई०) पृ० १९
- ६ विधानाय प्रतापरद्वयोभूयल (कर्हयालाल पोद्दार संसृत साहित्य का इतिहास १९३८ ई० द्वितीय भाग पृ० २९ पर उद्धृत) ।
- ७ द्वितीय बाम्भट काव्यानुशासन (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९३३ ई०) पृ० १४

दोष रहित गुण-सहित प्रायः अलंकार सम्बन्धों को काव्य कहकर आमतौर पर रस के ससखों की मानो व्याख्या ही कर दी है। इस ससख में कलापक्ष पर तो धात्रियों का ध्यान गया है परन्तु भाव-वश का अभाव ससख को अपूर्ण ठहराया है।

कुछ धात्रियों ने काव्य के घटीर के अन्दर प्रविष्ट होकर आत्मा के अन्वेषण का उद्योग किया। धात्र्याय कामन ने "रीतिरत्ना काव्यस्य"^१ में रीति को काव्य की आत्मा, तथा "विशिष्टा पदरचना रीति"^२ और "विशेषो गुणरत्ना"^३ कहकर गुण-सहित पद रचना को रीति स्वीकृत किया है।

निस्सन्देह इस ससख के निर्माण के समय धात्र्याय का ध्यान कलापक्ष की ओर इतना अधिक रहा कि भाव-वश विस्मृत हो गया। इसके अतिरिक्त पद-संपन्नता को काव्य की आत्मा मानना भी उचित नहीं भले ही अनिर्म्यजनावादी इसे अत्यधिक महत्त्व देते रहें। धात्र्याय आत्मव्यञ्जन में "काव्यस्यात्मा ध्वनि" कहकर प्रतीयमान अर्थ को काव्य की आत्मा माना है। कहना न होया कि प्रतीयमान अर्थ भी अर्थ का ही एक भेद है। अतः उनकी दृष्टि भी अर्थव्यञ्जन तक ही अग्रसर हो गई। यदि इसे काव्य-ससख माना जाय तो कहना पड़ेगा कि कलापक्ष धात्र्याय की दृष्टि से छूट गया।

परन्तु यह न भूलना चाहिए कि धात्र्याय कामन तथा आत्मव्यञ्जन काव्य की परिभाषा नहीं प्रस्तुत कर रहे थे काव्य की आत्मा-भाव को और उल्लेख कर रहे थे। भोजराज प्रथम आश्रय तथा अयदेव के काव्य-ससखों में मर्मत हैमचन्द्र आदि के ससखों से कुछ विशेषता उपसम्पन्न होती है। भोजराज^४ ने काव्य-ससख में 'रस', को प्रथम^५ आश्रय ने 'रस और रीति' को तथा अयदेव^६ ने 'रस, रीति और वृत्ति' को भी आश्रयक ठहरा दिया। माना कि इन धात्रियों की दृष्टि काव्य के अन्तर्पक्ष तथा अतिरिक्त दोनों अर्थों पर गई थी परन्तु यह कहना ही पड़ेगा कि इनमें एक तो आश्रयक-व्यञ्जन पर अपेक्षित बस नहीं किया गया और दूसरे पारिभाषिक सम्बन्धना से भरपूर होने के कारण ये ससख सुगम नहीं हैं।

विश्वनाथ ने 'भाव्यं रसात्मकं काव्यम्'^७ में काव्य की परिभाषा में रस को अत्मा कहकर एक महान् कार्य किया। यों तो रस के प्रति धात्र्याय भाव भरत के काल से बसा था रहा था परन्तु काव्य के ससख में उसे आत्मा का स्थान सर्वप्रथम विश्वनाथ

१ कामन काव्यालंकारसूत्र वृत्ति: (कलकत्ता १९२२ ई०) १।२।६

२ वही १।२।६

३ वही १।२।६

४ आत्मव्यञ्जन ध्वन्यालोक (बोसमा संस्कृत लीरीय काशी १९४० ई०) १।१

५ भोजराज : धरस्वती कंठाभरत, (निर्लपसागर प्रेस, बम्बई, १९२५ ई०) १।२

६ प्रथम आश्रय : आश्रयलंकार (निर्लपसागर प्रेस बम्बई, १९३३ ई०) १।२

७ अयदेव आश्रयलोक (प्र० बेसाड़ी लाल एण्ड संत काशी १९३४ ई०) १।७

८ विश्वनाथ साहित्यदर्पण (आश्रयस्य मर्म, कलकत्ता १९१४ ई०) १।१

ने ही दिया। परन्तु यह सदाएँ भी अभ्यासित होय से मुक्त है क्योंकि वस्तुगत ध्वनि प्रसंकारगत ध्वनि, तथा गुलीमूत ध्वन्यं च मुक्त रचनार्थे इसके अनुसार काव्य-कोटि से बहिष्कृत हो जाएँगी। दूसरे इस लक्षण में काव्य के माबपक्ष पर तो अपेक्षित बस विद्यमान है परन्तु कलापक्ष अपेक्षित रह गया है।

पश्चिदतराज पतन्नाथ के काव्य-संज्ञान "रमणीयाश्चप्रतिपादकः सव्यः काव्यम्"^१ का धारण यही है कि लोकोत्तर धान्यप्रद धर्म के प्रतिपादक सव्यों को काव्य कहते हैं। इसमें का रमणीयता-तत्त्व अपनी परिधि में कामन के सोन्वय, दम्भी के "इष्टार्थ", भालन्दर्शन के 'लोकोत्तर आह्लाद' तथा काव्य-शास्त्र में बहुत प्रयुक्त 'धर्मकार' सव्य को अपनी परिधि में समाविष्ट कर लेता है। जहाँ 'सोन्वय' तथा "धर्मकार" सव्य काव्य के कलापक्ष के महत्त्व पर बल देते हैं, वहीं 'लोकोत्तर आह्लाद' तथा 'रस' धर्म काव्य के माबपक्ष पर। परन्तु रमणीयता सव्य दोनों पक्षों का समान रूप से सूचक होने के कारण सब से अधिक उपयुक्त है।

पं० जगन्नाथ च पूर्व किये गये काव्य-संज्ञानों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) मामह घोर छट के सव्यों में सव्य घोर धर्म का संयोग-मात्र काव्य है इससे अधिक की वहाँ अपेक्षा नहीं।

(२) मम्मट हेमचन्द्र आदि के लक्षणों में निर्दोष सगुण तथा प्रायः धर्मकृत सव्यार्थ को काव्य माना गया है परन्तु इसमें रसजय लोकोत्तराह्लादकता का स्पष्ट सव्यों में निर्देश नहीं।

(३) भोजराज, जयदेव आदि ने स्व-स्व काव्य-संज्ञानों में रीति गुण, धर्मकार, कृति के साथ रस की गणना-मात्र का प्रवक्ष्य कर दी है परन्तु रस के अपेक्षित प्राधान्य का निर्देश नहीं किया।

(४) भालन्दर्शन कुन्तक घोर बिदनाथ ने जस्य ध्वनि बहोक्ति तथा रस को काव्य की आत्मा कहकर काव्य-संज्ञानों की ओर संकेत किया है परन्तु इनके सदायः व्याख्याधीन होने के कारण सुयम नहीं हैं।

पं० जगन्नाथ का काव्य-संज्ञान अपूर्वकत सभी दोषों से मुक्त है। वह सव्य घोर धर्म के संयोग-मात्र को काव्य नहीं कहता। वह रस या लोकोत्तर भालन्दर्शी घोर स्पष्ट निर्देश ही नहीं करता उसे प्रमाण स्थापन भी देता है। वह गुलीमूत ध्वन्यं चिन आदि काव्यधर्मों को भी धर्मकृत कर लेता है किन्तु भालन्दर्शन घोर बिदनाथ के सदायः नहीं करते। वह रस धर्मकार, गुण, रीति आदि परिमूर्ति-धर्मों से विज्ञान विमुक्त है। अतएव हम पश्चिदतराज पतन्नाथ के इस सव्य के सहमत हैं कि रमणीय धर्म के प्रतिपादक सव्यों को काव्य कहते हैं।

उपयुक्त विवेचन का तार यह है कि छन्दोबद्ध रचना को पद्य-कर्मकारी रचना को सूक्ति तथा राम-रत्न और कल्पना-रत्न के सहज समन्वय से अर्थ-साक्षात् प्रदान करने वाली रचना को काव्य कहते हैं। यदि इन परिभाषाओं को स्वीकृत कर लिया जाय तो हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि अर्थ-विषयक रचनाओं के समान शक्ति-रचनायें भी पद्य-सूक्ति तथा काव्य-सीधों हो सकती हैं। जब कि छन्दोबद्ध मात्र शोभी तब पद्य जब कुछ कर्मकारयुक्त शोभी तब सूक्तियाँ और जब रामरत्न तथा कल्पनातरंग के प्राचाम्य के कारण धानन्ददायक होती तब काव्य कहलाएँगी। नीचे तीनों के उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत किये जाते हैं—

कहाँ अनादर पाय है, गुनी न करो धरिष ।

बिद्या है तो करहिधे तब कीड्य धारैत ॥^१

इस दोहे में बृह कवि ने अमुमक और अपदेश की बात कही है। संसार में कभी-कभी गुणी या विद्वान् व्यक्ति का अनादर भी हो जाता है परन्तु सब मिठाकर देखा जाय तो शोच उसके अज्ञान तथा धामानुबर्ती ही होते हैं। इन सबों में बृह ने उस अनादर अनादर की अपेक्षा तथा सतत विद्योपार्जन करने की प्रेरणा की है। परन्तु इस कथन में दोहे की सय के अतिरिक्त अर्थ कोई कर्मकार बिचार नहीं देता। बात सीधी-सादी है छन्द में कह दी गई है, धरत इसे पद्य या छन्दोबद्ध उक्तिमात्र कहना हो उपयुक्त है। अब सूक्ति को नीचे—

धारि धरत 'मयुरा' बरन अर्य भित्तोम न कोप ।

मध्यम अक्षर तसु मुञ्च-नध्य करो सब कोप ॥^२

इस दृष्टकूट दोहे का अर्थ यह है कि जो मध्यम 'मयुरा' अक्षर के धारिण तथा अन्तिम अक्षरों (म रा) को उलट कर (रा म) नहीं अपना उसके मुख में सब शोच 'मयुरा' का मध्यम अक्षर (यु) करें। भाव यह है कि राम-राम न अपने नामे व्यक्ति के मुख में पूछें। परन्तु कवि ने इस भाव को सरल रीति से न कहकर कर्मकारी रीति से कहा है। यह कर्मकार 'मयुरा' अक्षर के धारिण पर धारित है। उक्त पठन से अर्थ अलग नहीं होता पर जब भाषापरिष्कार करने पर स्पष्ट होता है तब हम कवि-बुद्धि के कर्मकार की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह रचना शास्त्रोक्तता के कारण पद्य-मात्र नहीं है, कर्मकार-युक्त होने के कारण सूक्ति है। अब नीति के काव्य का उदाहरण देते—

१ सं० इयमसुन्दरदास सतसई सप्तम (हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग १९११) पृ० ३२९, बृहसतसई शोभा ४३७

२ अर्जुनदास केडिया : भारतीयसुपण (भारतीयसुपण कार्यालय, काशी, १९७७ वि०) पृ० ४९

रहिमन अस्तुषा मंत्र इति, जिय बुल प्रमद करेड ।

जाहि निहारो येह ते, कस न नेव कहि वेह ॥^१

हम लोग कभी-कभी स्वयं भी रोते हैं और कभी-कभी दूसरों को भी घाँसु बहुते हुए दण्डते हैं, किन्तु अशुभोचन की ये घटनाएँ हमारे हृदयों को बैसे प्रभावित नहीं करतीं जैसे कवियों के, पास्तर्दियों के । रहीम ने मंत्रों के नीचे निकलता देखा और एक सुन्दर मूर्तिक परिणाम किनास किया । वह यह कि जिस घर से निकालीये वह तुम्हारे सब रहस्य खोल देगा और धगलौ वात को अधिक मामिक है वह सहाय संवेद्य रहने की कि भद्र प्रकट हो जाने पर तुम्हारी दशा बड़ी होमी को विभीषण को निर्वासित कर देने पर राबण की हुई थी । इस घाँसु के भाव को कवि ने अभिविहित नहीं किया अर्थात् ही रहने दिया और इसी कारण यह दोहा और भी अहदुयाद्वादक बन नीति का सफा-धरा काव्य बन गया है ।

इस प्रकार हमने देखा कि नीति की बात पद्य में भी कही जा सकती है, सूत्रों में भी काव्य में भी । कवि यदि उद्यम होता तो नीति-काव्य का प्रत्यक्ष हो जायगा मध्यम होना तो नीति-सूत्रियों का और सामान्य होना तो नीति-पद्यों का । सिद्धांत रूप से इस कथन में कोई शर नहीं कि नीति विषयक काव्य हो ही नहीं सकता ।

द्वितीय धारणा की परीक्षा—द्वितीय धारणा यह है कि काव्य का प्रयोजन धारणा है नीतिकाम्य का व्यवहारोपदेश । इसलिये समाहित नीतिकाम्य काव्यपद का अधिकारी नहीं । बुद्धि-इय धारणा का सम्बन्ध काव्य के प्रयोजन से है, इसलिये पहले इसी पर विचार कर लिया जाय ।

भारतीय धारणा का मत—इन विषय में भारतीय धारणाओं में वैसा संशय नहीं है जैसा काव्यस्वरूप के सम्बन्ध में ऊपर दिखाया गया है । नाट्याचार्य भरत का मत है कि

धर्म्यं यत्तस्यमापुर्णं हितं बुद्धि-विशेषम् ।

सोकोपदेशजननं नादमेतद् भविष्यति ॥^२

‘नादय (काव्य) धर्म्यं यथा, यापु ित बुद्धिणा गोरोपदेश देने वाला होगा ।’ भामहू ने मुद्राव्य रचना के प्रयोजन निम्नलिखित पद्य में कहा है—

धर्माधिकारमोक्षं तु वीरसत्यं वलागु च ।

करोति नीति प्रीति च साधुकाव्यनिष्पन्नम् ॥^३

१ सं प्रवरतनकासः रहिमन बिलास (प्र० रामनारायण कास प्रपाय १६७३ वि०) पृष्ठ १७१०२

२ भरतः नाट्यशास्त्रे चोपदेशा संस्कृत सोरोड काशी, १११२-११३

३ भामहू काव्यलोक ११२

घाणव यह कि सुन्दर काव्य का प्रणयन धर्मावकाशमोक्ष-रूप अनुबर्धन कर्मावर्षों में निपुणता कीर्ति वीर प्रीति (घानन्द) का देने वाला है। छोट बागन भोज कुत्तक घादि घाचार्यों के काव्य प्रयोजन भी लगभग इसी प्रकार के हैं। घाचार्य मम्मट के तो याता पूर्ववर्ती घाचार्यों के काव्य-प्रयोजनों की सूची को—

काव्यं यद्यसे उपहृते व्यवहारविधे तिवैतरणतये ।

सद्य परनिबृ तये काव्यात्तमिततपोपयेप्रपुजे ॥^१

इस एक श्लोक में समाहृत कर दिया है। उनका भाव यह है कि काव्य यद्य धर्म (सम्पत्ति) व्यवहारज्ञान धर्मवसनाद्य तत्कास लोकोत्तर घानन्द तथा काव्या संमित उपबेद्य के लिए होता है। उपपुंक्त उद्धरणों से इतना तो निश्चिन्त रूप से सिद्ध हो जाता है कि भारतीय घाचार्यों के मत में काव्य का प्रयोजन बाह्यव्ययमान नहीं है। बड़ी उपय धर्म धर्म काम मोक्ष यद्य घायु बुद्धि कला-कौशल मगल घादि की प्राप्ति होती है बड़ी लोकोपबेद्य तथा व्यवहारज्ञान भी उपलब्ध होता है। ये लोकोपदेन तथा व्यवहारज्ञान नीति के ही नामास्तु हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नैतिक उपदेय भी काव्य क प्रयोजनों में से एक है।

विदेशीय विद्वानों का मत—यह तो हुआ भारतीय घाचार्यों का मत यद्य कतिपय विदेशीय भासोचर्चों के मन्तव्य भी प्रत्यक्ष हैं। सर क्लिप सिङ्गी काव्य के सद्य तथा प्रयोजन एक ही काव्य में यों कहते हैं— काव्य अनुकरण की एक कला है। रूपकमयी भाषा में कहें तो एक उच्चारण है, जिस का लक्ष्य शिक्षा तथा घानन्द देना है।^२ इस उद्धरण में यह बात विद्यय ध्यान देने योग्य है कि शिक्षा की प्रथम स्थान दिया गया है और “बाह्यव्यय” को द्वितीय। ब्राह्मण का मत इससे सर्वथा भिन्न है। उनके विचार में यदि घानन्द काव्य का एकमात्र लक्ष्य नहीं तो मुख्य लक्ष्य तो है ही उसमें शिक्षाको स्थान मिल सकता है परन्तु द्वितीय क्योंकि काव्य घानन्द बंधे हुए ही सिद्धा होता है।^३ तत्पर्य यह है कि ब्राह्मण काव्य में शिक्षा की उच्च प्राथमिक नहीं मानते। उनके मत में घानन्द ही काव्य का एकमात्र लक्ष्य प्रधान प्रयोजन है उसमें शिक्षा यदि होगी भी तो उस का स्थान सर्वथा नीच रहेगा। इस

१ मम्मटः काव्यप्रकाश १।२

२ पीएनी इय ऐन घाई घाऊ इमिडेघन—डु एयोक र्भडाकोरिक्तो ए स्तीकिव विवकः विर विर एंड हु टीच एंड डीलाइट—सर क्लिप सिङ्गी- ऐन एया लोडी फार पोएट्री; प० सी० एल० पृ० ४४

३ “डीलाइट” इत वि चीक इय नाट वि योगी एंड घाऊ पोएट्री इयडुवधन कौच को एरमिटिड बड इन वि कंकड प्लेस फार पोएसी योगी इयडुवधन ऐक इड डीलाइट” से • इयडुवधनः डीकैड घाऊ ऐन ऐस्ते घाक इयमटिक पोएट्री प० सी० एल० प० ४४

प्रकार इनका मत विज्ञानी के मत क सर्वथा विरुद्ध है। जानसल काव्य-प्रयोजन के विषय में अपनी मत इन चर्चों में व्यक्त करते हैं— सेसन का मध्य है विद्या देना काव्य का सत्य है धानमिष्ठ करते हुए विद्या देना मानते हैं। काव्य में बिदेयता यह ही नहीं, रचना-मान का सहाय्य विद्या देना मानते हैं। काव्य में बिदेयता यह बतलाते हैं कि वह धानमर के माध्यम से विद्या प्रदान करे नीति शास्त्रों के समान नीरस भावों से नहीं। काव्य के साधन तथा प्रयोजन के विषय में से हूट का मत इस प्रकार है—“ इस (काव्य) के साधन हैं बिद्वत्तर म विद्यमान समस्त पदार्थ का सत्य नहीं मानते विद्या द्वारा उत्पान को भी धावत्यक प्रयोजन मानते हैं। सब धीर सत्य हैं धावत्य तथा उन्नत। २ नाव यह है कि हूट केवल धानमर को काव्य मिसाकर कह सकते हैं कि अधिबतर निबधीय पासोषक काव्य में विद्या को धावत्यक तो ठहराते हैं परन्तु उते प्रवात स्वान न बकर द्वितीय स्वान होने के पक्ष में हैं। उपर्युक्त पूर्ण तथा परिबन्धी विज्ञानों के मतों की तुलना करने पर दोनों में तत्त्वतः कोई बिदेय अन्तर नहीं प्रतीत होता है। चर्चों की म्युनाधिकता धावत्य बिद्य मान है। जहाँ भारतीय धावत्य धानमर धर्म धर्म काम मोक्ष यह इन धायु बुद्धि उपदेश, व्यवहारज्ञान धादि धनेक प्रयोजन परिगणित करते हैं, वहीं बिदेधीय धानोषक प्राय धानमर धीर (मंगलकारी) विद्या इन दो चर्चों में निज धानीष्ट को पर्यवसित कर देते हैं। बस्तुन विद्या धर इतना ध्यापक है कि धर्म धम धादि धनेक धर लवनी परिधि में सडन ही समा जाते हैं। इस प्रकार काव्य के दो ही प्रयोजन धेप रहते हैं—धानमर धीर मंगल। दोनों में से मुख्य कौन है ? ✓

काव्य का मुख्य प्रयोजन

विज्ञानों में समस्त बाह्यमय क दो धायु क्रिय हैं—जानात्मक साहित्य धीर रसात्मक साहित्य। इतिहास भूगोल रसंग धर्म धायुबद्ध धादि जानबद्ध विषयों के धन्य जानात्मक साहित्य में परिगणित होते हैं धीर कविता उपन्यास नाटक कहानी धादि रसात्मक साहित्य (काव्य) में। जानात्मक साहित्य की रचना के समय सेवकों की दृष्टि त्यों के मयातव्य प्रतिपादन द्वारा मोक्ष-मंगल पर केन्द्रित रहती है, परन्तु रसात्मक साहित्य क प्रणयन-काम में प्रतिपाद को अधिकाधिक सरस बनाने पर बड़ी धारण है कि इतिहासादि विषयों के रचयिता तो अपनी दृष्टियों में त्यों से विल-मान भी इपर-उपर नहीं हो सकते परन्तु काव्य-नाटक धादि के प्रणेत धानमर-

१ वि एड धाक साहित्य इत डु इगदूबदः वि एड धाक पोएद्री इत डु इमरतत बाह लीटिय” एत० बाहूतन प्रीउंस डु टैरसविपयः एत० सी० एत० पृ० २०
 २ इतस धीरस धार ध्टेबर वि मूनिबसं कानटेस, देरड इतस एंडर, प्लेंडर एंड एरसास्टेधर” से हूटः ध्ट इत पोएद्री, एत० सी० एत० पृ० १४

वक्रता की दृष्टि से निम्न रचनाओं में पर्याप्त परिवर्तन सम्भोजन, परिवर्तन प्राधि कर दिया करते हैं। इस प्रकार जब काव्य रसात्मक साहित्य का पर्यायवाची है तो स्पष्ट ही है कि काव्य का मुख्य प्रयोजन रस वा ध्यानन्द ही है शोक-मंगल नहीं। नाट्यघातन में रस-विवेचन तो बहुत किया गया है परन्तु इसका यह तात्पर्य अज्ञान में भी नहीं है कि ध्यानन्द और मंगल में कोई विरोध है। तथ्य तो यह है कि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

भारतीय धारणाओं की दृष्टि पहले मंगल पर अधिक भी परन्तु धीरे-धीरे उन्हें मान हो गया कि काव्य का मुख्य उद्देश्य मंगल नहीं है ध्यानन्द है। भरत ने जिस उपमुक्त सिद्धान्त-श्लोक^१ में नाट्य (काव्य) के प्रयोजनों की गणना की है, उसमें ध्यानन्द का नाम तक नहीं है। भामहू के उपरिनिश्चित श्लोक^२ में 'श्रीति' (ध्यानन्द) का उल्लेख तो है परन्तु सब के अन्त में। इनका कारण सम्भवतः यह है कि भारत का प्राचीनतर साहित्य—वेद ब्राह्मण धारम्यक उपनिषदादि—धार्मिक वा उच्च की दृष्टि अधिष्ठित मंगलपक्ष पर थी।^३ धीरे धीरे ऐहिक दृष्टि के प्रबल होने पर ध्यानन्द-पक्ष प्रबल होता गया। जहाँ भामहू ने काव्य प्रयोजनों में अतुर्बर्ग को सर्वप्रथम रखा है, वहाँ मुक्तक में—

अतुर्बर्गकतास्वावलम्बितकव्यं तद्विद्यात् ।

काव्यामृतरसेनास्तद्वचनकारो जितम्यते ।^४

कहकर काव्यामृत के रस को अतुर्बर्ग के ध्यानन्द का भी अतिरिक्त कह दिया है। मम्मट ने उक्त कारिका^५ के अन्त 'परमिषु तमे' पदों की व्याख्या में 'वक्र-प्रयोजनमीक्षितं समन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विमलितवैधात्तरमानन्दम्' लिखकर काव्य से उत्पन्न प्राप्य मनोकिण ध्यानन्द को ही प्रमुखतम प्रयोजन माना है। इसी कारिका के 'कान्तासम्भिततयोपवेद्युवै' पर एक अन्य धारम्यक तथ्य की ओर संकेत करते हैं। जहाँ भरत "लोकोपवेद्यजनम्" मात्र से ही संस्पष्ट थे वहाँ मम्मट ने प्यारी स्त्री के मनभावन उपवेद्य कहकर उपवेद्य का अरथ होता अनिर्वाय बना दिया है। बात भी यथार्थ है। जब तक रस न होना तक तक रचना इतिकृतमान वा उपवेद्यमान ही रहेगी काव्य न बन सकेगी। इस प्रकार पश्चिम के समान हमारे यहाँ भी काव्य का मुख्य प्रयोजन ध्यानन्द ही है परन्तु इस रस के लिए श्रीविरय ना धारम्य भी अनिर्वाय

१ प्रस्तुत प्रबन्ध का २३वाँ पृष्ठ देखें।

२ प्रस्तुत प्रबन्ध का २३वाँ पृष्ठ देखें।

३ रामायण और महाभारत की रचना जो सिद्धा देने के लिए की गई थी काव्यकव्य ध्यानन्द देने के लिए नहीं।

४ अक्षीकितजीवित (धारमाराम एष्य तन्त हिन्दी, १९५५ ई०) पृष्ठ १२, ११२।

५ प्रस्तुत प्रबन्ध का २४ पृष्ठ देखें।

माना गया है। धान्यसंग्रहण के सम्बन्धमें—

धनीविरत्याद् ऋते नाम्यस्रसमंगस्यकारणम् ।
प्रसिद्धोविरयव्यस्तु रसस्योपनिषत्परा।^१

धनीविरत्य ही रसमय का एकमात्र कारण है और धनीविरत्य-गुणवत्ता ही रस की परम सहायक है। कहना न होगा कि सब धनीविरत्यों में प्रमुख स्थान नैतिक धनीविरत्य का है क्योंकि उसके प्रभाव में रस रस-वदबी से श्युज होकर, रसामास मान हो जाता है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि देश विदेश के अधिकतर विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि काव्य का मुख्य प्रयोजन धामन्य है त्रितीय प्रयोजन धिया। यद्यपि ध्यादि भी प्रयोजन होते या हो सकते हैं परन्तु उन का स्थान इन दोनों के परभाव ही है। हमारा भी मत यही है।

नीति-काव्य का प्रयोजन

नीतिकाम्य का लक्ष्य विद्युत् काम्य के विन्न है। नीति काम्य का मुख्य लक्ष्य यही है जो नीति-शास्त्र का है यद्यपि मनुष्यों को उचित व्यवहार की शिक्षा देना। परन्तु दोनों में अन्तर यह है कि नीति शास्त्र तो व्यवहार की शिक्षा सामान्य मोरस वाली में देते हैं और नीति-काम्य काम्य के उपकरणों की सहायता से सरस वाली में। युक्त होने के कारण शास्त्रीय रूपन उत्तमा प्रभावगामी नहीं होता जितना नीतिकाम्य। अधिक विस्तार में न बाकर एक सोरुविद्युत् बटना का उस्तस्य मात्र समीचीन होया। महाराज अयसिंह नीति-शास्त्रों के प्राठा होते हुए भी नीति को विस्तृत कर नवैनी रानी के प्रेम में ऐव छेके कि राज-काज की उपेक्षाकर रानीके प्राठार में पड़े रहने लये। उनके पास न परिश्रमों की कमी थी न मन्त्रियों की और न सुहृदों की। परन्तु महाराज को कर्तव्योन्मुख करना सहज न था।

धम्य में यह कुचक्र कार्य कबिबर विहारी के नीतिकाम्य ने कर दिखाया। उन्होंने यह दोहा—

नहिं परायु नहिं मयुर मयु नहिं बिकास इदि काल ।
धनी काली हो ली बंधी धाने कौन हुआ ॥^२

तिसकर महाराज के पास पहुँचा दिया। जो काम परिश्रमों का वाञ्छित्य मन्त्रियों का मन्त्र तथा सुहृदों की सीत न कर पाई यही कुचक्रकवि का नीति-काम्य कर गया।

बोधया तस्मैत सीरीय, काली १९४० ई०
उद्योत ३ कारिका १४ की वृत्ति में।

धम्यालोड,

सतसई सप्तक, मूक १९४१३८

महाराज मोह का परिस्वाग कर पूर्ववत् कठम्यपरायण हो गये और पतनोन्मुख राज्य संभल गया। किन्तु महाम् भोकोपकार हुआ।

कहा जा सकता है यह बोधा विपुल काव्य है, नीतिकाम्य नहीं है क्योंकि इसमें शिखा प्रत्यक्ष नहीं की गई, व्यंग्याय से व्यनित होती है। इस इस विचार से विभक्त है। हमारी दृष्टि से यह बोधा पुत्र नीति-काव्य है। क्योंकि इस की रचना कवि ने सहज भाव से नहीं की नैतिक उपदेश देने के लिए ही की। नीति-काव्य होता हुआ भी यह विशेष सरस है। बोहे की प्रथम घाटीनी में कवि ने वह सूचिका प्रस्तुत की है जिस से भ्रमर की मूढ़ता का मात्र तन्वय व्यनित हो सके। 'बध्यों' पर संयोग मृगार की उत्पत्ता का सूचक है। चतुर्थ चरण में भानी घनित की घाटीका का संकेत है। इस प्रकार मृगार रस तथा मूढ़ता और घाटीका कपी जारों से युक्त होने के कारण बोधा पक्ष या सूचित के स्तर से ऊँचा घटकर सु-काव्य बन गया है।

एतद् यह कि सतत बोहे का प्रथम प्रयोजन शिखा है साक्षात्कृता नहीं। परन्तु शिखा के साथ ही साक्षात्कृता भी सतनी ही मात्रा में विद्यमान है जितनी किसी सुकवि के किसी अन्य-विषयक काव्य में। इसी कारण इसे नीतिकाम्य का मुख्य उदाहरण कह सकते हैं। तात्पर्य यह है कि कवि कुछ हो तो नीति-विषयक काव्य भी सतना ही सरस हो सकता है, जितना किसी अन्य विषय का। भोको-संपत्त की दृष्टि से देखा जाय तो नीति-काव्य का प्रयोजन अन्य काव्यों के प्रयोजनों से उत्कृष्ट है। अन्य काव्य मुख्य रूप से मानव के लिए रचे जाते हैं शिखार नहीं। उनमें शिखा का अभाव भी हो सकता है। नीति-काल में ऐसी रचनाओं की प्रचुरता रही परन्तु उसका नैतिक परिणाम क्या निकला? उत्कृष्टता का किन्तु किनास हुआ और सपास का किन्तु हाथ यह कहने की आवश्यकता नहीं।

तात्पर्य यह कि नीति-काव्य का मुख्य लक्ष्य तो शिखा देना है परन्तु साथ ही वह इस बात के लिए सचेत रहता है कि बहुशिक्षा यथासम्भव सरस ढंग से ही जाय।

काव्य में नीतिकाम्य का स्थान

ऊपर हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि नीति की रचना काव्य-रस की शक्तिशाली हो सकती है और नीति काव्य के अनेक प्रयोजनों में से एक प्रमुख प्रयोजन है। अब घट में इस बात का भी विवेचन सचित है कि नीतिकाम्य किन्तु शक्ति का काव्य है।

विविध काव्य

शाचार्य मम्मट ने काव्य के तीन खेद बताये हैं—उत्तम मध्यम और भ्रमर (मध्यम)। उन के विचार में उत्तम काव्य वह है जिसमें शास्त्रार्थ की अपेक्षा व्यंग्याय

प्रतिक्रमलधार-क्रमक हुमा करता है और जिसे काम्यतत्त्ववर्ती लोग "ध्वनि-नाम्य" कह चुके हैं।^१ मध्यम काम्य यह है जिसमें व्यंग्याय वाच्यार्थ की अपर्याय विशेष बलत्कारक नहीं होजा और इसीलिए उसे "गुणीभूतव्यंग्य" कहा गया है।^२ प्रवर काम्य उसे कहते हैं जिसमें व्यंग्याय का प्रभाव रहता है। इसके दो नेत्र होत हैं— प्रथम-द्विज और पञ्चमिज।^३ काम्य के एक मद को प्रवर (प्रथम) कहना छटकता प्रकल्प है परन्तु इस सत्रा का तात्पर्य यही समझना चाहिए कि इसके प्रणयन में महाकवि नहीं अपितु काम्य रचना के प्रख्याती प्राथमिक कवि हा प्रवृत्त होते हैं। यही उक्त यंत्रों को ह्यन्यवम करने के लिए एक-एक उदाहरण देना उपयुक्त होगा।

(क) उत्तम प्रथवा ध्वनि-नाम्य

पाठर बिहास कचमार पृथ्वी मसती
 तत्र मण-योति मिव मुहुन धंगुमिषी हंसती ।
 पर पग उठने में भार जग्रीं पर पड़ता
 तत्र प्रकण पृथ्वी से मुहुत सा भड़ता ॥^४

भैवितीघरण गुप्त का यह छन्द ध्वनिकाम्य का सुन्दर उदाहरण है। वाच्यार्थ इतना सुस्पष्ट है कि उसका उल्लेख प्रभावस्पक है। परन्तु वास्तविक बलत्कार के व्यंग्यार्थ में है। यहाँ विद्याल कचमार" स बर्षों की सघनता तथा सुवीर्यता 'पृथ्वी बंसती' से तुल्यमिति की सुकुमारता और मार-बहन की प्रकृतता भावनागत पृथ्वी तथा मकों से फूटने वाली प्रकण धामा से धारीर की स्वस्वता ध्वनित हो रही है। वाच्यार्थ से उक्त व्यंग्यार्थ क प्रतिक्रमलधारक होने क कारण ही यह छन्द उत्तम काम्य है।

(ख) मध्यम प्रथवा गुणीभूतव्यंग्य काम्य

प्राज बचपन का कोमल गाल जरा का पीला गात ।
 धार दिन सुसद बरिनी रात और छिर धंभकार प्रमात ॥^५

पल्ल जी के इस छन्द से यह व्यंग्यार्थ निस्सृत हो रहा है कि संसार में ब्रिती की भी प्रकृत्या एक-ही नहीं रहती। जो प्राज सुखी तथा संपन्न है वही बल दुखी और विवम्ब है। इस पद्य में वाच्यार्थ की प्रवेदा व्यंग्यार्थ विशेष बलत्कारपूर्ण नहीं है।

१ इन्द्रमुलनमतिदापिनि ध्वन्ये वाच्यार्थ् ध्वनिधुंये कवितः ॥ (काम्यप्रकाश ११४)
 २ धताबुति गुणीभूतव्यंग्ये तु मध्यमम् । (काम्यप्रकाश ११४)
 ३ इत्यत्रिज वाच्यार्थिजव्यंग्ये एवचरं स्मृतम् । (काम्यप्रकाश ११४)
 ४ भैवितीघरण गुप्त लाकेत (१९६८ वि०) छण्टम तर्प ५० २०४
 ५ मुनिप्रातमन पद्य पस्तक (१९४२ ई०) पृष्ठ ७५

दोनों में समरकार समाप्त होने से व्यंग्यार्थ की प्रभावता नहीं रही। इस प्रकार व्यंग्यार्थ पीछे हो जाने से यह मध्यम काव्य ही माना जायगा।

(ग) धर (अधम) काव्य

(१) अर्धचित्र अधमकाव्य

विप्रकोप है द्यौष जगत जलनिधि का जल है।

विप्रकोप है गरल-बुल, क्षय जल का फल है ॥

विप्रकोप है धन। जगत यह तुल-समूह है।

विप्रकोप है सूर्य जगत यह पूरुषमूह है ॥^१

रामचरित उपाध्याय के इस छन्द में श्री रामचन्द्र परशुराम के सम्मुख विप्रकीर्ण की उग्रता स्वीकृत कर रहे हैं। इस पद्य की रचना के समय कवि का ध्यान रूपकों की माता जुटाने पर इतना अधिक केन्द्रित है कि रस ध्वनि आदि की भावना बहुत पीछे छूट गई है। व्यंग्यार्थ का प्रभाव होने तथा अर्थासंकार मात्र का समत्कार होने के कारण यह छन्द धर काव्य के अर्धचित्र नामक प्रमेय में ही गणनीय है।

(२) अर्धचित्र अधमकाव्य

सोम सल-सँ सौं लसो सोम लसो सौं लाल।

सोम सला सँ लालसो सोम सलौ सो लाल ॥^२

श्री धर्मुगदास कैबिया के उक्त बोहे का अर्थ इस प्रकार है—धर लाइसी राबिका जी प्यारे इच्छ की बेगुम्बनि के लिए खंचस हो रही थीं धर इच्छ की राबिका जी के लिए धमीर। (तब एक धरतरग सखी उन्हें मिलाकर बोसी) हे लाइसी जी खंचस इच्छ की को सीबिए धीर हे इच्छ की खंचस राबा जी को सीबिए। कहना न होया कि उक्त बोहे में धमीरता रति आदि भावों के रहते हुए भी न पाठक का मन सखी धीर साहृष्ट होता है, न अर्थ की धीर। यह समस्त होता है तो काव्य समत्कार से क्योंकि समस्त बोहे में एक ही अक्षर का प्रयोग किया गया है। व्यंग्यार्थ के अभाव तथा अर्थसमत्कार मात्र की उता के कारण यह बोहा धर काव्य है।

नीतिकाम्य की कोटि ?

उपयुक्त कड़ीटी पर कसने से विहित होता है कि समस्त नीतिकाम्य को किसी एक कोटि में रखना अनुचित है। यह अपनी विशेषताओं के अनुकूल अलग भी हो

१ रामचरित मियः काव्य-वर्णन (पटना, १९३१) पृष्ठ २२६।।

२ धर्मुगदास कैबिया भावली मूलतः पृष्ठ ३०

सबका है मध्यम भी और धन्य भी । जिस नीति-काव्य में राग-रस और कल्पना-रस प्रधान हों तथा बुद्धि-रस भी बहुत उत्तम काव्य जिसमें कल्पना-रस तो प्रधान हो और राग-रस तथा बुद्धि-रस भी बहुत मध्यम काव्य जिसमें राग-रस तथा कल्पना-रस का प्रधान हो और बुद्धि-रस की धसकारों से कमलकृत किया गया हो वह धन्य काव्य माना जायगा और जिसमें केवल बुद्धि-रस ही राग-रस कल्पना-रस और धसकारों में से कुछ भी न हो वह काव्य नहीं केवल पद्य कहलायगा । निम्नलिखित उदाहरणों से हमारा धर्मिप्राय स्पष्ट हो जाता है—

उत्तम कोटि का नीति-काव्य

राम-रावण का द्वन्द्व होने का था । रावण रथ पर था राम भूमि पर ।
इसलिए मरत किमीपण भावी धर्मिष्ट की धारणा से धरौ हो उठा । तब राम धरे
बाइस देने के लिए बोम—

गुनहु सजा बहु कृपानिधाना । जेहि अप होइ सो स्पर्शन घाना ॥
सीरज बोरज सेहि रथ जाका । सत्य शील हृद धरजा पताका ॥
बल बिबक बन पर हित धीरे । दया कपा समता रजु कोरे ॥
ईस मजन सारथी सुजाता । बिरति धर्म सन्तोष कपाना ॥
बाल परगु बधि सवित प्रबडा । बर बिद्यान कठिन कोबडा ॥
सदा धर्ममय धस रथ जा के । जोतन कहूं न कतहुं रिपु ताके ॥
बौराह्यो का धर्याप मह है कि धानुकाष्टमय रथ पर घासीन योजा बिजयी
नही होत्रा धनितु धम-रथ रथ का रथी पित्रैवा होता है क्योंकि धर्म-रथ के धर्म,
धर्याप सारथी धादि धनिक सुदुत तथा बजुर होते हैं । परन्तु इस धर्म की धर्याप
यह धर्याप कही धनिक धम दामा कृपा समता धादि धर्याप हैं परन्तु भावतत्त्व धर
तय धोम धम धनिक धम दामा कृपा समता धादि धर्याप हैं परन्तु भावतत्त्व धर
यही धाम कल्पना धसकार बिचार सभी काव्य-रस बिद्यमान हैं परन्तु भावतत्त्व धर
कल्पना-रस की मुख्यता का कारण इसे उत्तम नीति काव्य के धर्म-यंत माना जायगा ।

मध्यम कोटि का नीति-काव्य

हाथी को नित्य धर पर मिट्टी झालते देखकर रहीम की कल्पना ने उड़ात सी
धर परिणाम में इस धरे का निर्माण हो गया—
धर धरत नित सीत वं कहु रहीम जेहि काज ।
जेहि रज धनि-धरनी तरी सी बुँदत मजराज ॥^२

रामचरित मानस सटीक इण्डियन प्रेस प्रयाग, पृष्ठ १०७-८
रहितन विनास, प्रयाग १९८७, पृष्ठ १२

पूब-जल म प्ररत है उतर-दम में उरार । दाम्याय सुस्पष्ट है परन्तु यह बोहा उरकी धर्मव्यक्ति के लिए नहीं लिजा गया । धर्म्यार्थ यह है कि हाभी पमु होवा हुआ भी वीराम की बरण भूति का मोसार्थ बूँड रहा है तुम मनुष्य होते हुए भी प्रमु पररुओं में बित नहीं भगाते । परन्तु बोहे का रचना एसी है कि इस मनीष्ट धर्म्यार्थ की अपेक्षा हृदय कल्पना-मनित धामन्य में बिमोह हो उठता है । इस प्रकार रामररु की अपेक्षा कल्पना-उरर की प्रधानता के कारण इस मध्यम काम्य ही कहना उचित प्रतीत होता है ।

धमम कोटि का नीति-काम्य

(क) धर्मबिन्न नीति-काम्य

बहु सजन तहे प्रीति है प्रीति तहाँ मुख ठीर ।
 बहाँ पुत्र तहू बास है, बहाँ बास तहे भीर ॥^१
 बुद्ध ने बोहे की प्रथम धर्म्यासी में मुख का कारण प्रेम तथा प्रेम का कारण उजबन-उहवास बताया है । दूसरी धर्म्यासी में उररत ततिक तथ्य को सुस्पष्ट दृष्टान्त द्वारा पुष्ट किया गया है । धर्म के धमाब तथा धर्मनिकार-प्रमित बगरकार के कारण यह बोहा धमम कोटि का (धर्मबिन्न) नीति-काम्य है ।

(ख) धर्मबिन्न नीति-काम्य

उरर सरन के करले प्राखी करत इलाब ।
 ताँबे बाँचे रन निरै, राँबे काब धकाब ॥^२
 इस बोहे का धाषय इतना ही है कि मनुष्य को निज पैठ धरने के लिए सब प्रकार के मसे-बुरे तथा संकष्ट-जनक कार्य करने पड़ते हैं । धर्म में कोई रमछीयता नहीं परन्तु कबि ने ताँबे बाँचे राँबे म धनुषाय द्वारा बोहे को बमरकृत करने का मल किया है । धर्म्यार्थ के धमाब तथा धर्म-प्रमित बगरकार के कारण इसे धमम कोटि का (धर्मबिन्न) नीतिकाम्य ही मानना पड़ेगा ।

निष्कर्ष

उपयुक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि नीति काम्य का उत्तम, मध्यम या धमम होना कबि की प्रतिभा घोर कौशल पर अवलम्बित है । इसके धर्मविरत कोई एक कबि भी उवा एक-ही रचनाएँ नहीं करता । दीनपयात्मविरि की धर्म्योक्तियों में जो सरसता है वह उनकी दृष्टान्त उचितियों के बोहों में नहीं है । बुद्ध के धर्मिकर बोहे

१ सतसई लताक, पृष्ठ ३२९, बोहा, २२२ ।
 २ वही पृष्ठ ३३०, बोहा २२९ ।

द्वितीय अध्याय

भारतीय साहित्य में नीति-काव्य की परम्परा

हिन्दी-साहित्य के आरम्भ से पूरव भारत में एक ऐसे विद्यालय और नव्य साहित्य की सृष्टि हो चुकी थी जिसने हिन्दी-साहित्य को मार्ग रीपा, रस सम्पन्न प्रकार भाषि की दृष्टि से पर्याप्त प्रभावित किया। यह साहित्य वैदिक संस्कृत, पालि प्राकृत और अपभ्रंश इन पाँच भाषाओं में लिखा गया था। चूंकि उसके नीति सम्बन्धी काव्य ने हिन्दी के नीति-काव्य को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित किया है इसलिए पृष्ठ-भूमि के रूप में उसका परिचय प्रस्तुत करना उचित प्रतीत होता है।

१—वैदिक साहित्य में नीति-काव्य

संहिताओं में नीति-काव्य

वेदों (मूल संहिताओं) ब्राह्मणग्रन्थों आरण्यकों तथा उपनिषदों के समुदाय को वैदिक साहित्य कहते हैं। इनमें संहिताएँ प्राचीनतम और प्रायः सम्पूर्ण हैं। भारतीय साहित्य का आरम्भ इन्हीं से होता है। चारों संहिताओं में बीस संहिता के लगभग मंत्र हैं जिनमें से अधिकतर मंत्रों का सम्बन्ध स्तुति, प्रार्थना उपासना यज्ञादि नायिक कृत्यों से है। वेद यत्र लोक-व्यवहार भाषि से सम्बन्ध है और वही हमारे विश्वेश्वर के विभिन्न विषय हैं। नीति के सभी प्रकार संहिताओं में बीजस्वरूप में उपलब्ध होते हैं। यथा—

वैयक्तिक नीति

अनुभव का व्यक्तित्व छोड़कर यत्र तथा भाषा के संयोग से निर्मित होता है। यों तो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति की बचनी, दृष्ट-पुष्ट आनन्द तथा उदात्त होने का उद्योग करता है परन्तु प्राचीन धर्म तो इस विषय में विशेष प्रयत्नशील थे। कारण यह कि वे अपने आदिम निवासस्थान से प्रस्थान कर चल-बढ़ रूप में भारत में पहुँचे थे। यहाँ पर पाँच जमाने के सिद्ध उन्हें बहु-संस्कृत भाषिकावियों से अभिनिष्ठ लोहा लेना पड़ता था। उन संघर्षों में विजय-साध की भाँसा सभी सम्भव थी जब वे

घाटीरिक्त मानसिक तथा आर्थिक बल में परिपक्वियों से बड़-बड़कर हों। कदाचित् यही कारण है कि बेदों में मृत्यु-निवारण की बीजाणु प्राप्ति की, रोम-नाश की, स्वास्थ्य-साम की तथा तनपुष्टि की धार्मिकानेक प्रार्थनाएँ ही नहीं मिसरीं अपदेष्ट भी उपसम्भ होते हैं। वे सौम्य मध्यकालीन शिक्षकों के समान घटीर को मत्तापार तथा जीवन को निस्तार न समझते थे। वे देह को वैभवाभों की पुष्टि तथा परम ज्योति के दर्शन का मन्दिर मानते थे—

घाटचक्रा नवद्वारा हैवानां पुरयोम्या ।

तस्यां क्षिरव्ययः कोषः स्वर्गो ज्योतिवावुत ॥^१

यह घटीर देवताभों की भयोम्यापुष्टि है जिसमें घाट चक्र घोर नवद्वार है। उसमें सुलभायक स्वर्गमय कोष है जो प्रसू की ज्योति से व्याप्त है।

ज्ञान उनके जीवन का धनिवार्थ धर्म था। जहाँ मैधा, बुद्धि तथा बाणी के बिकास के लिए बेदों में धनेक्य प्रार्थनाएँ की गई हैं वहाँ ज्ञान के स्वरूप, महत्त्व तथा प्राधिकारियों के निरूपण से श्रद्धेय का ज्ञानदेवताक सूत्र^२ परिपूर्ण है। उसमें मित्रों के मानसिक बिभ्रस के तात्त्व्य का उल्लेख यों किया गया है— मित्रों के मयन घोर कान तो समान होते हैं परन्तु मन की दौड़ पृथक्-पृथक्। (ज्ञान की दृष्टि से) कुछ जन सरोवरों के समान हैं जिनका जल कटि तक पहुँचता है। कुछ उनके जिनका मुख तक घोर कुछ यहरे सरोवरों के जिनमें मनुष्य पृसा स्नान कर सकता है।^३

वे धात्मा की धमरता तथा कर्म-फल के सिद्धान्त के बिन्वासी थे। उनके बिचारानुसार, धात्मा को धावाज के बिपरीत धावरण करने वाले सौम्य मृत्यु के परवान् प्रकाश-रहित मोर्कों को प्रस्नान करते हैं।^४ सब बुदाइयों के त्याग के सम्बन्ध में वेद की काव्यमयी भाषा वृष्टव्य है—

✓ यथा सूर्गो मुष्यते तमसस्परि रात्रि ज्वहत्पुपसदञ्च केतुन ।

एवाहं सर्वं कुर्मन्तु कर्त्रे हरयाहता कृतं हस्तीव रजो बुरितं ज्वामि ॥^५

परवान् जैन गूर्यं धन्वकार स मुक्त हो जाता है, रात्रि को छोड़ देता है घोर उपाजामीन् प्रकाशों को भी त्याग देता है जैसे ही मैं सारी बुदाइयों को, हिंसक-वृष्ट हिमा को छोड़ता हूँ। जैसे हाथी पूस को उड़ा फेंकता है बंस ही मैं पाप को। सार यह कि दीर्घ जावन पुष्ट घटीर, जग्गवस मस्तिष्क तथा पवित्र अरिभ बँदिक पुग की बँदविश्रु-भीति थी।

१. धपबेद १०।२।३१

२. श्रद्धेय १०।३१

३. श्रद्धेय १।७।१०

४. यदुवेद ४०।३

५. धपबेद १०।२।३२

द्वितीय अध्याय

भारतीय साहित्य में नीति-काव्य की परम्परा

हिन्दी-साहित्य के आरम्भ से पूरा भारत में एक ऐसे विद्यालय और पद्य-शास्त्र की सृष्टि हो चुकी थी, जिसने हिन्दी-साहित्य को मार्ग-दर्शक, सत्य, धर्मकार आदि की दृष्टि से पर्याप्त प्रभावित किया। यह साहित्य वैदिक सस्कृत, पालि प्राकृत और अपभ्रंश इन पाँच भाषाओं में लिखा गया था। चूंकि उसके नीति-सम्बन्धी काव्य ने हिन्दी के नीति-काव्य को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित किया है, इसलिए पृष्ठ-पूर्विक के रूप में उसका परिचय प्रस्तुत करना उचित समझा जाता है।

१—वैदिक साहित्य में नीति-काव्य

संहिताओं में नीति-काव्य

वेदों (युग संहिताओं) शास्त्राणुषुओं आरण्यकों तथा उपनिषदों के समुदाय को वैदिक साहित्य कहते हैं। इनमें संहिताएँ प्राचीनतम और प्रायः सम्बोधित हैं। भारतीय शास्त्र का अग्रक्रम इन्हीं से होता है। चारों संहिताओं में बीस संहिता के समान मंत्र हैं, जिनमें से अधिकतर मंत्रों का सम्बन्ध स्तुति प्रार्थना उपासना यज्ञादि धार्मिक कृत्यों से है। वेद मंत्र लोक-व्यवहार आदि से सम्बन्धित हैं और वही हमारे विश्वकोश के विभिन्न विषय हैं। नीति के सभी प्रकार संहिताओं में बीबकूप में उपलब्ध होते हैं। यथा—

व्यक्तिक नीति

मनुष्य का व्यक्तित्व शरीर, मन तथा आत्मा के संयोग से निर्मित होता है। यों तो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति हीर्षजीवी, हृष्ट-गुष्ट, जानबालू तथा सबाचारी होने का उद्योग करता है परन्तु प्राचीन धर्म तो इस विषय में विद्विष्य प्रयत्नशील थे। कारण यह कि वे अपने आदिम निवासस्थान से प्रस्थान कर सम-बद्ध रूप में भारत में पहुँचे थे। यहाँ पर पाँच जमाने के लिए उन्हें बहु-संस्कृत धार्मिकानुष्ठानों से बहुमिष्ट मोहात्मना पकटा था। उन संघर्षों में विजय-लाभ को प्राप्ता तनी सम्भव थी जब वे

पारिरीक मानसिक तथा चार्त्तिक बल में परिपक्वियों से बढ़-बढ़कर हों। कदाचित् यही कारण है कि वेदों में मृत्यु-निवारण की दीर्घायु शान्ति की योग-नास की, स्वास्थ्य-नास की तथा तनपुष्टि की धनेकानेक प्राथमार्थ ही नहीं मिसतीं उपदेश भी उपसम्प होते हैं। वे लोग मध्यकालीन लेखकों के समान पारिरीक को मसामार तथा जीवन को निस्तार न समझते थे। वे देह को देवताओं की पुरी तथा परम ज्योति के शरण का मन्दिर मानते थे—

अष्टकस्य नवद्वारा देवानां पुरयोपमाः ।

तस्यां शिरषस्य कोश स्वर्गो ज्योतिषाकृतः ॥^१

यह पारिरीक देवताओं की ज्योप्यापुरी है जिसमें घाट तक पीर नवद्वार है। इसमें मुख्यतः स्वर्गमय कोश है जो प्रभु की ज्योति से व्याप्त है।

ज्ञान उनके जीवन का अनिवार्य अंग था। जहाँ वैशा बुद्धि तथा बालों के विकास के लिए वेदों में अनेक प्राथमार्थ की गई हैं वहाँ ज्ञान के स्वरूप महत्त्व तथा प्रविकारियों के निरूपण से ऋग्वेद का ज्ञानदेवताक सूक्त^२ परिपूर्ण है। इसमें मित्रों के मानसिक विकास के उत्तरमय का उल्लेख यों किया गया है— मित्रों के जपन पीर ज्ञान तो समान होते हैं परन्तु मन को दीर्घ पुष्क-पुष्क। (ज्ञान की दृष्टि से) कुछ उन शरीरों के समान है जिनका जल कटि तक पहुँचता है। कुछ उनके जिनका मुख तक पीर कुछ गहरे शरीरों के जिनमें मनुष्य सुखा स्नान कर सकता है।^३

वे आत्मा की धमरता तथा कर्म-फल के सिद्धान्त के विद्वान्सी थे। उनके विचारानुसार, आत्मा की धाबाज के विपरीत धाचरण करने वाले लोग मृत्यु के परवान् प्रकाश-रहित मोक्षों की प्रस्थान करते हैं।^४ सब कुरार्यों के त्याग के सम्बन्ध म वेद की काम्यमयी भाषा सुलभ्य है—

यथा सुर्वो मुख्यते तमसस्वरि रात्रिं अहात्युपसन्न केतुन ।

एवाहं तत्र कुर्मते कर्म हरयाहता इतं हस्तीव रजो वुरितं अहामि ॥^५

पर्यान् जैसे मूल धमकार से सुक्त हो जाता है, रात्रि का छोड़ देता है पीर उपाकाधीन प्रकाशों को भी त्याग देता है जैसे ही मैं सारी कुरार्यों को, हिनक-इत हिसा को छोड़ता हूँ। जैसे हाथी मूल को उड़ा फेंकता है जैसे ही मैं जान को। तार यह कि कार्य जीवन पुष्ट पारिरीक अगवत मसिच्छ तथा पवित्र पवित्र बन्दि दुग की वैपश्चिद-सीति-पी।

१ अथर्ववेद १०।२।३१

२ ऋग्वेद १०।३१

३ ऋग्वेद १।१०।१०

४ यजुर्वेद ४०।३

५ अथर्ववेद १०।१।३२

पारिवारिक नीति

जीवन की सुखमयता अधिकोपकार में पारिवारिक शान्ति पर अवलम्बित है। पति तथा पत्नी का सम्मान तथा बच्चों का भाइयों तथा बहिनों का पारस्परिक वैमनस्य गृहस्त्री को नरक बना दिया करता है। उस अवाञ्छनीय स्थिति से बचाव के लिए वैदिक पारिवारिक नीति का यों प्रतिपादन करता है— 'तुम्हारा पारस्परिक प्रेम ऐसा हो वैसा वाय का नख-भाठ बसठ से। पुत्र पिता का धाम्नामुबर्ती तथा माता से अमनबस्य रखनेवाला हो। पत्नी पति के प्रति मधुर तथा धाम्ना बाणी का प्रयोग करने वाली हो। न भाई भाई से द्वेष करे न बहिन बहिन से। सभ्य तथा धाधार-भ्यवहार समान रखते हुए नती बाणी का भ्यवहार करे।'^१

सामाजिक नीति

सामाजिक नीति के क्षेत्र में वैदिक भेद भाव को त्यागकर मिलकर ज्ञान-दान तथा पूजा-वाठ करने का उपदेश इन शब्दों में देता है—

समाजी ज्ञवा सृष्ट् बोष्मनाकः समानै योष्ये सह वो पुनज्मि ।

सम्यबोष्मिन् ससर्वतारा नाभिभिवाधितः ॥^२

तुम्हारे ज्ञानदान-स्नान समान हों तुम्हारा भोजन मिलकर हो तुम्हें समान स्नेहपात्र में बाँधता हूँ। ऐसे मिलकर धर्म की सपर्या करो जैसे कि धरे रखवाक की नाभि के चारों ओर मिश्रे हुए रखते हैं।

समाज में मित्र तथा उदासीन लोग ही नहीं होते धनु भी होते हैं। उनके बचन के लिए जो तेज धनिवार्य होता है उसकी कामना इन शब्दों में की गई है—

विह में, व्याघ्र में, नीले में धनि में बाह्यण में, सूर्य में बिध शक्ति का प्रकाश हो रहा है वही मेरे अन्तर भी हो। छासक-गस में दुन्दुभि की तुमुल-धनि में बोड़े की हिनहिनाहट में पुस्व की ससकार में बिध शक्ति का प्रकाश हो रहा है, वही मेरे अन्तर भी हो।^३ इसी प्रकार अथर्ववेद के छठे काण्ड के ६१ ६७ सूक्त धनु के विप्रावण तथा संहार की भावनाओं से पूर्ण हैं।

सोकूपकारी सवाचापी विद्वान् अतिधियों के सम्बन्ध में वैदिक इस नीति का विधान करता है—जो व्यक्ति अतिधिय से पूर्व भोजन करता है वह अपने चरों के दृष्ट धीर पुसं दूध धीर रस धक्ति धीर संपति संपति धीर पशु तथा कीति धीर यश को ही खा जाता है।^४

१ अथर्ववेद १।१०।१ ३

२ अथर्ववेद ३।१०।६

३ अथर्ववेद ६।६८।१ ४

४ अथर्व — १।६।११ ११

अपित को समाप्त में रहते हुए मित्र पुरुषाय द्वारा उन्मत्ति करने की विद्या
काम्यमयी भाषा में इस प्रकार दी गई है—

दुष्या हृदिरसि हेत्या हृतिरसि मेत्या मेतिरसि । धाप्नुहि ध्यांसमति धर्म
काम ।^१

हे मनुष्य तू दूषक का दूषक मादक का मादक धीर बन्ध का बन्ध है । तू
बदबर बालों को पीछे छोड़कर उनमें जा मिल जो तुम्ह स भेड़ है ।

धार्मिक नीति

प्राचीन धर्म भोग सुखोंको मूहस्प थे । साधु-सत्तों का-सा उपोसय तथा धार्मिक
जन जीवन उन्हें पसन्द न था । वे पुत्र-पौत्रों के साथ घर में धामोद प्रमोद-गुण जीवन
यापन का सत्य धरने सम्मुख रहते थे ।^२ इसी कारण बहिक साहित्य में धार्मिक
उपदेश इस प्रकार के उपनयन होते हैं—महाँ कर्म करते हुए ही सौ बरें तक जीवन
की इच्छा करो ।^३ सौ हाथों से कमामो तथा हजार हाथों से दान-मुष्य करो ।^४ वे
विशेषी तो य परस्पर वैसा पुरुषार्थ^५ से उपाजित करने के पसराती थे बुर^६ या
धनीति^७ से नहीं ।^८ पाजित धन का एकाकी उपभोग उनके मठ में नीति-विषय या
मठएव जगहोंने यह कहा “धनेसा धाने नामा केवल पाप खाता है ।”^९ वे जीवन
यात्रा में बहाँ-के-तहाँ रहना उचित न समझते थे और प्रगतिशील जीवन को ही
मुनीति मानते थे— मपनी-सी स्थिति बालों से धाने निरुस जामो तथा उन्मत्त सोचों
से जा मिलो ।^{१०}

इतर प्राणि-सम्पत्ती नीति

कृषिकर्म और पशुपालन धर्मों के प्रिय व्यवसाय होने के कारण वेद-मंत्रों
में पशुओं की प्राप्ति और रक्षा के लिए विशेष कामनाएँ तथा प्राधनार्य की गई हैं ।^१

१. धर्मवेद २।१।१।१
२. ऋग्वेद १०।८२।४२
३. यजुर्वेद ४०।२
४. धर्मवेद २।२४।२
५. यजुर्वेद ४०।२
६. ऋग्वेद १०।३४।१३
७. यजुर्वेद ४०।१
८. ऋग्वेद १०।११०।६
९. धर्मवेद २।१।१।४५
१०. यजुर्वेद १।१।२।२।२२

गौ घोड़ा बैस धारि उपयोमो पशुधों के लिए ही विधौप प्रार्थनाएँ नहीं हैं प्राणि मान को मित्र की बन्धु से देखने की भावना तथा जीव-रक्षा में प्रमाद न करने का उपदेश भी उपसम्भ होता है।^१ परन्तु सिंह सूघर सर्प धारि वातक जीव-बन्धुधों के विनाश की प्रेरणाएँ भी विद्यमान हैं।^२

मिश्रित नीति

वेद इस लोक की प्रियतम मानता है, पुत्रों का वर नहीं।^३ बहु बार्हस्प्य से पूर्व मरने का निवेध तथा शीर्ष जीवन को हँसते धीर मापते हुए व्यतीत करने का विधान करता है।^४ पाषक-मोषक होने के कारण सुमि घोर पर्वन्व ह्मारे माता पिता हैं तथा उपकारक होने के कारण सूर्य, चन्द्र जस धारि पदार्थ ह्मारे सम्मान्य हैं।^५ वेद पुत्रवार्थ का महत्त्व यों प्रतिपादित करता है—जो परिश्रम नहीं करता देवता उसे मित्र नहीं बनाते।^६ हे मनुष्य ! तू सम्पत्ति के माग पर बससर हो ब्रह्मवि के पय पर नहीं।^७

संहिताधर्मों के नीति-काम्य की समीक्षा

रस काम्य की धारमा है। अतः सद्गुणों के हृदय में रस का संचार करने में समर्थ रचना ही काम्य नाम की अधिकारिणी होती है। इस तुषा पर ठोकरने से संहिताधर्मों के धार्मिकोद्य नीति-धर्मों को क्षुब्धोद्य होते हुए भी, काम्य मानना कठिन है। उनके अन्वय और अभ्ययन से व्यवहार-सम्बन्धी ज्ञानवृद्धि तो होती है परन्तु हृदय में रसोप्रेक नहीं होता कर्तव्य का धार तो निर्विष्ट हो जाता है परन्तु उस धार्मिक धारमा की अनुभूति नहीं होती जिसमें मन विभोर हो छटे। तो भी यह नीरसता सार्वत्रिक नहीं है। कहीं-कहीं ऐसे भी माग दिखाई देते हैं जिन्हें पढ़कर हृदय एक वा ब्रह्मरे रस या भाव में चीन हो जाता है। प्रायः मनुष्य सम्पन्न होने पर इतना धर्मि मानी हो जाता है कि विभिन्न व्यक्तियों की घोर धार्मिक उठाकर देखने में भी अथवा अपमान मानता है। वेद सक्ती की चंचलता दिखाकर यर्ष के स्थान घोर उदारता के प्रहारा की यों प्रेरणा करता है—

१ यजुर्वेद ३६।१०; अथर्ववेद १०।१।७

२ अथर्ववेद ४।३।४

३ अथर्ववेद ३।३।१७

४ ऋग्वेद १।१०।३

५ अथर्ववेद १२।१।१२

६ ऋग्वेद ४।३३।११

७ अथर्ववेद ३।३।१।७

पुलीयादिन्नामभावाय तस्यान् प्राचीनात्मनुपश्येत पश्चाम ।
सो हि वर्तते रथेव अक्राम्यमगमन् तिष्ठन्त राया ॥^१

यनाय को यात्रकों की कामनाएँ पूर्ण करनी चाहिए । उसे मार्ग की दूरी पर दृष्टि रखनी चाहिए । धन तो रथ के चक्कों के समान घूमते रहते हैं । यात्र इसके यहाँ बस उसके यहाँ ।

भाषा—वेद के उपदेश वैदिक भाषा में हैं जो संस्कृत से भी प्राचीनतर हैं । वह सरल स्वाभाविक भाषा है परन्तु उसकी स्वाभाविकता मनु, याज्ञवल्क्य आदि की स्मृतियों की भाषा के तुल्य ठानने वाली नहीं है । वेद के नैतिक संघों में कहीं-कहीं वह अमरकार प्रनायास धा मया है जिसे परवर्ती साहित्य-सास्त्रियों ने अमरकार नाम से अभिहित किया है । वह अमरकार तीन प्रकार का है—१ अमरगत २ अमरगत तथा ३ अमरगत ।

(१) अमरगत अमरकार

(क) पुमान् पुमांसं परिपातु बिभ्वत् ॥^१ (कृत्यानुप्रास)

(ख) समानि च प्राकृतिः समाना ह्यमानि च ।

समानमस्तु सो मनो यथा च नुसहासति ॥^२ (भाटानुप्रास)

(२) अमरगत अमरकार

(क) भूमि माता है मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ ॥^३ (रूपः)

(ख) (ये पति) कभी नीचे पड़ते हैं और कभी ऊपर । स्वयं तो हाथ नहीं रखते परन्तु हाथ वालों को पराजित कर देते हैं, पक्षक पर (ये) निरा संगठने स्वयं पीछल होते हुए भी हृदय को बना डालते हैं ॥^४ (बिरोधाभास तथा आकाशितयानित)

(ग) जो समान हाथ समान कार्य नहीं करत समान समय पर प्रसूता जो गोएँ समान दूध नहीं देनी । दो यमज बच्चों की शक्तिवी समान नहीं हाना । एक ही परिवार के दो व्यक्ति समान उदार नहीं होते ॥^५ (हृष्टान्त)

१ आश्वेद १०११७३

२ आश्वेद १७३१४

३ आश्वेद १०१२१४

४ अथर्ववेद १२।१।१२

५ आश्वेद १०।१४।६

६ आश्वेद १०।१७।६

(३) छायाकार्य अमरकार

किसी-किसी सूक्त में तो वेद काय तथा अर्च-सम्बन्धी अमरकारों की माताएँ प्रस्तुत कर देता है। अथर्ववेद के त्रितीय काण्ड का पशुहर्षा सूक्त इस बात का सुन्दर निदर्शन है। इसमें मनुष्य निर्भयता प्राप्ति के लिए अपने प्राण को यों संबोधित करता है— 'जैसे ही घोर पृथ्वी न डरते हैं न हानि उठाते हैं, ऐसे ही हे मेरे प्राण तू मत डर। इसी प्रकार पृथक्-पृथक् मंत्रों में दिन घोर रात सुब घोर रात, ब्रह्म घोर अन्न अरु घोर अमृत भूत अरु अविष्यत् की उपमाएँ लेकर निज प्राण को निर्भयता का उपदेश दिया है। धार्मिक छायावादी कवियों के समान वेद भी सूर्य अग्नि आदि प्राकृतिक तथा भूत अविष्यत् आदि असाकृतिक पदार्थों में निर्भयता की अभ्यन्ता कर उन्हें प्राण के उपमान बनाता है। इसी प्रकार अन्य अमरकारों के उदाहरण भी विवेक जा सकते हैं।

अग्नि—संहिताओं के नीतिकाम्य में भी उन्हीं पायबी अनुष्टुप् त्रिष्टुप् आदि वैदिक ऋणो का व्यवहार किया गया है जिनका सामान्य मन्त्रों में। उक्त अमरकार अम्ना पर तो प्रायः दृष्टि रहती है परन्तु मुक्त-अनु-विचार पर नहीं।

काव्यविभाग—काव्य-विभाग की दृष्टि से वैदिक नीतिकाम्य सुस्तक काव्यों की कान्ति न ही सग्निक हो सकता है प्रबन्ध काव्यों में नहीं। दान ज्ञान दूत निष्ठा प्रतिनिधेता, सामन्तस्य आदि विषयों पर जो सूक्त दिखाई देते हैं उनका प्रत्यक्ष मन्त्र अनेक-मन्त्र में पूर्ण है। यद्यपि एक-एक सूक्त के अनेक मन्त्रों का विषय काय एक ही होता है तथापि अर्थाभिप्यक्ति में उन्हें अन्व मन्त्रों का प्रभय सेने की आवश्यकता नहीं होती। जैसे मनुहृदि के नीति-सूक्त के विषय विभिन्न अमरों में विभक्त हैं वैसे ही वैदिक सूक्त भी। अतएव वैसे में सुस्तक काव्य है वैसे ही वे।

गुण—वैदिक नीतिकाम्य में रस का अभाव-सा है अतः उसमें गुणों की विशेष जोर करना भी निरर्थक है। उसमें जोर तथा माधुर्य की विशेष मात्रा न रहते हुए भी प्रसाद गुण की अनुप्राप्ति नहीं है। वेद अपने भाव तथा भाषा को सर्वथा स्पष्ट रखता है न अर्थों में अस्पष्टता मान देता है न भाषा में। यही कारण है कि मन्त्र पढ़ते ही अर्थ तुरन्त हृदयवत हो जाता है।

अव्ययवक्ति—वेद में नीति का प्रतिपादन करने के लिए प्रायः अव्ययवक्ति का प्रभाव लिया है। परन्तु कहीं कहीं कलत्रा तथा व्यंजना द्वारा विषय को अर्थक प्रभावोत्पादक बना दिया है। आस्तिक तथा नाममान के ज्ञानियों के वेद को वेद इस प्रकार स्पष्ट करता है—“एक मनुष्य को सोच बाणी की विभक्तता में सम्बन्ध प्रतिष्ठित करते हैं उसे ज्ञानधर्मों के समान से अस्पष्ट नहीं करते। परन्तु जिसने फल-उद्दिष्ट अरु वे फल-उद्दिष्ट बाणी का अर्थ किया है वह किसी मायामयी को के समान ही

पूमता है ।^१

बाणी को पुण्य-कर्म रहित कहने में ससला का प्रयोग हुआ है तथा निदर्शना अस्कार द्वारा यह व्यंग्य है कि नित्यार बाणी का अर्थ नितान्त निरर्थक है ।

श्लोक—वेदों के भाष्यकारों में बौद्धिक मन्वों में कहीं-कहीं भिन्न क्रमत्व पुरुष व्यत्यय विभक्तिव्यत्यय यत्तवोर्व्यत्यय आदि की ओर संकेत किया है ।^२ परन्तु उक्त स्थलों पर विचार करने समय यह बात स्मरणीय है कि बौद्धिक भाषा संसार की प्राचीनतम भाषा है । पाणिनि आदि के व्याकरण तथा आमह आदि के काव्य-शास्त्र जिनके आधार पर हम धार्मिक कृतियों की आलोचना किया करते हैं बहुत ही पीछे की रचनाएँ हैं । इन मुरीय काल में भाषा बौद्धिक आदि में परिवर्तन हो ही जाया करते हैं । अतः इनके आधार पर अनुरी मूल्य आलोचना करना उचित नहीं प्रतीत होता ।

उपर्युक्त विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर सहज ही पहुँच जाते हैं—

- (१) वेदों के कुछ अंशों में नीतिकाम्य बीजकर्म में विद्यमान है ।
- (२) उसका सम्बन्ध मानव-जीवन के प्रायः सभी अंशों से है ।
- (३) बौद्धिक नीतिकाम्य ऐहिक जीवन को विधेय महत्त्व देता हुआ धार्मिक बौद्धिक तथा धार्मिक गुणों के विकास की प्रेरणा प्रेरणा करता है ।
- (४) पारिवारिक सम्बन्धों की सत्य मानत हुए उनके निर्वाह का सम्यक् मत्न करना चाहिए ।
- (५) वेद समय मिल-जुलकर रहने का उपदेश देता है परन्तु दास्यों के प्रति मृदु व्यवहार का पक्षगती नहीं है ।
- (६) वैश्व धर्म को कुछ नहीं मानता । उसे परिश्रम-शुर्भक उपाजित करने तथा उदारतापूर्वक दान करने की प्रेरणा करता है ।
- (७) ब्रह्म सामग्र्य प्राणियों का हितैषी है परन्तु हिंस्र जीवों के संहार का समर्थक है ।
- (८) वेद ब्रह्म धीर पुण्यार्थ को विधेय महत्त्व देता हुआ सुधी जीवन व्यतीत करने का उपदेश देता है ।
- (९) बौद्धिक नीतिकाम्य काव्यशास्त्र की दृष्टि से जाहें सर्वाथ में सरस न हो परन्तु उनका कुछ अंश तो अक्षय ही काम्यपद के अभिप्राय है ।

(ख) परवर्ती धार्मिक साहित्य में नीतिकाम्य

वेदों की संविदाओं के परबन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों धारण्यों तथा उक्तिपदों की रचना हुई । कहते हैं कि वेदों की १११० संहिताया के समान कभी ब्राह्मण धारण्यक

१ जाम्बेय, १०१०१।५

२ पञ्चमंड, ४०१।१ वरद उच तथा महीपर के भाष्य देखिए ।

(३) सध्यायें समस्कार

किसी-किसी सूक्त में तो वेद सभ्य तथा धर्म-सम्बन्धी धर्मकारों की याज्ञा प्रस्तुत कर देता है। यजुर्वेद के द्वितीय काण्ड का परग्रहर्वा सूक्त इस बात का सुन्दर निदर्शन है। इसमें मनुष्य निर्मयता प्राप्ति के लिए अपने प्राण को यों संबोधित करता है— 'जैसे ही धीर पृथ्वी न डरते हैं, न हानि उठाते हैं, ऐसे ही हे मेरे प्राण तू मत डर। इसी प्रकार वृषभ-भृशक मंत्रों में दिन और रात, सुम और बाह ब्रह्म और अन्न तम और भृशू भूत और मरिच्यत् की उपमाएँ देकर निज प्राण को निर्मयता का उपदेश दिया है। धार्मिक धामावाही कर्मों के समान वेद भी सूर्य चन्द्र प्राणि प्राकृतिक तथा भूत मरिच्यत् आदि अप्राकृतिक पदार्थों में निर्मयता की कल्पना का उम्हें प्राण के उपमान बनाता है। इसी प्रकार अन्य धर्मकारों के उदाहरण भी दिये जा सकते हैं।

एक—संहिताओं के नीतिकाम्य में भी उम्हीं मायवी अष्टुष्टु, विष्टुष्टु आदि वैदिक बर्ण-धर्म का व्यवहार किया गया है जिनका सामान्य मंत्रों में। उनमें अक्षर संख्या पर तो प्रायः दृष्टि रहती है परन्तु गुरु-सप्त-विचार पर नहीं।

काव्यविधान—काव्य-विधान की दृष्टि से वैदिक नीतिकाम्य मुक्तक काव्यों की कोटि में हो सम्मिलित हो सकता है प्रबन्ध काव्यों में नहीं। वाच ज्ञान चूत भिन्ना प्रतिबिम्ब, सामंजस्य आदि विषयों पर जो मुक्त विचारों से है उनका प्रत्येक मन्त्र अपने-मार में पूर्ण है। यद्यपि एक-एक सूक्त के अनेक मंत्रों का विषय प्रायः एक ही होता है तथापि अर्थान्तरित में उम्हें अन्य मंत्रों का प्रथम सेम की आवश्यकता नहीं होती। जैसे मनु हरि क नीति-सूक्त के विषय विभिन्न वसकों में निमग्न हैं वैसे ही वैदिक सूक्त भी। अतएव जैसे ये मुक्तक काव्य हैं वैसे ही वे।

गुरु—वैदिक नीतिकाम्य में रस का अभाव-ता है अतः उसमें गुरुओं की विशेष खोज करना भी निरर्थक है। उसमें खोज तथा माधुर्य की विशेष माता न रहते हुए भी प्रसाद गुरु की शून्यता नहीं है। वेद अपने भाव तथा भावा को सर्वथा स्पष्ट रखता है न भावों में कुंकृता धार देता है न भाषा में। यही कारण है कि मन्त्र पढ़ते ही मंत्र पुरन्त हृदयव्यय हो जाता है।

अप्यवहित—वेद के नीति का प्रतिपादन करने के लिए प्रायः अविधा कवि का आशय मिला है। परन्तु कहीं कहीं अक्षरों तथा व्यंजना द्वारा विषय को अधिक प्रभावोत्पादक बना दिया है। वास्तविक तथा नाममात्र के ज्ञानियों के मंत्र को वेद इस प्रकार स्पष्ट करता है—“एक पशुपत्य को तोव वाली की निमता में अत्यन्त प्रसिद्धि कहते हैं उसे ज्ञानवृद्धों के समान से बहिष्कृत नहीं करते। परन्तु बिचने फल-रहित और वे फल-रहित वाली का अर्थ किया है वह किसी नामामयी भी के धार ही

सूचता है।^१

बाणी को पुष्प कम उचित कहने में लखणा का प्रयोग हुआ है तथा निदर्शनात्मकता द्वारा यह स्पष्ट है कि निस्तार बाणी का ध्वज मिथ्या निरर्थक है।

शेष—देशों के भाष्यकारों में वैदिक मंत्रों में कहीं-कहीं भिन्न-कमल पुरुष अर्थव्यय विनिरित्यस्य यत्तत्रोर्म्यस्य आदि की ओर उल्लेख किया है।^२ परन्तु उक्त स्थलों पर विचार करने समय यह बात स्मरणीय है कि वैदिक भाषा संसार की प्राचीनतम भाषा है। पाणिनि आदि के व्याकरण तथा मायह आदि के काव्य-शास्त्र धिन्क आशर पर हम प्रागुक्त कृतियों की आलोचना किया करते हैं बहुत ही पीछे की रचनाएँ हैं। इन सुग्रीव कास में भाषा हीनी आदि में परिवर्तन हो ही जाया करते हैं। अतः इनके आधार पर उनकी मूल्य आलोचना करना उचित नहीं प्रतीत होता।

उपर्युक्त विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर सहज ही पहुँच जाते हैं—

- (१) देशों के कुछ स्थानों में नीतिशास्त्र की रचना में विद्यमान है।
- (२) उक्त सम्प्रदाय मानव-जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों से है।
- (३) वैदिक नीतिशास्त्र ऐहिक जीवन को विषय मूल्य देता हुआ धार्मिक, बौद्धिक तथा धार्मिक गुणों के विकास की प्रबल प्रेरणा करता है।
- (४) धार्मिक सम्प्रदायों को सत्य मानते हुए उनके निर्वाह का सम्पूर्ण यत्न करना चाहिए।
- (५) वेद सबसे मित-सुमकर रहने का उपदेश देता है परन्तु धर्मियों के प्रति मृदु व्यवहार का पक्षपाती नहीं है।
- (६) वेद धर्म को लुप्त नहीं मानता। उसे परिष्कृत-सुदृढ़ बनाकर रखने तथा उदात्ततापूर्वक व्यवहार की प्रेरणा करता है।
- (७) वेद सामग्र्य प्राणियों का हितपी है परन्तु हिन जीवों के संहार का समर्थक है।
- (८) वेद धर्म की पुनर्स्थापना को विषय मूल्य देता हुआ सुखी जीवन स्वीकृत करने का उपदेश देता है।
- (९) वैदिक नीतिशास्त्र काव्यशास्त्र की दृष्टि से बाह्य-सर्वज्ञ में सरस न हो परन्तु उसके कुछ अंश तो अत्यन्त ही काव्यर के परिभाषी हैं।

(ग) परबर्तों धार्मिक साहित्य में नीतिशास्त्र

देशों की संहिताओं के परबर्तों आश्रम-धर्मों धार्मिकों तथा उदरियों की रचना हुई। कहते हैं कि वर्षों की ११३० संहिताओं के समाव कभी आश्रम धार्मिक

१ आश्विन, १०११।२

२ यजुर्वेद, ४०।१।३ वरत पत्र तथा महीपत्र के भाष्य देखिए।

धादि भी इतनी-इतनी ही संख्या में विद्यमान थे परन्तु प्राय १८ ब्राह्मण ग्रंथ ७१ धारम्यक वीर २२० उपनिषदें ही प्राप्त हैं। वेद काल के काल में समा गई हैं। ब्रह्म (यज्ञ) के प्रतिपादक होने धर्मवा यज्ञों के ब्राह्मण-संघासित होने के कारण इन ग्रन्थों को ब्राह्मण ग्रंथ नाम दिया गया है। ब्राह्मण ग्रंथों में बर्ष पीणमास पुत्रोष्टि राजसूय सोमयाग धादि धर्मक यज्ञों के अनुष्ठानार्थ सविस्तर निर्देश है। इनमें मन्त्रों की धर्म-मीमांसा ऋषियों की व्युत्पत्ति, प्राचीन ऋषियों तथा राजाओं की कथाएँ भी हैं। नीति की बातें तो कहीं-कहीं या जाती हैं परन्तु उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रायः भीरस गद्य में होने के कारण नीति का काम्य धरमस्प मात्रा में ही उपलब्ध होता है। उदाहरणार्थ, इन्द्र का रोहितारव को बधोप-विषयक उपदेश इष्टम् है—

घास्ते मग घासीनस्योष्मस्तिष्ठति तिष्ठतः ।

जेठे निपद्यमानस्य धरति धरतो मयः, धरैवेति ।^१

बैठे हुए व्यक्ति का धार्य बैठ, बढ़े होने वाले का बढ़ा सुष्ठ का सोया तथा बसने वाले का बसता है। मय तु भी बल ।

कलिं धयामी कथति, संविहावस्तु हापरः ।

उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति, कृतं सम्पद्यते धरतु, धरैवेति ।^२

सोया हुआ व्यक्ति कलियुग होता है मित्रा का त्याग करेता हुआ हापर, बढ़ा होता हुआ वेता तथा बसता हुआ कृतयुग मय तु भी बल ।

धारम्यक धरम्यवासी बानधर्म्य लोगों के काम के ग्रंथ हैं। इहस्व लोगों के यज्ञों का विवरण ब्राह्मण ग्रंथों में है तो बानधर्म्यों के यज्ञ महाव्रत होन धादि का विवरण धारम्यक ग्रन्थों में। ये मुख्यतः यज्ञों के रहस्यों का प्रतिपादन करते हैं। यत्पुत्र इन्हें उहस्य ग्रंथ भी कहा गया है।^३ धारम्यकों में विभिन्न वर्णों तथा धाधर्मों के कर्तव्यों का उल्लेख तो है परन्तु वह धारम्यकों के ब्राह्मणकत् ही प्राय भीरस गद्य होने के कारण नीति-काम्य में परिचयित नहीं हो सकता ।

उपनिषद् (उप + नि + षद्) धर्म्य की बहुवचन स ही प्रतीत हो जाता है कि ये परब्रह्म के समीप बैठाने वाले ज्ञान से पूर्ण ग्रन्थ हैं। ब्रह्म का स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति का उपाय ही उपनिषदों के प्रधान प्रतिपद्य विषय हैं। धारम्यक २२० के समय सम उपनिषदें प्राप्य है और उनका अधिकार भीरस गद्य में है। यद्यपि उनमें तत्प त्याग उप सुष्ठ्या धाम हय दया प्रतिबिम्बेना धादि नैतिक विषय भी कहीं-कहीं दिखाई दे जाते हैं तथापि प्राय भीरस गद्य या पद्य में होने के कारण वे काम्य में नहीं गिने जा सकते हैं। हाँ कहीं-कहीं कुछ ग्रंथों को जैसे-जैसे नीतिकाम्य में धर्म-प्रवर्धित कर सकते हैं। जैसे मानवीय व्यक्तित्व के विभिन्न धर्मों के सापेक्ष सम्बन्ध के विषय में उपनिषद् में यों कहा गया है—

१, २ ऐतरेय ब्राह्मण (प्रालम्बाधम पुता ११११ ई०) अध्याय ११, अण्ड १ ।

३ रामयोजिन्द त्रिवेदी: वैदिक साहित्य, ११५० ई०, पृष्ठ १२० ।

धरमार्थं रचिनं विद्धि धारीरं रवयेव तु ।
 बुद्धिं तु धारयि विद्धि मनः प्रप्रहृयेव च ॥
 इन्द्रियाणि ह्यानामृ बिययास्तेषु गोचरात् ॥^१

भारमा को रपी समम्भो धीर धरीर को रप बुद्धि को धारयि जातो धीर मन को समाम इन्द्रियां बोद्धे हैं धीर बियय उनके मार्य ।
 मन में समग्र वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में यह कह सकते हैं कि मुख्यरूप से पानिक याज्ञिक धीर धार्म्यात्मिक साहित्य होने के कारण एक तो इसम विद्युत् नीति को माना ही योड़ी है और दूसरे नीतिकाम्य की तो उससे भी योड़ी । परन्तु वैसी धीर जितनी भी है, उसने हमारे परबर्ती साहित्य को कुछ-न-कुछ धरम्य प्रभावित किया है ।

(२) संस्कृत का नीतिकाम्य

संस्कृत के जिन धर्मों में नीति-काम्य उपसब्ध होता है वे दो प्रकार के हैं । एक वे जिनका मुख्य बियय तो कोई धर्म्य है किन्तु जिनमें नीति गोप रूप से समाविष्ट है । दूसरे वे जिनकी रचना का उद्देश्य ही नीति का उपदेश है । विवेचन-सौकर्य के लिए हम इन्हें 'निहित-काम्य' तथा 'नीति-काम्य' नामों से धर्माहित करते हैं । निहित-काम्य तीन वर्गों में विभाज्य है—१ प्रबन्ध काम्य २ मुक्तक काम्य ३ कृत्यकाम्य (स) पुराण (ग) महाकाव्य (घ) ललित काम्य (ङ) ऐतिहासिक काम्य (च) बन्धु प्रबन्ध काम्यों के निर्माहित धर्मात्तर भेद हो सकते हैं—(क) रामायण धीर महाभारत काम्य । मुक्तक काम्य भी तीन वर्गों में विभाज्य है—

- (क) शृ पार-मुक्तक
- (ख) वैद्यक्य-मुक्तक
- (ग) स्तोत्र-मुक्तक ।

नीतिकाम्य भी तीन प्रकार का है—

- (क) प्रायश नीतिकाम्य
- (ख) धर्म्यादेशात्मक नीतिकाम्य
- (ग) धुमापित-संग्रहों का नीतिकाम्य ।

(अ) निहित काम्यों में नीति

१ प्रबन्ध काम्य

क रामायण धीर महाभारत

रामायण—रामायण हमारा धार्मिक काम्य है । इसका मुख्य बियय राम का धरिन-विभ्रल तथा उनकी रावण पर विजय है । नायक-प्रतिनायक के राजा होने के कारण

१ कठोपनिषद्, १।१।१४

इस काम्य में राजनीति का निरूपण तो स्वामाबिक ही था, सामान्य नीति भी प्रथम बस समाविष्ट हो गई है। निदर्शनार्थ कुछ पद्य भी प्रस्तुत किये जाते हैं—

सत्यसम्पन्न तथा पुनर्जातस्य के कारण अथ दण्डन की गति सांप-सर्पद्वय की-सी हो गई तब कैनेयी ने अमीष्ट-सिद्धि के लिए दण्डन को सत्य-नीति का महत्त्व में समझया—

सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मं प्रतिष्ठितः ।

सत्यमेवाश्रया विद्या, सत्येनावाप्स्यते परम् ॥^१

सत्य ही एकाकार ब्रह्म है, सत्य पर ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही शास्त्रत वेद हैं सत्य से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है। रामायण में पिता को साक्षात् देवता तथा उसके प्रादेश-वासन को परम कर्तव्य माना गया है। पिता का मूर्च्छित देखकर राम कैकेयी से कहते हैं— मनुष्य का जिस व्यक्ति के कारण पृथ्वी पर प्रादुर्भाव होता है, उस प्रत्यक्ष देवता का बचर्वाचित्त बहू बर्षों म करे।^२ कूर-कर्म कैकेयी वर भरत और अशुभ बानों को असीम फलदायक रहा था तो भी अशुभ भरत ने कुछ अशुभ को इस नीति द्वारा शान्त किया— किसी भी प्राणी को स्त्री-हत्या नहीं करनी चाहिए, इस लिए इसे क्षमा कर बीभिसे।^३ सीतापहरण के कारण शोक-मग्न तथा हतोत्साह राम को सम्मग्न इन सबों द्वारा प्रोत्साहित करते हैं—“हे धर्म उत्साह में बहुत बस होता है। उत्साह स बड़ा बस कोई भी नहीं होता। लोक-लोकान्तरों में उत्साही व्यक्ति के लिए कोई भी पदार्थ दुष्प्राप्य नहीं होता।^४ मोक्षपचार के कारण पति द्वारा निर्वासित दुःखिणी भी सीता सम्मग्न के समक्ष पति का महत्त्व इन सबों में प्रतिपादित करती है—

पतिम् देवता भाष्यैः, पतिवन्धु पतिर्गुणः ।

प्राणरति प्रियं तस्माद् भर्तुं कार्यं विवेचत ॥^५

स्त्री के लिये तो पति ही देवता पति ही बन्धु और पति ही पुत्र है। इस लिए पत्नी को पति की अमीष्ट सिद्धि के लिए प्राणोत्सर्ग करने में भी संकोच न करना चाहिए।

इनके प्रतिरिक्त यद्यत्क नै प्राय भी हृष्टिपोषण होते हैं जो प्राय पर्यन्त हमारे समान में प्रचलित हैं। जैसे—राजतिलक के स्नान पर मनबाण बितने पर कुछ सम्मग्न श्रीराम से कहते हैं—

१ वासुदेव रामायण निर्लंघनायर प्रेस बम्बई, २१/१/७१

२ वासुदेव रामायण निर्लंघनायर प्रेस बम्बई, २१/१/७१

३ वही २१/१/७१

४ वही २१/१/७१

५ वही ७१/१/७१, १५

भरतस्याय पश्यो वा, यो वास्यहितमिच्छति ।
 सर्वास्तारिष्व बलिष्यामि मुकुंठि परिमुच्यते ॥^१
 जो-जो भी भरत के पसपाती और हितैषी होवे, उन सबको मैं मार डालूँगा ।
 जब मैं जो कामस स्वभाव का होता है, वह तिरस्कार-पात्र बनता है ।
 बैसा-सैसा भी पति पुत्र्य है इस नीति की चिन्ता मनसूया सीता को इन शब्दों
 में होती है—

दुःशील कामधुलो वा, धर्मैर्वा परिवर्जित ।
 स्त्रीछानार्पस्वभावानत, परमं वैशवं पतिः ॥^२
 दुःशील, व्यभिचारी तथा बरिष्ठ भी पति धर्म नारियों के लिए परम देवता
 होता है ।
 कन्या के पिता को समान में भुङ्गना ही पढ़ता है, इस बात को सीता धनुषूया
 के सम्मुख स्वीकार करती है—

सहभाष्यावहृष्टाब्ज, लोके कन्यापिता जगत् ।
 प्रबर्णणमवाप्नोति अकेलापि समो भुवि ॥^३
 ससार में कन्या के इन्तुस्य पिता को भी अपने सुस्य और अपने से छोटे व्यक्ति
 के संमुख भी बरना पड़ता है ।

जपर्युक्त नीत्यात्मक धवतरण तो वास्मीकि-रामायण के विभिन्न काण्डों से
 प्रस्तुत किन्ने मये हैं परन्तु कहीं-कहीं एक स्थल पर नीति के बीक्षियों लोके विद्यमान हैं ।
 जैसे रामनिर्वासन में अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिए भरत ने कौपस्या के
 सम्मुख जो शौक्यें उठाईं उनसे तत्कालीन नीति का सुन्दर परिचय मिलता है । सुर्म-
 ने कहा—“त्रिवकी धनुषति से राम बन को मये हों वह पापियों का प्रेय्य बने । सुर्म-
 मिमुक्त मूत्रविचर्गन करे सोई हृदं वी को पांश से ठोकर मारे, प्रजा का पुत्रवत् पालन
 करने वाले मृप के प्रति बिद्रोह करे गुरुओं की निरा करे गीनों को पांश से छुए, मिप
 से द्रोह करे परिवार तथा दासों से मुक्त पर में अकेला ही बढ़िया मोहन करे राजा
 स्त्री बात या बृद्ध को हत्या करे लोकर को लोकरी से हटा दे, मद्यप व्यभिचारी
 और धृतराज बने काम और श्रेय का चिकार बने प्रात और सायं सग्न्याकाल में
 सोता रहे ब्राह्मण के मायी पूजा-संस्कार में किन्न जाने तथा छोटे बड़ड़े वाली भी का
 रूप सोहे ॥”

महाभारत—रामायण में नीतिकाम्य प्रथमबच कहीं-कहीं ही उपलब्ध होता
 है परन्तु महाभारत को तो नीतिकाम्य का संसार बहना ही उपलब्ध है । छिट-मुट रूप

१	वास्मीकि रामायण	निरणयसागर प्रेस बम्बई	२।२।११
२	वही		२।१।१७।२५
३	वही		२।१।१८।३३
४	वही		२।७२।२२, २५ ३० ३१ ३४ ३७ ४१ ४५

में तो नीतिकार्य महाभारत के प्रत्येक पर्व में प्राप्त होता है परन्तु अद्योग, सावि धीर अनुशासन पर्व तो नीति के कोष-से ही हैं। इनके सम्मिलन से अनुमान होता है कि ये महाभारत की कथा में सहज साव से नहीं आए, नीति का उपदेश देने के लिए योजना-पूर्वक रचे गये हैं। उदाहरणार्थ अद्योग-पर्व के विदुर-वाक्य नामक संदर्भ (धर्म्याय ३३-४०) पर हृद्-पाठ कीजिये। सामान्यतः "विदुरनीति" नाम से प्रख्यात इस संदर्भ को नीति की अष्टाध्यायी कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा। यद्यपि इसका उपदेश पूर्वो तथा भतीजों के पारस्परिक वैमनस्य से विद्वान् धृतराष्ट्र को साभि प्रवचन करने के लिए किया गया था तो भी इसके अन्वेषण से निश्चय हो जाता है कि इसमें मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित प्रायः प्रत्येक विषय पर प्रकाश डाला गया है। निम्नोद्धृत संदर्भों से महाभारत के नीति-कार्य की शान्ति भी वा सकती है—

एवं ह्य्यागता ह्य्याविवमुक्तो अनुष्मता ।

बुद्धिबुद्धिमतोर्मुखा ह्य्यात्राप्युत्तरावकम् ॥^१

किन्हीं अनुभवं द्वारा फेंका हुआ वाक्य सम्भवतः एक को भी मारे या न म, है परन्तु बुद्धिमान् द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजा के साथ सम्पूर्ण राज्य को गूँथ कर सकती है।

धुमायन्ते ध्यपेतानि ज्वसन्ति लहितादि च ।

धृतराष्ट्रोस्त्रुकाणीव ज्ञातयो भरतर्वच ॥^२

है मरतयेष्ठ धृतराष्ट्र जलती हुई लकड़ियाँ पुबन् पुबन् होने पर धुमाँ फेंकती हैं धीर एक साथ होने पर प्रवर्धित हो सठती हैं। इसी प्रकार जातिबन्धु की विघटित होने पर बुद्ध धीर संवटित होने पर बुद्ध प्राप्त करते हैं।

ब्राह्मणेभ्य च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।

बुस्तादिषु चसं पवर्षं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥^३

हे धृतराष्ट्र जो लोग ब्राह्मणों स्त्रियों सम्बन्धियों धीर पौधों पर शूणा प्रकट करते हैं, वे ऐसे नीचे गिरते हैं जैसे बटस से पके हुए फल।

न च क्षत्रवत्सेयो दुर्बलोपि बलीवता ।

धन्वोपि हि बहुवर्णिविषयमस्यं हिनस्ति च ॥^४

बलवान् को निर्बल क्षत्रु की भी धक्का नहीं करनी चाहिए क्योंकि धनिक-सी भी धमिन बसा डालती है धीर बरत-सा भी विष प्राण से लेता है।

१ महाभारतम् (विजयान्ता प्रेस पुना, १९३१ ई०) अद्योग पर्व धर्म्याय ३३, पद्य ४३

२ अही अद्योग पर्व ३७।६०

३ अही, ३७।६१।

४ सं०-सी० बी० धीर, संक्षिप्त महाभारतम्। (बम्बई १९१२ ई०) कृष्ण ४३७, पद्य ३२९।

दुर्बलस्य धं पञ्चलुमु निराशीवियस्य च ।

अवियहृतमं मये मा स्म दुर्ममसासव ॥^१

दुर्बल मनुष्य मुनि तथा सर्प के नेत्रों का तेज सर्वाधिक असह्य होता है ।
इसलिए कभी दुर्बल को मत छठाओ ।

न र्भवास्ति तसं प्योमिन् अघोते न तुतामवः ।

तस्मात्प्रत्यक्षदृष्टे अपि पुनतो ह्यर्धं परीक्षितुम् ॥^२

रिसाई देने पर भी न यथम में तस होता है न अगुनू में पमि । इसलिये प्रत्यक्ष
रिसाई देने वाली वस्तु की भी परीक्षा सम्यक् करनी चाहिए ।

समीक्षा

रामायण और महाभारत के नीति-अर्थों पर बिह्वमदृष्टि बासने से बाध होता है कि रामायण में नीति-काम्य मूल है महाभारत में अधिक । सत्य प्रतिष्ठापन, पितृ भक्ति आदि गुणों पर जितना बल रामायण में सक्ति होता है उतना महाभारत में नहीं । रामायण में दृष्टि आदर्श पर केन्द्रित प्रतीत होती है, महाभारत में व्यावहारिकता पर ।

भाषा-शैली

दोनों काव्यों की भाषा तथा छन्दों में विशेष अन्तर नहीं है परन्तु शैली भेद पर दृष्टि घनापाठ या पढ़ती है । रामायण में नीतिकाम्य छुट-छुट रूप में सन्निविष्ट है । महाभारत में वंशित मुद्ग मित्र अथु छति कुम बंभ पुत्रपार्थ आदि अर्थों में बिना मित है । महाभारत में पद्य-वर्णियों की कथाओं द्वारा नैतिक उपदेश देने की प्रवृत्ति सक्ति होती है । परन्तु रामायण में उसका अभाव है । कहना न होया कि परवर्ती नीति-साहित्य की ऐसी कथाओं के सिधे महाभारत का प्रत्यक्ष या परोक्ष आभार मानना होया । महाभारत में गणित के एक से लेकर दस तक अंकों का क्रमध-आधार लेकर भी नीतिकाम्य रचा गया है । यह आधार दो प्रकार से लिया गया है —

क—एक ही अंक पर अनेक पद्यों की रचना द्वारा जैसे—देवता पितर,
मनुष्य, संन्यासी और अतिथि—इन पाँचों की पूजा से ही मनुष्य लोक में निर्मल
यघ प्राप्त करता है ।^३

एहँ-वहाँ भी दू-बाएसा बहँ-वहाँ मित्र अथु, उवासीन, आभयवाता तथा

१ वही पृष्ठ ४४४ । १२०

२ वही पृष्ठ ४४० । ४०६

३ विदुर नीति, नीताम्रेष, पौरखपुर सं० २०११ पृष्ठ ११।००

में तो नीतिकाम्य महाभारत के प्रत्येक पर्व में प्राप्त होता है परन्तु उद्योग शान्ति धीर धनुसासन पर्व तो नीति के कोस-से ही हैं। इनके अध्ययन से अनुमान होता है कि ये महाभारत की कथा में उद्भव भाव से नहीं आय, नीति का उपदेश देने के लिए जोचना पूर्वक रचे गये हैं। तथाहरणार्थ उद्योग-पर्व के विदुर-वाक्य नामक संवर्ग (अध्याय ३३-४०) पर इक्-साठ कीविये। सामान्यतः "विदुरनीति" नाम से प्रख्यात इस संवर्ग को नीति की अष्टाध्यायी कहा जाय तो अनुपयुक्त न होमा। यद्यपि इसका उपदेश पुर्वो तथा भतीजों के पारस्परिक वैमनस्य से विद्वान् बृतराष्ट्र को शान्ति प्रदान करने के लिए किया गया था तो भी इसके अन्वयसे ही निश्चय हो जाता है कि इसमें मानवीय व्यवहार से सम्बन्धित प्रामा-प्रत्येक विषय पर प्रकाश डाला गया है। निम्नोक्त संसों से महाभारत के नीति-नाम्य की कामनी सी जा सकती है—

एकं ह्यस्यान्वया ह्यन्याविपर्युक्तो बहुष्यता ।

बुद्धिबुद्धिमतोस्तुभ्या ह्यन्याप्राप्यं सरावकम् ॥^१

किसी अनुधर द्वारा उँका हुआ वाप्य सम्भवतः एक को भी मारे या न मारे परन्तु बुद्धिमान् द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजा के साथ समुर्सं राष्ट्र को नष्ट कर सकती है।

युमस्याग्ने व्यवेतानि ज्वलन्ति संहितानि च ।

इतराष्ट्रोस्तुकापीव ज्ञातयो भरतर्वम ॥^२

हे भरतभेष्ट बृतराष्ट्र, जलती हुई लकड़ियाँ वृषभ् वृषभ् होने पर बुझी उँकती हैं धीर एक साथ होने पर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जातिबन्धु भी विचलित होने पर दुःख धीर संवदित होने पर सुख प्राप्य करते हैं।

बाह्यलोचु च ये भूरा स्त्रीषु शान्तिषु गीषु च ।

भ्रान्तादिब कर्त्तं वक्त्वं भूतराष्ट्रु वतन्ति ते ॥^३

हे बृतराष्ट्र को सोय बाह्यलोचों स्थियों सम्बन्धियों धीर शीघ्रों पर घूरता प्रकट करते हैं, वे ऐसे गीषे विरते हैं जैसे बंठस से पके हुए फल।

न च धामुरवज्ज्यो बुर्वेसीपि वसीपसा ।

अन्योपि हि बहुर्यन्निविवमस्वं हिनस्ति च ॥^४

बसवान् को निर्बल समु ही भी मज्जा नहीं करनी चाहिए क्योंकि तनिक-सी भी शक्ति जसा जानती है धीर जरा-सा भी बिय प्राग रो भेठा है।

१ महाभारतम् (विद्यमाना प्रेस पुना, १९३१ ई०) उद्योग पर्व अध्याय ३३ पद ४३

२ वही उद्योग पर्व, ३७।६०

३ वही, ३७।६१।

४ सं०-बी० बी० दीप संक्षिप्त महाभारतम्। (बम्बई १९१२ ई०) पृष्ठ ४३७, पद ९३९।

दुबसस्य च यत्कसुमुनेराशीविषस्य च ।

अभियुद्धतमं मन्ये मा स्म दुर्गतमासवः ॥^१

दुबस मनुष्य मुनि तथा सर्प के नेत्रों का तेज सर्वाधिक महत्त्व होता है । इसलिये कभी दुबस को मत सताओ ।

न र्बास्ति तत्तं ध्योन्नि जघोते न हुताशनः ।

तस्मात्प्रत्यक्षदृष्टे अपि पुत्रजो ह्यर्षं परोक्षितुम् ॥^२

दिखाई देने पर भी न यवन में उस होता है न जुगमू में धर्मि । इसलिये प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वस्तु की भी परोक्षा सम्मर्ह करनी चाहिए ।

समीक्षा

रामायण और महाभारत के नीति-अर्थों पर विहंगमदृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि रामायण में नीति-शास्त्र स्पष्ट है, महाभारत में अशुद्ध । साथ प्रतिष्ठापन विद्व-भक्ति आदि पुरुषों पर जितना बल रामायण में अक्षित होता है उतना महाभारत में नहीं । रामायण में दृष्टि आर्य पर केन्द्रित प्रतीत होती है, महाभारत में व्यावहारिकता पर ।

भाषा-शैली

दोनों काव्यों की भाषा तथा शब्दों में विशेष फरक नहीं है परन्तु शैली भेद पर दृष्टि घनावास आ पड़ती है । रामायण में नीतिकाम्य सूत्र-मुद्र रूप में अन्वित है । महाभारत में पंडित मूढ़, मित्र शत्रु ज्ञाति कुल बंध पुत्रपार्य आदि अर्थों में बिभाजित है । महाभारत में अनु-व्यसियों की कथाओं द्वारा नैतिक उपदेश देने की प्रवृत्ति अक्षित होती है । परन्तु रामायण में उसका अभाव है । कहना न होना कि परबर्ती नीति-साहित्य की ऐसी कथाओं के लिये महाभारत का प्रत्यक्ष या परोक्ष आभार मानना होगा । महाभारत में मण्डल के एक से लेकर दस तक अर्थों का क्रमशः आभार लेकर भी नीतिकाम्य रचा गया है । यह आभार दो प्रकार से सिमा गया है —

क—एक ही अर्थ पर अनेक अर्थों की रचना द्वारा जैसे—वेदता पितर, मनुष्य सम्पासी और अतिवि—इन अर्थों की पूजा से ही मनुष्य लोक में निर्मल यश प्राप्त करता है ।^३

वहाँ-वहाँ भी तू आया वहाँ-वहाँ मित्र शत्रु, उपासीन आययशता तथा

१ बहो पृष्ठ ४४४ । ३२०

२ बहो पृष्ठ ४४५ । ४०६

३ विदुर नीति, सीताप्रेस, गोरखपुर सं० २०११ पृष्ठ १११०

धामयापेयी ये पाँच ठेरा धनुषमन करेये ।^१

स—एक पद्य में धनेक प्रकों के उत्सोच झाप जैते—
एषया ई किनिश्चित्य बीहवतुमिबसे कुष ।
पंच भिरवा निशिरवा पठ सप्ट हिरवा सुखी मष ॥^२

वाहनीक रामायण में भरत के सोपगर्भो बाने उपयुक्त प्रसंग में श्लोक के अन्तिम अरण की धानूति धनेक श्लोकों म देत पड़ती है । प्रतिपाद्य की अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए वहाँ 'मस्यायो अनुमते यत्' की सभी पत्तों में धानूति की गई है । यह प्रकृति महाभारत में धनेकज देवने में पाती है । यहाँ 'व ई पथित उभ्यते नरा पथितवुदय' 'तमाहुर्मुह्येतसम्' आदि अन्तिम अरणों को धनेक श्लोकों में बुहयया गया है ।^३

धर्मकार

रामायण की धपेसा महाभारत में धर्मकारों का प्रयोग कही अधिक है । इसके वहाँ नीति-पत्तों की नीरतता में ग्यूनता आई है वहाँ प्रतिपाद्य की प्रभावकता में वृद्धि हुई है । धर्मकार तीनों प्रकार के उपलब्ध होते हैं । अम्बालकारों में धनुष्रास तथा साटानुप्रास का धीर धर्मकारों में जपमा रूपक तथा धानूति-धीपक की बहुलता है । अ्यतिरेक धर्मोम्य सुम्ययोमिषा धावि धर्मकार भी यन-उत्त प्रयुक्त हुए हैं । प्रायः उपमा का प्रयोग श्लोक के अन्तिम अरण वा अन्तिम दो अरणों में हुपा है ।^४

काम्यत्व की वृष्टि से रामायण का नीतिकाम्य महाभारत से अलक्ष्य प्रतीत होता है । क्योंकि वहाँ नीति प्रत्यक्षतया उपदिष्ट नहीं है, अ्यम्य है । नीति की यह व्यंग्यता ही पाठक को निरोग धाम में मम्म कर धानयित कर देती है । कही भरत कुछ इस प्रकार कह देते हैं कि यदि राम के निर्वाचन में मेरा ह्रास हो तो धपयान् मुझे नरक में बँके तो उक्ति नीरस हो जाती । परन्तु जनका यह कहना कि निरुकी धनुषमि से राम नन को गए हों यह परिवार में रहता हुमा भी एकाकी मधुर भोजन खाए तथा बालकस्ता पी को बोहे हूबय को धनेक रम्य भावों में मग्न कर देता है । ऐसी उक्तियों से भरत के प्रति तो अज्ञा का धानयित होना स्वाभाविक ही है, अप्रत्यक्ष रीति से नीति के ये अण्डेस भी हूपयनम हो जाते हैं कि इन भी धर्मजसेवी बनें बटि कर सार्प धीर बालकस्ता पी को न बोहे । महाभारत के धर्मकार नीत्यात्मक प्रथमों

१ वही पृष्ठ १ ॥८१

२ वही पृष्ठ १२१४६

३ वही, बहुला धर्म्याय श्लोक २०-४४

४ विदुरनीति पृष्ठ ४०१३३ ४३ । ४४ ४० । ३२ १४५ । २२,४१ । ३६ पर जस्त धर्मकारों के अवाह्यरुण हैतिये ।

में नीति समिहित है, ध्वंग्य नहीं। इसी कारण वह मस्तिष्क को तो प्रभावित करती है, हृदय को मात्राविभोर नहीं।

जैसे—“मनुष्य धापति से बचाव के लिए बल की रक्षा करे और बल के द्वारा भी पत्नी की रक्षा करे, तथा स्त्री और बल दोनों के द्वारा सब अपनी रक्षा करे।”^१ याना कि ध्यास भी से इस उक्ति में सामान्य नीति के तीन उपयोगी उपदेश दिए हैं और उसे धावृत्तिबीपक की सहायता से सूक्ति बना दिया है तो भी यह स्वीकार करना ही होगा कि यह रस-भाव सूक्ष्म होने के कारण सत्-काम्य नहीं मानी जा सकती। इसलिए यह मानते हुए भी कि महाभारत में कहीं-कहीं सुन्दर-सरस नीति-काम्य विद्यमान है इस बात का प्रत्याख्यान करना कठिन है कि उसके अधिकतर नीति प्रसंग अक्षरकाम्य के अन्तर्गत ही स्थान पा सकते हैं।

(ख) पुराण

यद्यपि प्रायः अठारह पुराण और इतने ही उपपुराण माने जाते हैं तथापि पुराण नाम से प्रचलित पुस्तकों की संख्या तो से मी ऊपर ही है। इनमें सृष्टि रचना, लोक-परमोक इतिहास, देव-कथा धर्म, नीति धार्मिक विषयों की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। इनमें नीति के अनेक विषय उद्दिष्ट होते हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं—स्त्री पण्डित, भूलें संजन कुचन, देव-कर्म सुख-दुःख विद्या विद्यार्थी काल महत्त्व सत्य भावसुखि, गृहसुख, उद्यम विन्ता मित्र-शत्रु धारि।

चतुर्वर्ण की सिद्धि शरीर के रहते हुए सम्भव है अतः कुटुम्बानु को प्रेरणा की गई है कि वह महान् प्रयत्न से शरीर की रक्षा करे।^२ धर्मज्ञान विना धर्मयज्ञ की निष्फलता का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

स्वर्गाय बद्धकस्मी यः पाठमात्रेण ब्राह्मणः ।

स बालो मातुरं कस्मिन्, पृथीतुं सोममिच्छति ॥^३

जो विप्र श्रमों के पाठमात्र से स्वर्ग जाने को कटिबद्ध होता है वह उस बालक के तुल्य है जो माता की गोद में बैठकर चन्द्र को पकड़ना चाहता है।^४ शूक्ति ब्राह्मण क्रिया-कलाप मन की शक्तियों पर धारण होते हैं, अतः भावसुखि पर बहुत बल दिया गया है—काम्य का धारिण्य एक ध्यस है कियतः काल है और कुहिता का दूसरे भाव से।^५ अन्त-साहित्य में निम्बक की प्रसंसा का जो विचार दिखाई देता

१ वही, पृष्ठ १७।१५

२ पी० डम्पू० डम्पू०—पुराणिक बद्धक ध्यास विच्छेदन, बम्बई (१९४७ ई०)
पृष्ठ १५।५१७

३ वही, पृष्ठ ४५।७०३

४ वही, ,, ११।७४६

है वह पद्मपुराण में पहले ही व्यक्त किया जा चुका था—

साक्षोद्योक्तसमो लोके सुहृदस्यो न विद्यते ।
यस्तु दुष्कृतभावाय दुष्टतं स्वं प्रयच्छति ॥^१

संसार में निम्नक के समान कोई मित्र नहीं क्योंकि वह पाप लेकर अपना पुण्य दे देता है । मित्रों को नहीं पर तो बॉक से भी ज्ञाप्य कहा गया है और नहीं पर मित्र से भी पवित्र—

जानीका केवल रक्तमादवाता तपस्विनी ।
प्रमदा सर्वमावले विलं विलं जलं सुहृद् ॥^२
अभाद्रवर्षीर्मुक्तं मेघ्यं वाचो मेघ्यस्तु दुष्टता ।
पद्मयोर्ब्रह्मराणा मेघ्या स्त्रियो मेघ्यास्तुवर्षता ॥^३

बेचारी जानीका तो केवल रक्त बूझती है परन्तु गारी विल विल बल तथा सुख सब कुछ छीन लेती है । बकरी तथा भोड़े का मुख पवित्र होता है बीघों का पृष्ठ-भाग पवित्र होता है, बाह्यालों के अरण्य पवित्र होते हैं परन्तु स्त्रियों का तो सर्वांग ही पवित्र होता है ।

पुण्यलों में जन की निम्ना और स्तुति दोनों ही बाई जाती है परन्तु निम्ना की अपेक्षा प्रसंखा की प्रचुरता है । पलायन के दुर्गों का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

प्रचारित्यं जति मत्स्यीर्नद्वयते इवापदीर्नृनि ।
अम्नासे बधिनिरथैव तथा सर्वत्र विलसन् ॥^४

जैसे मांस को जल में मछलियाँ, धूमि पर द्विज पशु तथा आकाश में पक्षी जा जाते हैं, वैसे ही जनवाद को सब भोग सर्वत्र जाने को शीकते हैं । इसके विपरीत अरिहता-अम्ब अथमानना का उल्लेख यों किया है—जैसे पक्षी घुम्क बृस को छोड़ जाते हैं वैसे ही अग्नु-आम्ब अथमान तथा कुलीन अगहीन व्यक्ति को ।^५

पापक विप्लु के समान अयुवा को ही प्राप्त नहीं करता^६ उन सभी लक्ष्यों से मुक्त हो जाता है जो अरसासल व्यक्ति में दिखाई देते हैं -

-
- १ वही " ३३।१०२५
२ वही, २।१
३ वही, वृष्ट २।२५
४ वही " २७।३२९
५ वही, " २६।३८३
६ वही " ३३।४४३

मुक्तामंग स्वरो बीनो यात्रस्वेवो महद्भयम् ।
मरुतो धानि चिन्हानि तानि चिन्हानि याचके ॥^१

मुक्त की बळता, स्वर में हीनता धरीर पर प्रस्वेद तथा मारी भय—ये सब बातें मरणासन्न मानव तथा याचक में समान होती हैं ।

घनेकत्र ठो सत्याचरण की प्रेरणा की गई है परन्तु वो स्त्री तथा द्विर्बों के रक्षार्थ विवाह-काल में, मित्रों के प्रसंग में प्राण-संकट में तथा सबस्व लुटते समय मूठ बोलने को भी पाप नहीं माना गया है ।^२

समीक्षा

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यास-पुत्राण साहित्य में नीति के प्रायः समग्र विषय यत्र-तत्र विकीर्ण हैं । नीति के श्लोक प्रायः किसी एक कथा अथवा अर्थार्थी घाति के प्रसंग में लिखाई देते हैं । अनेक श्लोक तो बहो हैं जो मनुस्मृति, भगवद्गीता हितोपदेश पञ्चतन्त्र तथा दशकुत्रवी में भी उपलब्ध होते हैं । गरुड़ पुराण के पूब सब आचारकोड (१०८ ११४ तथा ११५ अध्याय) में बृहस्पति-नीतिसार तथा धीनकीय-नीतिसार भी समाविष्ट हैं । जहाँ उनमें नृपनीति का निर्वेस है वहाँ लोकनीति की भी पर्याप्त सुन्दर सामग्री है ।

पुराणों में नीति-काम्य की एक धम्य सीमा भी लिखाई देती है जिसे नैतिक उपमानों की सीमा कह सकते हैं । उसमें प्राकृतिक घटनाओं की उपमा नैतिक अनुभवों से दी गई है । अत्यन्त रूप से नीति का संकेत करने के कारण यह सीमा अधिक प्रभावशाली प्रतीत होती है । जैसे—

याचवारिचरास्तापमबिम्बवस्रवर्कम् ।

यथा वरिच-कूपल-मुमुक्षुविवितेन्द्रिय ॥^३

थोड़े बल में रहने वाले बीबों की अरतकामीन सूर्य की प्रकाश किरणों से बहुत दुःख होने तथा—जैसे प्रवितेन्द्रिय वरिच एवं कंबूज शूद्रन्धी को बहुत ताप सताते रहते हैं ।

पुराणों का नीति-काम्य विषयों की व्यापकता के विचार से तो प्रसहनीय है परन्तु इनका अधिकतर दृमाय पद्यमात्र ही है । तो भी कहीं-कहीं पर शब्दों तथा अर्थों में बहु अन्तकार प्राप्त हो जाता है जो उन्हें काम्य की परिधि में समाविष्ट कर देता है । जैसे—

१ बही, १११४८१

२ बही, १०१५६३

३ श्रीमद् भाष्यत पुराण, १०१२०१३७

है वह पद्मपुराण में पहले ही व्यक्त किया जा चुका था—

प्राग्भोषकस्तमो लोके धुतुवन्वी न विद्यते ।
वस्तु धुम्भृतमावाय मुह्यत स्वै प्रयच्छति ॥^१

उद्योग में निम्नक के समान कोई विद्य नहीं क्योंकि वह पाव लेकर घबरा
पुम्ब है देता है । विद्यों को कहीं पर तो जौंक से भी बचान्य कहा गया है धीर कहीं
पर विद्य से भी पवित्र—

अनीका केवसं रक्तमादवाता तपस्विनी ।
अमवा सर्वमावसे वितं वितं वचं मुह्यम् ॥^२
अवजसवीर्मुञ्चं मेध्मं पाथी मेध्मस्तु पृच्छत ।
पावयोवद्विद्या मेध्मा विवचो मेध्मास्तुवर्षत ॥^३

बेबापी अभीका तो केवल रक्त बूझती है परन्तु धारी वित वित वन तथा
मुञ्च सब कुछ धीन लेती है । बकपी तथा बोड़े का मुञ्च पवित्र होता है, बोर्मो का
पृच्छ-जान पवित्र होता है, बाह्यलों के बरख पवित्र होते हैं परन्तु विवचों का तो तर्बाप
ही पवित्र होता है ।

पुण्यलों में धन की निम्ना धीर स्तुति दोनों ही भाई जाती है परन्तु निम्ना
की अपेसा प्रशंसा की प्रचुरता है । बनाव्य के कुर्लों का इस प्रकार वर्णन किया
गया है—

पवामियं असे वस्त्यैर्वस्वते इवापर्वर्भुवि ।
पान्नामे वसिदिवर्षीव तथा लवेव वित्तवान् ॥^४

जैसे माण की जल में मच्छिका नृमि पर हिक पम्प तथा धाकाध में पत्ती
का बाते हैं, जैसे ही बमबाप को सब लोग सर्वत्र धानि को बीड़ते हैं । इसके विपरीत
वद्विद्या-अन्य घबरातना का अन्वेष यों किया है—जैसे पत्ती शुष्क वृक्ष को बीड़
बाते हैं जैसे ही बन्धु-आन्वय वतम तथा कुलीन बगहीन व्यक्ति को ।^५

पावक विप्यु के समान समृता को ही प्राप्त नहीं क्यता^६ धन सभी लक्ष्यों
से मुक्त हो जाता है जो बरखायन व्यक्ति में दिखाई देते हैं —

१ वही " २५।७२५

२ वही " २।५

३ वही, पृष्ठ २।२२

४ वही, " २५।३२२

५ वही, " २६।३८३

६ वही, " २३।४७२

मुक्तभ्रमण स्वरो बोधो पात्रस्वेवो महत्प्रयत्नः ।
मरसो याति चिन्तानि तानि चिन्तानि याचके ॥^१

मुक्त की बन्धना स्वर में शून्यता शरीर पर प्रस्वेद तथा घाती मय—ये सब बातें मरणासन्न मानव तथा याचक में समान होती हैं ।

धनेक्य तो सत्पाचरण की प्रेरणा की गई है परन्तु जो स्त्री तथा द्विर्बों के रसार्थ विवाह-कास में मित्रों के प्रसंग में प्राण-संकट में तथा सर्वस्व गुटते समय मूठ बोसने को भी पाप नहीं माना गया है ।^२

समीक्षा

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्याभ-पुराण साहित्य में नीति के प्रायः समस्त विषय यत्र-तत्र बिकीले हैं । नीति के इसी प्रायः किसी वस्तु कथा सम्प्राप्तकर्ता याचिक के प्रसंग में बिछाई देते हैं । धनेक्य इसी वही है जो मनुस्मृति, भयवद्वीता हिचोपदेश पंचतन्त्र तथा धातकनयी में भी उपलब्ध होते हैं । गण्ड पुराण के पूरु संड पाचारकांड (१००-११४ तथा ११२ अध्याय) में बृहस्पति-नीतिसार तथा धीमकीय-नीतिसार भी समाविष्ट हैं । जहाँ उनमें नृपनीति का निर्देश है वहाँ लोकनीति की भी पर्याप्त सुन्दर सामग्री है ।

पुराणों में नीति-काम्य की एक अन्य धर्मनी भी बिछाई देती है जिसे नैतिक उपमानों की धर्मनी कह सकते हैं । इसमें प्राकृतिक घटनाओं की उपमा शैतिक अनुभवों से ही गई है । धप्रत्यक्ष रूप से नीति का संकेत करने के कारण यह धर्मनी अधिक प्रभावशाली प्रतीत होती है । जैसे—

याचकारिचरास्तापमविन्दस्यरवकजम् ।

यथा बरिच कृपल कुतुम्बबिसितेन्द्रिय ॥^३

बोड़े बल में रहने वाले धीवों को धरतकामीन सूर्य की प्रखर किरणों से बहुत पुञ्ज होने तथा—जैसे धमिनेन्द्रिय बरिच एवं कंठुस कुतुम्बी की बहुत ताप सताते रहते हैं ।

पुराणों का नीति-काम्य विषयों की व्यापकता के विचार से तो प्रचलनीय है परन्तु उनका अधिकतर साम्य एकसाध हो है । जो भी कहीं-कहीं पर धर्मों तथा धर्मों में बहु भिन्नता प्राप्त हो जाता है जो उन्हें काम्य की परिधि में समाविष्ट कर देता है । जैसे—

१ वही, ,, १३।४०१

२ वही, ,, ६०।८६२

३ धीमद्वि भाष्यवत् पुराण, १०।२०।३७

घरत्-परोक्षार्थं वर्णं ब्रह्मण्यं ब्रह्मण्यम् ।

हृदयं सुरधाराम स्त्रीणां को वैव वेदितम् ॥^१

स्त्रियों का मुख-मंडल घरत् शत्रु के नमस् के समान प्रयुक्त होता है, उनकी बाखी कर्णों के लिए धनुष के पुस्त होती है; परन्तु हृदय घुरे की धार के समान कटीसा होता है। उनकी नेत्रियों को क्रीम खान सकता है ?

(ग) महाकाम्य

संस्कृत में परब्रह्मण्य का विचार श्री हर्ष यादि महाकवियों ने ऐसे भौतिक महाकाम्यों की रचना की है जिनका मुख्योद्देश्य वर्णप्रचार न होकर सुकाम्य-मुत्तम धातु का प्रचार है। उन कव्यों में नीतिकाम्य ब्रह्मी मात्रा धीरे प्रचलित रूप में उपलब्ध होता है। जैसे—

जब एक वृद्ध की देखकर सिद्धार्थ ने अपने घरकी छे उसके सम्बन्ध में प्रश्न किया तब उसने ब्राह्मण्य बंधों का इस प्रकार उत्पन्न किया—

कस्य हृन्नी व्यसन्नं बलस्य शोकस्य योनिर्विषमं रतीनाम् ।

नामः स्मृतीनां विपुरिश्चिद्यासनेना बरा नाम भवेत् मन्त्रः ॥^२ (परब्रह्मण्य)

इतका रस-रूप उस बुढ़ाये ने बिचाड़ दिया है जो कर्म का नाशक बल का प्रासादक शोक का कारण धाम्नों का उत्पन्नक, स्मृति का भ्रंशक धीरे इन्द्रियों का शरी प्रसिद्ध है।

जिन कवियों के पीछे सधार पावल बना छिरता है उनकी दुष्परिहायता बुद्ध इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

वीर्यह्वयन्ते हि मृगा बघाप क्यार्थमन्वी क्षतमा पतन्ति ।

मत्स्यी पिरत्यापसमामिवासीं तस्माद्वर्षे विषया क्लमन्ति ॥^३ (परब्रह्मण्य)

पीतों से शार्कपित होकर मूक मारे जाते हैं रूप पर मोहित हीकर बंधों धमि से बन्ध हो जाते हैं; मत्स के लोभ से भक्षणी कोहमय कठि को निगतकर मर जाती है; इस प्रकार कवियों से तो धनर्थ ही होता है।

स्त्रियों की बाखी धीरे मन में वैषम्य का बर्णन करने के पश्चात् धमलु बन्ध को उनके मन की दुर्गाहता का भी उपदेष्ट देता है—

प्रवृत्तं बन्धो अपि गृह्यते, विधारीण पबनोपि गृह्यते ।

क्रुपितो बुद्धयोपि गृह्यते, प्रवदतां तु भगो न निगृह्यते ॥^४

१ भागवत पुराण ६।१८।४१

२ बुद्धवर्णित १।३०

३ १।१३३

४ लीम्बरामाद ५।३६

बसाती हुई मग्नि पकड़ी जा सकती है। धीरे-धीरे वायु पकड़ी जा सकती है। शून्य सर्प भी पकड़ा जा सकता है परन्तु स्त्रियों का मन नहीं पकड़ा जा सकता।

पशोऋषिणा में रहने के उपरांत सीता को स्वीकार करने के कारण नगर में रामचन्द्र की निम्ना होने लगी। वे दुविधा में पड़ गये सीता को छोड़ें या मोक्षपथ की उपाय कर दें। अन्त में कालिदास के शब्दों में—

निर्विद्यत्य आत्मनिवृत्तिं वाच्यं, त्यागेन यत्प्राः परिमाद्युर्वैशद्यम् ।

अथ स्वदेहम् किमुतेन्निर्वापाम् यतोमनामि हि यतो गरीयः ॥^१

“यह निर्वचन करके कि इस अपवाद की निवृत्ति अग्य उपाय से प्रसम्भव है राम ने पत्नी-विरत्याग से ही उसे शान्त करना चाहा” क्योंकि यद्यपि लोग इन्द्रियार्थों का तो कहना ही क्या स्व-धरिरे से भी यश को मुख्यवानु मानते हैं।”

महापुरुषों की उदारता तथा धरम्यता का उल्लेख कालिदास ने हिमालय-वर्णन में इस प्रकार किया है—

विचारुपद्रवति यो पुहासु सीतं विचामीतमिवाग्धकारम् ।

कुदेवि नूनं धरणं प्रपन्ने ममत्वमुष्ण धिरसां सतीव ॥^२

हिमालय अपनी गुफाओं में सीत उक्त अन्वकार की मूर्त्य से रखा करता है जो मानो डरकर वहाँ भा खिना हो। सबमुच महापुरुष धरण में आए शीतों से भी बँसा ही स्नेह करते हैं बँसा सज्जनों से।

कपटी लोग कपटव्यवहार के ही प्रबिधायी होते हैं इस नीति को शीपरी मुनिठिठर क सम्मुख यों व्यक्त करती है—

अवन्ति ते मुङ्गपियः परामर्षं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः ।

प्रविश्य हि प्नन्ति शठास्तथाविचारत्तुर्तागाम्निप्रिता इवेवव ॥^३

जो मुङ्ग मानव कपटियों से कपट-व्यवहार नहीं करते वे परामर्ष को ही प्राप्त करते हैं। भूत लोग ऐसे सरल-हृदय लोगों पर अपना विश्वास उत्पन्न कर उन्हें बँसे ही मार डालते हैं बँसे तीव्र बाण कबचरहित लोगों को।

धरम् शत्रु की शोभा के वर्णन में कवि मानिनी के स्वमान का उल्लेख यों करता है—

प्रातःकालेनौ वायु से कम्पित आकार वाली कपसिनी अङ्कित मारिका को

उत्पन्नो कुपित होकर कुमुद्री के पराग से रञ्जित धरिरे नामे भौर को हटाती है, क्योंकि अमिमानी जाती अपने प्रियतम का पछई स्त्री से सम्पर्क सहन नहीं कर

१ रघुवंश, १४।३५

२ कुमारसंभव, १।१२।

३ किराताकुंभीय, १।३०

सकती ।^१

बलराम कृष्ण से कहते हैं कि बड़े लोभ खाया महत्स्वाकांक्षी होते हैं—

एतिशोबः बरेशुपि महिम्ना न महत्प्रभताम् ।

पूर्वैरचन्द्रोदयकांक्षी हृष्टान्तोऽत्र महार्थैव ॥^२ (माघ)

बड़े मनुष्य प्रभुत्व संपन्न पाकर भी जैसे ही सन्तुष्ट नहीं होते जैसे बिछाल खाकर बलपूर्व होता हुआ भी निबबृद्धि के लिए चन्द्रोदय की आकांक्षा करता है ।

अपराध समान होने पर भी बड़े निबल को ही अधिक मिलता है, इस नीति को बलराम यों स्पष्ट करते हैं—

तुष्येऽपराधे स्वमनुमनुमस्तं विरेत यत् ।

हिमांशुमासु घतते तन्मन्त्रिभ्यः स्तुतं कृतम् ॥^३ (माघ)

सूर्य धीर चन्द्रमा ने समान अपराध किया था परन्तु राहु सूर्य को तो बेर से हड़पता है धीर चन्द्र को छोड़ । स्पष्ट है कि यह कल चन्द्रमा की कोपसत्ता का ही है ।

इसके माध्या करने पर नल बाटा का कर्तव्य इन शब्दों में स्पष्ट करता है—

घनिने न तुल्यज्जलमार्त्तं किं तु जीवममिषि प्रतिपाद्यम् ।

एवमाह्नुं शुभचञ्जलवापी इत्यन्तविधिबलिबिबग्नः ॥^४ (मी हर्ष)

'शुभचञ्जल-सहित दान बिलाले हुए शास्त्रज्ञ पद-दान की विधि इस प्रकार बताते हैं कि माधक के लिए केवल नल ही नहीं घणितु प्राण भी तुल्यन् दे देने चाहिए ।'

उपर्युक्त कतिपय उद्धरण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि संस्कृत के महाकाव्यों में प्रतिपादित नीति-काम्य विचार, भाव कल्पना धीरे कसा सभी इष्टियों से सुन्दर हैं । साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जब नीति का निरूपण कुशल कवियों द्वारा किया जाता है तब वह सरकाम्य कहवाने की सहज ही अधिकारिणी हो जाती है ।

(घ) अष्टकाव्य

महाकाव्यों के समान ही संस्कृत के अष्टकाव्यों में भी यह-तन नीतिकाम्य उपलब्ध होता है । 'पटकर्पर का पटकर्पर' कानिशात का 'मिचहूत' विजय का 'मिचहूत' दीकृष्ण कवि का 'छायाछाया' आदि संस्कृत के प्रसिद्ध अष्टकाव्य हैं । इनके नीतिकाम्य की बालनी निम्नोक्त शब्दों में देखी जा सकती है ।

१ महिम्नामी : महिम्नाय, २।३४

२ माघ : तिलुपालवच, २।३१

३ बही, २।४६

४ मीहर्ष : मेघनीमचरित, २।५६

बन निर्बाधित यद्य मेघ को देखकर उसके द्वारा प्रियतमा को सम्बोधन करने पर उद्यत हो जाता है तब कालिदास उसकी मनोरथा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

धूमज्योतिः ससिम्पदस्तां सन्निपातं बभूव मेघ-
सम्बोधायाः बभूव पटुकरणैः प्राप्तिमि प्रापलीमाः ।
इत्योरसुख्यावपरिगणयन् पृष्टाकर्तं यथावे
कारमतां हि प्रकृतिदृष्ट्यादधेतनाचेतनेषु ॥^१

कहाँ तो धूम धमिल बभू घोर वायु के मिश्रण से निर्मित मेघ घोर कहीं सम्बोध की वे बातें जिन्हें चतुर बन ही पहुँचा सकते हैं। परन्तु उस्तुकता के कारण इस बात पर विचार न कर यद्य मेघ के समझ गिड़गिड़ाने लगा। सब है काम पीड़ित बनों को यह सुभ ही नहीं रहती कि कौन बड़ है घोर कौन बेतन।

बिना प्रकार "मेघदूत" में यद्य ने मेघ द्वारा सम्बोध भेजा उसी प्रकार "नेमिदूत" में विरल नेमिनाथ को उनकी रानी राजीमती ने। पर्वत शिखर पर जनाभिस्व नेमिराज तब धपना सम्बोध पहुँचाने के लिए कामार्त राजीमती ने पर्वत को धपना दूत बनाकर यों बिगती की—

धरणागतों की रता करना राजाओं का धर्म है। मैं आपके अधीन हूँ और शर्चना करती हूँ कि धाप मेरी रसा करे। गुणी के सामन ह्याप केना रिच्छस्त सौट धाना भन्दा है परन्तु धमम से मनोबांन्धित फय पाता भन्दा नहीं।^२

ताराचर्चा के धारम्भ में कीर्ति की कामना करता हुआ कवि निज नम्रत्व को प्रकटित करता है—

बाह्यमपि कश्चिदिति लोकाणां सात्मनोय एव स्म्यात् ।

लौके न हासहेतुश्चन्द्रकलाग्रहलघावसं हि शिशोः ॥^३ (श्रीकृष्ण कवि)

मैं कवि-कीर्ति का इच्छुक होता हुआ भी लोको के साइ का पात्र ही बनना चाहता हूँ। जैसे चन्द्रकला को पकड़ने के इच्छुक शिशु की अपकता लोक में उपहास का कारण नहीं होती।

जैसे कि उपयुक्त उदाहरणों से विरल होता है कविकाम्यों में नीति-काव्य संपूर्ण पद्यों के रूप में भी पाया जाता है तथा पद्यांश रूप में भी। अधिकतर पद्यों में वह विषय-विशेष के समर्पण या इष्टान्त रूप में आया है। ऐसा होते हुए भी वह प्रबंधवर्ती रज के सम्पर्क से पर्याप्त सीमा तक प्रकट कर पाया है।

१ कालिदास, मेघदूत, पूर्वमेघ ५

२ काव्यमाला, द्वितीय मुद्रक बम्बई १९३२, पृ० ८२

३ काव्यमाला अपूर्वमुद्रक, बम्बई १९३७, पृ० ७२।६

(क) शृंगार-मुक्तक

शृंगारविषयक मुक्तक काव्यों में संयोग तथा विप्रसम्भ शृंगार के प्रतिरिक्त लज-सिद्ध तथा वक्रचतुर्भुजों का बर्णन भी दिखाई देता है। कालिदास (?) का शृंगार विषयक मर्तुहरि तथा जनार्दनमट्ट के शृंगार-शतक मयूर का "नयूरघटक" धमरु या धमरुक का "धमरुघटक" गोवर्धनाचार्य की "प्रार्थितघटी" तथा बिल्हण की "शौर्मनशासिका" संस्कृत के प्रसिद्ध शृंगार विषयक मुक्तक काव्य हैं। माना कि इन काव्यों में नीति की मात्रा अत्यन्त अल्प है परन्तु जितनी भी है वह सुन्दर तथा हृदयस्पर्शी है। जैसे मर्तुहरि स्त्रियों के चापल्य का बर्णन इस प्रकार करते हैं—

अल्पमि सार्यमम्येन पश्यन्पश्यं सविभ्रमा ।

हृत्पतं चिन्तयन्पश्यं प्रियं को नाम घोषिताम् ॥^१

स्त्रियाँ बाकैमि एक पुरुष से करती हैं सबिलास देखती दूसरे को हैं धीर हृदय में चिन्तन तीसरे का करती हैं। स्त्रियों का प्रिय कीन होता है।

जनार्दनमट्ट पुरुषों की मतिमननस्कता तथा पापाणुहृदयता को एक बिच्छूरी के मुख से इस प्रकार व्यक्त करवाते हैं—

यदि मतिमनन मेघ ओर-ओर से गरजता है तो मरजे क्योंकि ये पुरुष स्वभाव के कठोर होते हैं। परन्तु हे बिजली क्या तू भी बिच्छू-भ्रम्या से अनभिज्ञ है जो मुख बुजिनी के सामने सब तरह नृत्य करती फिरती है।^२

गोवर्धनाचार्य सज्जनों को दुर्जनविषय का उपाय निम्नलिखित प्रार्थना में बताते हैं—

विद्यान् कस्तु सज्जनानां जलमेव पुरो विद्यान् जेतव्यः ।

कृत्वा क्वरमास्मीय विगाय वास्यं एते विष्णुः ॥^३

सज्जनों को कुठों पर विषय किसी जल के माध्यम द्वारा ही प्राप्त करनी चाहिए, स्वयं लड़ मिड़ कर नहीं। जैसे—एण में बाणासुर को जेतने के लिए विष्णु ने क्वर को धारणीय बना लिया था।

सज्जनों का कुठों को प्राप्य देना उचित नहीं इस नीति को गोवर्धनाचार्य ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

प्राप्य नशिन मोय ही मसिनो को प्राप्य दिया करते हैं सत्पुंस्य नहीं। कालियनाभ को पश्या कालिन्धी ने बी बी न कि मुरसरिता मे।^४

१ धमरुकवयम् (भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४६ ई०) शृंगार शतक, पृष्ठ ७८-१०

२ काव्यजाल, एकादश मुक्तक, शृंगारशतकम्, पृष्ठ १३६, पद्य १०

३-४ प्रार्थितघटी (विलयनाथर प्रेस, बम्बई १९३४), पृष्ठ १६६, १६७

एकौचयं वरति मुनि महत्त्वयो व
 सर्वेषु पुनरयं वतते कृतास्तः ॥^१

जीवन-रूपी जन को बाहर फेंक कर रिक्तोन्मुख स्वास ग्रहंट के लोटों के समान पुनः धीर-रूपी कूर्प में प्रविष्ट होते हैं। यह सर्वथा ही मृत्यु जैसे धीर ब्रह्मण तथा सन्तु धीर महानु में समान रूप से उद्यमशील दिखाई देती है। सोमदैव के विचार में साहित्य-समाजोपक होने के लिए साहित्यकार होना धारण्यक नहीं है—
 धारणापि स्वयं लोक कामं काव्यपरीतकः ।
 रत्नपाकानिमिश्रोपि मोक्ष वेति न कि रसम् ॥^२

सोय स्वयं काव्य रचना में असमर्थ होते हुए भी काव्य-समाजोपक हो सकते हैं। क्या जो व्यक्ति रचीसे भोजन बनाता नहीं जानता वह उद्यम स्वाव भी नहीं ले सकता ?

यव द्विजवेपथारी इन्द्र ने कर्ण से कवच कुण्डल की याचना की तब सूर्य देवता ने कर्ण को रोकना चाहा। इस पर कर्ण ने यह सूक्ति कही—
 विवसेम । यः कसु धयः प्रतिक्नु
 वतलान्तो भवति नाचिषु वैम्यम् ।
 प्रतिपादयेत् स तु कर्षं पुष्यस्य

हे सूर्य जो धम (हाथ) याचकों की बीनता दूर करने को उत्सुक नहीं होता वह मनुष्य को धमने नाम के घसरों को उलटने से बने पर (धम) को नहीं बिसा सकता।
 प्रतिहूमवर्षानिबन्धामपरावम् ॥^३

विपवपुण्यार्यं चम्पू में विस्वावसु धीर कृष्णाणु नाम के विमानस्य पञ्चमं विविध प्रदेसों पर विहंगम दृष्टि डालते तथा उनके वासियों के गुण-बोध प्रकट करते हैं। संस्कृत के चम्पू-काव्य रामायण महाभारत श्रीमद्भागवत धार्मिकी कथाओं के आधार पर ही नहीं अनेक स्थानों तथा खेड पुस्तकों के जीवन-चरित्रों पर भी लिखे गये हैं। उनका नीतिकाम्य जीवन के प्रायः प्रत्येक पक्ष पर प्रकाश डालता है धीर साहित्यिकता की दृष्टि से भी अपेक्ष्य नहीं है।

(२) मुक्तककाव्यों में मीति

संस्कृत के मुक्तक-काव्यों की रचना, मीति के परिचित, प्रायः तीन विधियों की गई है—सुंदर औराम्य धीर रत्न ।

समस्तितकचम्पू, आठवात २ पद्य १०२
 १० बी० कीच एच एल० एल० पुष्ट ३३२
 म्युनारतप (निर्णयतावर प्रेस, बम्बई १९२० ई०), बंधमस्तकः, पद्य ८८

(क) शृंगार-मुक्तक

शृंगारविषयक मुक्तक काव्यों में संयोग तथा विप्रलम्भ शृंगार के अतिरिक्त नव-सिख तथा पद्मशतुषों का बर्णन भी दिखाई देता है। कासिकास (?) का शृंगार तिलक, महंहरि तथा अनारंतमट्ट के शृंगार-सतक मयूर का "नयूरसतक" धमरू का धमरू का "धमरूसतक", गोवर्धनाचार्य की "धार्यासतसती" तथा विश्वरूप की "शैर्विषयापिका" संस्कृत के प्रसिद्ध शृंगार विषयक मुक्तक काव्य हैं। माना कि इन काव्यों में नीति की मात्रा अत्यन्त अल्प है परन्तु जितनी भी है, वह सुन्दर तथा हृदयस्पर्शी है। जैसे, महंहरि त्रिवियों के वाचस्प का बर्णन इस प्रकार करते हैं—

अल्पमिह सायमभ्येत पद्मनयन्यं सविभ्रमा ।

हृत्पतं चिन्तयन्त्यर्प्य प्रियं को नाम योविताम् ॥^१

त्रिवर्या वाचकैसि एक पुरुष से करती हैं, मविनाथ देखती दूसरे को है प्रीर हृदय में चिन्तन तीसरे का करती हैं। त्रिवर्यों का प्रिय कोन होता है।

अनारंतमट्ट पुरुषों की मलिनमनस्कता तथा पापाणहृदयता को एक बिच्छूकी के मुक्त से इस प्रकार व्यक्त करवाते हैं—

यदि मलिन-मन मेव जोर-जोर से मरजता है तो गरजे क्योंकि ये पुरुष स्वभाव के कठोर होते हैं। परन्तु हे बिजली क्या तू भी बिच्छू-भ्रम्या से धननिष्ठ है जो मूक बुद्धिनी के धामने सब तरफ मृत्य करती फिरती है।^२

गोवर्धनाचार्य सज्जनों की दुर्जनविजय का उपाय मिम्वलिक्षित धार्या में बताते हैं—

विधुनं क्वन्तु सज्जनानां वसमेव पुरो विधाय भित्तय्य ।

दुर्वा उचरमात्मीय विगाय वार्यं रणो विष्णुः ॥^३

सज्जनों को बुटों पर विजय किसी लस के माध्यम द्वारा ही प्राप्त करनी चाहिए, स्वयं सड़ मिड़ कर नहीं। जैसे—रण में बाणामुर को बीतने के लिए विष्णु ने क्वर को धारमीय बना लिया था।

सज्जनों का बुटों को धामय देना उचित नहीं इस नीति को गोवर्धनाचार्य ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

प्रायं मलिन भोग ही मलिनों को धामय दिया करते हैं सत्पुरुष नहीं। काशियनाम को उरुण कालिन्दी के ही भी न कि मुरतरिता के।^४

१ धमरूकवपु (भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४६ ई०) शृङ्गार सतक, पृष्ठ ७५।२०

२ काव्यजाला, एकादश मुद्रक, शृङ्गारसतक, पृष्ठ १३६, पद्य १७

३-४ धार्यासतसती, (बिर्लसतामर प्रेस बम्बई १९३४) पृष्ठ १६६, १६७

(ख) वैराग्य-मुक्तक

वैराग्य भारतीय मुक्तककारों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। भर्तृहरि का वैराग्य छठक तो बुकिख्यात है ही, अण्णयदीक्षित जनार्दन नीलकण्ठ चक्रपाचार्य पद्मचन्द्र आदि ने भी वैराग्यछठकों की रचना की है। पद्यसंख्या से से कुछ न्यूनार्थिक होने पर भी ये मुक्तक-संग्रह छठक ही कहे जाते हैं। संसार की भ्रमरता छठीर की लक्ष-भङ्गुरता तथा मलिनता विषयों की तुच्छता स्वियों की निन्दा यम तथा इन्द्रियों का विग्रह, मुक्ति की साक्षता आदि इन लेखकों के प्रधान विषय रहे हैं। त्रिभुक्ति-मार्ग के उपदेशक इन रचनों में भी कही-कही ऐसी बातें दिखाई दे ही जाती हैं जो लोक व्यवहारोपयोगी हैं। जैसे—

प्रायः मनुष्य बेतला ठक है जब समय निकस जाता है। इसलिए भर्तृहरि 'वैराग्यछठक' में समय पर ही सावधान होने की प्रेरणा इस प्रकार करते हैं—

जब तक छठीर स्वल्प धीर नीरोप है जब तक जरा दूर है जब तक इन्द्रिय खणित धनिकस है जब तक बय का लख नहीं होता है, विद्वान् व्यक्ति को जब तक आत्मकन्यास के लिए महान् उद्योग करते रहना चाहिए। जब घर को घायल लग गई तब कूर्पा खोपने से क्या लाभ होगा।^१

पितृविरोधी तथा परदारपामी बृहन्म पुरुषों पर अण्णयदीक्षित वैराग्यछठक में यों भीठी चूटकी भेते हैं—

पितृभिः कलहायन्ते पुत्रावध्यापयन्ति पितृमन्त्रिणः।

परदारानुपमृतं कठमिदं घातकारिणं धारेवु।^२

लोग पितरों से तो कलह करते हैं और पुत्रों को पितृमन्त्रिण का पाठ पढ़ते हैं, स्वयं तो पर-स्त्री-नयन करते हैं परन्तु निज पत्नियों में बैठकर (पातिव्रत्य की शिक्षा देने के लिए) घातकों का पाठ करते हैं।

कर्तव्य धीर अकर्तव्य में श्रेय न जानने वाला मनुष्य पशु ही है। इस नीति को नीलकण्ठ दीक्षित ने 'साम्प्रतिशिक्षा' में यों व्यक्त किया है—क्या मनुष्य धीर पशु स्वयं-स्वयं पर प्राप्त भोजन वहीं खाते धीर जल-पान नहीं करते? क्या शोभों ही राशि को निद्रावज्ज नहीं होते? क्या स्त्री-सुख नहीं मोक्षते और अपने-अपने बच्चों का पालन-पोषण नहीं करते? कर्तव्य तथा अकर्तव्य के अर्थ से अपरिचित मनुष्यों तथा पशुओं में क्या अन्तर है?^३

सामान्यजन जो अक्षरपाठ प्रकरों को रत्न मानते हैं परन्तु अज्ञानत्व से अपने वैराग्यछठक में वास्तविक रत्न का निर्देश इस प्रकार किया है—

१ अलकनमसु वैराग्यछठकसु, पृ० १२१।०२

२ काव्यमाला, पुष्पक १ पृ० १३

३ काव्यमाला अष्ट पुष्पक (१२१० ई०) पृ० १२ पद्य १७

नास्त्यसङ्मायितं यस्य, नास्ति भ्रमो रणोपनाम् ।

नास्तीति पाबके नास्ति देम रत्नवती किति ॥^१

जो मनुष्य कभी बुढ़ी बात नहीं कहता जो कभी रणक्षेत्र में पीठ नहीं दिखाता जो मित्रापी को रिक्तहस्त नहीं सोटाता वही इस भूमि का सच्चा रत्न है ।

घामु की प्रमुन्यता बताने तथा घरीर के प्रति मोह को दूर करने के लिए कोई प्रभाव कवि "प्रबोध-मुधाकर" में इस प्रकार कहता है—

करोड़ों सुबर्णमुदारों केकर भी क्षणमात्र भी घामु नहीं खी जा सकती । यदि यह व्यर्थ ही जाती जाए तो बतारों कि उससे बड़ी हानि क्या होगी । जो घरीर कभी पुष्पों से धोमायमान घम्या पर सोया करता वा हा बही कभी लकड़ी तथा रस्सी से बकड़ा हुआ घग्नि में फेंक दिया जाता है ।^२

(ग) स्तोत्र

इन्द्र तिस विष्णु, सूर्य घादि की स्तुतियाँ बैदिक कास में माई जाती थीं । बाद में राम कृष्ण बुर्ग घादि के स्तोत्रों की भी रचना होने लयी । महाभारत, पुराणों घादि में भी कई स्तोत्र छपसम्प होते हैं । इन स्तोत्रों में देवी-देवताओं के एकाधिक— प्राय. छत वा सहस्र—नामों का ही उल्लेख नहीं होता, उनके बीर कृत्यों व दयानुता घादि की बर्चा भी होती है तथा घपनी धीनता प्रदर्शित करते हुए पाप-क्षमा कराने के लिए प्रार्थनाएँ भी रहती हैं । कहीं-कहीं पर इन स्तोत्र-काव्यों में नीति की बातें भी वृत्तित्त हो जाती हैं ।

इनकी रचना बाह्यणों बोजों, बौनों समी ने की है और घपने-घपने उपास्यों का ही नहीं यवा यमुना घादि देवी-रूपिणी महियों का भी मुखगान क्रिया है । बाण का बम्बीघतक ममुर का सूर्यघतक मेर्कुम का भक्तामर स्तोत्र सिद्धसेन विवाकर का कस्याणुमन्धिर स्तोत्र सषममित्र का भग्यरा स्तोत्र संकराचार्य का सिवापराब-लयापण स्तोत्र जगन्नाथ की प्रमुतमहरी रंयालहरी, यमुनालहरी कस्यालहरी घादि संस्कृत के प्रख्यात स्तोत्र प्रय हैं । इनमें से कतिपय नीतिपरा उद्बुत क्रिये जाते हैं । काल की बतिघीबता लकमी की बचनता तथा जीवन की क्षणभंगुरता का प्रसेख स्वामी संकराचार्य घपने 'सिवापराबसमापणस्तोत्र' में इस प्रकार करते हैं—

घामुर्नश्यति पश्यतां प्रतिबिल याति लयं धीजनम् ।

प्रत्यापन्ति मताः पुनर्न विवसतः कातो जपद्मलकः ।

लकमीस्तोयतरंभगवता विद्युत्बलं धीजनम् ।

यस्मात्मा धरत्यार्षतं धरतुव त्वं रक्ष रक्षामुवा ॥^३

१ काव्यमाता लप्तम पुण्डक, १६२६ ई० पृ० ७३, पद्य २७

२ " " लप्तम पुण्डक, १६११ ई० पृ० ११० पद्य १११

३ संकराचार्यः सिवापराबसमापणस्तोत्र, पद्य १३

देव्यपरायणतापरायणस्तोत्र में अंकुराचार्य अपनी मुक्तों का अक्षय्य उन्नेत्र करते हुए कहते हैं—

कुमुदो ज्ञानेन स्वच्छिन्नपि कुमाता न भवति ।^१

अर्थात् पुत्र कुपुत्र हो सकता है परन्तु माता-कुमाता नहीं ।

पण्डितराज अमर्याद की 'कुरुक्षेत्रहरी' अत्यन्त सरसस्तोत्र है, जिसमें स्तुति तथा नीति का मिश्रण मार्मिक रीति से किया गया है । बचा—

अपि पतंगुच्छे मत्तः सिद्धुः पक्षिकैश्चापि विद्यायते जघत् ।

अनकेन पतम् न बालुर्ध्वे न निवारो जघता कश्च विनी ।^२

हे विनो ! तूने में पिरत हुए सिद्धु को तो प्रपठित पक्षि भी बौद्धकर बचा नेता है तब घाप पिता होकर भी मुझे संसार-सागर में पिरने से क्यों नहीं बचाते ?

कुछ बालक की बाणी धम्म होती है इस नीति को पण्डितराज यों व्यक्त करते हैं—हे विनो कुछ बालक की अटपटीय बातों पर क्रोध न कीजिए; क्या महाधम तोप मुपित धातुर बालक की बलों पर ध्यान दिया करते हैं ?^३

स्तोत्रों की रचना प्रायः अष्टक पंचाशिका, अष्टक पंचमती, अष्टकवाम प्रादि के रूपों में की गई है । स्तोत्रों में स्तुतियों तथा संतुष्ट हृदयों के अंगारों का प्राधान्य है धीर नीति की स्पृमता । यह नीति जहाँ कुशल कवि द्वारा व्यक्त की गई है, वहाँ सरस है परन्तु सामान्य रूप से तो सामान्य ही है ।

(इ) हृदयकाम्यों में नीति

अम्यकाम्यों के समान संस्कृत का हृदयकाम्य-साहित्य भी बहुत विज्ञान है । भास सुहस्र, काकिलिषास भवसूति धारि की रूपकमयी कृतियों से भारत का मस्तक उन्नत हुआ है । इन प्रख्यात नाटककारों ने जहाँ अपने कर्मों से अक्षय्य नर-भारिजों का मनोरंजन किया है वहाँ कर्तव्य-मार्ग दिखाकर जनका धरोम कस्यासु भी किया है । इनके नाटकों में स्वान-स्वान पर नीति के ऐसे सुन्दर उपदेश मिलते हैं जिनसे प्राज्ञाप के साध-साध संतुष्ट हृदयों को शान्ति तथा पञ्चमट कर्मों को मार्ग मिस जाता है । निरर्चनार्थ कुछ पद्य सीजिए— 'स्वप्नवातवरतम्' में शोकार्थ राजा को शान्त बनाने के उद्देश्य से कौचुकीय इस प्रकार कहता है—

१ देव्यपरायणतापरायणस्तोत्र अष्ट ४

२ कुरुक्षेत्रहरी द्वितीय पुण्ड १६३९ ई० पृष्ठ २७

३ " " " " " २४

कं कं दधतो रक्षितु मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घट धारयन्ति ।
एवं सोऽस्तुत्यथर्म्मा ब्रह्मणा
काले-काले दियते ब्रह्मते य ॥^१ (भास)

मृत्यु का समय धा धाने पर कौन कितने बचा सकता है ? रस्ती टूट जाने पर कड़े को कौन रोक सकते हैं ? इस प्रकार प्राणी की गति ब्रह्म के समान है जो समय पर कटता भी है धीर उग्रता भी ।

अन्य व्यवसायों के लोग तो सुविधा के अनुसार किसी व्यक्ति का उत्कार या धिक्कार कर सकते हैं परन्तु वेदया नहीं । 'मूच्छकटिक' का विट इस विषय में बारा पना बसन्तसेना को उसका कर्तव्य इस प्रकार समझाता है—

वाप्यां स्नाति विषमलो द्विसहरो मूर्च्छोऽपि बर्णविभ्रः
कुन्तां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बहिष्णा ।
ब्रह्मक्षत्रविदास्तरन्ति च यया नावा तपचेतरे,
स्यं वापीब लतेब नीरिब जन बेरयासि सर्वे भद्र ॥^२ (शूद्र)

'वापी में बिद्वान् विभ्र भी स्नान करता है धीर मूर्ख शूद्र भी । जिस कुसुमित बस्ती पर मोर बैठता है, उसी पर कौघा भी । जिस नाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य नदी के पार जाते हैं उसी से शूद्र भाषि भी । तू बेवया है इसलिये वापी बस्ती धीर नाव के तुल्य ऊँच का नीच सभी को संशुद्ध कर ।

सहज-सुन्दर शरीर पर सब प्रकार के बसनाभूषण खिल उठते हैं इस नीति का प्रतिपादन कामिदास ने दुप्यस्त से इस प्रकार करवाया है—

सरसिजमनुविडं दंवेतेनावि रभ्यम्,
मलिनमपि हिमांसोसम्भ लक्ष्मीं तनोति ।
इयन्निरुमनोता बस्त्रसेवापि तण्डी
किमिब हि मपुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥^३ (कामिदास)

सेवार से भी बिरा होने पर कमल कमनीय सगता है चाँद का मलिन बच्चा भी इसका श्री-वर्द्धक है यह लम्बेरी (एकमत्तसा) बस्त्र के बस्त्रों में भी बहुत प्यारी बग रही है । सब तो यह है कि सुन्दर शरीर पर सब कुछ खिल उठता है ।

गृहस्थी को सुखमयी बनाने के लिए कश्च ने जो उपदेश एकमत्तसा को दिया वह धात्र भी बधुओं को सुपुहिणी पद दिखाने में समर्थ है—

१. स्वप्नवासवदत्तम् १।१०

२. मूच्छकटिकम् १।१९

३. अमितामघाकृतसम् १।१९

सुभूपस्य बुद्ध्नु कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीवने,
 भद्रुविप्रकृतापि रोचलतया मा स्म प्रतीपं यमः ।
 सुमित्तं यम इतिहा वाचिने भाभेप्यभुसेकिनी
 यान्त्येवं वृद्धितीपदं युक्तयो वामा कुलस्यायम ॥' (कामिदास)

'समुराम में बुद्धजनों की सेवा करना । स्व सर्पलियों से प्रिय सखियों का-या स्नेह रखना । पति द्वारा निराहृत होने पर भी क्रुद्ध होकर विपरीताचरण न करना । निज बात-बासियों को प्यार से रखना तथा अपने भाग्य पर मत इतराना । इस प्रकार के आचरण से तो स्त्रियाँ सुपुद्गलि बनती हैं परन्तु इसके प्रतिकूल बनने वाली कुलकर्मिकिनी हो जाती है ।

कुप्यन्त तो दकुलता को सर्वथा भूल चुका था परन्तु धार्यरक सङ्कुलता को नहीं छोड़कर वागा चाहता था । इस पर कुप्यन्त ने वरदारनिगमन को इन पद्यों में धमीति कहा—

कुमुदाम्येव दामाकसविता बोधयति पंक्त्याम्येव ।

वधिना हि परपरिग्रहसंज्ञेयपराङ्मुखी वृत्तिः ॥' (कामिदास)

'आश्रमा केवल कुमुदों को धीरे धीरे केवल कमसों को विकवित करता है । इसी प्रकार विदेशिय बोध परतारीगमन की कामना तक नहीं करते ।

एक ही मुष्ट से सम्पन्न करने पर भी कोई छात्र अधिक सामान्यित होता है तो कोई मूल । तब कुछ को धकनी अपेक्षा कृपाप्रवृत्ति देखकर धानेसी उक्त नीति के विषय में मनवेवता से कहती है—

वितरति युव प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा वद्रे

न तु कानु तपोवनि धनितं करोति धपहृति वा ।

भवति च युवर्जुयान् मेव एतं प्रति तत्तथा

प्रभवति सुविबिम्बप्राप्ते मलिनं मुदा यव ॥' (धकमुक्ति)

'युव बुद्धिमान् तथा मूर्ख दोनों विद्या को एक-सी विद्या देता है । न वह एक की ज्ञानसहित उत्पन्न करता है न दूसरे की गष्ट । फिर भी दोनों को जो फल मिलता है, उसमें भारी भेद होता है । सब है, विम्ब-प्रदृष्ट मे निर्मल रत्न ही तमप होता है मिट्टी का डेर नहीं ।'

उपपु क्त पद्यों द्वारा स्थायी-मुलाक-व्याप्य से, सहृद ही समुदाय किया जा सकता है कि संस्कृत के रूपकों का नीतिकाम्य विषय की दृष्टि से किन्तना व्यापक मोट

१ अतिज्ञानघातुस्ततश्च ४।१८

२ अतिज्ञानघातुस्ततश्च ३।२८

३ उत्तररामचरित २।४

धनुर्मूर्तिपूर्ण तथा कसा के बिचार से कितना सुन्दर और आह्लादक है ।

(आ) नीतिकाम्यों में नीति

हम ऊपर कह चुके हैं कि संस्कृत का नीतिकाम्य तीन बर्गों में विभाज्य है—
(क) प्रत्यक्ष नीतिकाम्य (ख) अग्यापक्षैधिक नीतिकाम्य, और (ग) सुमाहित-संप्रहों का नीतिकाम्य । नीचे तीनों का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है ।

(क) प्रत्यक्ष नीतिकाम्य

प्रत्यक्ष नीतिकाम्य से अभिप्राय उन काम्य-धर्मों से है जिनका प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष रूप से नीति-शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया । इस प्रकार का प्राचीनतम काम्य 'आणक्यसतक' कहा जाता है जिसके सत्रह अध्यायों में लगभग बीस-बीस श्लोक हैं । बहुधा आणक्य बहुधा आणक्य आणक्य-नीति राजनीति-समुच्चय आदि धर्मों में भी प्रायः यही श्लोक कुछ न्यूनधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं । निष्पत्ता राजनीतिज्ञ आणक्य के नाम से सम्बन्धित होने पर भी इस पुस्तक में राजनीति के श्लोकों की संख्या नगण्य है सामान्य नीति का ही बाहुल्य है । श्लोकों की धारणा है कि प्रत्यक्ष को गौरव प्रदान करने के बिचार से ही आणक्य का नाम संयुक्त कर दिया गया है । इसमें ज्ञान धर्म सज्जन दुर्जन बाह्यमातुर्य परोपकार आदि सीकड़ों विषयों पर सीधी सीधी भाषा में शोक-व्यवहार की शिक्षा दी गई है । निम्नांकित उदाहरणों से इसका विषय-वैविध्य सहज ही धनुर्मित हो जाता है—

मनुष्य को बार-बार शोक-काम धाय-भय मित्र-अणु तथा निषेध शक्ति पर विचार करना चाहिए ।^१

भूत साहस काट मूर्खता घटि सोम अपवित्रता और निर्बलता शिव्यों के सहज शोच है ।^२

जब प्राणी गर्म में ही होते हैं तभी उनकी प्राणु, कर्म धर्म विद्या तथा धूरतु विधि निश्चित कर दो जाती है ।^३

धतिभाग्य होने पर भी मारबहन करते जाणा सर्वो-मर्मा की उपेक्षा करना तथा सदा संतुष्ट रहना—ये तीन गुण यथे से सीकने चाहिएँ ।^४

हे प्यारे, यदि मुखि की अभिसाया है तो विषयों को विषयत् त्याग कर क्षमा

१ आणक्य नीति (गोबर्द्धन पुस्तकालय मधुरा) पृ० ११।१८

२ वही, पृ० ७।१

३ वही पृ० १६।१

४ वही, पृ० २१।२१

अज्ञात दया पवित्रता धीर धर्म का समुत्पन्न पालन कर ।^१

यद्यपि पुस्तक का अधिकतर भाग सम्पादन समुत्पन्न संघ में ही तो भी कहीं कहीं भाषा-विक्रमिष्ठित मिश्रित-उपजाति आदि शीर्षकार-वृत्त भी प्रयुक्त हुए हैं। अधिकतर शब्द तो चमत्कार-रहित मीरस पद्य ही हैं परन्तु कहीं-कहीं धर्मकारों का चमत्कार भी देखा पड़ता है। उपमा रूप, कृष्टान्त आदि सर्वाधिकारों की अपेक्षा समुत्पन्न साठ आदि संज्ञासंकारों का ही बाहुल्य है। जो अन्योक्ति धर्मकार परवर्ती नीतिशास्त्रकारों का अतिश्रम बना वह भी एकान्त स्वयं-वचन उपसर्ग हो जाता है।^२ स्मरण-सीकर्म के लिए धर्मों के प्रयोग की शैली जो महाभारत पालि के समुत्पन्न निकाय धीर धर्म स्वाम्यां में दिखाई देती है, इसमें भी व्यक्त हो गई है। जैसे—

एक मे तप वो से धर्मदम तीन से गान आर से पात्रा पाँच से सेती तथा बहुते से मुद्र सम्मक सम्पन्न होता है ।^३

शास्त्रशास्त्र धर्मार्थे मुद्र पान्थ ने ईश्वरी पाँचवीं शती से पूर्व धर्मार्थे शब्द में 'नीतिशास्त्रिका का प्रसंग किया। इसमें नीति-शास्त्रों को मुद्र उपमाओं द्वारा समर्पित किया गया है। पुस्तक की मनोहरता इसी बात से प्रमाणित है कि समस्त धर्म तथा परवर्ती विद्वानों ने इसका पर्याप्त सम्मान किया। उदाहरणार्थ—

सह मसतामप्यसतां जलधुबनम् भवमसतामेव ।

दुर्जेयि सतां वसतां प्रीतिं कुपुवेन्नुवम् सवति ॥^४ (सुन्दर वाक्य)

साध-साध राते हुए भी दुर्जेय जल धीर वसति के समान पृथक्-पृथक् ही होते हैं और दूर-दूर रहते हुए भी मज्जत कुमुद तथा बह के सुख प्रसन्न ।

ईश्वरी पाँचवीं शती के समय विषय-विषय-धर्म-धर्म की रचना बन्योमिन् में की। जब रूप रत्न-शक्ति धर्म इस समाधि पर दृष्ट हो गया तब कवि ने इस धर्म को पत्र-रूप में ११४ पद्यों में लिखा। सुकवि ने इसमें जल वन आदि सांसारिक पदार्थों की निस्तारता का ऐसा मार्मिक बर्णन किया कि राजा उसे पढ़कर विरक्त हो गया। काव्य में धर्म के साथ नीति के भी सुन्दर उपदेश हैं। जैसे—

वियस्य विदवास्तां हि दुस्मते मनुवस्तरम् ।

उपधुक्त्वं विद्वं ह्युमि विवधाः स्मरतावपि ॥^५ (बन्धुयोमिन्)

विय धीर विधर्मों में बहुत दूर का धर्म है। विय तो मलय के पशु है ही

१ 'आलस्य नीति (दोषार्थ) मुस्तकालय मधुरा) सु० ४०११

२ वही सु० ३३१४

३ वही सु० १८११२

४ 'नीतिशास्त्रिका पद्य १०० एन० कृष्णम् आचार्यरतः पद्य० सी० पद्य० एत० (१९३० ई०) सु० ३१४

५ सु० १० धा० सु० १९८१९११

प्राप्त होता है परन्तु विषय स्मरणमात्र से ही मार डालते हैं।”

छान्तिदेव ने ‘बोबिचमोवतार’ नामक सुकाम्य में नीति और दर्शन का सुन्दर सम्मिश्रण किया है। धर्म की शोक-प्रियता इसकी अनेक टीकाओं से ही सिद्ध है। नीति तथा दर्शन जैसे अटिस विषयों पर अतनी सुन्दर कविता इसमें प्रबलभोजित होती है, उतनी अममक दुर्लभ है।

मर्तृहरि अपनी ‘सुभाषित विद्यती’ या ‘अकृतत्रयम्’ (नीतिशतक, शृंगार-शतक, वीरगयशतक) के ही कारण शोक-विरहात् है यद्यपि ‘छान्तिपद्यति’ नाम से इनका एक अपूर्ण-संग्रह भी बम्बई से प्रकाशित हो चुका है। नीतिशतक में सुजन-सुर्मन पूर्व विद्वान् आदि पर शृंगारशतक में स्त्रियों के सोम्वर्य स्वभाव आदि पर और वीरगय शतक में आस्था लुप्या तथा सांसारिक मोयों की मदबराता पर सुन्दर काम्य-रचना की गई है। जैसे—

कुमुमस्तदकस्येव ह्यपी बुद्धिमनस्विनः ।

भूर्भिर्वा सर्वलोकस्य क्षीयंते वन एव वा ॥’ (मर्तृहरि)

‘पुष्प-पुच्छ के समान मनस्वियों की वृत्ति हो हो प्रकार की होती है। या तो वे सब सोयों के सिर पर खान पाते हैं या फिर वन में ही बिसीएँ हो जाते हैं।’

‘बाहे बाधित रसावस में आए गुण-गण उचछे भी नीचे पंश आए क्षीन अव तट से बिरकर बुर हो जाए, शूरता पर सहसा बन्धपात हो जाए, हमें तो केवल वन की भावदयकता है जिस एक के अभाव में उपर्युक्त सभी गुण विनके की तरह लुच्छ हो जाते हैं।’

मर्तृहरि का शतक परिष्कृत मधुर, सरस भाषा में है। इस में अनुपद्वृत्तियों की संख्या शून्य है। ‘साईन’ शिखरिणी बसन्ततिसका भाषि बड़े-बड़े छन्दों का अधिक व्यवहार हुआ है। स्वामी शंकराचार्य के नाम से प्रचलित मोहमुद्गार शतसोकी, प्रस्तोत्तरी भाषि पुस्तिकाओं में वीरगय की प्रधानता होते हुए भी मध-सज सुन्दर नीति उपलब्ध होती है। जैसे—

पंडा क्या है ? ममत्व का अधिमान ।

सुरा-सम संनोहनकारी कौन है ? शत्रु ।

विपद अन्धा कौन है ? कामासुर ।

मृत्यु क्या है ? अपना अपयत्न ।^३

~/ सुभाषित रत्न-शब्दोद्’ जैन साधु अधिपति की विख्यात मधुर व सरस कृति है जिसके ११५ पद्यों को कवि ने ३२ प्रकारों में उपनिबद्ध किया है। कवि

१ अकृतत्रयम् पृ० १३।२५

२ अकृतत्रयम् पृ० १५।३१

३ प्रस्तोत्तरी, (नीताप्रेस, गोरखपुर, सं २०१०) पृष्ठ १।६

ने ग्राम्य विपरीतों के प्रतिरिक्त पद्य माँस, मधु, दूध स्त्री-मुसरोव देखावत शौच दैव आदि पर तो पुनः-पुनः प्रकरण रचना की परन्तु पुनः पुनः पर पुरे प्रकरण का समाप्त है। कवि का भाषा तथा संयमकार पर प्रभुत्व अधिकार है। प्रायः प्रत्येक प्रकरण में किसी एक ही छंद का प्रयोग है और कई प्रकरणों के अन्त में छंद परिवर्तित भी कर दिया गया है। इससे अनुमान होता है कि कवि ने इस की रचना संस्कृत के महाकाव्यों का-सी शैली पर की है। शोकप्रकरण के निम्नांकित पद्य से कवि के काव्य शीघ्र ही अच्छी मूलक प्राप्त होती है—

परिचायति रोचिस्ति युक्तुञ्चै वरति स्तसति त्यजेते वधनम् ।

स्यते स्तसते जनते न तुल्यं बुद्धभोकविद्यावद्यो मनुज ॥^१

‘घाटी शोक-रूपी पिशाच से घस्त मनुष्य इतर-उतर चौकता है रोता है, धाँहें भरता है घिरता है नङ्कड़ाता है तथा बदन उतार देता है। वह पीड़ित और विभ्रम होता है वरन् उसे किसी प्रकार भी सुखोपलब्धि नहीं होती।

खेमेन्द्र ने नीति-विषयक अनेक काव्यों की रचना की। इनके ‘बाह-वर्दा पद्यक’ में सम्भारित-सम्बन्धी छो छन्द हैं जिन में प्रतिपाद्य की मुष्टि पौष्टिक तथा लौकिक आत्माओं के संकष्टों द्वारा की गई है। ‘चतुर्वर्षसंग्रह’ में नर्म धर्म, काम और मीठ की प्रवृत्ति और वैयर्थ्यकाव्यों में स्वामी तथा सेवकों के कर्तव्य का प्रतिपादन है। ‘समय-मातृका’ में वारोगमार्गों तथा कर्माविज्ञान में विभिन्न व्यवसायियों की बंधनार्थों का विचार बर्लन है। दर्पोत्पत्ति के साथ विभिन्न कारणों तथा उनके पक्ष के लक्ष्यों का अन्वेषण ‘वर्षसंग्रह’ के साथ अंत में किया गया है। निम्नांकित नीति-श्लोकों से खेमेन्द्र को काव्यकुसुमता कमनीय कल्पना तथा प्रसादपूर्वक व्यंग्यमा सम्यक स्पष्ट हो जाती है—

कसमात्मनिर्वृतमयीबिभुष्यामेन लीङ्गनाभुक्ता ।

कायस्यसुख्यमावा रोचिस्ति क्षिप्तेव राजसी ॥^२

‘कायस्य से लूटी जाती हुई राजसी क्षिप्त होकर कसम से निकलने वाली स्वामी की बूँदों के बहाने कर्मज-कलित भक्षुकरण बरसाती हुई रो रहती है।

गुह्यं यत्न क्षिप्ते किमटोपे प्रबोधनम् ।

विधीयते न यच्छामिर्वाह शीर-विध्वंसिता ॥^३

गुह्य-माप्य के लिए प्रयास कीजिए, पाठमन्त्रों से कुछ भी नहीं बनेगा। पूज रहित शीर्ष बन्धियों के कारण बिका नहीं करती।

१ मुद्रावित रत्न संघोट, पृष्ठ ८०।७३२

२ अहण सुखिमुक्तावली, पृष्ठ ३११

३ " " " " , पृष्ठ ४२२

बीजेव श्रोत्रहीनस्य लोलासीव विषलुबः ।

श्वलो कुसुममासेव भी कर्यस्य निष्कला ॥^१

‘असि बहिरे क सिए बीणा मग्ने के सिए सुम्बरी धोर मृतक के सिए पुष्य मासा निष्कल होती है बैसे ही कंबूम के सिए धन ।

मेव स्थितोऽतिदूरे मनुष्यसुप्ति परित्यज्य ।

भीतो भयेन श्रीर्षाञ्चौराणां हेमकाशलाय ॥^२

‘मेव पर्वत इव मनुष्य-सुप्ति से इतनी दूर क्यों स्थित है ? इसीलिए तो कि वह इन घुमार-रूपी चोरों से भीत है ।

हेमचन्द्र (१०८८-११७२ ई०) के ‘योगशास्त्र’ में जैनो के कर्तव्यों ग्रहिसा स्त्री मिथ्या धार्मिक पर विशेष बल दिया गया है । सरल मनुष्यपू में सिखा हुआ महंघंष काव्यत्व की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं रखता । ब्रह्मण (१११० ई०) ने भीने लोगों को बेस्याओं के नाम से बधाने के सिए मुग्धोपदेश’ की रचना की जो प्रभाव तथा काव्यत्व दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट है । बेस्याओं के अनुराग की कृत्रिमता का ब्रह्मण ने यों उन्मेष किया है—

कामरुचेरकफलापः कतिपुयं पद्य धर्मप्रियं,

निस्त्रिंशो यदि वैशलो विवधः संतोषदायी यदि ।

धर्मिणश्चेदतिघोतल कलजनः सर्वोपकारी स चे—

बापुष्य यदि वा भविष्यति विषं बेस्यापि तत्रापिली ॥^३

‘यदि धर्मराज ब्यासु, कतिपुय धर्मप्रिय, कश्म कोमल उप संतोषदायक धर्मिण तीतल कुष्ट उपकारी धोर विष बापुष्यक बल जाएगा तो बेस्या भी मनुष्यनवती हो पाएगी ।’

ब्रह्मण (१२०१ ई०) ने मन-शान्ति की प्राप्ति के सिए मनुहरि के नीति तथा वैराग्य मरका के अनुकरण पर ‘शान्तिघटक’ की रचना की । ‘शुमार वैराग्य तरपिली केवल छयालीस छम्बों का छोटा-सा परन्तु सुम्बर काव्य है जिसमें सोमप्रय ने स्त्री-संसर्ग की हाणियों तथा विरक्तजीवन के लार्भों को व्यक्त किया है ।

वाधिणात्य बेवान्तदेशक (१२१८-१११९ ई०) ने मनु-कृत ‘नीतिघटक’ के अनुकरण पर सुभाषित-भाषी की रचना की जिसके १२ १२ श्लोकों के बारह अध्यायों में ग्रहंकार दुष्टता तथा भादि का वर्णन है । कुसुमदेव के दृष्टांतघटक (११०० ई० से पूर्व) में व्यावहारिक उक्तियों को उपयुक्त दृष्टान्तों द्वारा अधिक

१ अर्धबलम १।११ सुक्तिमुक्तावली पृष्ठ ६१

२ ‘कसाविसास’ से, एव० बी० कीच एव०एत०एत० (११४८ ई०) पृष्ठ २४० ।

३ ब्रह्मण. मुग्धोपदेश, पद्य ५ काव्यमाता, भाग ८ (निरुपत्तापर प्रेस, बम्बई १९११)

में धर्म्य विषयों के प्रतिरिक्त पद्य पाँठ, मधु, सूत स्त्री-मुल्लखीय बेस्वारजनन हीच ईव यादि पर तो पुत्रक-पुत्रक प्रकरख-रचना की परन्तु पुत्रपार्थ पर पूरे प्रकरण का समाव है। कवि का भाषा तथा समय-कार पर प्रभुत अधिकार है। प्रायः अत्येक प्रकरण में किसी एक ही छंद का प्रयोग है और कई प्रकरणों के अन्त में छंद परिवर्तित भी कर दिया गया है। इनसे अनुमान होता है कि कवि ने इस की रचना संस्कृत के महाकाव्यों का-सी शैली पर की है। अत्यन्त-करण के निम्नांकित पद्य से कवि के काम्य कौशल की अच्छी महसूस प्राप्त होती है—

परिभाषति रीतिरि सुत्तुको यति स्वयति त्यक्ते वसन्तः ।

व्यपते वसन्तै नञ्जे न तुलं पुत्रकोपिमाध्वयो ननुज ॥^१

‘माती सोक-रूपी पिद्याय से वसत मनुज्य इधर-उपर बौद्धता है रोडा है, घाहें बढ़ता है विरता है, लङ्कालता है तथा नरम उदार देता है। यह पीकित और सिधिस होता है परन्तु उसे किसी प्रकार भी सुजोपनमि नहीं होती।

संमेष नै नीति-विषयक अनेक काव्यों की रचना की। इनके ‘वास-वर्ज-पद्यक’ में अन्वित-सम्बन्धी लो छन्द हैं जिन में प्रतिपाद्य की पुष्टि पीठस्थिक तथा शैिकिक धारणाओं के संकेतों द्वारा की गई है। ‘अतुसंपंतण्य’ में धर्म धर्म काम और नीति की प्रशंसा और ‘सिम्बेकेकोवेच’ में स्वामी तथा सेवकों के कर्तव्य का प्रतिपादन है। ‘तमय-मातृका’ में वारियमाधो तथा कर्मावितार में विभिन्न व्यवहारियों की रचनाओं का विश्लेषण है। वर्णोत्पत्ति के साथ विभिन्न कारणों तथा उनके फल के उपायों का उत्प्रेषण ‘वर्णदशन’ के साथ संज्ञों में किया गया है। निम्नांकित नीति-स्तोत्रों से संमेष की काल्पनिकता, कर्मात्मकता तथा प्रसादपूर्वक रचना समझ स्पष्ट हो जाती है—

सलमास्रभित्तपधीविगुव्याजेन सांखानुक्त्या ।

कारत्यमुच्छयमावा रोदिति सिम्बिव राजधो ॥^२

‘कारत्य से सुटी जाती हुई राजधी शिन्नु होकर कम से निकलने वाली स्थाही की सुओं के बहाने उज्ज्वल-कमित मधुकरण बरसाती हुई रो रही है।

सुलेतु मत्न श्रित्ता किमायेव प्रयोक्तव्यः ।

विष्मियते व घटाजिपरिच एतर-विबजिता ॥^३

गुण-दाप्ति के लिए धयात कोजिए, धारम्बरों से कुछ भी नहीं बनेवा। बुध रहित और बतियों के कारण बिका नहीं करती।

१ सुभाषित रत्न संक्षेप, पृष्ठ ५७।३।२

२ अरहर, सुविभुक्तानती पृष्ठ १।१

३ ' ' ' पृष्ठ ५२२

बोलेव शोत्रहीनस्य लोलासीव विचलुब ।

असो कुमुममासेव शो कवयस्य निष्कला ॥^१

'जैसे बहुरे के लिए बीणा धमे के लिए गुम्बरी घोर मृत्क के लिए पुष्प माता निष्कल होती है वैसे ही कुमुम के लिए बन ।

मेव स्थितोऽतिदुरे मनुष्यसुमि पत्तियस्य ।

भीतो भयेन शौर्याशौराणां हेमकाण्डलासु ॥^२

'मेव पक्ष इव मनुष्य भूमि से इतनी दूर क्यों स्थित है ? इसीलिए तो कि वह इन सुनार-रूपी चारों से भीत है ।

हेमकाण्ड (१०८८-११७२ ई०) के 'योगसास्त्र में जैनों के कर्तव्यों सहित स्त्री निष्कल प्रादि पर विमेष बल दिया गया है। सरस मनुष्य में सिला हुआ यह प्रथम काव्यरस की दृष्टि से विषय महत्त्व नहीं रखता। जन्हण (११२० ई०) ने शोसे लोगों को बेस्वार्थों के पास से बचाने के लिए मुग्धोपदेश की रचना की जो प्रभाव तथा काव्यत्व दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट है। बेस्वार्थों के अनुराग की कृत्रिमता का परहण ने में उन्मुख किया है—

कास्यचेरकण्डलावटः कलिपुत्रं पद्यत धर्मप्रियं,

निस्त्रिंशो यदि वेप्रसो विषयटः संतोषदायी यदि ।

अनिश्चेदतिश्रोतसः प्रसन्नः सर्वोपकारी स वै—

वसुध्प यदि वा भविष्यति विषं वेह्यापि तद्वापिली ॥^३

यदि वमराज क्यासु, कलिपुत्र धर्मप्रिय कश्य कोमल सर्व संतोषदायक धर्मि पीतल पुट उपकारी घोर विष वासुदर्थक बन जाएगा तो बेस्वार्थ भी अनुरागवती हो जाएगी ।

सिंहण (१२०५ ई०) ने मन्थान्ति की प्राप्ति के लिए मनुहरि के नीति तथा बेराम्य मतका के अनुकरण पर 'छान्तिघटक' की रचना की। 'मृगार बेराम्य तरंगिली' केवल छयासीस छंदों का छोटा-सा परन्तु सुन्दर काव्य है जिसमें सोमप्रथ ने स्त्री-ससम की हाथियों तथा विरक्तजीवन के सार्यों को व्यक्त किया है।

शालिग्राम वेदान्तदासक (१२६८-१३६९ ई०) ने मनु-कृत 'नीतिघटक' के अनुकरण पर 'सुमापित-शार्ङ्ग' की रचना की जिसके १२-१२ श्लोकों के बारह अध्यायों में अहंकार दुष्टता सदा प्रादि का बणुण है। कुमुमरक के 'दृष्टिघटक' (१२०० ई० से पूर्व) में व्यावहारिक उक्तिों को उपयुक्त दृष्टान्तों द्वारा अधिक

१ सर्वजन ३:५१ सूक्तिमुक्तावली पृष्ठ ६१

२ 'कसावितास' से, एव० बी० कीचः एव०एस०एस० (१९४८ ई०) पृष्ठ २४०।

३ अरहण. मुग्धोपदेश, पद्य ५ काव्यमाता, भाग ८ (निर्लेपसागर प्रेस, बम्बई १९११)

प्रभावक बना दिया गया है। जैसे—

लोकस्य व्याकुलता को सुखीय ही सह सकता है, सामान्य जन नहीं। बड़े धान की रपड़ को रत्न ही सज्जार सकता है, कुलिकरु नहीं।^१

या बिबेरी ने 'नीतिमंजरी' (१४६४ ई०) में नीति-सूक्तियों को सावच्छिन्न वेदनात्म्य की कथाओं से उपबृंहित किया।

विष्णु की पंद्रहवीं शती के अन्त में बँव कवि जनरत्न ने मत्तुहरि के अठक-भवन के समुच्चरल पर 'शृंगारजन्य' 'नीतिजन्य' और 'वैराग्यजन्य' रचे। नीतिकाम्य शैलित (सचहूवीं शती ईसवी) में कलिविदम्बन सभारंजन धामि-विलास धारि कई छोटे-छोटे नीतिकाम्य लिखे। सभारंजन में राज-सभा तथा विद्वन्मंडली को आह्वानित करने के छपान दिने हैं पर धीरे 'कलिविदम्बन' में नीति की व्यंग्यपूर्ण चुमती हुई सुक्तियाँ हैं। जैसे—

अभितं करोति संचारे शीतोष्णे मर्त्यज्ययि।

शीतयत्पुहरे बह्नि, धातिप्य वरभीपयत् ॥^२

'धूमने-फिरने का सामर्थ्य देती है, धरती-जमीं सहने की शक्ति प्रदान करती है, बठराग्नि को तीव्र करती है धरिता उचमुच सबसे बढ़ी बचा है। 'हान में धाई हुई पाँच-सा कौटुंब मनुष्य को धारण पड़ा देती है, विद्वानों का विरस्कार करना विज्ञा देती है धीरे स्व-भाषि का विस्मरण करा देती है।'^३

युगली का 'उपदेश-अलक' तथा बेंकटाप्पर का 'सुमायित-बीस्तुम' भी इसी काल की कृतियाँ हैं।

अज्ञान-कावक कवि बखियासूति ने 'सोकोलित-मुक्तावली' नामक ६४ पदों के काव्य में नीति की प्रत्येक शक्ति को सोकोलित के पुष्ट किया है। जैसे—

धातिप्यपोषविजया धारि वैभनमुष्या,

संबद्धमेतदभिसं निजकर्मबाधः।

संविमय माक्षिपत ईबन्धुमेतिव्या-

कि बिदये हि मुकुरी निजवक्त्ररोषात् ॥^४

'हे मनुष्यो यदि तुय धातिप्य और रोमों से कीकित हो तो भी, यह सोचकर कि यह सब अपने कर्मों का फल है, कुछ झेकर ईश को बुरा-बला मत कहो। क्या अपने मुख की कुम्पता के कारण अपने ही तीव्र किया जाता है?'

१ ए० बी० कौप, पृ० ६२० ए० ए०, पृ० २१४

२ कलिविदम्बन, पृ० ३४ काव्यमाला भाग ३, (निरुपगतपर प्रैस, १९०८ ई०)

३ यही, पृ० ६८ " " " "

४ सोकोलित मुक्तावली पृ० २७ काव्यमाला मुष्य ११, १९३३ ई०।

उपयुक्त विवरण से विदित होता है कि भारत में ही प्रत्यक्ष नीतिकाम्यों की रचना फुटकर विषयों पर नीरस पद्यों में हुई परन्तु फ़रस स्वाभि-सेवक बारांगना, कसा बर्ष, धाम्नि कसिकास समा रंजन धावि विष्टिष्ट विषयों पर स्वतन्त्र काम्यों का भी प्रणयन होने लगा जिनमें सूक्तियों और सुन्दर काम्य की भी कमी नहीं।

(ख) धन्यापदेशिक नीतिकाम्य

नीतिकाम्य के इस रूप में उपदेश किसी धर्म्य व्यक्ति या वस्तु द्वारा दिया जाता है प्रत्यक्ष नहीं। इस प्रकार की सर्वप्रथम रचना धम्मट-कृत 'धम्मटगतक' (नवीं शती ई०) है जो सुन्दर, लोक-प्रिय तथा स्वतन्त्र चिन्तन की परिचायक है। कुछ हीन व्यक्ति को बड़ा नाम देना दुष्टों का ही काम है इस भाव को यों व्यक्त किया है—

सूर्याभ्यन्त यन्मग्गभ्यन्तस्वसि तत्कृतम् ।

अद्योत इति कीटस्य माम् दुष्टेन केनचित् ॥^१

'जो सद्योत' नाम बग्ग को भी नहीं केवल सूर्य को सुहाता है वह मजाने किस दुष्ट ने एक कीड़े का से दिया है।

काशमीर में ग्यारहवीं शताब्दी के धम्मट ने धम्मसु ने 'ध्यायितमाला घटक' की रचना की जिसमें सहज काम्यत्व का प्रभाव है।

पंडितराज जगन्नाथ के 'ध्यायिनीविज्ञान' के अंतिम तीन विभाषों—'शृंगार कश्य ध्याय'—में भी नीतिकाम्य के कुछ सुन्दर निरूपण मिलते हैं परन्तु प्रथम—'प्रास्ताविक'—विभाषा तो कहलाता ही 'ध्यायपदेश घटक' है और यह इस शैली के नीतिकाम्यों की सुन्दरतम रचना है। किसी रूपण बनाकर को सक्ष्य बनाकर कवि कासार को कहता है—

इयस्यां संपत्तावपि च सलिलानां स्वमधुना

न तुष्यन्मार्तानां हूरसि परि कासार सहता ।

निदाबे चण्डीयो करति परितोऽप्रारनिकरान्

कृमीभूत' केवामहह परिहृतामिति कानु ताम् ॥^२

'हि कासार इस धपार कम-सपरा के रहते हुए भी यदि तु व्यासों की व्यास हुरन्त घात नहीं करता तो फिर जब भीष्म में मूर्ख की धपारभृति स तु भीणतोय हो जाए तो तब किसकी व्यास बुझाएगा ?'

'ध्यायपदेश घटक' में नीतिकाम्य बीसति न धपनी पसाधारण कल्पना का पुष्ट प्रयास दिया है और यह इस शैली की उत्कृष्ट रचनाओं में एक है। बीरेस्वर का

१ धम्मटगतक, पद्य १३ अङ्कः सूचितसुवतावली पद्य ७३

२ ध्यायिनीविज्ञान प्रास्ताविक विभाषा पद्य ४१

'धर्मोक्तिस्तक' भी अनिश्चित कास की उत्कृष्ट रचना है। 'चातक छतक' भी इसी प्रकार की एक प्रख्यात कृति है जिसमें चातक के चरित्र द्वारा मनुष्य को मान-रक्षा का उपदेश दिया गया है।

बहरि प्रत्यक्ष नीतिकाम्यों की अपेक्षा आन्वयवैदिक नीतिकाम्यों की संख्या खूब है तथापि नीत्युपदेशों के मध्य होने के कारण को ध्यानाकर्षता तथा मार्मिकता आन्वयवैदिक काम्यों में है, वह प्रत्यक्ष नीतिकाम्यों में नहीं।

(ग) सुभाषित-संग्रहों में नीतिकाम्य

सुभाषितों या सूक्तको क संग्रह की प्रथा भारतवर्ष में चिरकाल से प्रचलित है। इन संग्रह-ग्रंथों में नवरस परब्रह्म तु मद्य धिक् ध्यादि विषयों के धर्मितिक नीति काम्य भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। ऐसे संग्रहों में प्राचीनतम संग्रह का नाम 'कबीरबचन-समुच्चय' है जिस में ईसा की बसबी सती के धर्म^१ में किसी धर्मग्रन्थनामा व्यक्ति ने १२१ पद्य संकलन किया। धोमेधर ने इसी बारहवीं सती के पूर्व^२ में अस्मिता-विश्रामसि^३ का संकलन किया जिसमें धर्मके विचारों तथा कथाओं का सुन्दर परिचय दिया गया है। धोमेधर ने 'सुखितकलासूत' या 'सुखितकलासूत' (१२०१ ई०)^४ में ४४६ कवियों की २१६० सूक्तियों का संकलन किया। बहुरा ने अपनी 'सुखितकलासूत' (१२३७ ई०)^५ में जहाँ २४४ कवियों के १७६० सुभाषित संग्रहीत किये हैं वहाँ सगरी विषय-सूची भी दी है। प्रसिद्ध वेद भाष्यकार सायणाचार्य ने इसी बारहवीं सती में सुभाषित सुभाषित^६ नामक संग्रह का संकलन किया। मधुसूदन उशी धर्म^७ धोमेधर ने 'सुभाषितसंग्रह' में १६३ धोमेधर के लीके ४६०६ सूक्तियों का संग्रह किया। काश्मीरी कवि बलभद्र ने 'सुभाषितासूत' में १२२७ सूक्तियों का संग्रह किया। यह संग्रह काश्मीर-नरेश सुसताल जैमलधरीम (१४१७-६७ ई०)^८ के परब्रह्म किया गया होना क्योंकि बलभद्र ने उसके मुकताल के समकालीन जैन राज का उल्लेख किया है। मधुसूदन इसी संग्रह की सहाय्य के उत्तरार्द्ध में

१. एब० ली० एल० एल० पृष्ठ १०४
२. वही पृष्ठ ८३३ ३४
३. इसी का नामांतर 'मानसोक्तास' है।
४. एब० एल० एल० पृष्ठ २१२
५. एब० ली० एल० एल० पृष्ठ ३८३
६. वही पृष्ठ ३८६
७. एब० ली० एल० एल० पृष्ठ ३८६
८. वही पृष्ठ ३८७
९. वही पृष्ठ ३८७

शक्तिशाल्य कवि हरिकवि न 'हारावलि' वा सुभाषित हारावलि में उत्तरी तथा बसिणी भारत के कवियों की सूक्तियों का संकलन किया। उसने जगन्नाथक भामिनी-बिसास' के परिचित प्रकृती दरवार के किसी प्रकृतीय काविसास के सुभाषित भी उद्धृत किए हैं। सुभाषितों के संग्रह की यह प्रथा हमारे समय तक चली आ रही है।^१

उक्त संग्रहों में जहाँ बहुत से सुभाषित सुपरिचित या अल्पपरिचित कवियों के उपलब्ध होते हैं, वहाँ अनेक अज्ञात-नामा कवियों के भी। एष ही प्रशातकृत^२ तथा अल्पपरिचित कवियों के एक-दो पद्य भी उद्धृत किये जात हैं—

सति पुष्पप्रकर्षेण नीतिर्बन्ध सपुष्पम् ।

कि बालित्त्वपरिसिपिप्ता हर्म्यजीर्ण ह्यीतयो ॥^३ (कस्यापि)

'पुष्पों का उदय होने पर भी छद्म के बिना लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती। क्या बगिय की दुकान पर पड़ी हुई हरक से अमीण रोय बुर हा सकता है ?

रिक्तताः कभसि पटवरतुन्दास्त्रलसा भवन्ति ये सुरत्या ।

सेवां जसोकसादिब पुस्तानां रिक्तता कार्या ॥^३ (धर्मदस्य)

जो सेवाक निर्धनता को अकस्मा में कायकुशल रहते हैं और धनी होने पर भ्रामसी हो जाते हैं उन्हें समृद्ध होने पर औषों क समान रिक्त कर देना चाहिए।

स्मरण रहे कि सुभाषितसंग्रहों का नीतिकाम्य कवापि सूक्तिकाम्य से निम्न कोटि में नहीं जाता। अनेक स्थलों पर तो यह अपनी उत्कृष्ट कल्पना और व्यंगना के कारण उत्तम काम्य में सहज ही परिणत हो सकता है।

संस्कृत के नीतिकाम्य की व्याख्यान

अर्थ विषय

गौरवपूर्ण पत्रिण तथा अल्प ओदन व्यतीत करने के लिए अर्थवित्त नीति क जेब में धरिण की अणुममुरता सत्यभाषण वाग्मिता बाहुमाधुयं काम बध विवेक विद्वता विद्या वा महत्त्व विघ्न तथा साधन तत्त्वस्वता मनस्विता अयोग परोप कार, अर्थ धीरता धम अविन विनय क्षया तथा उदारता धीम धीर अतोप की उपादेयता पर विरौप धम दिया गया है। इनके विग्न विवत्पन अगुत तथा अट्ट भाषण, वैशुन्य वाचामता धविबेक मुखरक काम शोभ शोभ मोह अहकार

१ पत अठारहों के उत्तरार्ध में डॉ० बोटलिक ने संस्कृत साहित्य की सुन्दरतम सूक्तियों को 'इन्द्रके इन्द्रे में संकलित किया। सुभाषित रत्न भाष्यापार नामक प्रसिद्ध सुभाषित संग्रह का संकलन का० वा० वरब ने किया जिसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

२ अहल सूक्तिसुक्तान्वली, पृ० ४०५।१६

३ अहल सूक्तिसुक्तान्वली पृ० ४०५।१६

‘अन्योन्यसहचरक’ भी अनिर्दिष्ट काल की उत्कृष्ट रचना है। ‘चातक सचक’ भी इसी प्रकार की एक प्रख्यात कृति है जिसमें चातक के चरित्र द्वारा मनुष्य को मान-रक्षा का उपदेश दिया गया है।

यद्यपि प्रत्यक्ष नीतिकाम्यों की अपेक्षा अन्त्यापेक्षिक नीतिकाम्यों की संख्या कम है तथापि नीत्युपदेशों के अत्यन्त होन के कारण को ध्यानाकर्षक तथा मार्मिकता अन्त्यापेक्षिक काम्यों में है वह प्रत्यक्ष नीतिकाम्यों में नहीं।

(ग) सुभाषित-संग्रहों में नीतिकाम्य

सुभाषितों या सूक्तियों का संग्रह भी प्रथा भारतवर्ष में विरकात् से प्रचलित है। इन संग्रह-ग्रंथों में तदवस्य पद्य-श्लोक गद्य-श्लोक आदि विषयों का अतिरिक्त नीति काम्य भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। ऐसे संग्रहों में प्राचीनतम संग्रह का नाम ‘कवीन्द्रकवच-समुच्चय’ है जिसमें ईसा की षष्ठी शताब्दी के आरंभ में अश्वमेध नामक व्यक्ति ने २२२ पद्य संग्रहित किये। सोमेश्वर ने ‘इक्ष्वाकु-विरचित शतिका’ के पूर्वार्ध^१ में अमिसवितार्थ-विन्दामसि^२ का संकलन किया जिसमें अनेक विद्याओं तथा कलाओं का सुन्दर परिचय दिया गया है। श्रीधरदास ने ‘सुकृति-कल्याणमृत’ या ‘सुकृति-कल्याणमृत’ (१२०१ ई०)^३ में ४४६ कवियों की २३६० सूक्तियों का संकलन किया। बह्मण ने अपनी ‘सुकृति-सुखावली’ (१२२७ ई०)^४ में कुल २४३ कवियों के १७९० सुभाषित संग्रहीत किये हैं वहीं उनकी विषय-सूची भी दी है। प्रसिद्ध वेद भाष्यकार शाबला व्यास ने ईक्ष्वाकु-विरचित शतिका के ‘सुभाषित सुभाषित’^५ नामक संग्रह का संकलन किया। समय-समय उसी समय^६ धर्मचर ने सार्वभरपद्धति^७ में १६३ श्लोकों के नीचे ४६०९ सूक्तियाँ संकलित कीं। काश्मीरी कवि बल्लभदास ने ‘सुभाषितावली’ में ३१२७ सूक्तियों का संग्रह किया। यह संग्रह काश्मीर-नरेश कुलताम जैनसहस्री (१४१७-१७ ई०)^८ के पश्चात् किया गया होता क्योंकि बल्लभदास ने उससे सुकृतान्त के समकालीन बोन राम का उल्लेख किया है। सम्भवतः ‘इक्ष्वाकु-विरचित शतिका’ के अन्तर्गत^९ में

१ एक० शी० एत० एत० पृष्ठ १०४

२ बह्मण पृष्ठ २३१ ४४

३ इसी का नामांतर ‘भावलोकात्’ है।

४ एक० एक एत० पृष्ठ २२२

५ एक० शी० एत० एत० पृष्ठ ३०५

६ बह्मण पृष्ठ ३०२

७ एक० शी० एत० एत० पृष्ठ ३०६

८ बह्मण पृष्ठ ३०७

९ बह्मण पृष्ठ ३०७

राज्यात्म कवि हरिकवि न 'हारावलि' वा 'सुभाषित हारावलि' में उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के कवियों की सूक्तियों का संकलन किया। उसने अपममार्ग के भामिनी-विद्यास के परिचित चक्रवर्ती दरवार के किसी चक्रवर्तीय कामिदास के सुभाषित भी उद्धृत किए हैं। सुभाषितों के संग्रह की यह प्रथा हमारे समय तक अभी धा रही है।^१

सबसे पहले में वहाँ बहुत से सुभाषित सुपरिचित या अत्यपरिचित कवियों के उपलब्ध होते हैं वहाँ अनेक प्रजात-नामा कवियों के भी। ऐसे ही अज्ञातकृत तथा अत्यपरिचित कवियों के एक-दो पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

सति पुष्यप्रकर्षेऽपि श्रीनिर्बन्धः समुद्यमः ।

दि कलिन्विपसिद्धिपता हृष्यजोर्लं हीतको ॥^२ (अस्यापि)

'पुष्यों का उदय होने पर भी उद्यम के बिना लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती। क्या अनियम की दुकान पर पकी हुई हरेक से अजीब रोग दूर हो सकता है ?

रिक्तता कर्मणि पदवाशुक्लास्तद्वलसा भवति ये सुरयाः ।

तेषां कर्त्तव्यतादिषु पूर्वज्ञा रिक्तता कार्या ॥^३ (अर्थतस्य)

जो वेदक निर्भरता को प्रवस्था में कार्यक्षम रहते हैं और भती होने पर भालसी हो जाते हैं उन्हें समृद्ध होकर पर कौशलों के समान रिक्त कर देना चाहिए।

स्मरण रहे कि सुभाषितसंग्रहों का नीतिकाम्य कवावि सूक्तिकाम्य से निम्न कोटि में नहीं आता। अनेक स्थलों पर तो यह अपनी उत्कृष्ट कल्पना और व्यंजना के कारण उत्तम काम्य में सहज ही परिणत हो सकता है।

संस्कृत के नीतिकाम्य की आलोचना

अर्थ विषय

गौरवपूर्ण पवित्र तथा सफल जीवन व्यतीत करने के लिए अत्यन्त नीति केंद्र में चर्च की अणुभंगुरता, सत्यमापण वाग्मिता याज्ञानिक्य, मन इय विवेक अद्वैता विद्या का महत्त्व, विद्यन तथा छात्रन उच्चस्विका भवतिवता उद्योग परोपकार, धर्म कीरता, धर्म भवित विमय क्षमा तथा उदारता, शीघ्र और संतोष की उपादेयता पर विशेष बल दिया गया है। इनके विरुद्ध विकल्पन अणु तथा अणु भाषण, वैदुष्य वाचामता अविशेष भूकरक काम शीघ्र शीघ्र मोक्ष अहकार,

१ मत शास्त्री के उत्तराह में डॉ० बोटनिक ने संस्कृत साहित्य की सुश्रुततम सूक्तियों को 'ब्रह्मो स्मृति' में संकलित किया। 'सुभाषित रत्न भाण्डाकार नामक प्रसिद्ध सुभाषित संग्रह का संकलन का० वा० परब ने किया जिसके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

२ अन्वयः सूक्तिसुभाषितो, पृ० ४०४।१६

३ अन्वयः सूक्तिसुभाषितो, पृ० ४०५।३३

मरसर्ब कायेभ्य, धावस्य कृत्तयता तथा स्वार्थ के परिहार की प्रेरणा की गई है।

पारिवारिक नीति के क्षेत्र में कहीं तो बृहत्सामय को धम्य कहा गया है और कहीं बभ्रव्य। उदाहरण यह प्रबन्धयता वा निष्ठा साधनों पर प्रबलनिष्ठ है, निरपेक्ष नहीं। यदि भाषास उत्तम, काम्या मृदुभाषिणी, पुत्र विमयशील, शौर शैवक भासा-पराकृत हो तब तो बृहत्सामय के सामने बिकृत भी कूटित है^१ और यदि घर कुमाच्छन्न हो, कार्य कटुभाषिणी हो, स्वामी श्रेणी हो और शिशुओं की शिल्पाहृत हो तो बृहत्सामी विवकार्य है।^२ काम्या की अपेक्षा पुत्र को सुभ माना गया है। काम्या के योग्य घर तथा घरके नारी सुख के सम्बन्ध में बभ्रव्य चिन्तित हो सठते हैं। पुत्रों तथा पौत्रों का धम्य बृहत्समी धम्यता का सुभक माला जाता या परन्तु धनेक निर्भुण पुत्रों की अपेक्षा एक ही मुणी पुत्र तथा निर्भुण पुत्र की अपेक्षा निस्त्वानात्म श्रेष्ठ सम्भवा जाता वा।

पुत्रों से बभ्रव्य-सेवी, विद्वान्, धार्मिक कूर, विनयी बनी दासी तथा बभ्रव्यी होने की धादा की जाती को; अन्धों की धादा न मानने वाला राठ को बिसम्भ से घर छोड़ने वाला राठ बभ्रव्यी कुमतिवों से पैद-काड़ करने वाला, सम्बन्धियों के हित-कर बभ्रव्यों पर कूट होने वाला साधुओं का निष्क तथा पुत्रों को धिम मानने वाला पुत्र कुपुत्र कहा जाता वा।^३

सामाजिक नीति के क्षेत्र में धञ्जन सुभिन, पुत्र, उत्संपति कुत्तनू तथा भासा-पराकृत शैवक विधेय प्रबन्धनीय कई धये हैं और कुत्तन कुमिन, कुत्तपति वेस्वाययक, व्यभिचार तथा परबृहवास निष्कनीय। विद्या विनय धादि उत्तुर्णों से विहीन हो जाने के कारण स्त्री पक्षे के समान संभाव्य नहीं रही। वेराम्यप्रधान बीड तथा वैभवर्ध में उठे विधेय निष्क कहा गया। वैदिक काल में साम्राज्ञी^४ मानी जाने वाली भारी बीरे-बीरे पुरानी प्रतिष्ठा से रहित जाती बनी गई। धरिभ प्रप्यता के कारण पौराणिक, यत्नितता श्रेष्ठ हिंसा तथा शौर्य के कारण पुणेहित बभ्रव्यता, कूरता मद्य-मांस ब्रह्मण पर-निष्ठा तथा उत्कृता के कारण कायस्व कुत्तित कई गये हैं।^५ पुत्रवों में नारी तथा स्त्रियों में मात्तम श्रेणी ही कृत सम्भवी गई जैसे बभ्रव्यों में कीया और पशुधों में बीडक।^६ स्व-स्व बभ्रव्यधायों में कुत्तयता वा कुत्तयता तथा धम्य मुत्तों वा शौर्यों के कारण वेध क्वि क्वोत्तियी पंक्ति बंधाकरण, नीमात्क,

१ कुभाषितरत्नभाष्यापारद् (निर्तनभावर प्रेत बभ्रव्य, १२१२ ई०) पृ० ५६, बृहत्सामयप्रवर्तता पद्य ४ ॥

२ कहीं, पृ० ५१, बृहत्सामयप्रवर्तता, पद्य १।

३ पु० २० भा०, पृ० ६०, कुपुत्रनिधा, पद्य २, ६, १२

४ श्रुत्येव १०।५२।४६

५ पु० २० भा० पृ० ४४ ४३

६ बालक्यनीति पु० २४, पद्य २१

धैर्यात्मिक, तथा छान्दस सोम भुक्त्य या निम्न माने गये । विद्वानों का निर्बाह प्रायः व्यापारियों के धान्य से हुआ करता था, घटएव वै स्तोत्रम्य कह गये हैं ।

सांसारिक सुखों तथा समाज में सम्मान के साधन बन का धार्मिक नीति में प्रमुख स्थान है । पुण्य-गण-भूषित भी मानव वनाभाव के कारण समाज में उपेक्ष्य बन जाता है और शोच-समुदाय से दूषित होने पर पनीसमानित^१ । इसी कारण नीति काम्यों में बर्ही बन व धर्मियों की प्रचुर प्रशंसा उपलब्ध होती है बर्ही शरिद्रय और शरिद्रों की निम्ना । परन्तु यह बात ऐकान्तिक नहीं है । मन के उपाजंन रक्षण धारि में विविध कष्ट होते हैं और समृद्ध होने पर मनुष्य में घहकार, शरिद्रभय धारि शोच भी सहज ही धा जाते हैं । घटएव कहीं-कहीं मन और धर्मियों की निम्ना भी कृष्टि बाधर होती है ।^२ लक्ष्मी की अचलता तथा न्याय से विज्ञोपाजंन पर भी दम-तन भूक्तिर्वा मिलती है ।^३ अण भिसा, सेवा, सेवकों तथा याचकों को निम्न माना गया है और उद्योग द्वारा जनोपाजंन की प्रबल प्रेरणा की गई है ।

दुष्ट प्राणियों के प्रति नीति में विशेष परिवर्तन हो गया । बौद्ध तथा जैनधम के प्रभाव के कारण पशु-हिसा निम्न हो गई और प्राणियों के प्रति बया परम कर्तव्य । मांस-भोजन इस प्रकार त्याग्य माना गया—

‘न घर में धासकत व्यक्ति विद्वान् हो सकता है न मांस-भोजी दयाभु, न धन का सोमी सन्धा हो सकता है न कामुक मानव पवित्र ।’^४

पशु-पक्षियों की हत्या ठो दूर, उनस घनेक घिसारें मैने के उपदेष्ट धिये गये ।^५ जैन नीतिकारों ने ठो मनु-मनिसवों की हत्या स उपग्न होने क कारण मनु को भी सर्वथा त्याग्य कहा ।

सामान्य विचरों में से कर्म और देव दोनों हो पर नीतिकाम्यकारों ने रचना की है । जहाँ देव के प्राबल्य को स्वीकृत किया गया है वहाँ कर्म को उससे भी धार्मिक बलवान् इस कारण बताया गया है कि पूर्व जन्मों में कृत कर्म ही मनुष्य के भाग्य निर्माता होते हैं । कर्म की महत्ता विभाता स भी धार्मिक कही गई है क्योंकि वह नियत कर्मों का फल पाव दे सकता है, धर्म्य कुछ विवाद-संवार नहीं सकता ।^६ संहिता काल की ऐहिकता कर्मण लीण होती गई । अरविचरों तथा अराम्यप्रबल जैन और बौद्ध धर्मों के प्रबाह के कारण यह लीक स्पृहणीय स्थान न रहकर दुस्तर सागर-सा प्रतीत

१ श्री० इक्ष्णु० इक्ष्णु० पृ० २७।३६०

२ श्रीमद्भागवत महापुराण १।१२।३।४२२ तथा १०।१०।११

३ श्री० इक्ष्णु० इक्ष्णु० पृ० ११।४६१

४ चातक्य नीति, पृ० ४७।४

५ बर्ही, पृ० २८-२९

६ घटकरवच, नीतिघटकरव, पृ० ४३।६।

होने लगा । तब, उसमें तथा विषयों का त्याग ब्रह्म के विषेय उपाय माने गये । यद्यपि नीतिकर्मों का मुख्य उद्देश्य भोज-व्यवहार की सिखा देना ही था तो भी परंपरागत धार्मिक संस्कार इतने प्रबल थे कि नीतिकार ब्रह्म-तत्त्व मुक्ति परलोक धर्म धार्मिक विषयों पर सिद्धते के मोक्ष का संकरण न कर सके ।

इनके परिचित मामलों को परमार्थ की ओर प्रवर्तित करने के लिए माया की मोहकता का दमनास के विकट बुद्धों का तथा फल की बलवत्ता का भी बहुत उल्लेख हुआ है । जीवन-सुखम दोनों ही देखते हुए तारक्य तथा निर्बलता व अज्ञान को जतनी होने कारण ब्रह्म भी निन्द्य मानी गई है । माया स्वायं रचवाने तथा धनैक प्रपमान कराने वामे उदर तथा क्षुधा को भी धाड़े हाथों सिखा गया । त्याग के महत्त्व का भी धनेक नीतिकाम्यों ने बलान किया है । मन, बुद्धि अनुभव धादि का बर्द्धक होने के कारण प्रायः प्रवास प्रशम्भ ही माना गया है, परन्तु उत्सम्भन्धी कष्टों तथा काम्ता-विबोध-अनिष्ट वैदमा के कारण कहीं-कहीं उसकी महती भी की गई है । मनुष्य के आचार-विचार के बिबाद का कारण कतिबुध को भी स्वीकार किया गया है तथा बीबों और बुद्धि धादि के नाशक होने के कारण प्रायः यथ तथा, प्रायः धादि मादक पदार्थों को त्याग्य कहा गया है ।

पिछले दो हजार वर्षों के संस्कृत नीति-काम्य की वैदिक नीति काम्य से तुलना करने पर विदित होता है कि जहाँ उत्तम मनुस्मृत्युक्त ज्ञान परोपकार, प्रतिबन्धना दान पुण्यार्थ धादि पुरातन विषय यथापूर्व चलते रहे वहाँ धनेक नूतन विषयों पर भी नीतिकाम्य को रचना हुई । नूतन विषयों को तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—(१) स्तुर्य (२) निन्द्य (३) निमित्त ।

१ स्तुर्य विषय—बुद्धि विज्ञान सुखन व्यापारी राजा महिषा वैराम्य धादि ।

२ निन्द्य विषय—सूक्ष्म बुद्धि तारक्य बार्द्धक मृत्यु, कन्यापितृत्व वेत्ता नयन व्यभिचार सेवा सेवक पुणेहित नापित कायस्थ, मनुमयस्य यत्तयाम बृहस्पति ज्ञान भावा ईक विषय संसार धादि ।

३ निमित्त—इस वर्ग में वे विषय परिगणित हैं जिनकी कहीं प्रशंसा है तो कहीं निन्दा । सद्गुण-भूषित होने से वे स्तुर्य तथा दुर्गुण-भूषित होने से महती गद्दे गद्दे हैं । जैसे पाईस्य धन, पुत्र, मित्र वैवाहिक तथा करस्य भीमासक ज्ञान्ध, बँध, बनि बाह्यण स्त्री प्रवास धादि ।

विषय-विस्तार के कुछ सामान्य कारणों का उल्लेख ऊपर यथ-तथ किया गया है परन्तु मुख्य कारण है—ऐहिक बुद्धि । पहले कथम यह था कि वैदिक कृते प्रशम्भ हों, स्वर्ग कृते प्राप्त हो ब्रह्मत्व की उपसम्भि कर्षोकर हो । परन्तु पर लक्ष्य बहुत कुछ परिवर्तित हो गया । यद्यपि पारलौकिक तथा धार्म्यात्मिक विषय निताम्न विरम्भ न किये जा सके तो भी धार्मिक बल धन विषयों पर दिया गया जिन का ऐहिक जीवन से विभिन्न सम्बन्ध है जैसे-धन मान योर्न सूक्ष्म बन्धित, सज्जन विषय धनु धादि ।

भाव यह कि निम्नवत् की प्रवेजा धम्बुदय पर दृष्टि अधिक बन गई ।

माया—

माया में भी पर्याप्त परिवर्तन हो गया । नैतिक माया के नामों तथा धारणाओं के बहुत से रूप लुप्त हो गये । धर्म-धर्म-माया पाणिनीय व्याकरण के अनुसार बनने लगी थीर स्वाभाविकता का स्थान सम्बन्ध-सम्बन्ध समासों तथा साहित्यिक परिष्कार ने ले लिया । प्रारम्भिक रचनाएँ तो प्रायः धम्बुदय और धार्मिक छन्दों में हुई परन्तु कल्प-यासिनी बलन्तवित्तका मन्वाकास्ता धार्मिकविक्रित विकरिणी उपजाति धार्मिक धर्मके बड़े-बड़े वृत्त प्रयुक्त होने लगे । नैतिक नैतिकत्व में धर्मकारों का विशेष प्रयोग न था परन्तु संस्कृत नैतिक-साहित्य में नैतिक तत्त्व को उपयुक्त दृष्टियों से जनवृत्त करते की तथा विभिन्न धर्मकारों के प्रयोग की प्रथा कल्पना बढ़ती गई ।

रस भाव

यह भी निस्संकोच कह सकते हैं कि नैतिक नैतिक-काव्य की प्रवेजा संस्कृत नैतिकत्व के द्वारा रूप में रघों तथा नामों का उन्मेष अधिक होता है । महाभारत काण्वयनीति धादि में यह समता बाड़े अधिक न हो परन्तु सुन्दर्याव्य मन्मत खमेन्द्र जयन्त्या धादि के नैतिकत्व भीरस नहीं कहे जा सकते । वेदार्थों की शृंगार-प्रियता का बर्णन हास्वरस की इस उक्ति में देखते ही बनता है—पिता की मृत्यु पर बार्तामता हा तात ! हा तात ! हा तात !' ही कही हुई रोती है जिससे कि कवित पात से रचित धर्मों को लाली मिट न जाए । 'एक मृगी द्वारा कथित धीर धाबेट की निम्नता का प्रतिपादक निम्नस्व स्लोक कस्तुरस्रोत्रे में पूर्णतया समर्थ है—

धरे धिकारी मेरे धरीर का सारा मांस से जाओ परन्तु मुझे धीर मेरे स्तनों को छोड़ जाने की ह्वा करो । मेरे बच्चे धमी पाव के कौर लाना नहीं छोडे हैं, वे दुःखी होकर मेरे माय को देख रहे होंगे ।'

1 विवति मृते धनि हि केव्या रोदिति हा तात तात तातेति ।
 उपयुक्तस्यविरवीटिकप्रतिताधररंमर्मगमयात् ॥

(उक्तस्य बहूकुत सुकितमुक्तावली, पृ० ३११)

पिता धादि धीष्टय धारों के बन्धवारण से लाली के मिटने की धाशंका है

2 धायाय मांसमक्षिं स्तनवर्धनमे
 मां मुक् बागुरिक धादि कुक् प्रधाबम् ।

सीधन्ति ध्यन्तवतपदुलानमिहा

ममार्थबीजलसरा धिसको मदीया ॥

(नरवैधर्मण बहूकु-कत सुकितमुक्तावली, पृष्ठ ३१३)

द्वितीय प्रकार ऐक्यत्वता यन्त्रित्वता धर्मा, सारता उत्साह, परोपकार भावि भावों का संचार करने में नीतिकाम्य सर्वथा समर्थ है ।

इस मरसता का अरम प्ररुप घन्नापदेशिक नीति-काम्य में उपलब्ध होता है । जिन प्राणियों तथा वस्तुओं को संबोधित कर धर्मोपनिर्मा रबी गई हैं यवकी गणना पुष्कर है । देवताओं में इन्द्र शिव राम आदि, मनुष्यों में सुबर्णकार, कर्ण बार भाभाकार आदि पशुओं में सिंह, पक्ष रासभ आदि पक्षियों में हृत्, कौकिल काक आदि मृगणों में हार कंडल बलय आदि, तत्त्वों में पृथ्वी जल आकाश आदि ग्रहों में सूर्य चंद्र मलग्न आदि जभासवों में समूह नदी, सर आदि प्रम्विनों में रत्न, संस बावानस आदि वृक्षों में कम्प अंबन, अरहत्त्व आदि धीर वृष्यों में पाटल बकुल पद्म आदि के मिय मनोहर उपदेश दिए गए हैं ।

काम्यविधान

काम्यविधान की दृष्टि से संस्कृत का नीति-काम्य दो रूपों में उपलब्ध होता है—प्रबन्ध और मुक्तक । रामायण महाभारत रघुवंश तथा अभिज्ञानशाकुन्तल आदि प्रबन्ध और बृहत्काम्यों के नीतिकाम्य को प्रबन्ध नीतिकाम्य कह सकते हैं और बालक्यनीति भर्तृहरि-कृत नीतिशतकादि को मुक्तक नीतिकाम्य । मुक्तकों के भी दो भेद किए जा सकते हैं—वेद्य मुक्तक और पाठ्य मुक्तक । स्तोत्र-मन्त्रादि में धाने वाले पद्य वेद्य मुक्तक के अन्तर्गत हैं और शेष पाठ्य मुक्तक में । वाठ्य मुक्तक बार वर्गों में विभाज्य हैं—

- १ एक कवि-रचित स्फुट पदों का संग्रह जैसे बालक्यनीति आदि ।
- २ एक कवि-मणीत विषयानुसार संग्रह, जैसे भर्तृहरि-कृत नीतिशतकादि ।
- ३ एक कवि-कृत एक विषय पर अर्बुण रचना जैसे वर्षरत्ननादि ।
- ४ सुभाषित संग्रहों के मुक्तक—जैसे उद्धितकर्त्तृमृतादि में ।

धर्मो

संस्कृत के नीति-काम्यों में निम्नलिखित धर्मियों का प्रलय किया गया है—

- (क) तन्मनिकपक धर्मो
- (ख) उपदेशात्मक धर्मो
- (ग) धार्याभिर्ध्वजक धर्मो
- (घ) प्रबोत्तर धर्मो
- (ङ) कबालक धर्मो
- (च) संस्वारात्मक धर्मो
- (छ) म्यात्प्रात्यक धर्मो
- (ज) धन्नापदेशात्मक धर्मो

(क) नैतिक उपमानों की श्रृंखला

(ख) कूट राजनीति

(ग) रूपककाम्य श्रृंखला

(क) तथ्यनिरूपक श्रृंखला—इस श्रृंखला में कवि नैतिक तथ्यों का उल्लेख मात्र प्रथमी शीर से ध्वन्य पुरुष में करता है। अधिकतर नीतिकाम्य इसी श्रृंखला में सुमिलित हैं। ऊपर कई उदाहरण दिए जा चुके हैं।^१

(ख) उपवेशात्मक श्रृंखला—कभी-कभी कवि पाठकों को विशेष डंभ का आचरण करने के लिए मध्यमपुरुष द्वारा प्रत्यक्ष उपदेश करते हैं। जैसे तुच्छता को काट समा धारण कर सब को त्याग पाप से प्रमत्त कर आदि।^२

(ग) आत्मनिर्मित्यक श्रृंखला—इस श्रृंखला में कवि अपने अनुभवों का प्रकाशन उत्तम पुरुष में करता है। यथा—न तो भुविष्ठ पाने के लिए प्रभु के चरणों का ध्यान ही किया न स्वर्ग में स्थान दिखाने वाले धर्म का ही उपार्जन किया न कभी स्वप्न में चाणक्य-मुक्तों का ही अनुभव किया हम तो केवल माता के दीन-कपी यन के लिए कुहाड़े ही बने।^३

(घ) प्रश्नोत्तरी श्रृंखला—इस श्रृंखला के दो उपमेय हैं—(१) दो व्यक्तियों का परस्पर प्रश्नोत्तर जैसे महाभारत में युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर भीष्म शीर शूत राट्ट के प्रश्नों का उत्तर विदुर देते हैं। (२) कवि का स्वयं ही प्रश्नोत्तर, जैसे—हे विप्र ब्रह्मा जो इसमकर म महाम् कौन है? ताड़ के वृक्षों का समूह। बाटा कौन है? बोबी को प्रात बस्त्र से बाटा है शीर सार्य दे बाटा है। दल कौन है? सब शोप पटाया बन न मारिया हने में वल है? हे मित्र फिर जीते कैसे हो? जैसे विप का कीड़ा विप में।^४

(ङ) कथारमक श्रृंखला—प्राचीन कथाओं तथा पद्य-वर्णनों की कहानियों द्वारा भी नैतिक तथ्यों का निरूपण हुआ है जैसे विदुरनीति में सुन्धवा तथा प्रह्लाद की कथा^५ द्वारा शीर महाभारत के शान्ति-पर्व (अध्याय १३७) में तीन मछलियों की कहानी द्वारा।

(च) सव्यात्मक श्रृंखला—उपयोगी बातें कष्टरूप करने के लिए सत्याए विशेष सहायक होती हैं। संभवतः इसी कारण से नीतिकाम्यकारों ने उनका बहुत प्रयोग किया है। पानि के चतुर्तर निकाम शीरों के स्थापना तथा महाभारत में मह

१ पद्य सति पुण्यप्रकर्षेभिः (प्रस्तुत प्रबन्ध पृष्ठ ७३)

२ शतकप्रथम, पृष्ठ ४०१६६

३ " " , पृष्ठ १४३।४३

४ चाणक्य नीति पृष्ठ १४।६

५ विदुरनीति (गीताप्रेस पोरखपुर, सं० २०११), पृष्ठ १४-१२

प्रकृति पर्याप्त विकसित है। जैसे एक से तब दो पठन तीन से गान, चार से गपन पाँच से खेती और षट्ठों से युद्ध सम्पन्न संरक्षण होता है।^१

(छ) व्याख्यात्मक शैली—कहीं-कहीं पर कवि एकाग्र स्मोक में सूत्र-रूप में प्रतिपाद्य विषय का संकेत करता है और ध्वनिबर्ती अनेक स्मोकों में उनकी व्याख्या देता है। जैसे—सिंह से एक बगुने से एक कुम्हूँ से चार कीए से पाँच कुत्त से छह तथा नौ से तीन पुण प्राप्त हैं। मनुष्य जिन भी छोटे या बड़े काय को करना चाहे, उसे पूर्ण प्रयत्न से करे यह एक गुण सिंह से मीलना चाहिए, धारि।^२

(ज) प्रत्यापदेशात्मक शैली—इस शैली में सम्भावित तो किया जाता है पशु, पक्षी नहीं समुद्र सूर्य, चन्द्र धारि को परस्पर उपदेश का सन्ध होता है कोई जानब या मानवसमुदाय। इस प्रकार इस शैली में ध्वनिबर्तियों द्वारा नीति शिक्षा दी जाती है। पीछे कह चुके हैं कि 'भस्मटटातक धारि काम्य इसी शैली में रहे गए।^३

(झ) नैतिक उपमानों की शैली—इस शैली में कवि का वर्णन विषय तो कोई अन्य ही होता है परन्तु उसका समर्थन या स्पष्टीकरण वह किसी नैतिक उपमान से करता है। पीछे इस शैली का उदाहरण प्रस्तुत किया जा चुका है।^४

(ञ) दृष्ट शैली—सम्भवतः अपना बुद्धिचातुर्य प्रदर्शित करने या पाठकों को विस्मय-विभूषण करने के लिए कविजन कहीं-कहीं बृहार्थक पदों की रचना करते हैं। जैसे बुद्धिमानों का समय प्रातः सुतप्रसंग में बोधहर को स्त्रीप्रसंग में तथा रात को शेर-प्रसंग में व्यतीत होता है।^५ टीकाकारों के बिना यह ज्ञान कठिन होगा कि कहीं दृष्टप्रसंग धारि महाभारत रामायण तथा भागवत या धर्मयत्न हैं।

(ट) एकक काम्य शैली—इस शैली में काम श्लेष मोम मोहू, घर्हकार बिना बुद्धि शब्दा धारि मत के भावों को पात्रों का का कल्प देकर कथाओं या पद्य काम्यों की रचना की गई है। इस शैली के बीच उपनिषदों और बौद्धसाहित्य में मिलते हैं जिनका विकास सिद्धि की 'उपमित भवप्रपञ्च कथा', कृष्ण मिथ के प्रबोधचंद्रोदय' (नाटक) धारि प्रार्थों में हुआ।

१ आणव्य नीति पृष्ठ १८।१२

२ आणव्य नीति पृष्ठ २८।११ २१

३ प्रस्तुत प्रबन्ध पृष्ठ ७१

४ प्रस्तुत प्रबन्ध पृष्ठ २१।^१

५ आणव्य नीति पृष्ठ ४२।११

६ छागशोषीपणित १।२, आतकनिराजकथा के 'धविदुरे निराज' की भारविजय सम्बन्धी धार्यायिका, अथवा छ साहित्य' पृष्ठ ११३।

काम्यगुणों की दृष्टि से संस्कृत का नीतिकाम्य प्रसार-मुख्य-प्रधान है। मानुष्य तथा योज मुख प्रसादवत् प्रकाश न होते हुए भी प्रसंगानुसार पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते ही हैं।

संस्कृत-नीतिकाम्य के सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि सैकड़ों-सहस्रों सूक्तियों ऐसी हैं जो अनेक ग्रंथों में ज्यों-की-त्यों या एकाम्बु-सा या अक्षर के अक्षर से उपलब्ध होती हैं। उनके कर्तव्यों का निश्चय करना प्रसम्भव-सा ही है। उच मुग में जब मुद्रणामयों का अभाव या तथा कवि लोग निज कृतियों में स्वयम्ब का अस्तेष करना अहंकार-मात्र मानते थे ऐसी बात का होना अस्वाभाविक नहीं। कवि वहाँ अपनी रचनाएँ करते थे वहाँ प्राचीनों के सुदर्शों को भी अपनी कृतियों में समाविष्ट करना अनुचित न समझते थे। अर्थ—

अनागतविपाठा न प्रयुत्पन्नमतिश्च यः ।
 इत्येव मुक्तमेवेति शीर्षवृत्ती विनश्यति ॥

महाभारत^१ का यह श्लोक 'आणव्यनीति'^२ तथा 'पंचतन्त्र'^३ में लगभग इसी रूप में दिखाई देता है। इसी प्रकार 'मानुस्मृति' का 'दृष्टिपूर्व' अथवा 'पादम्'^४ 'आणव्य नीति' तथा 'आणव्य-नीति' का 'लोमदत्तेदमुसो न किम्'^५ श्लोक मनु हरिद्वय नीति 'पठक'^६ में भी विद्यमान है।

निन्द्य—उपमुक्त विवेचन का सार यह है कि संस्कृत का नीतिकाम्य अत्यन्त व्यापक और समृद्ध है। वहाँ यह अन्वयविषयक अनेक ग्रंथों में पुटकर रूप से पाया जाता है, वहाँ विगुण ऐहिक व्यवहार के विषय पर संस्कृत में दो-चार नहीं दर्जनों ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। उनके विषयों की व्यापकता अक्षर्यजनक है। ऐसे सगता हैं कि संस्कृत के कवियों की दृष्टि अथवा सम्बन्धित अने-विने विषयों तक ही सीमित नहीं रही ऐहिक-जीवन-सम्बन्धी प्रायः प्रत्येक विषय की तरह तक जा पहुँची। फिर उन विषयों का प्रतिपादन भी शीघ्र पद्यमयी उपदेशात्मक रीति में नहीं किया गया। अधिकांश कवियों ने विविध छन्दों में अनेक रीतियों में विविध रसों में और अलङ्कृत भाषा में उनका

- १ महाभारत, धाम्निपर्व अध्याय ११७।१
- २ आणव्य नीति पृष्ठ ३१।७
- ३ पंचतन्त्र पृष्ठ १६७।१४७
- ४ मानुस्मृति अध्याय ६।४६
- ५ आणव्य नीति, पृष्ठ ४४।२
- ६ आणव्य नीति पृष्ठ ७२।४
- ७ अक्षर्यवपु, पृष्ठ २२।४४

सफसता जगहों पर निर्भर है—सहाजारी विद्वान् मनुमन्त्री के समान भोवों को संभित कर प्रवृत्तिय धामि के तुल्य बमकता है। उसक भोग बन्मीक की प्रति बहते बाते है।^१

संसार की अणुमंभुरता तथा अणु-मरण की प्रवसता दिबाते हुए पस्पद पुष्पीपार्जन की प्रेरणा इस प्रकार की गई है—जो इस लोक को बुसबुसे धीर मृग मरीचिका के समान समझता है, उसे यमराज नहीं देख पाता।^२

जैसे स्वासा नाडी से गौधों को चरामाह में से बाता है वैसे ही बुझापा धीर मृत्यु प्राणियों की धाम्य को से बाती है।^३

बह (पुष्प) मेरे पास नहीं आएगा यह सोचकर पुष्प का ठिरस्कार न करना चाहिए। जिस प्रकार पानी की बूबों के निरन्तर पड़ने से बड़ा मर जाता है इसी प्रकार धीर व्यक्ति बड़ा-बड़ा संभव करता हुआ पुष्प को मर सेता है।^४

पानि-नीति-काम्य की संक्षिप्त समीक्षा

पानि में महारमा बुद्ध के बचनों धीर उन की ध्यास्या का ही बाहुस्य है यह हम ऊपर कह चुके हैं। महारमा बुद्ध ने अपने अपदेश संमकालीन पूर्वी भाषा में दिए थे, जिन का अनुबाव ई० पू० तीसरी सती के लगभग पच्छिमी भाषा पानि में किया गया। इस भाषा के नीतिकाम्य के अधिकतर बर्ण दिए गए हैं, जिनका अन्वेष संस्कृत-नीति-काम्य में किया जा चुका है। परन्तु कई मंत्र ऐसे हैं जिन पर कुट्टि सहसा जा पड़ती है। बौद्ध तथा संस्कृत नीति-काम्यों में ईश्वर शिव विष्णु आदि देवताओं की पूजा करने की तथा वेदबानप को परम प्रमाण मानने की जो प्रेरणा मिलती है उसका इस काम्य में सर्वथा अभाव है क्योंकि महारमा बुद्ध इस विषय में सहासीन रहे धीर सम्भरिषता पर ही विशेष बल देते रहे। निर्माण परसोक स्वर्ग मरक आदि का अन्वेष तथा कर्मों के फल रूप में उन की प्राप्ति का बर्णन पानि-नीति-काम्य में स्वान-स्वान पर मिलता है। इस बात में बह संस्कृत-नीति-काम्य के समान है। यज्ञों में होने वाली जीव-हिंसा को रोक देवामु तथायत का हृदय प्रविष्ट हो गया धीर अर्हते पहिसा पर विशेष बल दिया तथा सोवर्ष एक किए जाने जाने यज्ञों की अपेक्षा मुहूर्त-मात्र की महारम-पूजा को अष्ट बताया।^५

प्राचीनतर काल में बर्ण-अवस्था कर्ममूलक धी परन्तु बुद्ध के समय में बह

१ तिगालमुल पृष्ठ १५ वच १५

२ धम्मपद लोकायगी, गाथा ४

३ , अण्डवगी, " ७

४ वापवप्पी, " ७

५ " अहसतवगी, गाथा ७

बन्धनमूलक हो गई थी। इसी कारण ग्यासप्रिय बुद्ध ने बर्णव्यवस्था को कर्ममूलक मानने का उपदेश^१ देकर ब्राह्मण को खल तथा शूद्रकर्म कहा। यद्यपि पालि-साहित्य में माता-पिता, मुम्बरम आदि बन्ध कहे गए हैं तो भी तत्काल परिवार को बन्धरूप ही माना गया है। संसार को धनित्य भूटा मायामय तथा दुःखद कहकर उसमें प्राप्तिक का निषेध ही प्रधान स्वर है। धरीर को मत्तानार तथा निम्न माना गया है और जरा के कष्टों व मृत्यु की प्रवृत्तता का बार-बार इत्तेकर मोक्षपरायणता का उपदेश दिया गया है। वार यह है कि जिस प्रय-मार्ग को उपनिषदों के उपदेश^२ कहा या उसे पालिनीति-काम्य में हेयतर^३ रूप से विपित किया है। यहिहा समाधिक उपदेश का उदाहरण सदाचार धावि उदा धय मार्ग पर चलने का अधिक उपदेश दिया है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस नीति-काम्य में धार्मिक व्यवहार को ही उच्च कहा गया है, वैश-काम-पान के अनुसार यथायोग्य प्राचरण पर बल नहीं दिया गया।

कर्म विषयों की इच्छा से उदात्त होता हुआ भी पालिनीति-काम्य काम्यत्व की दृष्टि से विज्ञेय महत्त्वशाली नहीं कहा जा सकता। कारण रस तथा भाव ही काम्य की धारणा हैं और इनकी यहाँ म्युता है। माना कि इस काम्य में निर्बेद उदा रता धाम्नि समा दया ईश्वी धादि के मुम्बर उपदेश हैं परन्तु प्राय प्रत्येकतया उपविष्ट होने के कारण ये काम्य नहीं बन पाये। वे समार्थ दिखाते धरस्य हैं परन्तु हृष्य को उन-उन भावों में विभोर नहीं कर पाते। इसका कारण है धर्मिवा की व्यापकता तथा सदाशा-व्यंजना की उपेक्षा।

पालि-नीतिकाम्य केवल मुक्तर काम्य के रूप में मिलता है। महात्मा बुद्ध के उपदेशों के सर्वोच्छेद संग्रह 'बम्मपव' में मुक्तरकों का बर्णन संक्रमण है। 'मुत्तनिपाठ' का स्वान भी परबुद्ध है। जवमें यह धीर यह निधित है। 'विषाकमुत्त' में भयभाग् बुद्ध के वे सुन्दर नैतिक उपदेश हैं जो उन्होंने एक ठेठ के पुत्र को दिये थे। इसमें यह यह धीर मूत्र तीनों व्यवहृत हुए हैं। जावकों की पद्यमयी कथाओं में भी इसी प्रकार कहीं-कहीं नीति के मुक्तरक पा जाते हैं।

इस साहित्य में धनुत्तु, तिप्पु, जपती धादि वैदिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं धनुत्तु छ-छ चरखों के भी विचार देते हैं तो कहीं-कहीं चर्खों के चरखों में धरर-संख्या भी म्युताविक है।^४

रस भाव की म्युतावा को पालि-नीतिकाम्य प्रसकारों के सुमयोग से पूर्ण कर

१ ब्राह्मण बन्धो १४
 २ कठोपनिषद् १।२।१ २
 ३ बम्मपव ईश्व मायवामो तथा तत्तुहावामो
 ४ धमकवामो वावा १, २, ३

सफलता ज्यों पर निर्भर है—सदाचारी विद्वान् यजुसन्धी के समान भोवों को संभित कर प्रज्वलित अग्नि के तुल्य यमकता है। उसके योग बरमीक की गति बढ़ते जाते हैं।^१

संसार की सखमगुरता तथा बरा-बरख की प्रकलता बिसाते हुए धरुष्य-पुष्पोपाजन की प्रेरणा इस प्रकार की गई है—ओ इस सोक को मुसकुसे घोर पुन मरीचिका के समान समझता है उसे यमराज नहीं देख पाता।^२

अंते ग्वासा नाडी से भोवों को बरागाह में से जाता है जैसे ही बुझापा और मृत्यु प्राणियों की प्रायु को से जाती है।^३

बह (पुष्य) मेरे पास नहीं धाएगा यह सोचकर पुष्य का तिरस्कार न करना चाहिए। जिस प्रकार पानी की बूँवों के निरन्तर पड़ने से पड़ा भर जाता है इसी प्रकार भीर व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा संभय करता हुआ पुष्य को भर सेता है।^४

पालि-नीति-काव्य की संक्षिप्त समीक्षा

पालि में महात्मा बुद्ध के बचनों घोर उन की व्याख्या का ही बाहुल्य है, यह ह्य ऊपर कह चुके हैं। महात्मा बुद्ध ने अपने अल्पवेष समकालीन पूर्वी भाषा में बिए वे, बिन का अनुवाद ई० पू० तीसरी सदी के सभभन पच्छिमी भाषा पालि में किया गया। इस भाषा के नीतिकाम्य के अधिकतर बर्ण विषय वे ही हैं बिनका अस्मैक संस्कृत-नीति-काव्य में किया जा चुका है। परन्तु कई भेद ऐसे हैं बिन पर बुष्टि सहसा जा पड़ती है। वैदिक तथा संस्कृत नीति-काव्यों में ईस्वर धिब विष्णु प्रादि देवताओं की पूजा करने की तथा वैदिकानय को परम-श्रेयाख मानने की ओ प्रेरणा मिलती है उसका इस काव्य में सर्वथा अभाव है क्योंकि महात्मा बुद्ध इस विषय में उदासीन रहे घोर संन्यसितता पर ही विशेष बल देते रहे। निर्वाण परलोक स्वर्ग नरक प्रादि का अस्मैक तथा कर्मों के फल रूप में उन की प्राप्ति का बर्णन पालि-नीति-काव्य में स्थान-स्थान पर मिलता है। इस बात में यह संस्कृत-नीति-काव्य के समान है। यज्ञों में होने वाली नीब-हिंसा को देख पदाकु उपागत का हुरब इबित हो बसा और अन्धों में प्रहिंसा पर विशेष बल दिया तप सोम्य एक किए जाने वाले यज्ञों की अथेला मुहुर्व-मात्र की महारम-पूजा को अष्ट बतावा।^५

प्राचीनतर काल में बर्ण-व्यवस्था कर्ममूलक की परन्तु बुद्ध के समय में यह

१ त्रिपालमुत्त पुष्ट १५ वच १५

२ अम्मवह लोकावधो, गाथा ४

३ , बण्डवप्यो, ,, ७

४ पाववग्गो , ७

५ ,, अहस्तवग्गो, गाथा ७

बन्धनमूक हो गई थी। इसी कारण ग्यासप्रिय बुद्ध ने बर्णव्यवस्था को कर्ममूक मानने का उपदेश^१ देकर शास्त्रण को श्रेष्ठ तथा धर्म्य कहा। यद्यपि पाश्चि-साहित्य में माता-पिता, पुत्रवध आदि बन्धन कहे गए हैं तो भी उत्कृष्ट परिवार को बन्धन ही माना गया है। संसार को धर्मिय मूठा मायामय तथा दुःखर कहकर उसमें प्राप्तिका निवेश ही प्रधान स्वर है। धरीर को मसापार तथा निन्द्य माना गया है और जरा क कष्टों व मृत्यु की प्रकृता का बार-बार उल्लेखकर मोक्षपरामर्शता का उपदेश दिया गया है। धार यह है कि जिस प्रम-मार्ग को उपनिषदों के प्रकृष्ट^२ कृदा या उद्ये पाणिनीति-काम्य ने हेयतर^३ रूप से बणित किया है। यहिद्या समाधिक धमता धनासक्ति सदाचार धावि द्वारा धम मार्ग पर चलने का अधिक उपदेश दिया है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस नीति-काम्य में धार्तर्य व्यवहार को ही उच्च कहा गया है, वेद्य-वास-पात्र के अनुधार सभाव्योय पाचरण पर बस नहीं दिया गया।

धर्म्य विषयों की दृष्टि से उदात्त होता हुआ भी पाणिनीति-काम्य काम्यत्व की दृष्टि से विशेष महत्त्वघाती नहीं कहा जा सकता। कारण, रस तथा पात्र ही काम्य की धात्वा हैं और इनकी यहाँ मृतता है। माना कि इस काम्य में निर्बन्ध उदा रता साहित्य समा गया नीची धादि के सुन्दर उपदेश हैं परन्तु प्रायः प्रत्यक्षतया उपदिष्ट होने के कारण वे काम्य नहीं बन पाये। वे धममार्ग दिखाते धमस्य हैं परन्तु धरन को उत-उत धात्रों में बिनोर नहीं कर पाते। इसका कारण है धमिधा की म्यापकता तथा मसाणा-धम्यना की उपेक्षा।

पाणिनीतिकाम्य केवल मुक्तक काम्य के रूप में मिलता है। महात्मा बुद्ध के उपदेशों के सर्वश्रेष्ठ संग्रह 'बन्धनपर' में मुक्तकों का बर्णन संकलन है। 'मुक्तपिपात' का स्वाग भी धरमुक्त है। उसमें यह धीर पद्य निधित है। 'विवातमुक्त' में मयभात् बुद्ध के वे सुन्दर नैतिक उपदेश हैं जो उन्होंने एक सेठ के पुत्र को दिने थे। इसमें यह पद्य धीर पुत्र तीनों व्यवहार हुए हैं। धात्रकों की पद्यमयी कथाओं में भी इसी प्रकार कहीं-कहीं नीति के मुक्तक पा जाते हैं।

इस साहित्य में धमुष्टुप, निष्टुप, अपदी धादि बँदिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं धमुष्टुप छ-छ धरलों के भी विचारें देते हैं तो कहीं-कहीं पद्यों के धरलों में धात्र-सका भी मृतनातिक है।^४

रस भाव की मृतता को पाणिनीतिकाम्य धमकारों के सुमयोय से पूर्ण कर

- १ शास्त्रण धम्यो १४
- २ कठोपनिषद् १।२।१-२
- ३ बन्धनपर देवें धम्यबन्धो, तथा लक्ष्मणायो
- ४ धमकवन्धो, पात्रा १, २, ३

है। पाणि-काव्य सुन्दर स्वामादिक उपमाओं तथा दृष्टान्तों के लिए प्रख्यात ही है। ये उपमाएँ प्रकृति पर प्राकृत तथा व्यापक होने के कारण सहज ही पाठक का मन हर लेती हैं। जैसे—

‘मूर्ख यदि ब्रह्म मर भी बिद्वान् की सेवा करे तो भी बर्म के ज्ञान से जैसे ही सुख रहता है जैसे करछी सूप के स्वाद से।’

राम के समान धाम नहीं है डेर के सुख्य ग्रह (भूत) नहीं है, मोह के सपुत्र ज्ञान नहीं है घोर लृप्या के समान नदी नहीं है।^१

संख्यायमी तथा कूट-बीबी का महाभारत के समान यहाँ भी कहीं-कहीं प्रयोग हुआ है। सम्भवतः तत्कालीन श्रोताओं को प्राश्न्य द्वारा नीति की घोर प्राकृष्ट करने के लिए इनका प्रयोग किया जाता था। जैसे—माता-पिता दो शत्रिय राजाओं तथा संसेवक राष्ट्र को मार कर बाह्यण निष्पाप हो जाता है।^२ उन दिनों के बाता बरख में धसे ही श्रोतावख ऐसी भाषाओं का श्राव्य समझ जाते हों परन्तु मात्र तो हम टीकाकारों की सहायता बिना नहीं जान सकते कि इसमें लृप्या को माता प्रहंकार की पिता श्राव्यत घोर सञ्चेर दृष्टियों को शत्रिय गुणगुण तथा ससारिक सासन्वियों को संसेवक राष्ट्र कहा गया है।

जैसे कि संस्कृत-नीति-काव्य की समीक्षा के प्रसंग में हम कह चुके हैं कि शनेक नीतिपत्र एकाधिक संस्कृत-ग्रन्थों में प्रचलित सही रूप में या न्यूनाधिक भेद के साथ उपलब्ध होते हैं वैसे ही यह देखकर भी प्राश्न्य होता है कि पाणि के शनेक नीति-पत्र संस्कृत के कई प्रबंधों में उपेक्षणीय भेद के साथ विद्यमान हैं। जैसे—

(क) अभिवादनशीलस्य कित्यं बृहोपसेवित
वत्पारि तस्य बर्भन्ते प्रायुर्विद्या यमो बलम् ॥^३
अभिवादनशीलस्त निर्वर्णं ब्रह्मपचायिनो ।
वस्रापो यन्मा ब्रह्मन्ति प्रायु बन्धो मुखं बलम् ॥^४

नीति के इन दोनों पद्यों में अभिवादनशील बृहोपसेवी श्वभित को प्राप्त होने वाले बार-बार शार्कों का संसेवक है। प्रायु तथा बल—ये दो लाभ तो दोनों में समान हैं परन्तु मनुस्मृति के विद्या घोर यद्य रूप दो लाभों का स्वाम यम्मपद में बर्ण घोर सुख को दे दिया गया है। इस प्राश्न्य के अतिरिक्त भाषा-शास्त्र भी कम प्राश्न्यजनक नहीं है। मात्र घोर भाषा दोनों का यह शास्त्र निष्कारण नहीं है।

१ यम्मपद ज्ञानदायी भाषा ५

२ , बही, पलबन्धो भाषा १७

३ बधिकश्लुच बग्यो भाषा ५

४ मनुस्मृति २।१२१

५ यम्मपद भाषा १०५

प्रत्यक्ष ही एक दूसरे का रूपान्तर-सा है परन्तु कौन किस का यह कहना कठिन है ।
 अधिक सम्मानना यही है कि संस्कृत के पद्यों की पालि में रूपान्तरित किया गया है ।
 क्योंकि बम्पद का बाठाबरण (जैसे कि निम्नांकित उदाहरण से भी प्रतीत होता है)
 महाभारत मनुस्मृति धारि की अपेक्षा अधिक शान्त तथा अहिंसामय है ।

(ख) अहिंसकानि भूतानि इच्छेत् विनिहसित य ।
 धारमत्तः सुखमिच्छन् स प्रेय मेव सुखी भवेत् ॥^१
 योऽर्हसकानि भूतानि हिमस्त्रयस्त्रममुल्लेखय्या ।
 स कीर्षन्वन्न मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेवते ।^२
 सुखकामानि भूतानि यो इच्छन्न विहितति ।
 असतो सुखमेतानो वेत्स्य सो न लभते सुखं ॥^३

महाभारत में कहा गया है कि अपने सुख की इच्छा से अहिंसक प्राणियों को
 हथ से मारने वासा मरकर सुखी नहीं होता । मनुस्मृति में उसी विचार को कुछ
 बढ़ाकर कहा है कि मरकर ही नहीं जीवन में भी सुखी नहीं होता । बम्पद में
 महाभारतप्रवृत्त मर कर ही सुखी होने का उल्लेख है परन्तु ध्यान देने की बात यह है
 कि वहाँ महाभारत में अहिंसक प्राणियों को मारने का निषेध है वहाँ बम्पद में
 सुखकामी प्राणियों अर्थात् प्राणीमात्र को ही मारने का प्रतिषेध है । इस प्रकार मातृ
 विकास के द्वारा अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः उक्त पद्यों में पालि नीति
 काम्य महाभारत व मनुस्मृति का लक्ष्यी है ।

४—साहित्यिक प्राकृतों का नीतिकाम्य

पालि के पश्चात् निम्नलिखित पाँच प्राकृतों में साहित्य रचना की गई—
 (१) महापाट्टी (२) शौरसेनी (३) अर्ध मागधी (४) मागधी (५) पंजाबी ।
 यद्यपि प्राकृतों में ऐहिक तथा धार्मिक दोनों प्रकार की रचनाएँ की गईं तथापि यह
 मानना ही पड़ता है कि इनमें धार्मिक तर्क एक ही काम्य-प्रथ ऐसा उपलब्ध नहीं हुआ
 जो केवल नीति-विषयक हो । स्पष्ट रूप में उपलब्ध प्राकृत के नीतिकाम्य को हम दो
 पद्यों में विभाजित कर सकते हैं—
 (१) ऐहिक साहित्य में नीतिकाम्य
 (२) धार्मिक साहित्य में नीतिकाम्य

धार्मिकी कृत्यों में इनका सविशेष बरिचय प्रस्तुत किया जाता है ।

१ बम्पद, पृ० १७१
 २ मनुस्मृति १।५२
 ३ बम्पद पाठा १११

(१) ऐहिक साहित्य में नीतिकाम्य

ऐहिक नीतिकाम्य के चार भेद हैं—

- (क) मुक्तक संग्रहात्मबन्ती नीतिकाम्य
- (ख) प्रबन्धकाम्यान्तर्बन्ती नीतिकाम्य
- (ग) शृङ्खलाकाम्यान्तर्बन्ती नीतिकाम्य
- (घ) काम्यसास्त्रान्तर्बन्ती नीतिकाम्य

क—मुक्तकसंग्रहात्मबन्ती नीतिकाम्य

मुक्तक-खेसी के दो संग्रह उपलब्ध होते हैं—गाहासत्तसई और बज्जा सग्न । गाहासत्तसई (पायासत्तसती) का संग्रह राजा सातवाहन ने, जिन्हें हास भी कहते हैं ३ • तथा ७०० ई० के मध्य में किया गया था। इस संग्रह में कुछ भाषाएँ, हास की हैं और शेष ग्रन्थ कवियों की। गाहा सत्तसई शृंगार रस की बहु धनुड़ी कृति है जिसने संस्कृत की 'योक्तेयन सत्तसतिक' धारि तथा हिन्दी की 'बिहारी सत्तसई' धारि धनेक शृंगारिक रचनाओं को प्रभावित किया। इस शृंगार-प्रभाव रचना में नीति के अन्तर्गत सब्र मुक्तक यत्र-तत्र विकीर्ण हैं। मया कुछ के स्वभाव की श्लेष तथा उपमा से युक्त सुन्दर धनिय्यकित्तों की कई हैं—

बसइ बरिह बैस घसो बोतियन्धतो छिलेह्वसलैहि ।

त बैस घासर्ष बीघसो न्न घडेरुल मइसेइ ।^१

स्नेह (प्रेम रस) के दान से पोषित दुष्ट जिस कर में रहता है, उसीको दीपक के समान बीघ ही मिलन कर देता है।

मुली बनो की मुलकनिष्ठा ने अनित वरिद्धता पर बारिष्म को बिना तुपा उपासम्म निष्ठाकित्त भाषा में इच्छन्व है—

'हे बारिष्म तू सक्षम कुरुल है क्योंकि तू मुखियों त्वाभियों बियकों तथा बिकामियों से अनुराग रखता है ।'^२

बज्जासग्न' माडाराज्जी प्राकृत का सुतरा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है जिसे स्नेताम्बर नैन अपवन्मम ने संगृहीत किया। इसके ४८ परिच्छेदों में ७२५ पद्य हैं जो धार्याछर में उपनिबद्ध हैं। मग्नहकार ने यह संग्रह बर्म धर्ष तथा काम की व्याख्या के लिए किया है परन्तु पुस्तक का बोनित्वाई भाग शृंगार-बियमक है तथा हाससत्तसई से कुछ कुछ साम्य रखता है। इसमें भी नीति की कई सूक्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। जैसे, कुलीन के सत्पसन्तक का प्रतिपादन भी किया गया है—

१ भाया सत्तसती (निर्लज्जापर प्रेस बम्बई १९३३ ई०) पद्यक ० भाषा ३१

२ " " " " " " " ७ ७१

‘कुसीनवन का वाग्बन लोहे की खुंखसाधों तथा धम्म धनेक प्रकार के पाद्य-अन्ननों से भी अधिक पुरु होता है।’ नीति का शुद्ध स्वरूप तो मानो निम्नत्व धरना हित करना चाहिए और यथासम्भव परामा भी हित करना चाहिए, परन्तु वहाँ प्रवृत्त धरने और पराये हित में खुनाथ का धा पके वहाँ धरना ही हित करना चाहिए।^१

प्राकृत-सुभाषितों के संग्रह की यह प्रथा मध्यकाल^२ से होती हुई हमारे समय तक धा पहुँची है। प्राधुनिक ‘प्राकृत सुभाषित संग्रह’^३ तथा ‘सुवितसरोज’^४ में प्राकृत नीति काम्य के धनेक सुन्दर निरुद्धन उपलब्ध होते हैं। जैसे—

निहंति बरुं भरणीयत्तं मि ह्य पाणिं क्खण्णि क्खिण्णि अत्ता ।
पापानं पत्तम्भं ता गण्णं धग्गठारुं वि ॥^५

‘कृपण वन सुमि कोयकर जसमें धरनी उपत्ति पाइ देते हैं। मानो उन्हें नर में जाने का निश्चय होता है इसलिये धरनी उपचा पहले ही वहाँ पहुँचा देते हैं।’
एकस्मिं अह तलाए बेणु पत्तयेए पाणियं पीयं ।
सप्ये परिउमइ विसं बेणु सु खीरं समुज्जवइ ॥^६
‘एक ही सरोवर से बनू और सर्प द्वारा पिया हुआ पानी सर्प में तो विप बन जाता है और वी में दूध ।’

(अ) प्रबन्ध-काव्यान्तवर्ती नीतिकाम्य

प्रवरसेन का ‘राखण बहो’ (राखण वन) या ‘बहुमुहबहो’ (वसमुज्जवण), वाक्पतिराज के ‘पज्जबहो’ (पोज्जवण) तथा ‘महुमहविजय’ और ‘रामपाणिवाह’ का ‘अंसबहो’ माहाराष्ट्री प्राकृत क प्रख्यात महाकाव्य हैं। ‘राखणबहो’ की रचना

१ डा० सरसमसाह धरपासा प्राकृतविमर्श (लसमज्ज, सं० १००६) अध्यायिका ६० ६१२
२ “ ” ६१३
३ नामक पाँच वर्षों की हस्तलिखित पुस्तक (आकार १२ १/२" × ४ १/२") हमारे हस्तके में धाई थी। वर्षों के मध्य में प्राकृत-सुभाषित हैं ऊपर संस्कृत में टीका और नीचे टिप्पणियाँ। मुख्य विषय म्हु पार है।

४ सं०, प्री० बी० एम० धाह प्राकृत सुभाषित संग्रह (नामपुरा सुरत १९१२ ई०
५ सं० पुन विनयवात्र सुवितसरोज प्र० धर्मवात वीन मित्र मंडल वृत्तमान वि० १९२६।
६ प्राकृत सुभाषित संग्रह, पृ० ४१।१९२१
७ सुवितसरोज पृष्ठ २१३

काशीर-जैस द्वितीय प्रकरण में साठवीं शती ईसवी से पूर्व की थी। 'बप्पहराज' (बाणविराज) ने इसी की साठवीं शती में 'नरकबहो' के १२०१ धार्मिक छन्दों में अपने धामयवाता कवीजातिपति यशोवर्मा द्वारा गौड़नरेश के बच का वर्णन किया है। 'कंसबहो' में साठवीं शती ईसवी के मालावारी कवि रामपाणिबाब ने श्रीकृष्ण के हार्पा कंस के बच का ही विवरण महीं कालियमर्दन योवर्धन धारण रासलीला प्रादि का भी उल्लेख किया है। इस कवि ने प्राकृत क प्रस्ताव छब गायक की सर्वथा त्यागकर बंसत्व, बसन्ततमिका प्रहृदिणी प्रादि छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। उपर्युक्त महाकाव्यों में प्रसंगबध नीति की सूचितया भी अपलभ्य होती हैं। जैसे—

तै बिरसा सत्पूरिसा जे धमएगता घडेन्ति कज्जालाधे ।

बोधबिबध वि बुमा जे धमुसिधधकुमुसिधध्यामा वैसित फससु ॥^१

ऐसे सत्पुस्य बिरस ही होते हैं जो कामरुमापों को बिना बड़े ही कर मानते हैं। जैसे वे वृष म्यून ही होते हैं जो कुसुमित हुए बिना ही फलित हो जाते हैं।

दुरपत्यता की अपेसा निरपत्यता के बरत्व का उम्भब रामपाणिबाब इन छन्दों में करते हैं—

धदबबबुध्मे बिरमबबदे वि हे

संहति बं खो विबरा रिधंतल ।

सरोरिखो ता दुरबबबसंसधे

बदसि सध्वं खिरबबबरा बरं ॥^२

कृष्ण भकर से कहते हैं—'हम जो पुत्र तो यहाँ स्वल्प रूप में विद्यमान हैं और हमारे माता पिता बहाँ बोर नियंत्रण सह रहे हैं। इसीलिए तो भोज बुद्धी संतान की अपेसा संतान ने समाज को उत्तम मानते हैं।

(ग) वृद्धकाव्यान्तवर्ती नीतिकाम्य

इस प्रकार का प्राकृत-नीतिकाम्य दो वर्गों में विभाज्य है—१ संस्कृत-वृद्धकाव्यान्तवर्ती २ प्राकृत-वृद्धकाव्यान्तवर्ती।

१ संस्कृत-वृद्धकाव्यान्तवर्ती प्राकृत-नीतिकाम्य

संस्कृत के शक्य काम्य तो संस्कृत में ही लिखे जात के परन्तु संस्कृत के वृद्धकाव्यों में प्राकृत भाषाओं का भी व्यवहार किया जाता था। प्रायः कुलीन पुरुष-पात्र संस्कृत में वार्तालाप करते थे और शिवदाँ तथा सामान्य जन विभिन्न प्राकृतों में। आठ

१ प्रकरणेन सेतुबन्धु (बहुबुद्धहो) (भिरुससागर मेस बम्बई १८११ ई०), धारवाचक ३ पृष्ठ १। ('सेतुबन्धु' रावणबहो का ही संस्कृतानुवाद है)।

२ कंसबहो (हिन्दी धामरलाकर कार्यालय बम्बई, १९४० ई०) सर्ग १, पृष्ठ १२०।

काशिकास्य सूत्रक आदि के रूपक इस बात के प्रमाण हैं। निम्नलिखित पद्य में 'मृच्छकटिक' का मिस्र नीति की वही बात कहता है जिसे परवर्ती सिद्धों तथा सन्तों ने अनेक बार दुहराया—

'सिर मुँडवा लिया मुँडवा लिया यदि चित नहीं मुँडवाया तो सिर धीर मुक्त क्या मुँडवाया । परन्तु जिसने मन मुँडवा लिया उसका सिर भसीभाति स्वयमेव मुँड गया ।'^१

२ प्राकृत-वृष्यकाव्यान्तर्वर्ती नीतिकाम्य

महाकवि राजशेखरणीत 'कूर्ममञ्जरी' छट्ठक पाद्योपान्त प्राकृत-रचना है। इसमें भी प्रसंगबध नीति की कई मनोहर सूक्तियाँ पाई गई हैं। जैसे—

खिद्यन्त जगत्स वि मास्तस्य लोहा समुम्भसि मृत्योर्हि ।

मलीख जघ्नात् वि क्वचोत् विमुक्तले सम्भवि का वि सखी ॥^२ (राजशेखर)

'सहज योग्यं से मुक्त मनुष्य की भी खोभा भूपणों से बँधे ही बड़ जाती है जैसे धोखे रत्नों की आभा सुवर्णमय धामुपणों में जटित होने से ।

(घ) काव्यशास्त्रान्तर्वर्ती नीतिकाम्य

हमारे यहाँ के काव्य-शास्त्रकारों ने जहाँ ध्यान धर्मों में काव्य-शास्त्र के विभिन्न धर्मों का विवेचन किया वहाँ स्व प्रतिपाद्य विषयों के स्पष्टीकरण के लिए संस्कृत के ही नहीं प्राकृत के भी अनेक सुन्दर पद्य उपयुक्त किये। ऐसे ४३ पद्य मानस्यबदंन के 'ध्वन्यालोक' में ३३० पद्य भोज के 'सरस्वती कंठाभरण' में ८० पद्य हेमचन्द्र के 'काव्यानुपासन' तथा उसकी वृत्ति में धीरे अनेक पद्य 'बसुरूपक 'साहित्य दर्पण' धीरे रघुपथाधर' में उपलब्ध होते हैं। माना कि उनमें पर्याप्त संख्या धर्म विषयक पद्यों की है तो भी नीति-विषयक सूक्तियों की संख्या भी नगण्य नहीं है। उदाहरणार्थ—

'राशि जगत् किरणों से सरोवर कमलों से, लता पुष्पों के मुक्तों से धरतु की खोभा हँसों से तथा काव्यकथा सज्जनों से गुरुत्व प्राप्त करती है।'^३

ए उल्ल खरकोपण्डरप्यत् पुति मादुलेवि एमेध ।

एणुवजिज्ज ए जापद् वंतुप्यप्पे वि टकारो ॥^४

१ मृच्छकटिकम्, अंक = पद्य ३

२ कूर्ममञ्जरी अवनिकाम्तर २, पद्य २३

३ हेमचन्द्र काव्यानुपासन (प्र० महावीर शंभु विद्यालय बम्बई १९३८ ई०) पृ० ३३३, पद्य ३३३

४ सरस्वतीकंठाभरणम् (निरालयशावर प्रेस, बम्बई १९३४ ई०), परिच्छेद ३ उदाहरण पद्य ८६

हेतुके सुन्दर अनुप-रस में ही बहते, बहुधा वे जो यह बात बरितार्थ होती है कि रस (जैन कुटुम्ब) से उत्पन्न होने पर अब तक पुण (धर्म) का सम्बन्ध न हो तब तक रस (अनुप-रस, स्वादि) नहीं होती।

(२) धार्मिक काव्य में नीति-काव्य

इस बात का अधिकतर भय बौद्ध मुनियों तथा विद्वानों को है कि ज्यों ने अपनी धर्मों रचनाओं में प्राकृत भाषा के कोष को समृद्ध किया और अपने धार्मिक तथा वैशेष उद्देशों को जनता तक बनता की ही उत्कृष्टतम भाषा में पहुँचाया। जैन निदातो ने अपने रचनाएँ अर्थात् भाषा (धर्म) और धर्म तथा माहाराष्ट्री प्राकृतों में की। अर्थात् भाषा में धर्म उर्वर (अर्थात्) परमाणु (अर्थात्) धार्मिक सिद्धांत-सम्बन्ध है। विष्णु-जैनो ने अपने रचनाएँ आय और धर्म में की और इतिहास-जैनो ने धर्म-रसों में। विज्ञान-सम्बन्धों में ही नीतिकार्य की खोज निष्पन्न है परन्तु सामान्य मूल्यों के साधारण-व्यवहार के निरन्तर विभिन्न प्रश्नों के नैतिकार्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। ऐसे रस विम्वसित हो ज्यों में विभाज्य है—(क) मुक्तक तथा (ख) प्रबन्ध-प्रकार।

(क) मुक्तक रचनाएँ

जो मुक्तक-रचनाएँ का 'अष्टपादके बट्टकेरार्या' का 'सुलाचार बहुमुक्ति' का 'सुप्रसन्न-रस' का 'आवकाश' तथा समक-मुक्तक बलि-संकसित 'बाबा लहरी' का 'सुप्रसन्न-रस' के अन्तर्गत आते हैं। इन प्रश्नों में नीति का तो बाहुल्य है, परन्तु जो कि न ही सुनता। कठिनप बहाहरस इत्यस्य है—

सिद्ध-रसैव न धर्मो लक्ष्यतमुक्तो लक्ष्यतमुक्तैः।

तत्र धर्मो लक्ष्यो लक्ष्यो तस्यैव कामधोषैः।

अतः तदा काव्य के धर्म प्रश्नों नवियों से प्राप्त समुदाय नैतिक-धर्मों के ननु नो न कर्मो सुप्त बहो हो सस्या

तत्र बहो लक्ष्यो लक्ष्यो तस्यैव कामधोषैः।

साक्षात्कृतैः धर्मो

बल हावो के अन्तर्गत ननु-रस।

सुप्रसन्न-रस में ज्ञान रूपी अनुप-रस ही बट्ट

सुप्रसन्न-रस का साधारण अत्यन्त।

विषय-रस-धर्म-नि
ननु-रस-धर्म-नि
हावी

१. सुप्रसन्न-रस साधारण (अन्तर्गत-माता लक्ष्मी)

२. सुप्रसन्न-रस साधारण (अन्तर्गत-माता लक्ष्मी)

प्रतिघ्न न मासिघर्षं घत्वि नु सक्वंपि च न वतन्ध १

सक्वंपि होइ घत्वि च परस्पीडाकरं वयस्य ॥

‘भूठ नहीं बोधना चाहिए ऐसा सत्य भी सम्भव है जो नाप्य न हो परस्पीडा-
जनक सत्य भी भूठ ही होता है ।’

(ख) प्रवन्धात्मक रचनाएँ

उपयुक्त धार्मिक मुक्तक रचनाओं से कुछ अधिक सरस वे घनेक प्रवन्धात्मक कथाकाव्य तथा चरितकाव्य हैं जिन्हें जैन विद्वानों ने जर्म तथा मोटि के प्रचारार्थ रचा परन्तु उनके भी नीति-सम्बन्धी धर्मों में राग-तत्त्व तथा कल्पना-तत्त्व की कमी ही है। विमल सूरि का ‘पद्मचरितम्’^२ (जैन रामायण) सीताचर्य का ‘महापुरुष चरित’^३ जनेन्द्रमुनि का ‘सुरसुन्दरी चरित’^४ महेश्वर सूरि की ‘ज्ञानपञ्चमी कथा’^५ जिनेश्वर सूरि का ‘कथाकोशप्रकरण’^६ हेमचन्द्र का कुमारपालचरित^७ (धंधत) मन्मणमणि का सुपाह्वनाय चरित^८ सोमप्रभाचार्य के ‘सुमतिनाय चरित’ तथा ‘कुमारपाल प्रतिबोध’^९ (धंधत), तथा जगहर्षगणि की ‘रयणसेहरी कथा’ इसी वर्ग की प्रमुख कृतियाँ हैं। निम्नांकित उद्धरणों से इनकी बानगी देखी जा सकती है—

कन्या का जन्म पिता के लिए घनेक बिम्बामों का कारण होता है इस नीति को महेश्वर सूरि यों स्पष्ट करते हैं—

उप्यथाए सोगो बन्धतीए य बन्धए बिता ।

परिखोयाए उदन्तो बुबइविया बुबिखयो निक्खं ॥^{१०}

कन्या-जन्म पर शोक होता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ी होती जाती है त्यों-त्यों

१ समयसुन्दर मण्डि पापासहस्री (निर्ययसावर प्रेस बम्बई १९४० ई०, पाया ३४६
२ कतुर्वं शास्त्री या बाह डॉ० रामसिंह सोमर के प्रयोग का सार (‘धालोचना’
जुलाई १९२३ ई०, पृ० २३)

३ रचनाकाल ८१८ ई० (धालोचना जुलाई १९२३ ई० पृ० २३)

४ , १०९२ वि० " " " " २४

५ समय अनिश्चित " " " "

६ रचनाकाल १२वीं शती वि० का प्रथम चरण, " " " "

७ जीवनकाल (११३२-१२२६ वि०) " " " "

८ रचनाकाल (११९६ वि०) " " " "

९ " वि० सेरहरी शास्त्री का मध्य " " " "

१० पञ्चहवीं शती का अन्तिम चरण " " " "

११ महेश्वर सूरि: ज्ञानपञ्चमी कथाओं (ज्ञानपञ्चमी कथा) (भारतीय विद्यामण्डल
बम्बई १९४६ ई) सर्वे १ पृष्ठ ८४ ।

बिम्बा भी बढ़ती जाती है। विवाह हो चुकने पर उसकी रक्षा के सम्बन्ध में बिम्बा खुशी है। कन्या का पिता तो नित्य ही दुःखी रहता है।

बिह्वेलेत वा न भुक्तह्ये वा न विचारं करोई तास्मै ।

तो बैबास बि पुज्जो किमंग पुस मद्युपलोयस्त ॥^१

को भीमव में र्पात्त्व मही होता जो जीवन में विकारग्रस्त नहीं होता वह देवताओं का भी पूज्य होता है मनुष्यों का तो कहना ही है क्या ।

शास्त्रोक्त नरक तो परोख ही है परन्तु प्रत्यक्ष नरक वहाँ है वहाँ कुमारी,

बाधिष्य व्याधि तथा कन्याओं का धार्मिक्य हो—

बुकसस बालिहं बाही तह कल्लवारु वाहुस्सं ।

पक्कव्क्कं नरयमित्तं सत्तुभुवइह्त्तु वा बि परोक्कं ॥^२

शामी व्यक्ति विवेक से हाथ थोकर पतन की पराकाष्ठा तक जा पहुँचता है, इस बात को मुनि हेमचन्द्र ने राजा कुमारपाल की परमार्थ बिम्बा के प्रसंग में बौ सप्ट किया है—

खीलुमि मित्त मग्गं रम्ममि त्तुधं बहुं वि पववग्गि ।

खीलुवकमि वा सुव-वेहिखी वि काम-वत्त-परिअमिअ ॥^३

'काम के बंध में पड़े हुए भोग मित्र की पत्नी अपनी पुत्री वह तथा दुःख-बुद्धिणी से संभोग करने में संकोच नहीं करते।

स्त्रियाँ आपातरमलीन होती हैं परन्तु अन्तःकटुक इसलिये बिज मन को सतर्क करता हुआ मूष कुमारपाल कहता है—

अणुद्विअ-इन्ववारण-रम्मा रामा अकिट्ट-कहुअन्ता ।

ऐ हिअय कुट्टु बुक्कति कि मग्गा ताहि भुक्कविधं ॥^४

स्त्रियाँ उस अविदीर्ण इन्द्रवारण फस के तुल्य बाहर से ही रम्य होती हैं जिसकी आन्तरिक कटुता अमी बाहर नहीं आई। इसलिये हे कुम्भील हृदय तू इनके बुलावे में आकर मार्शभ्रष्ट क्यों होता है? जब तक मन निर्विषय नहीं होता तब तक बीच सब-मुक्त नहीं होता—

अध्याति रणे वीने वि अण्णते बह-सयं तपन्तो वि ।

ताव न जमेव्य भुक्कं पाव न वित्तयान तूरस्सो ॥^५

१ वही, २।१३

२ महेन्द्रर नृपि जालवंचमी कहाओ (जालवंचमी कथा) (भारतीय विद्याभवन बम्बई १९४९ ई०) सर्ग ७ पद्य ६।

३ हेमचन्द्रः कुमारपालचरित (शाम्भे संस्कृत पंथ प्राकृत तीर्थिक, १९३६ ई०) सर्ग ७।८

४ वही, ७।२०

५ वही, ८।१०

‘मनुष्य धरम्य में भी बँठता है पर्वत-दरी में भी बँठता है धीर धीर तप भी करता है । परन्तु जब तक मोक्ष नहीं मिलता जब तक वह विषयों को मन से दूर नहीं करता ।

प्राकृतनीतिकाम्य की समीक्षा

जब संस्कृत भाषा सामान्यजनो के लिए सुबोध न रही तब जनसाधारण के काम्यरक्षास्वादन के लिए प्राकृत में रचनाएँ होने लगीं ।^१ लोगों को अपनी बोल-बाल की यह भाषा संस्कृत की तुलना में इतनी कोमल प्रतीत हुई कि उन्हें सम्भवतः सिखना पड़ा—संस्कृत रचना पढ़्य होती है परन्तु प्राकृत-श्रुति सुकुमार । जितना अन्तर पुर्यों धीर महिमाओं में होता है उतना ही इन दोनों में दिखाई देता है ।^२ कवियों ने इसमें ऐसी सुधामयी सूक्तियों की रचना की कि यह रसिकों को प्रिया के पश्चिमुख के समान मनोहर लगने लगीं ।^३ यहाँ तक कि समित पर रचना में पटु बग्गी भी इसके सूक्त रत्नों की स्तुति किये बिना न रह सके ।^४ यह प्राकृत प्रेम इतना बढ़ा कि प्राकृत की कवियोक्तियों में संस्कृत भाषी बुरी तरह से खटकने लगा—

पादप्रकम्पुसात्रे पदिकपण सक्कण्ण लो वेह ।

सो कुसुम सत्परं पत्तरेण पबुहो विस्वासेह ॥^५

‘जो मनुष्य प्राकृत-काम्याभाष में प्राकृत-कविता का उत्तर संस्कृत-कविता द्वारा देता है वह मूढ़ कुसुमों की ब्यारी को पत्थरों से लपट भ्रष्ट करता है ।’

व्यक्तिक नीति

बौद्ध तथा जैनधर्म के प्रभाव के कारण प्राकृत-नीतिकाम्य में मान, तेज कीरता प्रादि गुणों का उतना महत्त्व दिखाई नहीं देता जितना समा दया तप, भावदुःखि प्रादि विषयों का । समा के बिना तो समस्त मुणिकाम हतप्रम हो जाता है—

समा-रहित समप्र मुण सीभाग्य-प्रदान में बीसे ही प्रथमर्ष होते हैं बीसे षष्ठस्य

१ प्राकृत सुभाषित संग्रह, पृ० ३२।२७८

२ कपू रमंजरी सट्टक (निर्णयसागर प्रेस बम्बई, १९२७) १।५

३ यही तत् प्राकृत हारि प्रियाभवत्रयसुन्दरम् ।

सूक्तयो यम राजन्ते सुयानिव्यम्बनिर्भरतः ॥

[प्राकृत मञ्जरी] (प्राकृत प्रकाशश्रुति) धि; अथवा वा काम्यत्रयी, धूमिका, पृ० ७३ पर पश्यत]

४ काम्यावर्ता १।३४

५ प्राकृत सुभाषित संग्रह, पृ० ३२।२९३

तारों से युक्त चन्द्रकला बिहोन रजनी ।^१

प्रत्येक प्रकार की पवित्रता प्रयत्ननीय है परन्तु उन सब में मय भुक्ति ही श्रेष्ठ है—

सम्बालं वि सुदीर्घं बलसुदी येन व्रतमा तोए ।

शान्तिगहमसारम् जलैरान्मैल्यं पुत्रं च ॥^२

'संसार में सब प्रकार की सुधियों में से मन की सुखता उत्तम होती है। स्त्री पति का शासित्वन एक मान से करती है व घोर पुत्र का दुष्ट से।

पारिवारिक नीति

पारिवारिक नीति में स्त्री घोर पुरुष दोनों ही के लिए धीम का पालन आवश्यक कहा गया है परन्तु धीमसंग का अपराध स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक बेबा थाया है, संभवतः इसलिए कवि ने उसके विषय में कटुतर भावा का प्रयोग किया है—

विश मुचली का शरीर धीम-स्त्री रत्न से मंथित नहीं होता, उसका हार भार रूप उड़ावी बचन-रूप घोर नूपुर निबद्ध-रूप होते हैं ।^३

धन्यस्त विदु विव परमारि परिहरन्ति सपूरिता ।

शैबंति सारमेयम् निविद्यां चें दुपमारा ॥^४

श्रेष्ठ पुरुष तो परायी भारी को बूझ घोर धिष्ठा के समान जानकर उसके दूर रहते हैं परन्तु निवित दुपचायी सोम उसका कुत्ते के समान शैबन करते हैं। पररा-राभिजनन के दुश्य ही बेस्वामनन को भी बहूत बर्ह कहा गया है।

सामाजिक नीति

सामाजिक नीति में राज्यनों को जैसे को तैसा की उपबेध न बेकर प्रीशार्व को धंगीकार करने प्रेरणा की गई है ।^५ वास्तविक राज्यन तो यह है जो भारी श्रेय की दबा में भी कटु भाषण नहीं करता—

इहरोसकमुसिषस्य वि सुमलस्य मुहाहि विविष्यं कस्तो ।

राहुमुहम्मि वि ससितीकिरला समर्धं विष मुमन्ति ॥^६

ठीक श्रेय के विनभिधाये हुए भी राज्यन के मुख से धमिय बचन कहीं निकसते हैं ? चाहे चाहे राष्ट्र के मुख में भी पड़ा हुआ हो तो भी उसकी किरलें मुनाहुष्टि ही करती हैं ?

१ सुक्ति सरीत्र वृष्ट १७१७

२ सुक्ति वर्येत्र वृष्ट २२१२

३ " " २२१६

४ " " २२१२०

५ " " ७२११

६ पापा अप्पघटी शतक ४ पाचा १६

प्रमत्तता वि नश्यति सुपुरिषा बुधयणेहि निपर्णह ।

कि बुद्धन्ति मणीयो जाग्रो सहस्तेहि विप्यति ॥^१

‘बेठ लोग अपने मुख से कुछ न कहने पर भी निज पुरों के समूह के कारण पहचान लिए जाते हैं । जो रत्न सहस्रों रपयों से सरोवे जाते हैं क्या वे स्वयं कुछ कहा करते हैं ? इसके विपरीत बुद्ध सोम वृष पिसाने पर भी बसने से नहीं चूकते—

मत्तिसा कुटिलमद्रघो परस्मिह्रया य भीक्षया बसला ।

पयपासेस वि भालयन्तस्स मारति बोधीहा ॥^२

‘भ्रमित कुटिल-मति, परस्मिन्मेवी विप्येते बतों बाले सर्प (कुर्मन) वृष पिसाने बाले को भी डसकर मार बैठे हैं ।

समाज में बुद्धों और बेधों की परस्पर पट नहीं सकती—

जागो सहाय सरलं विच्छिन्नस्य सरं पुच्छामि वि पञ्चसू ।

बकस्य उच्छुद्रस्त य सम्बन्धो कि क्षिरं होइ ॥^३

‘अनुप स्वभावतः सरस और गुण (प्रत्यया गुण) का भाव्य लेने बाले बाध को भी दूर फेंक देता है । क्या बक और सरस व्यक्ति का सम्बन्ध अधिक काल तक टहर सकता है ?

समाज में पुरों का विकास ठमी संभव है जब इसमें गुणवाही जन विद्यमान हों—

सहस्रों द्वारा पृहीत होने पर ही पुरों का उद्भव होता है । कमल वस्तुतः कमल ठमी बनते हैं जब सूर्य की प्रसियों उन्हें अनुपृहीत करती हैं अन्यथा नहीं ।^४

प्राकृत-नीतिकाम्य में स्त्रियों की स्तुति और निन्धा दोनों ही पाई जाती हैं परन्तु प्रशंसा की अपेक्षा बर्हमेना पर बध अधिक प्रतीत होता है । बार-बार नमस्कार सन्धी मारियों को किया गया है जो प्रेम प्रिय बिरह और विषय-तृष्णा से धनभिन्न हैं^५ परन्तु सामान्यतः स्त्री-स्वभाव के सम्बन्ध में तो ऐसे ही उद्गार सधित होते हैं—

वेपथु मञ्जराण पए धायासे पस्सिसी य पयमाम्पो ।

एकं नवरि य वेपथु बुस्तवर्च कामिलोहिपर्य ॥^६

१ सूक्तिसरोज पृष्ठ ७५७

२ सूक्तिसरोज पृष्ठ १०६।६

३ धाया सप्तमती वाक्य ५ पाया २४

४ हेमचन्द्र काम्यानुशासन (प्र० महावीर जैन विद्यालय, बम्बई १९३८ ई०) पृ० २०६। २३४।

५ प्राकृत सुभाषित सप्तह पृष्ठ १०। ब७

६ " " " ६। ७६

तारों से मुक्त जन्मकला बिहोन रजनी ।^१
प्रत्येक प्रकार की पवित्रता प्रसंगमीय है परन्तु उन सब में मन बुद्धि ही

बेच्छ है—

प्रज्वालं वि बुद्धीलं बलमुद्धी देव उत्तमा ज्ञेय ।
मानियहमसारम् आवेष्टान्नेल पुत्रं च ॥^२

'संसार में सब प्रकार की बुद्धियों में से मन की बुद्धता उत्तम होती है । स्त्री पति का प्राप्तिमन एक भाव से करती है व घोर पुन का दूधरे से ।

पारिवारिक नीति

पारिवारिक नीति में स्त्री घोर पुरुष दोनों ही के लिए धीस का पासम मानक्यक कहा गया है परन्तु धीसर्जन का अपराध स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक देखा जाता है, संभवतः इसलिये कवि ने उसके विषय में कटुतर भाषा का प्रयोग किया है—

'विध मुचती का घोरिर् शील-स्त्री रत्न से मंडित नहीं होता, उसका हार भार रूप पढ़ानी बन्धन-रूप घोर नूपुर निमङ्क-रूप होते हैं ।'^३
अल्पिष्य विदु विध परमारि वद्विहरमि सप्युरिता ।

बेच्छ पुरुष वो परावी मारी को बूढ घोर विष्य के समान जानकर उससे दूर रहते हैं परन्तु निहित दुराचारी सोय उसका कुत्ते के समान सेवन करते हैं ।' परवा सामाजिक नीति

सामाजिक नीति में सज्जनों को जैसे को तैसा की उपदेश न देकर धीराई को धमा में भी कटु भाषण नहीं करता—
इद्रीसकसुधिप्रस्त वि सुधलस्य मुहाहि विधिवचं कम्तो ।

राहुमुहम्मि वि सतिखीकरला धमचं विध मुमलि ॥^४
ठीक क्रमे से तिलमिनाते हुए भी सज्जन के मुख से प्रिय वचन कहीं निकसते हैं ? चाव चाहे राहु के मुख में भी पड़ा हुमा ही तो भी उसकी किरणें सुबाबूटि ही करती हैं ?

१ सुक्ति सरोज बुच्छ १०१७

२ सुक्ति बयोज, पुच्छ २२१२

३ " " २२१६

४ " " २२१०

५ " " २२११

भाषा सप्तमो भागक ४ बाबा १२

धमसंता वि नरुञ्जति सुपुरिता मुखपणेहि भिमएहि ।

कि बुस्सति मखीघो जाघो सहस्सेहि पिप्पति ॥^१

श्रेष्ठ सीम अपने कुछ से कुछ न कहने पर भी निज गुणों के समूह के कारण पहचान लिए जाते हैं । जो रत्न सहस्रों बपयों से ढाँटे जाते हैं क्या वे स्वयं कुछ कहा करते हैं ? इसके विपरीत कुछ लोभ ब्रूम पिलाने पर भी बदन से नहीं बूकते—

मल्लिखा कुञ्जितयद्घो परच्छिरया य भीसखा बसणा ।

पयपाखेण वि भात्तयन्तस्स मारंति बोधीहा ॥^२

'मसित कुटिस-गति परच्छिरान्धेवी, विपसे बाँतो बाने सर्प (दुर्जन) ब्रूम पिमाने बाने को भी बघकर मार देते हैं ।

समाज में दुष्टों और श्रेष्ठों की परस्पर पठ नहीं सकती—

बाधो सहाव सरत्तं विच्छिन्नह सरं सुखिम्मि वि पण्णत्तपू ।

बंक्रस्स उच्चुत्तस्स य सम्बन्धो कि चिरं होइ ॥^३

'भनुप स्वभावतः सरत्त और दुष्ट (प्रत्यया गुण) का प्राथम्य देने वाले बाध को भी बुर फेंक देता है । क्या एक और सरत्त व्यक्ति का सम्बन्ध अधिक काल तक टकर सकता है ?

समाज में गुणों का विकास तभी संभव है जब उसमें पुण्यप्राप्ति बन विद्यमान हों—

सहस्रयों द्वारा प्रहीत होने पर ही गुणों का उद्भव होता है । कमल वस्तुतः कमल तभी बनते हैं जब सूर्य की रश्मियाँ उन्हें अनुप्रीत करती हैं अन्यथा नहीं ।^४

प्राकृत-नीतिकाम्य में स्त्रियों की स्तुति और निन्धा दोनों ही पाई जाती हैं परन्तु प्रशंसा की प्रवेष्टा अश्वहेतना पर बल अधिक प्रतीत होता है । बार-बार ममस्कार जन्हीं कारियों को किया गया है जो प्रेम प्रिय, विरह और विषय-दृष्ट्या से अममिद्ध हैं,^५ परन्तु सामान्यतः स्त्री-स्वभाव के सम्बन्ध में तो ऐसे ही उद्गार लक्षित होते हैं—

येप्पह मण्णसल पए धापासे पक्खिखी य पममग्गो ।

एकं नवरि न येप्पह बुस्सत्तं कामिखीक्षियं ॥^६

१ सुक्खित्तरोज पृष्ठ ७८१७

२ सुक्खित्तरोज पृष्ठ १०६१६

३ गाथा सप्तसप्तती शतक १ गाथा २४

४ हेमचन्द्र काव्यानुशासन (प्र० महावीर जैन विद्यालय, बनारस, १९३८ ई०) पृ० २०६। २३४।

५ प्राकृत सुभाषित सप्तह पृष्ठ १०। ८७

६ " " २। ७६

बन में मछली के घोर धाकाघ में परी के पदबिह्व तो पहुचाने जा सकते हैं परन्तु गारी-हृदय को पहुचानना कठिन और बल में करना असम्भव है ।

धार्मिक नीति

धार्मिक नीति के क्षेत्र में सस्मी के महत्त्व को मुक्तकंठ से स्वीकृत किया गया है क्योंकि—

बिगुलमधि पुण्ड्रं च्चहीर्त्सुपि रम्भं
 अङ्गमधि मद्भर्तं मंदत्तत्पि सूरं
 धनुलमधि कुसीर्त्सं तं पर्यवति बोधा
 नवकमलवत्तन्धीर्त्सं पत्तोद्द लक्ष्मी ॥^१

नवकमलवत्तन्धीर्त्सं सस्मी निज कृपाकटाक्ष से समाज में निर्दुःख को पुण्ड्र, कुपयन को सुदर्शन मूर्त्त को मतिमानु, कातर को सूर तथा कुलाहीन को कुसीन बनाने में पूर्णतया समर्थ है ।

परन्तु सोमबन्ध बुधरिणामों से पाठकों को यह कहकर सचेत भी किया गया है कि धन का सोमी मनुष्य, माता, पिता पत्नी और मित्र को भी ठगने से नहीं श्रुत्वा । यह तो बान्धवों के भी प्राण हर लेता है ।^२ इस प्रकार दोनों सीमाएँ शिक्षात्मक मध्यम मार्ग धपलाने की ही प्रेरणा की गई हैं । धन का गुणवान भी पर्याप्त किया गया है और पाप-कुपाप पर दृष्टि रखने का प्रबल धनुरोच भी पामा जाता है ।

दूतर प्राणि-सम्बन्धी-नीति

जैन तथा बौद्ध विचारों के प्रभाव के कारण जीवहरया करने वालों को महा-पापी और अत्यन्त प्रमादी कहा गया है—

एषामतनुजकर्मणे जीवे निहर्त्सति जे महापाया ।

हरिबंदणवस्यचंडं बहुति ते धारकज्जग्गि ॥^३

मर्णात् जो महापापी रसनाविषमक क्षणिक मुक्त के लिए जीव बाध करते हैं, वे राज की प्राप्ति के लिए हरिचर्यन के धन को दान करते हैं ।

मिथित नीति

मिथित नीति के अन्तर्गत पुत्रपाप की अपेक्षा दैव तथा पूर्व कर्मों का बल

१ सूक्तितरीख पृष्ठ १७८।२

२ सूक्तितरीख पृष्ठ १८१।२

३ " " १४१।२

भारतीय साहित्य में नीतिकाम्य की परम्परा]

धार्मिक माना गया है। सत्य करने की बात है कि प्राकृत नीति-संघर्षों में जान पीस लप देना प्रादि पर तो पृथक् वर्ण प्राप्त होते हैं परन्तु पुत्रपार्ष्ण मान धीरे धीरे प्रादि पर नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस देश में कम धीरे परसोक की भावना प्राय ऐसी प्रबल रही है कि उसने यहाँ के निवासियों को इस सोक के जीवन को सच्चा समझने और दैहिक दृष्टि को प्रबल मानकर इसे सम्पूर्ण व्यतीत करने की प्रेरणा ही नहीं दी। घटवर्षीय जीवन की धीरे उठना धार्मिक ध्यान नहीं किया गया जितना अष्टिक मूल्य की बसतता दिखाने धीरे मोक्ष का अर्थ ध्यान पाने की धीरे।

अभिज्ञान विहिरा ससहरो सुरस वि धरवमर्षे ।
हा दिव्य परिस्वैप कवलिज्जइ को न कानेय ॥^१

‘देव अरु को भी अहित कर देता है, सूर्य को भी धस्त कर देता है। हा ।
ऐसा काल है जो देव के प्रभाव के कारण काम-कवलि नहीं हो जाता ।
संसारिक सुखों की अपेक्षा विरक्ति को धार्मिक माना गया है। संघारो धीरे

वीरवी मनुष्यों की समानता कम्य मिट्टी के पीले धीरे सूखे योसों से की गई है जिन्हें
धोबार पर दे मारने पर गीला तो विपक जाता है धीरे सूखा प्रलय फिर पड़ता है ।
ऐसा कहकर जग काम-कामी जनों को दुर्बुद्धि कहा गया है जो संसार में प्राप्त हो
जाते हैं ।^२

रस भाव

बुद्धि धार्मिकतर प्राकृत-नीतिकाम्य धर्म-विषयक प्रश्नों में उपलब्ध है इसलिये
उसमें स्वभावतः घात रस का धार्मिक है। कल्प रीति हास्य धीरे बोमरस भी
उपलब्ध होते हैं परन्तु शून्य माना में। शृंगार नाटकम्य प्रादि का प्रायिक संवन्धी स्वार्थ
स्वामार्मिक है क्योंकि इस साहित्य में भी संसार मूटा सम्बन्ध धार्मिक संवन्धी स्वार्थ
परायणता धीरे विषय मह्यं कहे गए हैं। अहिंसा शतोप देव्य स्तानि, मोह, विन्दा
क्षमा धीरार्थ प्रादि भावों की व्यापकता है। शरतिविहित व्यवहारों में उक्त रसों तथा
भावों के उदाहरण दुर्लभ नहीं हैं, जो भी एक-दो उदाहरण धीरे प्रस्तुत किए जाते हैं—
‘परामर्श कार्यानुष्ठान से पूर्व ही सेवा चाहिए, इस नीति की हास्यरसमयी
व्यंजना किन्तुविहित पद्य में की गई है—

काराविह्रण शरर मामजसो अविजसो प्र विमिपो प्र ।
एवकततिहिवारे बोदधिमं पुनिज्जं जतिपो ॥^३

१ शक्तिशरोज पृष्ठ १६६।१२

२ १२०।१२, १३

३ भोज तरस्वतीकठामरुण (मिथुपसापर प्रेस बम्बई, १९३४ ई०) पन्थि १,
उदाहरण-पद्य २३।

भ्राम का मुक्तिया घिर मु डबा, स्नाय घोर भोजन कर, बसव, तिथि घोर
बार पूछने के लिए बस पड़ा । जमा तथा उधारता के भावों का मिश्रण सज्जनों के
स्वभाव में इस प्रकार दिखाया गया है—

धनधारपरै बि परे कुणति धनधारमुत्तमा नुखं ।

सुरहेइ बबलदुमी परमुमुहं दिखबमाखी बि ॥^१

‘उत्तम जन अपने धनकारियों का सवा उपकार ही करते हैं । कटता हुआ भी
पन्दन-वृक्ष काटने वाले कुठार के मुख को सुवासित करता ही है ।

धर्मकार

प्राकृत भाषा की सुकुमारता तथा मधुरता का निरर्थक पीछे कर ही चुके हैं ।
प्राकृत के कवियों ने अपनी बारीकी विविध रूपों से सुसज्जित किया है । नार्मिक
काव्यों की अपेक्षा यह धर्मकार-धर्मकार ऐहिक काव्यों में अधिक उचित होता है ।
ऐहिक काव्यों में बिरसे ही पद्य ऐसे होने जो किसी धर्मकार के सुप्रयोग द्वारा धर्मकार
न हों । सम्बन्धकारों में धर्म तथा धनुषास का घोर धर्मकारों में अपेक्षा उल्टे
धर्मकारों तथा धीपक का व्यवहार अधिक किया गया है । ये धर्मकार कविता पर
कारे हुए नहीं लगते कवियों के गम्भीर निरीक्षण कुछस कल्पना और परिभाषित
रुचि के परिचायक हैं । जैसे—

सरए महुडबालं धन्ते तितिराई बाहिरुहाई ।

बाघाइ कुबिघतअरुहिमघ सरिन्नाई समिनाई ॥^२ (उपमा)

सवियों में बड़े शरीरों के बस शून्य सज्जनों के हृदय के सहाय बाहर से जो
तप्य परन्तु धन्दर से शीतल हैं । कवि ने शीतलता में शरीर स उठते हुए वायु को
देखकर उपमा के माध्यम से क्या ही सुन्दर नैतिक उपदेश दिया है !

धम्ममअहेहि निता खलिखी कमलैहि कुमुमपुष्पैहि तथा ।

हंसैहि सरमसोहा कम्बकहा सम्बलहि कीरई मुर्दई ॥^३ (धीपक)

‘अज्ञ की किरणों से राशि का, कमलों से तरंगिणी का, पुष्प-स्तवकों से
बस्ती का हलों से परबन्धु की छटा का तथा सज्जनों से काव्य-कथा का पौरव
बढ़ जाता है ।

चूँकि प्राकृत के नीतिकाम्य में धर्मिता की अपेक्षा सहायता तथा व्यंजना का
प्रयोग अधिक है इसलिए अन्त में सरसता तथा प्रभावशाली अधिक दिखाई देती है ।
जैसे—

१, सुवितसरोज पृष्ठ ७२।१

२ वावा तपसाती घट, २ वावा ८६

३ हैमवन्धु वाचानुपादन, पृष्ठ ३२५। ३२१

बे बे गुणिलो बे बे प्र बाहली ब बिहकूह बिभ्यलख ।

बारिह रे बिघ्नखल तार्लं तुमं सासुप्राप्तोति ॥^१

कवि बारिहप की ब्याज-निन्दा करता है क्योंकि वह मुण्डियों स्वागियों और विज्ञानियों का विश्व नहीं छोड़ता । निर्बीज बारिहप का अनुपायवान् होना प्रसन्न है । प्रथम यहाँ लक्षणा द्वारा दो नैतिक तथ्यों की व्यवस्था की गई है । प्रथम यह कि विघ्नमय मनुष्य नहीं है जो कुली त्वासी और विज्ञानवान् मानव की संघटि से सामान्यित होता है । द्वितीय समाज को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे कि मुली और विघ्नजन निर्भंगता की मन्त्रणाओं से मुक्त रहें ।

ध्वज—याथा या गाहा सम् का प्रयोग प्राकृत में प्रचुरता से होता था । नीतिकाम्य में भी सही का बाहुल्य है परन्तु धर्म्य वस्तुतिलका अनुपदम् बंधस्य भादि भी कहीं-कहीं दिखाई दे जाते हैं ।

शैली—संस्कृत-नीतिकाम्य की समीक्षा में निरिष्ट शैलियों^२ में से प्राकृत-नीतिकाम्यों में तथ्य-निरूपक और उपदेष्टात्मक शैलियों का प्रयोग बहुत दिखाई देता है । प्रस्तोत्तर धात्वाभिर्भवक धम्यापदेष्टिक तथा नैतिक उपमाओं की शैलियाँ भी व्यवहृत हुई हैं परन्तु धल्प मात्रा में । तथ्य-निरूपक उपदेष्टात्मक और नैतिक उपमाओं की शैलियों के अनेक उदाहरण पीछे^३ प्रसंगबध धा हो चुके हैं धर्म्य शैलियों के निरर्थक इष्टस्य हैं—

इंद्रमित्तु मरिहसि संवयकलिघाह केघाहबलाई ।

भारतह कुसुमेख सम भसर भयंतो न पाबिहसि ॥^४ (धर्म्योक्ति शैली)

“हे भैंबरे, तू कहीं से पूर्ण केतकी के बनों में डूढ़ता हुआ नर जाएगा परन्तु बहुत घूमने पर भी मानवी के समान कुसुम तुझे प्राप्त न हो सकेगा । कहना न होया कि इस धर्म्योक्ति का वास्तविक सत्य वह नायक है जो स्व-सती-साध्वी पत्नी से विमुक्त हो धर्म्योन्मुख हो रहा है ।

का बिहमा बिभ्यमई कि लट्ठं बं बलो गुलागाही ।

कि सुबलं सुकलत कि दुमेरुम कलो लोघो ॥^५ (प्रस्तोत्तर शैली)

विषय क्या है ? वैवाहिक । लट्ठ (भावार) क्या है ? गुलागाही मानव । सुबल क्या है ? साध्वी पत्नी । किस बध करना कठिन है ? दुष्ट लोगों को ।

कहीं-कहीं पर तो तथ्य-निरूपक और प्रस्तोत्तर शैली का सुन्दर सम्मिश्रण

१ संकित तथा धर्म्य प्रस्तुत प्रबन्ध पृष्ठ ७८, दि० २

२ प्रस्तुत प्रबन्ध का पृष्ठ ७८-९ देखिए ।

३ प्रस्तुत प्रबन्ध का पृष्ठ ७८-९३ देखिए ।

४ हीमचन्द्र : काम्यानुशासन पृष्ठ १४३ पद्य ३०३

५ हीमचन्द्र काम्यानुशासन पृ० १९३ पद्य ६२०

कर दिया गया है। यह खैली धर्म्यन देखने में नहीं आई। इसमें पहले बिच तप्य का निष्पन्न होना है, ठीक वसके बिरोधी तप्य के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया जाता है और फिर उत्तर दिया जाता है। जैसे—

कोहो बिच, कि धर्म्यन धर्मिणा,
मालो धरी, कि हियमप्यमाषो ।

बाया धर्म कि उत्तरं तु उत्तरं,
कोहो बुद्ध कि बुद्धमाहु, बुद्धिं ॥^१

'कोह तो बिच है फिर धर्म्यन क्या है ? धर्मिणा ।

धर्मिणाम तो धर्म्य है फिर मित्र क्या है ? धर्ममाष ।

माया तो भय है फिर धर्म्यन क्या है ? उत्तर्य ।

सोम तो बुद्ध है फिर बुद्ध क्या है ? बुद्धिमाहु ।

संस्कृत-नीतिकाम्य से साम्य

वेद में प्राकृत भाषाओं का प्रचलन हो जाने पर भी संस्कृत-शास्त्रमय की सृष्टि होती रही। तप्य तो यह है कि प्राकृत-धर्मिणा-संस्कृत-साहित्य की रचना हुई ही उस काल में जब प्राकृत भाषाएँ वेद में प्रचलित हो चुकी थीं। इस प्रकार संस्कृत और प्राकृत साहित्य प्रायः समसामयिक होने के कारण बिचार, खैली आदि के क्षेत्रों में जोड़ा-बहुत साम्य रखते हैं। जबकि हारणार्थ कल्याण-धर्म से जन्म पितृभिरुता का बीसा बन्धुल प्राकृत-धर्मिण महेवबर सूरि^२ ने किया है लगभग बीसा ही संस्कृत में भी उपलब्ध होता है।^३ कहीं-कहीं पर प्राकृत-कवियों ने संस्कृत-कवियों के भाव को कुछ परिवर्तित तथा परिवर्द्धित कर दिया है। जैसे संस्कृत में कहा गया है—

“को पुत्र्य पराई निम्बा करने में गुणा पराई स्त्री को देखने में धम्मा और पराने धन को सैते समय पंगु हो जाता है वह बिबोकी में बिजय प्राप्त करता है।”
प्राकृत-कवि का कवण है—

‘को कुकार्य करते समय धासवी प्राणिबध के समय पंगु, परनिम्बा गुनते समय बहिरा और पर-जारी को देखते समय धम्मा है, वही प्रघस्त है।’^४ कहीं-कहीं पर भाव-साम्य होते हुए भी कुछ नवीनता लाने के लिए श्रुत्यान्त-विषयय कर दिया

१ प्राकृत सुभाषित संग्रह पृष्ठ ४१।१८१

२ महेवबर सूरि, नालार्थधमी कथाओं संग १।४७

३ सु० १० भा० पृष्ठ २०।१

४ वही ४१।१२४

५ प्राकृत सुभाषित संग्रह पृष्ठ ४४।४०१

गया है। जैसे—

धनसेवक कस्य वापं न शरीरकृतं कृतम् ।

येनेर्बान्निपिता ह्यन्वा, तेनेर्बान्निपिता मुता ॥^१

“मन से किया हुआ पाप ही पाप होता है, केवल शरीर से किया हुआ नहीं।
बिना शरीर से बली का आतिथ्य किया जाता है वही से ही पुत्री का भी।”

अथवा कि सुखिरं मलयुद्धो वैव जलमासोए ।

आनिर्णयं असार मावेलाभेत पुतं च ॥^२

“संसार में सब सुखियों में से मनकी सुधि उत्तम है। स्त्री पति का आनि-
पथ एक भाव से करती है शरीर पुत्र का दूसरे भाव से।”

इस प्रकार के साम्य का कारण निश्चयपूर्वक बताना अत्यन्त कठिन है। फिर भी संस्कृत के प्राचीनतर होने तथा संस्कृत भाषों का विकास प्राकृत में देखे जाने से सम्भावना यही होती है कि प्राकृत कवियों ने संस्कृत-कवियों से भाषों के बीच बहल कर उन्हें अपनी बुद्धि शीर कल्पना के बस से सिद्धि कर पस्तविध-सुस्पष्ट किया है। अन्त में इतना ही कहकर समाप्त करते हैं कि प्राकृत का नीतिकाम्य संस्कृत के समान विकास न होया हुआ भी अपनी विषय-व्यापकता तथा सरसता के कारण अत्यन्त उदात्तनीय है।

अपभ्रंश का नीतिकाम्य

अपभ्रंश भाषा हिन्दी की बतनी है। बिरकाम तक इसका सम्बन्ध उपेक्षित रहा, परंतु अब सौभाग्य से इस का साहित्य क्रमशः प्रकाशित हो रहा है।

उपलब्ध अपभ्रंश-साहित्य दो भागों में विभाज्य है—

(१) धार्मिक साहित्य

(२) ऐहिक साहित्य

१ धार्मिक साहित्य

धार्मिक साहित्य का विवेचन दो उपभागों द्वारा करना उपयुक्त होगा—

(क) विद्वत् साहित्य में नीतिकाम्य

(ख) जन साहित्य में नीतिकाम्य

यद्यपि इन दोनों उपभागों का साहित्य मुख्य रूप से स्व-स्व सम्प्रदाय के सिद्धान्तों तथा आचार विचार के प्रकाशय निरूपा गया था तो भी उस में अन्त-तः प्रकाशवच नीतिकाम्य भी समाविष्ट हो ही गया है।

१ सुभाषितरत्नाकर, पृष्ठ १०३।१

२ सुविश्वरोज, पृष्ठ ११।२

सिद्ध साहित्य में नीतिकाम्य

परिस्थितियों के प्रभाव से पुनीत बीड़-वर्म श्रमण विहृत होता गया। उसमें तब मत्र, बाबू टोना मारण मोहन सच्चाटन डाकिनी-शाकिनी घादि का ही प्रचार नहीं हुआ। धैरवी चक्र मद्य मैधुन घादि का भी प्रचलन बहुत बढ़ गया। यह यौग-स्वार्थभय वस्तुतः उग्र फठोर संयम की सहज प्रतिक्रिया या जिस की घाघा बीड़ निक्षुण्णों तथा निक्षुण्णियों से धामरस की जाती थी। सिद्धों ने सुभार का बीड़ा उठवा घोर बसके लिए सहज मार्ग या सहजमान की स्थापना की। चौरासी सिद्धों में से अधिकतर तो तथाकथित निम्न जातियों के थे और कुछ तथाकथित उच्च जातियों के। इन्होंने बसु घोर बग के भेद को सर्वथा ठुकरा दिया। नवी-स्नान से निर्वाण केच मृचन से कस्याण निराशावाद योव बराग्य घादि अनेक पाखंडों का जो तत्कालीन समाज में प्रचलित थे सिद्धों ने तीव्र खंडन किया। इन्होंने मत्र-वेचता घादि की निरर्थकता प्रतिपादित की और घाघाबाबी होते हुए सवाचार-सुबंक सहज जीवन को सहज रंग से व्यतीत करने की नीति बतलाई। इन्होंने धाम्मावलम्बन की नीति खेप्ट बतलाई परन्तु गुरु का महत्त्व बहुत बढ़ा दिया जो परवर्ती काल में धनिष्कारक सिद्ध हुआ। ये सिद्ध सांसारिक सुख सहज रीति से भोगने का उपदेश देते थे और इसी कारण इनका मार्ग सहजमान कहलाता है। अपनी विद्वत्ता व सच्चरित्रता के कारण सिद्धों में से सरहपा कइया मुइया और घाम्भिया विद्येय विख्यात हैं। इन की कविताओं के कतिपय उद्धरणों से सिद्ध नीतिकाम्य की बानसी देखी जा सकती है।

उस काल में अनेक सामु मद्य बढ़ाये विशेष रूप धारण करते भक्तिन धमवा दिपम्बर रहते घरीर के बाम उसाइते तथा मोझ को धमने से बाहर कोजते थे।^१ सरहपा इन बातों का सहज भाव से यों खंडन करते हैं—

बइ लम्बाचिइ होइ मुनि ता मुलह तिमानह ।

लोम उपाइल अलि सिद्धि ता बुचइ लिअम्बह ॥^२

यदि मये रहने से मुनिता भिन्नती हो-तब कुत्तों और-पीसकों को भी भिन जाएगी। यदि लोम उसाइने से सिद्धि प्राप्त होती हो तो मुनियों के निरर्थकों को भी प्राप्त हो जाएगी।

जिस घरीर की बीड़ व जैन नीतिकार निम्ना करते न सकते थे उसी को सरहपा सद्धिताकालीन ऋषियों के समान अनुपम तीर्थ मानते थे—'गुरसरि व यमुना यही (इसी घरीर में) है नयासागर भी यही है प्रयाग तथा बनारस भी यही है, सूर्य घोर चन्द्र भी यही है।'^३

१ ओ० डी० एम० कमकता, भाग २८ (१९३२ ई०) पृष्ठ १० बोल्टा ९

२ वही पृ० १०१७

३ वही पृ० १२१४७

इन्द्रियों का नियंत्रण तथा विषयों से विरहित ब्राह्मण बौद्ध और जैन सभी के नीतिकाम्यों के प्रमुख विषय रह हैं। परन्तु सरहृपा ने इन्हें अस्वामाधिक मानकर कहा—

इवञ्च सुखं परोत्तमं क्षणं । शिष्यं कमठं बहू-उद्यताम् ।
 ध्यात मातं श्वभृद्वारे पेल्लम् । मस्य एतु एवकाकार म बल्लम् ॥^१

‘बिहो सुतो सुयो खापो सुभो सुमो वैठो षठो तथा क्य-विश्यं पारि श्वभृद्वार उरसाहपूर्वकं करो ।

बिज बेव शास्त्र धीर पुताणों की धिजामों का हिन्दू सम्मान करते थे धीर बौद्ध तथा जैन उदेखा उन्हें से छिड़ भी विसेप महत्त्व न देते थे। कर्हृपा शास्त्रों तथा पत्रियों के सम्बन्ध में यों कहते हैं—‘अभिज्ञतं लोगं प्रपते वेव शास्त्रं धीर पुताणों पर बहुत मान करते हैं। परन्तु ने जैसे बाहर-ही-बाहर घूम रहे हैं जैसे पके हुए भीष्ठ के बाहर मंभरे।’^२

याचक को निराश लौटाता सिद्धों के मत में बहुत बुरा था। सरहृपा कहते हैं—

ओ अस्वी अलठीमड सो बह जाड पितास ।
 अण्य सरावें मिजब बव स्वञ्चह ए गिहवास ॥^३

यदि याचक तुम्हारे घर से निराश लौट जाता है तो तुम्हें गृहवास छोड़ देना चाहिए। ऐसी गृहस्त्री की अपेक्षा तो दूटे हुए अण्ड में भीख माँगकर जीना अच्छा है।’

पटोकार तथा बान में ही जीवन की परम सापेक्षता मानते हुए सरहृपा कहते हैं—

‘न तो परोपकार ही किया धीर न ही बान किया। फिर इस संसार में जीने का लाभ ही क्या है! इससे तो स्वदेह-स्याम ही मत्ता।’^४

गुरु-महिमा तो भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित है परन्तु सिद्धों ने उसका स्थान वेद-शास्त्रों से भी ऊँचा कर दिया। परिणामतः धार्मिक-काल में ‘गुरु महिमा’ इतनी बढ़ी कि गुरु भगवान से भी अधिक पूज्य बन गए। सरहृपा की उक्ति है—

गुरु बहएसे धमिअ रमु, धाव ए वीघड बेहो ।

बहु सत्तस्य मच्छयत्तहिं तिसिए मरिअड तेहि ॥^५

१ वही पृ० १६।३३

२ वही पृ० २५।२

३ वही पृ० २३।१११

४ वही पृ० २३।११२

५ वही, पृ० १६।३६

‘बिठने मुठ के उपदेश कपी धमूठ के रस का पान बौड़कर न किया बहु सारनों के दर्ब कपी मकसस में प्यासा ही मर गया ।’

यहसुख की प्राप्ति के साधन चित्तस्वैर्य का प्रतिपादन लख्खवा सांग रूपक द्वारा इस प्रकार करते हैं—बह काया सुन्दर लौका है मम लौकाबंठ है । सद्गुरु के बचनों से पठवार को बारण करो । चित्त को स्मिर कर इस लौका को दबा कर बैठे । यह किसी समय स्वाम से पार नहीं जा सकती ।^१

सिद्धों ने अपनी रचनाएँ मन्त्री (मागजी) धपअरुध में कीं जिसे संख्या भाषा भी कहते हैं । इन रचनाओं में किसी रस का विशेष परिपाक तो नहीं^२ फिर भी इन से उत्साह तथा भाषा का संचार होता है और मन कड़ तप-त्याग तथा धोर विषयातक्ति भी सीमाओं का त्यागकर मध्यम सहज मार्ग पर चलने की स्वच्छ प्रेरणा प्राप्त करता है यद्यपि सिद्धोंमें राम-मुक्त नीतों, खोरठा छप्पय धारि का प्रयोग भी किया तथापि नीति-रचना प्राम^३ बोहा तथा सोबह माकाओं के पञ्कटिका धोर प्रसिद्ध छन्दों में है । इन की रचनाएँ सरल सुबोध स्वामाधिक भाषा में हैं परन्तु कहीं-कहीं सुन्दर रूपक धपमारें, मुष्टान्त सहज भाव से धा पये हैं । सार यह कि कबित्व की दृष्टि से सिद्धों का नीतिकाम्य विशेष महत्त्व न रखता हुआ भी माओं की मौलिकता तथा परबर्ती हिन्दी-साहित्य को प्रभावित करने के कारण अपना विशेष स्थान रहता है ।

(ख) जैन-साहित्य में नीतिकाम्य

जैन मुनियों तथा साधकों ने धपअरुध भाषा में धनेक सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत कर प्राचीन हिन्दी के सर्वप्रथम तथा विकास में स्तुत्य सहयोग दिया । धपअरुध नीति-काम्य के दो रूप हैं—(क) प्रबन्ध (ख) मुषठक ।

(क) प्रबन्ध काव्यों में नीति

जैन कवियों ने अपने बर्ष के प्रचारार्थ धनेक सुन्दर चरित-काव्यों कथा-काव्यों धोर पुराणों का प्रसंगत किया जिनमें पञ्चमचरित^४, रिद्धणमिचरित^५ श्यामभुमारचरित^६ तिसाद्विंशहापुरिचगुणाकंकार^७ अछहरचरित^८ बविस्वपचक^९ सुदंठणचरित^{१०} कुमार-

१ बहो भाग ३० (१९३० ई०) पृष्ठ ८३, अर्धमिद ३८

२ ३ प्रलेख स्वामन्तू (रचनाकाल ८-९ बी०) मातो हरिबंश कोषक धपअरुध साहित्य (भारतीय साहित्य संकिर दिल्ली) (सं० २०१३) पृष्ठ ४०९

४ ६ प्रलेख पुण्यवत (रचनाकाल १०१९ १०२२ वि),

७ प्रलेख धनपान (१००० ई०) हि० का भा० पृष्ठ २६०

८ प्रलेख लयनदी (रचनाकाल ११०० वि०) धपअरुध साहित्य पृष्ठ १५०

पानपरिठ (अंघट) तथा लुमियाहपरिठ^१ प्रादि विशेष प्रसिद्ध हैं। इन काम्यों में २४-
तीर्थकरों, १२ ब्रह्मविधियों, १ बासुदेवों और १ बसदेवों के चरित्रों के अतिरिक्त जैन-
सामायल व जैन-महाभारत की कथाओं तथा जैन नरेशों प्रादि का काव्यमय वर्णन
देखी रीति से किया गया है कि पाठक जैन धर्म तथा नीति से प्रभावित हो। इन सब
काम्यों में धार्मिक कर्म से प्राई हुई नीति के कुछ उदाहरण अनन्योन्य हैं।
स्वयम्भू मानव शरीर की तस्करता तथा निस्कारता में व्यक्त करते हैं—

रत्न-गन्धेख व लीधारे । बरक-फलेख व सजलाहारे ।
सुख हरेख^२ ब बिहृदिय-बंघे । पणहरेख^३ व धरुपुर्वे ॥^४

काया कबली-बूटा के मध्य भाग के समान निस्कार है पक्क फल के तुल्य पक्षियों-
का बाहार है, मूस बर क समान विभिन्न बंधनों वाली है और शोचालय के सखु बुर्गन्ध
का भंडार है।

कार्य की सोमा उसकी सक्त सपत्ता पर ही निर्भर है इस नीति का उत्कृष्ट-
पुनर्बत के चर्चों में यों हुआ है—

सोहद पावसु सास-समिद्धए । सोहद पिहृव स परिपल रिद्धिए ।
सोहई माणुत गुल संवत्तिए । सोहई कजारेभु समत्तिए ॥^५

'बर्षा ऋतु की सोमा उस्यों की समृद्धि से बरक की भव्यता निज परिवर्तनों की-
शक्ति से समुप्य की सोमा गुण-रूपी सपदा से और कार्यात्म की सोमा उस की सक्त-
संपात्ति से होती है।

जैसा बीयोग जैसा काटोये की नीति जनपान के चर्चों में यों व्यक्त हुई है—
कहा जेए बतं तहा तैए पतं इभं सुखए सिद्धतोएल मुत्तं ।
सु पायल्लावा कोइवा जल माली, कहं सो नरो पावए तत्वसाली ॥^६

जिन ने जैसा दिया उस ने बँधे पाया सिष्ट भोगों ने यह सत्य ही कहा है।
जो मासी कोदक बोदया वह धाली कहाँ से प्राप्त करेया ?
सघार के सोप विविध समानों से पीड़ित हैं इस प्रसुमन को सधमदेव ने यों-
व्यक्त किया है—

जसु पेह पण्ड तसु धरवह होइ जसु भोज सति तसु ससु ए होई ।
जसु बाल धाहु तसु बरिये खलिं जसु बरिये तसु धइ लोहु धरिं
जसु मयल राज तति खलिं भाम जानु भाम तसु उखपल काम ॥^७

१ प्रलेता हैमचन्द्र (११४१-११२१ वि०) धरक व साहित्य पृष्ठ ३११-१२१ ।
२ प्रलता लजमदेव (१११० वि० से पुन) धरक व साहित्य पृ० २१२ ।
३ पञ्चमचारिय (सामायल) ७७।४ हि० का पा० पृष्ठ १२१ ।
४ भाविपुराण पृष्ठ ४०० । पृष्ठ २३२ ।
५ ब्रह्मसूत्रसंहिता (सं० दत्तात्रेय) पृष्ठ ११२-११३ । पृष्ठ ८४ धरक व साहित्य पृष्ठ १०२ ।
६ लोमिलहाह परिठ (धर्मकाशित) ३।२ धरक व साहित्य पृष्ठ १११ ।

'बिच के घर में धन है उसे मूक ही नहीं लपटी घोर बिच में भोजन पचाने की शक्ति है, उस के पास श्वास ही नहीं। जो दान देने में लगाही है उस के पास ब्रह्मिण का प्रभाव है और बिचके पास धन है वह प्रति लोभी है। बिच य काम का धाकिय है वह भासा-उद्दिष्ट है और बिचके पास भागिनी है उसक काम ही घात हो चुका है।

अपभ्रंश के 'बीजमन-करस संसाप कया' 'ममणपराबय बरिज' 'मयण पुणम',^१ प्रादि प्रबंध-काव्य कयाबद्ध रूपक शैली में लिखे गये बिच का प्रयोग, उपनिषदों तथा बौद्ध-साहित्य^२ में भी किया गया था। इस शैली का प्रयोग परन्तु नाटक के रूप में कल्या मिश्र 'प्रबोधचन्द्रोदय' में इन कवियों से कुछ पूर्व कर ही चुके थे। जैसा कि इन काव्यों के नामों से अनुमित होता है इनकी रचना मन इन्द्रियों काम प्रादि की बल में करने का उपदेश देने के लिए की गई थी। प्रत्यक्षोपदेश की शयेका कयात्मक रूप देण के अधिक प्रभावशाली होने के कारण ही कवियों ने इस शैली को स्वीकृत किया। इसमें मन इन्द्रिय काम मोह, राग द्वेष प्रादि को पाशों का रूप लेकर कया क दृष्टि में बँटाया गया है। उपदेश-शक्ति की प्रभावता के कारण मद्यपि काव्यरस की दृष्टि से इन कयाओं का महत्त्व उपायुक्त प्रबंध-काव्यों का-सा नहीं है तो भी कहीं-कहीं विशेष चमत्कार मन को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। जैसे—

पशु ! धन्यह करिवाल कुम्भंती इतए गुलकनाबं ।

एकअपि तु बिखीए बीयं नासेह पुनमार ॥^३

'हे प्रभो ! कुम्भंती राबल के गुल-समूह को ऐसे दूधित कर बैठा है जैसे तुम्हिनो का एक ही बीज सारे लता गुम्भ को डीप भठा है।

कहना न होया कि इस रूपक-काव्य-शैली ने परवर्ती हिन्दी काव्य को प्रभावित किया। सूक्ष्म कवियों के प्रेम-काव्य तथा जयशंकर प्रसाद की कामायनी इतौ परम्परा में उन्मिषिष्ट होती है।

(ख) जैन मुक्तक काव्य में नीति

जैन मुक्तक काव्य को चारणों में प्रवाहित हुआ। रहस्यवादी धारा और उपदेशात्मक पाठ।

१ रचयिता सोमवन्धाबाय (१९४१ वि०) " पृष्ठ ३३२

२ रचयिता हरिद्वैज (१२ २३वीं शती विष्णु) अपभ्रंश साहित्य पृष्ठ ३३७

३ रचयिता बुधबराय (१२७६ वि०) " , पृष्ठ ३३६

४ बहुराज्यकोशनिपट, ११३, छात्रोपनिषद् ११२

५ नाटक निदान कया के 'अभिदुष्ट निदान' की मारुतिजय-सम्बन्धी धाक्यायिका अथर्वण साहित्य पृष्ठ ३३४।

६ अपभ्रंश साहित्य, पृष्ठ ३३७

(१) रहस्यवादी धारा

इस धारा की काव्य-कृतियों में आत्मा परमात्मा योग मोक्षादि के विवेचन का प्राधान्य होते हुए भी कहीं-कहीं नैतिक उपदेश उपलब्ध हो जाते हैं। श्रीरघु (योगीशु) का परमात्मप्रकाश^१ और योगसार^२ मुनि रामचिह्न का पातुङ्गवोहा^३, सुप्रभाचार्य का वैराग्यसार^४ इसी कोटि के मुक्तक काव्य हैं। इनमें सूक्तियाँ तो बहुत हैं परन्तु उपयुक्त प्रबन्ध-काव्यों की-सी संरचना का प्रायः अभाव है। निदर्शनार्थ एतावत् उदाहरण ही पर्याप्त होगा।

पशुं खाद्यं बलि कर्तुं भेष्येति बलिं यत्नः ।

मृतं विण्णतच्छ तद्व्यवहृं व्यवस्येति सुकर्महिं यत्नः ॥^१ (योगीशु)

'पाप इन्द्रियों के नायक (मन) को बध में करो जिससे भय भी अतीत हो जाते हैं। बुरा का मूल मरने पर पक्षे व्यवस्य सुख जाते हैं।

(२) उपदेशात्मक धारा

कई जैन विद्वानों ने कठिणय ऐसे मुक्तक काव्यों का भी सर्वन किया जिसका उद्देश्य ही व्यावहारिक उपदेश देना था। ऐसे ग्रन्थों में देवठेन का 'सावयवम्म बोहा'^५ सर्वप्रथम हमारे ध्यान आता है। ममताचरण और सुर्वन स्मरण के अन्तर कवि ने शोष-स्याम संहिसा-मालन, इन्द्रिय-निग्रह ममत्वकाम-मुक्ति आदि विषयों पर सुन्दर अनुभव-पूर्ण मुक्तकों की रचना की है। जैसे—

भोग्यं करहिं पमाय्यं जिय इन्द्रिय म करिं सव्वप्य ।

हुंतिं ख भक्ता पोसियां दुद्धं कामां संप्य ॥^६

'हे जीव भोगों का सीमित उपयोग कर। इन्द्रिय को सर्व मर जाने दे। बुरा है कृच्छ-सर्व का पोषण भला काम नहीं।

अं विवस्ये तं पाविष्ये, एव ख वयसं विमुत्त ।

पाइ पव्वस्ये कडमुत्तं, किं ख पव्वस्ये दुत्त ॥^७

'क्या यह बात सत्य नहीं है कि जो दिया जाता है वही प्राप्त होता है? काम को पत्नी सूसा सिमाने पर क्या वह बुरा नहीं देती ?

१ २ (रचनाकाल ८-२ बी० शती) अथवा छ साहित्य पृ० ४०८

३ (रचनाकाल १०-१७ वि० समय)

४ (रचनाकाल ११-१३ बी० शती) " ४१०

५ सं० राजल साहित्यायन, हिन्दीकाव्यधारा पृष्ठ २४८-२५३

६ सं० राजल साहित्यायन हिन्दी काव्यधारा पृष्ठ १७०-१६५

७ सावयवम्मबोहा, नागवर्तित्त, हिन्दी के विकास में अथवा छ का योग (प्रयाग, १९३४) पृष्ठ ३२६-१७

जिनबल सूरि^१ का उपदेश 'सायन रास' ८ पद्यटिका छन्दों का मनुकाय-मुक्तक काव्य है। इसमें जहाँ उपयुक्त धेनप्रिय नैतिक विषयों का वर्णन है वहाँ 'वर्मकार्यावर्ष' की यई हिंसा की प्रशंसा भी है—

यस्मिन् यन्मुक्कन्तु साहृत्य,
 नव नारद कोवद बुम्भतव।
 तु वि दसु बन्धु धरिष न हु नासई
 वरम पद निबसइ सो सासइ ॥^२

'यदि कोई नैतिक मनुष्य 'वर्मकार्य' की विधि के निमित्त युद्ध करता हुआ-दुष्टों को मार भी शक्तता है तो भी वह 'वर्मभ्युत्' होकर नष्ट नहीं होता, यद्यपि परम पर प्राप्त करता है।'

'काल स्वरूप कुलक' या 'उपदेश कुलक' सूरि जी की केवल २२ पद्यों की रचना है परन्तु उसमें नीति के उपदेश सुन्दर दृष्टान्तों से समन्वित हैं। जैसे—

कञ्जव करइ बुहारी बडी
 सोइइ पेठु करइ समिन्डी।
 बइ पुसु सा वि सुयं सुय किन्जव
 सा कि कञ्जतीइ साहिन्जव ॥^३

'बंजी हुई बुहारी कार्य करती है। वह घर को स्वच्छ धीर समुद्र तरती है। परन्तु यदि उसकी सीमितियाँ पूरक-पूरक कर दी जाएँ तो उससे क्या काम सिद्ध हो सकता है?'

महेश्वर सूरि^४ की 'संयम मंजरी' के वर्ण विषय का अनुमान पुस्तक के नाम से ही हो जाता है। ३४ श्लोकों की इस पुस्तिका में कवि ने १७ प्रकार के संयमों का निरूपण कर बीबहिंसा, असत्य, अवज्ञादान, मरण, परिव्रज्य प्राणि को पातक कहा है। इन्द्रिय-दोष-अभय धामु विनास का संश्लेष कवि इस प्रकार करता है—

यय मय मनुष्यर भस सकइ निपनिय बिसय पसत।
 इन्द्रियवैल इ इन्द्रियण बुबल निरतर पस ॥
 इन्द्रियण इन्द्रिय मुक्तलिय नरमइ बुबलतहसत।
 बस पुसु मंजइ मुक्कता कहुकुलततव तसस ॥^५

धर्मात् मज, मृग मनुकर भीम धीर धमम स्व-स्व विषय में प्राप्त होकर

१ जीवन-काल १९१२-१९१० अथवा साहित्य पृष्ठ २८५-२८६।

२ अथवा सा काव्यमयी' में संकलित उपदेशरत्नमन्तराल पद्य २६।

३ कासस्वरूप कुलक, पद्य ३७ अथवा सा काव्यमयी पृष्ठ ७८ पर संवृत्त

४ १९६१ से पूर्व: अथवा सा साहित्य पृष्ठ २६३

५ संयममंजरी, श्लोक १७-१८ अथवा सा साहित्य पृष्ठ २६३

एक-एक इन्द्रिय द्वारा ही निरन्तर बुद्ध भोगते रहते हैं। एक-एक इन्द्रिय की सरोपता से जब सहस्र बुद्ध प्राप्त होते हैं तब जिनकी पाँचों ही इन्द्रियाँ उन्मुख हों उसका खेय कहाँ।

'चूतड़ी'^१ की रचना भट्टारक रामचन्द्र के शिष्य भट्टारक विनयचन्द्र ने की थी। जैसे तो चूतड़ी स्त्रियों के रंग-बिरंगे कुपट्टे को कहते हैं किन्तु इस दृष्टि में एक कामिनी निम्न कन्ठ से ऐसी चूतड़ी को प्रार्थना करती है जिसे भोजकर वह जिन धामन में निश्चरण हो जाए। इसी बात को ध्यान में रखकर कवि ने धर्म और सदाचारमयी चूतड़ी घोड़ने का उपदेश दिया है।

बीरचन्द्र के शिष्य महचन्द्र की कृति 'बारस्करी बोहा' (बारह बड़ी दोहा) के रचना-काल के विषय में कुछ कहना कठिन है किन्तु ब्रह्मसास्त्रा के शिष्य बाहुड़ सोनाली ने स० १२२१^२ में इसकी प्रतिलिपि की, यहाँ यह उल्लेख पूर्व की ही रचना ही सचती है। १२ पद्यों की यह प्रकाशित रचना जयपुर के देवद्वर्षी बड़ा मन्दिर में^३ विद्यमान है। रचना का महत्त्व विषय की प्रेरणा शैली के कारण अधिक है। इसमें बलु-नाला के एक-एक घंटा से कई-कई दोहों का प्रारम्भ होता है। एक दोहा इत्यम्ब है—

कुछ बिल तिय लपटा, गुरु बयनं कुछ जल।

मसहि कोलूह बसहु बिम, एर ससारि भर्मत ॥^४

'कुर बिल' स्त्रीलपट तथा गुरु के बचन बलिष्ठ करने वाला व्यक्ति संसार में पुन पुन ऐसे घाता हैं जैसे कोलूह का बँस।

मुक्तकों का यह वन निम्नलिखित कारणों से पाठकों का ध्यान अपनी ओर विधाय रूप से आकर्षित कर सता है—

- (१) शू कि यह सामाजिक जीवन के उत्थानार्थ लिखा गया है और सामाजिक जीवन की इकाई गृहस्थ है इस लिए इसमें म गृहस्थाश्रम की अनुचित यहाँ है न नारी का।
- (२) विचर्मा होने पर सो भाठा-निपठा की सेवा करना तथा बन्धु-बाँधवों से मिल-जुमकर रहना इस काव्य क विशेष उपाय है।

१ इस पुस्तिका की रचना पिरिपुर में, स० १२७६ से पूर्व की गई। ईशें 'सिद्ध साहित्य' पृ० २२६

२ पुस्तक के प्रथम में यह पाठ है—'इति बारस्करी बोहामहर्षयस्कृत समाप्त'। संवत्-१२२१ वर्षे पोष सु १९ अस्त्यति वासरे, रोहृण नक्षत्रे लिप्यत 'बाहुड़ सोनाली' लिखतं कर्मल यतिमिस्ति।

३ श्रेष्ठम संख्या १६२६, प्रति का क्रमांक १८२३।

४ बारस्करी बोहा, पृ० १।१२॥

- (१) सांसारिक भोगों की अनुचित मिथ्या नहीं है त्याग-भाव से सुख भोगने तथा बानादि क्षात्र समावेश्यता की प्रेरणा प्राप्त होती है।
- (४) गृहस्थों के पुत्रा-स्वामी के विधि-विधानों का भी पर्याप्त निर्वेद्य किया गया है।

२. ऐहिक साहित्य में नीतिकाम्य

अगर कह चुके हैं कि सिद्धों तथा धर्मों की अपभ्रंश व रचनाओं का मुख्य उद्देश्य ऐहिक न होकर धार्मिक, सामिक व पारसौकिक वा। तो भी अपभ्रंश में कुछ ऐसी भी कठियों का प्रणयन हुआ जिन का मुख्य केवल ऐहिक वा। उनके भी दो रूप हैं—(क) मुक्तक (ख) प्रबन्ध।

(क) ऐहिक मुक्तक काव्य

इस वर्ग के पद्य न संख्या में बहुत अधिक हैं और न उनका कोई स्वतंत्र संग्रह ही उपलब्ध होता है। ये प्रबन्धों तथा व्याकरण छंद धर्मकार प्रायि के ग्रंथों में छिट-पुट रूप से बिखरे हुए हैं। मोदि, बीरता शून्धार, बीरग्य प्रादि विषयों के ये पद्य बंध के 'प्राकृत लक्षण' भोज के 'सरस्वती कण्ठामरु' 'प्राकृत वैशम' प्रबन्ध चिन्ता-मणि और सब से अधिक हैमचन्द्र के 'छिद्र हैम चक्रानुपागम' नामक व्याकरण-ग्रंथ में उपलब्ध होते हैं। ये मुक्तक संख्या में अल्प होते हुए भी साहित्यिक सौम्य से अमक रहे हैं। इनकी विधिपना तथा सरसता हैमचन्द्र के व्याकरण से उद्धृत निम्नांकित श्लोकों से मती भाँति अनुमित की जा सकती है—

कहि सगहव कहि मयरहव कहि बरिहियु कहि मेहु ।

दूर ठिपारह बि सज्जल हं होइ अलखदनु मेहु ॥^१

'बन्ध कहां है और, समुद्र कहां, मेघ कहां है और मोर कहां। सज्जन एक-दूसरे से जाइ दूर रहें, उनका अनुपाय तो निराभा ही होता है।

गुर्छाहि न सपह किति पर फल लिहिषा मुञ्जति ।

केसरि न लहइ बोद्धिय बि नय लक्ष्मीह धेप्यति ॥^२

गुणों से सम्पन्न नहीं, कीर्ति प्राप्त होती है। मनुष्य माय के सेवानुसार फल भोगता है। सिद्ध के लिए कोई बोझ भी नहीं देता और हाथी साखों बपों से सरीरे बात है।

(ख) ऐहिक प्रबन्ध काव्य

यही तक दो ही ऐहिक अपभ्रंश व प्रबन्ध काव्य उपलब्ध हुए हैं—महूहनाण

१ हैमचन्द्र प्राकृत व्याकरण (प्र० मोतीलाल मुद्रामी, बुना १९९६ ई०) ८।४।४२२
२ वही, ८।४।११५

(अम्बुन रहमान) का 'सनिहरासय' (सन्दिघरासय) तथा विद्यापति की 'कीर्ति मठा'। 'सनिहरासय' एक सन्दिघ-काम्य है जिसमें कवि ने अत्यन्त मार्मिक भाषा में प्रीयत पतिका की बेवना का बर्णन किया है। वह अपने प्रियतम को किन्हीं पथिक द्वारा खोद्य भीड़ने का संदेस भेजती है और अन्त में युगल का मिलन हो जाता है। विरह बेवना से पूर्ण यह काम्य नीतिकाम्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं रखता फिर भी प्रसंगवश ध्याए हुए कुछ नीति-पद्य यत्किञ्चिन्त जमत्कार रखते ही हैं। जैसे अम्बुनराम में कवि विनय-मन्थन करता हुआ कहता है—'निसानाय क उदय पर क्या मक्षन नहीं जमकत ? यदि लक्ष-विस्तर पर घासीन कोयस सुमधुर सुजन करती है तो क्या कौए काँव-काँव करना त्याग देत है ? यदि बसोबस-बाबरी सागरामिमुख बहती है तो क्या धम्य सरिताएँ बहुना बय कर देती हैं ? यदि बतुबजन बह्या ने बेतों का प्रकाश किया तो क्या धम्य कवि काम्य रचना त्याग दें ? नहीं जिसमें जो सक्ति हो उसका प्रकाशन करना ही चाहिए ।'^१

'कीर्तिसठा' में विद्यापति ने अपने धामयदाता राजा कीर्तिसिंह के पत्रक्रम व कीर्ति का बर्णन किया है। पुस्तक अत्यन्त लम्बीबढ़ नहीं है बीच-बीच में गद्यांश धाने के कारण अम्बु-सी समती है। नीति के पद्य कहीं-कहीं दिखाई दे जात हैं, जैसे—

पुरिससरेन पुरिसघो नहि पुरिसघो अम्मनतेन ।

बलबानेन हु बसघो नहु असघा पुँजिघो घुमो ॥^२

पुरुषत्व से ही पुरुष की सार्धकता है, जन-मात्र से पुरुष पुरुष नहीं बनता। बल-बान से ही मेघ असह कहलाता है। पुत्रित भूएँ को बसह नहीं कहते।

तो पुरिसघो असु मागो सो पुरिसघो अस अम्बेन सति ।

इपरो पुरिसाधारो पुष्य बिहना पम् होइ ॥^३

'पुष्य नहीं है ना मानवान् है, पुरुष नहीं है जिसने अनोपाजन की दृष्टि है। रोप तो पुष्पहीन पशु ही है। धाकार पुरुष का हुआ था क्या।

अपभ्रंश नीतिकाम्य की समीक्षा

अपभ्रंश नीतिकाम्य का भाषा में विद्यमान नीतिकाम्य का अन्तर्गत रूप में नीतिकाम्य नहीं हुआ तथापि उपयुक्त धार्मिक और ऐहिक काम्य-रूपों में ही

१ स० मुनि जितबिजय व हरिवत्सम-सन्दिघरासय (स० अन्तर्गत विनय-अम्बुनराम, अम्बुनराम, वि० २००१) ११८-१२०।

२ सं०—डा० बाबूराम सक्सेना: कीर्तिसठा (स० इन्दिरा, अम्बु, १९८१) ५६ पृष्ठ ६।

३ वही पृष्ठ ६।

सामग्री विचारणीय पड़ी है जो निस्सन्देह नीतिकाम्य के अन्तर्गत मानी जा सकती है। उस पर दृष्टपाठ करने से ज्ञात होता है कि अग्रज स-कवियों ने अर्द्ध प्रकार की नीति से सम्बन्ध काम्य-रचना की है।

वैयक्तिक नीति

छरीर के सम्बन्ध में अग्रज स के नीतिकाम्य में दो प्रकार के विचार दिखाई देते हैं। कहीं तो छरीर को तीर्तुल्य और बेवस-सबुद्ध कहा है और कहीं पर उसे अत्यन्त मसिन और बुरास्पद। सिद्धों ने तो कामा की निंदा नहीं की परन्तु अनेक मुनियों ने निंदा-स्तुति दोनों की हैं। कारण यह कि सिद्ध तो जीवन के सुखों को सदा भाव से भोगने के पक्षपाती थे और महासुख की प्राप्ति भी धारीरिक साधनाओं द्वारा ही सम्भव थी परन्तु अनेकों का दृष्टिकोण विरक्ति प्रधान ही रहा। उन्होंने कामा को बेवस-सुख इसीलिए कहा है कि जहाँ में अस्वस्वास्वाकार की सम्भावना है। जहाँ छरीर को दुर्गन्धगार वा मल-अंधार कहा है वहाँ इसलिये कि लोग धारीरिक भोगों को ही अस्वस्व मान कर परम श्रेय से पराङ्मुख न हो जायें। निष्क्रिय उदारणों से अल्प कठ द्विविध दृष्टिकोण का समर्थन होता है—

(१) अना-बेहावेवसि सिद्ध असाह सुद्ध वैवसह विपहि ।^१

(२) बोधा-बेहा सरित्तया तित्त, मई सुद्ध अन्व ख विहयो ।^२

(३) अना-बोधाणु गंधहो अशुहर माखड। सिद्ध खानिपर-अरक-समाखड ।^३

कहना न होना कि प्रथम दो अवतरणों में कामा की पवित्रता और तृतीय में गहला का अस्वस्व है। परन्तु यहाँ यह अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि सुख-भोगों में अति अर्थात् सीमोत्संभन और आसक्ति को अरहपा बुरा समझते थे—

वित्त आसक्ति म अन्व कव अरे बड ! सखी पुत ।

मीख-पधगम-करि-अमर, वेकसह हरिणहै कुत ॥^४

‘सख कहते हैं—अरे मुझ विप्रयासक्ति-रूपी बंधन में मत फँसो। देखो उस बंधन में फँसने से मछली अलम नज भौवर और मृग की क्या रसा हुई।

अधिकतर अग्रज स-साहित्य की रचना बोध-सिद्धों तथा अनेक-मुनियों द्वारा होने के कारण उस में ऐहिक विचारों के उपासक पर बल नहीं दिया गया। अधिक अर्थों के अध्ययन से अनुप्य प्राय आध्यात्मिक जीवन से विमुख हो जाता है जो इन

१ सरहपा बोहाकोय अ० डी० एल० कसकता भाग १८ पृष्ठ ११२५।

२ रामसिंह : पधुड बोहा (करना १९३३) पृष्ठ २६।

३ सरहपा : बोहाकोय अ० डी० एल० कसकता भाग २५ पृष्ठ १५४८।

४ स्वयम्भू रामायण ५४।१., हि० का० या पृष्ठ ११२ पर उद्धृत।

५ सरहपा बोहाकोय, अ० डी० एल० कसकता, भाग २८, पृष्ठ १६।७।

सिद्धों और मुनियों का मुख्य लक्ष्य था। इसीलिए इस साहित्य में प्रायः पोषी-पत्रे की अपेक्षा ही बेबी जाती है। कन्हूपा का कथन है—

धामम-वेद्य-पुराणे (हि), पश्चिम मास बहुन्ति ।

पञ्च सि-फले समिध विभ, ब्राह्मेरीष भनन्ति ॥^१

‘पंडित सोय सास्त्र वेद और पुराण पढ़कर समिधानी बन जाते हैं वास्तव में उनकी दशा उग भैरों की-सी है जो पके हुए खोफले के बाहर ही मेंबरमा करते हैं।

योगीशु भी शास्त्राध्ययन-अध्ययन का सस्तेज करते हुए आध्यात्मिकता पर ही अधिक बल देते हैं—

सत्य पंडतुषि होइते बटु, जो ए हखेइ बियपु ।

बेहि बसतुषि छिम्मसज सुबि मन्नाइ परमपु ॥^२

‘जो मनुष्य मन के विकल्पों का नाश नहीं करता तथा शरीर में वर्तमान निर्मल आत्मा को परमात्मा नहीं मानता वह सास्त्र पढ़ता हुआ भी मूर्ख ही है।’

धार्मिक नीति के क्षेत्र में अपन्न स-कवियों का योगदान प्रचंडनीय है। प्रायः सभी लेखकों ने सबाचार, परोपकार, संतोष, अमिचरणा, व्यसन-त्याग आदि सव्वुण प्रदानने तथा दुर्भणोत्सर्ग पर विशेष बल दिया है। सरहपा धान और परोपकार में ही जीवन की सायकता समझते हैं—

पर अमार ए कीमरु अति ए बीमरु बास ।

एहु संतारे कबल फलु बरुणपुत्रु अम्पाल ॥^३

बेबसेन के विचार में मदिरापान सर्वपुण्यों का नाशक है—

महु आठायज बोइजबि खासइ पुष्प बहुलु ।

बइसाएरुं तिडिबकई कालुइ उहइ महलु ॥^४

अर्थात् जोड़े से भी मदिरापान से बहुत पुण्यों का ऐसे ही नाश होता है जैसे धान की चिनवाटी से भाटी अन्न का।

पारिवारिक नीति

जहाँ अपन्न स-कवियों ने पारिवारिक जीवन की बड़ों पर कुठाघपात्र करने वाले बेरयापमन^५ परकलानुराग वाली प्रेम आदि ध्यसनों की तीव्र आलोचना

१ कन्हूपा : बोहाकोप, जही पृष्ठ २४२ ।

२ योगीशु परमरामकाय हि० का० भा० पृष्ठ २४७।२०६ ।

३ सं० विद्योमी हरि : अंत सुपासार पृष्ठ १।१२ ।

४ बेबसेन : सावयमम्मबोहा, २१ हि० का० भा०, पृष्ठ १६८।२३ ।

५ जिनबससूरि उबएसरसापद्य, हि० का० भा० पृष्ठ १३४ ।

मल-बल-कामहि इय करहि, बेम ए दुसकइ पाव ।
जरि लख्ताहि बडइख, प्रबलि न लखइ बाव ॥^१

मिश्रित नीति

मिश्रित नीति के अग्रमत अथवा स-काम्यों में अनुप्य-अग्र को बहुत पुर्नम तथा अर्नवास और आशयन को दु-कों का मूस कहा गया है। पूर्व कर्मों की महिमा भी पर्याप्त बलिग है। अतिशय कर्मियों ने संसार को तुच्छ मानकर उसके धोयों को हेम तथा बेराग्य को उपारेय माना है। अर्नचरण पर बहुत बल दिया गया है तथा माम्य की रेखाओं को अमित कहा है। अिनयत सूरि का कवन है—

सखज मारुत-खन्नु महारहु । अप्या भवतमूहि गज तारहु ।
अप्यु म अप्यहु रायहु रीसहु । करहु बिहाणु म सम्बहु बोसहु ॥^२

(अिनयत सूरि)

अब पुनीत और अवाग्य युधिष्ठिर-से भी संकट-मुक्त न रह सके तब माम्यसेअ को अमित ही समझना चाहिए—

पंडव-अंसहि अम्म अरील । अंपय अन्निअ अम्मक दिअं ।

सोअ सुठुठिअर सकट पाव । बैअक बैकिअल केअ मेटाव ॥^३ (अज्ञात अरि)

अतिशय अथअस-काम्य की रचना आनस-काल में हुई अब अियम्न प्रदेशों के बीर तथा भोगी अरेअ तनिक-सी वात पर तुनककर मुअ क सिअ अम्मअ हो आते थे । अतएव इस साहित्य में राजाओं अरिओं उनवी अलिन्यों रण-आवाधों, मुअों मुअ में अस आदि पर ठो पर्याप्त लिखा गया । परन्तु अब सामाम्य-अम्मन्धी नीति यहीं तक सीमित रही कि वे राज-हित के मिमित प्राणों को बीरता-पूर्वक ग्योछाअर करने के सिअ वअ-अरिअर रहें । मुअ से अियेता के अ्य में सौटना अअरतिम अम्मअ माना आता था । रण अथ में प्राण-अिसजित करमा भी अग अोरवाअपद न था परन्तु अीते-अी अीति का प्राप्ति उरुअअत समझी जाती थी—

१ अन अअन और अर्न से अया करो अिससे कि पाव पाव न कटकने पाए । अब अानी पर कअक अीअ आता है, तव पाव से अअअय अआव रहता है ।

सावय अम्म अोहा ६० हि० का० पा० पृअ १६० पर अअपत ।

२ अत्यत अयबाद् अनुप्य-अग्र प्राप्त करने के आअ अयने को संसार-आवर के पार अहुंआधो ।

राम और रीव तथा अय्य अमरत अोव अयने में न पुअने दो । (अअएत रआयल

२ हि० का० पा० पृअ ३२६ पर अअपत) ।

३ आहुत अयन में अयुहीत हि का० पा०, पृ० ४६४ पर अअपत ।

कित्ती सा सतद्विन्द्य वा सुतीह प्रप्यखेहि कखखेहि ।

पन्था मुप्रख सुभरि । सा कित्ती होउ मा होउ ॥^१ (प्रजापत कवि)

रस और भाव

यद्यपि अधिकतर उपन्यास-साहित्य धार्मिक तथा साम्प्रदायिक जड़त्वों की पूर्ति के लिए रचा गया तो भी सरहपा काबूपा धारि कतिपय चिह्नों की विद्वत्ता तथा अधिकतर जैन व अन्य कवियों की काम्य-श्रुतता के कारण उसका नीतिकाम्य पर्याप्त पद्य तक मीरस होने से बच गया । नीति-काम्य में साम्प्रदायिक तथा वीर रस का बाहुल्य है और बीभत्स तथा हास्य-रस की म्यूनता । कवियों की सूक्तियों में यथास्थान और यथा-प्रकार प्रसाद शोक तथा माधुर्य भी लक्षित होते हैं । निम्नांकित पद्य में नीति तथा श्रुतार का कल्पना प्रबान मिश्रण दृष्टव्य है—

खोडैति खे हियदंड प्रपणउ ताहूँ पराई कबलु वृउ ।

रखेउउउउ सोप्रही प्रपणउ बानहे जापा विपणमण्ड ॥^२

युद्ध-वीर तथा दान-वीर का सुन्दर निबर्णन निम्नलिखित दोहे में देखा जा सकता है—

बोबिउ कातु न बल्लनु यउ पुउ कातु न इइठु ।

बोभिलिबि प्रबसर निबडिप्रई, तिरण सम नउइ विसिठु ।^३

'बीबन कित्ते प्यारा महीं भयता घोर बन कोन नहीं चाहता ? परन्तु, झेठ लोय प्रबसर या पड़ने पर दोनों को तिनके के समान सुच्छ ही मानते हैं ।

निर्बेद बडा तथा हास्य का मिश्रण निम्नोद्धृत दोहे में प्रबलोकनीय है—

संता बिसम कु परिहरइ, बलि किउउउ हउं तासु ।

सो इइबेस जि मुडिपउ सोस लडिस्तउ जासु ॥^४ (मोमीन्दु)

जो बिसमान भोनों को त्याग सकता है, मैं उस पर बलि-बलि जाता हूँ । बिस का सिर बँध मे ही मंजा बना दिया है उसे मुझी बनने का श्रम कहीं !"

कहीं-कहीं नीति की एक ही बात को हृदयगत कराने के लिए ऐसे अनेक सुन्दर वृत्त्याप्त प्रस्तुत किये गए हैं जिनसे कई नैतिक उपदेश स्वतः एक हृदयान्वित हो जाते हैं । जैसे—

१ हे सुभरि कीति यही इसाम्य है जो अपने बानों से सुनी जाती है । मृत्यु के बाद कीति का होना न होना समान ही है । (हि० का० पा० पृ० ४७५ पर उद्धृत)

२ जगन्नाथराय प्रसाद उपन्यास प्रपण (परना सं० १९९८) पृ० १ ।

३ हेमचन्द्र सूरि : प्राहृत ध्याउरउ हि० का० पा०, पृष्ठ ३४२ पर उद्धृत ।

४ मोमीन्दु बरमप्यमःसु (परमात्मप्रकाश) पद्य २७० उपन्यास काम्यप्रयो प्रसिद्ध-पृष्ठ १०१ पर उद्धृत ।

लिङ्गमोहिते संखिय बबिल । लिप्पेहे बरमाखियि रमल ।

बखिय अपसे रिम्ल बाए । मोह-रयंसे बम्-बसाए ॥^१ (पुष्पवन्त)

“मोह-रूपी धूमि से बग्ने हुए व्यथित को बर्षागर्भ से ऐसे ही व्यर्थ है जैसे कंबूत के लिए संवृष्ट भन स्नेह रहित के लिए सुन्दरी-समोग तथा अपमान को दिया हुआ दान।”

बीमस्त रस की ध्वंजना रेह की दुर्गन्धमयता के प्रकरण में पीछे देख ही चुके हैं।^२

यह रस-परिपाक मुक्तकों की प्रवेक्षा प्रबन्ध-काव्यों में अधिक देखने में आता है। सीता की धम्मि-परीक्षा के प्रसंग में राम ने स्त्रियों को प्रसूत भिंसंग्रह कुटिल मति ब्रूट पुखहीन मुक्त-कलकिनी^३ आदि कहा था।^४ इस पर सती सीता ने भीर रसमयी बाणी में राम के आशेष का प्रतिबाध करते हुए पुरुषों से स्त्रियों को इत प्रकार उल्लासित बताया—

सखि सकमंकु तहि बि प्हुखिम्मल । कामउ मैहु तहि बि तखि उज्जल ।

उबकु अपुबु लु केल बि छिप्पइ । तहि पखिम धबगोल बिलिप्पइ ।

दीबउ होइ सहने कालउ । ब्रिडिडिहुए पंडिबउद पालउ ।

खर-खार्तिइ एबबुब अंतव । मरने बिपेसि लु मेसइ तबबव ॥^५

“अंत कर्मकी होता है धीर ससकी प्रभा निर्मल मेव काला होता है धीर विपुल उज्ज्वल पत्थर धूप्य होता है उसे कोई छूटा भी नहीं परन्तु उसीसे बनी हुई प्रतिमा को अलग बखित किया जाता है। बीपक स्वभाव से क्या होता है परन्तु उसकी बत्ती की लौ से अर बममया बठता है। अर धीर नारी में यही अन्तर है कि मरने पर भी बस्ती बूझ से मिलन नहीं होती।”

काम्य विधान

काम्य-विधान के विचार से अपभ्रंश का नीतिकाम्य द्विविध रचनाओं में उपलब्ध होता है—प्रबन्ध धीर मुक्तक। मुक्तक रचनाएँ भी दो प्रकार की हैं—नब तथा छांदोबद्ध। प्रबन्ध-काव्यों तथा छांदोबद्ध मुक्तकों की रचना अंत-कवियों ने की थी परों तथा छांदोबद्ध मुक्तकों की रचना सिद्धों ने। सिद्धों के चर्चापत्रों में रसमय भावनाओं का आधिक्य है धीर नीति की मूलता। हाँ उनके दाढ़ों में नीति का निस्तन्नेह प्राचुर्य है। सिद्धों के २० पर उपलब्ध हुए हैं जिनमें से मुर्झपा सुमुकुपा काण्डूपा सरहपा धीर अवनन्दीवा के घाठ^६ परों में स्पष्ट रूप से नीति पाई जाती है।

१ पुष्पवन्त 'बसाहरबखि' (पृ० १६) हि० का० पा०, पृष्ठ २३२ पर उद्धृत।

२ देखें 'अंत प्रबन्ध-काव्यों में नीति' (पीछे)।

३ त्रिहुपल सयंनु : त्रियविश्वकह्मलउ अपभ्रंश बाठावनी (अहमबाबाव तं १२६२) पृष्ठ २३ पर उद्धृत।

४ वही पृष्ठ २४ पर उद्धृत।

५ का० अन्वेषण भारती : त्रिड साहित्य (प्रयाग १९३२), पृष्ठ २३६।

प्रत्येक पद के साथ घेरनी, मुंघरी घादि विविध रस का नाम भी निर्दिष्ट है और इनकी कुल संख्या १८ है ।

भाषा

जैन विद्वानों ने अपनी कृतियों में परिचामी (सौरसेनी) अपभ्रंस का प्रयोग किया है, परन्तु सिद्धों की समस्त कृतियों की भाषा एकरूप नहीं है । अर्थात्तों की भाषा पुरानी बंगाली है । बोहा बोंवों की परिचामी या सौरसेनी अपभ्रंस है किन्तु पूर्वी प्रांतों में मिली जाने के कारण उसमें अनेक पूर्वी रूप तथा बाग्यारारें समाविष्ट हो गई हैं ।^१ भूक्ति परिचामी अपभ्रंस में बोहों की परम्परा पहले से प्रचलित थी इसलिए सिद्धों ने बोहा रचना में उसी भाषा की अपनाना उचित समझा । अपभ्रंस-नीतिकाम्य की भाषा प्रसाद-पूर्ण और भाव व्यंजना में समर्थ है । संस्कृत के समान उसमें अति-अति समास नहीं है । वो से अचिक दणों के समास अवाचित्-अचित् ही दिखाई देते हैं । भाषा में लोकोक्तियों तथा बाग्यारारों की भाषा भी अच्छी है । उनमें से कुछ तो निस्सन्देह पुरानी हैं और कुछ प्रचलित भाषा से भी गई प्रतीत होती हैं । जैसे—

अथय द्विकेसि बंदसि अर मुत्तिए ।

अं नि नाजिअए तीजि (ति) असु सुअए ।^२ (अपदेव)

'बिबते हो जने और चाइते हो मोठी ! मनुष्य जो भोजा है वही काटता है ।'

उअ दे उअ अइ मा लैहु अंक । निअइ बोहि मा जाहु रे अंक ।

हाअेर कअए मा लैहु अणए । अपए भाषा बुअनु-निअ-अए ॥^३ (अहृपा)

छन्द

जैसे अपभ्रंस भाषा अपने नीतिकाम्य के अनेक भागों के लिए संस्कृत प्राकृत घादि पूर्ववर्ती भाषाओं की ऋणी है वैसे ही भारतीय वाङ्मय बोहा सौरसेनी, पड़दिया अणय कुंडसिदा अण्य (रोमा) उस्तास घादि अनेक छन्दों के लिए अपभ्रंस का । नीतिकाम्य के लिए उक्त छन्दो म से बोहा का प्रयोग हिन्दी के समान ही, सर्वाधिक हुआ है । उसके बाद पड़दिका (पञ्चदशिका पड़दिया) अरिस्त पत्ता,^४ अण्य

१ डॉ० सुनीतिकुमार अटर्नी ओरिअन एण्ड बिबेलपमेंट प्राइड बंगाली लेन्गेज अंड १ पूठ ११२ ।

२ अपदेव भावना अंति प्रकरण पृष्ठ ३२ अपभ्रंस साहित्य, पृष्ठ २६४ पर उद्धृत

३ अहृपा, अर्थात्त ३२ हि० का० भा०, पृष्ठ १८ पर उद्धृत ।

४ 'सम्प्राप्ती कइवकामे अ अण्ये स्थाविति अण्ये अण्ये पत्ता वा । सा अण्ये पड़दरी अण्येवरी, अण्येवरी अ ॥ हेनअण्ये अण्येअण्ये अण्येअण्ये के अण्ये अण्ये अण्ये अण्ये अण्ये' पृष्ठ १ की पाठटिप्पणी में उद्धृत ।

छन्द्य बृंहनिया प्रादि छंदों का । दोहे के सम्बन्ध में यह स्पष्टहीन है कि उक्त काल में दोहे का रूप निम्न था । १४+१२ १३+१२ १३+११ यात्राओं के दोहों का भी प्रचलन था । जब औरहरी रायी में "प्रकृत पंचमय" में १३+११ के रूप को साम्य ठहाराया गया तब शेष रूप क्रमशः स्वतः एवं विस्मृत हो गए ।^१ अथवा श-कवियों ने माहिक छंदों के प्रयोग में पर्याप्त स्वतन्त्रता से काम लिया है । उन्होंने कतुम्बरी छन्दों को कहीं द्विपदी के रूप में तो कहीं अष्टपदी के रूप में भी प्रयुक्त किया है ।^२ कहीं-कहीं पर चरखों के अन्त में ए, तु आदि एकाक्षर निर्मलक अक्षर का प्रयोग आचार में सहायता या पाठपूर्ति के लिए भी कर दिया गया है । जैसे—

परि पुनितमि करि सखइ को हूव ए ।

हुइल भावनि हुल बलिधि मिय हूव ए ।^३

"पर में धाम बतने पर कौन कथा कोर सखता है ! हुइले में फिर अपने हूव यतोये ।"

शैली

अथवा श के नीतिकाम्य में मुख्य रूप से निम्नलिखित शैलियाँ प्रयुक्त हुई हैं—

- (क) उपनिन्दक शैली
- (ख) उपदेशात्मक शैली
- (ग) कथारमक शैली
- (घ) अन्वयापदेशात्मक (अभ्योक्ति) शैली
- (ङ) रूपक काव्य शैली
- (च) कथका शैली
- (छ) कथक शैली
- (ज) अन्वयार्थक शैली
- (झ) अन्वयात्मक शैली
- (झ) कथिवाचनशैली शैली

कथिवाचन-शैली में कवि अपने नाम का निर्देश भूयन् मतलब 'बहु विर पर अविशय' आदि के समाप्त करता है । उक्त शैलियों में से अनेक के स्वरूप का स्पष्टीकरण संस्कृत-नीति-काम्य की शैलीका के प्रसंग में किया था चुका है । कथक शैली में कुछ चोख-माहिक छंदों के अन्तर्गत अथवा का प्रयोग 'रामपरित नानत' की

१ डॉ० रामजीर, लिख साहित्य पृष्ठ ११४-१२ ।

२ हरिचंद्र कोष, अथवा श साहित्य पृष्ठ ४०६ ।

३ अथवा श मुनि भावना लंघि प्रकरण अथवा श साहित्य, पृष्ठ ११३ ।

दोहा-शैली की समान किमा बाठा है। कवनाशैली कड़क शली तथा कविनाम निरंश शैली के बिना प्रायः सभी शैलियाँ संस्कृत में प्रयुक्त हो चुकी थी। संस्कृत की धार्यामिर्भ्यंजक प्रदोत्तर संख्यात्मक, व्याख्यात्मक तथा नैतिक उपमानों की शैली का अग्रप्रथ के नीतिकाम्य में अभाव-भा विचार है। अनुकृत शैलियों में से अधिकतर के उदाहरण ऊपर प्रसवबध भा ही चुके हैं कुछ क निम्नस्व उदाहरणों में देखे जा सकते हैं—

अमरा एतु विभिन्नाइ कैवि विपहवा बिसम्भु ।

पल-वस्तानु सावा-बहुमु कृन्नाइ आम कपम्भु ॥^१

(अभ्यापदेष्टात्मक शैली)

हे मंजरे, जब तक बने पत्रों तथा पनी सामा से मुक्त कपम्ब का बृक्ष पुष्पित नहीं होता तब तक कुछ दिन इस नीम के बृक्ष पर ही विषाम करो।

सोहइ अलहव पुरपण-सापए । सोहइ खर-बव सववए बापए ।

सोहइ कइ मणु कहए सुबठए । सोहइ साहइ विकवए सिठए ॥^२

(पुष्पवस्तु शब्दावर्तक शैली)

जबपर इन्द्रमनुष से सुशोभित होता है अथवा मनुष्य सत्यवादी से सुशोभित होता है कवि-जन सु-उचित कथा से सुशोभित होते हैं और साधक विद्या सिद्ध होने पर शोभा देता है।^३

मुप्यइ मलई मा परिहरु पर उबचार (पार) बरतम् ।

ससि सूर बुह अंबवलि धणई कवण बिरतम् ॥^४

(सुप्रभाचार्य कविनाम-निरंश शैली)

'सुप्रभ कहते हैं कि परोपकार-मय आचरण का परित्याग मत करो। जब चाही और सूर्य भी स्थिर नहीं हैं तो यहाँ अन्य कौन स्थिर रह सकता है।'^५

उदाहरण,^६ सुप्रभाचार्य धारि ने इस शैली का अनेक प्रयोग किया है।

धर्मकार

अग्रप्रथ-नीतिकाम्य के धर्मकारों के विषय में ऊपर से यह कहा जा सकता है कि स्वयम्भू पुष्पवस्तु धारि महाकवियों के प्रबन्ध-कार्यों के नीतिविषयक धर्मों में इनका प्रयोग अत्यन्त सुरक्षित है। सिद्धों तथा अज्ञ धारियों के बिना कार्यों की रचना धार्मिक और नैतिक उपदेशों के लिए ही हुई है। उनमें इनका प्रयोग उचना

१ हेमचन्द्र प्राप्त व्याकरण भा. ४। ३५७।

२ पुष्पवस्तु धारिपुराण (पृ० ४०७) हि० भा० धा० पृ० ९३२ पर उद्धृत।

३ सुप्रभाचार्य, धर्मस्यार पद्य ३ 'अग्रप्रथ साहित्य पृ० २७६ पर उद्धृत।

४ उदाहरण, धर्मस्यार ३२ ३८ ३९, हि० भा० धा० पृ० १८।

प्रभावदासी नहीं दिखाई देता । अपनी अपेक्षा देहिक स्तुति पद्यों में धार्मिकार्थिक चमत्कार कुछ अधिक प्रतीत होता है । अथर्व-नीतिकाम्यों में अन्धकारों की अपेक्षा अर्थासंकारों पर अधिक बल दिया गया है जिसका कारण संभवतः यह है कि कवियों का ध्यान पाठकों के हृदय पर नीति के आशय को प्रकट करना या पाठकों को माध-सीत्यर्थ से प्रभावित करना नहीं । फिर भी अथर्व-नीतिकाम्य में तीनों प्रकार के मापामुपलब्धि लक्षित होते हैं—

(क) शब्दालंकार

पुण्यदत्त मानव-शरीर की दुष्पूरुता ममिता दुर्बलता और निर्वलता के सम्बन्ध में करते हैं—

मायुस-शरीर बहु-योद्धवः । धायेऽ धायेऽ बहु विद्वतः ।

बातिद-बासिद खड मुरिह मनु । पोतिद-पोतिद खड वरद बनु ॥^१ (बीष्ठा)

माय्य और पुत्र-संसार क उस्सेद मे पुण्यद-त ना स्थल है—

सिद्धकाम सिद्धाम सिद्धदाम सिद्धाम । सितप सिध्यास बंजान ते बाल ।

ते डोब कस्नाल संज्यधि लीबान । बाटाल ते कोल ते सीह-सबुद्ध ॥^२

(देवानुप्रास तथा वृत्त्यनुपास)

(ख) अर्थासंकार

अग्नि और सोहे क उदाहरण द्वारा यामीन्सु कुसुपति-अग्न विनास को यों बताते हैं—

अस्मार्हं वि उासंति पुल बहु संसगु जनेहि ।

अज्ञातव कोहं मिनिद ले पिद्विमह पलेहि ॥^३ (अर्थासंकारमात्र)

मुनि जिनदत्त सूरि के मत में सुपुत्र और कुपुत्र में बाह्य साम्य होते हुए भी बड़ी भेद है जो जो और धाक के दूध में—

कुडु होइ मो-अकिरहि अवनड

अर वेगर्मत संतद बहुमड ।

एवहु सरीरि कुसु सबावड,

अवद विवड पुणु ननु बि सावड ॥^४ (अर्थासंकार)

१ पुण्यदत्त (पुण्यदत्त), अतहरचरिद हि० का० पा०, पृ० २३४ ।

२ पुण्यदत्त अतहरचरिद, हि० का० पा०, पृ० २३६ ।

३ योगीन्सु अतहरचरिद पद्य २३४, अथर्व काव्यश्री की श्रुतिका पृ० १०३ पर उद्धृत ।

४ जिनदत्त सूरि अतहरचरिद कुलकनु, पद्य १० अथर्व काव्यश्री, पृ० ७१ ।

प्रत्येक वनाद्य स माँगना उचित नहीं होता, इस नीति की व्यंग्यता किसी अज्ञात कवि न पाठक न समुद्र के दृष्टान्त से इस प्रकार की है—

बप्पीहा कह बोस्तिलेख निगियल बार ह बार ।

सायरि भरिग्रह विमस-जसि लहहि न एकह पार ॥^१

(धप्रस्तुत-प्रसंसा)

(ग) उभयासकार

भक्तसागर में मनुष्य की एकाङ्कितता का उन्मेष स्वयम्भू ने इन शब्दों में किया है—

एकैल भयेन्वद भवसमुद्रे । कर्मोह मोह भक्तपर-रउद्रे ।

एकहो बे बुबहु एकहो बे सुबहु एकहो बे बधु एकहो बे मोरधु ॥^२

(साटानुप्राध, यमक रूपक की संसृष्टि)

जिस अन्त्यानुप्राध या तुक का संस्कृत तथा प्राकृत के साहित्य में प्राम् धमान वा लसका प्रायः प्रत्येक पद्य में प्रयोग इन अथप्रस-कवियों ने किया । इसके कारण वा नाद-सौन्दर्य भारतीय भाषाभाषा में आमा उसका अम अथप्रस-कवियों को ही है ।

नीतिकाम्य परम्परा का निष्कट

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी भाषा के उद्भूत तथा विकास के पूर्व वैदिक, संस्कृत वाणि प्राकृत और अथप्रस भाषाओं में पर्याप्त और व्यापक नीतिकाम्य का अजन हो चुका था । यद्यपि संस्कृत प्राकृत और अथप्रस में बोझी-बहुत साहित्य रचना वाद को अठाकियों में भी होती रही तथापि यह स्वीकृत करना ही पड़ता है कि उनक योग्य के दिन समाप्त हो चुके थे और वे हिन्दी के आरम्भ के बाव ह्रासो म्मुस हा गई थी ।

वैदिक नीतिकाम्य

यद्यपि कुछ संहिताओं में उक्त भाषाओं में भी नीतिकाम्य रचा गया उसका स्वरूप सर्वत्र समान नहीं है । वैदिक संहिताओं के नीति-विषयक सर्गों में पर्याप्त ऐहिकता है । उनमें दीर्घ जीवन स्वस्थ शरीर तथा सांसारिक सुखों की अद्भुत धर्मि भाषा व्यक्त होती है और पारिवारिक अर्थों तथा सामाजिक सम्बन्धों से प्रस-सूर्यक निर्वाह करने की पुनीत प्रेरणा मिलती है । न असार मिथ्या है, न अम्बग्नी स्वार्थी है, न अत-सम्पदा हेय है । मित्र काम्य हैं, लटस्य अपेक्ष्य है, धनु तास्य हैं । ज्ञान अरयोमी

१ हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण, पा० १५०३ ।

२ स्वयम्भू, रामायण, १५० हि० का० पा० सू० १३० वर उद्भूत ।

है इसलिए प्रबंधनीय और द्राह्य है, धार्मिकता धर्मकार है इसलिए धर्मकार से प्रकाश की ओर जाना व्येय है। सत्य, मेधी, बहाग्यता, प्रेम उद्याय धार्मिक प्रबंधनीय गुण हैं, बिन्हुं ग्रहण करने की प्रत्येक विद्या की गई है। ईश्वर और परमोक को भी विस्मृत नहीं किया गया है परन्तु इस जीवन को काम्य कहा गया है, अपेक्ष्य नहीं।

प्रतीत होता है यह ऐहिक दृष्टिकोण विरकाल तक बना नहीं रहा। भारत की उर्बरा बसुन्धरा ने धर्मों की सुधामितापार्मों को धीम ही पूर्ण कर दिया। ऐहिक लोगों की यहाँ कमी न थी कि ध्यान उन्ही की ओर लगा रहता। परिणाम यह हुआ कि विचारशील महारत्ना सोय परमात्मा, धात्मा मन, सृष्टि धार्मिक के स्वरूप और कार्य के चिन्तन में पग्न हो गए। यमराज ने लक्षिकेता से कर मानने को कहा तो उसने भोग्य पदार्थ नहीं माने, प्रेत्य भाव या पुनर्जन्म का स्वरूप उपपन्नै की कामता की।^१ जब इस धरीर की पात्रा घोड़ी है और धात्मा की प्रकृत तब अधिमों ने यही निश्चय किया कि इस धरीर और इस जीवन का कोई महत्त्व नहीं है। वास्तविक जीवन तो यही है, जो निजम के प्रकृत उपपन्न्य होया। धर्म विद्यार्थों की प्रवेसा परा विद्या जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है, व्येय मानी जाने लगी।^२ शान, तप, दया, दमन धार्मिक गुणों पर विशेष बल दिया गया। धर्म देने के कारण माता-पिता विद्या देने के कारण धार्मिक और उपदेश देने के कारण संस्कारशील धर्मिण तो वैभवा कहलाए, परन्तु बहिन-भाइयों तथा धर्म सम्बन्धी-पक्षियों के विषय में विशेष निर्दोष धमावश्यक ही माने गए। जब ब्रह्म ही एक वास्तविक सत्ता है धर्म कुछ है ही नहीं जो है वह धामाध-भाव है, तब न कौनिक उपदेशों की धामवपनता रहती है न धर्म काय। इसलिए परबर्तों वैदिक काल की नीति परमार्थ की साधन-रूप है, पुन ऐहिक नहीं।

संस्कृत नीतिकाम्य

धर्मिकतर संस्कृत-नीतिकाम्य की रचना तब हुई जब बौद्ध व जैनधर्म के बेराम्य-प्रभाव विचारों का प्रचार हो चुका था। संहिताधर्मों के विचार भी ब्राह्मण धर्म के प्रचार के कारण बसे धा रहे थे। प्रत्येक धर्मों विचार-धाराधर्मों के निष्फल के धनस्वरूप संस्कृत-नीतिकाम्य में यही तो धरीर की धण भंगुरता निष्पत्ता धार्मिक का सस्तेक है, तो कही स्त्री और धर्मिण को म्योहावर करके भी धसकौ रक्षा का। इस साहित्य में विद्योपार्जन की प्रचुर प्रवेसा है और मुक्तों की निम्ना। माहुरधर्म-जीवन सिद्धास्यत धर्म है यद्यपि सन्धान के धार्मिक्य व धन के धनान के कारण नहीं-नहीं धसकी निम्ना भी की गई है। स्त्री का सम्मान पूजवत् नहीं रहा। कई जातिधर्म नीच

१ कठोपनिषद्, प्रथम अध्याय प्रथम बस्ती।

२ मुण्डकोपनिषद् प्रथम मुंडक, प्रथम पांडे।

मानी गई है। धन की अधिकतर प्रशंसा ही दिखाई देती है। इतर प्राणी पहले से प्रियतर हो गए हैं। पुरुषार्थ के महत्त्व का पर्याप्त बखान है परन्तु पूर्व जन्म के कर्मों तथा ईश्वर के शासन को भी स्वीकृत किया गया है। सम्भवतः परवर्ती जीवन की धार्मिक कठिनाइयों के कारण शूबा और उदरवटी की दुष्पूरता का भी पर्याप्त उल्लेख है। संसार साहिता-काल के समान काम्य नहीं रहा इस्तर सावर बन गया है जिसे भक्ति तप त्याग संयम से ही पार किया जा सकता है।

पालि, प्राकृत व अपभ्रंश का नीतिकाम्य

पालि की रचनाएँ बौद्धों द्वारा और प्राकृत तथा अपभ्रंश की रचनाएँ प्रायः जैन मुनियों और सिद्धों द्वारा की गई हैं। जैन और बौद्ध दोनों ही धर्म किसी सृष्टि-कर्ता ईश्वर में विश्वास नहीं रखते परन्तु परलोक, मोक्ष ध्यात्म-साक्षात्कार के लिए धार्मिक उद्योगशील दिखाई देते हैं। दोनों ही धर्म वैराग्य प्रवर्तन हैं। इनमें दुर्गन्धमय मलिन धार्मिकधर्ममय होने के कारण शरीर की प्रायः निम्नता की गई है परन्तु कहीं-कहीं मोक्ष प्राप्ति का साधन होने के कारण प्रशंसा भी। धर्म-ग्रंथों के स्वाध्याय के उपदेश तो मिलते हैं परन्तु अधिक पठन-पाठन आध्यात्मिक मार्ग में बाधक होने के कारण अपेक्ष्य ही ठहराया गया है। माता-पिता प्रादि की सेवा की तो कर्तव्य कहा गया है परन्तु सिद्धान्त रूप से गार्हस्थ्य बंधन रूप है। पालि में जन्म-मृतक बर्ष-म्यवस्था का तो खंडन है परन्तु परवर्ती जैन काम्यों में जाति-पाति, ब्राह्मण-धर्म के प्रथम प्रमाण के कारण पुनः जा चुकी। स्त्रियों की निम्नता इन साहित्यों का प्रिय विषय रहा है।

धन बंधन-रूप है और अहिंसा परम धर्म है। त्याग सयम क्षमा बया, परोपकार सर्व अस्तेय प्रादि का महत्त्व बहुत बखिष्ट है परन्तु मान शीर्ष पराक्रम प्रादि की उपेक्षा है। दृष्टि धारण व्यबहार पर धार्मिक लक्ष्य दिखाई देती है यथायोग्य व्यबहार पर नहीं। संसार झूठा है मायामय है निर्वाण और स्वयं काम्य सत्य हैं। पुरुषार्थ की अपेक्षा ईश्वर पर बल अधिक प्रतीत होता है। कहीं-कहीं पर कभी कुछ व्यावहारिक बातें भी धा जाती हैं जैसे पर-बीड़ा-जगक सत्यमापण न करना चाहिए, धर्मार्थ किये गए मुद्दों में की गई हिंसा पाप नहीं होती बल बिना सम्मान नहीं मिलता इत्यादि।

सिद्धों की रचनाएँ तथा ऐहिक अपभ्रंश-काम्य जगत कपन के धनवाह माने जा सकते हैं। सिद्धों ने न शरीर की निम्नता की, न गार्हस्थ्य की, न संसार की। धृति को बर्धित करते हुए अन्तर्निःसंसारिक सुख सहजभाव से मोक्ष और सदाचारपूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा की। अन्तर्निःसंसारिक भाव-मन बाह्य-टीका, टीका-स्नान वचन मुंडन मंत्रवेदता केतुमंडन विध्या-नेत्र पोषी-यथा जात-पात प्रादि का प्रबल खंडन किया। अपभ्रंश का ऐहिक काम्य भाषा में धरयत्य होता हुआ भी नीति गृहकार और शीरका के मार्गों से भोज प्रीत है।

रामायण की दृष्टि से भी प्राचीन भारतीय नीतिकाम्य महत्वपूर्ण नहीं है। यह नीरस पद्यमयी रचना नहीं है। शिष्ट कवियों ने विद्यामान होने के उद्देश्य से छन्दो बद्ध कर दिया हो। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं। अनेक विद्वानों ने इसे यथाशक्ति सरस और भावपूर्ण बनाने का उद्योग किया है। कहीं कहीं विशिष्ट शैली से कहीं शब्द-व्यवहार से कहीं अर्थ-व्यवहार से और कहीं शैली दोनों व्यवहारों के सम्मिश्रण से, उन्होंने इसे हृद्यकारी बनाने की भरसक चेष्टा की है। जो रचनाएँ अश्लेष-शैली में की गई हैं वे विशेष मनोहर हैं। यही कारण है कि नीति की बात-सहकों मुक्तिदायक जनता के हृदयपटल पर अंकित होती आई हैं। यह होते हुए भी मानना पड़ता है कि अश्लेष नीतिकाम्य शायद-शायद तथा अत्यन्त श्लेष की कमी और शायिक या धार्मिक व्यवहार के प्रभाव के कारण अवरकोटि का काम्य है ही परिणतनीय है।

एक दृष्टि से भारत का उपयुक्त नीतिकाम्य ब्रह्मसमीप है क्योंकि उसने मानव को काय श्रेय मोक्ष मोक्ष आहंकार हिंसा अमृत स्वेय कामुकता परिग्रह धार्मिक दोषों से बचाकर संयम शान्ति सतोय विवेक तपस्या प्रेम सत्य ब्रह्मचर्य धार्मिक पाठ पढ़ाया है। सत्य संयम त्याग दमन दान, परोपकार धार्मिक ऐसे सद्गुण हैं जो मनुष्य को बेबता बनाने की सामर्थ्य रखते हैं। यदि इन गुणों का सार्वभौम प्रचार हो जाए तो संसार निःसंश्लेष देवकोक बन जाए। परन्तु अति तो सबकी बर्जित होती है। इन गुणों का यहाँ इतना अधिक प्रचार हुआ कि लोग मनुष्यता को भूल बैबता बन बैठे। शौर्यियों की मोक्ष इच्छा ही गई। गृहस्थ लोग भी बाहर से गृहस्थ होते हुए अन्ध से बिरक्त हो गए। प्रत्येक व्यक्ति शरीर को तुच्छ, जीवन को निस्तार संसार को मायामय मान बैठा। जीवन के प्रति वह उत्साह, वह उत्सव वह लक्ष्मण न रही जो जीवन को सुखमय बनाती। शरीर बर्जित पर रहने समा मन आकाश पर। बीरता पराक्रम, पुरुषार्थ धार्मिक कमी हो गई। शत्रुघ्न तथा अनामिकाएँ धार्मिक प्रभाव बन बैठे। मनुष्य मनुष्य न रहकर बेबता बन बैठे। परन्तु यह पुण्डरीक मर्त्यकोक है, देवकोक नहीं है। यहाँ पर सुख-सम्मानपूर्वक विवाह के लिए देवोचित पुण्डरीक की ही आवश्यकता नहीं मानवोचित पुण्डरीक की भी है। सांसारिक जीवन की सफलता के लिए जीवन को संस्था संसार को काम्य सम्बन्धों को वास्तविक जीवन को उपयुक्त मानना आवश्यक है। परन्तु हमारा अश्लेष नीतिकाम्य इन आवश्यकताओं से दूर है। वह व्यक्ति को सांसारिक जीवन में सतता सफल नहीं बना सकता जितना कि उसे वास्तविक शान्ति व सफलता है और मोक्ष के पथ पर जाता सकता है।

(२)
शोध-खण्ड

प्रथम अध्याय

आदिकाल का नीति-काव्य (स० १०५०-१३७५ वि०)

संवत् १०५० से १३७५ वि० तक का समय हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आदि-काल माना जाता है। यह वह काल था जिसमें आक्रान्ता मुसलमान तो भारत पर अपना शासन अमाने का उद्योग करते रहे और भारत के हिन्दू उन्हें देश से बहिष्कृत करने का। कभी एक विजयी होता तो कभी दूसरा। बृकि राजपूत नरेश घाटा शिरों को फूट और पारस्परिक विग्रहों के कारण पर्याप्त निःसरण हो चुके थे यद्यत्तः विजय मुसलमानों की हुई और यह विघात देश उनके अधिकार में चला गया। मुसलमानों के इस काल में नीति की एक भी स्वतन्त्र रचना दिखाई नहीं देती। जो भी नीति-काव्य उपलब्ध होता है वह धर्म-विषयक काव्यों में प्रकीर्ण रूप से ही समाविष्ट है। ऐसे धर्म-विषयक ग्रन्थ चार बर्गों में विभाज्य हैं—धर्मग्रंथ काव्य माप काव्य शौरकाव्य और लुप्तरो के काव्य।

इस रूप लुप्तरो में से धर्मग्रन्थान्तर्गत नीतिकाम्य का परिचय गत अध्याय में दिया जा चुका है। शौरकाव्यों की रचना यह बरबाई जमनिक आदि आदिकालीन कवियों ने ही नहीं की केवलदास भूपल गोरेलास ओधराज पद्माकर सुहन आदि प्रतिनिकासीन तथा शीतिकासीन कवियों ने भी की। बृकि प्रकृति की दृष्टि से व सभी कवि एश्वर्याय हैं, इसलिए हमने इनकी शौरतामयी रचनाओं का विवरण एक रूप ही अध्याय में करना उचित समझा है। नायों और लुप्तरो के काव्यों के नीति-तत्त्व का विवरण प्रस्तुत अध्याय का विषय है।

(क) नायकाव्य में नीतितत्त्व

शौरासी शिरों के समान नायों की संख्या भी शौरासी गिनाने का मन्त्र दिया जाता है परन्तु बसुन्त के ७२ या ७८ स अधिक नहीं हैं। उनमें से मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य शौरखनाथ एक महान् व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने नाय-सम्प्रदाय को संप्रतिष्ठ किया था। धर्मो तक नाय-सम्प्रदाय का पाड़ा ही साहित्य प्रकाशित हुआ है। मुसलमानों के नाम से संस्कृत की दो दर्जन स अधिक तथा हिन्दी की बामीस इतियाँ मिली हैं। यद्यपि इनकी प्रायाणिकता के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना कठिन है, तो भी डा०

प्रथम अध्याय

साहित्य का नीति-काव्य (सं० १०५०-१३७५ वि०)

सं० १०५० से १३७५ वि० तक का समय हिन्दी-साहित्य के इतिहास में साहित्य-काल नामा खाता है। यह वह काल था जिसमें आकाशवाणी मुसलमानों को भारत पर अपना शासन बनाने का उद्योग करते रहे और भारत के हिन्दू उन्हें बंध से बहिष्कृत करने का। कभी एक विजयी होता तो कभी हारता। अतः राजपूत नरेश अथवा अरबों को फूट और पारस्परिक विग्रहों के कारण पर्याप्त निश्चिन्त हो चुके थे अतः अन्ततः विजय मुसलमानों की हुई और यह विश्वास बंध समके अधिकार में बसा गया। मुसलमानों के इस काल में नीति की एक भी स्वतन्त्र रचना लिखाई नहीं देती। जो भी नीति-काव्य उपलब्ध होता है, वह अल्प-विषयक काव्यों में प्रकीर्ण रूप से ही समाविष्ट है। ऐसे अल्प-विषयक काव्य चार वर्गों में विभाज्य हैं—अथर्वण काव्य नायक काव्य, शौरकाव्य और कुसरो के काव्य।

इस वर्ग-वस्तुत्व में से अथर्वणान्तर्बर्ती नीतिकार्य का परिचय यह अध्याय में दिया जा चुका है। शौरकाव्यों की रचना अथर्वण के साहित्यिक साहित्यिकानी कवियों ने ही नहीं की केवलवास, सुपण पोरेभास जोधराज पद्माकर सुदन साहित्यिकानी तथा शौरिकानी कवियों ने भी की। अतः प्रकृति की दृष्टि से वे सभी कवि एकवर्गीय हैं। इसलिए हमने इनकी शौरिकानी रचनाओं का विवेचन एक नुसक ही अध्याय में करना उचित समझा है। नायक और कुसरो के काव्यों के नीति-तत्त्व का विवेचन प्रस्तुत अध्याय का विषय है।

(क) नायकाव्य में नीतितत्त्व

शौरिकानी कवियों के समान नायकों की संख्या भी शौरिकानी विद्वानों का मत किया जाता है परन्तु वस्तुतः ७५ या ७८ से अधिक नहीं है। उनमें से अल्पसंख्यक के अल्प शौरिकानी एक महान् व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने नायक-सम्प्रदाय को संकलित किया था। कभी तक नायक-सम्प्रदाय का अर्थ ही साहित्य प्रकाशित हुआ है। सुद पोरकानी के नाम से संकलित की जो अर्थ से अधिक तथा हिन्दी की अन्तर्गत हिन्दी में है। अतः इसकी प्रामाणिकता के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ भी कहना नहीं है। टा ११३०

बङ्गबाल ने चौदह ग्रन्थों को बिद्वत्समीप मानकर योरखवाली^१ में प्रमुक्त स्थापन किया है। येय अनेक पुस्तकों की परिशिष्टों में बाल किया गया है।

योरखनाम के हिन्दी-ग्रन्थों के प्रबन्धक से यह बात सुरक्षित स्पष्ट ही जाती है कि ये साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं जो विद्वानों को योगमार्ग की शिक्षा देने के लिए रचे गये हैं। यही कारण है कि इनमें से अनेक ग्रन्थों की पुष्पिका में पुस्तक के नाम के अनन्तर 'योग प्रबन्ध शास्त्र संपूर्ण समाप्त' प्रादि शब्द लिखाई देते हैं।^२ धार्मिक विद्वानों तथा अनुभवों की प्रचुरता होते हुए भी योरखनाम की हिन्दी-रूतियों में नीति की अनेक सोकोपयोपी उच्चपोष्ठम बातें प्रसंग-बद्ध भा गई हैं जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

वैयक्तिक नीति—बिद्वत् प्रकार प्राचीन जैन कवियों ने राज-नीति से उत्पन्नहोने तथा मत्त-मुखादि वृथित वस्तुओं का समुदाय होने के कारण शरीर को अशुभ माना था उसी प्रकार नाश-संभवाय में भी उसे अपवित्र और नाश-यद की शक्ति में अत्यन्त रूप माना गया है। जैसे—

मन मुनि जाता गुर मुनि लेह । लीही मात धगनि मुय देह ।

मात पिता की मेरो बात । ऐसी होइ कुमारी नाथ ।^३

'मन की ओर जाती हुई (बहिर्मुखी) वृत्ति की गुरु की ओर (अन्तर्मुख) करते। रक्त-मांस की कामा को ब्रह्मगिन में मत्स्य करो। माता-पिता की बात को मिठा जाको अर्थात् बंध की वृत्ति में न लगे। ऐसे बन्धी को परब्रह्म स्वयं कुमारी है।'^४

परन्तु धारम-अभिरथ सब तक अस्मन्त्र है अब तक मनुष्य मिताहापीनहीं होता। अधिक बोधन से उत्पन्न इन्द्रियों की प्रबलता ज्ञान का माध भैबुन की दृष्टा मिता की अधिकता कीध परन्तु प्रादि दोषों का उल्लेख इस पद्यमें अत्यन्त है—

अति अहार पंडी बल करै नासै प्यनि भैबुन बित परै ।

अपारै म्यंशः अर्षि ज्ञान ताके हिरई सवा जंजाल ॥^५

रसना-नीत्य के कारण जहाँ मनुष्य उक्त दोषों का भाजन बनता है वहाँ बाबालता पर-निवा कटुभाषण प्रादि द्वारा जमात्र में निम्न हो जाता है। ऐसे अस्व-यमी व्यक्ति को योरखनाम सालाप्प गृहज्ञा ओर जितेन्द्रिय बाधन को उत्तम वस्तुद्वय कहते हैं—

१. ये चौदह ग्रन्थ ये हैं—सबकी बर, त्रिप्याररसन प्राणसंजनी बरबे बीध, धारमबोध (१), धर्मप्राज्ञा भोग वाग्रह त्रिधि, लपतबार, मध्येन्द्र योरखनाम रोमावती, रवान-सिखण, प्यल जौनीता बधमात्रा।

२. योरखवाली प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन २००३ वि०।

३. 'योरखवाली' पृष्ठ १९१ १९५ ६०।

४. यही पृष्ठ ६१, पद्य १५०।

५. यही, पृष्ठ १४, पद्य ३६।

पत्नी का सङ्गड़ा शिष्या का कुट्टका । गोरय नहै तै पत्नीय बहुका ।

कास का बत्ती मुय का सती । सो सतपुष्य पतमो कपी ॥^१

इश्रियों की उष्णकलता के ही कारण सोन भांस मरिच भांस आदि मासक
द्रव्यों का सवन किया करते हैं । इन द्रव्यों के दोष दिक्वात हुए योरखनाय उनक सवन
का इस प्रकार निषेध करते हैं—

धसपू भांस भयत बया धरन का भास । मर बीदत तहाँ प्राख निरास ।

भांगि भयत ग्यान ध्यान दोबंत । कम बरबारी से प्राणी रोबत ॥^२

इस साहित्य में मन की पवित्रता तथा दृढ़ता और काम श्रेयादि क ब्रमन पर
विरोध बल दिया गया है । यदि चित्त दृढ़ हो तो फिर व्यवहार में जाड़े जितना हँसो-
खेतो कोई हानि नहीं—

हसिया वेसिबा रहिबा रंग । काम कौब न करिबा सप ।

हसिबा वेसिबा धाइबा पीत । बिड़ करि रायि धापना बीत ॥^३

पवित्र और दृढ़ मन पर चित्तमा बल दिया गया है उतनी ही बौद्धिक विकास
की उपेक्षा दिखाई देती है । कारण यह कि मुमुक्षुओं के लिए पुस्तकी ज्ञान स्पर्ष होता
है—

पडि पडि पडि केता मुवा कपि कपि कपि कहा कीगू ।

बडि बडि बडि चहु चट गया पार बस्य नहीं चोन्हु ॥^४

भाषों की दृष्टि में तो विद्वत्ता की अपेक्षा धैर्य शान्ति धीम नम्रता आदि
गुण अधिक आवश्यक हैं जो सज्जनों के भयल होते हैं—

हबकि न बोसिबा ठबकि न चालिबा, धीरे धरिबा पाब ।

परब न करिबा सहर्जे रहिबा, मरुत मोरप राब ॥^५

कई लोग बातचीत से तो धरदस्त सज्जन प्रतीत होते हैं परन्तु उनकी रहन
सहन कपम क दिपरीत होती है । इस दो-रंभी नाम का नियेब योरखनाय ने इस प्रकार
किया है—

कहति सुनेमी ररलि हुहेमी बठलि रहलि बिन मोमी ।

पह्या मुष्या मुवा दिसाई पाया पण्डित के हाब रह गई पोपी ॥^६

पारिभाषिक मीति—रफी-सग का सर्वथा परित्याग हा भाष-नीति का सादर

१ 'योरखनायो, पृष्ठ ३२ पृ १३२

२ " , पृष्ठ ३६ " १६५

३ " , पृष्ठ ३, " ७

४ " , पृष्ठ ४७ " २४८

५ " पृष्ठ ११ २७

६ " पृष्ठ ४२ ११६

या । वे तो उसके साथ पानी पीना तक हेय समझते थे और मेषुन को मृत्यु का मार्ग-
दर्शन प्राणी छोड़ना कम का मोक्षदा सर्वे न पीकरा वाली ।

इसको प्रबलपर होइ मन्त्रिन्तर, जोश्यों गौरव वाली ॥^१

गृहस्त्री को सर्वथा बर्हा घोर स्त्री को बाधिन इस कारण कहा गया है कि
उससे मति बनमन हो जाती है, घरीर धिबिन हो जाता है, बाल बनने के पक्ष-से बन
जाते तथा मनुष्य निर्बीर्य और निष्क्रमा हो जाता है—

गोइ भए बयमप पेठ जया डीला तिर बगुला की पयियां ।

धमी भ्रष्टारस बापलीं सोध्या, घोर मयन बंसी पयियां ॥^२

इस विषय में 'मति' को भी प्रबल मानते हुए घोरबनाम दोष बातों में मध्यम
मार्ग को ही सुनीति बताते हैं—

बार्से भी मरिये, प्रलुपायै भी मरिये । गोरक कहै पूता सर्वमि ही मरिये ।

मबि निरन्तर कीकै बाठ । निरुधन मनुष्य फिर होइ बाठ ॥^३

बाप-घाहिय में पारिवारिक मोठि न होने के दुस्व हो है । बर्हा मारी को बाधिन
कहा गया और उसके सर्वसर्व को रूपण बर्हा गृहस्थों को निध और ज्ञान का अपान ही
माना जा सकता है—

मिरहो को ग्यान समलो को, ध्यान । बुधा को कान बेस्वा को नाम ।

बराबो घर मामा स्यू हाव या बार्बा को एको लाप ॥^४

सामाजिक नीति—जब तक गुरु न मिले तब तक ज्ञान नहीं होता और जब
तक ज्ञान न हो तब तक मध्य उपाय करने पर भी, समति नहीं होती । इस तथ्य को
घोरबनाम स्वस्मृतिस्वोक्ति द्वारा यों स्पष्ट करते हैं—

गुर कीकै महुला निगुरा न रहिला,

गुर जिन बानी, न पायल रे भाईला ।

हुये बाया कोइला प्रजला न होइला

काया कंठे बहूप माल हुंजला न भेला ॥^५

निगुरा व्यक्ति बालक प्रबन्ध दुष्टिम व्यवहार भरे ही ज्ञान जाए परन्तु सुनीति
का ज्ञान और गुणों की प्राप्ति गुरु-बुधा से ही सम्भव है—

साय का सबब लोना का रैय निगुरा की बालक, सगुरा की उपदेश ।

गुर का मजूया गुण से रहे, निगुरा भरे भोगुल वहै ॥^६

१ 'गोरबनामों' पृष्ठ २६ पद्य ४

२ " " पृष्ठ १३८ " २

३ " " पृष्ठ १ " १४६

४ " " पृष्ठ ८४ " १४५

५ " " पृष्ठ १२८ डक पद्य १

६ " " " ३१ " १४६

गुरु का गुरुत्व ज्ञान के धार्मिक्य के कारण होता है, नयोबूझत्व से नहीं। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् सिष्य स्वेच्छानुसार गुरु के साथ भी रह सकता है या अकेला भी।^१ सिष्य को ज्ञान ससक्ती योग्यता के अनुसार ही देना उचित है, क्योंकि धार्मिक वस्तु भरने से पात्र के फूटने का मय रहता है—

बापि भरे तो बासण फूटै बार् रहै तो झीझै ।

बसत भरैरो बासण बोझा, कहुँ पुर क्या कोर्षै ॥^२

समाज में मूर्ख भी होते हैं और पण्डित भी। गोरखनाथ वहाँ मूर्खों की सभा में बैठना उचित नहीं समझते वहाँ पण्डितों से विवाद करना भी।^३ बिकलांग व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा कौ को बाचना धार्मिक समाज में भी कुछ-न-कुछ विद्यमान है, यह गोरखनाथ के 'सबर्षों' में भी अपसम्भ होती है—

सति सति बोलै गोरख राणा ।

तीनि बखे का संय निबारी] नकटा हुआ कारण ॥^४

इसके प्रतिरिक्त मांड कबाड़ी विरचित सभा धातुर नारी निरक्षर ब्राह्मण और बहुस्य योपी की संगति भी रम्याय कही गई है।^५

तत्कालीन समाज में धर्म के तत्त्व पर लोगों की सतनी खडा महीं की बितनी बाह्य प्रभम्बरों पर। हिन्दू मूर्ति-पूजा तीर्थयात्रा धादि को मुससमान नमाना बौध धादि को बौध उपवास केघणु बन धादि को कस्याण का धाधन मान रहे थे। गोरख नाथ ने इन सब कार्यों का धर्माभित्य निर्मीकता से निदर्शित किया है। पत्र-मुप्य धादि द्वारा प्रतिमापुजन का खंडन इन सबर्षों में किया गया है—

बने ब्रह्मा कसी बिसमा फल मने खडम देवा ।

तीनि बैध का घेर किया तुम्हें करहु कोन की सेवा ॥

चोदतिपाँ ने पुनमियाँ बौन घतबारी हुआ ।

घरहुंत की तिन पार न पायी केस लौचि-लौचि हुआ ॥

पेक मुसातम् बोड कुरानम् ग्यारह पुरसाखी हुआ ।

घसह, की तिन पार न पायी संप बैह-बैह हुआ ॥^६

समाज के विभिन्न वर्गों के लोग उपयोग्य होते भी जनता को ठग रहे थे। गोरख ने उनसे सचेत रहने का इस प्रकार उपदेश दिया—

१	'गोरखबानी', पृष्ठ ३३,	पद्य १६१
२		७८ " २३५
३	"	४३ १२१
४	"	७७ १४६
५	"	८० २६१
६	"	१३०१ १३३१, ६

दिया न स्वप्ति (साति?), और न रोगी रसायली और चाबि चाय ।

बूझा न कोणी घुरा न बीड पाखें घाब घतना न माने बी योरखनाय ॥^१

यर्षात् जो स्नेह हीन हो बहु मारी नहीं जो रोनी हो बहु बंध नहीं जो सोना बनाना जानता हो बहु भिकारी नहीं जो बूझा हो बहु योगी नहीं और बिसकी बीठ पर बाब हो बहु बीर नहीं । इसी प्रकार यंत्र-मंत्र-तंत्र चाबि का और कड़ी कूटियों से समरत्न प्राप्ति का उग्र संकन किया गया है—

कड़ी कूटी भुलें मत कोइ पहली रांड बंध की होइ ।

कड़ी कूटी प्रकर जे करे, ती बीड बर्नतर काहे मरे ॥^२

इत वाण्ड-पुखें बाठों से दूर रहकर अपने घट धारण की शिक्षा दी गई है ।

बैठे—

एक घत जो इंही गई बूझा घत राय मुक गई ।

तीजा इत मिम्या नहि भाब, बोधा घत बजा मनि रायें ॥^३

धार्मिक नीति—इस लोक में धन को निम्न और धाधा को स्वान्य कड़ा गया है तथा विविध रूपधरिणी माया से मुक्त रहने की प्रेरणा की गई है । यथा—

जे धाखा लो धायवा, जे लंका लो लोण ।

गर भुवि बिना न जाजमी (घोरय) ये दुग्यो बड़ रोग ॥^४

इतरप्राणिविचरक नीति—दूसरे प्राणियों को घाना ही सम्भरबी समझकर उनका बध न करने की सुन्दर शिक्षा भी दी गई है—

जोब सीब समे बासा, बधि न जाइवा कम साता ।

हैस घाल न करिवा नीलं, कर्बत घोरय निहारि नीलं ॥^५

मिथित नीति—मिथित नीति में मृत्यु की प्राकृतिकता का उल्लेख कर सघट पीठ होने^६ का तथा जीवन इस ढंग से मरतीत करने का उपदेश दिया गया है जिससे न पुनर्जन्म हो न पुनः स्वयंपाल करना पड़े ।^७

भाषा—बाबों का अधिकतर नीतिकाम्य सीधी-साधी पूर्वी भाषा में लिखा गया है । बस्तुतः जे काव्य न कहकर तुझ्की कहना ही अधिक उपयुक्त है क्योंकि

१ 'घोरखनामी' पृष्ठ १८, पद्य २१०

२ " " " १७७ धरमबोध पद्य १७

३ " " " २४३ परिशिष्ट २ (घ) २

४ " " " ७४ पद्य २३३

५ " " " ७३ " २२७

६ " " " २६ ७४

७ " " " ८३ " २७३

उसमें बुद्धितत्त्व का प्राधान्य है और भावतत्त्व तथा कल्पना-तत्त्व का प्रायः अभाव ।
बात को स्पष्ट करने के लिए कहीं-कहीं दृष्टान्तों का भी प्रयोग किया गया है । जैसे—

बड़े न सोम सुन्दरी सतकारिक के साथि ।

सब तब कलक लयाइसो कालो हाँडीहायि ॥^१

कहीं-कहीं तो अनुप्रास का प्रयोग ह्याम्यजनक ही प्रतीत होता है । जैसे माया
के विभिन्न रूपों के निम्नांकित वस्तु में—

कुम्हुरा कं घरि हाँडी घाछ, घाँडीरा क घर साँडी ।

बयना कं घरि राँडी घाछ, राँडी साँडी हाँडी ॥^२

इसी प्रकार मायामी चरणों में 'तैल, बल घल' और 'होम रयं स्यं' आदि
के अनुप्रास हैं ।

सुम्ह—कवियों के विषय में इतना ही कथन पर्याप्त है कि प्रायः चौपाई, चौपाई
हाथी सार आदि मानिक कवियों का प्रयोग करने का यत्न किया गया है । बहुत
बड़े पद्य ऐसे होंगे जो मात्रा गति यति आदि की दृष्टि से निर्वोप हों । सबकों में
प्रायः सार छन्द के दो-दो ही चरणों से सम्मोच किया गया है । पदों के ऊपर रामझी
पञ्चाक्षरी आदि गायों का उल्लेख हुआ है । मछीगढ़ गोरप बाब' में गोरखनाथ के प्रान
'स्वामी' से और मछीगढ़ के उत्तर 'पबडू' सम्बाधन से आरम्भ होते हैं । इन पद्यों को
यदि पद्यों का संघन न माना जाय तो छन्दों का बड़ा कुछ सुन्दर आती है । प्रतीत
होता है रचयिता का ध्यान विषय के तुक-मुक्त प्रतिपादन-मात्र पर था छन्दों की
आरता का धोर नहीं ।

दीप्ती—उपयुक्त पद्यों में प्रायः निम्नलिखित दीप्तियों का प्रयोग दिखाई देता
है—

१ छन्दनिकरक दीप्ती

२ प्रसोत्तर दीप्ती

२ उपदेशात्मक दीप्ती

१ तिबिदीप्ती

३ सख्यात्मक दीप्ती

७ बार दीप्ती

४ संभाव दीप्ती

१ छन्दनिकरक दीप्ती में मीति की बात सामान्य रूप से नहीं आती है । इसका
प्रयोग अल्प शक्तियों से अधिक किया गया है । इस दीप्ती के अनेक पद्य पीछे उद्धृत
किये गये हैं ।^३

२ उपदेश दीप्ती में कठम्य-वैशेष करने का साक्षात् निर्वोच किया जाता है ।

१ 'गोरखनाथी', पृष्ठ ७७ पद्य २३०

२ " " ११६, पद्य ४२

३ ११२ पृष्ठ पर पाँचवीं पादविप्लवी द्वारा संकेतित पद्य शैलियु ।

इस धीमी के कई उदाहरण पीछे देखे जा सकते हैं ।^१

३ संज्ञाधारी में एक हो, तीन धातु संज्ञाओं की सहायता से उपदेश्य भागों का सम्बन्ध किया जाता है ।^२

४ संज्ञाधारी में दो व्यक्तियों के नामों ('गोरपोबाब', 'मन्दिह उबाब') का पद्यों के पूर्व सम्बन्ध रहता है ; मन्दिह गोरप बोब' रचना इसी धीमी की है ।

५ प्रसन्नोत्तरधारी संज्ञाधारी का ही रूपान्तर है । इसमें सेवक कल्पित प्रसन्न-कर्ता का स्वयं उत्तर देता है । जैसे—

स्वामी कम सीढ़ि बाँडेँ तो दुब्या व्याप मरो बाँडेँ त माया ।

धरि धरि पाँडेँ त बिन्धे विघार्ये बयों तीभरि बल अर्थ की काया ॥

बाधे न पाइबा बुबे न मरिबा म्हात्मिनि सेवा ब्रह्म अर्थि का मेर ।

हठ न करिबा पद्या न रहिबा यूँ बौस्या गोरप देब ॥^३

यहाँ पहल पद्य में बनबास नगरबास तथा धर्मिताहार के दाव बठाकर सरीर को समस्वास्त्वा में साने के सम्बन्ध में प्रश्न किया है और दूसरे में मध्यम मार्ग का यहूय उत्तर-रूप में बताया गया है ।^४

६ 'पन्नाहू तिथि धीमी' में यमावस्या प्रतिपदा धातु सभी तिथियों का आचार लेकर उपदेश दिये गए हैं । इसी कारण इस सबहू पद्यों की पुस्तिका का नाम भी पन्नाहू तिथि रख दिया गया है । इस धीमी में प्रायः एक पद्य तिथि के नाम से आरम्भ होता है और प्रायः उसके धातु ऐसा सभर रखा जाता है जो सेकानुमास का सावक हो । चतुर्थी को लेकर यों कहा है—

बोये बजल तिहुबल करो । काल बिकाल बुर परहरी ।

बस-बीरा का मरों मान । सतगुर कबिया बर निरखान ॥^५

स्मरण रहे कि तिथियाँ पुरुष-पद्य के क्रम से बढ़ती हैं और पुंलिङ्गा तक पहुँचती हैं इसके विपरीत नहीं ।

७ 'सप्तवार धीमी' में सप्ताह के दिनों का आचार लेकर उपदेश दिये गए हैं । साठ पद्यों की पुस्तिका का नाम भी 'सप्तवार' रखा गया है । क्रम धारित्ववार से धनीस्वर तक चलता है : जैसे—

बुस्पति बार बिषम मन मरी । पाँचों इगरी निग्रह करी ।

सपली नै ब ध्या नव द्वार । तो घुर पायी मुसकतिवार ॥^६

१ पाँचों पाइटिप्यारी द्वारा संकेतित पद्य देखिए

२ २७० " " "

३ 'गोरपोबाबी' पृष्ठ १२ पद्य ३० ३१

४ " व्यासतिलक पृष्ठ २११ पद्य १६

५ " पन्नाहू तिथि १७१ २

६ सप्तवार, १८४ २

इस धर्म में प्रायः बार और वर्षों विषय के प्रथम पहरों को समान रखा गया है ।

प्रायः उपर्युक्त सभी धर्मियों का प्रयोग प्राचीन साहित्य में उपलब्ध होता है । विशेष ऋतुओं तथा तिथियों में कृत्य-विधियों के अनुष्ठान का विधान प्राचीन धर्मग्रंथों में मिलता ही है । सम्भवतः उसी को विकसित कर प्रत्येक तिथि और बार को कुछ-न-कुछ शुभ कृत्य करने का आदेश सिद्धों ने दे दिया है । सवाहसीनी भी पहले से ही प्रचलित थी परन्तु दो सामकों के प्रलोत्तर रूप में सिद्धान्त प्रतिपादन की जिस धर्मो की प्रधानता नाब-सम्प्रदाय के ग्रंथों में मिलती है वह नहीं ही है ।

बाकसर्वम मञ्चूर तथा उत्पमापण मन की सुद्धि तथा दुदता मांसमक्षण-निषेध धार्मिक धर्मिक विषय प्राचीन साहित्य में भी विद्यमान थे । विषयों की दृष्टि से नाब-साहित्य में दो ही बातें विशेष दिखाई देती हैं—पद्य-ब्रह्मचर्य और हिन्दू मुसलमानों के बाह्याचारों का लक्षण । सम्भवतः पल्लवमीन परिस्थितियों में इन विषयों को नाब-साहित्य में समाविष्ट कराया । बाब-मार्ग के प्रचार और हिन्दू-मुसलमानों के कृत्रिम आचार की प्रतिधिया ही इन उपदेशों में सन्निहित होती हैं । साधना-मार्ग की शुष्कता ने इस मठ के लिए 'गोरक्षधर्म' ग्रन्थ को प्रचलित किया और पार्श्वरूप के निरालम्ब बहिष्कार ने इस पंथ को सन्निहित बना दिया । फिर भी इस बात का प्रत्याख्यान असम्भव है कि नाबधर्मो नीति ने परवर्ती सन्त-साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया । सन्त-साहित्य में चारित्र्य-सुद्धि तथा आर्षबन्धुता पर जो बल दिया गया है उसका उपक्रम नाबों की नीति में सहज लभ्य है ।

(ख) सुसरो के काव्य में नीतिसत्त्व

धमीर सुसरो धार्मिक-काल के कवियों में अपनी हास्य-विनोदमयी रचनाओं के कारण एक विशिष्ट स्थान रखते हैं । ये धरबी फ़ारसी, तुर्की और हिन्दी भाषाओं के पंडित थे और संस्कृत भी जानते थे । ये फ़ारसी-कवियों के सिरमोर थे ।

हिन्दी में इनके नाम से जो रचनाएँ उपलब्ध होती हैं न तो वे अपने मूल-रूप में हैं और न सब-से-सब प्राचीन । जो हो निम्नांकित कृतियाँ इनकी कहीं जाती हैं—बृहन्न पहेलियाँ बिन-बृहन्न पहेलियाँ कह मुकरियाँ जो सधुना हिन्दी निस्वतः अर्थात् सबंध दो सन्तुना फ़ारसी और हिन्दी धर्मनियतों या बकोसला वसंत और फुटकर पद्य ।

उक्त पुस्तिकाओं में न नीति प्रधान है और न इनकी रचना उपदेश देने के लिए की गई थी । इनके प्रयोजन का बड़े-बड़े या जन-साधारण का धर्मों की शिक्षादाइ द्वारा मनोरंजन । फिर भी इनके कई पद्यों में से कुछ-न-कुछ शिक्षा धनापाय निस्सृत होती हुई प्रतीत होती है और उसी की ओर संकेत हमारा अभिप्रेत है । नेत्रों का सुरदा की धिशा इस बिन-बृहन्न परेनी से मिलती है—

द्वितीय अध्याय वीर-काव्य में नीतितत्त्व

(प्रथमोत्पान सं० १०५०-१३७५, द्वितीयोत्पान सं० १३७५-१६००)

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में वीर-काव्यों के दो उत्पान माने जाते हैं। प्रथमोत्पान के चंद्र बरबाई, जगन्निभ धादि कवियों ने अपनी रचनाएँ धार्मिककाल में कीं और द्वितीयोत्पान के केशव, पृथ्वीराज भूषण, मोरेनाथ, सुदन धादि कवियों ने अपने वीर-काव्य भक्ति-काल तथा रीति-काल में प्रणीत किए। किन्-किन् विभिन्न परिस्थितियों में दोनों उत्पानों के कवियों को अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करने की प्रेरणा की इसका विवरण प्रस्तुत अध्याय में ही आगे किया जाएगा। यहाँ इतना स्मरणीय है कि ये कवि रामाभिषेक से घोर अपने आश्रयदाताओं के पराक्रम विजय, विवाह, शांति-दान-पुष्पादि के बख्तों द्वारा सशस्त्री सश-कीर्ति को घपर बनाने के लिए ही अपने काव्यों का सज्जन करते थे, नीति के उपदेश देने के लिए नहीं। बही कारण है कि इन रचनाओं में नीति की मात्रा अल्प है। ऐसी स्थिति में भी इन काव्यों का महत्त्व आत्यधिक इस कारण से है कि इनमें अखिल आधिक्य नीति ऐहिक है, धार्मिक और सामुहिक नहीं। अस्तु, किसी भी प्रकार की समीक्षा करने से पूर्व इनके पश्चिम नीति-काव्य का परिचय प्राप्त कर लेना उपयुक्त होगा।

१ वैयक्तिक-नीति

(क) शारीरिक नीति—पूर्वोक्त जैन वीर बौद्ध साहित्यों के समुदाय वीरों को इन कवियों ने भी विशेष महत्त्व नहीं दिया परन्तु दोनों के कारण पुष्क-पुष्क है। यहाँ पूर्वोक्त कवि श्रोतों को परमार्थ की घोर प्रवर्तित करने के लिए क्रामा को मत मूत्र का आगार वीर अखिल कहते थे वहाँ वीर-नायाधारों ने इसे परिस्थितियों से प्रेरित होकर हेय माना है। यदि ये कवि वीरों को अधिक महत्त्व देते तो शोक वीरों की रक्षा में संलग्न हो जाते वीर युद्धों के लिए प्राणों को हथेली पर रखने की जो मानवा धर्मिचार्य होती है उसका शोक हो जाता। ये तो दुर्लभ वीर दण-मंगुर मानुष-देह की शर्मकता इष्टी बात में समझते थे कि उसे युद्ध में अक्षुण्ट कर अक्षय कीर्ति का उपार्जन किया जाए। आशुर्वच में अथवा अपने जीवनो को प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं—

मानुष देही बह दुसंभ है रींघो बन्ध न बारवार ।

तुम ना भजियो समर भुम्भि ते कह खिरि कई बीर चौहान ॥^१

एक तो घरीर घीर बीजन कैसे ही बाण मंगुर घीर भस्मायी है घीर बूखरे बह सुद-दुन्दुभि की तुमुन-भ्रानि बारों घीर से क्यंङ्कुरों में प्रविष्ट होती च्छी हो तब बीजन में शम्पत्य-मुत्रों की उपेक्षा सु-नीति नहीं मानी जा सकती । इस बात का हस्तेब भरपति मारुह ने यों किया है—

बाई जोवन मन मत्तम हाव । बीजन नबि गिएइ बीह ते राति ।

जोवन रातयो तु च्छई । जोवन प्रिय बिल होसीय छार ॥^२

यद्यपि बीर छत्रियों की बाणी में कुछ नर्ब घीर प्रचरता का होना भस्वामाविक नहीं तपानि म शोप तो है ही । यही कारण है कि इन काम्यों में भी कट्टु भाषण तथा सदप-बचनों से बचने की ही प्ररखा की गई है । राजमती के पाणिएइल के परचात् एक दिन बह बीममबब धपन भजमेर-राक्य की सम्पत्ति पर मवित होकर बोला—'मो सरीला नहीं ऊर भुवान' तब राजमती ने उसे गर्बनि राबण के पतन तथा उत्कल मरेण की महती संश का बूत मुनाकर नभना बारण करने का संकेत किया—

परब न बोसो हो मो भरवार । बाजा घागे राजा घसिय हमार ।

सकारति राबण घली । सात समंद बिब बस्ती फेर ।

संक बिजुमी बानरा । पै काइ सराहो राजा गइ भजमेर ॥^३

बीर पति को पत्नी की उचित विद्या भी अनुचित प्रसीत हुई घीर बह उत्क-लाविति को पराजित करन के लिए उद्यत हो गया । जब माबी विधोय की धार्णका से राजमती ने ध्याकूस होकर क्षमा-याचना की तब बीजन ने कहा—

कडुवा बोल न बोसीय नाटि । तु मो मेल्हसी बित बिसारि ॥

धीम न बीम बिगोयनो । बप का बाधा कुपनी मेल्ही ।

बीम का बाधा तु पावुरई । मारुह कहइ मुएाजइ सब कोई ॥^४

परन्तु बाणी-विषयक इन सामान्य नीतियों पर बीर-काम्यों में उठना बल नहीं दिया गया जिसना कि मुख से निस्तुत बचन को पूर्ण करने पर । पुरुष मत्पुरुष घीर सरदार बही है जिसका बचन कभी नहीं टलता घीर जो तन-मन-बन प्रति कर भी अपनी बाणी को उत्प सिद्ध कर दिखाता है—

मूर समस्त बइ रन ऊपर, ते पुनि कोडि करी बिबले ना ।

वात यहै तिरवारन की मंहू ते कहि के कबहुँ बरले ना ॥^५ (जयतिक)

१ सं०—सी० ए० इतिपट्ट घसती घाहृखड (ऊर्बंजाबाद सं० २००६) पृष्ठ १८

२ बीसलदेव रातो (ना० प्र० ल० कापी सं० १६८२) पृष्ठ ४३।३४

३ बही पृष्ठ ३२-३३

४ बही पृष्ठ ३७।१८

५ घाहृखड, पृष्ठ २३

या लल बचन धार लुति पाई । तब मन मन ई बचन कू राखे ॥
तब मन भात पुत्र धर नारो । हरि विपु त्यागि बचन प्रतिपारो ॥^१

(बोधराज)

सिद्ध गमन सुपुत्रक बचन कबलि एसें इक बार ।
तिरिया तेस हमीर हठ कई ग बुझी बार ॥^२ (नरदेवर बाबदेवी)
सतपुत्र्य भेन सुस्ने न सहि दुब सुराइ जर धारि पहि ।
रस किये रलहि रस राकिये धरख इती प्रबधारिपहि ॥^३ (मान)

(घ) मानसिक नीति—शाश्वतों के युद्ध विद्यादि से सम्बन्धित इन काव्यों में यद्यपि विद्या, विज्ञानादि क महत्त्व धोर उनकी प्राप्ति के साधनों की विशेष बर्णन नहीं मिलती तो भी बेरोँ बेरुह विद्ये क्योतिपियों धीर क्योतिप प्रबों के प्रति धारणा धारण्य विद्यमान है । कारण यह कि मानसिक प्रवृत्तियों पर धीर युद्धादि के सिद्ध प्रत्यान करते समय धुन मूर्हर्ण का ध्यान रक्खना प्रायः धारण्यक माना जाता था । धिवाजी ने सम्बन्ध की जो उपदेशा दिया था समय उक्त नीति की भ्रमक सङ्क ही बेबी जा सकती है—

धुनन की यह कूल बनाई । तजा तेन की जाइ कमाई ॥

गाइ बेर बिमर प्रखिराले । धरख एङ्कपाटिज वे धाल ॥^४ (बोरसाल)

(ग) ध स्थिक नीति—इन काव्यों में यथा धीनि, धारण्यसम्मान इङ्क संकल्प (हठ टैक) तेजस्विता बौरता धारि धनिबोधित सुखों की प्राप्ति नर विशेष बल दिया गया है । मोहादि के परित्यान की प्ररखा इनमें भी ललित होती है परन्तु नरय सन्तों धीर भवतों से निम्न है । बही सन्त-महात्मा तोय मोहमाया के त्याग के उपदेश प्रसु प्रेम में प्रबलित करने के लिए दिया करते हैं बही इत प्रकार के उपदेश इन काव्यों में धारण्य यद्य की प्राप्ति धारि क सिद्ध किए जाते हैं ।^५ यद्य की प्राप्ति को ही इन काव्यों में धरख धीर धरम तथा धधार संसार का धार कहा गया है । उनकी उपलब्धि के लिए सुख-दुःख को विन्ता न करनी चाहिए क्योंकि वे तो स्वल्पवत् धरणापी हैं—

धरखामर धन एह, बस रह जाये धयत में

सुख सुख दोनु देह, सुवन समान प्रताप सी ॥^६ (दुरदा की)

१ हमीर रासी (प्र०-भा० भा० ल०, सं० १००३) पृष्ठ ११८

२ हमीर हठ, पृष्ठ ११, उदयनाथमल विधारी, धीर-काव्य, पृष्ठ ४७८ पर उद्धृत

३ मान रात्रिविज्ञान धीर-काव्य, पृष्ठ २२४

४ बोरसाल धुनप्रकाश, धीर-काव्य पृष्ठ ३१७ पर उद्धृत

५ धतलो धारहृदय, पृष्ठ ४२

६ दुरदा की : विद्वरधुत्तर, बोधीनास मेनारिया विजय में धीर रत्न पृष्ठ ३२ पर उद्धृत ।

1 सुनहु तो कहूँ कबिल, सुबिर जीवन बग नाहीं ।

महु ससार घसार, सार किति कसु मांही ॥^१ (बंवरदाई)

यद्य भीर नीति की प्राप्ति के साधन तो धनैक होते हैं परन्तु विद्येयत उल्लेख बीरत्व प्रदर्शन धनु पर विजय भीर-नीति की प्राप्ति, स्वाधीनता की रक्षा दान-पुण्य धादि का क्रिया गया है । जैसे—

हम्मीर राव हँसि यो कही, सदा कौन बप बिर रही ।

पिन भग संव सासब कहा, सुबस एक बुम-जुम रही ॥^२ (जोबराम)

बीरतहु कीरति सुलम, मरन धपञ्जर हूर ।

बो पाग लइहु मिलै, म्याय करै बर सूर ॥^३

पराधीन व्यक्ति मघस्वी नहीं हो सकता क्योंकि प्रायः उसके भीर-काव्यों से जनिता यस का मापी उसका स्वामी बन जाता है । जब छत्रछास में सिबाजी के साथ रहकर मुपसों से मोहा सेने की कामना प्रकट की तब सिबाजी ने उसे उक्त नीति का इस प्रकार उपदेश दिया—

तुम ही महाभीर मरवाने । करिही धूमि भोग हम जाने ।

बो इतही तुम को हम राखें । तो सब सुबस हमारे भाखें ॥^४

धायम-सम्मान की रक्षा इन काव्यों का अत्यन्त प्रिय विषय है । जो व्यक्ति तेज छाहस प्रदान भीर पराक्रम से रहित है उसका धायम-सम्मान स्थिर नहीं रह सकता । दूसरे की अधीनता स्वीकृत कर लेने तथा टेक को त्याग देने से भी धायम-सम्मान नष्ट होता है । इसलिये इन रचनाओं में तेजस्विता धादि गुणों तथा टेक की रक्षा करने की प्रेरणा धनैक स्थलों पर की गई है । जैसे—

भाजि न सँभो तुम मोहरा से बुझिहँ सात छाजिको नाम ।

बहु दिन कहिब को रहि बहै, पारो भाज बुन्हारे हाय ॥^५ (जगनिक)

हठ तो राव हमीर को भी राबण को टेक ।

सात राजा हरिपंद को धमुन बाण धनैक ॥६

२ पारिवारिक नीति

भीर-काव्यों में पारिवारिक जीवन को सुन्दर तथा प्रशंसनीय कहा गया है,

१ पृथ्वीराज रासो भाग १, (जबजपुर सं० २०११) पृष्ठ १६६

२ जोबराम हम्मीर रासो (भा० प्र० सं० काशी सं० २०५) पृष्ठ ११५

३ विविध बिहारी त्रिबेरी-रेवास्त (संस्करण १९५३ ई०) पृष्ठ २१

४ पौरसात 'जगप्रदाय, बीरकाव्य' पृष्ठ ३१७ पर उद्धृत

५. घसली भास्वहृदय पृष्ठ ७७

६. हमीर रासो पृष्ठ ११६।१६०

अधिकतर बर्न और बौद्ध काव्यों के समान हेय नहीं। बीरों को सदा इस बात की विज्ञा दिखाई देती है कि कोई काम ऐसा न किया जाए जिससे परिवार का सुनाम बूझ जाए।^१ वहाँ परिवार के सदस्यों की रीति-नीति एक-दूसरे से मिलन होती है वहाँ परिवार की लज्जा संकट में पड़ जाती है। इस नीति को सुदम ने सुजात और सम्राटलकी के युद्ध-वर्णन में इन घटकों में व्यक्त किया है—

बाब बिय बाबो भया सठमुख राखै बैसि
घासन में राखै बस बात बाबो घबलै ।
सुलनु के खंया घासपास के रखंया
धीर कामी के लखया हु के ध्यामहु ते न खरी ।
बेल बाप बाहुम बसन को परंर खान
भांग को बतूरे को पसार हेतु दखनै ।
घर को हवाल पहे संकर की बाल कहे,
लाख रहे खंसे पुत मोदक को मखलै ॥^२

कभी कभी परिवार का कोई श्रियजन पर से प्रस्थान करे तब अशुभपण धरित नहीं होता यह नीति बीसलदेव राखमती को इस प्रकार समझते हैं—

पाहिमी है श्री तोहह भायो धई बाय ।
घसोप ते कोई उलवि जाई ॥^३

कभी-कभी पारिवारिक प्रय बीरों के कर्तव्य-माम में विघ्न-रूप भी बन जाता है। युद्ध के लिए सन्तान सधियों के पय में तीन विकट बाबाएँ सहज ही उपस्थित हो जाती हैं—सन्तान-स्नेह, काम्य-स्नेह और मृत्यु की घातकता। जब बरदाई ने मेवाती मुंगस द्वारा सोमेद्वर को निधित पन में इनका इस प्रकार उल्लेख किया है—

तिसु संसी समझी किरपी उभय काम बप बोर ।

औ मुबठु त्रिय घषम हुत तो बन सधि तरीर ॥^४

भाव यह कि जब कर्तव्य का प्राह्वान कार्यों में या पहुँचे तब पारिवारिक मोह का परिहारा कर सशम के लिए प्रस्थान ही धरित है।

माता रिता और पुत्र—माता का मुख्य कर्तव्य यह निदिष्ट किया गया है कि वह उस बीरवर प्रताप के समान गुणों को जन्म दे जिसके नाम के सबल-भाव से परवर-सा ठेकसी सम्राट भी गोने-गोज ऐसै उभक उठना या बँस उपवान पर सर्प

१ घासनी घरहुण्ड, पृष्ठ ८३

२ सुजात पारित लतीउ छव घोर शम्भ पृष्ठ ३६१ पर उद्धृत

३ घोसल हैब रासो पृष्ठ ४२।३१

४ बुजोरारत रासो भाय १ (ब-पपुर) पृष्ठ १७३

ना बटा हो ।^१ वह माता बन्धु मानो जाती थी जिसकी गर्म-वहीण शिक्षा से सद्योबाध विधु नाम काटने की छुटी को पकड़ने के लिए मूट उठता हो—

हूँ बलिहारो राणिमा, धूरु तित्ताबल भाव ।

नासो बाइल रीपुटी, मपटै बलिपो साव ॥^२

जिन बन्धुओं में वीरता की कुछ कमी है वही पड़ती थी उन्हें अपने उत्तरक वचनों से वीर बनाना भी माता का ही कर्तव्य था । वीर हम्मौर के रणोत्साह का डिगुणित करने के लिए उसकी माता कहती है—

तीरा ऊपर तीर सदि, सेना ऊपर सेत ।

जमा ऊपर बन्धु सदि रन समुख सुत बल ॥

पुख मुख छपती सामुहूँ, धारै ऊपर घाय ।

पलक न भंयै पूत की, बड़ बौघुनी बाव ॥^३ (बन्दोखर)

ऐसी वीर सम्मान अपने माता पिता का सम्मान करना करना कर्तव्य मानती थी । पुत्र युद्ध में विजय-नाम के लिए माता का धासोबाह लेकर ही प्रत्याग करना अधिक अनमते थे । माझी की सड़ाई पर जाते समय ऊपर ने अपनी बगनी से यह बिनती की—

पंजा धरि देह मैरि पीठि पर माझी सेयै बाप के बायै ।

इतनी सुनि के माता हैव तब कनिमाँ में लघो उठाय ॥^४ (अगनिक)

पिता के अपकार या हत्या का प्रतिशोध सेवा पुत्र का प्रमुख कर्तव्य था । जीवन में प्रविष्ट होने से पूर्व ही वह बचसा बुझाने के लिए सासायित हो उठता पा-रण छोटी 'रबपुत री वीर न मुने बालु ।

बायह बरसाँ बापरी, सई बँर लंकालु ॥^५ (कविराज मूर्यमस्त)

जब ऊपर का पहल-पहल विरिष्ठ हुआ कि उनका पिता की हत्या माझी-नरेर कर्म ने की थी तब वह क्रुद्ध होकर माता के पास पहुँचा और कमर में बन्दार खींच उसे अपने वक्षस्वस से सपाकर माता से पूछने लगा—

की ने मारे बाऽ हमार माना हूँ देव बतसाय ?

की है राजा माझी बारी श्री उम्ब है दिलको नाम ?

१ दिगम में वीर रस पृष्ठ ४१

२ मूर्यमस्त । वीर सतसई पृष्ठ १३।६४

३ बन्दोखर हम्मौर हठ पृष्ठ ४३ वीर-काम्य पृष्ठ ४८० पर उद्धृत

४ दासती दासहृदय पृष्ठ ४०

५ वय हव वीर सतसई (६० बगान हिन्दी संकलन कलकत्ता सं० २००५) पृ १६।११८

हैंगी सुपड़िया भिरे बाध को हस्तरे खौबे को बिरकार ।

हाल बतावो हम को ताँवो नाहीं पैदु मारि मरि जाउँ ॥^१

पुत्री—पुत्री के सम्बन्ध में प्रायः दो नीतियों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। प्रथम, उसके कारण बड़े से बड़े अभिमानों का विर मुक्त पाता है^२ और द्वितीय सदासी कन्या की अविवाहित रक्षता अनुचित है।^३

पति-पत्नी—पति का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह कायरता का कोई कार्य न करे जिससे उसकी पत्नी को समाज में लज्जित होना पड़े। पत्नी सशामादि में अपने पति की वीरपति का समाचार सुन फुले नहीं समासी और सोस्तास उसके घब के घाब घतो हो जाती है। परन्तु, जब वह पुष्ट में पीठ दिखाकर घर जाता है तब वह अपनी भूमियों को लज्जित नहीं देख सकते। वह सबका होती हुई भी अपने को बिचका मानकर बहिन से कहती है कि येरे लिए बिचकाभों क पहनने की लम्बी आस्तीनवासी कुठियाँ सीकर सामा कर सिताई में तुम्ह सबकाभों के परकी क समाज बुपुनी ही दे दिया कहेंगी। इसी प्रकार वह अभिहारिण को अपने पर में घाबे का निषेध कर देती है क्योंकि बिचकाभों को शृंगार की वस्तुओं की अपेक्षा नहीं होती—

बरजल लंबी धबियां घालीं घब भूमः ।

तब बोदे योर्नु क्या, डूए सिताई तुम्ह ॥

भलिहारो जा रो सखी, घब न हुवेकी घाब ।

पीब मुबा घर घाबिया बिचका रिधा बलाब ॥^४ (सूर्यमस्त)

यद्यपि राजाभित्त कवियों में इतना साहस तो न था कि बहुपत्नी-धवा का प्रत्यक्ष और प्रबल प्रतिषेध करें तथापि इस बात का उल्लेख अन्तर्भूत कर ही दिया है कि स्त्री के लिए सापत्य का श्लेष असह्य होता है अतएव समभ्रार पति को पत्नी की प्रसन्नता के लिए एक वनीघरी बनना ही उचित है।

जिहपाठ सों घन मिले, और कर मिट जाइ ।

सोति बेर करर जलन, दिन प्रति पीयम जाइ ॥

मुप सिद्धी बिला करे, मन में देत सदाब ।

बोदे प्रम तु प्रीय को, अकार बसुंके घाब ॥^५

उन दिनों पत्नी द्वारा पति के परिवार का दो प्रबल ही न बढता था, यदि पत्नी उद्वेगवता या पत्नी की मूर्खता के कारण उन्हें परित्यक्ता बनाकर कुली कर बैठे थे। ऐसी कुञ्जप्रद स्थिति के परिवार के लिए पत्नी का गुणवती होना किना

१ अस्तीनवासी कुठियाँ पृष्ठ ३७

२ १ ठारका प्रसाद आरुहा (प्र० इन्डियन प्रेस, प्रयाग), पृष्ठ १०

३ सूर्यमस्त : बोर कलसई पृष्ठ ४८८-९, ४४

४. अलिप्त पृथ्वीराज रासी (इसाहाबाद, १९५२ ई० पृष्ठ १५५

भावारथक है, इस बात की सिद्धा राजमती को उसकी सखियाँ इन चारों में देती हैं—
 पंच सखी मोली बहरी छई आई ।
 निमुली ! गुण होई तो प्रीय क्युं आई ?
 फूल पगर नू पाहुआई ।
 पारउ घाँसत-बध्पो ताह कुं आई ॥^१ (नगपति माफ़)

इसके प्रतिरिक्त स्वयं सिंहासन पर धासीन होने के लिए पिता को कई भाइयों की हत्या और सपौत्रों के संहार करने का नियम भी इन नाम्यों में किया गया है।^२

३ सामाजिक नीति

बीरकाम्यों की सामाजिक नीति निम्नांकित वर्गों में विभाज्य है—(क) क्षत्रिय (ख) स्वामी (ग) सेवक (घ) स्त्री (ङ) पुरुष (च) हिन्दू मुसलमान (छ) मित्र शत्रु (ज) फुटफल ।

(क) क्षत्रिय—मनुस्मृति और भगवद्गीता में क्षत्रियों के निम्नलिखित प्यारह कर्तव्य निरदिष्ट हैं—

- | | |
|---------------------|---------------------------|
| १ प्रवारणा | १ धीय |
| २ दान | ७ तेज |
| ३ मठ | ८ धैय |
| ४ धर्म्ययन | ९ दयता |
| ५ विषयों में असक्ति | १० युद्ध में पीठ न दिखाना |

११ शासन।^३

उक्त कर्तव्यों में से यज्ञ धर्म्ययन और विषयों में असक्ति का विशेष प्रतिपादन तो बीरकाम्यों में लक्षित नहीं होता। सेव कर्तव्यों का उल्लेख पर्याप्त मात्रा में किया गया है। प्रजा की रक्षा के लिए क्षत्रिय को भी परीक्षा लेनी पड़ती है। अज्ञ को बस कर बाँधने और धकड़ कर बसने में ही क्षत्रिय को परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं माना जा सकता। उसकी परीक्षा तो तब होती है जब युद्ध की दुन्दुभियाँ गदन भेरी ताय करती हैं। अचिरात् सूर्यमस्त का कथन है—

बनु चार्थ जरा-बरा नही बस धर्म करवानु ।

परछ अर्धाँ धर कायरी, अहू अहिदाँ ब्रवानु ॥^४

क्षत्रिय के लिए सबसे अधिक अपमानजनक कार्य का युद्ध से पलायन। इसलिये

१ बीसलदेव रासो, पृष्ठ ३८

२ मूल्य अंधारवली (हिन्दी भवन साठौर, १९३८), शिवावाकनी, पृष्ठ १२, १३

३ मनुस्मृति १।८९, भगवद्गीता १।५४

४ सूर्यमस्त बीरसतसई, पृष्ठ ८३।१६३

बसते बचने की प्रेरणा इन काव्यों में स्वस-स्वस पर पाई जाती है। राका अपने सैनिकों को धीरे अवाशियाँ अपने पठियों को इस बचस्य कार्य से बचने की घनेक बार प्रेरणा करती दिखाई देती है। अत्रिय धीरे भी इस कर्तव्य को कभी विस्मृत नहीं करते। माडों की सड़ाई के वृत्त जब परमास ने ऊरस को माडों के घस्वाचार घासक से घतर्क रहने को कहा, तब—

हाप जोरि के अग्नि बीसे बाबा सुभो हुपारी बास ।

हम ना भकिहँ घरि समुहँ से बाही मासु रहँ को बास ॥^१ (व्यक्तिक)

इसी नीति को ऊरस करिया की सड़ाई के प्रसंग में अपने योद्धाओं के सम्मुख यों व्यक्त करते हैं—

सरा न बाता बर में राखँ, पाटे अरम न बारम्बार ।

बाँव बिछाव सुम घत घरियो, बुझिहँ सत सख को नाम ॥^२ (व्यक्तिक)

रात्रियों को अपनी बीरता और बाहुबल पर विस्वास होता है। वे किसी कार्य को सुक-सिप कर करना अपमान-जनक मानते हैं। वे प्रत्येक कार्य को खुले मँबाव करते हैं। जिसमें साहस हो धामने घाएँ धीरे उन्हें रोके। जब ऊरस ने माडों के घासाव से घने पुपने बोड़े को चुके से उड़ा न जाने का प्रस्ताव घाहू के सम्मुख रखा तब मसिखे ने प्रतिषेध करते हुए कहा—

बुझनी मारी तब मसिखे ने अग्नि अन्विलत यई सुहवार ।

बोरी बोरा जो से बड़ो कलि में बोर कहीहो नाम ।

घाग जापिहँ रजपूती की धी लक्षीपन बाय नबाव ॥^३ (व्यक्तिक)

इसी प्रकार जब बिबमा ने ऊरस से गुण-रूप से दिखाह कर लेने का प्रस्ताव किया तब ऊरस बोले—

बोरी बोरा घ्याहु न करिहँ, ना हम करै बोर का काम ।

बाता राखे रजपूती को, धी ललवार घड़े की नाम ॥^४ (व्यक्तिक)

इन व्यक्तियों को प्राणों का लतिक भी मोह न था। ज्यों ही बाहू वर्ष के होते के मुस-विग्रहों में घाग लेना प्रारम्भ कर देते थे धीरे पीठ न दिखाने के कारण कुछ ही बलों में बीरगति के मायी बनते थे। यही कारण है कि इन काव्यों में सीरंबीबी रात्रियों को पुणा की बुष्टि से देखा गया है—

बाहू बरिस न ककर बीये, धी ऐरहू लँ जिये सिवार ।

बरस घटाहू एबी बीये घाने बीघन की बिकार ॥^५ (व्यक्तिक)

१ घबली घामुखंड पुण्ड २३ ।

२ डारका प्रसाव घाहू, पुण्ड ३४ ।

३ घबली घामुखंड पुण्ड ४३ ।

४ " " , पुण्ड ३८ ।

५ डारका प्रसाव, घाहू, व्यक्तिक पुण्ड २ ।

ठीक है, जब युद्धों में मरने से स्वामी का ज्ञेय उतरता हो, धर्म यश-कीर्ति की प्राप्ति होती हो, स्वर्ग में सुन्दर अम्बरवाण मिलती हों, तब सच्चे बीर जीवन का मोह क्यों रखें, साध-धर्म से विचलित क्यों हों ?

इन क्षत्रियों में सञ्चरित्र, उदारता, स्वाभि-सेवा आदि के भाव भी क्षमिष्ठ होते हैं। कौमार्य की अवस्था में किसी स्त्री की शय्या पर पाँव रखना राजपूतो-धर्म के विरुद्ध माना जाता था। जब बिजमाँ हाथ जोड़ कर ऊरुत से कहने लगी कि मैं सतबन्धे महान पर सेव विद्या कर तुम्हें पंखा झरूंगी तब बीरवर ऊरुत ने उतर दिया—

ऐसी बातें तुम मत बोली रात्री धीर धरी धन माँहि ।

बहारें पावें धरौं क्षिमिया बर ही रजपूती धर्म नसाय ॥^१ (व्यंगिक)

प्राम- सच्चे बीर धनु पर पहले दास्य प्रहार नहीं करते अपितु उसे ही प्रथम धाकमाल करने की अनुज्ञा देते हैं। इस उदार नीति के लिए महोब के बीर विशेष रूप से विख्यात हैं—

(क) परनि धाँकुड़ा तब उठि बोलो, जगुपी ! सुनो हमारी बात ।

बन्त हमारे में बलि माई पहिने बोट करत हम माँहि ॥^२

(ख) तब किरि करनि बोलत जाग सरब । सुनो हमारी बात ।

जो कोई उपजत नमर महोब पहिने बोट करत सो माँहि ॥^३

(घ) स्वामी—

इन क्षत्रियों में स्वामी या राजा की इच्छा को सर्वोपरि माना गया है। प्रजा की रक्षा करने को ही वह अपना कर्तव्य समझता था परन्तु शासन-कार्य में उसके विपरीत आचरण करना प्राणों को सकट डालना था। ऐसे भी शासक विद्वान्मन थे जो किसी सुन्दर राजकुमारी से विवाह के लिए विमन्त्रण के बिना भी जा पहुँचते थे। जदाहरणार्थ जब राजा परमान बिना किसी निमन्त्रण के मालवण की पुत्री महान देवी को म्याहने के लिए सर्वम्य जा पहुँचा तब बृद्ध मालवण के प्रश्न के उत्तर में बसने लगा—

“हम सोय बुजाने की बात नहीं जोहते । भला सिंह को भी कोई म्याता देकर बुसाता है । यह तो बड़ी अशुभ विचार देसता है । बही जा कर मारता धीर साता है । इसी तरह हम सोय जिसकी अशुभी बटी देसते हैं उसे नबरंसी म्याहते हैं।”^४
राजो की हुस्वेन-कथा से यह बात सम्यक स्पष्ट हो जाती है। अन्तिमार्थ पृथ्वीराज

१ अतनी धातुबन्ध, पृष्ठ २६ ।

२ वही, पृष्ठ ७२ ।

३ वही, पृष्ठ ७८ ।

४ हात्का प्रसाह, धातुहा, पृष्ठ ८ ।

धरण्यापल की रक्षा तत्कालीन राजाओं का मुख्य कर्तव्य था। पूर्वीराज हजर तो म्लेच्छ का मुक्त-वर्धन धार्मिक मानता था और हजर धरण्यापल रक्षा मपना कर्तव्य। उसकी रक्षा खो-छूट कर की-सी हो गई। स्वामी को द्विषमा में हूयते देख कर बरबरदाई ने संकर और धागर के पुष्टान्तों से उसे भों कर्तव्योपदेश दिया—

संकर पर विष कर जिम, बडबा धपनि धर्मद ।

ते रपको बहुमान तिम, खां हुसैन कहि कर ॥^१

‘हम्मीर रासो’ के अनुसार प्रसाउहीन के रणमन्वीर पर धाक्रमण का कारण हम्मीर का महिमा खेच को धरण देना था। जब बीरकालीन पैरे से हम्मीर का हृदय भी एक बार ध्याकुल हो गया तब उसकी छायाएँ राखी न उसे भों उस्थाहित किया—

सरख राखि सेक न लजो, लखो सील मङ्ग देस ।

राखी राब हमीर को, यह बोन्ही उपदेश ॥^२ (बोधराज)

राजी के बचनों में हम्मीर के हृदय को बैसे ही प्रभावित किया जैसे बगदैन के उपदेश ने पार्व के मन को। वे बालिक नवीभ्य का परिस्थान कर बोसे—

राखि सेक सरखीं लखो, कुल लार्ज बहुंवाण ।

हुम साको मङ्ग कोजियो, निरकि छाहू लीछाल ॥^३ (बोधराज)

कबिलर मुबलू के भी शिवाजी की धरण्यापल-व्रतमत्ता की धीर इस प्रकार धर्मित किया है—

साहि तनें तब कोप कृसाणु ते बंरि परे सब पानिप बारे ।

एक प्रथमम होत बडो जिम मोठ यहै मरि जात न बारे ॥^४

(ग) सेवक—

सेवक का मुख्य कर्तव्य यह है कि स्वामी के प्रति सदा कृतज्ञ रहे और उसके कार्य की सिद्धि के लिए प्राणो तक को भी व्यपित करने में संकोच न करे। ‘नमक-हुसासी’ या स्वामी के प्रति कृतज्ञता की भावना बीर-काम्यों में पग-पग पर दिखाई देती है। ‘नमक-हुसासी’ की यह भावना सेवा-निवृत्ति के साथ ही समाप्त नहीं होती, बाब में भी बनी रहती है। जब महिमा एक ने अपने बाल्य से प्रसाउहीन के प्राण तो न लिये परन्तु सिर का छत्र निर्या दिया तब बाबघाह का बधीर बोसा—

रिखसे निमक की शोरी, करी जान बकबील ।

जो हुषो सर धंदिहै, हुनिहै चिरबाबिल ॥^५

१ बुधोराज रासो, प्रथम भाग (उदयपुर), पृष्ठ २४७ ।

२ हम्मीर रासो पृष्ठ ११५ ।

३ वही, पृष्ठ १२० ।

४ सुपल्लवबावनी, पृष्ठ १३६ ।

५ हम्मीररासो, पृष्ठ ११६ ।

कमी-कमी युद्ध की भयंकरता या पुत्र-कत्तनादि के मोह के कारण बोझा साग साहस को बैठते थे । ऐसी निष्कट बड़ी में भी जब उन्हें स्वामी के ममक का ध्यान या याता या तो उन के डगमगाते पम पुन स्थिर हो जात थे । घातहूँड की निम्नलिखित पंक्तियों में एक ऐसा ही दुस्म प्रस्तुत किया गया है । ऊपर बोला—

जिनहि विपारी हूँ घर तिरयी, पारी तलब मेड घर जाड ।
जिनहि विपारी परम भगीतो छै सब बलौ हमारे साय ।
इतनी सुनि के लखी सीटे धी ऊरनि को नाधो माय ।
निमक खँदेनि को प्रायो हूँ हम ना परें पिछाड पाव ॥^१

(जयनिक)

सच्चा सेवक वही है जो अपने अन्तिम द्वास तक स्वामी के हित-साधन में तत्पर रहे । यदि युद्ध में मूर्खित स्वामी के नेत्रों को नीलें खोंच से मोचने सयें तो पास ही नापस पड़ा सच्चा सेवक अपना कनेजा काट कर पीसों क प्राये फेंक देता है जिस से स्वामी के नेत्रों की रसा हो जाए । संजमराय की ऐसी प्रपूक स्वामिभक्ति का उल्लेख जब बरदाई ने पृथ्वीराज रासो के महोबा खंड में इस प्रकार किया है—

मोह सावि अहुँवान परे मुरदा हूँ परतिय ।
जड़ गोपनि बाँठि क बुच बाहूँति बिरतिय ॥
बैद्यो सजमराय नृपति बुच बाहूँति पंघिन ।
अपने तन की माँठ काँठि मजु बिपो तठचिघ्न ॥
अपने नुनघन बैद्यो नृपति अन्त सयें अम पस्मियब ।
प्राये बिबाज बकु ठ के बैह सहत परि अन्तियब ॥^२

सत्य है यदि ऐसे कर्तव्य-निष्ठ सेवकों की भी सङ्घटित न होमी तो घोर किसकी होगी ! कदाचित् इसी बटना को स्मरण करते हुए कबिचंदा मूयमस्त ने स्वामि-मस्त सेवकों की यों स्तुति की है—

मड़ सो ही पहला पड़े चीन्ह बिमगा बरु ।
मरु बचाई नाहण, प्राय कसेत्री खँक ॥^३

गुणो सबक का कर्तव्य है कि गुण-वाही घोर विवेकी स्वामी को ही सहा करे । कारण मूल तथा विवेक-हीन स्वामी गुण के महत्त्व को नहीं पहचानता घोर इसीलिए गुणवान् सेवक को कुछ काल बाद 'नराय' होना पड़ता है । जब बीरबर छत्रसास को घनाधारण बीरहृत्य करके पर मो घोरपञ्चर हाण अविज सम्मान प्राप्त न हुमा तब के बोले—

१ घतली घातहूँड, पृष्ठ ४२ ।

२. कबिता कौमुदी भाग १ पृष्ठ १२८ ।

३. मूर्धनस्त बीर सतसई पृष्ठ ८६ ।

शरणागत की रक्षा तत्कालीन राजाओं का मुख्य कर्तव्य था। वृषीराज
इसपर तो स्मैच्छ का मुख-बर्चन धर्माधिक मानता था और छत्र शरणागत रक्षा
प्रदान कर्तव्य। उसकी रक्षा लाप-छत्र कर की-सी हो गई। स्वामी का द्विबिधा में हुबते
देख कर बंदबंदारी ने शंकर और सागर के बुढ्यानों से उसे यों कर्तव्योपदेश दिया—

झंकर गर विष कंड छिम, बडबा धमनि समंभ ।

तैं रक्खो बडुप्रान तिम, खां हुसैन कहि चर ॥^१

‘हम्मीर रासो’ के प्रमुद्यार प्रताउहीन के रसकम्पौर पर धाक्यण का कारण
हम्मीर का महिमा लेख को छत्रक वेना था। अब दीर्घकालीन घरे से हम्मीर का हृदय
भी एक बार भ्याहुस हो गया तब उसकी अबाणी पाली म उसे यों उत्साहित किया—
सरख राखि लेख न तजो, तजो सीस पड़ देस ।

राखी राख हमीर को, यह बोण्ही बपदेश ॥^२ (बोबरज)

रासी के बचनों में हम्मीर के हृदय को बैसे ही प्रभावित किया जैसे बनारस
के उपदेश ने पार्श्व के मन को। वे जालिक वसैव्य का परिचय कर बासे—

राखि लेख सरखीं तजो, कुन लाज बडुंवाण ।

तुम लाको पड़ कीजियो, निरखि छाह मौसाण ॥^३ (बोबरज)

अधिर सुपण ने भी शिवाजी की शरणागत-वस्तुता की और इस प्रकार
संकेत किया है—

छाहि तमें तब कोप हुसातु ते बैरि परे सब पाविय बारे ।

एक प्रबन्धम होत बडो सिन छोठ यहै परि बात न बारे ॥^४

(ग) सेवक—

सेवक का मुख्य कर्तव्य यह है कि स्वामी के प्रति तदा कृतज्ञ रहे और उसके
कार्य की सिद्धि के लिए प्राणो तक को भी धरित करने में संकोच न करे। ‘बनक-
हजामी’ या स्वामी के प्रति कृतज्ञता की भावना बीर-काम्यो में बन-बन पर दिखाई
देती है। ‘बनक-हजामी’ की यह भावना सेवा-नियुक्ति के साथ ही समाप्त नहीं होती,
बाद में भी बनी रहती है। अब महिमा लेख में अपने कारण से प्रताउहीन के प्राण तो
न सिधे परणु सिर का छत्र विरा दिया तब बादशाह का बजीर बोला—

विद्यने निमक को बीस्ती, करी जान बडसोस ।

को हुजी सर घबिहै, हुनिहै बिस्वाबीस ॥^५

१ वृषीराज रासो, प्रथम भाग (छत्रपुर), पृष्ठ २४७ ।

२ हम्मीर रासो, पृष्ठ ११८ ।

३ वही पृष्ठ ११० ।

४ शूरार्यवावली, पृष्ठ १३६ ।

५ हम्मीररासो, पृष्ठ ११९ ।

कभी-कभी युद्ध की भयकरता या पुत्र-कलत्रादि के मोह के कारण योद्धा लोग
छाहल को बैठत थे । ऐसी दिकट बड़ी में भी जब उन्हें स्वामी के ममक का ध्यान था
जाता या तो उन के डगमगाते पग पुन स्थिर हो जात थे । घासूबांड की निम्नलिखित
शंक्तियों में एक ऐसा ही दृश्य प्रस्तुत किया गया है । ऊपर बोला—

त्रिनहि विचारो हूँ घर तिरपाँ, पारी ततब सैठ घर जाड ।

त्रिनहि विचारी परम भयोती ते सब बसो हमारे साथ ।

इतनी सुनि के सबो लौटे छी उरनि को नामो माप ।

निमक बँसेते को नामो है, हम ना बरें विद्याक पात्र ॥^१

(जगनिक)

सच्चा सेवक वही है जो अपने अन्तिम खास तक स्वामी के हित-साधन में
तत्पर रहे । यदि युद्ध में मूर्च्छित स्वामी के नेत्रों को नीचे नीचे से तोचने लयें तो पास
ही भायस पड़ा सच्चा सेवक अपना कनेजा फाट कर नीचे के धामे फेंक देता है जिस
से स्वामी के नेत्रों की रक्षा हो जाए । संजमराय की ऐसी अपूर्व स्वामिमक्ति का
पसीख बंद बरदाई ने पृथ्वीराज रासो के महोका खंड में इस प्रकार किया है—

सोह सावि बहूबान परे मुर्या हूँ परतिय ।

उड़ गीपनि बठि क बुच बाहुति बिरतिय ॥

ईस्यो संजमराय नृपति दुग बाहुति पौधिन ।

अनि तन की जात कादि भकु बियो ततबिछन ॥

अपने नुनपन ईस्यो नृपति अस्त तमें अम पन्तिपब ।

आये बिवान बहुठे के हेह तहत परि बस्तिपब ॥^२

सत्य है, यदि ऐसे कृतम्य-निष्ठ सेवकों की भी उद्घृणित न होगे तो धीरे-धीरे
होनी । कदाचित् इसी बटना को स्मरण करते हुए कविराजा मूलमस्त ने स्वामि-भक्त
सेवकों की यों स्तुति की है—

भड़ लो हो पहला पड़ बीरहु बिलप्या खेक ।

भए बबाई नाहुरा आप कनेजो खेक ॥^३

पुर्ण सेवक का कर्तव्य है कि मुण-प्राही धीरे-धीरे स्वामी को ही सेवा
करे । कारण मूख तथा विवेक-हीन स्वामी मुण के महत्त्व को नहीं पहचानता धीरे-
धीरेलिए मुणवान् सेवक को कुछ काम बाध 'नरुण' होना पड़ता है । जब बीरवर
अवसास को असाधारण बारहृय करत पर भी धीरे-धीरे द्वारा अचित सम्मान-
प्राप्त न हुपा तब के बोले—

१ अखली घासूबांड वृत्त ४६ ।

२ कविता कौमुदी नाम १ वृत्त १२० ।

३ मूलमस्त, बीर सतसई, वृत्त ८६ ।

गुरु के प्राये कुन पायो । जैसा भीन बजाइ रिझायो ।
 कर के संय सुगंज बजायो । बामन की समसार बुझायो ॥
 बापिर कान में संभ सुनायो । कुरबास को बिज बिझायो ।
 पबिबेकी को सेइ के, को न हिरी पछिछाइ ।

बीजा बने बहुर के, कड़ा बाज कल काइ ॥^१ (पोरेलास)

इन कवियों ने, विद्वेक तथा गुणगता से शुभ्य स्वामियों के समान ही उन स्वार्थपरायण छत्रकों को भी झाड़े झाड़ों लिया है जो पदर-मूर्ति के समय तो स्वामी के संसुख रहते हैं और उसके छूट-ग्रस्त होने पर अपने प्राण बाण के लिए घर में जा चुसते हैं । चंद्रबरबाई ने इस नीति को नाहरराय के मुख से रहूट और पदियों की उपयुक्त उपमा द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया है—

यह न संत सैबक प्रमान, एहू बड़ी खेरहि हम ।
 बेट भरए संसुह बलंसि, पुट्टी सै मार बलहि कम ।
 सै नहि पबिरी सुए, समुं तिन लखिन नहाँ ।
 स्वमी संकरे छाँडि, बीबन रक्खन पर जाहाँ ।^२

(म) स्त्री

स्त्री के सम्बन्ध में बीरकाव्यों में दो प्रकार के विचार प्रकट किये गए हैं—निवा-रमक और प्रसथात्मक । निवा के प्रायः चार कारण प्रस्तुत किये गए हैं—छल-नष्ट, बिनाशकारिणी बाणी, भीरुता और दुरसाहस । स्त्री के चरित्र की यह नवा और उसके मुख से निसृत छत्रों की विषमसंख्या का संकेत नरपति नासू ने इस प्रकार किया है—

छस्त्री-बगित-गति को नहूइ ? एकई छाकर रस सबइ बिलास ।^३

नारी की भीड़ना और पुदय की घातमताया का उल्लेख बीबराम ने इस प्रसंग में किया है जिस में भलाबहीन और छत्रकी वेपन के घामोद प्रमोद का बर्णन है । रात्रि के समय दोनों रत्नमण्डल में हास-बिलास में मग्न थे कि ईशबोन से बड़ा एक बुहा या कुदा । यह देन जहाँ वेपन कांप जड़ी जहाँ बारवाह बास से नुई के प्राण हटकर घपनी बीरता का बलान करनै लवा । ब्यपती के संवाद रूप में बीबराम कहते हैं—

कायर जाति तिया हम जली । तातें यह हुन प्रपमहि ठानी ।

यह करनी यजुत तुम देखी । निज कर करी तु सुम धारैकी ।

१ पोरेलास छत्रप्रकाश पृष्ठ ७७ बीर-काव्य, कृष्ण १११ पर उद्धृत ।

२ पुष्पीराम रासो प्रथम भाग, (बरपटूर), पृष्ठ १६४ ।

३ बीरलदेव, रासो, पृष्ठ ६१३ ।

हंसी ह्रस्व सुनि हृषति बानी । पुस्वन की ती वद्वन कहानी ।

मारें सिंह तो न मुख भायें । जाये नाहि प्राण बै राखें ।^१

कायरता के साथ ही इन काव्यों में नारी की प्रबलता का भी उल्लेख किया गया है । परन्तु स्मरण रहे कि यह प्रबलता उस के शारीरिक या धार्मिक बल पर नहीं उसके सौम्य पर धारित है । जैसा कि किसी शोचिव का कथन भी है कि पुस्वन का सौम्य उस क बल में और स्त्री का बल उस के सौम्य में निहित है । स्त्री अपने माबन्ध से प्रतापी नरेशों को अपने चरणों में झुका सकती है और तेजस्वी महर्षियों को पत्र भ्रष्ट कर सकती है । जब वह अपने बात पर घड़ जाए तब अत्यन्त दुःसाहस-पूरुष बर्ण करने में भी नहीं हिचकती । सबही द्वारा पद्म ऋषि के तपोभंग क प्रकरण में जोहराज भी लिखा है—

का नाहि पावक जारि सक्त, का न समुद्र समाय ।

का न करै धवला प्रबल, किहि जग काल न साथ ।^२

हमारे विचार में स्त्रियों की अपसु नत प्रकार की निन्दा परम्परा का पालन मान है । पूर्ववर्ती साहित्य में इसी प्रकार की मारी-निन्दा अनेक जगह कर चुके थे और इन कवियों ने प्रसंगवश उन्ही मर्तों की पुनरावृत्ति कर दी है ।^३ वस्तुतः इन काव्यों का बातावरण नारी की प्रशंसा से पूरा है । इन में उन राजा-महाराजाओं के चरित्र का बखान है जिन्हें मोक्षानन्द की दयेशा ऐहिक पुत्र धार्मिक प्रिय थे । ऐहिक मुक्त के प्रबल साधन थे—कामिनी और कथन । यही कारण है कि इन रचनाओं में कामिनी की स्तुति ही धार्मिक भी गई है । स्त्री दाम्पत्य सुखों की दायिका होने के कारण ही पुत्र की प्रसंसा पात्र न की पुत्र-दान और सह्यामिनी होने के हेतु भी दसावनीय थी । इसी लिए जब बरसाई ने स्त्री-स्नेह की स्तुति इस प्रकार की है—

पुरम सक्तल बिलास रस, सरस पुत्र कल दान ।

संत होइ सह्यामिनी कैह नारि को मान ।^४

वह बीरायता मुझ में हय बीर पति के साथ सहर्ष सती हो कर जहाँ अपने अद्वितीय प्रेम तथा बीरता का परिचय प्रस्तुत करती थी, वहाँ बीरपुत्रा और बीर पत्नी होने में उचित गर्व का भी अनुभव करती थी । कवि भोग भी उन मारिचों पर बलिहारी जाते थे जो अपने मर्भरय बालिकाओं को एनी सिखा देती थीं जिस से सघोजाता क्यार्य प्रवृत्तियों-मूह की तापने की धमीटी को देखकर इस लिए ह्वित

१. जोहराज रम्भीर रासो, पृष्ठ ४० ।

२. वही, पृष्ठ २८ ।

३. आलोक्य नीति पृष्ठ ७१, शतकत्रय, पृष्ठ ६६।१०, सुभाषितरत्नमालागार, पृष्ठ ३४८ आदि, रामचरितमानस, कुटवा पृष्ठ २६१ ।

४. कविता कीमुची, भाग १ (१९४६ ई०), पृष्ठ १३२ ।

होती थी कि बड़ी ही कर मे बीर पति के साथ इसी धम्म की ब्यासाओं का प्रतिगत करेगी । कबिराजा सुयमस्त कहते हैं—

हूँ बलिहारी राखियाँ, लीजा गरम सिपाय ।

बाबा हूँ तापली, हरलै बी मम साय ।^१

पुरुष तो मुझ में बच भी मक्ता है इसलिये मुझ के लिए प्रस्थान करने में जतनी बीरता अपेक्षित नहीं होती सिधनी जीते भी बिठा पर चढ़ने के लिए । जो पुरुष होकर भी रणभूमि में जाने से भीत पस्त होते हैं उन पर व्यंग्य बसती हुई कोई बीरारंभा कहती है कि तुम मुनकर भी धम्म पर पाँव न रलना । ऐसा करने से तो राख ही सेप रहेगी । इस का धम्मियन करने में तो स्थियाँ ही समर्थ हैं ।

धुल न बीजै ठाकुरी, पावक नाथ पाव ।

राख रहीजै राखियाँ सिधौ बरोजै धाय ।^२

इस प्रकार हम देखते हैं । क इन काव्यों में धनेक गुणों से सुभूषित होने के कारण स्त्री की प्रशंसा ही धम्मिक है । इस पर भी यदि कोई जगहें कायर बहने का साहस करता है तो कवि उस के लिए नारी को बोयी नहीं ठहराता उस बंध को ही दूषित कहता है जिसके कुसस्कारों के कारण वह बीरता से बंचित रह जाती है—

मरा न ठीरौं नारियाँ, ईको संयत यह ।

सूरी घर सूरी बहुनु, कायर कायर येह ।^३ (सुय मम्म)

(क) पुरुष

यदि स्त्री अपने पाठिवत धीर बीरता का प्रमाण बोहरा द्वारा बती थी तो पुरुष बाल-तलवार के ओहर दिखाकर । जबकि धातु-सख के प्रारम्भ में बुर्बा देवी का स्तवन करते समय वही गायक के लिए स्वर, नर्तक के लिए नयन धीर वाचक के लिए ताल की याचना करते हैं वही पुरुष के लिए डाँ धीर करवात ही—

पाउन बारे की स्वर बीबी धी बजबैयै बीबी ताल ।

नायन बारे की मैना देख मरं को देख डाल तलवारि ।^४

उन का विद्यास्त यह था कि जा क्वचित् सेप बांधने में समर्थ है, उसका पर पर बैठे रहना अनुचित है ।^५ पुरुष का नर्तक्य है कि पुरुष में सड़ जिड कर जीवन को पयबधित करे, न कि बीजै उबरादि से पीड़ित होकर खाँट-खाँट करता हुआ खाल पर

१ सूर्यवक्ता बीरसतसई पृष्ठ २३।२३ ।

२ वही पृष्ठ २१।३३ ।

३ वही पृष्ठ २६।२२१ ।

४ धसनी धातुसख, पृष्ठ २६ ।

५ सं० सरयप्रिय सूरम-नरनाबती, पृष्ठ ६३ ।

प्राप्त है। बाढ़ पर मरने वाला तो उस पुण्य से भी बर्षित रह जाता है जो काक-पिंडों को अपने पसल के प्रदान से प्राप्त होता है। युद्ध में ऊपर अपने सैनिकों को उत्तमिष्ठ करते हुए पुण्य के कृत्यों का निरूपण इस प्रकार करते हैं—

मई बनाये मरि जबे की, धी जडिया पर मरे बनाय ।

जो मरि जही रज खेतन में सुम्हरो नाम प्रसर हुइ जाय ।^१ (कपलिक)

बाम्पत्य सुकों का उपभोग तथा रज भूमि में युद्ध-विग्रह यौवन में ही किया जा सकता है। कमी-कमी पुण्य इस कारण असमंजस में पड़ जाते हैं कि उधर तो युद्ध की शक्तुभि रणधन न कूवने को निमज्जित करती है धीर इधर नबोड़ा का साधन्य धामोद प्रमो^२ क लिए। ऐसी स्थिति में बीरकाव्यों क रचयिता यह धिखा देते हैं कि वर को मगाइ की ध्वनि सुनते ही बभू का भांजन-बभ छुड़ा कर बीड़े को रण-भूमि की धीर बहाना बाहिए—

बव सुणायो बीर नू, धैर्यता पर प्राया ।

बंजल साम्ही यालियो धबल बंज सुजाय ।^३ (सूर्यमस्त)

पुण्य पराई नारी को माता बहिन धीर पुत्रो के समान समझता या परन्तु जब कल्पित बासना का बिचार पड़ने पर-नारी द्वारा ही व्यक्त किया जाता या तब रति-दान न करने वाला व्यक्ति पुण्यरज हीन भी समझा जाता या। यसाउहीन की परती रूप-विचित्रता न महिमा देख को निर्जन मन में इही बुद्धिवा में डाल दिया या। उसके कृत्रिम प्रस्ताव पर धब बोला—

मैं धब तौ तिय जग में जानत । भयता मात सुता तम मानत ।

ताते कहा बच मैं हाके । यह तो कबहुं जिय न बिबाक ।^४ (जोधराज)

महिमा देख तो पतिता को पावन करन का इच्छुक या परन्तु रूपविचित्रता ने पावन को पतित करन क उद्देश्य से यह उत्तर दिया—

तिय तजि मात्र कहत रति बाचन । को नाहि धर्म जो पुण्य धराचन ।

पुण्य धम यह मूर न होई । तिय जाचत को नास्त कोई ।^५

धवसा का सबसा रूप विजयो हुषा । लल की छेछो किरकिरी हो गई । वह मोह के कारण धधर्म को भी धर्म मान बैठ धीर मन में कहन मया—

सांखी है यह मारि धम जभ जय महुं प्रपट ।^६

परन्तु कवि की दृष्टि में परकीया-व्यमम यदि नैतिक हृदय होता तो न श्ल

१ घतसी घासूखंड पृष्ठ ७७-७८ ।

२ सुयमस्त-बीरतल्लई पृष्ठ ७२।३३

३ हम्मोर रासो, पृष्ठ ३२ ५०

४ बही पृष्ठ ४०

५ बही " पृष्ठ ५०

को विस्ती छाड़नी पड़ती न हम्मौर को क्षरण में आना पड़ता और न असाह्य का रणधर्य और पराक्रमण होता । हमार मत में भी परनारी की वाचना पर रविराम नीति-निश्चय है । पतित व्यक्ति तो बुरे को अपने मुख के लिए, धनीतिक कार्य करने की प्रेरणा ही नहीं करता प्रोसमन भी देता है परन्तु नीतिमान् व्यक्ति का कतव्य है कि नीतिभ्रष्ट को सत्य पर आने का सयोग करे । यदि वह अपने इस सयोग में सफल न भी हो सके तो भी स्वयं पणभ्रष्ट हाकर समाज को धनीतिकता के गर्त में गिराना तो किसी प्रकार भी नीति-संगत नहीं माना जा सकता ।

(घ) हिन्दू, मुसलमान

हिन्दू इस भूमि पर सुधीर्य आस से निवास कर रहे थे । मुसलमानों ने आ कर इन्हें राज्य-अभय से ही वधित नहीं किया इनके धर्म पर भी प्रहार किया । दोनों की संस्कृतियों में भी अन्तर स्पष्ट है । मुसलमान परिणामाभिमुख समाज प्रया करते हैं और हिन्दू पुराणिममुख सम्प्रा-बन्धन । वे मुतिर्मजक हैं तो वे मुतिपूजक । वे भी को एक भक्ष्य और बलि के योग्य पशु-मात्र मानते हैं तो वे उसे माता के समान मान्य । वे सुधर को देखना तक इराम धमकते हैं तो वे उसे एक जल्प प्राली । वे शैर-मुस्सिमों को काष्ठिर कहते हैं तो वे घोमसकों को म्सेण्ड । ऐसी स्थिति में यदि हिन्दू और मुसलमान धासकों में प्रायः सामञ्जस्य न रहा तो कोई आश्चर्य भी बात नहीं । और-काव्यों के रचयिता हिन्दू और हिन्दू राजाओं के प्रभित थे । इसलिये यदि इन्होंने मुसलमानों को धमिरवसनीय धमिबेबी धर्याचारी धाबि कह आसा है तो धम्य ही है । यहाँ यह भी विस्तरण न करना चाहिए कि उन के प्रति कद्रुक्तियों का प्रयोग भी विवेक-पूर्वक ही किया गया है । जैसे कवि भूपल ने जहाँ औरंगजेब की निम्ना उसकी अठान्धता के कारण की है वहाँ उसके पूर्वजों की प्रार्था भी उनके ध्यामाधरस के कारण की ही है । यहाँ यह भी स्मरणीय है कि भूपल ने ध्याय के पठपाठी अठान्ध-सिंह अवधमान^१ धाबि हिन्दू धरेशों को भी आड़े हाथों लिया है । उपयुक्त नीतियों से सम्बन्धित कुछ पद्य नीचे दिये जाते हैं ।

पठाना की युद्ध प्रियता

वो भूमि अहमद साँ का कहना सब पठान बठि धाय ।

वो पठान शिस की तो करना ऐसे बचन सुनाए ।^२ (सूरन)

१ भूपल प्रथापनी (साहीर १११७ ई०) पृष्ठ २०८-२०९

२ सुदानरत्नावली, पृष्ठ ६१

सुर्को की अविद्वंसनोमठा

मुनि इवेत यथा बई करनी या की संग ।
 वे इन सुरकन लो कहु बुझनु नहीं प्रसंग ।
 बी यह येयो साह की बस्यी बठानन पास ।
 लो तोहू की पणुचनी ये न करो बिसबास ।^१ (सूरन)

न्यायप्रिय मुससमान दासकों की प्रमसा

घारि की न जानी देवी-देवता न मानो सांच
 कहु लो पिछानो बात कहुत हीं सब की ।
 बम्बर घकबबर हिमातू हइ बौनि यए,
 हिमू लो मुस्क की कुरान बैर हइ की ।
 इन पातसाहन में हिमनुन की बाहू हुती
 जहाँपोर साहजहाँ साध पुरें तब की ।
 कासीहू की जला गई मधुरा मसोत मई,
 सिबाबी न होतो लो मुगति होती सब को ।^२ (भूपल)

परन्तु जो मदन दासक बैर स्मृति घोर पुराणों के प्रकार के बिरोधी थे यज्ञो-
 पवीत माला ठिसक घोर चोटी को मिटाना चाहते थे हिन्दुत्व की रक्षा के लिए जब
 से सोहा लेने की प्रेरणा ही इन काव्यों की नीति है ।^३

(ख) मित्र, दानु

युद्ध प्रधान इन काव्यों में मित्र-विषयक नीति की अपेक्षा दानु-सम्बन्धी नीति
 की प्रधानता दिखाई देती है । युद्ध में सहायक मित्र दुर्भेद हो बैठे हैं सगिम्हों के प्रति
 हमारा व्यवहार मुखा के समान होना चाहिए घोर दानुओं के प्रति पाबक के तुल्य
 बैरी के बचन विरहसमीय नहीं होत दानु बाहर से प्रेम भी करे लो भी हृदय में द्वेष
 रखता है दानु के संहार से ही बीरों को कीर्ति का प्रसार होता है, घारि अनेक उपयोगी
 नीतियों का इन काव्यों में उत्सव किया गया है । जैसे—

रिपु जन क रस कहीं कहु तिम बचन बिसासहू ।
 बहा विमुन सुमतीत बहा घरि कोई कजासहू ।
 महुरे का बहा मोठ कहु हिमजल पीठ जप ।
 बहा सब प्रवदित धर्मन काय पय पोपित पन्तव ।^४ (मान)

१ वही पृष्ठ २६ ।

२ भूपल प्र पाबसो शिबाबायनी पृष्ठ २५।१६

३ , पृष्ठ ३०२१

४ मान-राज दिनास बीरकाव्य पृष्ठ २३४ पर उद्धृत ।

(ब) फुटकस

उपयुक्त मुख्य सामाजिक नीतियों के प्रतिरिक्त छिटपुट रूप से धर्म प्रत्येक उपयोगी सामाजिक बातों का वर्णन भी इन काव्यों में जहाँ-तहाँ दिखाई देता है, जैसे योगियों की धारकों की कल्पना काम इत्त से करनी चाहिए बधिए से नहीं क्योंकि दाए हाथ से तो वे मुमरनी के द्वारा सर्वेष का स्मरण करते हैं बहटा पानी घोर रमते दोसी कहीं बका नहीं करते, सबत भोग निर्बल को छा बाते हैं, राजा को, बाहे बह घटर्ब का भी हो न मारना चाहिए ।^१

४ धार्मिक नीति

धार्मिक भोग तो वैभव और भूमि के लोभी होते ही हैं, इसलिए इन काव्यों में कर्म का कृष्ण का प्रभाव-सा ही । प्रायः कामाक्ष्य भोग सम्पत्ति को स्मर मान कर धनमद से मत्त हो कर, मनयामे काय करने लगते हैं जिनका दुःखद परिणाम उन्हें बाद में भोगना पड़ता है । इस कन्दु स्थिति से बचाने के लिए इन कवियों ने कई स्थलों पर लक्ष्मी की बलमता और मारकता का उल्लेख किया है । यह बरबाई का कथन है—

को गढ़े सोबेलि को को बिलस करि जेव ।

साया छाया मय्य बिन, क्यों बिपया बलदेव ।^१

जहाँ सम्त घोर भगत कवियों ने इव्य से दूर रहने की सिखायी है, वहाँ इन कवियों ने उसे हाथ करने और भोगने की । इन काव्यों में समृद्ध व्यक्तियों के द्वारों पर 'दान की कुम्भुमि' और 'विष्णु मीर' का प्रत्येक स्थलों पर उल्लेख किया गया है ।

अथपि दानिय मरेय ब्रूब ठाट-बाट से रहते थे तथापि धान धर्म की तुलना में वे सम्पत्ति को तुच्छ मानते थे । धन का प्रयोग उन्हें कर्तव्यपथ से विचलित करने में प्रायः प्रसन्न रहता था । जब धीरपञ्च ने महाराज बसवन्तसिंह को धन का प्रयोग देना चाहिए तो बोधपुराबीस ने उल्लेख किया कि हमारी पंती (बीरका-दावण) और धरय कोप तो बह्य ही—

पेती हम कुल दाव, पलाहम धरय पजानह ।

दाव कर बस पलक, नाम हम वय्य निदानह ।

पल बस बडन वग्य जेत इच्छत हम वय्यह ।

जिति रकन कुमि बय्य, धरित बग्यो इन प्रमह ।

१ बाह्यकण्ड पृष्ठ ४८, १४ 'बीरकाम्य' में 'समप्रकाश' पृष्ठ २६६ 'बीरकाम्य' में 'हम्मिर हठ' पृष्ठ ४८३

२ पुराबीराज रासी भाग १, (उदयपुर), पृष्ठ २०६

यय वार तित्थ कत्री धरम घाबागमवहि अपहरण।

सो ययवय हम घूर सब धरय न साहि यजान धन।^१ (मान)

घासकों घोर नीतिकाम्यों में तो प्रायः घूट झेड़ा को गिन्य कम ही कहा गया है परन्तु बीरकाम्यकार इसे निषिद्ध नहीं कहते। इनके मत में तो क्षत्रिय को मुठ घोर घूट का निर्माण कभी घस्वीकृत न करना चाहिए। राजपूतों के कृत्य का उल्लेख करते हुए पदाकर कहते हैं—

यह धर्म क्षत्रिय को प्रमान, पुरान बेब सबा कहूँ।

द्विज गऊ पालहि रिपु जघनसहि अस्त्र धारिहूँ तन सहीँ।

सग कुबा कुठ हुँ को कन्वहुँ, सपने हुँ नहिँ नाहीं करेँ।

ऐसे परम रजपूत कोँ रन विरत बारंभन बरेँ।^२

५ इतर प्रणिाविपयक नीति

उपयुक्त पद्य से ही स्पष्ट है कि क्षत्रिय लोग परंपरा के अनुसार, द्विज घोर वेद की रक्षा के समान मो-रक्षा के लिए भी सर्वथा सज्ज रहते थे। गजों घोर घासकों के प्रति भी घाबर भाव दिखाई देता है क्योंकि वे मुठ में विधेय रूप से उपयोगी थे। घोड़ियों को भी का बूब भी पिंसामा जाता था।^३ यह घाबर भाव अपने ही पक्ष के गजासकों तक सीमित था क्योंकि विजय प्राप्ति के लिए घमूनसोय हाथी-घोड़ों के बंध में इन्हें कोई संकोच न होता था। बीरकाम्यों के क्षत्रिय घासकों का धर्म हिंस घोर निरीह प्राणियों के प्रति कोई स्नेह नहीं दिखाई देता। वे अपनी बीरता की परीक्षा के लिए, लक्ष्यबोध के घम्मास के लिए तथा मनोबिन्दु घोर भोजन के लिए विविध बन्ध पशुओं का निःसंकोच बंध करते थे। माताएँ अपने बच्चों को घासेट के लिए उत्साह-पुबक भेजती थीं। इससे उनके हृदय में कुछ कठोरता भी उत्पन्न होती थी जो क्षमाशीलियों के लिए अनिवाय-सी है। जहाँ से मोटा सोय घरीर की मुष्टि घोर रसना की सोलुपता की शान्ति व वििए बन्ध पशुस्रियों का मांस खाने में संकोच न करते थे वहाँ रणभूमि में घपना मांस उर्हूँ सपित करने में भी हर्षोत्सास का अनुभव करते थे। वे तो उस घरीर को निरर्थक-सा ही समझत थे जिसका हाड-मांस घत में बीब-जन्तुओं का मद्य न बनता था। मुठ न प्राप्त देन घोर सेन के लिए सखित बीरों को ब्रिध निर्मयता, साहस घोर पराक्रम को प्राबल्यकता होती है यघपान कबा ब्रिध उसमें सहायक होता था। यही कारण है कि इन काम्यों में मोटा मुरा-सकम

१ नामः राजबिलास पृष्ठ २।१६०

२ सं० बिहजनाय प्रताप 'शरमाठर पंचामृत' में हिम्मत बहादुरबिखदापती पृष्ठ १७। १०१

३ घसली घासहृयंड पृष्ठ ४३६

करते दिखाई देते हैं। शक्त रूपम के समर्थक कुछ पद्य द्रष्टव्य हैं—

शस्त्र का समाप्त

कर पुश्तकारे पल कहै, बाण बली री बँत ।
भीराबल बाबाबियो, हूँ बनिहार कुर्मत ।^१ (सूर्यमस्त)

घासेट की प्रेरणा

धीर से बेदा बाण मझर में भी बाजेन में करी शिकार ।
सं शिकार घासो मझर से मझतारी के बरो घमार ।
जो शिकार लै हूँ मझर से छो तनबहिहा पूत हमारा ।^२ (बननिड)

कटक में मांस-मक्षण

बाणु कोही के गिरदा में खंडा लड़ी बनाकर ब्यार ।
बड़ी रसुहवाँ घमघयन की बहुधन बड़े हिरन के घाँठ ।^३ (बननिड)

पुपुस्त का मघपान

काय जताबनी लंकली, जे मद बीबल बेब ।
कंत समर्थे हूँकनी, कडकां बाहि कनेज ।^४ (सूर्यमस्त)

६ मिश्रित नीति

नीतिकाम्यों की मिश्रित नीति का बर्णिकरण निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है—

(क) मृत्यु	(ख) नवित्यक्ता
(ग) समय	(घ) लकुन, ज्योतिष
(ङ) कलिकाल	(च) राजनीति
(झ) स्थान परिठा	(ज) धर्म ।

(ड) पुरुषार्थ

१ सूर्यमस्त : बीरसतसई पृष्ठ १७।२६ । धर्म—धर्म की विजय का बुल मुनकर लरी नि पति के घाब की घारतो बतारी धीर हाव से पपकवा कर कहा—हूँ घाव, मैं मुझ पर बनिहारी जाती हूँ ।

२ घासेटो घासहूँकड, पृष्ठ १०

३ बड़ी पृष्ठ ४४

४ सूर्यमस्त बीरसतसई पृष्ठ ११६।२१६ । धर्म—धर्म की नील इतनी घापुरता क्यों ? केवल मुदा-पान नाम की हेर है, कि तो घासेटो ही मेरे बनि घाव-कणक काव कर उनके बतेजें मुझे घावित करेवें ।

(क) मृत्यु—मृत्यु की वर्षा पूर्ववर्ती धर्म-अर्थों और नीतिकाम्यों के समान इन बीरकाम्यों में भी बहुत की गई है परन्तु तीनों के दृष्टिकोण में घारी अन्तर है । धर्मधर्म मनुष्यों को ब्रह्म प्राप्ति या आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रायः मृत्यु का भय दिखाते आये हैं और नीतिकाम्यकार उन्हें उत्तम आचार और व्यवहार में प्रवर्तित करने के लिए । परन्तु बीरकाम्यों में मृत्यु का भय नहीं दिखाया उससे निर्भय बनाने का यत्न किया है । युद्ध में भाग लेने वालों के दोनों हाथों में सज्ज है । विजयी हुए तो सामारिक सुखों के भोग और बीरगति पाई तो स्वर्गीय सुखों के । पूर्वसोक धारि में स्थान पाने की वर्षा भी की गई है परन्तु अधिकतर ध्यान अस्तरा धारि से प्राप्य सुखों की धार है । इन बीरों की धारणा है कि यदि धाम्य सेप है तो न कोई प्रमाण-पहरण कर सकता है और न मनुष्य भूखा मरता है, और यदि जीवन के दिन पूरे हो चुके हैं तो ताक उपाय करने पर भी कुछ नहीं बन सकता । मृत्यु के समय के समान, मैं उसके स्थान को भी निश्चित मानते हैं । युद्ध में पमार अर्जुनसिंह अपने सैनिकों को उत्तेजित करते हुए कहते हैं—

(क) जिन की बड़ी है पीछ धम तिनकी न इत-उत बचहिणी ।

जिनकी नहीं है विधि सो तिन के न तन कीं तबहिणी ।^१

(ख) भेद धनतर-से सु बर, सु यों धनेक विभे करे ।

पर काल है विधि को अर्जुं तिहि को तहाँ से नहिं हरे ।^२ (पद्माकर)

जब मृत्यु का स्थान और समय निश्चित है तो अचर धाने पर कायरता क्यों दिखाई जाय ? जो सोय अचर पर बीरतापूर्वक प्राखोत्सर्ग करते हैं, उन्हें तो सोक में सुख और परसोक में प्रसुख प्राप्त होता है परन्तु जो घर में ही रोम से धून-धून कर प्राण देते हैं उन्हें तो धम-धूत नरक में ही ले जाते हैं—

घटे भुजस प्रभुता उठे अचर मरियां धाय ।

मरणी घर है माग्मि, जम नरकां ले जाय ।^३ (सूर्यमस्त)

(घ) समय—दिनों के अन्धे और बुरे होने में इन नवियों का विश्वास है ।

जब दिन अन्धे आते हैं तो सब काय स्वयमेव सुकरते जाते हैं और जब बुरे, तब सब पुण्यार्थ विफल हो जात हैं ।^४ सब का समय भी सब समान नहीं रहता । जो मनुष्य प्राज धनी, युवक और सुखी है वही कम निर्धन पीएँ और दुखी दिखाई देता है—

धन अोजन मर की बसा सब न एक विहाय ।

पाक पाँच ससि को कला घटत-घटत बहिं जाय ।^५ (जोधराज)

१ पद्माकर ब्रह्मामृत हिम्मतअर्जुनर विवरावसी पृष्ठ १५

२ वही, पृष्ठ १०

३ सूर्यमस्त बीरततसई पृष्ठ ७१।११०

४ पृथ्वीराज रातो (अचरपुर) प्रथम भाग पृष्ठ १२५।६२

५ जोधराज हम्पीर रातो पृष्ठ १११।६७४

करते दिखाई देते हैं। उक्त कथन के समर्थक कुछ पद्य दृष्टव्य हैं—

शत्रु का समाप्त

कर पुत्रकारे बल कहै, बाल बली री बँत ।
भीरबाल बापाबिबी, हँ बलिहार कुर्मत ।^१ (सूर्यमल्ल)

घाघेट को प्रेरणा

भीर से बेडा बाल भाबर में छो बाइन में करी भिकार ।
ले भिकार बाबी भाबर से महतारी के परी भयार ।
ओ भिकार ले हँ भाबर से छो तलबदिहा पुत हमारा ।^२ (बागनिह)

कटक में मांस-मक्षण

बाएँ कोकी के पिखा से बँडा गड़ी बनावर बघार ।
बड़ी रसुइया उमरायन को बहुभन बड़े हिरन के मांस ।^३ (बागनिह)

सुपुस्त का मद्यपान

काय जताबली कंठ्यी, ओ नव नोबलु जेक ।
कंठ समप्यै हैकली, कटक बाहि कमीक ।^४ (सूर्यमल्ल)

१ मिश्रित नीति

भीरकाम्यों की मिश्रित नीति का बर्णिकरलु निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है—

(क) मृत्यु	(ख) शक्तिव्यथा
(घ) धनप	(ङ) शत्रुन, ज्योतिष
(च) क्षमिकाम	(ज) राजनीति
(झ) स्वाम शरिता	(झ) धर्म ।

(इ) पुरुषार्थ

१ सूर्यमल्ल : भीरसतसई, पृष्ठ १७।२६। धर्म—पति की विधय का कुल मुनकर रवी ने पति के धर्म की घासती अतारी और हाय से धपयवा कर कहा—हँ शत्रु, मैं मुन पर बनिहारी जाती हँ ।

२ शतमी घाघेटपंडे पृष्ठ ६०

३ बड़ी पृष्ठ ४४

४ सूर्यमल्ल : भीरसतसई, पृष्ठ ११६।१६८। धर्म—घरी भील इतनी घासुरता क्यों ? केवल मुरा-याने मात्र को देर है, फिर तो घटैले ही मेरे पति राज-कणक काट कर उनके कनेबं मुझे धविष करेगें ।

(क) मृत्यु—मृत्यु की वर्षा पूर्ववर्ती जर्म-धर्मों और नीतिकार्यों के समान इन वीरकाव्यों में भी बहुत की गई है परन्तु तीनों के दृष्टिकोण में घाटी घटतर है । जर्मधर्म मनुष्यों की बड़ा प्राप्ति या आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रायः मृत्यु का घम दिखाते आते हैं और नीतिकार्यकार उन्हें उत्तम धर्मकार और व्यवहार में प्रवृत्त करने के लिए । परन्तु वीरकाव्यों ने मृत्यु का घम नहीं दिखाया, बससे निर्भय बनाने का यत्न किया है । युद्ध में मार देने वालों के दोनों हाथों में लड्ड है । जिनकी हृद तो साम्राजिक सुखों के भोग और वीरवृत्ति पाई तो स्वर्गीय सुखों के । सूर्यसौक्य आदि में स्वान पाने की वर्षा भी की गई है परन्तु घमिच्छर ध्यान घटतर आदि से प्राप्ति सुखों की घोर है । इन वीरों की चारणा है कि यदि धानु रोप है तो न कोई प्राण-पहरण कर सकता है और न मनुष्य भुखा मरता है और यदि जीवन के दिन पूरे हो चुके हैं तो ताक उपाय करने पर भी कुछ नहीं बन सकता । मृत्यु के समय के समान, ये उसके स्थान को भी निश्चित मानते हैं । युद्ध में जमार धनुर्गसिंह अपने सैनिकों को उत्तेजित करते हुए कहते हैं—

(क) जिन की बरी है नीच धम तिनकी न इत-उत बचहिनी ।

जिनकी नहीं है बिबि रची, तिन के न तन लों लबहिगी ।^१

(ख) सेड धमतर-से सु बच, सु यों मनेक बिबें करे ।

बर काल है बिबि को बही, तिहि को तहाँ से गहि डरे ।^२ (पद्माकर)

जब मृत्यु का स्थान और समय निश्चित है तो धमतर पाने पर कामरता क्यों दिखाई जाय ? जो तोय धमतर पर बीरतापूर्वक प्राणोत्सर्ग करते हैं, उन्हें तो मोक्ष में सुख और परसोक में प्रभुत्व प्राप्त होता है परन्तु जो बर में ही रोय से धन-धुम-कर प्राण देते हैं उन्हें तो यम-दूत नरक में ही ले जाते हैं—

धठे बुबस प्रमुठा धठे, धमतर बरियाँ प्राय ।

मरठो घर रे माक्रिया, जम नरका में जाय ।^३ (सुयमल)

(क) समय—जिनों के धमरे और बुरे होने में इन बहियों का विश्वास है । जब दिन धमरे पाते हैं तो सब काय स्वयमेव सुघरते जाते हैं और जब बुरे, लड्ड-लड्ड पुल्याधे विफल हो जाते हैं ।^४ सब का समय भी सदा समान नहीं रहता । जो मनुष्य धान बनी बुबक और सुखी है, वही कस मिशन बीर और कुभी दिखाई देता है—

धन जोडन नर की बसा सदा न एक बिहाय ।

पाक बाँध लीत को कला, घटत-घरत बहि जाय ।^५ (बदराम)

१ पद्माकर पंचामृत हिममतबहानुर विद्यावती पृष्ठ १६

२ वही पृष्ठ १७

३ सुयमल : वीरसतसई पृष्ठ ७१।१३०

४ पृष्ठीराज राठो (जयपुर) प्रथम भाग पृष्ठ १-५।६२

५ जोहराम हम्मीर राठो पृष्ठ १११।६७४

(ग) कृतिकार—प्राहाण-संघों के समय से ही कृतियुग में अथर्व प्रभाव का अधिकार का अस्मैव हमारे साहित्य में किया जाता रहा है। माघ की भावना की कि श्रीगामाओं के बीच पाठ उच्च विचार में परिचलन जाने का उद्योग करते परन्तु ऐसा हो नहीं पाया। वे भी बुद्धिबिनाशादि दोष बलि के माये मड़ते ही दिखाई देते हैं—

एवो-ज्यो कलि उद्धत भवौ, एवो-र्यो घटि गई बुद्धि ।

घट के कवि भाषा कहत तऊ न समझत मुट १^१ (मूरम)

कविभर भूषण न अपने समय के पापमय वातावरण के लिए कृतियुग को दोषी तो ठहराया है परन्तु कुशल इतनी है कि उन्होंने इसके प्रभाव को खील करने के लिए धिमा भी के हाथ में खड्ग दे दिया है १^२

(घ) स्वाम तरिता—भूषणियों के काम्य होने के कारण बीरकाम्यों में भूमि की वह उपेक्षा नहीं पाई जाती जो सत्तों और भक्तों की वालियों में प्राप्त दिखाई देती है। सत्त भक्त तो घरीर के लिए ही गज भूमि ही पर्यप्त समझते हैं परन्तु बीरकाम्यों में माता पुत्र को पसने में ही यह धिमा देती हुई दिखाई पड़ती है कि प्राण मने ही अर्पित कर दो भूमि किसी को मा घीनत दो—

इता न देखी घावली, हातरिया हुतराय ।

भूत सिलाने कालसे परल बड़ाई माय १^३ (सूर्यमत्स)

भूमि को माता मानने की जो भावना वैदिक युग में बिद्यमान थी^{१४} और मध्यकाली काल में गुप्त-सी दिखाई देती थी इन काम्यों में धाकर पुनर्जागरित हो गई जोम के कारण इस भावना को अनेक भारतीय नप विस्मृत कर चुके थे परन्तु राधा प्रताप के हृदय में यह सदा स्फुरित रही—

दिर नृ त्रिभुव्यान, नातर पा मग जोम लग ।

माता भूमि सामाज, पूज राण प्रताप सी १^{१५} (पुरसा भी)

बीरकाम्यों में देगा भी के प्रति विशेष अज्ञा रागत होती है। किसी बात का विराम कराने के लिए देगाभी की अपेक्ष सी जाती है। उसके अंत में स्नान और पात्र से पुष्य प्राप्त होता है। वह में स्नान करने से जो शोक उसे दुःखी का अविद्याप ममता है और स्नान करने को काम दिया जाता है वह विद्याप रूप से पाप घात करता है। दुष्ट प्रारम्भ करने में गूण मात्रा लोग मगाजस का अरपत्त अज्ञा स पात्र

१ सुदर रत्नावली पृष्ठ ३२१२

२ रत्नावली पृष्ठ १०१६१

३ सूर्यमत्स : दीरतनसः पृष्ठ ११४।२३४

४ माता भूमि : पुत्रो घट बुधिया अथवदेव १२।।१११

५ मीना मात भवारिया दिग्ग में बीर रत्त पृष्ठ २३

करते हैं।^१ जब ऊबल जम्बू के प्रासाद से कुछ बिसम्ब से सोटा तो पास्वा के कारण पुष्पने पर होता—

बैठी बिजसिनि रज जम्बू की हुमकी सुरत गई पहिचानि ।

गंवा हुम सीं घोंकरवाईं गुम मेरे संग करी बिपाहु ॥^२ (अपमिक)

गम हुमैबे की की बरसं की बुझकी की लेय प्रसराम ॥^३ (अपमिक)

(क) पुष्याप—इन काम्यों का बाताबरण पुरुषार्थ की भावना से परिपूर्ण है।

कहीं राजा सज्जु को पराजित करने का उद्योग कर रहा है कहीं पुत्र पिता के बैर का प्रतिघोष देने के लिए कटिबद्ध हो रहा है कहीं माता पुत्र को परहस्तगत भूमि को लौटाने के लिए उत्तबिध कर रही है और कहीं स्त्रियाँ अपने पतियों को मुझ से बिजयी होकर कोपन को प्रोत्साहित कर रही हैं। प्रासत्य धर्मव्यवस्था संतोषादि की जहाँ इन काम्यों में दिखाई नहीं देती। ऐसे जगता है कि जैसे प्रत्येक धीर अपने धीर अपने स्वामी के ऐहिक तथा धामुष्मिक जीवन को सुखपूर्वक बनाने की ध्येय ग्रहण किये हुए हो। उपरिनिश्चित धनक उदाहरणों में पुरुषार्थ की भावना छसकटी हुई देती जा सकती है।

(ख) भवितव्यता—प्राय यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति पुत्रवार्थ में अधिक प्रासा रखते हैं व भाग्य में कम धीर जो भाग्य में अधिक दयता रखते हैं वे पुरुषार्थ में कम। परन्तु इन काम्यों में धारधर्मजनक बात यह दिखाई देती है कि इन के पास भवितव्यता में घटस बिश्वास रखते हुए भी पुरुषार्थ में कमी नहीं घाने देत। व धी, कीर्ति स्त्री धारि की प्राप्ति के लिए हर समय हृषेसी पर सिर रके दिखाई देते हैं, परन्तु जबकी जिज्ञा से भाव्यरेला की धमार्जनीयता पूर्वकृतकर्मों के फल की अनिश्चयता ज्ञानहार की प्रवसता घादि धव्य भी निकसत ही रहते हैं। बाणी धीर कर्म के इस बाहरी र्थम्य का कारण दुकह नहीं है। वस्तुतः पुत्रजन्म धीर कर्मफल के सिद्धान्त में बिदबास रखने वाला मनुष्य व भाग्य का बिरोध कर सकता है, व पुरुषार्थ का परि र्पाय। जैसे बिश्वास होता है कि पुत्रजन्म के धमधिष्ट कर्मों का फल भी जैसे ही मिलेगा जैसे कि इस जन्म के। इसलिये वह भाग्य धीर पुरुषार्थ दोनों में प्रासा रखता हुमा जीवन-मय पर निर्भयता पूर्वक धप्रसर होता है। भाग्य की प्रवसता का घनेक स्वामी पर उरसैक बीरों म निर्भयता के संचार क लिए भी धावश्यक था। यदि कहीं बीरों में इस भावना का संचार हो जाए कि मुझ में भाग व लेने से मनुष्य बिश्वास तक भीबित रह सकेंगे धीर बिबिध सांठारिक धुसों का निर्बाध भोग कर सकेंगे तो अधिकतर लोग एक या दूसरे प्रकार से मुझ से दूर ही रहने क उपाय सोचेंगे। परन्तु

१ कपाकरयेचामृत, हिम्मतबहादुर बिश्वासनी पृष्ठ १२।१११

२ घसली धारणघड पृष्ठ ११

३ वही , पृष्ठ २४

इसके विपरीत यदि यह भावना बनी रहे कि हमी हो कर ही रहेगी तो सन में निरस्त-
 वेह प्रथम साहस, पराक्रम और वीरता का संचार होगा और वे संकटमय समय में भी
 पय पीछे हटाने का विचार तक मन न लावेंगे। यही कारण है कि इन प्रथमप्रधान
 नाट्यों में भी भाव्य प्रबलता की प्रतिपादक संस्थानों की वहाँ-वहाँ मिलती ही हैं।
 बँधे—

प्रबलित बल को होय तो न मिटूनहूँ बड़ा नहि ।

प्रबलम्य बात निटून को होइ बु बड़ा तिरछबयी ।^१ (बंद बरबाई)

बद में बु बल्य विबाह जीवन करन रिम पन बाम ये ।

जिहिकों वहाँ लिखि बियो प्रभु तिहि को दुरत तिहि काम ये ।^२ (पद्माकर)

धनहोनी नहि होय, होय होनी है सोइय ।

रिबज मोति हरि हृष्य डर बु मानव क्यों कोइय ।^३ (भोषराज)

(४) शकुन ज्योतिष—यद्यपि संस्कृत के नीतिकार्यों में शकुनों तथा प्रहों

की विभिन्न गतियों के प्रभाव की वहाँ न होने के मुख्य ही है तथापि भारतविवासियों
 का इन बातों पर विरकास के निश्वास बला धारा है। अथवा के कार्यों में शकुनों
 के सुभाषुम प्रभाव का उत्सेख किवा गया है। हिन्दी के वीरकार्यों के अध्ययन से
 विदित होता है कि अविद्येतर जातिवाँ तो इन पर अधिक धारणा रखती थी परन्तु
 क्षत्रिय लोग कम। यह सत्य है कि युद्धों के लिए प्रवृत्त होते समय क्षत्रिय लोग भी
 'समरसार की पोधी' से सफल मुहूर्त निकलवाया करते थे तथापि जब स्थिति संकटमयी
 होती थी तब न यह-नशाओं की चिन्ता करते थे और न सुभाषुम पत्रों की। सिधु
 जोड़ा युवती स्वामी पत्नी आदि के शकुन दाम समझे जात थे और छीक सर्व-वर्तनादि
 धनुन।

घासहृषुंड में अब ऊबल मे पिता का प्रतिघोक सैने के लिए माझी पर धारु-
 मण करन ना बुद्ध संकल्प कर लिया तब प्रस्थान के लिए सुम मुहूर्त बोधा जाने लजा—

न के पोधी समरसार की डेबा सबुन बिचारन साथ ।

तामबेह रिनु बेंद प्रपबन बाबै बबुबेंद महाराज ।

तमुन हमारो यों बोलत है भाझी काम तिखि हुइ जाय ।^४

इसी प्रकार 'गुजानचरित' में मूरत ने गुजानसिंह की युद्ध-यात्रा के समय में
 भी सगन-मुहूर्त देख जाने का उत्सेख किया है।^५

१ पृथ्वीराज रातो प्रबल लख पृष्ठ ४४ ६०

२ बदाकर पंजामृत क्षिप्रतपहापुर बिस्वावली, पृष्ठ १७

३ हम्बीर रातो पृष्ठ २७

४ अतनी घासहृषुंड, पृष्ठ ३६

५ सूदन रत्नावली पृष्ठ ४२७

ध्यान देने की बात है कि बीरकाव्यों के निर्भय योद्धा जब रणक्षेत्र में जा पहुँचते थे तब तो न उन्हें प्राणों का मोह रहता था न मम का मय परन्तु सभ्राम के धारम में यदि कोई अपराधुन ही जाता तो इन के हृदय भी एक बार तो व्याकुल हो ही जाते थे। यह बात दूसरी है कि वे कल मर बार धपन अत्रियन्त्र को स्मरण कर जन अपराधुनों की अपेक्षा कर बैठे थे। जब महोदये के बीर माड़ी जा पहुँचे तब करिया उनके सामुख्य के लिए धपने मज पर भावक होने को ही या कि मकस्मात् अपराधुन हो गया—

छिड़ी लपाबे तब होरा में बहिनै पयुँचि यमो हरपाय ।

पहिनै बंडा पर नग चरतैं तुपतैं भई तड़ाका धीक ॥^१ (अगनिक)

करिया ने क्रीपते हुए कन्जे से तत्काल पंडित को बुलाया। पंडित ने समर सार' की पोषी घोर चारों बेध देकर कहा—

राहु बारहों घण्टे बेहूँठे उतरो दृष्टि सनीचर धाय ।

यात जगदमाँ दसघों परिगी तुम न धरों प्रपाव पाई ॥

सायनि नीकी ना बबे की धब तुम लौकि साज महाराज ॥^२ (अगनिक)

इसी बीच में करिया कुछ संमत गया। भूमि के अपराधुनों से भी जो हृदय काँप उठा था वह प्राकाशीय प्रहों की विषम गति से भी विचलित न हुआ। करिया कहने लगा—

सपुन बिचारें बनिये के सड़िका, जो निठ करैं बनिज बपार ।

सपुन बिचारें रंमतिरेजा जो धरि मीर बिवाहन बायें ।

सपुन बिचारें हम सभो तुह, जो रन सड़िके लोह पचायें ?

हुँ ब कराय यमो करिया ने मारु बंडा यमो बजाय ॥^३ (अगनिक)

यहाँ यह विवेचन करना भी असंगत न होया कि शुभ राहुन से कर चसने वाले महोदा के बीरों की तो विजय हुई और अपराधुन की अपेक्षा करने वाले करिया की पराजय। परन्तु ये राहुन सदा सत्य ही सिद्ध होते हैं ऐसे बात नहीं। हिन्दी काव्यों में इन से भी बलवती कर्मगति मानी गई है। यद्यपि बलिष्ठ ने शुभ लदन-मूर्त में ही धीरम का राजमायिक विद्या या तपानि कर्मगति के अधीन उन्हें बनवास क बुक सहने पड़।^४

१ घसली घासहूँठ, पृष्ठ ७१

२ घसली घासहूँठ पृष्ठ ८१

३ बड़ी पृष्ठ ७१

४ कबीर सूरदास, बीरों घादि अनेक कवियों ने सपन-मूर्त की अपेक्षा कर्मगति को बलवती माना है। देखें कविताकोशुरी, पृष्ठ १७५ ११२ सूरसागर, पृष्ठ ७३१२६४

इसके विपरीत यदि यह भावना बनी रहे कि होनी ही कर ही रहेगी तो उन में निस्सं-
 र्भेह आत्म्य साहस पराक्रम और बीरता का संचार होगा और व संकटमय समय में भी
 पय पीछे हटाने का विचार तक मन में न लाये। यही कारण है कि इन अयोध्यावासी
 काम्यों में भी भाव्य-अवलता की प्रतिपारक उचितियां भी अहाँ-तहाँ मिलती ही हैं।
 अंत—

महाबल बल जो होय सो न निहृमह ब्रह्म लहि ।
 अवलम्ब जात बिहूँ न को होइ बु ब्रह्म सिरज्यवी ।^१ (अंश बरबाई)
 जय में बु जन्म बिबाहु जीवन परन रिन मन धाम ये ।
 जिहिहीं कहीं लिखि बियो प्रभु तिहि को सुरत लिहि ठाय ये ।^२ (पद्माकर)
 धनहोनी नहि होय होय होनी है सोइय ।
 रिबड मोति हरि हृष्य डर मु मानव क्यों कोइय ।^३ (जोबराज)

(७) अकुल अयोध्या—यद्यपि सस्वत के नीतिकाम्यों में शत्रुओं तथा अहों
 की विभिन्न पतियों के प्रभाव की चर्चा न होने के तुल्य ही है तथापि भारतवर्षवासियों
 का इन बातों पर धिरेकाल से निरवास बना आता है। अथवा अ के काम्यों में शत्रुओं
 के शुभाशुभ प्रभाव का उल्लेख किया गया है। हिन्दी के बीरकाम्यों के अध्ययन से
 विदित होता है कि अविद्येतर आतियां तो इन पर अतिक्रम आत्मा रखती थी परन्तु
 अन्तिम सोम कम। यह सत्य है कि मुझादि के लिए अस्मिन् होते समय अन्तिम सोम भी
 'समरसार की पोखी' से अगल मुहूर्त निरलवाया करते थे तथापि अब स्थिति संकटमयी
 होती थी तब न अह-अशर्तों की विन्या करते थे और न शुभाशुभ शक्तियों की। अिधु
 जोड़ा मुहूर्त अयामा पत्नी आदि के अकुल शुभ समयके आते थे और हीक अर्ध-अर्धनादि
 अशुभ।

आसहृदं में अब अलन न पिता का प्रतिघोष देने के लिए माझी पर आक्रमण
 करने का बुद्ध संकल्प कर लिया तब अस्वान के लिए शुभ मुहूर्त खोजा जाने गया—
 अ के पोखी समरसार की डेबा अशुभ विचारन साथ ।
 सामवेद रिनु वेद अथर्वन आर्ष अकुल महापाम ।
 अकुल हमारे यों अोलत है माझी काल लिखि हृद आर्ष ।^४

इसी प्रकार 'मुजानवरिक' में अरुन ने अुजातसिंह की अुल-आजा के समय में
 भी अयन-मुहूर्त खोजे जाने का उल्लेख किया है ।^५

१ अम्पीराज रातो प्रथम अंड पृष्ठ ५५ १०

२ अयाकर अंशानुत हिम्मतबहादुर अिखारली, पृष्ठ १७

३ अम्पीर राजी पृष्ठ ५७

४ अलली आसहृदं, पृष्ठ ३१

५ अरुन अलावली पृष्ठ ५२१७

ध्यान देने की बात है कि बीरकाव्यों के निर्भय योद्धा जब रणक्षेत्र में पहुँचते थे तब तो न उन्हें प्राणों का मोह रहता था न यम का भय, परन्तु सभामें धारम में यदि कोई अपराध हुआ जाता तो इन के हृदय भी एक बार तो व्याकुल हो ही जाते थे। यह बात दूसरी है कि वे क्षण भर बाद अपने व्यक्तिगत को स्मरण कर उन अपराधियों की जपेला कर देते थे। जब महीबे के बीर पाड़ी जा पहुँचे तब करिय उनके धामुख्य के लिए अपने धन पर भावुक होना को ही था कि अकस्मात् अपराध हुआ गया—

सिद्धी लगावे तब होवा मैं रहिने पहुँचि यद्यो हरयाय ।

पहिने बंधा पर यम परतैं तुष्टैं भई तड़ाका धीक ॥^१ (जननिक)

करिया ने काँपत हुए कन्नेजे से तत्काल पंडित को बुलाया। पंडित ने 'धमर धार' की पोथी धीर धारों बेध देखकर कहा—

राहु धारहों घलई बेहुठ उठरो इच्छि समीकर घाय ।

घात बग्नमाँ बसगों परिगो तुम न परों घयाह पाँडे ॥

सायति नीली ना बँध की घब तुम लीहि जाउ महाराज ॥^२ (जननिक)

इसी बीच में करिया कुछ संभल गया। भूमि के अपराधियों से भी जो हृदय काँप उठ जा वह भाकादीय ब्रह्मों की विषम गति से भी विचलित न हुआ। करिय कहने लगा—

समुन बिचारे बसिये के लड़िका, धौ नित करे बनिज बंधार ।

समुन बिचारे रयतिरैजा ओ धरि मौर बिपाहन जायें ।

समुन बिचारे हम कभी हुइ, जो रन बड़िके लोह बजायें ?

कुन कराय बसो करिया ने, मरक बंधा बसो बजाय ॥^३ (जननिक)

यहाँ यह निर्दोष करमा भी असमत् न होगा कि धुम अकुन से कर चलने वाले महाबा के बीरों की तो विषय हुई धीर अपराधियों की जपेला करम वाले करिया की पराजय। परन्तु ये अकुन सदा सत्य ही सिद्ध होते हैं ऐसी बात नहीं। हिन्दी काव्यों में इन से भी बलवती कर्मगति मानी गई है। यद्यपि बलिष्ठ ने धुम लदन-मूर्ख से ही धीराम का राज्याभिषेक किया था तथापि कर्मगति के असीम उम्हें इनकाउ क दुःख सहने पड़े।^४

१ घलती घाहूँबड, पृष्ठ ८१

२ घलती घाहूँबड, पृष्ठ ८१

३ बही पृष्ठ ८१

४ कबीर, दूरदास मीरां धारि धनेक कवियों ने सपन-मूर्खों की अपेक्षा कर्मगति को बलवती माना है। देखें, कविताकोश, पृष्ठ १७३, ११२, मूरसागर, पृष्ठ ८१, ११४

बाहुबल चाहत पराक्रमारि से युक्त होते हुए भी बीरकाम्य के बीर संन, संन संन, मुटिका कवचादि क टोनों-टोटकों में विश्वास रखते थे। उनके विश्वास के अनुसार वे बस्तुएँ अंशटमय समयों में यगुप्य की कुछ-न-कुछ सहायता करती ही थीं। पराकर बीरसेव का वर्णन करते हुए कहते हैं—

तहुँ जंत्र-संन धनैक दुर्वा भापवत गीतान के ।

मुटिका परै दिव सोमहूँ, के करत जय पनतान के ॥^१

(क) राजनीति—न बीरकाम्य राजनीति के काव्य है बीर न राजनीति प्रस्तुत प्रकाश के विपयज्ञ के अंतर्गत है तो भी इतना सतत करना अंतर्गत न होना कि इन काव्यों में प्रसवपद राजा संनो कुछ ऐसा साम साम बंड भेद घाघि कई राजनीतिक विपयो की चर्चा की गई है। जैसे भाई हाथ से प्रणाम करने पर राजा क्रुद्ध होते हैं युद्ध में सैनिका को सेवक नहीं भाई-अनु समझना चाहिए, प्रजा रंजन ही राजा का मुप्य कर्तव्य है स्वामि-रहित सेना से युद्ध करना नि-अस्त्र सनिक पर महार के समान नीतिविच्छ है इत्यादि।^२

(ख) धर्म—राजनीति क समान धर्म की हमारे विशेष्य क्षेत्र से बहिर्गत है तथापि अक्षेप से कह देना अनुचित न होना कि इन काव्यों में ईश्वर धर्म और परलोक से अछा पाई जायी है। इनका विश्वास है कि राम के साहाय्य से विगड़ते काम भी बन जाते हैं। योछा लोग राम और गणेश का पूजन करके युद्ध में सम्मिलित होते हैं जिससे बीरशिरोमणि श्रीराम की कृपा से विजय-लाभ हो और विनायक के अनुग्रह से विघ्न विनाश। धर्म के निमित्त देहत्याग के लिए इनमें पर्याप्त उमंग है। ईश्वर से विश्वास और हाथ में अस्त्र इन बीरों का कर्तव्य है। मोक्ष सूर्यलोक, स्वर्ग घाघि में भी इनकी अछा है परन्तु मोक्षादि की घपेसा स्वर्ग प्रियतर है क्योंकि वहाँ के गुन सांसारिक मुञ्चों से मिलते-जुलते हैं जिनके इच्छुक से लोग तो हैं ही परन्तु कुछ-बिघनों के कारण घाघिक उपभोग नहीं कर पाते। इन विपयों के कुछ पद अक्ष्य हैं—

(क) राजि हिरी बजनाच की हाप सेड करवार ।

ये रना करिहूँ सवा, यहू आनी निरवार ॥^३ (भोरेमान)

(ख) राम बनेहूँ तो बनि बंहे बिगरी बनत बनत बनि जाय ॥^४ (अपतिक)

१ पाठकर रंजायुत हिम्मतबहादुर विश्वासनी पृष्ठ ३०

२ कैकेय घाघनी धानुह्वर पृष्ठ ११ ४१, हम्मीर रातो, पृष्ठ १२१, १२०, दुष्वीरान रातो (अरवपुर), प्रथम भाग पृष्ठ १११, १६

३ 'उपग्रकव्य' में अजनाल को घिकाजी का उपदेश 'बीरकाम्य' पृष्ठ ३१७

४ अछली बानुह्वर पृष्ठ ४३

वीरकाम्यों के नीतिकाम्य पर एक दृष्टि

नवीन विषय—पूर्वलिखित विवरण से सिद्ध होता है कि वीरकाम्यों का नीतिकाम्य चरित-अर्चण मात्र नहीं है। उसमें ऐस अनेक विषयों का उत्सल क्रिया गया है जो प्रायः पालि ब्राह्मण और क्षत्रिय के पूर्ववर्ती नीतिकाम्यों में दृष्टिगोचर नहीं होत। उदाहरणार्थ मानव-जन्म की सापेक्षता मुझों द्वारा अत्यन्त नीति की प्राप्ति न कि मोक्ष व आत्म-साक्षात्कार में मुझमें ही यत्न मात्र परमपितृ की जितना से पुण्य-साम व अन्त पुराण ज्योतिषादि में अर्थात् स्वाधीनता की रक्षा पराधीन व्यक्ति परस्त्री नहीं होता। पारिवारिक जीवन की प्रशस्तता अथवा के कमसे कम सुदृढ की रक्षा प्रियजन के प्रस्थान पर अपवात का अनौचित्य पितृ के अस्कार का प्रतिघोष देना पुत्र का प्रथम कृत्य मात्र द्वारा गर्भस्थ विद्युत् को वीरता की शिक्षा वीरप्रसन्धिनी जन्म-नी की अल्पता की क मित् सापत्न्य सबसे बड़ा दुःख वीर्यापु को अस्कार संकटमय कार्य प्रकट रूप से करणीय गुण का न नहीं प्राणपण से अस्कार के रक्षा पुत्रों का जन्म ही वीर्यमय पान को हुमा है। स्वाभि-अर्थ के सामान में प्राणों की लक्ष्य वसि पठानों का व्यवसाय ही मूढ है। तुझों की अस्वस्वनीयता अस्वाधीन यत्नवासको की निन्दा अस्वस्वनीयता का प्रत्याख्यान नहीं करत। नृत् में निम्न सेनारक शक्ति पाक्षिकादि की प्रेरणा मानुष्यमि क रक्षणार्थ प्राणोत्सव की कामना, ईश्वर-विश्वास तथा हाव व अहम अस्वस्व अस्वस्व अस्वस्व नहीं किया करते इत्यादि।

उपेक्षा विषय—अर्थात् वीरकाम्यों में अनुकूल नवान विषयों का उत्सल विचार देता है वहाँ कई प्राचीन विषयों की विद्यत वीर्ययमान न होने के कारण अपेक्षा-सी कर दी गई है। जैसे उदा-भूति व अस्वस्व अस्वस्व-निम्न मांस मद्य मन्त्र और मूत्र के संभन की निन्दा अथवा तप स्वयं वयं दया कामा आदि काम भोज वीर विषयों की नहीं। विद्या का महत्व विद्या प्राप्ति के साधन और विद्या तादर्थ्य-मिन्दा मोनसुण पुरोहित वीर्ययमानि की निन्दा। अल्पसे यह है कि इन काम्यों में अस्वस्वों के व्यवहारों का ही अधिक बलवान विद्या गया है और अस्वस्व अस्वस्व अस्वस्व की नीति को उपेक्षित-सा कर दिया गया है।

पूर्ववर्ती प्रभाव—इन काम्यों पर पालि और ब्राह्मण का अस्वस्व अस्वस्व और क्षत्रिय का तथा बौद्ध और जैन नीति का अस्वस्व अस्वस्व नीति का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। अस्वस्व इन रचनाओं का सम्भव मुझ-विश्लेषादि से अधिक है अथवा इन पर महा भारत का और क्षत्रिय का वीरतापुण अस्वस्व अस्वस्व अस्वस्व का अधिक प्रभाव पड़ा है। अथ—

(क) संस्कृत वाक्यों का प्रभाव

कुत्रोत्र में ह्येताह अस्वस्व को अस्वस्व इस प्रकार प्रोत्साहित करत है—

हृतो वा प्रापयसि स्वर्गं विरवा वा भोक्ष्यसे महीम् ।

तस्माद्भुतिष्ठ कोतेष पुत्राय हृत्निश्चय ॥^१ (महाविष्यास)

हे धनुं न पुत्र में नीरगति पाने पर नू स्वर्ग प्राप्त करेगा और विजयी होने पर राज्य-मुक्त । इसलिये पुत्र का निश्चय करके पढ़ा हो जा ।

तेवपार में जो तल छुटें लं रविभेद मुक्त सुख मूर्ख ।

भेदपत्र जो रत्न में पार्ये तो पुहुमी क नाप वहाव ॥^२ (गौरतान)

जोई तो पर सुगिर्यं कुम्भे तुरपुर वास ।

दोऊ जस कितो समर तजो मोह जप घास ॥^३ (ओपराज)

रत्नयोर द्रविय श्री सुरग में कुहें भातिग है मनी ।

जोरी कु परि-यन जाइ तो जोयं धरनि कसी-कली ॥

कुम्भे कु मुख त्रिमुय ती, स्वर्गपवगहि पावही ।

तई कर मनमाने बिहार न कपहुं इह जप घाबहि ॥^४ (पद्माकर)

कुतपट्ट की मात्रा से जब विदुर पांडवों को छूत छोड़ा के लिए निर्मित करने को गये तब युधिष्ठिर ने कहा कि मैं धरणी इच्छा से तो वाहुनि के साथ जुभा न कैम्बुना परन्तु पाँच मुझे सभा में सलकारा गया तो धरने इत है अनुसार पीछे भी न हर्दना—

न धाकामः प्रदुनिता वैवितार्ह

न केम्बां बुष्ट घाह्वविता तामायाम् ।

घाह्वतोऽह् न निवर्त्ते कदाचित्

तरहितं प्रारभत ये इत मे ॥^५

इसी नीति को परमाप्त धनुं न धरने धर्मिकों के सम्मुख दो वचन करते हैं

जप जुबा बुष्ट हु को कबहुं सपने हुं महि माहीं कर ।

ऐसे परम रजपुत्र नों रत्न गिरत बारीगन करें ॥^६ (पद्माकर)

(घ) धपधना का प्रभाव—

(१) मस्त्रा हुषा जो पारिषा बहिरिष महाराय कतु ।

तत्रमैऽत्रनु बपतिप्रभु बद्ध मय्या धर एतु ॥^७ (धनराज कवि)

१ अथबहुमीता धप्याय २।३७

२ गौरतानः धपप्रकाश धोरकाव्य पुष्ट ३१७ पर उद्युत

३ जोबराज हम्मीर रासो पुष्ट १२१ ॥

४ पद्माकर पञ्चामृत हिम्मत वहापुर विस्वावली पुष्ट १५

५ श्री० श्री० श्री० संक्षिप्तमहाभारतम् (बम्बई १९१२ ई०) पुष्ट ७३

६ पद्माकर पञ्चामृत हिम्मत वहापुर विस्वावली पुष्ट १७

७ भावबर्तितः हिन्दी के विकास में धपधना का योग पुष्ट ३३९

भोला की डर भागिणी, अत न पङ्कई देण ।

बीबी बीठी कुल बहु भोला करती नेण ॥^१ (सूर्यमस्त)

(२) कह भग्ना पारककडा तो सहि मज्जु पिएण ।

पह भग्ना अम्हूँ वखा तो तें पारिएण डेण ॥^२ (अज्ञात कवि)

जें अज्जु भग्ना तो सखी मोठाहण सब पाल ।

मिअ भग्ना तो नाहुरी साथ न सुनो डाम ॥^३ (सूर्यमस्त)

उपरोक्त पद्यों की तुलना से विदित होता है कि बीर काम्यकारों ने संस्कृत के पद्यों का तो अनुवाद-सा ही कर दिया है परन्तु अथर्वण के भावों को कुछ परलभित भी किया है ।

परिस्थितियों का प्रभाव—बीरकाम्यों की नीति तत्कालीन परिस्थितियों से भी पर्याप्त प्रभावित है । वह प्रभाव तीन बगों में विभाज्य है—

(क) राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव

(ख) सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव

(ग) धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव

(क) राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव—बिक्रमी स० ७४ में अज्ञात इन्हें

वर्द्धन के उद्योग से उठते ही उत्तरापथ से सुल-शांति का साम्राज्य भी उठ गया । केन्द्रीय शासन के प्रभाव में देश छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में विभाजित हो गया । हिन्दी में लोमर, बङ्गीक में राठीर अजमेर में चौहान वार में चासुक्य और कामिन्दर में बहिल राजपूत शासन करम मने । प्रत्येक राज्य का शासक अपनी सीमा का विस्तार करने तथा अपने को सर्वाधिक सक्तिवाली बनाने को बद्धपरिहर हो गया । परिणाम यह हुआ कि धाए दिन के पारस्परिक युद्धों के कारण उनकी सक्ति शीघ्र हो गई । गजनी के महमूद ने भारत के इन धान्तरिक विग्रहों से साम घटाने का संकल्प किया । अपने अपने अग्रह धारमणों में देश की कसालमक कृतियों को अस्त किया मन्दिरो को बरा-दायी बनाया अथार बन-सम्पत्ति को भूटा और सहस्रों स्त्री-पुद्गलों को दास बनाकर गजनी ले गया । जब इतना कुछ हो जाने पर भी मही के शासकों की धार्मिक धर्मों को मुहम्मद गौरी ने इस देश पर धाधिपत्य जमाने के लिए अनेक आक्रमण किये । पृथ्वी राज ने कुछ अग्र्य मरेहों की सहायता से गौरी को कई बार मारो बने बबबाए परन्तु अपनी अदारता के कारण बसका प्राणायहरण न किया । अन्तिम बार जब पिथौरा परास्त हुआ तो गौरी न उसे जीवित न छोड़ा । इसके पश्चात् मदन धारमणकारियों ने भारत में अपने पाँच फँसाने आरम्भ किए । हिन्दू राजाओं ने उनका अरसक प्रि-

१ सूर्यमस्त बीर सतसई पृष्ठ ६३।११६

२ हिंदी के विकास में अथर्वण का योग पृष्ठ ३४६

३ सूर्यमस्त : बीर सतसई, पृष्ठ १०।१३

घादि को तुष्टि का स्नेह किया है।^१ ब्रह्म मंत्र गुटिका कर्मच घादि द्वारा प्राप्त रक्षा तथा अनिष्टनिवारण की भावना बौद्धों के प्रभाव से प्राप्त प्रतीत होती है। मुर्खों में मरने से मनुष्य स्वर्गलोक में निवास पाता है और स्वर्गलोक समस्त सुखों का स्थल है, यह भावनाएँ मयबङ्गीता पुराण घादि में उल्लिखित हैं। हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान के प्रभाव से बीरकाम्यों में इनकी चर्चा बहुत घटिक की गई है। धम्मराएँ विमानों में रणभय के ऊपर इसी विचार से उड़ती रहती हैं कि जो योद्धा पीठ दिखाए बिना प्राण देया उसे दण्डपुरी ले जाएँगी।^२

यदि बीरकाम्यों में हिन्दू धीर मुसलमान शासकों में प्रायः बैमनस्य ही विहित किया गया है तो उसका मुख्य कारण राजनीति ही नहीं धर्म भी है। एकदर घादि कुछ सवार शासकों को छोड़ प्रायः मुसलमान शासक हिन्दू धर्म धीर संस्कृति की प्रशंसा ही करते रहे। यही कारण है कि हिन्दुत्व-प्रेमी राजाओं तथा हिन्दुत्व-विरोधी यवन शासकों में बैमनस्य बना रहा। योरे मास को धीरंगज्व की हिन्दू विरोधी नीति के विरोध में लिखना ही पड़ा—

हिन्दू तुलक बीम है गाये तिभ लों बीर सदा बलि घाये ।
 जब है साहू लज्जत पर बैठे तबलें हिन्दु धीं उर ऐठे ।
 नहुये कर तीरचम लभाये बेर देवाले निररि बहाये ।
 घर घर बीबे बजिया बीनें अपने जन भाये सब धीनें ॥^३

यदि कवि भूपल ने धीरंगज्व की सर्पित्तिहित नीति से क्षिप्त होकर धिमावी की प्रशंसा करते हुए यह लिखा—

काल करत कलि काल में नहीं तुरकत को काल ।

काल करत तुरकाल की, तिब सरजा करवाल ॥^४

तो इसे भी धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव ही मानना होगा यवन-मास के प्रति सहाय द्वेष का परिणाम नहीं। यहाँ इतना उल्लेख करना आवश्यक है कि यह द्वेष हिन्दुत्वविरोधी शासकों और सैनिकों के प्रति ही है यवन-मास के प्रति नहीं। क्योंकि इन्हीं काम्यों में हिन्दू नरेशों द्वारा भीरु हंसन महिमा दोष घादि विपन्न यवनों की रक्षा का वर्णन भी किया गया है।

अस्तु, उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि बीर काम्यों की नीति पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पड़ा है।

रत्न और मास—बैठे तो बीरकाम्यों में हास्य धीर शासक रसों को छोड़ सनी

१ घसली घासहृदय पृ० ४४७ सुबल संवावली, पृ० २९०

२ घासहृदय पृ० ४३९

३ धम्मप्रकाश पृ० ७७ बीरकाम्य पृ० ३१२

४ सुबल संवावली धिबराज सुबल पृ० ९३।७६

रसों की यथास्थान धीर यथाप्रमंभ म्युनाधिक धमिभ्यक्ति हुई है तथापि उनके नीति सम्बन्धी धर्मों में बीर रस धीर रसके भी नेवों में युद्धबीर, मुख्य है। जिन स्वर्णों पर पर सैनिकों को सेनापति पुत्रों को माताएँ धीर पतिव्रतों को पत्नियों संघाम करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं जिनमें आत्र धम का प्रतिपादन किया गया है जिनमें याज्ञागण्य पग पीछे न हटाने की पीठ न बिलाने की पैतृक भूमि को ह्राप से न जाने देने की क्राष्ट पर प्राण-त्याग न करने की धीर इसी प्रकार की अन्य बीरत्वपूर्ण प्रतिज्ञाएँ करते हैं उनमें बीर रस की इतनी प्रम-स्पर्शी धमिभ्यक्ति की गई है कि पङ्कज मृतप्राय मनुष्य की श्री धमियों में रक्षण बोलने सगता है। विपद्ग्रस्त धरणा-गर्तों की रक्षा क प्रसंग म यथाबीर की धीरों के विवाहों के बर्णन में मृगार की, भीत सैनिकों के विभ्रण में मयानक की शोभ से विफरते मटों के कार्य-कलाप में रौद्र की विषकाओं धारि के धोक की धमिभ्यक्ति में कण्ठ की सैनिकों के सोकोत्तर बीरता-प्रदर्शन में धद्मुठ की तथा रक्त-मांसारि से धाष्ठादित रणभूमि के विभ्रण में भीमरस रस की स्वजना भी धक्की हुई है। इन रसों के धतिरिक्त र्व्यां ह्ये हठ, अब उग्रता विग्रता विपाद बितर्क उदारता, मानरसा स्वामिभक्ति पातिप्रत धारि भावों का प्रकाशन भी बहुत सुन्दर रीति से किया गया है।

धाया—धमिकतर बीरकाम्यों की रचना ब्रजभाषा में की गई है। प्रथम उत्पाम के बीरकाम्यों में धपधराभास धीर जियस की धम्बावली का प्रचुर प्रयोग दिखाई देता है। पंजाबी मारवाड़ी पुर्णों, कुन्देसदवणी, बँसवाड़ी बड़ी बोली धारि के रूप भी वहीं-वहीं दिखाई देते हैं। प्रारसी धरकी तुर्की धारि के धर्मों का प्रयोग भी पर्याप्त है जैसे—लिकाफा तरुमीर, दुभा-सभाम विबमतपार धारि। धनुस्वार, रेफविपर्यय तथा ध्वंजन-हित्त का व्यवहार भी प्राचीन बीरकाम्यों में धत्यधिक है जैसे गणपति को मत्पति निर्मय को निम्भय राजवर को राज वर सम्मुख चर्द को सम्मुख चर्द मर्दादा को भ्रग्वादा धम को प्रम्म धारि। यह हेर-केर कुछ तो प्राकृत के प्रभाव से, कुछ धर्मों को धसुष्ण रक्तने के विचार से धीर कुछ भाषा को धधिक धोजस्वी बनाने के सत्य से किया है। नादात्मक धम्बावली भी प्राय सभी काम्यों में म्युनाधिक मात्रा में व्यवहृत हुई ही है। धमिभ्यक्ति को धधिक सबल धीर स्पष्ट करने के लिए कई बहियों ने रुढ़ियों तथा लोकोपितयों का भी प्रयोग किया है। जैसे—

(क) परो सताका है सिरसा में नाहीं मसा तलक मन्नाय ।^१ (अधिनक)

(ख) अब का बाबा दुपली मेरही बीम का बाया गु बापुर्द ।^२

(मरपति बाबू)

१ धतली धाहूलंड पृष्ठ ४४।

२ बीसतदेव रातो पृष्ठ १७

(ग) तो-सी पुड़े पादके विलारी बेठी लप के।^१ (भूपल)

(घ) कोटिहू किये कसाय हूय छट्ठे न होय बपि ।^२ (मान कवि)

काव्य विद्या—काव्यविद्या की दृष्टि से बीर-काव्य चार प्रकार के दिखाई देते हैं—१ महा काव्य या भरत-काव्य, २ लंकाकाव्य ३ गय काव्य या बीरगोत ४ मुक्तक । पृथ्वी-नाम रावो हम्मौर नामा उग्रप्रकाश तुज्जान भरत पादि प्रबन्ध-काव्य हे गोराबाबस की कथा जंग-नाम हिम्मल पद्मपुर विष्णुबली पादि लंकाकाव्य हे बीरमदेव रामा तथा धारहाड बीरगीत या गय काव्य हे धीर विजराज भूपल, शिवाबाबली बीर सतसई पादि मुक्तक काव्य हे । नीति के उग्र धीर पंक्तियाँ तो स्पष्ट रूप से उपर्युक्त रावो संघों में दृष्टियत होती हैं परन्तु पृथ्वीराज रावो भा-हर्षद तथा बीरसतसई में के अपेक्षाकृत अधिक हैं ।

दोसी—इन काव्यों में नीति के विषयों के निरूपण के लिए तत्पत्निरूपक उपदेष्टारमक संवाहात्मक ग्रन्थारदेष्टारमक तथा लक्ष्यार्थक शैलियों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है । इनमें कुछ काक कबला बारहमासा नरत्यरमक तथा म्यान्त्यारमक शैलियों का प्रयोग हमारे देतने में नहीं थाया । तत्पत्निरूपक रागावर्तक तथा उप देष्टारमक शैलियों के निर्यांन तो ऊगर या हो चुके हैं । कुछ काव्य शैलियों के उदाहरण प्रस्तुत किये किय जाते हैं ।

संवाहात्मक दोसी—कैचबदास ने 'बीरसिंह देव भरत' तथा 'रतन बाबली' में इस शैली का प्रथम मर्यादित किया है । 'रतन बाबली' में गोपाल मित्र-नेध बारण कर रतनसेना के समीप घाटे हैं तथा घातमरदा के लिए नीति की आ क बातें बताते हैं, परन्तु कुमार रतनसेन मया की रखा को ही सर्वोत्तम नीति मानते हुए कुछ से विश्वसित नहीं होते । 'बीरसिंह देव भरत' में राज धीर मोम के तर्क-वितर्क भी इसी शैली में लिखे हैं । उदाहरणार्थ—

मित्र उवाच—मित्र माँव सो हैय, मित्र को बचन न कोविय ।

मित्र बोलीं तो करिय मित्र को मान न भंतिव ॥

परमेश्वर अथ मित्र एक सम जानि सु निरिजय ।

मित्र-बैर नहि करिय मित्र कहुँ सबसु विरिजय ॥

सुनि रतन सेन मनुशाह सुब मित्र बोले किन निरिजयतु ।

कहि कैदाब' तन मन बचन करि, मित्र कह्य सोइ किरजयतु ॥^३

१ भूपल पंचावली, शिवाबाबली पृष्ठ १६।१३

२ राजबिलास पृष्ठ १५७

३ कैदाबपंचरत्न रतनबाबली, पृष्ठ ७

कुमार उवाच—

पतिहि सर्वं मति चाय सर्वं मति मान गर द्विय ।
 मान परे पुन परे, परे पुन लाज करे द्विय ॥
 नाज करे लस मखे मखे अत परम जाइ छव ।
 परम गए सब करम करम गए पाप बसे तब ॥
 पाप बसे नरकन परे, नरकन केसब' को सही ।
 यह जानि बेहूँ सरबसु तुम्है सुपोठ बए पति ना रही ॥^१

अन्यापदैवारमक दासी—

जिस बीर की उपस्थिति में बड़े-बड़े मोखा भी भूँ तक न कर सकत थे उसके स्वर्ग सिंघार जाने पर सामान्य सरदार भी ऊपम मन्ना रहे हैं, इस भाष्य की धर्म व्यक्ति सूर्यमत्स्य ने सिंह की ध-योक्ति से इस प्रकार की है—

जिसु बन भुल न जायता पैर पवम गिङ्गराज ।
 तिसु बन अंकुस ताकड़ा, ऊपममंडे भाज ॥^२

छंद—

पृथ्वीराज रासा में बूहा (रोहा), बरिस (छण्य), पञ्चरी भुजगप्रयात भुजंगी भोटक मोतीदाम कुंडसिया भीपाई धरिस, धार्मा माहा (गाभा), रत्नोक धाकि छर्षों का प्रयोग अधिक किया गया है। इनमें से नीति-विषयों के लिए बूहा बरिस (छण्य) रत्नोक धार माहा का स्पष्टांतर अधिक किया गया है। नीति-सम्बन्धी विषयों के लिए संस्कृत में रत्नोक (प्रनुष्टप्) का प्राकृत में गाभा का धार अपभ्रंस में रोहू का प्रयोग पूर्व कालों में होता ही था। अत इन कवियों ने उन छर्षों का नीति विषयों के लिये प्रयोग परम्परा से ही ग्रहण किया। जगन्निभ ने तो बीर या घास्ता छंद में ही धामहर्षंड की रचना की थी परन्तु उनकी कृति में कुछ कुंडसिया भी दिखाई देती है जिस पर 'कहू धिरधर कविराम' की छाप ही उन पद्यों का प्रक्षिप्त होना प्रमाणित कर रही है।^३ द्वितीय उत्पान के केसव अटमल भूपण मान घोर सास भूवन, पपाकर ओजराज सूर्यमत्स्य धादि कवियों ने अपने बीर-काव्यों में भीपाई (भीपई) रोहा छण्य, छर्षया मोतीदाम, जङ्गोर, भोतामासती मुखबेसि बंबमासी निशानी पञ्चरी धीमर हुआस कड़वा धरिस्त भ्रिंभी दिस्ता भुजंगप्रयात, हनुकास लघु

१ पृथी पृष्ठ ७

२ सूर्यमत्स्य धोरततसई पृष्ठ १३३।२८३

३ धत्तसी धाहर्षंड, पृष्ठ ३१२ धोर धिरिधर राय कत कुंडसिया, पृष्ठ ३०।३३

जहाँ बोधी समर सार की सेवा सगुन बिचारन साय ।
 साम बैर रिनु बैर अपर्बन बधि बजुर्बेद महाराज ॥^१
 समर-सार की बोधी सँदे, पंडित सगुन बिचारन साय ।
 बजुर बैर ज्ञापबेद अपर्बन बायें सापबेद महाराज ॥^२

निष्कर्ष

यद्यपि नीरमापाओं के अश्वर्त्ती नीतिशास्त्र की भाषा अधिक नहीं है तथापि नीति-शास्त्र और नीतिशास्त्रक की दृष्टि से यह विषय महत्त्वपूर्ण है। पानि प्राकृत तथा अथर्ववेद शाखाओं के नीतिशास्त्रों में यह ऐहिकता प्रायः नहीं दिखाई देती जो नीति का प्राण है। उनका अर्थ ऐहिक जीवन की सफलता न होकर आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता है। इसका अर्थ संस्कृत के अधिकतर नीतिशास्त्रों के समान इस जीवन को सुखी समृद्ध अर्थस्वी तथा सफल बनाना है। जीवन को सफल बनाने के लिए जिस नीरता, साहस और पराक्रम की आवश्यकता होती है उसकी प्राप्ति भी इसमें प्रबल प्रेरणा की गई है। भूमि ही वस्तुतः समुपा है इस अर्थ को इन कवियों ने सम्यक् पहिचाना था। इसीलिए इन्होंने पैतृक भूमि की रक्षा और 'नीरमोग्या बजुरबेद' की भाषनाओं का अनेक स्पर्श पर उल्लेख किया है। पारिवारिक जीवन की प्रबलता स्त्री का समान स्वामि धर्म पराध्यात्मतत्त्वा समु-सहार आदि इन काव्यों की अन्य अस्लेख्य विशेषताएँ हैं।

इन काव्यों के अध्ययन-काल में पाठक की दृष्टि कुछ अभावों और कृटियों पर भी बनायास ही का पड़ती है। अराधरणा में इनमें कवियों के कर्तव्यों का तो पर्याप्त उल्लेख किया गया परन्तु अर्थ वर्यों के कर्तव्यादि उपेक्षित-में रह गये हैं। वैश्यायमन सुरापान सूतकीड़ा कन्यापहरण बहुपत्नी विवाह आदि अनेक कृत्यों का निषेध दिखाई नहीं देता। विद्या के महत्त्व और प्राप्ति का अभाव यह अज्ञान अशोचिप यथ मत्र कवचारि पर विद्वान् कर्मियुग का प्रभाव और अविश्वस्यता पर हृदयशास्त्रादि बातें भी इन अविश्वसित संघों में कुछ अक्षरती ही हैं। जो ही इन अर्थपूर्णताओं की स्थिति में भी नीरमापाओं का नीतिशास्त्र बड़ा हमें नीरों के समान प्रतिष्ठापूर्ण जीवन अस्वीत करने की प्रेरणा करता है वहाँ अथवा भूमि मात्र पहिच्य आदि की रक्षा के लिए हँसते-हँसते प्राणोत्सव के लिए भी प्रोत्साहित करता है। जहाँ अधिकतर भारतीय नीतिशास्त्र पाठकों को जीवन-विमुक्त तथा मोक्षोन्मुख करते हैं वहाँ के काव्य उन्हें जीवन की बीड़-सूप के लिए समर्पण बनाते हैं और यह हम की महती विशेषता है।

१ अश्वर्त्ती अश्वर्त्ती, पृष्ठ ३६

२ वही पृष्ठ ८१

तृतीय अध्याय

भक्तिकाल का नीति काव्य (स० १३७५-१७०० वि०)

नीतिकार्यकी दृष्टिमें हिन्दी-साहित्य का भक्तिकाल आदिकालकी अपेक्षा नहीं महत्त्वपूर्ण है। आदिकाल में एक भी ऐसी स्वतन्त्र कवि दिखाई नहीं देती जो पूर्णतः नीति पर केंद्रित हो। नाबों ने योगर्वचिनों के उपयुक्त कुछ नैतिक ठरनों का संश्लेष कर किया। सुनरो ने मनोविनोदार्थ कुछ काव्यरचना की और और-कवियों ने अपने आध्यक्षाधारों का यशोगान किया। इनकी कृतियों में स्पष्ट रूप से जो कुछ नीति विषयक पद्य प्रयोज्य या गये हैं, उन्हें ही तत्कालीन नीति-काव्य का कुछ आभास उपलब्ध होता है। परन्तु भक्ति-काल का महत्त्व अपना ही है। यह तो इस काल के नाम से ही स्पष्ट है कि इसका प्रमुख विषय भक्ति है नीति नहीं। तथापि संतों सूक्तियों राममठों और कृष्णमठों में जिन भक्ति-काव्यों की रचना की वे भक्ति की दृष्टि से ही नहीं नीति के विचार से भी अपना महत्त्व रखते हैं। परन्तु इनकी रचना अपने अध्याय का विषय है प्रस्तुत अध्याय का नहीं। इस अध्याय में तो हमें उन कृतियों का विवरण प्रस्तुत करना है जिनकी रचना का मुख्य ही नीति का प्रतिपादन था। उक्त प्रकार की रचनाओं के प्रयुक्तियों का वर्गीकरण इस प्रकार है—

- (१) भक्तिकाल के प्रमुख नीति-कवि
- (२) अकबर की दरबार के कवि
- (३) अनुवादक कवि
- (४) पुनरुक्ति नीतिकवि

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत उन कवियों की रचना की गई है जिन्होंने आत्मतुष्टि तथा मोक्षोपकार की दृष्टि से सुन्दर और संपूर्ण नीतिक नीति-काव्यों का प्रणयन निदिकतापूर्वक किया। द्वितीय वर्ग में उन कवियों के नीतिकार्य का विवरण दिया गया है जो अकबर की दरबार के शोभाबद्धक से तथा अपनी रचनाओं को सम्राट् तथा उसकी सभा की शान्ति के लिए प्रस्तुत करते थे। इन्हें अपनी रचनाओं में राजकीय पर्यायों का भी ध्यान रखना पड़ता था। तृतीय वर्ग अनुवादकों का है और चतुर्थ वर्ग पुनरुक्ति नीतिकवियों का जिनकी कृतियाँ या स्पष्ट नीति पद्य संस्था और काव्यत्व की दृष्टि से सामान्य हैं।

१—भक्ति प्राप्त के प्रमुखा नीतिकविय

प्रमुख कवियों की सूची पर दृष्टिपाठ करने से विदित होता है कि नीतिकाम्य के प्रणयन में यद्यपि जैन हिन्दू मुसलमान समस्त भक्त राजा सभी सभी में सहयोग दिया है तथापि जैन कवियों की संख्या सर्वाधिक है। कारण जैन तथा बौद्धधर्म धारण प्रधान ब्रह्म हैं। वा साग सर्वव्यापक मृष्टिकर्ता तथा कम-कणवायव ईश्वर में विद्वान् नहीं रहते उनका पद्मप्रप्य हो जाता अस्तित्वों की अपेक्षा सह्य है। इसी लिए उनको हिन्दू मर्यादाओं में स्थिर रहने के लिए धारण-अवहार सपमात्र का उपदेश देना अत्यन्त आवश्यक होता है। पद्मनाभ ठरनी उदराम बनारसीराज धारि जैन कवियों ने अपनी रचनाओं में नृपा मांस मुरा वस्त्रागमन धारि स्वयं अग्निधारादि का उप संहन ता किया ही है अथवा निम्न इन्द्रियसमय सुषोपर्वन कम पक्ष उद्यम-कर्म धारि कियों पर भी सुन्दर रचनाएं प्रस्तुत की हैं। अधिकतर रचनाएं यथोक्ति धारि मुक्त-संग्रहों के रूप में हैं और कुछ प्रख्यात्यक रचनाओं के रूप में। अधिकतर जैन कृत्तियों मुनियों और यतियों द्वारा प्रणीत हैं। इसलिये उनमें ऐहिकता का स्वर यथेष्ट मुखर नहीं हो पाया। परन्तु राज-सम्पर्क के कारण उदराम के काम्य अपवाद माने जा सकते हैं। राममस्तों के नीतिकाम्यों में तुलसीदास जी की बोहावनी अग्रिम है और रत्नावली वा "मधुबोहा संग्रह" ता कवियों की पीठा है। समस्त कवियों में से सुन्दरदास अपने सुन्दर-दिलाल पंचमिथ्यचरित सद्गुरु-महिमा धारि सुन्दर नीतिकाम्यों के कारण तथा बालिद अपने सुन्दर चरित्तों के कारण प्रमुख नीतिकाम्यों में परिगणित किये गये हैं। देवीराज के कवित्तों तथा ज्ञान कविय कवियों में ऐहिकता तथा राजनीति की अधिकता स्वाभाविक ही है क्योंकि एक राजमन्त्री वे तो बूधरे तथाक। ज्ञान के कनिचरित्त को अपने काम्य का विषय बनाया है और मास (?) के रूप तथा गुण की होड़ को। यहाँ यह स्मरणीय है कि जगत सभी कवि किसी न किसी ब्रह्म में आस्था रखते ही थे। इसलिये यह कहना अनुचित होगा कि इन की कृतियों धामुनधुङ्ग नीतिकवियक है। इन में धार्मिक तथा बालिक पुत्र विद्यमान हैं, परन्तु अधिकतर नीति की ही हैं। अब उपसृज्य कवियों का काल क्रमानुसार परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

१ पद्मनाभ

कवि पद्मनाभ की एक ही अग्रकावित्त मुनित्त कृति प्राप्य हुई है "सुन्दर बावनी"।^१ इसकी रचना कवि ने अपने धार्मिकदाता सुन्दर ठठ के नाम पर की थी। सुन्दर

१ हस्तलिखित प्रति की अग्रकावित्त माहुडा के समय जैन अन्धकारव बोकातेर में विद्यमान है।

सेठ योगात् कुस के फोफरुपा योज में उत्पन्न हुए थे । उनकी माता का नाम बादेबी या घोर पिता का नाम संय । उनका धनुज का नाम सीपावर या घोर मुद्ग का नाम प्रम सूरि । 'झुंगरबावनी की रचना सं० ११४ विजयी म हुई थी ।^१ बावनी म कवच ३३ छण्य हैं जो क्या, कोप यद्य की रसा भति, गब, नन्नता बन शान कम-फल बीबन-साफरुप सप्तम्यसन (जुघा मांसभोजन सुरा-वान बेरपायमन भावेन, बोरी पग्दाराभियमन) घादि विषयो पर लिखे गये हैं । कवि जैन हैं परन्तु ब्राह्मणों के इतिहास-पुराणों से भी सुपरिचित हैं । वह प्रतिपाद्य की पुष्टि में जैनो तथा ब्राह्मणों की अनेक कथाओं की घोर संकेत करता है । कवि की कल्पना अच्छी है और वह विषय को प्रभावक बनाने के लिए प्रकृति से अनेक उपमाओं को प्रस्तुत करता है । काव्य की भाषा रासक्यानी है और अत्र अत्र क यतिरुक्ति प्रभाव से युक्त है । संस्कृत के उत्तम शब्दों की मात्रा भी नमन्य नहीं है । श्लोक की सृष्टि के लिए कवि एक वा अनेक शब्दों की आकृति करता है । प्रसाद योज घोर माधुर्य शीतों ही गुण यथास्थान उपसम्भ होते हैं । काव्य के अध्ययन से अमा दया उदारता नन्नता, बदाम्यता घादि की पुनीत भावनाएं मन म आभरित होती हैं ।

अस कारशि यमिराज दिन बावग महापर ।
 अत कारशि कविदण्ह कलि अण्यद करायमर ।
 अस कारशि करि अमर कवि अण्यीअत कसेबर ।
 अस कारशि जनरेप कसहि ककाल दिपठ तिर ।
 अस करिअ अविज भुस्त ममण भिइइ मुड रिख रंग रतु ।
 सो बुकिअ सुविअ झुंगर कहइ तिम किअअइ तिम होइ अतु ॥^२

२ ठररसी या ठररसी

येहू या येहू क पुत्र कवि ठररसी के दो नीतिशास्त्र— इणुअरिअ तथा "पंपगुोवेमि — प्राप्त हुए हैं और दोनों ही अत्रावित हैं । 'इणुअरिअ' को हस्त-लिखित प्रति विगम्बर मन्दिर बम्बई के ठररसी मंडार म सुरादिअ है और 'पंपेन्डी वेमि'^३ को देवने का अक्षर हमें अयपुर के बधीअथ के मन्दिर में मिला । 'इणुअरिअ' की रचना की प्रेरणा कवि को एक घासों-देवी घटना से हुई—

'जिसी इणुअ इक बीठ बीठ तिसो गुण तागु बलाण्यो ।'

इणुअरिअ (रचना १३८० वि०) एक मधुनाय निरुप-काव्य है जिनम केयस ३३ छण्य हैं । उसमें क्या इन प्रकार है—एक इणुअरिअ की उदार

१ संवत् ११४ सीदि बाल अण्यन (झुंगर बावनी ३०वाँ छण्य)

२ झुंगर बावनी छण्य २६

३ मुद्रका सं० ११७ पृ १२६ १२६ तत

पत्नी ने पति के सम्मुख गिरिगार की यात्रा का प्रस्ताव रखा। बैठ के विरोध करने पर बिबाह हुआ। पत्नी ने दान घीर मोम को ही सम्पदा का उपयोप्य बताया परन्तु बैठ ने उसका खंडन किया। लिम्न बैठ कुछ कान के लिए घर से बाहर जाता गया। सौटकर सबसे पत्नी को मायके भेज दिया। व्यापारियों का यात्रि-समूह बनवाकियों पर गया और माग में कुछ व्यापार भी करता गया। धनेक यात्री पहले से अधिक सम्पन्न होकर लौटे। बैठ अपना धून पर हाव ममने तथा और बहुत बीमार हो गया। लोगों ने दान-मुष्य करने की प्रेरणा को ता भोसा—मैं समग्र सम्पत्ति साथ न खाऊं। उसने लक्ष्मी से साथ करने को कहा तो वह बोला—मैं दान पुष्य करन वालों के साथ ही जाती हूँ। इतय बैठ घर कर मरकामी हुआ। उसको मृत्यु पर लोब प्रसन्न होके प्रीरसम्भान्धियों ने उसका दन से मुनछरे उड़ाये। धरु में कवि कहता है—

“अरविष्यो त्याहं शीत्थो जननु
विह संघयो तिहृ हारिवो जनम।”

काव्य में कथा का विबाह मुखाय का न हुआ है और हास्वरेय की सफल व्यक्तता हुई है। जैसे—

बुध लौ पोठि न करै दैव देहुरी न देचै ।
मोंगरि सुनि न देह यानि सुनि रहै घसेचै ॥
सभो भतीञ्चो जुबा कहिसि भाणिञ्चो न क्याव ।
रहै कसई माङ्गि घाप ग्योतो क्य घाव ॥

पाहुलौ सभो घायी सगै रहै छिपिउ मुहु राखि करि ।

विप जाय लबहि पवि नीसरइ हम यमु संख्यो कृपलु करि ॥^१

कथा-विषय कोई नहीं मन्ही है। भारतीय साहित्य में कल्पनिक कृणल सदा ही उपहासास्पद बनाये गये हैं। फिर यहाँ तो एक सत्य घटना ही कवि के समग्र व्यक्तित्व हो गई थी जिसे कवि रोचक ढंग से प्रस्तुत करने में सफल हुआ है।

‘पंचित्री बेलि’ की रचना सं १५८३^२ वि में श्री परी। इन्द्रियनिग्रह शाहल जन बीर सभो सम्प्रदायों के साहित्यकारों का सत्यत ग्रिय विषय रहा है। प्राचीनतर काव्यों में प्राय मुक्तक पद्यों में लक्ष्मी मृप घलन घाकि के उदाहरणों द्वारा इन्द्रिय विकार-अप्य दोषों का उसकेमि मिसता ही है। ठकरली ने वहीं से बीर लेकर उसे कथा-रुप में प्रस्तुत किया है। कवि पहले एक बोहे में किसी एक इन्द्रिय के बचीसुत

१ कामता प्रसाद जन हिन्दी जन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (काया १९४७ ई०) पृष्ठ ९८

२ , , , , “ ” पृष्ठ ९९

३ ‘संज्ञ पंडित स रे पिष्यासे। हरसि मुनि काठिय मासे।’ (अपम कल हस्तलिखित प्रति के अंत में,

प्राणी का संकेत करता है और उत्पत्त्यात् चतुर्दशमाधिक प्राक् पीब सखी-सखी में
ससका कुछ बिस्तृत वर्णन करता है। समस्त काम्य इसी संकी में रचा गया है। जैसे—

बोहा—बन तबबर फल जातु फिरि पय पीबतो मुपुब ।

परसल इंडी प्रेरियो, बहु कुछ छहै ययंब ॥

छंद—बहु कुछ सही ययंबो । तसु होइ गई मति मंबो ॥

कागत के कुरर काय । बड़ि जाई सखयो म भाय ॥

तिहि सही बसो तित मूओ । कबि कीन कइ तस बूओ ॥

रखबाला वलगी बाप्यो । बेसा सिराय धरि बाप्यो ॥

बंबो पय सकुल पाते । सो कियो मसक बाले त

परसल प्रेरि कुछ नायो । निरि अकुस पाबा बायो ॥

परसल रस कीबक पुयो । गहि भीम सितातल पुयो ।

परसल रस राबल नामे । मारो लकेइबर रामे ॥^१

जैसे उपयुक्त अवसरों में स्वसंग्रह्य-विकार से मज की दुर्बला बणित है
जैसे ही रचना ध्यान नेत्र और धरण के विकारों से मीन अमर, पथम और मृम पर
घाने वाली प्रापतिर्वा का उल्लेख है। कवि ने इन पद्य-मसियों के उदाहरणों तक ही
काम्य को सीमित नहीं रखा। इतिहास-पुराणों के पाठ्यार्थों से भी बर्णन विषय का
समभन किया है। रचना में प्रबाह और प्रसाद की कमी नहीं परन्तु सामान्यक उत्प का
अभाव-सा ही है। काम्यत्व की दृष्टि से 'अपय चरित' का स्थान इससे ऊंचा है।

३ छीहस

धमी तक कविकंठल छीहस का विशेष परिचय अग्रकार में ही
है। यादगो से बिदित होता है कि इनका जन्म नास्तिग बंध के अग्रवाल कुल
में नापू के घर में हुआ था।^२ यह अग्रकामित बाबनी बयपुर में सुणकरण पांडे के
मंदिर के आसनबंदर के एक मुंके^३ में हुने लिपिबद्ध मिली थी। कृति का रचना
कास कार्त्तिक शुक्ला अष्टमी सं० १२८४ ई और लिपिकाल सं० १७१६ बैसाख सुदि ३

- १ पंचित्री बेलि प्रथम बोहा तथा उसके अथोवर्ती छव ।
- २ पञ्चदासी बाबलइ राइ पु परह संबंदर ।
मुकम पय्य अष्टमी मास कार्तिय गुव बासब ।
हुदय अयनी बुद्धि नाम थी मुख का सोहज ।
सारवातराह पडाइ कबित सपुण कीहज ।
नास्तिग पति नापू सुतग अग्रवाल कुल प्रपद रवि ।
यादगो बमुपा जिस्तरी कठिंकरा छीहस कवि ॥ (छीहस यादगो अय्य ४३)
- ३ अष्टम सं० १३ गुदका सं० १४ अर्थात् १४८ गुदके में १' × ४' आकार
के ३० पत्र हैं ।

साम्रार है।^१ श्री मोतीलाल नेनारिया ने इनके “पंच सहेली रा नूहा” का सम्पादन किया है।^२ इन्हें इनके चार अन्य ग्रंथों का भी पता चला है—पंचीगीत, बाबनी, सबरपीठ फुलकर पीठ।

छोहल बाबनी उपयुक्त गुट के के धारम में ही है परन्तु उसके पहले पांच पत्र सुप्त हैं। छोटे से छंदहूँ पत्र तक ही कवि उपलब्ध है और उसमें २२ से ५६ तक पद्य विद्यमान हैं। समग्र कृति में केवल छन्द्य छंद ही व्यवहृत हुआ है और उसे कवि ने कवित कहा है।

बाबनी में अनेक व्यापहारिक विषयों का सुन्दर निरूपण किया गया है जैसे—संसार की स्वार्थपरामर्शाता, शान्ति व्यवहार पर ही दिया हुआ धरुडा है, नृप, स्त्री, सर्व मुनार तथा वारांगनामों की अविद्वेषनीयता इत्यादि। इत्युक्त के विरोध में लिखा हुआ निम्नलिखित छन्द्य इनकी सुन्दर कला का परिचायक है—

बरबु गाड़ि मम धरतु धरी विद्यु काजि न धारइ ।

बिससउ जस कर काजि न तरि पीछे पट्टिनाथइ ॥

नर नरिह नर मुबलि संधि सपइ ते मुवा ।

ते बस्तु धामहि मरुति जमस सुकर के हूवा ॥

पन काज सचोमुप बसन सिउं परणि बिचारहि रमण दिन ।

छोहल कहै सोपत किरइ किहो न पावे पुनि बिरा ॥^३

अनेक उपयुक्त वृत्तान्तों द्वारा कर्म्य नीति का समर्पण छोहल की प्रथम विधिष्टता है। निम्नलिखित पद्य से विदित होता है कि वृत्तान्त-रचना के समय उनकी दृष्टि विद्यास खेच में संवरण करती थी—

समय जु सीत वितीत सुपा बस्तर बहु पाये ।

योग पुष्पा घटि गई बुपा पंचामृत पाये ॥

बुपा सुप्त संभोग रजनि कहै प्रति मुकिजय ।

बुपा सलिल सीतल मुवात बिन बुपा जु पीबइ ॥

जातक कपोत जलधर मुए बुपा मेघ जस बहु इए ।

सी बानु बुपा छोहनु कहइ जो बीजइ मधसर पए ॥^४

१ इति छोहल हल बाबनी संपूर्ण समाप्त। संवत् १७१६ सिविल पांडे जीव निर्या-
पित व्यास हरिदास यहुता मध्ये राज श्री सीवसिध जी राज्जे । संवत् १७१६ का
वर्षे मिति वैशाख सुदि ५ दशमीपुरवार । मुन मधतुः श्री ॥ श्री ॥

२ नेनारिया राजारबाबी भाया और साहित्य प्रयाग २००८ दि० पृष्ठ १४२ २०

३ छोहल बाबनी, छन्द्य १७

४ छोहल बाबनी छन्द्य २१३१

सामान्य मूर्खों से तो सब परिचित हैं धतिमुखों का परिचय छीहल ने इस प्रकार दिया है ।

ठाकुर मित जु भाणि मूढ हरवई जे बिसह ।
निज तिय लख बिसास करहि दियमंहि जे मितह ॥
सख सुनार जु धारस-रस जे प्रीति भयाबहि ।
येन्वा धपली भाणि दयल जे दर उदायहि ॥
विरचत धार इनकहु नही मूरिख नर स रचिया ।
छोहनु कहै संसार महि ते नर धति बिगुणिया ॥^१

बावर्नी में विषय तो पुरातन ही हैं परन्तु प्रतिभा-सम्पन्न और बलुन प्रवास होने के कारण कवि उन्हें सजीव बनाने में सफल हुआ है । कई पद्यों पर संस्कृत काव्य का प्रभाव इतना अधिक है कि वे छायाजुबाब से ही लगते हैं ।^२ भाषा बोन नाम की रासस्वामी है, धसकारों का प्रयोग शुद्धपूर्वक हुआ है प्रपाद और माधुर्य पर्याप्त है । साग यह कि विभिन्न भाषों तथा कल्पनाओं से भूयित होने के कारण कृति सामान्य काव्य काटि में परिगलनीय है ।

४—गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवनचरित और कृतिओं से समग्र हिन्दी-संसार इतना सुरक्षित है कि इन विषयों का सविस्तर सम्पन्न पिण्ड-नयण मात्र प्रतीत होता है । यद्यपि उनको रचनाओं में स रामचरितमानस कितयपत्रिका कवितावली और बराम्य-संदीपनी में नीति-काव्य पर्याप्त मात्रा में सक्षित होता है तथापि ऐसे समता है माना दोहावला का संग्रह तो किया ही नीति के उद्देश के लिए गया हो ।

दोहावली कोई निबन्ध ग्रन्थ नहीं है, और न यह कवितावली धादि के समान काण्डों में विभाजित है । इसमें ५५१ दोहों तथा २२ छोरटों का संग्रह है^३ और वे भी सब मधीन गड़ी है । उन में ७५ दोहे 'मानस से ३५ 'रामायन प्रस' (दोहावली रामायण) से, १३२ 'तुलसी सठसई' से और ७ वैराग्यसदीपिनी से सम्पुट निय धये हैं ।^४

१ छीहल बावर्नी द्वाय ३१

२ उदाहरणाय यावनी का २६वाँ द्वाय संस्कृत के इस इपोक का अनुवाद-सा ही है—
कुजल समं सख्यं प्रीति भावि ग कारयेत् ।
जम्हो बहति याज्ञार धीत कुन्नाते करम ॥

(मु० २० ना० ५०११)

३ तुलसीदास दोहावली नीताग्रस मोतारपुर सं० २ ००

४ रामनरेश त्रिपाठी तुलसी और जनका काव्य (दिल्ली १९१३ ई०) पृष्ठ २१६

बोहावली किस नै कव्य संपूर्णतः की यह निरवयवपूर्ण कृता बलि है। कुछ विद्वान् इसे सं० १६३० का संग्रह मानते हैं और कुछ, कुछ पीछे का। परन्तु संग्रह जिस नै भी और अब भी किवा हो इस में सम्बेद नहीं कि नीतिकाम्य की दृष्टि से परबन्ध महत्त्वपूर्ण है। परन्तु इस के विषय में कुछ विस्तृत बर्णन-करने से पूर्व ही यह स्पष्ट कह देना उचित होया कि नीति की हमारी परिभाषा के अनुसार यह विस्तृत नीतिकाम्य नहीं है। जिस संग्रह के १७३ पद्यों में से पहले २४२ पद्यों का सम्बन्ध राम, सप्तमरा सीता कोषस्या रंकर, हनुमान् भ्मान, प्रार्थना आदि विषयों से हो और परबन्धी भाव में भी ऐसे ही विषय छिटपुट रूप से समाविष्ट हों उसे पूर्णतया नीतिकाम्य कहना समीचीन नहीं प्रतीत होगा। परन्तु तुलसीदास की दृष्टि में तो राम भक्ति, राम नाम-स्मरण आदि विषय सर्वोत्कृष्ट नीति से इच्छित उन्मोहे इण का प्रसङ्ग उपवेश किया है। परन्तु हम अपने विवेचन को सचमन छाड़ी तीन ही छोड़ों तक सीमित रखते जिनमें तुलसीदास को के समे और सम्पादन की अपेक्षा लोक-व्यवहार की ही बर्णन मुख्य रूप से की है।

वैयक्तिक नीति—वैयक्तिक नीति के दोष में योन्त्यामी को नै काया को पुष्ट निरामय तथा चिरस्वायी बनाने पर नहीं बल नहीं दिया। इस विषय में जनकी नीति संतकवियों की ही की। बस्तुतः जिन संतों और भक्तों का भ्मान समग्रतः जयवान् की और ही गया हो उनको कृतिवों में धारीक रसा पर बल दिने जाने की आज्ञा नहीं की जा सकती। यही बात ऐश्वर्य विषयों के सम्बन्ध में भी सर्व समझिए, जिन की भाषा की भी दुर्बो का मूल कहा गया है—

तुलसी प्रबुद्धत वैद्यता भासा वैधी नाम ।

सर्वे लोक समवेई विमुक्त भए धर्मराम ॥^१

तुलसीदास की नै धारीक सुबो की जितनी अपेक्षा करने की प्रेरणा की है, उतना ही अधिक बल बाह्यी के सुप्रयोग पर दिया है। कारण यह है कि सामाजिक व्यवहारार्थ जितना प्रयोग बाह्यी का होता है उतना क्विनी धर्म इश्वर्य का नहीं। इसलिये उन्मोहे विवेक-पूर्ण धर्मिमानवर्द्ध और निरा-विहीन बर्णनों के प्रयोग पर बहुत बल दिया है—

येत न कृतत विणु कहे कहत न तापइ डर ।

सुमति बिचारै योसिए, लसुधि कुचेर सुचेर ॥^२

बचन कहे धर्मभाव के, पारम्य देखत सेतु ।

प्रभु तिन सुखत पीब मर बध न लीकु तीहि हेतु ॥^३

१ बोहावली पृष्ठ ५१।२१५

२ बोहावली पृष्ठ २४१।४३७।

३ रामेश्वर के संपूर्ण को देख कर्तुं न नै सर्वर फहा वा, परि वन किनी नै होता ली

तुमको से क्षीरति अह्नि पर की क्षीरति जोह ।

तिन के मुँह मसि भाविहै निगिति न भरिहै घोइ ॥^१

तुमसीरास मानव-जीवन की सावकटा इन दो बातों में मानते थे—नीति-मार्ग का अनुसरण और राम चरण में स्नान—

अन्य बोलि मय राम पप भिदु निबाहव मीक ।

तुमसो पहिरिष सो बतन सो न पघारें छीक ॥^२

मय-मय पर बसने के लिए तिन युगों की आवश्यकता सबसे अधिक होती है वे हैं बुद्धि धार विवेक । यही कारण है कि तुमसी में इनका प्रथम सेने की प्रेरणा पतेक दोहों में भी है—

कब बिचार अनु तुमप भल धारि मध्य परिनाम ।

उलटि अपे 'आग मरा' सुबे 'राजा राम' ॥^३

बेस काज करता करम पवन बिचार बिहीन ।

ते सुरतव तर दारिदी मुंसरि तीर मसीन ॥^४

विवेक और बुद्धि की विम्बस्त करलवाना मुख्य दोष है जोध जिसका परिणाम प्रायः पुनः और पदबासाप होता है । गोस्वामी का न सरन ही कहा है कि यदि मातों द्वारा उत्तेजित मठ मुठ-भूमि को बल पड़ेगे तो या पीठ दिबा धार्ये या बन्धी बन जाएगी—

बध्दाए मठ पाट के धपरि बड़े संघाम ।

क ब जाये धाईहै कँ बाये परिनाम ॥^५

वहीं उपमुक्त बातों में तुलसीदास को सर्वाँ स सहमत हैं वहाँ बेद-धास्त्रों के सम्मुख में विमत । वे बेद-कुरान और पोनी-मय की उपेक्षा या निन्दा नहीं करते उन्हें महामहिम मानते हुए तदनुसार धाकरण का पदमर्ष्य देते हैं—

तोनों से ही पुन धाय देता । उसे इस दर्शकित का कुशल यह मुपतता पदा कि नोब भर्तों में भी दुप्ल के परिचारपी रित्रयों को अनु न के सामने ही मुद निधा । उन्हें जीतने में प्रथमव अनु न की इस प्रपमान के कारण ही मृत्यु हो गई थी (बोहावती, पृष्ठ ११०।४४०) ॥

१ यही, पृ० १३१।३८६

२ , पृ० १६१।४६६

३ यही, पृ० १२६।३६७, और भी देखें बोहा-सदया ३६६ ३७४, ४१३ ४२६, ४६८

४ यही पृ० १४२।४१४

५ यही, पृ० १४२।४२२

दोहावसी किम में कय संयुद्ध को मद शिष्यपुत्रक बहना बलि है ।
 उ विद्यान् इम म० १६८० का महह माना है घोर कुछ कुछ पीये वा । धानु
 यह किम के भी घोर पत्र भी बिका हो इन में लगे नहीं कि श्रीनिवास की दुष्टि
 । धायन्त महहकुल है । परन्तु इन के विपन में कुछ विगुन बर्षा-बर्षे से पूर्व ही
 उ हाथ बह देना बलि होया कि श्रीनि की हवारी बरिबाधा के अनुकार पर किन्तु
 शिषिकाय नहीं है । किम महह के १७३ पद्यों में से कौ १६२ पद्यों का सम्बन्ध
 म सम्बन्ध सीमा कोलाया घोर, हनुमान् प्यान प्रायना धारि विपनों में हो
 रीर परबर्षा प्राय में भी लेके ही विषय छिटकुन कर से महाबिष्ट हो उते गुणगना
 शिषिकाय बहना लभोभीन नहीं प्रतीय हुना । परन्तु मुनमीनाम की दुष्टि में ली राय
 र्कि, धम माव-नमरा धारि विषय लभोवृष् श्रीनि के हमीनिए उहोने इम का
 र्महन् उपदेव विना है । धानु एक धरने विवेकन को मयमग उहो लीन ली दोहों
 एक धीमित रत्तये जिनमे मुनमीरात को मे मने घोर सम्पत्तन की प्रवेण ली
 म्पहार भी हो बर्षा मुरय कर है भी है ।

वैद्यरिक्त मोनि—वर्षावक मोनि क रोच में श्रीनिामी को मे जाना की कुट
 मेराकय तथा बिबरवाको बनाने पर बहो बन मही दिया । इम विषय में उनही शीति
 संतवदियों की सी ही की । बानुतः किम लगी घोर घटना का ध्यान समग्रतः भयवान्
 ही घोर ही लया हो उनही हिनियों में धारीक रथा पर कय दिने जाने को धारा
 ली की का सफ़री । मही बात लेगिय विषयों के सम्बन्ध में भी लय लभधिए, किम
 ही धारा की को दुर्लभ का मूल बहना बवा है—

मुनमी धनुत देवता धाता देवी नाम ।

सेवे सोट सवर्षे विमुक्त भए धनिराम ॥^१

मुनमीराय की मे धारीक मुना का किठकी कवेया करने की प्रेरणा की है
 प्रतमा ही अधिक बन बाली के सुयोग पर दिया है । कारण यह है कि सामाजिक
 व्यवहारार्थ जितना प्रयोग बाली का होता है उतना किसी धर्म इष्टिय का नहीं ।
 इनलिए उहोने विवेक-मुक्त धर्मिमातराए घोर निरा-बिहीन बर्षा के प्रयोग पर
 बहुत बन गिया है—

पेट न धमत विनु कहे कृत न लायह डर ।

सुयति विपारं योनिए, समुभि कुकेर मुकेर ॥^२

पचन कहे धीममाव के, पारय वेगत तीनु ।

प्रनु तिय मुहत मीच मर जय न मोखु कैदि हेतु ॥^३

१ दोहावसी पृष्ठ ७६।२३८

२ दोहावसी पृष्ठ १६६।४३० ।

३ रामेश्वर के तैत्तिरीय को शेष धनुंन मे सवर्ष कहा वा, धरि उन दिनों में होता ली

तुमसी के कीरति बहूहि पर की कीरति जोइ ।

तिन के मूढ़ मति सापिहै मिटिछि बहरिहै पोइ ॥^१

तुमसीदास मानव-जीवन की चार्पकटा इन दो बातों में मानते थे—नीति-मार्ग का अनुसरण धीरे राम बरण में स्तह—

अन्य बोलि मय राम पग तैहू तिबाहूच मौक ।

तुमसी पहिरिय सो बसन सो न पधारें फीक ॥^२

मय-मन पर चलने के लिए दिन मुणों की आबस्यकता सबसे अधिक होती है, वे ही बुद्धि धीरे विवेक । यही कारण है कि तुमसी ने इनका प्रथम सेने की प्रेरणा देनेक दोहों में की है—

कह बिचार अनु सुनब भल घादि नप्य परिणाम ।

उतटि जये आग मरा' सुये 'राजा राम' ॥^३

दिस काप करता परम बचन बिचार बिहीन ।

ते सुतरत तर बाहिरी मुसरि तीर मसीन ॥^४

विवेक धीरे बुद्ध को निम्नस्त करम्बामा मुख्य बोध है जोध जिसका परिणाम प्राम-बुद्ध धीरे पदचालाप होता है । गोस्वामी की न सरय ही कहा है कि यदि भाटों द्वारा उत्तेजित मठ युद्ध-श्रुति को बल पड़ने से या पीठ दिखा धार्ये मा बन्दी बन आयें—

बछाए मठ जांड के अपरि जड़े संघाम ।

कं ब घाबे घाइहै कं बाये परिणाम ॥^५

अहाँ उपमुन्य बातों में तुमसीदास की सर्तों से सहमत हैं बहू बेद-शास्त्रों के सम्ग्रह में विमत । वे बेद-कुतन धीरे पोवा-यत्र की उपेक्षा या निन्दा नहीं करते उन्हें महानिहिन मानते हुए तदनुसार धारण का परानर्था देते हैं—

तोरों छे ही पुन चाप देता । जते इस हर्षोक्ति का कुशल यह मुगतता पड़ा कि मोघ भरीं मे की दुष्ट के परिवार की स्त्रियों को धनु न के सामने ही बुद्ध मिया । उन्हें पीतने में अक्षय अक्षु न की इस अपमान के कारण ही मृत्यु हो गई थी (बोहावमी, पृष्ठ १५०।५५०) ॥

१ यही, पृ० १६१।४८६

२ , पृ० १६१।४८६

३ यही, पृ० १२६।३६७ धीरे की देलें बोहा-सदया ३६६ ३७५, ४१५ ४०६, ४६५

४ यही पृ० १५२।४१५

५ यही, पृ० १५२।४२२

अनुचित प्रथिमा घेर को गुनगो विपु विचार ।

को निरन विरिन भयो विरित बुद्ध उचकार ॥^१

इनके मन्त्र के लो विद्याय विनाम है वन गरीशर है घोर विभिन्न मन्त्रमालार
येन है । उन गनों के उचकारणमें वे अनुमान उक्त उचकारणमें से उत्पन्न हो हो
जाता है ।^१ शोहावली में लोकोक्ति घोर को उचकारण को धरेता को अर्थित बल
आदिप्रक मीनि पर विना गया है । काम गेय मोक्ष मोक्ष अभिमान ईर्ष्या आदि
गुणों के परिच्छाद्य घोर धमा प्रम परावहार मन्त्रना विराग लक्षित आदि गुणों
के उचकारण की प्रवृत्ति पाई जाती है । गिराविरिन दा, के वाचार्थ के लक्षात्क पदार्थों
का अन्वेष इष्टम् है —

गोम हें हृदय हन मन काम के उचकार ।

गोम हें बरय वदन मन गुनिघर वरहि विचारि ॥^२

अभिमान के वाच्य मानस उभा प्रवृत्ति परवत् होकर दुःखनाश बनता है
जिस प्रकार गोम उचकार का व द घोर उचकार —

हम हमार आचार बहु भूरि भार परि गोम ।

हृदि तन बरयन वरत जिनि घोर गोम हृदि कोम ॥^३

काम गोम आदि म से एन को शेष मनुष्य का अन्वेष करन म नमर्थ है परन्तु
वही के उचकार हो जाते वही तो अन्वेष का कार्य पूर्ण ही नहीं रहती —

यह प्रहीन पुनि बात बग तेहि पुनि बीघो मार ।

तेहि विद्याइय वादनी बहुवाह उपचार ॥^४

इंकी परकी पर उचकार आशा देना घोर संका बनना नाशभी भाजन है परन्तु
अज्ञान बरी है जो तत्प आशा-नाशन घोर संका बनता है —

छागु सगुर मुख भागु विनु प्रमु भयो वही तप कोइ ।

होमो हुमो घोर हो मुहन सराहिय सोइ ॥^५

'शोहावली' में आदिप्रक गुणों में सर्वोच्च स्थान अन्वेष प्रम को दिया गया है ।
सबका प्रथी बरी है जो प्रमोमनों के विचंगित नहीं होजा तथा प्रम-दान या अन्वेष वही
के आ परमे कामे अर्थों या मृत्यु की भी मर्त्य स्वीकार कर जाता है परन्तु अपने स्नेह
में कोई कमी नहीं ध्यान देता । मरत्य स्नेही के उचकारण को शोहावली में मान मृत्यु सर्व
कमल आदि अनेक पदार्थों के प्रम से स्पष्ट किया गया है परन्तु आतंक के प्रेम द्वारा
जो अन्वेष प्रेम की दिशा दी गई है वह हिंसी-जाय में अन्वेष दुर्लभ है —

१. ५. शोहावली श्लोक ४६४, ४६५, ५६६, २४१, २७१

२. वही, श्लोक ३२१

घरपि पश्य पाहन पश्य, पल करो दुक दुक ।
 तुलसी परी न चाहिण चतुर घातकहि बुर ॥^१
 धर्म्य। धर्मिक पयो पुण्यवत उसटि उठाई खोंच ।
 तुलसी जातक प्रेम पट परतहुँ सगी न खोंच ॥^२

वारिचारिक नीति—जो सन्त मन्त्र संसार का हा भूठा समझते हैं वे परिवार को कैसे सत्य मान सकते हैं ? यही कारण है कि जो सन्त गार्हस्थ्य की स्पष्ट निन्दा नहीं भी करते व भी उसमें घासकित को सर्वथा त्याग्य कहते हैं । तुलसीदास जी की भी नीति ऐसी ही है । वे विदवानन्द सामु की धपेला विरक्त गृहस्थ को खेच बनाते हैं—

सीस उदारन किन कहेउ बरनि रहे प्रिय लोग ।
 घर ही सती कहावती बरती माहू बियोप ॥^३

उनके विचार में गार्हस्थ्य प्रभु प्रेम में बाधक नहीं है, उसमें घासकित बचस्म अनिष्टकर है अतः उस घासकित से दूर ही रहना चाहिए—

घर कोहुँ घर जात है घर छाड़िँ घट जाइ ।
 तुलसी घर मन बीब ही राम प्रेम पुर छाइ ॥^४

परन्तु हमका तालम यह नहीं कि गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए पुण्य मुक्त-रत्नों की सेवा घुमूवा में प्रभाव किया जाय । ऐसा करना तो जीवन ही व्यर्थ सोना होगा—

मातु पिता पुत्र इशानि सित्र सिर बरि करिह सुमाय ।
 सहेउ सामु तिगह जनम बर न तप जनमु जय जाय ॥^५

तुलसीदास की कृष्टि कवस आदर्श पर केन्द्रित नहीं रहती । सांसारिक तत्त्वों से वे परमात्मन नहीं करते । जो बात साक्षात् देखने समने में आती है उसे स्पष्टतया स्वीकृत करने में उन्हें संकोच नहीं होता । अत्रनों क घरों में बुद्धता का होना वे अस्मय नहीं मानते—

होइ भले के धनभलो होइ दानि ठे सुम ।
 होइ कपूत सपुन के, धर्मो पाबक में धूम ॥^६

गृहस्थ और विरक्त के विषय में तुलसीदास की नीति का सार यह है कि मोह के वश में हा कर मास्मोहन कर्मों का अनुष्ठान न करने वाला गृही और वैराग्य-विनेक-हीन तथा प्रपंचलीन संन्यासी दोनों ही निष्ठ हैं ।^७

१ २ ३ बोहावती २८२, ३०९ २३४

४ वही , बोहा २३६

५ वही , बोहा २४०

६ वही बोहा ३६८

७ वही " ४८०

अतुलित महिमा देव की तुलना किए बिचार ।

जो निरत निरिक्त भयो विरिक्त युद्ध अक्षतार ॥^१

उत्तरे मत में तो विद्वान् किसान हैं वेद शरोवर हैं घोर विभिन्न मतमताम्बर बैठ हैं । उन दोनों के उत्कर्षापकर्ष का अनुमान उनमें उत्तम सत्य से सहज ही हो जाना है ।^२ 'दोहाबली' में पार्थिविक और बौद्धिक नीति की अपेक्षा कहीं अधिक बल धार्मिक नीति पर दिया गया है । काम शोष सोम मोह अभिमान ईर्ष्या धारि युगुलों के परिष्कार और शमा प्रेम परोपकार मन्नता विरवास धाम्नि आदि गुणों के उपर्यन्त की प्ररणा पाई जाती है । निम्नांकित दोहे में कामादि के सहायक पदायों का उल्लेख द्रष्टव्य है—

सोम के इच्छा बंध बल श्याम के केवल मारि ।

श्लेष के परप बचन बस पुनिबर कहींह विचारि ॥^३

अभिमान के कारण मामय उन्ही प्रकार परबस होकर दुःखभायो बनता है जिस प्रकार तोता रेशम का कीड़ा घोर बन्दर—

हम हमार आचार बड़ भूरि भार धरि सीत ।

हठि सठ परबस परत जमि कीर कोत कृमि कीत ॥^४

काम श्लेष धारि से स एक भी शोष मनुष्य का अमयं करन न समथ हैं परन्तु वहाँ से इच्छुट हो जाएँ वहाँ तो बचाव की कोई गुरत ही नहीं रहनी—

अह प्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि वीदी मार ।

तेहि विप्राहय बावनी कहतु काह उपचार ॥^५

उन्ही पथको पर रहकर धाजा सेना घोर सेवा करना तो सभी चाहते हैं परन्तु अजगन बही है जो सहर्ष धाजा-वासन घोर सेवा करता है—

धामु समुर पुब मानु पितु प्रभु भयो बही सब कोइ ।

होनों हुजो घोर को भुजन सराहिम सीइ ॥^६

'दोहाबली' में धार्मिक गुणों में सर्वोच्च स्थान अमय्य प्रम को दिया गया है । अन्धा प्रेमी बही है जो प्रलोभनों से विचरित नहीं होता तथा प्रेम-प्राप्त या अम्य कहीं से या पढ़ने धर्म कष्टों या मृत्यु को भी सहर्ष स्वीकार कर लेता है परन्तु अपने स्नेह में कोई कमी नहीं धाने बैठा । सत्य स्नेही के स्वरूप को दोहाबली में मीन मृग सर्प कमल धारि अनेक पदायों के प्रम से स्पष्ट किया गया है परन्तु आतक के प्रेम द्वारा जो अमय्य प्रम की शिक्षा दी गई है वह हिम्मी-काय्य में अमय्य दुर्भम है—

१. ३. दोहाबली दोहा ४३४, ४३२, २६३, २४१ २७१

७. वही, दोहा १६१

वर्षि पश्य पाहन पयः पंख करी टुक टुक ।
 तुमसी परी न चाहिय, चतुर घातकहि बूढ ॥^१
 बघ्यो वसिष्ठ पयो पुण्यजल उसरि उठाई खोंब ।
 तुमसी बातक प्रेम पट मरतहुँ मयो न खोंब ॥^२

पारिवारिक नीति—ओ सन्त-मक्त समार का हा भूठा समझत हूँ व परिवार को कैसे सत्य मान सकन हूँ ? यही कारण है कि जो सन्त गार्हस्थ्य की स्पष्ट निन्दा नहीं भी करते वे भी उनमें घातकित को सर्वथा त्यागन कहत हैं । तुमसीदास जी की भी नीति ऐसी ही है । वे बिजयामन साधु की अपेक्षा बिरक्त गृहस्थ को श्रेष्ठ मनाते हैं—

सीस उधारन किम बहेउ बरति रहे प्रिय लोप ।
 घर ही सती कहावती बरती जाह बिभोग ॥^३

उनके बिचार म गार्हस्थ्य प्रभु प्रेम म कामरू नहीं है उसमें घातकित घबरेल घनिष्टकर है अत उष घामकित से दूर ही रहना चाहिय—

घर कोगुँ घर बात है घर छोड़ि पर जाइ ।
 तुमसी घर बन बाब ही राम प्रेम पुर छाइ ॥^४

परन्तु इनका उद्देश्य यह नहीं कि गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए पूज्य गुरु-शर्तों की सेवा-सुधुवा म प्रमाण किया जाय । एना करना ता जीवन ही अन्ध घोना होना—

मातु पिता गुरु स्वामि सिद्ध सिर परि करीह सुमाय ।
 लहेउ सामु तिगह अनम कर, न तव अनमु बाग जाय ॥^५

तुमसीदास की दृष्टि अन्ध धारणा पर केन्द्रित नहीं रहती । सांसारिक तथ्यों से वे परामन नहीं करते । जो बात साक्षात् दर्शने सुनने म घाती है, उसे स्पष्टतया स्वीकृत करने में उन्हें संकोच नहीं होना । संरक्तों क घरों में कृष्णान का होना वे धर्ममव नहीं मानत—

होइ भमे कें अगभलो, होइ बानि के सुम ।
 होइ कपुत सपुन कें श्यां पाबक में घुम ॥^६

गृहस्थ और बिरक्त क विषय में तुमसादास की नीति का धार यह है कि मोड के बग में हो कर सास्त्रोक्त कृत्यों का अनुष्ठान न करने वाला गृही और बिरक्त-द्विभेद-हीन तथा प्रसन्नमन संन्यासी दोनों ही निन्द्य हैं ।^७

१ २ ३ बोहावती २८२ ३०२, २१४

४ वही , बोहा २१६

५ वही , बोहा १४०

६ वही बोहा ३६८

७ वही " ४८०

सामाजिक जीवन— 'बोहाबली' में सर्वाधिक बल मिला घोर मित्रता कपट घोर कपटी सज्जन घोर दुश्मन उत्सव घोर कुसंभ, परोनकारी बर्तों की दुर्ममता, त्याग्य बर्तों के परचास्त्र स्त्रियों का संमान उत्तरोत्तर लीला होता गया। तुमसीवास जैसे वैद-मन्त्र भी उन्हें प्राचीन मानन पर न बैठा सके। इस विषय में उन की नीति सन्तों जैसी ही रही। इसके दो कारण प्रतीत होते हैं। स्त्री अपने मधुर रूप में परमार्थ में प्रत्यक्ष रूप विद्य होती है। घोर स्वयंकृत होने की बधा में उग्र रूप धारण कर मूर्तम घोर मित्रताम कल्प करने में भी संकोच नहीं करती—

काह न पावक बारि सक, का न समुह तमाइ ।
 का न करै प्रबला प्रबल, केहि बाग कास न जाइ ॥^१

सज्जमता घोर सरमता निस्सन्देह स्तुत्य गुण हैं परन्तु इन की भी कोई क्षीमा होगी चाहिए। जो इस नीति की प्रयत्ना करता है वह सूर्य अग्नि के समान विडंबना का पात्र बनता है क्योंकि वे सदा सरम नाम बसते हैं। रोप यहाँ के समान उभयविध गति का प्राप्य नहीं भते—

सरल वक्र दति बंके प्रह अपरि न बिदवत काहु ।
 तुमसी घूसे सूर लसि, समय बिडंबित राहु ॥^२

इस संसार में लबा भते का फल मना ही नहीं मिलता। भसाई का पंजुराई मिलने पर सज्जनों को इत्याय न हो जाना चाहिए—

लोक वैबहु नी बयो, नाम भते को पीब ।
 धमराज कम पाज पवि बहुत संकोच न होत ॥^३

कवितावली धारि में माराम लबा इमुमान् की 'सरमि' का धोरस्त्री करने वाले तुमसीवास 'बोहाबली' में सहारक परस्त्राको संयुक्त करता ता हूँ पत्र-गुणो द्वारा युज को भी निषिद्ध कहते हैं—

सुमति विचारीहि पच्छरहि बल सुमनहुँ सपाम ।
 संकुल मए तनु किनु भय, ताबी जाती काम ॥^४

सरमाने सामान्य रूप से कलह की कुत्सा व परवान् समर्प वीरी से बैर को तो मृत्यु मोक्ष भेता कहा है।^५
 तुमसीवास के मयमान् सरखायतवत्स है। सरस्वत के पर्यवहारों में भी सरखायत-रक्षा का पुत्र कहा है। मरिदाज के राजपूत-नरोध भी सरखायत के रक्षा

१ १ बोहाबली २६७ ३६७ ३७३
 ४ कवितावली रांकाकाण्ड वच ४
 ५ बोहाबली पृष्ठ १४६।४५५

१ जोरा ४७६

स्वप्राणों को संकट में डालते भाए वे घटएव तुलसीदास भी इस नीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे—

तुलसी मृग जल कुल को निरजल निपट निष्कास ।

कौं राखे क संग बने बाँड़ यहै की भास ।^१

तुलसीदास की नीति-पालन का महत्त्व मुक्तकण्ठ से स्वीकृत करते हैं क्योंकि उसी के कारण श्रीराम ने जग मृग लक को पवित्र मित्र बना लिया था और उसी के प्रज्ञान के कारण रावण ने स्व संहोत्र को निज काल ।^२ परन्तु कोई यह कहे कि संसार की नीति के उपदेश से सुभारा जा सकता है तब गोस्वामी की उल्लेख सहमत नहीं हैं ।^३

धार्मिक नीति—दोहाबसी में धन के महत्त्व का उल्लेख नहीं है । कारण तुलसीदास का लक्ष्य सांसारिक भुक्त न होकर धर्मःशान्ति की प्राप्ति है । यही कारण है कि उन्होंने संतोष के बिना धान्ति प्राप्ति को वैसा ही असम्भव कहा है वैसा भूमि पर नाव का चलना ।^४ उन्होंने धन की मूर्ति ही प्रत्येक की है क्योंकि वह प्राय धर्म मान निर्लेख्यता धान्ति बुद्धियों का उत्पादक है—

तुलसी निरमय होत नर सुनिघत सुरपुर जाइ ।

तो नति सन्निघत प्रकृत तनु सुख सपति पति पाइ ॥^५

दान देना तो स्तुत्य है परन्तु कपट पूर्णक दिया हुआ दान किसी का भी हित नहीं करता । न दाता का न प्रतिग्रहीता का । तुलसीदास मरत्यप्राप्ति के दृष्टांत से उत्तम नीति का उपदेश यों देते हैं—

तुलसी दान को दैत हैं जल में हाथ उठाइ ।

प्रतिप्राप्ति कोषे नहीं दाता नरक जाइ ॥^६

दुतर प्राणिव्ययक नीति—तुलसीदास ने धर्मधर्म पदाओं के निषेध द्वारा जीवधमा की व्ययजना प्रत्येक दोहों में की है । सिंह गर्वम प्रादि पशु-पक्षियों के चरित्र से धिशा लेने की प्रिय प्रवृत्ति को हम आणव्य-नीति में दैत चुर हैं वह दोहाबसी में भी दुर्लभ नहीं है ।^७ दोहाबसी में तुलसीदास की ने जातक समम मृग प्रादि की प्रशंसा के द्वारा उनके धर्मम प्रेम का पाठ पढ़ने की प्रेरणा को है । इस प्रकार दोहाबसी की प्राणिव्ययक नीति उनके प्रति व्याप्तता तथा उनके कुछ सीखने की है ।

मिथिल नीति—मिथिल नीति के अन्तगत तुलसी ने भिन्न प्रत्येक विषयों का प्रतिपादन किया है उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—संसार की स्वप्न-सहस्यता कसि मृग अनिष्ट सामाजिक विषयों पर धमर की महत्ता विधि-मध्यमों तथा सङ्गों का प्रभाव आचार की प्रशंसा वस्तु की प्रभावता प्रति सर्वत्र वर्ज्येत् भाष्य के साय-साय पुष्पार्थ का महत्त्व स्व कल्पों तथा बड़ों के धामय से महत्त्वप्राप्ति जीवन का धारण्य प्रादि । जैसे—

१ ३. दोहाबसी १४४ ४४२ २७४ १७३ ४२७

६ ८. वही दोहा १११, १४२ १०, ११०

प्रत्येक कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों का कुछ-न-कुछ ख़री होता है। कुछ कवि तो प्राचीन कृतियों से उलिक-सा भाव-संकेत लेकर उसको ऐसा नवीन रूप देते हैं कि उन की कवि मौलिक-सी बन जाती है परन्तु सामान्य कवियों में इस कीचल का समाव रहता है। वे समग्र प्राचीन भाव का अपनी भाषा में अनुवाद-सा प्रस्तुत कर देते हैं। 'बोहावली' में तुलसीदास ने कहीं-कहीं भाव संकेत-भाव से कर उन्हें ऐसा नया परिधान पहनाया है कि दोहे मौलिक-से लगते हैं। जैसे, स्वान का माहात्म्य बताते हुए संस्कृत के किसी कवि ने यों कहा है—

स्वानभ्रष्टा न शोभते दन्ताः कैषा मन्वा मरा ।

इति विज्ञाय मतिमान् स्वस्वानं न परिरयजेत् ॥^१

'दाँठ वाल नल घोर मनुष्य स्व-स्व स्वान से पूषक हो जाने पर शब्द नहीं मगते। इसलिए बुद्धिमान् को चाहिए कि अपने स्वान का त्याग न करे।' तुलसीदास जी ने 'दाँठ' की बात तो यहाँ से भी परन्तु उसे प्रस्तुत किया ऐसे रूप में कि विषय भी दूसरा हो गया और अभिव्यक्ति भी नई—

हित पुनीत सब स्वारस्यहि धरि अनुद्ध बिनु चाङ्ग ।

निज मुक्त मानिक सम बसत बुनि परे है हाङ्ग ॥^२

जब तक स्वार्थ रहता है तब तक पदार्थ हितकर और पवित्र प्रतीत होते हैं और स्वार्थ पूर्ण हो जाने पर सब और अपवित्र। मुक्त में स्थित दाँठ रत्न-मुक्त्य लगते हैं और मिर पड़ने पर हृदयवाँ। स्वान-माहात्म्य में जहाँ यह बात को किस कीचल से स्वार्थ-प्रसंग में उचित कर दिया गया है! अन्यत्र भी बोहावली में प्राचीनों का प्रभाव इसी प्रकार का है।

रत्न और भाव—इसमें सम्येह नहीं कि बोहावली में घनेक दोहे ऐसे भी हैं जिनमें बुद्धितत्व का ही प्राभाव है और धत एक उनको काव्य की अपेक्षा पद्य ही कहना समीचीन है तो भी अधिकतर दोहे तो ऐसे ही हैं जिनके अध्ययन से हृदय में सबल-पुष्प मचाने वाले ईश्याँ काम शेष मोम मोह कूरता कष्ट आदि बन्धन जारों का नाश होना है और धीरता सज्जतता बढान्यता निरुधिमामता मैत्री समता निष्कपट धम भनम्य प्रेम संतोष क्षमा गुणों के प्रति धारर सहिष्णुता निःस्वार्थता परोपकार, संगठन आत्माकारिता विवेक आदि उदात्त भावों का सम्येह होता है। निबर्धन रूप में कुछ दोहे देखिए—

सुर समर करनी करहि कहि न जनावाहि धाय ।

बिद्यमान रत्न पार रिगु कायर कर्वाहि प्रताप ॥^३ (सूरदास)

१ सु० २ भाँ पृष्ठ ८६, स्वान-माहात्म्यम्, श्लोक ६

२ बोहावली पृष्ठ ११३ १३०

३ वही बोहा ४३६

सरस चतु गत चातकहि मेम प्रम की पीर ।
 तुलसी पर बस हाइ पर वरिहूँ पुहुमी नीर ॥^१ (अनन्य प्रेम
 कृतपन सप्रहि न देव बुज, मुएहुँ न मामब नीच ।
 तुलसी सखन की रहनि, पावक पानी बीच ॥^२
 (परबुद्धकाठरता व आत्मसमान)

सास सगुर पुब मातु बितु प्रभु भयो धरूँ सब कोइ ।
 होबी डूबी घोर को, तुजन सराहिप्र सोइ ॥^३

(गिरिभिमानता)

कहना—काम्य में सरसता माने के लिए कल्याण का विधिष्ट स्थान है।
 दोहाबली के अनेक दोहों में कवि-कल्पना से इतनी ठोड़ी उड़ान मरी है कि पाठक मुग
 हो जाता। जैसे—

बस कुसंग बह सुजनता ताकी घास गिरास ।
 तीरपहूँ को नाम भी गया गगह के पास ॥^४

कुसंगति के विविध रूपरिणामों का उल्लेख तो अनेक कवियों ने किया।
 परन्तु विष्णु-नर तीर्थ का नाम गया (गया-बीठा) इस कारण पड़ा है कि उसी
 समय की संपत्ति की यह बात प्रबन्ध किसको सूझी? चातक के मेघ-जल के प्रति
 अप्रतिम प्रेम का वर्णन तो अनेक कवियों ने किया है परन्तु अपने चातक के अन्त
 छिनके तक को भी नदी-नीर का स्वर्ण न होने देना तुलसी बास की ही अनूठ
 करता है—

अठ पोरि किया बैडुवा गुब पर्यो नीर निहारि ।
 पहि बंगुल चातक बतुर, बायों बाहिर बारि ॥^५

भाषा—‘दोहाबली’ में प्रायः सरस सखभाषा का प्रयोग किया गया है। क
 दोहों में अक्षरी का भी व्यवहार मिलता है। संस्कृत के उत्तम शब्दों की मात्रा पर्याप्त
 है। सलगा घीर अर्थना के प्रभूत प्रयोग से काम्य में सरसता या गई है। मुहावर
 का प्रयोग भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होता है। जैसे—

तुलसी बर सनेह होइ, रहित बिलोचन बारि ।
 सुरा घबेरा आवरहि, निरहि सुरतरि बारि ॥^६

इस दोहे में बर पीर स्नेह को धारोिक तथा मानसिक नेत्रों से रहित हो
 कहा गया है, अठ सलगा है।

पाठ कीट लो होइ, तैहि लो पाटवर बरि ।
 इमि पातइ सब कोइ, बरम अपावक प्राण सम ॥^७

उक्त स्रोतों में समुच्च की स्वार्थपरायणता की व्यंजना है जिसके कारण वे धर्म्यता अपवित्र कीड़ों को प्राण-समान मानते हैं।

सोचन भसी मनाब जो, भसी होम की प्राप्त।

करत समन को बेंडुषा, सो सठ सुतसीवास ॥^१

उक्त दोहे में 'गमन का बेंडुषा (तकिया) करना' इन मुहावरों का प्रयोग किया गया है। दोहाबसी में तर्प्यनरूपक शैली का प्रयोग बहुत है। उपदेशात्मक^२ तथा धर्मोक्ति^३ धर्मिया कही-कही प्रयुक्त हुई हैं। श्रव्यात्मक शैली^४ भी एकाध स्थल पर दिखाई दे जाती है।

'दोहाबसी का प्रत्येक दोहा किसी-न किसी अलंकार से सुशोभित दिखाई देता है। अलंकारों में से अक्षानुप्रास, वृत्तानुप्रास, ज्ञानानुप्रास तथा यमक का प्रयोग अधिक दिखाई देता है और अर्थात्कारों में से उपमा रूपक, इत्यादि, यथासंभव विशेषोक्त तथा निदर्शना का। कुछ उदाहरण नीचे—

(क) प्रीति पयोहा पयब की प्रयद नई पहिबानि।

जाबक अबत कनाउको कियो कनीको बानि ॥^५

(वृत्तानुप्रास तथा अक्षानुप्रास)

(ख) माखी काक जमुठ बठ बाबुर से भए सोय।

जने तो सुक पिक मोर मे कौड न प्रेम पब खोग ॥^६ (मासोपमा)

(ग) बेस काल करता करम बचन बिहार बिहीन।

से गुर तब तर बापिनी सुरतारि सीर पत्नीन ॥^७

(निदर्शना तथा विशेषोक्ति)

(घ) उत्तम मध्यम भीब बति पाहन सिक्ता वानि।

प्रीति परिच्छा तिहुन की बंर बितिकम बानि ॥^८ (यथासंख्य)

'दोहाबसी में प्रसाव तथा माधुर्य का प्राचुर्य है। चातक-सम्बन्धी धर्मोक्तियों में धोज की मात्रा भी पर्याप्त है। अटकते हैं, तो वे ज्योतिष-सम्बन्धी नीरस पद्य जिनमें ठिबियों और लक्ष्यों के शुभाशुभ फल बताये गए हैं और जो अप्रतीतत्व शेष से युक्त हैं।^९

धिसाकर कह सकते हैं कि दोहाबसी के शीति-विषयक धाय का पर्याप्त (१८ में परिष्कृत) है।

१. दोहाबसी दोहा ४११

२. वही, दोहा ४३२, ३०३, ४७४, ४७६, ४७८

३. वही, दोहा २८३, ३३१, ४१४, ३२९

४. वही दोहा ४२६-४२८

५ रत्नावली

गोस्वामी तुलसीदास का की पत्नी रत्नगवली के सम्बन्ध में इतना ही प्रख्यात ही है कि वे दीनबन्धु पाठक की पुत्री थी तथा उनके दो बेटों से प्रभावित होकर गोस्वामी भी बिरक्त हो गये थे परन्तु उनका संक्षिप्त जीवन-वृत्त उस पद्य-बद्ध जीवन-चरित्र 'रत्नावली' में मिलता है जो सीरों (एन) के मुरसीधर नाम क कवि ने लिखा था। मुरसीधर के मन्त्रवादी रामबल्लभ मिश्र ने उसकी प्रतिलिपि सन् १८६४ वि० में की थी अतः रत्ना-कास उससे कुछ पहले ही मागा जा सकता है। इस ग्रन्थ के अनुसार रत्नावली का संक्षिप्त जीवन वृत्त इस प्रकार है—

रत्नावली ने ब्याकती के गर्भ से जन्म लेकर पिता तथा भाइयों से वास्मोक्ति-रामायण तथा छान्दास्य पढ़ा। वे पावती-परमेस्वर की उपासिका थीं तथा काव्यरचना किया करती थीं। तुलसीदास के पिता का नाम आत्माराम था और माता का नाम हुआसो।

तुलसी घातम राम पूत। उबर हुतासो के प्रसूत।

पये बोजै तै अमर लोक। बारी पोतहि करि सलोक ॥^१

जब अनाप तुलसी बड़ होकर विद्वान् भी बन और प्रतिष्ठित भी तब रत्नावली से उनका विवाह हुआ। रत्नावली के ठारापति नामक पुत्र भी हुआ परन्तु धीघ्र ही परलोक गामी हो गया। विवाह के पन्द्रह वय पश्चात् रत्नावली पति की अनुमति से साधारण मास में भाई के साथ रक्षाबन्धनोत्सव के सम्बन्ध में मामके बरिया^२ (बदिया) गाँव में गयीं। प्यारह दिन बाद जब गोस्वामी भी कदा बाँधकर घर लौट तां सुने भवन में मग्न न सगा और रात में ही बड़ी हुई संया को पार कर समुद्राम जा पहुँचे। वहाँ रत्नावली ने उन्हें पत्रकारा नहीं भवितु उनके प्रेम के साप-साप प्रभु प्रेम की प्रशंसा इन शब्दों में की—

मो सम को बड़ भाग मारि। मो सम को तिरपति हि प्यारि ॥

सीन प्रम तुम करो पार। नाम प्रम के तुम प्राधर ॥

मम सु प्रम निज हिये पार। उतरे निय सुर चरित पार ॥

जम अघार पर प्रम मार। जात मनुज भव उरति पार ॥^३

१ 'रत्नावली तथा 'रत्नावलि-समुद्रोहा-संप्रभु' की हस्तलिखित प्रारब्धन प्रतियाँ सं० पोर्विक बल्लभ भट्ट आर्यो, सीरों निवासो के वहाँ सुरक्षित हैं। 'रत्नावली', सं० माहुरसिंह सोमंजी सं० १९९१, पृ० ११

२ वही पृष्ठ १८

३ सीरों के परिषद में संया-उद पर बरिया गाँव विपत है और बारह पुराण में उते सुकरलय कहा गया है। (वही पृष्ठ ८)

४ वही, पृष्ठ २१

रत्नाबती के सब प्रभावशाली थे—भेरे प्रेम के कारण घायल पाप पर कर प्राये, प्रभु-पद प्रेम से मनुष्य महासागर तर जाता है। भक्तिव्यंजना घटल थी। गोस्वामी जी का मन विषयी से बिरहन हो विरहैव पर अनुभव हो गया। वे उसी रात बिसक गये और बहुत हुंते पर भी न मिने। बिरहिणी रत्नाबती कास्मिनी की भाँति रत्ने सनी और संवत् १५२१ की जन कुर्या प्रभावामा को स्वयं सिखायी। रत्नाबती दोहा संग्रह में कुल १११ दोहे हैं। कुछ दोहों में रत्नाबती के परकाष्ठान की तीव्र बेरना है तो कुछ में घाने को उग्र घटकार। जैसे—

हाथ बरिका बन सई हों बामा बिय बेलि ।
रत्नाबलि हों मान को रसहि बियो बिय बेलि ॥

दीनबधु कर घर पकी दीन बंधु कर छाहु ।
तोड सई हों दीन घति पति स्वागी मो बाहु ॥^१

घदिकरत दांडो मे पाम्यगगन प तिव्रत घर्म की रश्मिा तथा उपदेश है। सीता बमयन्ती शाबिनी प्रादि को भी उदाहरण रूप में स्मरण किया गया है। इन्द्रिय प्राम को प्रवसता को ध्यान में रखत हुए सभी साम्प्रदायिकों तक से प्रामाण्य में न मिलने की नीति कही गई है—

बुचक जनक जामात सुत ससुर बिबर प्रब आत ।
हनहुँ की एकांत बहु कामिनि पुनि जनि बात ॥^२

भाव-कल प्रायः स्त्री को प्रमिा और पुरप को मोम बसाया जाता है परन्तु रत्नाबती ने स्त्री होने के कारण रूपक को विपरीत रूप में रखा है—

घी को घट है कामिनी पुस्य तपत संवार ।
रत्नाबलि घी प्रमिा को उचित न सम बिचार ॥^३

पुस्तक में पाठिव्रत के महत्त्व के प्रतिरिक्त प्रत्येक ऐसी बातों का भी वर्णन है जो नारी जीवन के लिए प्रत्यक्ष उपयोगी है। जैसे—

तन मन मन भाजन बसन भांजन भवम नुनीत ।
जो राबति रत्नाबला तेहि गाबत पुर सीत ॥^४

भाषो भाती किनयो सह्य ही कयी जाती थी पर रत्नाबती उन्हें सावधान करती हैं—

बनिक लेवमा निबुजुन, जनि कबहुँ पतिप्राह ।
रत्नाबलि नेह रूप घरि ठप कम टपत प्रमाह ॥^५

इनी प्रकार पदोपयोगी तथा सन्तुष्टिपूर्ण स वरवहार, जीवन की सफलता,

१ घी पुछ १४ दोहा ३ ६
२-६ बही पछ २० दोहा ४१ ४४
४ ६ बही दोहा ७ ७५

मुमिन्न-कुमिन्न, बन की विविध गति धन-वीचन आदि से जलित मद्य शीर्ष-सूत्रता की निम्ना, दुःख को पाप का फल समझ कर बुद्धी न होना और उसे निर्ममता का साधन मानना आदि घनेक साधाम्य नीतियाँ भी उपरिष्ठ हैं ।

विषय की दृष्टि से प्रघास्त होता हुआ भी यह संग्रह साहित्यिकता की दृष्टि से विशेष महत्त्व नहीं रखता । अधिकतर दोहे तो पद्य-भाषा हैं परन्तु कुछ एक में साहित्यिक छटा सराहनीय है । जैसे—

रत्नावलि भवसिन्धु भवि, तिय बीजन की नाव ।

पिय केवट बिन कोम जग, यह किनारे साव ॥^१

अधिक विस्तृता से बन्-भूति का दृष्टान्त तो प्रायः कर्तुंगोचर होता ही है परन्तु रत्नावली में एक लीन दृष्टान्त द्वारा धर्म धर्म धर्मसन्धय का उपदेश दिया है ।

एक-एक धावव तिये, पोधी पुरति होइ ।

मैठ बरम तिमि नित करे रत्नावलि गति होइ ॥^२

दोहे सुबोध धन भाषा में हैं जिस में तद्भव धर्मों का बाहुल्य है । सब कुछ देखते हुए इस लघुकाम्य काव्य को 'स्त्री-वचन-नीति' कह सकते हैं जिसका प्रात्यक्षिक पारामण्य गृहस्थी को सुखमयी बनाने के लिए अत्यन्त उपयोगी है ।

१ देवीदास—भारबाइ के निवासी तथा तुमसीदास के समकालीन कवि देवी दास के बंध जग्ग-स्वान जग्ग निचन-काल आदि के विषय में धर्म तक कुछ जान फारी उपलब्ध नहीं हुई है । हीजर क इतिहास से इतना विदित हुआ है कि वे देसा बटी के राव गुरुकरण के मंत्री तथा बाटि क बरम थे । इन से बुद्धि को सत्त्व मानते थे तथा धामसमान का पूरा ध्यान रखते थे । इनके कवित्त नायरी प्रचारिणी सभा काटी तथा राजस्थान के धर्म पुस्तक-भंडारों में विद्यमान हैं । श्री रामनरेश त्रिपाठी ने इनके कवित्तों का जो संग्रह कोचपुर में देसा या इनका नाम था 'देवी दास की रा कवित्त' १^३ नायरी प्रचारिणी सभा के मासिक संग्रह में सुरक्षित प्रति का नाम है 'राजनीति के कवित्त' १^४ इस प्रति का प्रथम तथा अन्तिम भाग लुप्त है । इसलिये

निरचय पूर्वक कहना कठिन है कि रचयिता ने इसे क्या नाम दिया

धी० वा । अत्यन्त पत्र के हाथिये पर० आदि लिखा है । यदि 'धी' भाष

धी० सिद्ध हो और 'धी' नीति के कवित्त का संक्षिप्त रूप तो सम्भवतः

१६ संग्रह का नाम 'नीति के कवित्त' होगा । अस्तु संग्रह का नाम

कुछ भी हो इसमें सन्देह नहीं कि नीति-काम्यों में यह संग्रह उत्तम-

गुण्य है ।

१२ वही बोहा, ३३ ६५

३ सं० रामनरेश त्रिपाठी: कविताकोशकी पहला भाग आठवाँ संस्करण पृष्ठ ३३६

४ नायरी प्रचारिणी सभा मासिक संग्रह का नाम 'प्रति संख्या १३२।१२

नामरी प्रचारिणी सभा में जो प्रपूर्ण संग्रह हमें दैतने का प्रयत्न मिला उस में २ से ४७ तक ही पत्र हैं। बीचपुर के उपर्युक्त संग्रह में कबित्त-सबदों की संख्या १०० है और नामरी प्रचारिणी सभा संग्रह की ११२। सम्भव है देवीदास ने कुछ देवीदास को एक कृपस कवि प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

संग्रह में राजनीति और सामान्य नीति दोनों ही संस्कृत कौशाचीन नीति-ग्रन्थों के समान सुली-मिसी हुई हैं। प्रथम कवित्त में कवि, नीति का महत्त्व और उसकी संकेत साधारण के लिए उपयोगिता का यों बर्णन करता है—

नीति ही से बरत (घोर) परम त लकस सिद्धि,
 नीति ही से बरत (घोर) परम त लकस सिद्धि,
 नीति ने प्रनीति छूटे नीति ही से पुप सुट,
 नीति निवे घोले बड़ी यकता कहाइये।
 नीति ही से राख राजनीति ही से पाठसाही,
 नीति ही को नोक पठ बड़ो बस गाइये।
 घोरेन नू बड़ो करे बड़ी महा बड़ो करे
 तखें सब ही नू राजनीति ही पुनाइये ॥^१

बही कवि कवित्तों में कवि ने राजा के गुण प्रना के प्रति उसका व्यवहार की रखा के उपमा कौन किस का मूल पुरप का वास्तविक मूँवार, मसे घोर बुं कापात-रमछीमता प्रादि विषयों को बहुत ही मनोहर ढंग से प्रस्तुत किया है। कौं मर्म धम्मयुव्य ज्ञान स्वास्थ्य प्राप्ति भत विजय चातुर्बं प्रादि घनेक पदायों प्राप्ति के उपाय कवि ने एक ही पद्य में इत प्रकार समाहृत किये हैं—

कीरति को मूल एक रैन दिन बोन देवो
 बर्म को मूल एक राख पहिबानिबो।
 बहिबे को मूल एक ऊँको गन रायिबो है,
 जानिबे को मूल एक भला बात गानिबो।
 व्याधि यह भोजन उपाधि मूल हाँसी,
 देवी बारिबे को मूल एक अरगत बयानिबो।
 हातिबे को मूल एक घातुरी है रन मोन,
 चातुरी को मूल एक बान कहि जानिबो ॥^२

१ बही पद्य १
 २ बही, पद्य ८

प्रायः कस जब कि प्रायः प्रत्येक चिहित ब्यक्ति प्रपना सत्य राजकीय सेवा ही माल बँटा है देवीदास का पञ्चोत्थित कबिल उस ब्यवसाय में साफल्य-प्राप्ति के लिए मार्ग-दर्शक का काम करता है—

बिनु कहे सय जाने सासन छिर वे पारन
साहस की सीर मान मन सरइयतु हैं ।
बुख सुख जो न धाने बोर हो रहै प्रयाग
जनी काजें प्राण बेइ तेई पाइयतु हैं ।
निडर में डर राखे डर में निडर होय,
साज सों लपेटो रहै भवि साइयतु हैं ।
धरी धरी धरबी न का बरबी न होय,
ऐसे जाकर तो पूरे पुण्य पाइयतु हैं ॥^१

धम्मुदय प्राप्ति के लिए धाम धारि के मोह का त्याग तथा साहस धारि से सम्पन्न होना आवश्यक है । बिन कायर पुरुषों में उक्त गुण नहीं होते वे घर में ही बैठ कर सड़ा करते हैं—

बिलके उबार बिल पाव बीच मिल पूरे
मनबंत सय हो क 'देबी' मुपबात हैं ।
रूप के उबारै मन तारन में राखि सीज
बोसन में मोल तैत ऐसे मुख पात हैं ।
साय भापे मुख फिरें निरापार बुख फिरें,
भाग जुमे जहाँ को तहाँ ई बलि जात हैं ।
कापुश्य गुनहीन बीम मन नीच नर
बाप को तसाई बोख बडे लीच जात हैं ॥^२

किन्-दिन बाजों से मनुष्य की जय हुआई होनी है इयका उल्लेख देवीदास के बिलसख ही रीति से किया है—

घारत गुमान कर बारिरो हू सोब घर
सुग्री घोर अनुसरै ऐसे मुइ घोर हैं ।
जानी हू प्रपच राख त्यागी हू गृही को साध
राजा हूँ कृपिता क सुम तिर मार हू ।
पदिका कुकप धनवान हू फकीरो घर,
बापि के सिबिस भयो रात दिन बोर हू ।
जय में जो बसिये तो हंसिये न काहू 'बबी',
हंस्योई जो चाहै तो ये हंसिये को टोर हू ॥^३

१ कविता कोमुबी, भाग १, पृष्ठ ३६६।८

२ ३ कविता कोमुबी भाग १, पृष्ठ ३६६।१०; ३६७।७

देवी दास न संत थे, न मुनि वे एक राव के मंत्री थे। यही कारण है कि इन का नीति-काम्य ऐहिकता से प्रभूत है। यह निवृत्ति-भार्य का उपदेशक नहीं प्रभूति-भार्य पर प्रसन्न करने वाला है। इनके पद्यों के प्रथम-काल में पाठक का मन सहसा ही बहिरु संविद्यार्थों के नीति-काम्य की ओर जाता जाता है जिनमें जीवन के संदर्भ में बीरवत् याचरण की शिक्षा है।

यद्यपि कवि की कृति पर्याप्त संघर्षों में मौलिक है तथापि निम्नस्तय प्रवृत्तियों से प्रभूत होता है कि मत्तु हरि के नीतिप्रवृत्त तथा भक्त संस्कृत पद्यों का अर्थ जहाँ कुछ संघ तक स्वीकार करना ही होगा। जैसे—

सोमरवेदमुणेन कि विद्युनता यद्यस्ति कि पातकैः ।
सत्यं वेत्तपसा च कि युधि मनो यद्यस्ति सीधेन किम् ॥
सौख्यं यदि कि निज स्वमहिमा यद्यस्ति कि मर्दनं ।
सहिष्णुता यदि कि परमपयसो यद्यस्ति कि मृत्युना ॥^१ (मत्तु हरि)

सोम तो न और गुन विद्युनता तो पातक न
सत्य तो न तप नाहि ईरवा तो बहनों ।
युधि तो न तीरथ मुनता तो सेवक न
बाहु तो न रोग तीनि लोक माहु कहनों ।
परम तो भीत न बुरित बीबपातक तो
काम तो प्रबल नाहि बस (?) तो लहनों ।
बिन्दा तो न सान 'बोबदास' तोम्यों लोक कहुँ
सन्तोष तो सुख नाहि कीरति तो यहनो ॥^२

देवी दास ने मत्तु हरि के दोस्तों को घाट बातों में से सोम विद्युनता सत्य, युधिमान सौख्य और मर्दन—इन छह बातों को ही ग्रहण नहीं किया कविता में इच्छा, बाहु, धन बीबदास काम बिन्दा और सन्तोष को अपनी ओर से भी जोड़ दिया है। इस परिवर्तन के कारण उनकी मौलिकता बहुत-कुछ प्रकृत्य रही है।

देवी दास मारवाड़ी थे परन्तु उन्होंने अपने काम्य के लिए स्वप्रांतीय भाषा को न अपना कर ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया। सम्भव है इसका कारण परिवर्तित पियस-साहित्य का प्रथम हो। उनकी रचना में मारवाड़ी के शब्दों की संख्या नगण्य है। बिदेदी शब्द भी इन्होंने पर ही कड़ी मिला सकते हैं। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है और वह अक्षरवचन में पर्याप्त संतर्क है। यद्यपि अक्षरों और व्यंजना की प्रवेसा अभिजा नृति का प्रयोग अधिक है तथापि प्रसाद-युक्त भाषा का प्रवाह और प्रसन्नता का सुप्रयोग उस ओर व्याप्त जाने ही नहीं देता। विषय और भाषा के

१ सतकवयम् पृष्ठ २३, ४४

२ यातिकर्तव्यम् प्रति स ३३१। १२, पद्य ४८

विचार से ही नहीं भावों की दृष्टि से भी देवी दास की रचना सरकूट है। उसके अध्ययन से सम्मान का ज्ञान ही नहीं होता, हृदय में साहस साम्नीय भूति धीरार्थ बहात्मता प्रापि के भावों का भी उद्रेक होता है।

इन्होंने ध्यान कवियों में प्रायः तत्पनिष्पन्न शंसी का प्रयोग किया है। उप-देशात्मक संवाचालक तथा अन्वयापदेशात्मक वीथियाँ भी प्रयुक्त की गई हैं परन्तु कदाचित्-कदाचित् ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि देवी दास कियों की उपयोमिता भावों की धीरता अनुभव की व्यापकता भाषा की स्वच्छता प्रादि के कारण नीति-कवियों की अग्रणीकत में स्थान पाने के अधिकारी हैं।

७ उदरराज—उदरराज मण्ड से भद्रसार जी के दिव्य यति उदरराज बीकानेर नरेश महाराज रायसिंह (शासन काल १६१०—१६८० वि०) के यहाँ निवास करते थे।^१ ये कविता में अथवा नाम उदरराज उदै उदय उदय धीर उदो भी लिखते थे। इन्होंने सं० १६६० में नीति के दोहों की रचना की^२ और सं १६७९ में भृगुबाबनो की इनके अतिरिक्त इनका एक नाम रहित 'सफ़' पद्य संग्रह भी लिखमान है जिसमें नीति की अपेक्षा अर्थ-विषयक सामग्री प्रचुर है।

इनके नीति के दोहे 'उदरराज रो बूढ़ा' में उपलब्ध होते हैं। ये दोहे "जरा रा बूढ़ा" जबागी रा बूढ़ा प्रादि अनेक सीरों में विभक्त हैं। इस पद्य-कविता प्रथम की। प्रतिमिति हमें बीकानेर के समय जैन प्रवासय में देखने का अवसर मिला। यह प्रतिमिति स्वामी नरोत्तमदास से फूलरूपेण आचार के पत्रों पर की है और इसमें सादे तीन छंदों के अगमय दोहे हैं। इस पुस्तक में नीति का आधिक्य ही है ही, शृंगार की मात्रा भी पर्याप्त है। नीति-काम्य की दृष्टि से यह अर्थ बहुत उपयोगी है इस लिए कुछ विस्तृत परिचय देना उचित ज्ञेयता है।

प्रायः जैन मुनियों की कृतियों में काया उपेक्षित-सी ही रहती है, परन्तु उदरराज सम्भवतः राज-संसर्ग के कारण अन्धे ज्ञान-यात्र और रहन-सहन की अन्धता समझते हैं—

घाघा जामै सुख सुये, घाघा बहिरै सोइ ।

यति घाघो रहली रहै मर न बूढ़ा होइ ॥^३

उक्त दोहे के "मर न बूढ़ा होइ" का आशय यही समझना चाहिए कि सम्यक जीवन-यात्र से जरा और मृत्यु का प्रभाव बिलम्ब से पड़ता है क्योंकि घाघे यति की नै स्वर्ग-कदाचित् धरना ही अनुभव कहा है—

१ २ कामता प्रसाद जैन: हि० अं० सा० सं० इ० (वाराणसी, १९४७ ई०) पृष्ठ १३२

३ उदरराज रा बूढ़ा, पृष्ठ १ दोहा १३

बन बूटे योवन गयी हाथ पाँव पहरात ।

मायो जरा प्रहार की सब से उठ्यो न जात ॥^१

जरा घोर मृत्यु धर्म शास्त्रों तथा धर्म प्रचारकों के प्रभोग प्रस्त है । इन्हीं की-
स हाथता से वे मोह-वस्तु जीवों को घलम पर घलम करिमा करत है । उदैराज भी वे
भी बरा रा बूहा' प्रसंग में जरा घोर केशों पर प्रति मुन्दर बोहे रचे हैं—

स्याम हुते रया स्याम से मन घब मेरे प्राण ।

वे उज्ज्वल उज्ज्वल कियह उदयराज रहिमाण ॥^२

निम्नलिखित बोहे में कवि ने 'जहानी' घोर जरा' का श्रमण घसाभी घोर
पतिव्रता नारियों से साम्य दिखाने में यति कमनीय कल्पना से काम लिया है—

गो जहानी मी माणु कह रत सेवा कछ धँड़ि ।

रही जरा हुइ पतिव्रता मी हूँ माया मँड़ि ॥^३

लोग अपने वैयक्तिक काम के लिए कितना झुक पाते हैं इस नीति का
विरुद्ध प्रामाण्य-जीवन के एक प्रत्यक्ष उपयुक्त उदाहरण द्वारा दिया गया है—

स्वारथ ध्यारो कवि उरै कहै बडे सो साँच ।

जल सेवा क कारखी नमत हूय हूँ बाँच ॥^४

गुली मनुष्य को भविष्य की चिन्ता न करनी चाहिए । देखिए, समुद्र-क्री
धाप्य से संबंधित हो जाने पर भी जन्मना को धिक् की महाराज अपने दीर्घ पर धारण
कर बैठे हैं—

हर तिर पर सिलहर कियो किरत सिरे उदराज ।

समुद्र लखी त कहा भयो गुल करि सहियतु माज ॥^५

इस प्रसंग में पारिवारिक नीति पर मुनि जी का विशेष बल सक्षित नहीं होता ।
प्रसंगवत् जहना घोर पतिव्रता नारियों के लक्षण ऊपर द्या ही चुके हैं । सामाजिक
नीति के लक्ष में इन्होंने प्रत्यक्ष उपयोगी बातें बहुत मुन्दर ङंग से कही हैं । जैसे मति
बता दुर्जन का लक्षण है तो स्वच्छता सज्जन का—

जी सेतो तो बुपल कण जी उज्ज्वल तो सेण ।

बात ध्याये नाधिका ज्य ध्याये नेण ॥^६

संसार में सज्जन-संभोग मिथ्या सुख-भ्रम होता है घोर उनका विभोग कितना
बुद्धिमत्, इस बात का प्रतिपादन प्रत्यक्ष उपयुक्त शब्दों द्वारा किया गया है—

सज्जल मिमल समान कहु, उर न बूजी बात ।

सिध पीत धूनी हरर मिमल नास हूँ बात ॥^७

जगो परस्पर विभोग से ही पूजा घोर इन्हीं रचनीय हो रहे थे- ज्यों ही मिले,

१ २ " " " , २२।१, २२।२०, २२।२, • हाथिये में, २२।३

२-७. उदैराज रा बूहा पृष्ठ १५, २२।१३

बेहरों पर सामो जमक उगी । कियनी सुन्दर कल्पना है ।

सुखनों का धन्यतम गुण होता है—संयाहृत की साज या “बाह गहे की टेक ।”
इस नीति का उपदेश तत्कालीन सम्राट् के जीवन से प्रस्तुत कर कवि ने निज सुन्दर
सूत्र का भी परिचय दिया है—

अइ योमु बाएँ कहा, कम धंपीकृत पाहि ।

जानी हय जहाँपीर से बटे हाय बिकाइ ॥^१

जब सामुह्य सभु से हो जाए तब केवल बल काम नहीं रहता । उस समय तो
बल धीर बस दोनों का ही प्रयोग समीचीन होता है—

जबे धपीरों सभु नहीं धीरों रहती लाज ।

कम बेची बल कीबिये, दल बिये बल बेकाज ॥^२

इसी प्रकार कपटी के स्नेह की क्यारवत् कथिमता^३ मोक्ष-संभ्रत की बुद्धरता^४
सरस व्यक्ति का सब को सरस^५ धीर कुटिल का सब को कुटिल समझना^६ आदि नीतियों
का मार्मिक रूप से प्रतिपादन किया गया है ।

सामान्य बृहत्सों की अपेक्षा सन्त-मुनि भोग भक्तिव्यथा धीर ईश्वर म धार्मिक
निष्कास रखते हैं । मुनि उदरराज^७ का निम्नांकित बोधा जहाँ होनहार की धनिधार्मता
का उल्लेख करता है, वहाँ भावा की दृष्टि से भी जमत्कारक है—

हुई हुए बे चह हुसो जं जं जं गुणहार ।

तं तं तं न मिद परे, नं नं नं न विचार ॥^८

ब्राह्मण शीघ्र जैन प्राय सभी धर्मों में संसार का दुःखमय कह कर उससे
मुक्त होने की प्रेरणार्थ की गई हैं । परन्तु उदरराज जी उन धर्माचार्यों से विमत हैं । वे
जन्म में दुःख धीर मुक्त की माना को बराबर-बराबर मानते हैं । राजाधर्म की प्राप्ति
इस यथमेव का कारण हो तो धार्मिक नहीं—

सुर सुत्प अह दुत्प को, शोच सम गिली बिचार ।

जेतो शुप मई धाबरीं, तेती पख अपार ॥^९

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजा धीर सामन्तों क संसर्ग में रहने क कारण
उदरराज की कवि ने धन्य मुनि-कवियों की अपेक्षा कुछ दिसतगुवा या गई है । वे
अपनी रचना सामान्य जनो के लिये ही नहीं राजकीय योद्धाओं के लिये भी करते
थे । निम्नांकित पंजाबी-भिद्यत शार्ङ्गों में बाराणापारम्यक काम्यों की-सी विजय के
बाद अपने कानों से स्व-दण्ड गुलन की या मर कर स्वय-मुख मुटने की इच्छा व्यक्त
होती है—

तइयि तो मराय भाजानि तो राजर ।

इयइरी पड़ियो शीतड़ो वेऊ भाध करर ॥^{१०}

सङ्घर्षों की रीति उर तो मुलागे जस काज ।
मराने तो सुयता है कपु सोघरयो म प्राण ॥^१

पालकरी लोग विभिन्न देव बना कर भासै भासै लोगों को सबा से ठकै प
हैं । बहुराजों विदों नापों मग्नो मीर जंभों समो मुपारजों मे जमला को उनसे सा
भान करमे का यत्न किया है । यति उदराज मे भी इनो उद्गुण से मन्वे रीव्युव पंक्ति
परवेण दोल प्रबधुन बंध समाधिपो पादि के मसालों को निविबद्ध किया है । ना
कहीं तो वे मसाल-मात्र है परन्तु किन्हीं मे कुछ चमत्कार भी है । जैसे—

सब कीगहा सिरक्या सबहु है कपु भीतर भक्त ।
सिख न कपु हो रहि सजना, ता ते कहियै सैज ॥^२

उदराज गृहस्थ न होते हुए भी सामारण जनों की मनोबुद्धि पूरा पढ़ाया
ये । नीति-काव्य की रचना में तो वे योप न देखते थे परन्तु व्यक्तिगत रूप से विवे
उपदेशों की प्राथमिक व्यर्थता से वे अनभिज्ञ न थे—

उई सीख कहि कपु विर्यै सीख विद्या बुझ होइ ।
प्रपली करली चाकरी, बुरी न देख कोइ ॥^३

मनुष्य-जीवन का सार उदराज के मत में यह है—

उदमराज बैलो हसी मनिषा बैही सार ।
इह समपण जिबतन मिलए बहुरि न बुझी बार ॥^४

उदराज कर्षे विषयों की दृष्टि से बहुत कुछ मौलिक हैं । वे प्राचीन का
का धम्मनुवार या छामानुवार मही करते प्रपनी वैनी दृष्टि से समाज के प्रत्येक
एक का पहुँचते हैं और सुगर माव-मुस्ता निकाल साते हैं । वहाँ नहीं उन्कोमे कही
कुछ प्राचीन विचार लिया भी है वहाँ उसे ऐसे ढंग से संशोया है कि भाषाप्रहार
विचार भी मनमे उचित नहीं होता । जैसे संस्कृत के किष्कांतिय पद्य में धम्म को पर
धम्म कहा गया है और विद्यादान को उरसे भी श्रेष्ठ—

धम्मदान परं धार्म विद्यादानमत्त परम् ।
धम्मोप साणिका तुप्तिवर्धकमौर्ध्वं च विद्याया ॥^५

इसमें वे विद्यादान की बात को छोड़ कर, मुनि को ने धम्म-दान की महि
को से लिया है परन्तु उरका बलून इस प्रकार से किया है कि बोद्धा दिवान्त मौनि
देख पढ़ता है—

१ २ वही पृष्ठ ११२, २१२०

३ ४ वही पृष्ठ ४१९, ३२१६

५. सु० २० वा० पृष्ठ १२५२-१३

छद्म कोटि संज्ञर द्विये एक धरम गोबाल ।

छम्मा कोटि विद्याह व लब्धि म धम्म समान ॥^१

उद्वेग के अविच्छाद दोहे तो हितकारी विचारों के कारण ही प्राण्य हैं परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो रस धीर भावों के उद्भूत म पुण्यता समर्थ हैं । धीर-रस के दो दोहे पासे प्रवृत्त कर हो चुके हैं, एक हास्यरसात्मक दोहा भी द्रष्टव्य है—

हृति के मर तासी द्विये, या युग के धरम ।

धीर कहा सिर फोड़िहुँ, पलक रीम के काज ॥^२

युगों जनों का गुण देख-सुन कर केवस तासियाँ बजा देने बातों पर फिटना हीय व्यंग्य किया है ।

बुद्धों की भाषा राजस्थानी है । कई बुद्धों में पंजाबी का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है । महिरवान धारद, रहिमाण, रिजक धासल्ल (धासान) धारि विदेसी धम्म की पर्याप्त हैं । छन्दों की गति ठीक रखने के लिए कहीं-कहीं कुछ शब्द विकृत भी कर दिये गये हैं जैसे “मन” को “मन्म” ‘धासान को धासल्ल’ दुर्जन को ‘दुरज्जन’ अपभ्रंश भाषा की द्वित्व व्यंजनों की प्रवृत्ति भी पर्याप्त पाई जाती है जो समबत-धीरगाथात्मक रचनाओं के धम्मयम का फल हो । एकाम स्थल पर बाग्बाण का भी प्रयोग दिखाई देता है जैसे ऊपर अर्हाणीर के सम्मन्ध में “हाय विक जामा” का प्रयोग किया गया है ।^३

दोहे कई छंदियों में लिख गये हैं । प्रधानता लम्ब-निरूपक छंदी की है । कहीं-कहीं धम्मपदेसात्मक^४, धम्मामिध्वंजक^५ धीर करपत्तबी^६ छंदी का प्रयोग दिखाई देता है । उच्चरित्यों के छंदों से शब्द भा भाव प्रकट करने की करपत्तबी कहा जाता है । सम्मबत करपत्तबी में रचे दोहों के साथ उच्चरित्यों से संकेत भी किये जाते थे ।

उद्वेग की के बोड़े ही बोड़े ऐसे होंज जिनकी मलुजा नीरस पदों में की जा कटी है । दोष सब में धर्मकारों का चमत्कार विद्यमान है । अष्टात्मकारों में धनुप्रास, यमक धीर साटागुप्रास तथा अर्थात्मकारों में उपमा रूपक, अर्थात्मरन्यास, निदर्शित, दृष्टान्त धीर अस्तेष का प्रयोग अधिक दिखाई देता है ।

सार यह है कि “उद्वेग रा बुहा” सुन्दर विचारों धम्मीर धनुमधों मनोरम भावों, कोमल कल्पनाओं तथा सरस भाषा से युक्त ऐसी रचना है जिससे हिन्दो नीति काम्य की मौजूदगी हुई है ।

रुद्र-रस-संग्रह—धम्मयंज धम्मवाक्य में हमें उद्वेग की का एक धम्म धम्मामक

१ उद्वेग रा बुहा पृष्ठ ३२४

२ ३. अही, पृष्ठ ८१, ८२, २४१ ३३१८

३ पीछे २०७ पृष्ठ पर सातहों पर-द्विप्लयी द्वारा संकेतित बोहा देखिए ।

इस-निहित काव्य^१ मिना जो कवित्त सर्वथा भूतल्य छप्पय कुंडलिया धारि छन्दों में रचा गया है। काव्य में प्रणालार मर्म मूर्ति-सेवा, तीर्थकर-स्तुति धारि धार्मिक विषयों का बाहुल्य है परन्तु परदारामिगमन-मिन्दा बाल जीवरया मन की गति बित्त का महत्त्व रूप-गुण-संबाध धारि प्रचलित मठिक विषय भी स्पून नहीं है। इस कृति की एक विशेषता यह है कि पद्यों के अन्तर तीर्थक पद्यों रूप में दिशे मये है। ऐसे मयता है मनों उस तीर्थक को समस्या मान कर उसकी पूर्ति की गई हो।

जैसे—
 “पार की ही मारि सेती प्यार ही न करिये” ।
 “एक एक पड़ी जाय साख लाख डबकी की” ॥
 मजिक्तर रचना तो तप्य-निरूपक शैली में है परन्तु कुछ पद्यों में हूँसी ईश को बिलुभाटी बिलुभाटे को धीर मारी माह को सम्बोधित कर कुछ शिखा देती है। “रूप गुण-संबाध” के छह पद्यों में रूप धीर गुण दोनों के महत्त्व का पूषक-पूषक बलून करने के पश्चात् मान कवि के ‘रूप-गुण-संबाध’ के समान ही यह मिष्कर्म दिया मया है कि दोनों के एक स्थान पर होने से ही दोमा-बुद्धि होती है—
 एक स्थानबाल डेर किया होइ जई कवि ।
 त्यों ही रूप गुण दोनों एक तबो है मही ॥^२
 माया राजस्थानी है परन्तु उसमें कड़ी मोती धीर पंजाबी का पुट भी कहीं-कहीं दिखाई देता है। जैसे— ‘मन की गति मारुत से बू बड़ी मन की गति हाब न झाबदी है’^३
 जब्त धीर इसी प्रकार के धत्य पुमिल सर्वथा (८ छपण) छन्द बाने पद्यों को कृति में ‘भूतल्य’ कहा गया है। काव्य में प्रमुप्रास उपमा हेतु धार्मिकबोधित धारि धर्मकारों का जमत्कार तो बिलमाल है परन्तु रागतत्व तथा कल्पना-तत्व की स्पूनता धीर बुद्धितत्व को प्रबानता के कारण कृति सामान्य कृति के काव्य में ही गणनीय है। नबिता इस प्रकार की है—
 (क) पार की ही मारि सेती प्यार कियो राजल नै
 ताही को हवाल देखि मन माहि बरिये ।
 डेर बिल कीबी प्यार सोइ ती बुबार हुबो
 मिले नहीं बोग तो बंवाल माहि पड़ीये ।
 तन बन बेकी नाम ताही की ती हाखी हात,
 डेर ताहि नुं बिनुब एह डीठ परीये ।

१ यह काव्य स्कूली कावी के ४६ पृष्ठों पर लकल किया हुआ है धीर इसमें पद्य संख्या बमस नहीं चलती, प्रम-परिबृति के साथ परिवर्तित होती जाती है।
 २ १ ‘रुद्र बध’, पृष्ठ ३२८-२११

‘उदय’ कहत भीत बार बार कहीं तोहि,

पार की ही नारि सेती प्यार ही न करीवै ॥’

(स) कौड़ी से टिककर भाये ही बौड़त कौड़ी से काम करे सम बौड़ी ।

कौड़ी से कायर सूर सों होबत जातिमो भाये रहै हय बौड़ी ॥

कौड़ी से नृत्य बाजिन बने घब, कौड़ी से राय करे पाग पौड़ी ।

“अन्त” एम कहै सम कौ, भाव सोई बड़ी जाकी गांठि है कौड़ी ॥’

३. जामकवि

पर्याप्त काम तक फलपुर (सिद्धावटी) के नवाब अलफखान तथा जान कवि ने एक ही व्यक्ति समझ जाता रहा परन्तु जब भी अलफखान माहटा को अलफखान की देड़ी और कायम राघों नामक प्राचीन ग्रन्थ अपनी एक साहित्यिक यात्रा में प्राप्त हुए तब यह बात सिद्ध हो गई कि जान कवि का वास्तविक नाम न्यामत खान और वे अलफखान के पुत्र थे । ‘कायम राघों’ में जानने बो-लीन स्वार्थों पर अपना नाम लिखा है और ग्रन्थ के प्रारम्भ में पिता का नाम अलिफ खान—

कहत जान अब बरनिहौ अलिफ खान की बात ।

पिता जानि बड़ि न कहीं, भाखी साखी बात ॥

दूसरे “अलफ खान की देड़ी” में अलफखान के मुखों का बहान इतना प्रतिबंधना है कि कोई व्यक्ति अपने शौर्य का ऐसा बहान नहीं कर सकता ।

‘कायम राघों’ में पहले कायमखानी नवाबों का इतिहास तो संक्षेप में दिया गया है परन्तु अलफखान का अलिखत । अलफखान के पाँच पुत्रों में से न्यामत द्वितीय । न्यामत खान सं० १६७१ से सं० १७२१ तक साहित्य-सर्जन करते रहे और आज हमें उनके ७५ ग्रन्थों के नाम प्राप्त हैं । जान कवि ने इतने अधिक प्रेमास्पानक काम्य लिखे हैं कि कोई कवि इस क्षेत्र में उनकी समता नहीं कर सकता है ।

जान चाणु-कवि थे । कुछ ग्रन्थ इन्होंने केवल बो-झाई पहर में और कुछ बो-लीन दिन में ही लिख डाले । वे घरबी फारसी और संस्कृत भाषा के अन्वेष विद्वान् और इन्हें मुत्तमान होने पर भी अपने चौहान पूर्वजों पर बड़ा अभिमान था ।

१२ वही पृष्ठ, १०१७ २३।२

जान कवि का प्रस्तुत बुत राजस्वाम भारती (भाग १, अंक १ अग्रेत १९४६) में प्रकाशित भी अलफखान माहटा के “कविजान जान और उसके ग्रन्थ” शीर्षक निबन्ध के आधार पर दिया गया है ।

कायम खानी बंद के नून पुरुष करमती चौहान को खीरोबदाह् तुपलक के पदाधिकारी तयब नातिर ने सं० १४४० में मुत्तमान बनाया और उक्तका नाम कायम खान रखा । जान इसी बंदा के पाठवें नवाब थे । (मोतीसत मेनारिया राजस्वामी भाषा और साहित्य ८० २०१)

हस्त-निक्षिप्त काव्य^१ मिसा जो कविता सर्वथा भूमण्डल छव्य कृत्रिमता आदि छत्रों में रचा गया है। काव्य में प्रणालाचार धर्म, श्रुति-सेवा शीर्षकर-स्तुति आदि पापिक विषयों का बाहुस्य है परन्तु परदारभिगमन-निम्ना बाज जीवदया मन की बलि, विल का महत्त्व रूप-गुण-संवाद आदि प्रचलित भैतिक विषय भी म्यून नहीं है। इस श्रुति की एक विद्येयता यह है कि पद्यों के अन्तर शीर्षक पद्योप रूप में रिय मये है। ऐस सगता है मानों उस शीर्षक को समस्या मान कर उसकी पूर्ति की गई हो।
जैसे—

‘पार की ही नारि सेती प्यार ही न करिये’ ।

‘एक एक घड़ी जाय तास तास इकरी की’ ॥

प्रतिकर रचना तो तप्य-निकमक शैली में है परन्तु कुछ पद्यों में हंसी ईस को बिलखारी बिलखारे को धीर मारी नाह को सम्बोधित कर कुछ सिला देती है। ‘रूप गुण-संवाद’ के सह पद्यों में रूप धीर मुख दोनों के महत्त्व का पूषक-पूषक बर्णन करने के पश्चात् जाल कवि के ‘रूप-गुण-संवाद’ के समान ही यह निष्कर्ष दिया गया है कि दोनों के एक स्थान पर होने से ही घोमा-बुद्धि होती है—

एक स्थानवान कर किया होइ उरै कवि ।

र्यों ही रूप मुख दोनों एक समो है मही ॥^२

माया राजस्वामी है परन्तु उसमें बड़ी बोमी धीर पंजाबी का पुट भी कहीं-कहीं दिखाई देता है। जैसे— ‘मन की गति मास्त से चू बड़ी,

मन की गति हाब न भावदी है ॥^३

उन्नत धीर इसी प्रकार के अग्य बुमिस सर्वथा (८ खण्ड) उन्नत नामे पद्यों को श्रुति में ‘भूमण्डल’ कहा गया है। काव्य में अनुप्रास उपमा, हेतु, भक्तिधरोचित आदि धर्मकारों का अमत्कार तो विद्यमान है परन्तु रागतत्व तथा कम्पना-उत्पन्न की म्यूनता धीर बुद्धिधर की प्रधानता के कारण श्रुति सामान्य कोटि के काव्य में ही गणनीय है। कविता इस प्रकार की है—

(क) पार की ही नारि सेती प्यार कियो राबण मे,

ताही को हवाल देसि मन नहि उरिये ।

फेर बिल कीबी प्यार सोइ ती बुवार हुबो,

मिले नही भोग तो बंजाल नहि पड़ीये ।

तन बन नेकी नाम ताही की ती हस्ती होत,

फेर ताई नु बिमुख एह डीक बरीये ।

१ यह काव्य स्तुती कापी के ४६ पृष्ठों पर लक्ष्य किया हुआ है धीर इसमें वच संख्या कम्य नहीं बसती, धर्म-विरुद्धि के वाक्य बरिबलित होती जाती है।

२ ३ ‘स्तुत वच’, पृष्ठ ३२८, ३२९।

‘घरब’ कहत मीत बार बार कहीं तोहि,

पार की ही तारि सेती प्यार ही न करीये ॥^१

(ब) कौड़ी से निकर घामे ही बौधत कौड़ी से काम करे सन बौड़ी ।

कौड़ी से कायर सूर सों होवत, जानिभो घागे रई हन बौड़ी ॥

कौड़ी से नृत्य बाबिब बने घर, कौड़ी से राय करे गान गौड़ी ।

“अरस” एम कहूँ सन की, घाय लोई बड़ी बाकी पठि है कौड़ी ॥^२

८ जानकवि^३

पर्याप्त काल तक फ़तहपुर (देवान्डी) के नबाब असफ़्हा तथा जान कवि को एक ही व्यक्ति समझ जाता रहा परन्तु जब श्री धनराजन्व माहटा को ‘असफ़्हा की पंजी घोर ‘कायम रासो’ नामक प्राचीन ग्रन्थ अपनी एक साहित्यिक बाधा में प्राप्त हुए तब यह बात सिद्ध हो गई कि जान कवि का वास्तविक नाम स्यान्त लॉ का घोर है असफ़्हा के पुत्र थे । कायम रासो’ में जानने दो-तीन स्वार्थों पर ‘कायम नाम’ लिखा है और ग्रन्थ के आरम्भ में पिता का नाम असिफ़ लॉ—

कहत जान अब बरनिहौँ असिफ़ लॉ की बात ।

पिता जानि बड़ि न कहीं, भाखीं साधो बात ॥

दूसरे ‘असफ़ लॉ की वे की’ में असफ़्हा के पुत्रों का बरान इतना स्पष्ट रूप से है कि कोई व्यक्ति अपने धीरे का ऐसा बलुन नहीं कर सकता ।

‘कायम रासो’ में पहले कायमखानी नबाबों का इतिहास तो स्पष्ट में लिखा गया है परन्तु असफ़्हा का उल्लेख नहीं है । असफ़्हा के पाँच पुत्रों में से एक का नाम स्यान्त लॉ सं० १६७१ से सं० १७२१ तक साहित्य-अरस करते रहे और उनके पुत्रों के नाम प्राप्त हैं । जान कवि ने अपने, पंजीब ग्रन्थों में लिखा है कि कोई कवि इस क्षेत्र में उनकी समता नहीं कर सकता है ।

जान घाणु-कवि थे । कुछ ग्रन्थ इन्होंने किबस दो-दो नृत्य में दो-दो नृत्य दो-दो तीन दिन में ही लिख जाते । ये धरती फारसी और संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञान के धोर इन्हें मुसलमान होने पर भी अपने बौद्धिक पूर्वजों का सम्मान करने के लिए

१ २ वही, पृष्ठ, १०७ २३२

३ जान कवि का प्रसूत बृत्त राजस्थान भाषा (अर ३ वीं - १११) में प्रकाशित भी धनराजन्व माहटा के ‘असिफ़ लॉ की बड़ी बरनिहौँ’ ग्रन्थ के आधार पर दिया गया है ।

४ कायम खानी बंध के बृत्त बुरज कायम की बड़ी बरनिहौँ ग्रन्थ में प्रकाशित भी धनराजन्व माहटा के ‘असिफ़ लॉ की बड़ी बरनिहौँ’ ग्रन्थ के आधार पर दिया गया है । जान कवि की बड़ी बरनिहौँ ग्रन्थ में राजस्थानी भाषा और साहित्य के

इनका बंध धार्मिक कट्टरता से रहित या धीरे सुपसिद्ध रूप से मक्त कबयित्री राज इसी बंध की धूपण थी। हमें अपनी साहित्यिक यात्रा में इनके दो मौखिक प्रस्तावित नीति-काम्यों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ-सतबंती सत धीरे सिप्यासामर। 'सतबंती सत' की प्रति धनुष संस्कृत पुस्तकालय^१ बीकानेर, में सुरक्षित है। इस काम्य का रचना-काल सं० १६७० है—

सोएह से अदहतरै तनि सहस हकबीस ।

सतबंती सत जान कबि बीप्यो विहवा बीस ॥^२

उक्त प्रति की प्रतिलिपि सं० १७२६ में महाराजा धनुषसिंह के शासन-काल में, बीकानेर में श्वेताम्बर जैन मोहन ने की थी^३।

'सतबंती सत' एक कथात्मक नीतिकाम्य है जिस की रचना में बोहा-बीगाई शैली का प्रयोग किया गया। डारि बीपाइयों के बाद एक बोहा या धीरठा छन्द प्रयुक्त हुआ है। समय पुस्तक लेखकों पर लिखी हुई है। परन्तु पद्यों के साथ-संख्या नहीं है। कथा-सार इस प्रकार है—हिन्दुत्व में मंसूर नाम का एक सौदागर रहता था जिस की पत्नी का नाम सतबंती था। एक बार जब सेठ मनसूर व्यापारार्थ विदेश गया तब सतबंती उसके विधोय में अत्यन्त व्याकुल रहने लगी। यह देख एक पापी उसे धीरे-धुपुठ करने का प्रयास करने लगा। उसने सतबंती को बहकाने के लिए पतवारण जोगिन मानिन धारि अनेक कुशल सुविधाओं परन्तु सतबंती बटन के समान प्रतिक्रिया रखी। तब वह कामुक मंसूर का रंज-रूप बनाकर सतबंती के पास था पहुँचा परन्तु सतबंती को कुछ सम्बन्ध ही न था। इसलिये वह उससे साथ बातचीत धारि ही करती रही परन्तु रति-दान देने को उद्यत न हुई। इतने में मनसूर भी लौट आया। दोनों समयका पुरुष अज्ञ नहीं। उसी समय एक राजा नहीं था निकसा। राजा ने दोनों को इस प्रश्न का उत्तर लिखने को कहा कि जलका विवाह किस मास में धीरे-बीगाई किस बार को हुआ था। मंसूर धीरे सतबंती के उत्तर तो समान थे परन्तु उस कुप का भिन्न। राजा ने सतबंती मंसूर को धीरे ही धीरे कुप को बीच में फँसी लगावा दी।

साधुनिक दृष्टि से देखने पर कथा-वस्तु की अनेक अटनार्थ अस्वामाधिक सतबंती

१ प्रतिलिपि १३०११३०

२ " " पत्र १३

३ इति की सतबंती सत सम्पूर्ण समाप्त। संवत् १७२६ वर्षे फालगुन मासे शुक्ल पक्षे सप्तमी ७ तिसी बुध दिने लिखत मोहन श्वेताम्बर। बी बी महाराज-विद्यालय महाराजा की धनुषसिंह की विजय राज्य की बीकानेर मध्ये। पृथी पत्र, १३

है, फिर भी नीति की घनेक बात सुन्दर ढंग से कही गई है। कवि रम्य धोर छील के संयोग की प्रशंसा में करता है—

रूपबन्ध जो सत में सहिये, सोना धोर सुपन्ध सु कहिये ।

सत बिज रूपबन्ध जो चाहि इंवरायन फल सो ताठाहि ॥^१

बन पनवारन हूटी सतबन्दी को कुपय पर प्रभूत करना चाहती है। तब सत बन्दी में कहती है—

जो मेरे पीय नाहि संप । तौ काहे कछिहीं प्रभर सुरंय ॥^२

बिरहिणी के लिए प्रभर रंजन के समान मेजांजन भी उचति नहीं है—

जैसे लसि में हैविये परगट लसिन संक ।

तसे पीय बिज जाल कहि, काबर मन कसक ॥^३

दूरी मौजम की अस्थिरता बिखाटी हुई सतबन्दी को पाठिबन्ध से विचलित करने के लिए कहती है—

जोवन रतन अमोल बिजि जालहु फिरि पाइ है ।

करि लौ कोठि कलोल हिलल मिलन खेलन हसन ॥^४

परन्तु सतबन्दी को सम्मार्ग से भ्रष्ट करना असम्भव था। यह बोली—

जो पर पुरुजन लौ भुय जोरै ।

बहु तिय अपनीं जोवन जोरै ॥^५

कथा रोचक है धोर साहित्यिक मापा में लिखी हुई है। ज्ञान कवि के 'श्रीसबन्दी' की कथा, धोर 'कुसबन्दी' की कथा भी लिखी हैं। छीबकों से अनुमान होता है कि ये भी लगभग इही प्रकार की रचनाएँ होंगी परन्तु ये हमारे देखने में नहीं आइ, इस लिए निबन्धयुक्त कुछ कहना कठिन है।

सिध्यासाधर—

यह ज्ञान कवि-द्वय नीति का उत्तम मुखरक अप्रकाशित काव्य है। इसकी हस्त-लिखित प्रुति हमें बीकानेर में अमय बौन ग्रन्थासय में प्राप्त हुई थी।^६ ग्रन्थ का रचना काल कवि ने सं० १९२५ लिखा है—

लोलै से संख्यामरी ग्रन्थ कयो यहु ज्ञान ।

सिध्यासाधर नाम धरि बहु बिज कयो बदान ॥^७

१. २ कही पत्र १ ३

३. ४ कही, पत्र, ३ ४

५. कही, पत्र, ४

६. प्रति संख्या ७३४०. पत्र १—२, पृष्ठ।

७. कही पत्र, २, पृष्ठ २, रोहा २४३—(१।२।२४३)

उक्त प्रति को प० भुवानीदास ने मारवाड़ के रिलीपुर गाँव में सन् १७०६ की काल्पन कल्पना द्वारा की विविध रूपों में लिखा था ।^१

गाँव पर्वों की इस प्रति में कुल २४३ श्लोक हैं जो धरती की व्यभिचारा, पवित्रियों की वास्तविक सेवा, हुराम और हुमान का प्रकाश, सुबचन कोष, जीवन व्यर्थत्व, पुण्येवा आदि-स्वभाव दुष्ट, मूर्ख मन का भेद प्रवेश, रामकृत्य, कर्म धीरफल आदि विषयों पर लिखे गये हैं । ग्रन्थ में व्यावहारिक नीति की प्रवृत्ता है क्योंकि लेखक कोई तन्त्र कहलवा का भुक्ति नहीं है एक प्रवेश का शासक है । उसे अपने-पुत्रे सभी प्रकार के लोगों से वास्ता पड़ता है, इसीलिए जीवन के साफल्यार्थ वह जिन बातों को धारण्यक तथा उपयोगी समझता है उन्हें निरन्तर कोष लिखता है ।

प्रायः मनुष्य जीवन में अपाद-निद्रा में सुप्त रहता है धीर चरमवय में उठते बहुबुद्ध होता है, इस मनुष्य को कवि व्यपनी कमनीय कल्पना द्वारा यों लिखता है—

जीवन निद्रा सोचत रह्यो स्वयं-बाल प्रीतिहार ।

आदि सोल भुपवन भयो सेत केस कविहार ॥^२

सकलों के अनुष्ठान तथा दुष्टकों के वर्जन की प्रेरणा सभी नीति-कवियों के की है परन्तु जिस जीवन से ज्ञान ने काल लिखा है, वह मनुष्य दुर्लभ है—

हरपल में सुव शेषिये, जो नीकी धरि होइ ।

कहि की धार्ये बदन धी कामु कर लपु कोइ ॥

सो नखिन मोके करतु सुभ सुक्य जो होइ ।

एक धीर कित कोबिये, कही बराई कोइ ॥^३

कोष को सभी ने बचवाक धारि कहकर पहले पुर रहने का उपदेश दिया है परन्तु कोष प्राप्त करने का निम्नलिखित व्यावहारिक उपाय जानने ही बताया है—

छाड़ो छु तो बँस है नको जो है लेखि ।

सोदयो छुँ तो करस्ये नै च्यो-नयो रिस कोसैदि ॥^४

बुद्ध-सेवा भारतीय नीति-कवियों के प्रिय विषयों में से है, परन्तु बहुबुद्ध-सेवा धीर बहुबुद्ध-सेवा की प्रकृता इन्हीं की कृति से दिखाई देती है—

बहु सुभ सेवा प्राहि लपु, निवहृत माहि विभाग ।

बहु लपु सेवा प्राहि गुह, नित निवहृत काहि ज्ञान ॥^५

१ इति जो कवि ज्ञान कुल विद्यादाहर संवत् संवत् १७०६ वर्षे काल्पन मादि कुष्ठपत्रे १२ कर्मव्यवस्था लिखितं प० भुवानीदासेन धी रिलीपुरे । (उक्त प्रति की पुस्तक देखें)

२ ३ कही ११११४४ ११११४४-४४

४ ५ कही, २१११६६, ११२१४४

सहज स्वभाव में परिवर्तन सुकर नहीं होता, इस नीति का उल्लेख परम्परागत उपमाओं की सहायता से किया गया है—

मुकता चारो हीबिषे निव रविये भवि ताल ।

काम तऊ कबि जान कहि नाहि न हीत रसाल ॥^१

जो मनुष्य साक्षात्कार होने पर प्रसंशा करता है धीर पीठ पीछे निन्द्या, उसके मुख पर बूझ ही पड़ती है—

सतमुप उरुबल मुख मिस पोठि दिवै प्रपियार ।

बुबिषा तऊत न पारसी, तऊ परत मुप छार ॥^२

अपना रहस्य दूसरों पर प्रकट करना अनुचित है, इस बात का उल्लेख कितनी स्वाभाविकता धीर मर्मस्पर्शिता से करते हैं—

अपने मन को मेरे तु जिन कह्युं सुं माय ।

बह कैंते रायत कुपों ओ तुं सख्यों न राय ॥^३

अपने को बलवान् जानकर निबल को भी धनु बनाना उचित नहीं, इस नीति का समर्पण एक अति सुन्दर उदाहरण द्वारा किया गया है—

अपने बल पर निबल की बुझन कर न मूल ।

ओ प्रमृत हुइ पाँठ में, तो बिपु वाय न मल ॥^४

जैसे कर्म जैसे फल की नीति का जानने मुख व्यक्ति के पात्ररस्य द्वारा यों उल्लेख किया है—

मूर्खि धीरहि देत बुज, रायत सुव धमिलाय ।

ब इन्द्रायन बलि को पायो चाहत बाय ॥^५

एक विषयों के अतिरिक्त कवि ने सांस्तिक होने के कारण इराय-इनाल भक्षण को धीर साधक होने के कारण राजकर्तव्यों को भी अपने [काव्य का विषय बनाया है। यद्यपि इन से पूर्व तथा इनके समय में पर्याप्त संत-काव्य की रचना हो चुकी थी धीर उसमें आति-मूलक महत्त्व का पर्याप्त उल्लेख किया था चुका था फिर भी इनकी कृति में अथका समबल कुछ विशिष्टता लभता है। परन्तु धारण्य की कोई बात नहीं। जिसका जन्म दबयोप से उरुब कुल में हुआ जाता है, वह प्रायः अपनी कुसीनता का मान करता ही है धीर, अतिरिक्त उम्हों के समान बिनका मङ्गल्य अनेका-कय हीन कुलों में हुआ है के जन्ममूलक धर्मियान वा प्रत्याख्यान करें तो क्या विस्मय ।

अपरिमिश्रित दोहों से स्पष्ट है कि प्रायः प्रचलित नैतिक विषयों के उल्लेख में

१ कही २।२।८३, २।२।१०४

२ ४ ५, कही ३।१।१२०, ३।१।१२८, ३।१।१२८॥

पर मुग्ध थे। सम्राट् बरबर के ये प्रसंगक थे, बहौंगोर के दरबार में भी एक बार उपस्थित हुए थे।

“जायो बाबदाह ताथो मेरी लखसीम हूँ”

घोर बाहूबली के साथ तो इन्हें प्रतिबिम्ब ही सत्तरंज खेसती पड़ती थी जिहसे इन्हें कठिनाई से ही मुक्ति मिली।

बनारसीवास का उपरिबिम्बित सक्षिप्त जीवन-मुक्त उनके “धनकमानक” नामक धातुचरित के आधार पर लिखा गया है। दोष जीवन-मुक्त धनी तिमिर-अज्ञान है।

बनारसीवास के पाँच पुस्तकों की रचना की थी—नवरसपद्यावलि, नाटक सपदसार बनारसी बिलास नाममाता और धनकमानक। नाटक सपदसार बाबाई कुम्यकुन्द के प्राकृत-ग्रन्थ “समयसार” का हिन्दी-पद्यों में सत्तम अनुबाह है और जैन साहित्य में धम्मार्थमखिपय का बेजोड़ काम्य है। नाम-भासा “धर्मत्रय क इही नाम के संस्कृत-कोश का पद्यबद्ध अनुबाह है।” “बनारसी-बिलास” में कवि की छोटी-मोटी २७ स्तुत कृतियों का संग्रह है, जिन्हें कवि के निबन्ध के परबत् १० जगजीवन राम ने १७७१ वि० में संवृष्ट किया था।^१ इस संग्रह के धर्मिकतर ग्रन्थ तो जैन विद्वान्‌गों और धार्मार्थिक विपनों पर ही रहे गये हैं परन्तु निम्नलिखित की गणना नीतिकाम्य में करना उचित है—

(१) तेरह काठिया (२) नवरत्न कविता, (३) बँद्यादि के भेष (४) आस्ताधिक फुटकर कविता। इनके प्रतिरिक्त इन की एक अनुबादतमक सुन्दर नीतिकृति ‘जाया सुनितमुक्तबासी’ भी है। जिसका परिचय ध्याये दिया जायगा।

१. तेरह काठिया

पुत्रराज में बटमारों को ‘काठिया’ या ‘काठिया बोर’ कहते हैं। इस पुस्तिका में मावज-जीवन को छूट कैने जाने तेरह नीतिक दुर्गुणों को काठिया कहा गया है और उनके सावधान रहने की प्रेरणा की गई है। कुल पद्य-सङ्गा सप्तह है। धारम्भ में तीन तथा अन्त में एक दोहा है और मध्य में १३ चौपई छन्द हैं। कृति की रचना व्याख्यात्मक शैली में की गई है। पहले एक दोहे में तेरह काठियों के नाम पिका दिये गए हैं और अन्तर एक-एक चौपई में उनके स्वल्प तथा तन्वित हाणियों का उल्लेख है—

१. सप्तहरी एकोत्तर, समय अत्र तित पाठ।

द्वितीया में गुरज नई, बहु बनारसी जाय। बही, पृ. २४

२. बनारसी बिलास : पृष्ठ १२७—२९

भूमा धामस्य घोष भय क्रुपया कौतुक कोह ।
 रूपलबुद्धि प्रज्ञानता भ्रम निद्रा मय मोह ॥
 प्रथम काठिया भूमा जाल, जामें पंच वस्तु की हान ।
 प्रमुता हट्टे बडे शुभ कम मिटे सुखस बिनसै धन धर्म ॥
 द्वितीय काठिया प्राप्तसभाज जासु जई नाथी बिबसाव ।
 बाहिर सिपिस होहू सब धन, अंतर बमबासना भग ॥
 रूपल बुद्धि अन्धम बटमार जामें प्रपट लोभ अविहार ।
 लोभ माहू ममता परकाश ममता करे धर्म को नाश ।^१

पुस्तक बार्मिक लोगों के प्रात्यहिक पाठ के लिए वा उपयोगी है परन्तु बार्मिक
 की दृष्टि से रस-शून्य ।

२ नवरत्न कवित्त

पुष्करलोक महाराज विक्रमादित्य से सम्बन्धित प्रत्येक कथाएँ भारत भर में
 सोलकठ कही-सुनी जाती हैं । कहते हैं, उनकी समा बन्धनरि धारि भी पंडित-रत्नों
 से सुशोभित थी । इसी प्रकार इस पुस्तिका में भी कवित्त-रत्न हैं । पुराने दिनों में
 छप्पय छन्द को कवित्त कहा जाता था इसी कारण कुछ हस्तलिखित प्रतिभों में इसी
 छति का नाम 'नवरत्नपदपत्रानि' मिलता है । पुस्तिका के प्रारम्भ में दो दोहे हैं
 और तदनन्तर भी छप्पय छन्द । पुस्तिका व्याख्यानक शैली में उपनिबद्ध है । प्रथम दोहे
 में विक्रम के नव रत्नों का नामोस्तेष है और दूसरे में प्रत्येक छप्पय के प्रारम्भिक पद
 का । इस शैली से मूसग्रन्थ की स्वरूप रक्षा में सहायता मिलती है किसी परवर्ती कवि
 को उसमें कमी बेसी करने का साह्य नहीं हो सकता । विषय और कवित्त दोनों
 दृष्टियों से पुस्तक इसी बर्गिया है कि छति को प्राच्य उद्भूत करने को बित चाहता
 है परन्तु प्रबन्ध के कलेवर का ध्यान रखते हुए दो बार पदों से ही संकुट्ट होना
 पड़ता है—

धम्बन्तरि छपणक धमर घट अर्पट बेतास ।
 बर कवि शंभु बराहमिहि (२) कासिबात नव सास ॥^२
 विमलबित्त जाबक गिपिल मूड तबस्वी प्राप्त ।
 रूपलबुद्धि तियनरपति ज्ञानबंत नव जात ॥^३

संसार म किंच कैंसे बगोभूत करना चाहिये, इस नीति का उल्लेख यों हि ६
 पया है—

१ बनारसी बिनास पृष्ठ १३८ पद्य १४३, ११

२ बनारसी बिनास पृष्ठ १०१—१०६

३, ४ बनारसी बिनास मधयन-कवित्त पद्य १, २

(क) वेद विद्याय पढ़ें वे तुमुया, वे मोसनी वे पाँडे ।
 वेगिर-वेगिर नाम धराये, एक मरिया के माँड ॥^१
 इनके पुस्तक बाँचिये, बेहू पढ़ें किये ।
 एक पस्तु के नाम हय, जैसे "शोभा, खेब" ॥^२ (बनारसीदास)।
 ऐसे प्रतीत होता है कि बनारसीदास जी ने समय-समय पर नीति तथा धर्म के
 विषय पर जो पुस्तकें दोहे रचे वे उन्हें इस पुस्तिका में सम्प्रहीत कर दिया गया है ।
 नबाल-कवित्त" में तो कवि ने लिखा है—
 "गुरुपति संदम विपुल बन ॥^३

परन्तु इसमें लिखते हैं—

माया धाय एक है घटे बड़ दिन माहि ।
 इनको संयत से लगे तिनहि कही सुख माहि ॥^४

पुस्तक के अधिकतर दोहे सन्तों की साहित्यों की संज्ञा में लिखे गये हैं । प्रायः
 एक दोहे में एक ही नैतिक तथ्य का प्रतिपादन है और उसका समुचित दृष्टान्त द्वारा
 समर्पण । जैसे—

ज्ञानहीन करली करे, योनिब मक घामौर ।
 क्यों घेरी निब करहि से पुरी भिकासि खोर ॥^५

एकान दोहे से तो इनके सामान्य वैदिक ज्ञान का भी परिचय मिलता है—
 राब खडि सुख मोयबे ऐसे मूढ़ अज्ञान ।
 महा सन्निपाती काहि जैसे धरबत पान ॥^६

अनेक दोहे विपुल नीति के हैं । जैसे—
 कामी तन संदम करे, दुष्ट यहै अधिकार ।
 कारकाल मारहि पिता बसति हने नरतार ॥^७

अचित्त बसन सुबचित बसन सनिन पान सुख संब ।
 बड़ी भीति तपु नीति सों होय सजन को भँन ॥^८
 पुस्तक में नीति और उपदेश की बातें पर्याप्त हैं, माया में भी कहीं-कहीं
 यमक धनुप्रास आदि का सुन्दर प्रयोग है । परन्तु दुर्दिशत्व की बहुलता और
 कल्पना तथा राबतत्व की म्युमता के कारण इसे सत्काम्य कहने में संकोच ही होता है ।

४ प्रास्ताविक पृष्ठकर कविता

केवल २२ पद्यों की इस पुस्तिका में नीति धर्म अध्यात्म जन-सिद्धान्त सब

१. कलतुषातार पृष्ठ ११०
 २. बनारसी विद्यास पृष्ठ २०५, १७५, २०५, २०५, २०५, २०५
 ३. बनारसी विद्यास पृष्ठ २०५, ११, २५
 ४. बनारसी विद्यास में पृष्ठ १२१-१०२ पर मुद्रित

विभिन्न हैं परन्तु नीति के पदों की प्रचुरता है यद्यपि हमने इसका परिचय नहीं देना समीचीन समझा है। कामिनी और कांचन का त्याग जीवहत्या और घाबेट का निषेध, जूया परधनहरण मांस भक्षण और सुरापान का विरोध पाप-दृष्टि से परमारी को देखना, परनिम्बा शिवाय के जमी और डोंगी मुनि कर्मपाश के भंग होने पर जयत-वास से मोक्ष त्याग्य व्यवसाय विभिन्न व्यवसायों में दारोद की बधा जोरहू बिछाएँ तथा छोटी छोटी बातियों का बर्णन है। पुस्तिका में १ मनहरण १ मत्तयवन्द, १ छप्पय, ५-जोहे और १ वस्तु छन्द प्रयुक्त हुआ। जोहे वम और अघ्यात्मक विषयक हैं। नीति के लिए मनहर, मत्तयवम और छप्पय छन्द प्रयुक्त हुए हैं। अधिकतर कवित्त सवैये तो अन्धे घरस हैं परन्तु कुछ एक में वस्तुओं के नाम भर विना दिये गये हैं दोनों का एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

जोब के बघया बामबिद्या के सधया बाम-
नन के बर्बया बन 'घाबेटछ करमी ।
जुयारी लबार परपन के हरनहार,
जोरी के करनहार बारी क घारमी ।
मांस के मर्घया सुरापान के बजया
परबबूके लर्घया जिनके हिय न भरमी ।
रोप के मर्हया पर-बोप के कर्हया पते,
पापी नर नाब निरबे महा अचरमी ॥^१

छत्तीस पुवनियाँ (नेमी)

भीसगर बरबो सबोली गबाल ग्वाल,
बईई संमतरात सेली घोबो पुनियाँ ।
कंबाई कहार काधी कुलास कसाल भाती,
कुंदीगर कापबी हिसाल बट बुनियाँ ।
बितेरा बिघेरा बारी सधेरा छठरा राज,
पटुया अवरबंय नाई भार-मुनियाँ ।
सुनार सोहार सिक्लीगर हर्बाईयर
जोबर अमार एहो छत्तीस पबुनियाँ ॥^२

रस भाव रहित होने पर भी यह कवि के भाषाधिकार और शब्द विन्यास के पाठक का अस्वभाविक प्रयाण है। संभवतः ऐसे पदों की रचना कवि ने इस कारण की है कि सांगतिक व्यवहारों पर सोप पोष्यवध का भरण-पोषण भूल न जाएँ। संस्कृत के

१ बनारसी विज्ञान में प्रास्ताविक कुटुंबर कविता पृष्ठ १६७।५

२ बनारसी विज्ञान में प्रास्ताविक कुटुंबर कविता पृष्ठ, २०१।१३

दर्शा में मनुष्य की सामान्य भावु सी वर्ष धीरे पूर्णतः एक ही बीस वर्ष अभिहित है परन्तु बनारसीदास जी ने एक ही दस वर्ष मान कर प्रत्येक दसक की एक-एक विधि पदा की धीरे मनुष्य का ध्यान, सम्भवतः उसे सावधान रखने के लिए, इस प्रकार कीया है—

बालक पदा की मरबाह दस बरस लो
 बीस लो बड़ि लो लो लुसुपि रही है ।
 बालिक लो बनुदाई पचास लो पूतताई
 साठ लय लीजन की इष्टि सहतही है ।
 लर लो बबल घसी लो पुकरब निष्प,
 लवे लन इम्दिन की बलि घनही है ।
 ली ली लल बेत एक लो बजोसर लो प्राय,
 काउप जनम लकी पूरी बिति कही है ॥^१

समीक्षा—

बनारसीदास के चर्चों के कारिणिकित दिग्दर्शन से विहित होता है कि वैदिक नीति के लोम में उन्हीने धरीरिण पुष्टि स्वास्थ्य बीर्बापुष्ट्य धारि पर कीई बन लही दिया । कारण स्पष्ट है कि अम्मासी मनुष्यों की इष्टि में धरीर विवेक महत्त्व लही रखता । वे स्वर्न विद्वान् के घट लके नीति-शास्त्र में विद्या की विशेष प्रबंसा तथा लनेक विद्याधो की परिमलना उपलब्ध होती है । इनका सर्वाधिक बल ली निरुभवा, धार्मिा, धीर, धपरिग्रह लय धर्मेध, लभता धारि गुणो पर ही है ।

पारिबारिक नीति के लोम में उन्हीने ने युवती को प्रेय से धर्मेन करने का तथा कुलीन ललना के लिए बन्वाधीन होने को प्रलय कही है परन्तु धार्मिक्य बीजन का विशेष महत्त्व प्रतिपादित लही किया । कारण यह कि धरिबार मोक्षलार्थ में प्राय विष्ण-स्म-ला सिद्ध होता धीरे बूढरे बालबिबाहो तथा बिलाध-मय बीजन के कटुधो के के स्वयं ली मुक्ततोपी के । बंधन-कानिनी के लय स्वयं का लारेठ उन्हीने इस प्रकार दिया है—

१ बनारसी बिलाल में प्रास्ताविक पूढकर कविता ५० २००१२३

२. ३ बनारसी बिलाल, वृष्ट १७०१३ १७३।१०

४ अणपोड-अर्वावापजाप्तः पंचबिततिषु ।

यद्यप्यत्ने बुमान् नमं कुतिस्य ल विनलते ॥

बाढी बा न धिरं बीवेद् बीवेद् वा बुधेनेन्द्रिय ।

लस्माधयतबालायां धर्माधार्म न कारयेत् ॥

(अण्वर्त्तः सुधुठ, धरीर स्वात, ल० १०।४७ ४८)

कंचन भंडार पाय रंच न मगत हूँ,
 पाय नवयोचना न हूँ ओवनारसी ।
 कात अक्षिपारा जिन जगत बनाए सोई
 कादिनी कनक मुत्र कुहुँ को बनारसी ।
 बोक विनाशी सरीबतू है अदिनाशी बीब,
 या जगत-रूप बोच ये ही ओवनारसी ।
 इनको तू संम त्याग रूप सों निकसि भाय
 प्राणी मेरे कहे साग कहत 'बनारसी' ।^१

तत्कालीन समाज में हिन्दू मुसलमान बौद्ध, जैन ब्राह्मण सूत्र आदि अनेक जातियों में परस्पर अपेक्षित प्रीति न थी । बनारसी बास-से अम्मास्वी नमि की हृष्टि में इस बौद्ध का उदकना स्वामाधिक था । अतएव उन्होंने सम्य कवियों के समान, सब में एक ही 'राम' का निवास प्रतिपादित कर सबको परस्पर स्नेही बनाने का सद्बोध किया—

तितको द्विबिधा लखें, जे रग बिरवी चाम ।

मेरे नैनन देखिए, घट बड अमर राम ॥^२

इन्होंने "गुरुपति मंडल विपुल बन"^३ लिखकर सफल मार्हस्य के लिए बन का महत्त्व तो स्वीकृत किया है परन्तु—

कंचन भंडार पाये रच न मगत हूँ ।^४

कह कर उसमें घासक्ति का निषेध भी किया है । इस विषय में उनकी नीति बौद्ध सहिषासों-सी ही प्रतीत होती है जिनमें "तिम त्यक्तेन भुञ्जीषा मा गृध्र-कस्य स्वियदनम्"^५ का सुबर्णमय उपदेश देकने में घाता है । इनके काम्य में कृपणता से यश का नाश कुम्भसर्पों में बन-भ्यम की निम्ता तथा दारिद्र्यव्रम्य संमान-भय का भी उल्लेख किया गया है^६ । चूँकि बनारसीबास एक व्यापारी धार्मिक गुरुत्व से घट-इनके नीतिकाम्य में संपत्ति के महत्त्व, उपयोगिता तथा वास्तविक स्वरूप का यथार्थ प्रतिपादन स्वामाधिक ही है ।

बीब दिया जैन धर्म तथा नीति का अत्यन्त प्रिय विषय है । वस्तुतः सम्य संस्कृत मानव पर प्राणों को भी सब प्राणों के समान ही मूल्यवान् समझते हैं परन्तु जैन नीतिकारों में तो यह दया करम सोमा ठक पहुँच जाती है । बनारसीबास उन व्यवहारों से ही दूर रहने का आदेश नहीं देते जिनमें प्राणि-हत्या की सम्नायना

१ बनारसी बिलास पृष्ठ १६७।४

२ ४ बनारसी बिलास पृष्ठ २०४।१० १७६।१० १६७।४ ॥

३ यजुर्वेद अथ्याय ४०।१ ॥

४ बनारसी बिलास पृष्ठ १७६।७

हो वरन् हिंसक बीबों की हत्या का भी नियम करते हैं। हाँ इतना धरम्य कहा है कि उनका पोषण न करना चाहिए—

बान यान मिष्टान मोम मारक नबनिजे ।
नबख हिमु इत तम बुनिज कारल नहि लिख ॥

पशुनाड़ा पशु बलिज धरम बिजय न करिख ।
अहाँ निरस्तर धरमि करम सो बलिज न किजै ॥

मनु नील नाथ बिय बलिज तज, रूप उलाव न सोधिए ।
तहिए न धरम नूह बास बस, हिंसक जीव न पोधिए ॥^१

बनारसी बास की दृष्टि में सांसारिक जीवन दुःखमय है इसके मुख स्वप्नवत् मूठे हैं, इसमें भी मानव-जीवन तो अपसा-विनाश के समान क्षणिक है पर इतमें धरम व होना ही सच्ची नीति है ।

जा में सदा उतपात रोपन सो धीरै नात,
कीजे बहु बाप सो नरक दुख जिम्ता व्याप,
रगु न बपाय दिन-दिन धामु खचनो ।
धरम-कलाप में बिनाप ताप तपनो ।

जा में बलिज को बिपाव मिथ्या बकबाद
दिवेभोग मुख को लबाव बीसो सपनो ।
ऐसो है अगत वास बीसो अपला बिनास,
ता में तु मपन मयौ रपाव धर्म धरमो ॥^२

इस प्रकार हम देखते हैं कि बनारसीबास मानवीय व्यक्तित्व के विकास से सम्बन्धित नीति पर पर्याप्त बल देते हैं परन्तु पारिवारिक, धार्मिक तथा सामाजिक नीति के क्षेत्र में उस उत्साह का अभाव है जो वैदिक तथा संस्कृत नीति-काम्य में बिकारी देता है ।

यद्यपि बनारसीबास के नीतिकाम्य में पर्याप्त मौलिकता है तथापि एकाध स्वप्न पर तो उन्होंने मनु हरि के नीति-सूक्त का अनुवाद भी कर दिया है ।^३ जैसे,

मनु हरि के निम्नवर्ती पद्य—

नोबहकैरमुलेन कि विमुचता यद्यस्ति कि पस्तयोः
स्वयं चेतपसा च कि शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।
धौजम्यं यदि कि निज स्वमहिमा यद्यस्ति कि संज्ञै-
सद्विद्या यदि कि अनेरपयसो यद्यस्ति कि मृत्युना ॥^३

१ बनारसी बिनास पृष्ठ २२१।१

२ बनारसी बिनास पृष्ठ २२१।२

३ अथकवचन, पृष्ठ २१।४

का सङ्घन प्रनुवाह बनारसीनास के प्रयोर्वा कवित्त में देखा जा सक्ता है—
लोकवस्तु मानुष जो श्रीगुण धनस्त ता में,

जाके हिये दुष्टता सो पापी नरपात है ।

जा के मुख सरन बानी सोई तप को निधानी,

जा की मनसा पवित्र सो तोरप पात है ।

जा में सज्जन की रीति ताकी सब ही सो प्रीति,

जा को मली महिमा सो भामरणवान है ।

जा में है सुविद्या सिद्धि ताही के घट्ट रिद्धि,

जाको अपबस सो तो मृतक समान है ।^१

बनारसीदास के काम्य में रसों का विशेष परिचार तो दिखाई नहीं देता, परन्तु निबेद विबोध, रया, दोषार्थ भक्ति अज्ञा, मन्त्रता आदि भावों की अच्छी व्यवस्था हुई है ।

कवि का प्रत्येक पद्य उनके मापाधिकार तथा सुन्दर शब्दचयन का समर्थक है । उन्होंने सर्वत्र ही परिष्कृत और समर्थ भाषा का व्यवहार किया है जिसमें संस्कृत के उत्तम शब्द पर्याप्त प्रयुक्त हुए हैं । सोकोवित्त्यों तथा मुहावरों का प्रायः प्रयोग है । फारसी आदि के भी इलाज फरमाने मुसस्ता साहित्य तहकीक आत्मि आदि कुछ शब्दों का प्रयोग किया गया है । एकाम स्थल पर तो संस्कृत और फारसी के मिश्रण से मन्त्राब्द-निर्माण कर लिया गया है जैसे—

बुधारी लबार पर-यन के हरनहार ।

बोरी के करनहार बारी के अररमी ॥^२

ये "अररमी" शब्द संस्कृत के (अर) तथा फारसी "अमी" के संयोग से निर्मित है ।

बनारसीदास का नीतिकाम्य केवल मुक्तक रूप में प्राप्त होता है । उसमें अधिकतर प्रयोग तो तथ्यनिरूपक शैली का किया गया है परन्तु अपदेष्टात्मक^३, व्याख्यात्मक^४ और सकारणक^५ शैली भी नहीं-नहीं दिखाई देती है । पद्यों में यद्यपि दोहा चौपाई, चौनई, बस्तु उपमय मनहर मतमयद आदि कई छन्द प्रयुक्त हुए हैं परन्तु कवित्त अधिकतर अमका उपमय मनहर और मतमयद में है । इन्होंने नीति के दो-चार पद भी लिखे हैं, जिनमें इनका स्वर अपनी प्रायिक मङ्गुता छोड़ कर कुछ कर्कश हो गया है, परन्तु वह कर्कशता भी उस स्नेही पिता की सी है जो पपभ्रष्ट होते हुए मुँह को देख कुछ क्षुब्ध हो उठता है—

१ बनारसी विज्ञान, पृष्ठ, १६०।१

२ ५ " " " १६०।५, १६०।६, १६०।७ १२ २००।१६,

भौंड़ु माई ! प्रभु क प्रभु यह मेरा ।
 जो तु देखे इन घाँवों में तो तामें कपू न तेरा, भौंड़ु० ।
 ए घाँवें भ्रम ही घाँवें, भ्रम ही के रस पावों ।
 बहूँ बहूँ भ्रम तहूँ-तहूँ इनको भ्रम तू इन ही को रापी भौंड़ु॥^१

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसीदास जी के सम्बन्ध में जिन पाँच शैलियों—कल्प-यज्ञति नीतयज्ञति कवित्त-सबमा-यज्ञति, बोहा-यज्ञति—का सम्मेलन किया था वे सभी बनारसीदास ने भी प्रयुक्त की हैं ।

कवि ने अपनी कृतियों में प्रसंगों का प्रयोग सुसज्जित किया है । अन्तर्गतों में बीष्मा^२ अनुप्रास यमक पाशान्तयमक^३ तथा अर्थसंकारों में अपना इष्टान्त रूपक अर्थात् अन्वयार्थ शीघ्र, समुच्चय और निश्चित अर्थकार विशेष उल्लेख हैं । जैसे—

- (क) जो हरि घट में हरि लपे हरि घाता हरि बोध ।
 हरि धिल हरि सुमरन कर, बिमल बंधुख सोइ ॥^४
 (अनुप्रास यमक)
- (ख) ऐसी है जगतबास बसी अन्ता-बिमात ॥^५ (उपमा)
- (ग) जो मन भूसे प्राणो साहिव के बर होय ।
 जान मुत्सना यह जिने मुसलमान है सोय ॥^६ (निश्चित)
- (घ) धीरज तात जमा बननी परमारय पीत महाबलि मासी ।
 जान सुभ्रुता कबला मति पुत्रबभू समता धतिभासी ॥
 प्रथम बात विवेक सहीबर बुद्धि कनक सुमोदय शसो ।
 पाव बुदुन्व सरा जिनके हिय धौ मुनि को कहिये गृहबासी ॥^७
 (संघ कथक)

बनारसीदास के नीतिकाम्य में प्रसाद और माधुर्य तो प्रचुर हैं परन्तु योज की कमी है ।

सब धिया कर कह सकये हैं कि इस कवि का परिवर्तित नीतिकाम्य शक्तों के नीतिकाम्य के समान है । वह व्यक्तियों को कुछ पवित्र, चमत्कृत बनाता चाहता है, समाज में सुख-शान्ति की स्थापना का इच्छुक है प्राणुमान के प्रति क्या मानना के प्रचार का आकांक्षी है । परन्तु जीवन और परिवार को भूटा तथा ससार को

१ २३५१८

२ रामचन्द्र शुक्ल: हि० सा० ४० २००६ वि० पृष्ठ १३३ १३४

३ बनारसी बिलास पृष्ठ २०५१०

४ प्रस्तुत प्रबन्ध के पृ० २५२ पर "कंचन मण्डार" आदि पद्य देखिये ।

५ व बनारसी बिलास, पृष्ठ २०५४ १६६६, २०५३, १६५७

निस्सार बताने के कारण मानव में घाटा उत्साह शोरता पराक्रम, सपर्यं सक्रिय प्राणि सत्यम करने का दान नहीं करता। फिर भी सामान्य सत्तों के काम्यों से वह भावा छत्र परलंकार, गुण प्राणि की दृष्टि से कहीं ऊँचा है। हिन्दी नीतिकाम्य बनारसीबास का विशेष धामापी रहेगा।

१० सुन्दरदास

दादू जी के शिष्य सुन्दरदास जी (जन्म संवत् १६५१) केवल सन्त नहीं थे सत्प्रति भी थे। बचपन में ही दादू जी का शिष्यत्व प्रतीकृत कर ये बाराणसी चले गये थे और वहाँ समय-समय पर तर्क वेदान्त, साहित्य प्राणि विषयों का गम्भीर अध्यायन करते रहे। यही कारण है कि इनकी कविता प्रतिक्रम सत्तों के समान तुल्य-बन्दी मात्र नहीं है सरस और साहित्यिक है। इन के ग्रन्थों की संख्या ४० के समयग है जिनमें समस्त पद्य-संख्या ३७८७ है।^१

यों तो इनके ग्रन्थों में योग-साधना, वेदान्त और नीति का समिश्रण है परन्तु पंचेन्द्रिय-चरित, धर्मसुतोपदेश सतसुख महिमा नीसानी भ्रमविध्वंस श्रष्टक गृह शेराम शोक, तर्क चिन्ताशनी सबैया (सुन्दर विनास) और साधो में नीति-काम्य बहुत प्राणि है।

“पंचेन्द्रिय चरित” में पाँचो शानेन्द्रियों की उल्लेखसता से शब्द कट्टों का पाँच कपाशों में उल्लेख है। प्रत्येक इन्द्रिय का प्रतिनिधित्व वह पशु या पक्षी करता है जिसमें उस इन्द्रिय का प्राबल्य देखा जाता है। इस प्रकार गज, भ्रमर मीन पतंग और मृग, लक्ष्मी, प्राण रसना शेष और श्रमलेंद्रिय की प्रबलता के कारण कण्ड पाते और गण्ट हो जाते हैं। प्रायः कपाशें चंपक^२ छन्द में हैं बीच-बीच में बोहा भी व्यवहृत हुआ है। निदर्शनार्थ एक कपा का कुछ संशय प्रवृथत किया जाता है—

गज चरित । शम्पक छन्द

गज शीघ्रत अपने रंगा, बन में नरमल शर्मणा ।
इक मनुष्य तहाँ कोउ प्राणा तिहि शृङ्खर देख न पावा ॥
तब कही नुबति सी आई इक गज बन शीघ्र रहाई ।
जो ले प्राये गज आई, वही तब बहुत बपाई ॥
तब बुद्धि विधाता शीघ्री, कायश की हजनी कीनी ।
तहाँ शब्दक कीना आई, पतरे लुख शीघ्र एपाई ॥
हजनी को शेष स्वक्या सठ प्राय परपो श्रंय क्पा ।

१ सं० श्यामसुन्दर बास, ‘सुन्दरदास’ (भा प्र० त० काशी, १९१८ ई) पृष्ठीका पृ० ३

२ १४ भात्राशों का सद्यो “छन्द” ।

बोधा

काम दिया कुछ बहुत ही कम लजि बंध्या धाम ।

गज बपुरे की को नही, बिस्व नथामा काम^१ ॥

इसी प्रकार भ्रमर, मीमं मृग धारि के बरिओं के बस्नेक के परचास् समाहार में इन्द्रियों के बन्धीकरण का उपदेश दिया है—

यस धरि मीमं पर्यय मृग, इक-इक बोव विनास ।

बाके लन पंखों बने, ताकी बंधी धाम ॥^२

पंखों बिनहु ब कोरिया, बहुते करहि कपाइ ।

सर्व सिद्ध बस बसि करे, इन्द्रिय यही न काइ ॥^३

“अद्भुत उपदेश” १७ बोहों का एक छोटा-सा कवच-काम्य है जिसका विषय मन और इन्द्रियों का विग्रह है । परमारमा का पुत्र धारमा है, धारमा का पुत्र मन । मन के पाँच कृपुब पाँच इन्द्रिय हैं जो स्व-स्व विषयों में पड़ कर मुच-मुच खो बैठे हैं । धारमा में वे अद्भुत के बल्ल सं विषय-स्त्री स्त्रियों के बाल से बच जाते हैं ।

‘सबुध महिमा नासानी’ का विषय नाम से ही स्पष्ट है । इसमें २० मोतानी छन्दों में गुरु के उपकारों का बड़े-बड़े अष्टापूर्वक तथा अलंकृत खेची में किया गया है । जैसे—

रजि क्यों भयद प्रकाश में, जिन तिमिर मिटाया ।

कसि क्यों भीतल है सब, रस अनुस विनाया ॥

धरि मन्मोर समुद्र क्यों तरवर कपी छाया ।

बाकी बरिये मेम क्यों, धामन बड़ाया ॥^४

“अभविर्भाव अष्टक” में आठ विर्मनी छन्द हैं । पुस्तक का आरम्भ दो बोहों से तथा मनसाव बो छप्पयों से होता है । इसमें मठ-मठान्तरों में प्रचलित बाह्या उम्बरों का बर्णन है । पाठों विर्मनी छन्दों का अनुर्ण करण समान ही है और उसमें बाहु-प्रवत शान-शान द्वारा अमनास का बस्नेक है । जैसे—

छो भयत न जाई कूरि बनावे तीरन जाई किरि धाई ।

जो कृतन नाई पुत्रा नाई कइ दिवावे बहिकार्वे ॥

धरि माला नाई तिलक बनावे क्या पाये मुच धिन रीता ।

बाहु का बैता भरन पयोता मुन्दर ग्यारा ह्य वेता ॥^५

१ सुन्दर साह, पृष्ठ ११-११

२ ई सुन्दरसाह पृष्ठ १०११, ७२१११

३ भाषा १३; १३, १० पर धरि, धारमा में मुच, नासावतर इन्द्रिय ।

४ ई सुन्दरसाह, पृष्ठ ८२१६ १० पृष्ठ ८२-८३

“बेराग बोध” में गृही और बँरामी का रोचक संवाद है । गृही माहस्य्य जीवन के गुणों तथा बिरक्त जीवन के दोषों का बर्णन करता है और बँरामी इसके विपरीत । गृहस्थ अपने पक्ष की पृष्टि में जनक बसिष्ठ आदि के उदाहरण प्रस्तुत करता है और बिरक्त ऋषभ देव भरत आदि के । छन्द में श्लोकों में समझौता हो जाता है कि कोई बड़ा-छोटा नहीं दोनों बड़े के कार्यों की भाँति समान हैं । गृहस्थ की सहायता से ही बिरक्त का निर्वाह होता है और बिरक्त के उपदेश से ही गृहस्थ का उद्धार । पुस्तक में कुल २४ श्लोक^१ छन्द हैं । बानयो इत्यस्य है—

गृही कहे बु जिवा मृपननी, कदि केहरि गज जासा बु ।
 घरर पान त्रिन कीयो माहीं तिनक भाग न भासा बु ॥
 बरायो कहे हाइ काम सब नगन भरकत पानी बु ।
 मग्गा मेर उबर में बिच्छा तही न मुँन शानो बु ॥
 बिरक्त धर्म रहे बु गृही तें गृही को बिरक्त रंता बु ।
 क्यों बन कर तिय की रसा तिय मुजगहि उबारें बु ॥^२

‘तर्क विज्ञावनी’ १६ श्लोकों का छोटा-सा काव्य है जिसमें मनुष्य के जन्म, बचपन, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़ता, बुद्धत्व और मृत्यु का क्रमशा संक्षिप्त बर्णन है । ग्रन्थ के अन्त्य में पवित्र जीवन सत्कर्म सत्संग प्रभुमन्त्रित बँराम्य आदि की प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं । प्रत्येक श्लोक के अन्त में चरणों में पाठक को चेतावनी दी गई है । जैसे—

बहुरि कुमार घरक्या घाई, ताहू माँहि नही मुधि काई ।
 पाइ पैलि हँसि रोइ गुहारी घरया मनुपहुँ बुझि तुम्हारी ॥
 भयो किछोर काम सब जाग्यो परदारा की निरपन लाग्यो ।
 व्याह करन को मन मोहि पारो भइया मनुपहुँ बुझि तुम्हारी ॥
 कण्ठ न कियो सायु की संया त्रिन के मिसे सय हरिरंगा ।
 कसान्ध तत्रि बनयो पारी घरया मनुपहुँ बुझि तुम्हारी ॥^३

विशेष विज्ञावनी नामक ४० श्लोकों के समुदाय में निबन्ध की निश्चितता, निम्न-काव्य की प्रतिबिम्बिता आदि का उल्लेख करते हुए विशेषगुण जीवन व्यतीत करने का उद्देश्य है । प्रत्येक श्लोक का अन्तिम चरण ‘समुझि देखि निरबै करि मरना’ है । जैसे—

- १ श्लोक के द्वितीय प्रकार में बिलम चरणों में १६ सममें १४ मात्राएँ होती हैं ।
 (बही पृष्ठ ११४ पाठ्यपुस्तकी)
 २ सप्त मुपासार अष्ट २, पृष्ठ ५६८-६९
 ३ मुम्बरतार, पृष्ठ ११७।४ ५, पृष्ठ १२०।४९

वेद पुराण कहीं समुन्माद बसा करे सु लता पाये ।
 तार्ते वैदिक-वैदिक पय धरना समन्धिकेति निदय कर मरना ॥^१

उपर्युक्त शब्दों में नीति की प्रकृता होते हुए भी काम्यत्व अधिक है । वस्तुतः काम्यत्व की दृष्टि से "सर्वथा" ही सुन्दरदास का, सुन्दरतम ग्रन्थ है । इसमें साम्प्रतिक विषयों के साथ साथ व्यावहारिक विषयों का भी सरस प्रतिपादन हुआ है । विवेकपूर्ण मधुर वाणी का प्रयोग ही प्रचलित है, अर्थ-अर्थ बोझों से तो मौन ही बसा—

काक धर रसम अनुक जब बोधत है,
 तिनके तो बचन सुहात कहि कोन को ।
 कोकिला ऊसारी पुनि सुबा जब बोधत है,
 सब कोऊ कान से सुनत रब रौन को ।
 लखी तें सुबचन विवेक करि बोधियत,
 यों ही धरक बोल बकि तोरिय न योम को ।
 सुन्दर समुक्ति के बचन को बजार करि,
 नाहीतर बुप छ पकरि बेठि लौन को ॥^२

प्रायः पेट के कारण ही मनुष्य बीगता दिखाता, पाप कमाता घोर बन्दर के समान नाता नाच नाचता है । उसे बनाने वाले प्रभु को सुन्दरदास यों अपनात्मन्य देते हैं—

पेट ही कारण बीब हते बहु ।
 पेट ही मंस मसै च सुरायी ॥
 पेट हि ले कर जोरि करावत ।
 पेट हि को पठरी पहि कयो ॥
 पेट हि पालि बदे नहि जात ।
 पेट हि जात कूपहु बापी ॥
 सुन्दर काहि को पेट वियो प्रभु ।
 पेट ही घोर महीं कोज बापी ॥^३

जिन प्रख्यात उपमानों से समता दिखाते हुए मृ पारी कवि नारी को मनोहरा बताते हैं जन्मी की अहायता से सुन्दरदास ने नारी के मन को सर्वकर बन बताते उससे मूर रहने की प्रेरणा की है—

१ व सुन्दरदास, पृष्ठ १२२, १२३
 २ " " " १७१।१

कामिनि को लग भागों कहिये सघन बन,
 जहाँ कोरु जाइ सु तो भुतिके परतु है ।
 सुन्दर है गति कति केहरो को मय जाई,
 बेनी कालो नागनीकेँ फन कोँ परतु है ।
 बुद्ध है पहार जहाँ काम खोर रहे तहाँ
 साधि केँ कटास जाग प्राण की हरतु है ।
 सुन्दर कहत एक घोर डर घति छायेँ,
 राक्षस बहन पाई पाई ही परतु है ॥^१

सिंह सप बिच्छू प्राणी जतने मर्यकर नहीं होते हैं तितना दुष्ट

मानव—

सर्व इस सु नहीं कष्ट तातक, बीसु तयें तु मली करि मानों ।
 सिंह हूँ पाइ तो नाहि कष्ट डर, बी पत्र भारत तो नहि हारों ॥
 प्राणि बरो बल बुद्धि बरो गिरि, जाय विरो कष्ट में मति प्राणों ।
 सुन्दर घोर भले सब ही बुद्ध, बुद्धन सग मली बनि जानों ॥^२

मनतिक उपायों से बन-संभय करना घोर खिटा-युक्त बीबन-म्यडीत करना अच्छी नीति नहीं है । ऐसे बन का भोग तो प्रायः प्राणि खोर घोर घातक ही करते हैं—

तूँ छवि केँ घर घोर को स्याबत तेरेड तो घर घोरह घोर ।
 प्राणि सयें सब ही बरि जाय सु तू बमरो-बमरी करि खोरे ॥
 हाडिम को डर नाहिन सुम्न सुन्दर एक ही बार निबीरे ।
 तू खरबे नहि धापुन याइसु तेरिह जातुरि सोहि कै खोरे ॥^३

समीक्षा—

सुन्दरदास का नीतिकाम्य ग्रन्थ विषयों की दृष्टि कीसे प्रायः ग्रन्थ सत्तों के काम्य-सा ही है । हाँ इस बिलक्षणता पर दृष्टि धरनायास का पड़ती है कि वहाँ ग्रन्थ जग्यों के वैष पुषण, कुषण तथा पुस्तकी ज्ञान को उपेक्षा की है वहाँ सुन्दरदास इनका महत्त्व स्वीकार करते हैं । कारण ग्रन्थ सत्त प्रायः शिरघर से घोर से बाराणसी में बपों के विद्या-भ्यास के कारण उषत ग्रन्थों के महत्त्व से परिचित हो चुके थे । इन्होंने अपने "वेद विचार" ग्रन्थ में "वेद प्रपट ईश्वर बचन" कहा है घोर उषता सुन्दर रूपकमय वर्णन किया है—

कम पत्र करि जानिये, मंत्र दुटा दहिपानि ।
 घनत ज्ञान फल रूप है कांड तीन घों जानि ॥^४

सम्पूर्ण प्रबलक प्रश्नों के अध्ययन के तो ये पक्षपाती थे परन्तु "रसिकप्रिया" "रस मंजरी" आदि शृंगारमयी रचनाओं के विषय में। कारण इन्होंने निम्नलिखित कृतिरचना में स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है—

रसिकप्रिया रसमञ्जरी धीरे तिवार हि बानि ।
बपुराई करि बहुत बिबि बिय बनाई प्राणि ॥
बिय बनाई प्राणि लगत बिबिबि कौ प्यारी ॥
जाये मदन प्रबल सराई मन्मथि नारी ॥
ज्यौ रोमो मिथ्यात्म पाइ रोमहि बिस्तारै ॥
सुन्दर यह पति हीइ बु तो रसिक प्रिया धार ॥^१

अपर्युक्त पदों से स्पष्ट है कि सुन्दरदास भी स्वच्छ प्रबन्धात् लिखने में पूरा समर्थ थे। उनकी रचनाओं में कहीं कहीं राजस्थानी पूर्वी पंजाबी, प्यारी आदि का पुट भी कहीं-कहीं लक्षित होता है। उन्मत्त-इसका कारण इनका विस्तृत दौड़घाटन है। स्वामिन्, धीप्र आदि संस्कृत के उत्तम शब्दों के प्रयोग भी पर्याप्त हैं। कहीं-कहीं शास्त्रीय क्रियापदों का असुद प्रयोग भी दिखाई देता है। जैसे पुन-महिमा के प्रतिपादक एक छप्पय के अन्त में "मिछले" तथा "छिछले" का प्रयोग कर्तृ-बाध्य में किया गया है—

पुनि मिछले हूदि प्रमिय कौ छिछले सब संसय ।
कहि सुन्दर तो तदपुत्र सही, चिबाम्बर बज चिन्मय ॥^२

उन्मत्तः, ऐसी लिखड़ी भाषा का व्यवहार साधु-उन्मत्त किया करते थे और कृती का असुकरण सुन्दरदास ने किया है। इन्होंने 'पंजाबी भाषा अष्टक' और पूर्वी हिन्दी में 'नामक लघु ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें क्रमशः पंजाबी तथा पूर्वी भाषाएँ व्यवहृत हुई हैं।

इन्होंने बोधा बोपाई छप्पय कृतिरचना मनहर नामक इन्ध्र आदि १२ प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है तथा २७ शब्दों में पदों की रचना की है। इनकी रचना प्रबन्ध की अपेक्षा मुक्तक शैली में अधिक है। बारह मास उत्तरवार, बारह राति चिन्मकाव्य निपत्रय (उत्तरवाची) आदि के रूप में भी इनकी रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। निम्नलिखित छप्पय में बारह रातियों के द्वारा दिया गया सुन्दर नैतिक उप-देश देखते ही बनता है—

मीन स्वाम ली बेयी मेप मारन कौ घायो ।
बुप लूको लम्बाल निपुन करि काम बहायो ॥
कर्क रही बर माहि सिध प्राबतो न जान्यो ।
कन्या बंजल गई सुलत मन्मथल उजायो ॥

बुधबिक विकार बिध अंक लगि, कुम्हार धन मित्त न भयो ।

परि मकर न छाख्यो मूढ़ मति, कुम्भ फूट नर तन गयो ॥^१

बिभक्त्याय्य विपर्यय आदि के सिवा सुम्हरदास की रचना प्रसाह-पूर्ण है। उस में सामुह्य पुण भी पर्याप्त है और धीर का भी अभाव नहीं।

सुम्हरदास ने धर्मकार्यों के प्रयोग में परिष्कृत रुचि का परिचय दिया है। वे पर्यों में बसाहू टूँसे नहीं गये भाव को तीव्रतर करने के लिए ही प्राप्त है। धनुप्रास के अतिरिक्त उपमा रूपक उल्लेखा धीर निवर्तना इनके विशेष प्रिय अस्कार हैं।

इनके काव्य में शान्त रस प्रधान है। कीर, भीमलस और भयानक रस की झलक भी कही-कहीं दिखाई देती है परन्तु उनका वास्तविक सत्य पाठक को शान्त रस की ओर ही अग्रसर करना होता है।

सार यह कि सुम्हरदास का नीतिकाम्य पर्याप्त व्यापक धीर सरस है। उसका अध्ययन विभिन्न लोगों में कर्तव्य-पिप्सा हो नहीं देता पाठक को रस का भाव में मग्न भी कर देता है।

११ धामिन्व (धामिन्व)

दादू जी के अन्तेवासी धामिन्व की पठान मुसलमान थे। बन्ना बीरायी के समान इनके हृदय में भी हरिणी के आबेट के समय विराग जाय उठा। ये धनुष-बाण तोड़ कर लौटे बिना ही दादू जी के शिष्य बन गये। मुनते हैं इन्होंने पूरी "बाणी" रची थी परन्तु धाम बहु उपलब्ध नहीं है। प्रथम पुण उत्पत्तिनामा, प्रथम प्रेमनामा प्रथम गरजनामा आदि इनके छोटे-छोटे बीहड़ ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो प्रायः रोहा-बीराई उम्हों में हैं। नीति-नाम्य की दृष्टि से इन का "धरिस" बहुत धार्मिक रचना है। उसमें शान्त रस का प्रथम रूपलता साधु-संघति, कुष्ट-स्वभाव मनोनिग्रह, भेष आदि विपर्यों पर भावपूर्ण छन्द है।

ध्यायकारी प्रभु के दरबार में बीन बकरे की पुनार हमारो ओ सुनने योग्य है—

साहिब के दरबार पुकार्या बाकरा

जाओ लीयां जाय कमर सों पाकरा ।

बिरा लीया सीस जसी का लीजिए,

हृदिहां धामिन्व, राब रक का म्यात्र बराबर कीजिये ॥^२

बाणी के सुप्रयोग के विषय में धामिन्व कहते हैं—

कहि-कहि बचन कठोर एकठ नहि छोसिये

(सुम्हरदास पृष्ठ १५१।११ (धुप=धुप कक=कपो) ।

सं० स्वा० संगनदास संजामृत (प्र० स्वामी लक्ष्मीराम इस्ट, जयपुर, १९४८)

सम्मान प्रदर्शक प्रश्नों के सम्मेलन के तो ये पद्यपाठी ये परम्पु "रसिकप्रिया"
"रस मंजरी" आदि शृंगारमयी रचनाओं के विरह थे। कारण इन्होंने निम्नलिखित

रसिकप्रिया रसमञ्जरी धीरे तितार हि बानि ।
बनुराई करि बहुत बिचि बिचि बनाई बानि ॥
बिचि बनाई बानि लपत बिकपिन को प्यारी ॥
बाचे मदन प्रचढ़ सराहूँ नकसिख नागे ॥
ज्यों रोपी निप्यामन वाह रोपहि बिस्तारै ।
सुन्दर यह पति होइ नु तो रसिक प्रिया धार ॥^१

सपर्युक्त पद्यों से स्पष्ट है कि सुन्दरदास जी स्वच्छ ब्रजभाषा बिकाने में पूर्ण
समर्पण थे। इनकी रचनाओं में कहीं कहीं राजस्थानी, पूर्वी पंजाबी, फ़ारसी आदि का
गुट भी कहीं-कहीं बखित होता है। सम्भवतः इसका कारण इनका विस्तृत दैर्घ्य
है। स्वामिन् धीरे आदि संस्कृत के उत्तम पद्यों के प्रयोग भी पर्याप्त हैं। कहीं
कहीं शास्त्रीय शिष्यापत्तों का समुद्र प्रयोग भी दिखाई देता है। जैसे शुद्ध-महिमा के
प्रतिपादक एक छन्द में "मिद्यन्ते" तथा "उद्यन्ते" का प्रयोग कर्तव्यत्व में
किया गया है—

पुनि मिद्यन्ते हृदि प्रण्यि को उद्यन्ते सब संघर्ष ।
कहि सुन्दर लो सद्गुण सही, बिदालन्य मन बिन्नाय ॥^२

सम्भवतः ऐसी शिष्यकी भाषा का व्यवहार साधु-सन्त किया करते थे और
कती का समुद्ररूप सुन्दरदास ने किया है। इन्होंने 'पंजाबी भाषा घटक' और पूर्वी
भाषा कर्तव्य' नामक लघु ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें क्रमशः पंजाबी तथा पूर्वी भाषाएँ व्यवहृत
हुई हैं।

इन्होंने बोहा जोपाई छन्द्य मृगमिया मन्हर जम्पक, इन्धर आदि ३२
प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है तथा २७ रावों में पदों की रचना की है। इनकी
रचना प्रबन्ध की अपेक्षा सुन्दर संज्ञा में अधिक है। बारह मासा सप्तवार, बारह
राशि बिनकाव्य विपर्यय (उत्तरेवासी) आदि के रूप में भी इनकी रचनाएँ उपलब्ध
होती हैं। निम्नलिखित छन्द्य में बारह राशियों के द्वारा किया गया सुन्दर नैतिक उप-
देश देखते ही बनता है—

मीन स्वाध ली बंध्यी मेय मारन को घायो ।
कूप सुको तत्काल मिथुन करि काम बहुयो ॥
कर्क रही घर माहि सिध पावतो न जान्यो ।
कन्या पंचस भई सुमत पकृत पदाय्यो ॥

बुरिभक्त बिहार बिच खंड लनि, सुखर घन मित न भयो ।

परि मकर न छाव्यो मूढ़ मति, कुम्भ फूट नर तन गयो ॥^१

नितिकाम्य विषयव्यवहार के सिवा सुन्दरबास की रचना प्रसाद-गुण है । उस में बाबुल्य गुण भी पर्याप्त है और धोब का भी अभाव नहीं ।

सुन्दरबास में अर्थकारों के प्रयोग में परिष्कृत शक्ति का परिचय दिया है । वे पदों में बनाव् ठूसि नहीं गये भाव को तीव्रतर करने के लिए ही आए हैं । अनुप्रास के अतिरिक्त अपमा, व्यङ्ग्य, उत्प्रेक्षा और निदर्शना इनके विशेष प्रिय अर्थ-कार हैं ।

इनके काम्य में शास्त्र रस प्रधान है । बीर, बीमत्स और भयानक रस की मन्त्र भी कहीं-कहीं विकसित होती है परन्तु उनका वास्तविक सत्य पाठक को शास्त्र रस की ओर ही अग्रसर करना होता है ।

सार यह कि सुन्दरबास का नीतिकाम्य पर्याप्त व्यापक और सरस है । उनका सम्पूर्ण विभिन्न क्षेत्रों में अर्थम्य-शिक्षा ही नहीं देता, पाठक को रस का भाव में मग्न भी कर देता है ।

११ बाबिनन्द (बाबिनन्द)

बाबू जी के पसन्दवासी बाबिनन्द जी पठान मुसलमान थे । बन्धा बैरागी के समान इनके रूप में भी हरिजी के आशे के समय विराग जाग उठा । ये अनुरूप बाण चौक, नर बीटे बिना ही बाबू जी के चिह्न बन गये । मुन्ते हैं इन्होंने पूरी "बाखी" रची थी परन्तु शायद वह उपसम्पन्न नहीं है । प्रथम गुण उत्पत्तिनामा, प्रथम प्रेमनामा प्रथम परबनामा आदि इनके छोटे-छोटे शीर्षक प्रथम उपसम्पन्न हैं जो प्रायः चौड़ा-चौड़ा छन्दों में हैं । नीति-काम्य की दृष्टि से इनका "घरिस" बहुत भाविक रचना है । उसमें शान, दया वाच्य कृपणता छाबु-संनधि, दुष्ट-स्वभाव मनीनिग्रह, भेष आदि विषयों पर मार्मिक छन्द हैं ।

श्यामकारो प्रभु के दरबार में खीन बकरे की पुकार हमारे भी मुन्ते योग्य है—

घरिह के दरबार पुकारा वाकरा

काकी नीपा जाय कर सी पाकरा ।

मेरा नीपा सीत खरी का सीत्रिए,

हरिहूँ बाबिनन्द, राब रक का श्याव वराबर सीजिये ॥^२

बाणी के अनुयोग के विषय में बाबिनन्द कहते हैं—

कहि-कहि वचन कठोर बकठ नहि दोसिये,

(सुन्दरतर वृष्ट १४॥११ (वृष-वृषा-कर्म-कमी))

स० श्या० मंगलदास संवत्सुत (प्र० श्यामी नरपौराण दूर, जयपुर, १९४८)

नियाँ। प्रत्येक बसुन्दीबी या महायुग में कलियुग के ४३२००० वर्षों द्वारा युग के ८६ ४००० वर्ष, भेठा युग के १२ २६,००० वर्ष और उत्पद्युग या अन्तयुग के १७ २२,००० वर्षों अर्थात् कुल मिलकर ४३ २० ००० वर्ष होते हैं।^१ यह विश्वास भी पाया जाता है कि उत्पद्युग में वर्ष अपने-आपने बरसों पर, भेठा में तीन, द्वारा में दो और कलियुग में एक बरस पर टिका हुआ होता है।^२ भाष्य यह है कि उत्पद्युग से कलियुग की ओर भाँटे-भाँटे बरस कमरा भीरा होता जाता है और कलियुग में केवल २२ प्रतिशत रह जाता है। इस विश्वास का मूल सप्त रत्निक में देखा जा सकता है जिसे हम प्राण्य ग्रन्थों की नीति के प्रसंग में उद्धृत कर चुके हैं।^३

इस विश्वास की सत्यता या असत्यता का विवेचन तो विद्वान्तर ही आवश्यक परन्तु इस विश्वास का एक कड़वा फल यह हुआ है कि हम पहले से भी अधिक भाष्य-बायी बन बैठे हैं। वैश्याय से हम कलियुग में (जिसका आरम्भ ३१०२ ई० पू० में हुआ) उत्पन्न हुए हैं और कलियुग में ही समाप्त हो जाएँगे। धार्मिक जन-साधारण की मानसिक अवस्था ऐसी हो गई है कि जब कोई वाप या धनाचार की विधि बात सुनी जाती है तभी लोग कह उठते हैं—'माई, कलियुग बन रहा है। इस में जो हो जाए, बड़ो धमी प्राये देखिये क्या-क्या होता है। इस विश्वास के कारण हम आध्यात्मिक शोषों को दूर करने के लिए बहुरिक्त नहीं होते कलियुग को प्रबल और अक्षय्य धारण कर हार मान बैठते हैं। 'कलिकरिष' शरीरों की रचना इसी मनोवृत्ति का परिणाम है।

'कलिकरिष' अपने-अपने ढंग की प्रथम कृति नहीं है। इससे पूर्व पुराणों में कलियुग के महत्त्व का बर्णन हो चुका था। भीष्मकृत का 'कलिकल्पवृत्त' भी 'कलिकरिष' का सगन्ध समकालीन ही लिखाई देता है। परवर्ती काल से तो इसी विषय के कई काव्य-नाटक लिखे गये। जिन में कलि के अनेक कुत्सित कर्मों का व्यंग्यात्मक प्रस्तोच है।

१ ब्रह्मसंहिता (आतामी संस्करण, १९२३ ई०) अध्यायविभाष्यमुनिभा, पृ २५२ २७

२ भीष्मकृत पुराण आश्रम स्तंभ, अध्याय २३

३ अस्तुत ब्रह्मण्ड का ४२ पृ० देखिए।

४ यथा रत्निकनीति का कलियुग राशे (हिन्दी) बाराणसी आश्रम का कलि विपुल (संस्कृत नाटक) अन्त्याश्रम शास्त्री का कलिकल्पवृत्त (संस्कृत) आदि।

“कविचरित्र” की प्रस्तुत प्रतिलिपि^१ में कुल ४३ पद्य हैं। धारम्भ में मंगल दोहा है और उसके बाद के तीन पद्यों में कवि का परिचय। दूसरा पद्य चौपई छन्द में और दोप सब पद्यों के छन्द को कवि ने चौबोला कहा है—

“ध्यार धयिक वालीस चौबोला में इतने ई कोने”।^२

परन्तु आज के चौबोला^३ या हुंती छन्द के सहाय इन पद्यों पर ठीक नहीं बैठते। भावकस तो इस काम्य के पद्यों में ‘ध्यार’ छन्द माना जायगा जिसके प्रत्येक चरण में १६, १२ की यति से २८ मात्राएँ होती हैं।^४

कवि ने इस सम्पाकार मुक्तक-काम्य में घनेक अनुचित बातों पर छोटी कसे हैं जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं— सत्योक्ति की कटुता और मूषोक्ति की मधुरता वाचास का सम्मान और मिठभाषी का अपमान, कुसीमा का परित्याग तथा दासी से अनुराग रज्जती में सच्चे प्रेम का अभाव सावारा पुत्र प्यारा और सज्जन पुत्र मुखे—सेवक की अपेक्षा चाटुकार सेवक को अच्छा समझना अन्त्यजों द्वारा भगवत्स्मृति की पूजा राजाघों की निर्बलता और संन्यासियों का धन-संचय धार्मिक जनों की अविस्मरणीयता और जोरों पर बिरसास राजा की अपेक्षा दीवान का बड़प्पन, सज्जनों की कुर्बतता और बुद्धों का मुस्टम्भापन दानी पगसे और रूपण बुद्धिमान् जन की प्रबलता और कुसमर्थाबा आदि की अपेक्षा दुष्टकड़ों का समान और पीड़ितों की अज्ञाना बलुंभ्यवस्था में विपर्यय पर मारी से प्रेम बंध ज्योतिषी सिद्ध बीरानी आदि। उक्त विषयों में से कुछकवि कुबेस कु ज्योतिषी आदि तो संस्कृत-काम्यों में भी उपहासास्पद बतायाये गये हैं परन्तु कुछ कवि-कामीन सामाजिक परिस्थिति के परिचायक प्रतीत होते हैं जैसे—संन्यासियों का धन—संग्रह अन्त्यजों का मूर्ति-पूजन आदि। यह रचना सामान्य नीतिकाम्यों की अपेक्षा अधिक सरस है। कारण यह कि इसमें धर्मिया और लक्षण की अपेक्षा ध्वंजना का प्राचाय्य है। अनुचित व्यवहार करनेवाले को दोषी नहीं कहा गया साथ दोष कसि

१ ‘संस्कृत १७३२ भाष्यदृष्ट्याधर्या (८) बुद्धवारी संपूर्णा।

लि० भईया अन्नोप्याराम सगर गढ़ मध्ये।” ये शब्द उस पुरके के अन्त में हैं ‘कविचरित्र’ के अन्त में नहीं। अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर, गुदका सं० ७० ॥

२ वही पुस्तक के अन्त में।

३ त्रिपि कनपुत हुंती अति सभै,

अन्त सपु पुत्र सुवम्य भभै ॥ (परमेश्वरानन्द : अम्बिका लक्ष्मी १६४९, पृष्ठ ११९)

४ वही पृष्ठ ११८

जुग के माये मड़ दिया गया है। काव्य के अधिकतर पदों का चतुर्व्यंकरण यह है—

“ए कल काल तमासे तेरे, हुए धाब धाब हाँसी।

काव्य में प्रवाह-मूर्छा प्रांश प्रबन्धाया प्रयुक्त की गई है जिस में अनुप्रास की कटा विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है। यत्नकारों की प्रायः उद्देशा की गई है। परन्तु अलंकार-वर्णित चमत्कार के प्रभाव की पूर्ति हास्य-रस-मूर्छा व्यंग्यात्मक शैली से स्वतः ही ही जाती है। जैसे—

जो सबक साहिब को उहूँ सो सबक घटु पार्व ।
 जो सब भक्ति साहिबहि सेवै सो न साहबहि भाव ।
 कुम की निहरी मनहि न आवै चित्त जोराव बासो ।
 ए कल काल तमासे तेरे हुए धाबै धाब हाँसी ॥^१
 धामतधार जुपी दिन बीसै ताहि न बनी पतीब ।
 जोरहि सरबज सौंपि प्रापनी तापरि लुप्यो न मोबै ।
 बुदिया के रिवाज के सेवक बुदिया राजन जो के ।
 देव हूबरे जोया मोटे कति करतत हूँही के ॥^२
 भावर जोर सुकनि कहारै पंक्ति कही कहीनी ।
 करै संवारि मायि की घोली सोई बंद बयानी ॥
 पना बाँधि होइ ज्योतिषी धडकर प्रसल भिनाबै ।
 बिद्या-हीन रायि नय-डाढ़ी कति में सिद्ध कहारै ॥^३

२३—राजसमुद्र

विजय की सपहरी शर्ती में बीकानेर में कोथरा कुल के चर्मसी दाह धपनी पत्नी बालक देवी उद्दिष्ट निवास करते थे। उनकी के घर में सं० १६४० की वैशाख शुक्ला सप्तमी बुधवार को जिस धिभु ने जन्म लिया उसका नाम श्वेतमी रखा गया। बालक श्वेतमी परिश्रमपूर्वक विद्याभ्यसन करता और पिता के साथ जैन-संस्थानों में जाया करता था। जब सम्राट् अकबर द्वारा अर्पणित मुनि जिनसिंह सूरि बीकानेर पधारे तब बालक श्वेतमी उनके प्रवचनों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने विरक्त होकर सं० १६२९ में जगसे बीसा ले ली। जब उन बालक का नाम राजसिंह रखा गया परन्तु कुछ काल पीछे उन्हें जिनचन्द सूरि ने बड़ी बीसा ही और नाम राजसमुद्र कर दिया। जिनसिंह जी के विचरत होमे पर ये गण्डनायक बनाये गये और राजस्थान सिन्ध प्रादि प्रांतों में वर्षप्रचार करने लगे। प्रांतों में घाहबहा से प्रापकी मेंट हुई थी और वहीं ब्राह्मणों से बर्मन्विक शास्त्रार्थ भी हुआ था। इनकी रचनाएँ निम्न लिखित हैं—

शास्त्रिण श्रीपाई मन् मुद्रमास श्रीपाई श्रीबीबी, श्रीबी प्रमोत्तर रत्नमासा कर्म बत्तीसी शोसबत्तीसी बासाबबोध स्फुट प्रादि पद ।^१

इमें उक्त श्रवणों में से केवल 'कर्मवत्तासी' की हस्तलिखित प्रति^१ बीकानेर के अथर्व जैन ग्रन्थालय में देखने का अवसर प्राप्त हुआ है । विषय तथा श्रवण के परिणाम का संकेत नाम से ही मिस जाता है । साहाय्य, बौद्ध धर्म जैन सभी सम्प्रदायों में पूर्वकृत कर्मों का भारी प्रभाव एक स्वर से स्वीकृत किया जाता है । इस विषय पर सब सम्प्रदायों के कवियों ने काव्य-रचना का है । कर्मवत्तासी की रचना मुनि राजममुद्र की ने सं० १६६६ में राजस्थानी भाषा में की था । सावनी छन्द में यद्यत् बत्तीस पद्यों की इस कृति में पूरे कर्मों को ही उन सामाजिक तथा धार्मिक भेदों का कारण बताया गया है जो जगत् में दिखाई देते हैं । काव्यत्व की दृष्टि से रचना में कोई सी-र-ब सहाय नहीं होता ही सस्वर गान से मन को सम्योच तथा धान्ति अवश्य मिसती है । कुछ पद्य उद्धृत किये जाते हैं—

करम तयो मति असय अपोषर । यहिउए जाए मार को ।
 नाँए बस जोगीसर नाँए । के जाने करतार को ॥
 पुरब करम तिनिष्ठ को सुय दुय बीब नई निरवार को ।
 उद्यम कोपि करोधे तो रिता न फस अमिठ सिगार को ॥
 एक जनम लवि फिर बुयारा एका रे बोह मारि को ।
 एक उदरंमर जग ते फहीरे एल तहत धायार को ॥
 काय तिपित सुय सपति लहीय, अमिक न कीब सोस को ।
 प्राय कमाया फस पानीब धोर न बीजे सो (बो ?) स को ॥^२

१४—कुशासधीर

जैन कवि कुशास-धीर मोक्षत नगर के निवासी व धीर करतारमण्ड के जिन माण्डिय मुरि शाखा के श्री कल्याणसाह के शिष्य थे । इन्होंने जोधपुर मोक्षत किराणगड शाहीर धारि में प्रमण किया था । धी मोक्षीनाम मेनारिया ने इनके तीन श्रवणों का उल्लेख किया—१ "अभि विपन रविमणीगी" की टाका २ वैशम्पायन कृत 'रमिक श्रिया' की टीका ३ श्रीसावनी रासी^३ । इनमें से टीका श्रवण से पद्य न है

१ ऐतिहासिक काव्य संग्रह (प्र० राजरत्न शुभेराज नाहरा सं० १९१४ वि०)
 पृष्ठ २२-२६

२ मति-सहाय्य सं० ७, कुन बब २ पृष्ठ

३ बही पद्य-सहाय्य १ २, ३ पृष्ठ ॥

४ मोक्षीनाम मेनारिया राजस्थानी भाषा धीर साहित्य पृष्ठ २१३

धीरे "भीमावती रासो" पद्य में। इधर इनके पाँच प्रथम पद्यों का भी पता लगा है—
१ भोज-बीपाई, २ सीमवती रास ३ कर्म बीपाई, ४ कर्तुमर्षग्रह, ५ उद्दिप्त
कर्म संवाद। इनमें से अन्तिम प्रथम नीतिविषयक है।

उद्दिप्त कर्म संवाद—कृपालभीर की का साहित्य-सम्बन्धकाल सं० १९९९
से १७२९ तक है। उद्दिप्त-कर्मसंवाद की रचना कियानगढ़ में सं० १९९९ में का
गई थी—

संपन्न सोल नितासुबहु, कित्तनगढ़ कुबदार।

उद्दिप्त कर्म संवाद इन कहइ बीर अलमार ॥^१

काव्य के अन्तिम दोहे से विबिध होता है कि मुनि भी ने इसकी रचना व्याक
सभीबास के धारण्ड कर की थी। केवल ३८ पद्यों के इस लघुकाव्य काव्य में बोहा,
कवित (अप्य) पङ्क्ति भाषि छन्द प्रयुक्त किये गए हैं। काव्य धीरे अद्यत नीति
काव्यकारों के प्रिय विषय रहे हैं। इनमें से कौन श्रेष्ठ है, इस विषय की भी कहीं
अनेक कवियों ने की है। इसी विषय का संवादात्मक शैली में बर्तुन मुनि भी ने इस
रचना में किया है। मंगलाचरण के पश्चात् अद्यत धीरे कर्म (माध्य) भाकर तिसोत्री
में अपने-अपने को सबसे बड़ा कहते हैं। वे अपने-अपने महत्त्व को सिद्ध करने के लिए
प्राचीन इतिहास-पुण्यों के उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं धीरे एक-दूसरे की मुनितयों
का घोषस्वी भाषा में खंडन भी। अन्त में 'अद्यत' के प्रस्ताव पर "कर्म" विवाद
का निर्णय किसी पंच से करवाने पर सहमत हो जाता है। तब वे दोनों श्री विन
महाराज की सेवा में पहुँचते हैं। वे दोनों को ही परस्पर पूरक कहकर उन्हें हितमि
कर रहने का उपदेश देते हैं धीरे प्रथम समाप्त हो जाता है। रचना राजस्थानी भाषा
में है धीरे संवाद शोकपूर्ण है। यथा—

उद्दिप्त उवाच— यम तूं भोमि तमार मरम तूं कुम्भ न आसइ ।

मुकन्द बलहि बीराम अद्यति तंघि सीता घासइ ॥

मुकन्द बलहि महपती बेकि पुहुषी बाबइइ ।

मुकन्द बलहि मतिमत करी किहु सुरा कहइइ ॥

सुर असुर बिद्या धावरु सकल धारर री भी धाररइ ।

काइर करम । मुलि री कवन क्यूं मुक तनबकि तूं करइ ॥^२

कवच उवाच— नीच-कुली नव नंद मही मंह क्षीय महीपति ।

बंदव पंच प्रकिळ नक्या पइ तानु हरे मति ॥

रंक कक हू राव राजन हू रक कक क्षित्त ।

तिव सायक सुर असुर करम तूं न बलइ किहि किय ।

१ उद्दिप्तकर्मसंवाद पद्य १७

२ वही, पद्य ३

करतार करम दुम धनुम का साखइ सी बिरुवा मुबल ।
 पहिम मसूर, कहइ करम इम, कहइ मुग्ध समबड़ि कबरल ॥^१

१२—सात (?)

“रूप गुण संवाह” नाम के अप्रकाशित मीतिकाम्य की हस्तलिखित प्रति^२ बोकानेर के धनुष संस्कृत पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह प्रति एक गुटके के चार पत्रों (७१-७८) पर लिपिबद्ध की परन्तु ७७वाँ पत्र, जिस पर ३३ ४६ दोहे वे मुप्त हैं। समग्र कृति की बोझा-संख्या ६४ की परन्तु उपलब्ध पत्रों में ४७ दोहे ही प्राप्य हैं। यह काम्य दो अधिकारों में विभाजित है—रूपाधिकार और गुणाधिकार। प्रथम ४६ दोहे रूपाधिकार में हैं और अन्तिम ११ गुणाधिकार में। पद्य का नाम भी अज्ञात है। अन्तुत यह संवादात्मक कृति नहीं है कबि ने ही दोनों के स्वरूप का विवेचन करने के अनन्तर गुण की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। कबि का नाम संदिग्ध है और परिचय तिनिराच्छन्न अन्तिम दोहे में ज्ञात नाम धारा है जो सम्भवतः कबि का नाम है—

बोन काय जन धर्म बिनु । भक्ति बिना गृह कूप ॥
 क्यो सात कीअइ कहा । गुन बिनु मुग्धर रूप ॥^३

पुस्तक का रचना-संभव अज्ञात है। जिस गुटके में यह सम्पूरीत है उसमें बिहारी-सठसई (रचना काल सं० १७०४ के समयमें)^४ भी लिपिबद्ध है और उसकी समाप्ति पर यह पक्ति लिखी हुई मिलती है— धीमन् महाराज कुमार धीमदनुपतिहै पद्वयमानमिर्ष पुस्तक बिर् नंदात् अर्थात् धीमान् महाराज कुमार धनुपतिह द्वारा पढ़ी जाती हुई यह पुस्तक बिरस्वायी रहे। महाराज धनुपतिह का जन्म सं० १९६२ में हुआ था और शासनकाल वि० १७२६ ३३ था। इससे अनुमान है कि यह रचना अठारहवीं शती के आरम्भ या उस से पूर्व की है।

अनुप्य की दृष्टि पहले किसी वस्तु या व्यक्ति के रूप पर पड़ती है, पीछे मूर्तों पर। सामान्य जन रूप से इतने आकर्षित होते हैं कि जैमि-संघे रूपवान् परबार्ब को प्राप्त करने के लिए हठ करने लगते हैं। परन्तु प्रायः देखा यह जाता है कि रूपवती वस्तु विशेष गुणवती नहीं होती। उसे प्राप्त करने के पश्चात् अपनी भ्रूस पर परचाताप करता है। इसी अनुभव के आधार पर अनेक मीति-कवियों ने निम्न कृतियों में रूप धन, बंध आदि पर गुण को अधिमान दिया है। जैसे—

१ वही पृष्ठ ६

२ प्रति संख्या ७७।७७ ग ॥

३ वही पत्र ७८ पृष्ठ २, बोझा ६४

४ श्रीतीलाल मैथारियाः राजस्थान का विपन्न साहित्य पृष्ठ ८६

प्रदर्शित किया है। कुसुमबीर कृत "उद्दि मकर्य संवाद" में उद्यम और धाम्य दोनों अपने को बूझते स बड़ा मासकर गर्व करते हैं। परन्तु अन्त में दोनों को एक बूझते का पुरक कहा गया है। इस प्रकार उद्यम को भी वैध के समान स्वीकृत करना एक उन्मत्त विवेकता है क्योंकि अधिकतर अन्त और मन्तजन उद्यम की अपेक्षा वैध को ही अधिक महत्त्व दिया करते हैं। सुन्दरदास कृत "प्रमदिवर्षस घण्टक" में सामाजिक आदर्शों का उल्लेख है और "विवेक वितावनी" में मृत्यु की अनिवार्यता का वर्णन। बाण कवि ने "कमिचरित" में सभी सामाजिक विषमताओं के लिए कमिचम को उत्तरदायी ठहराया है। यह बात लक्ष्य करने की है जिन नैतिक विषयों पर स्वतन्त्र काव्यों का प्रभाव है, प्रायः उनका उल्लेख भी इन कवियों में अपनी बावनी दलीली धारि में किया ही है।

रस-भाव—रसपरिपाक की दृष्टि से उपर्युक्त कृतियाँ विशेष महत्त्व नहीं रखती। मुक्तियों तथा अन्तों द्वारा रचित होने के कारण अधिकतर कृतियों में आन्तरिक का प्रभाव है। ठकुरसी का 'कुपलचरित' तथा बाण के 'कमिचरित' में भाव्य की व्यञ्जना अच्छी हुई है। सुन्दरदास के अन्तों में अन्त के वर्णन में प्रभाव और भीमत्त्व महिषित हुआ है। कुसुमबीर के "उद्दि मकर्य संवाद" में भी रस की भी महत्त्व दिखाई दे जाती है। भावों में से वैश्य भक्ति तथा लज्जता प्रोद्योग्य अथवा आत्मसंमान निष्कर्षता बलि धारि की व्यञ्जना अच्छी दिखाई देती है।

गुण-बोध—वैध तो तीनों ही गुण उपर्युक्त कवियों की रचनाओं में महिषित होत हैं परन्तु प्रभाव्य प्रभाव का है। भाव्य प्रभाव से कम है और प्रीति भाव्य से भी कम। प्रीति की इस मूलता का कारण इन काव्यों में ज्ञान-नीति की कमी है। उपर्युक्त कवियों में से अधिक संख्या सुपरिचित विद्वानों की ही अन्त-अन्तों में अपनी रचनाओं को काव्य रूपों से मुक्त करने का महत्त्व प्रयोग किया। फिर भी कहीं-कहीं प्रभाव-भाव्य की मूलानुभूति उन्मत्त-विकृति धारि दोष दिखाई दे ही जाते हैं।

भाषा—प्रथमतः ठकुरसी की उद्दि अन्त और कुसुमबीर ने अपनी रचनाएँ राजस्थानी में की हैं। सुन्दरदास वैश्यास और बानकवि तो राजस्थान के हैं परन्तु उनकी कृतियाँ सुन्दर ब्रजभाषा में उपलब्ध होती हैं। बाणिक की भाषा में कहीं बोली का घुट है तो उद्यम की भाषा में वैश्यास का। व्यापक पर्यटन तथा विशुद्ध अध्ययन के कारण सुन्दरदास की रचनाओं में कहीं बोली वैश्यास पूर्वी धारि का ही प्रभाव महिषित होता है। सुधीवास रत्नावली भाग तथा भाग में अपनी रचनाओं में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। उनमें कहीं-कहीं वैश्यास का भी प्रभाव महिषित होता है। राजस्थानी की रचनाओं में द्विलि व्यञ्जनों तथा विद्वेसी अन्त-वनी की अधिकता उपर्युक्त तथा मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव की सूचक है।

काव्य-विधान—काव्यविधान के विचार से उद्यम कृतियाँ दो वर्गों के अन्तर्गत आती

है—मुस्तक और निरन्ध्र । पदमनाम तथा छीहस की बाबनियां तुलसीदास की दोहा बसी देवीदास के कवित उदयराज के बूहे प्रादि मुस्तक काव्यों के प्रसंगत प्राते हैं और ठकरसी का कृष्णाचरित तथा पंचेग्रीबेसि सुन्दरदास का पञ्चग्रिप चरित्र बाल का कविचरित्र और मास (?) का कृष्णगुणसंवाप प्रादि निरन्ध्रकाव्यों में ।

हीसी—उपमु क्त कृतियों में सर्वाधिक प्रयोग तथ्यनिरूपक शब्दी का किया गया है । इसके प्रतिरिक्त उपदेशात्मक व्याख्यात्मक संस्थात्मक प्रत्यापदेशात्मक समस्या-पूति प्रारम्भान्ध्रयक पञ्चावर्तक ऐतिहासिकादि कृतियों का भी यत्र तत्र व्यवहार हुआ है । सुन्दरदास ने प्रदुमुशोपदेश में कृष्णकाव्यशाली का तथा गृहबराभ्युद्योग में संवावात्मक शैली का प्रयोग किया है ।

छन्द—दोहा तथा छप्पय इन कवियों को प्रम्य छन्दों से अधिक प्रिय रहे हैं । कृष्णक कृतियों में कुछ शीवाह्यों शम्भक या सुखी छन्दों के पदवात् दोहे का प्रयोग दिखाई देता है । इनके प्रतिरिक्त मनहरण मलयबर नीतानी, चित्रंभी चरित्र चरित्रस प्रादि छन्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है ।

शाल में इन कवियों का महत्व इस बात में है कि इन्होंने ही सर्वप्रथम ऐसे स्वतन्त्र नीतिकार्यों का निर्माण किया जो कवियों की व्यापकता तथा उपयोगता की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण हैं ही कला की दृष्टि से भी अपेक्ष्य नहीं हैं ।

२. प्रकबरों दरबार के कवि

मुमम सम्राट् प्रकबर का शासन-काल (१५२६-१६०५ ई०) पठान-शासन से लिम्न भारतवासियों के लिए बरदान रूप था । जो कट्टरता मशामता भारतीयता-विद्वय प्रादि पठान-शासन की तीन शताधियों (१३-१५ बी ई) से पाये जाते थे उनका प्रकबरने समुप्त उन्मुक्त कर दिया । पठान-शासन में हिन्दुओं पर जो बखिया कर, तीर्थकर, नामिक प्रतिबन्ध प्रादि सपाये गये थे उनको नीति-निपुण प्रकबर ने हटा दिया और सभी धर्मों के लोगों को समानाधिकार तथा शोष्यतानुसार निम्न दरबार में पर प्रदान किये । उनकी उदारता, पुण्यप्राप्तता, सर्वधर्म-समभाव कला प्रेम प्रादि के कारण देश-विदेश के धनेरु मुकुटाल साहित्यकार चित्रकार वास्तुकार संघोत्तममत्र प्रादि उसकी सभा में एकत्रित हो गये । प्रकबर उन्हें कृतियों, पुरस्कारों उपाधियों प्रादि से सम्मानित करता था तथा अपने ब्यक्तित्व और शासन को उनकी शोष्यता से समृद्ध बनाता था । उपर्युक्त मुणों के कारण जो हिन्दी-कवि उसकी सभा क प्रति प्राक पित हुए, वे सर्व-इय में विभाग्य हैं—स्वायी श्री प्रस्थायी । स्वायी कविता के से को सभा कवि या किसी प्रम्य पद पर प्रासीन होने के कारण दरबार से स्वायी कृति पाते थे, जैसे—रहीम रफ नरहरि, राजा वीरबल (बहा) तानसेन जनुर्मुजदास बहाल, राजा टोडरमस, राजा पृथ्वीराज, मुरदास मरन मोहन और मनोहर कवि । प्रस्थायी कवियों का सम्राट् से सम्पर्क तो था परन्तु वे दरबार में यत्र-बहा ही धामा करत थे ।

अप्रमान ब्याप्त करनेस कुम्भनदास महारना मुरबास डुरसा भी घोर होभराय ऐसे ही प्रसंगी कवि थे। अग्र कवियों में से मरहूरि टोडरमस ब्रह्म गंभ घोर रहीम नीतिनाम्य की दृष्टि से अधिक महत्त्व रखते हैं, अतः वे ही हमारे आभोग्य विषय के अग्रगण्य प्राण हैं।

१ महापात्र मरहूरि

अकबरी दरबार के बयोबुद्ध कवि मरहूरि का अग्र पकरीसी (जिसा राय बरेसी) में हुआ। शास्यकाल बही ब्यतीत करने के पश्चात् वे अरमी में आकर बस गये। वे अरयपमोत्री ब्रह्ममट्ट कुलमणि (घामकवि) के पुत्र थे और 'साहित्य वर्षण' के रचयिता बिस्ननाय की अतुर्ब पीढ़ी में सं० १५६२ में उत्पन्न हुए थे। इन की रचनाओं से प्रभावित होता है कि इन्होंने संस्कृत छंदरही और हिन्दी यावामों का अन्तोर अध्ययन किया था। हुमायूँ और अकबर के दरबारों में इनका समाहित होना ठीक निश्चय है ही कुछ लोग इनका अकबर की राजसभा में प्रतिष्ठित होना भी स्वीकृत करते हैं। बयोबुद्ध मरहूरि अकबर के अत्यन्त विद्वत्समीय तथा अद्वय समाकवि थे। वे भी अपने हृदय से अन्नाद की हितकामना और पय प्रदर्शन करते थे। अकबर इनके अरिष्ट और सुखवृत्ता पर इतना मुग्ध था कि अतने केवल इन्हें ही महापात्र की उपाधि दी थी और अनेक गाँव आदि भी प्रदान किये थे। परवर्ती कवि गणेश के कथनानुसार ठीक अकबर ने इनकी पालकी को अंबा भी दिया था—

मनत मखेश महापात्र की अिताव री के
पालकी अदाय ली अकबर अंबाते हैं।^१

मरहूरि के तीन (कुछ विद्वानों के अनुसार चार) पुत्र थे और एक पुत्री। इनके प्रपौत्र पुत्र हरिनाथ के बसनों में अकबरक वृत्तेश भी घोर मास भी प्रतिष्ठ घोर समाहित कवि हैं। मरहूरि का स्वर्णवास सं० १६६७ में अरमी में हुआ।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास अक्षरों ने मरहूरि की तीन कृतियों—रक्तिमली मंगल अल्प नीति कवित संग्रह का अस्तेय किया है।^२ इनमें से रक्तिमली मंगल ही १५ पृष्ठ की बोहा-बीपार्ड में मिथी अक्लिबत रचना है शेष दोनों अल्प-रूप में उपलब्ध नहीं हैं। अम्भबध इनके अष्टक अल्पों और कवित-अर्थों के अर्थों के अल्पु क्त नाम रख दिए गये हैं। मरहूरि की अष्टक रचनाएँ नागरी अक्षरलिपी अमा काशी के एक अक्षरलिखित संग्रह-अम्भ^३ में संगृहीत हैं। इस संग्रह में मरहूरि की कविता

१ डॉ० सरपुत्रसाह अग्रवाल अकबरी दरबार के हिन्दी कवि (संस्कृत, सं० २० अ)
पृष्ठ ७५

२ मिथार्थपुत्रिभोद अमा १ पृष्ठ २५७

३ संख्या १२५।१२ अग्रहीता अला अक्षरलिखित सं० १७९१

“बाहु” (मुकुटमा) से प्रारम्भ होती है। बाहों के प्रतिरिक्त नरहरि के १२३ छन्दों में १० छप्पय, ४० सबये १२ बोहे ३ कृद्विधियाँ ४ कश्चित् घोर दो सोरठे हैं। रिकिमली मंसस का विषय रिकिमली-कृष्ण वा विवाह है बाहों का विषय केवल नीति है। रोप स्पृ- छन्दों में धाये के समय राजप्रदासिधियाँ, मन्त्रि वारहमासा अकुन शृंगारादि हैं घोर धाय के समय पद्य नीति के हैं। इस प्रकार नरहरि के समय एक ही नीति-पद्य ही हमारे पासोध्य है।

“बाहु”

नरहरि के पाँच ‘बाहु’ प्राप्त हुए हैं—बाहु सोहे सोने वा बाहु तेल तंबोल का बाहु मयम बानि का बाहु नेम कान का सग्जा घोर भूक। इन बाहों में से केवल एक बाव— ‘बाहु मयमबानि का’—का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मनुष्यों से है। रोप का अथेतन पराधों से। नरहरि दरबारी कवि है घोर बाही प्रतिबाही या मुकुटमेबात्र सोय धपने-धपने मझड़े सेकर राज-दरबारों में जाया करत थे। वही से नरहरि जी को भी बाह रूप में रचना करने की भूमि घोर उन्होंने सोकहितार्थ विषय बाहों को धपने काव्य का विषय बना बासा। सक्ष्य करने की बात यह है कि बाहों के धस्त में कवि बानि प्रति बादीको नृप विधेय की समा में जा निपटारा करन का परामर्श देता है। इस प्रकार कवि धपने धाधयवाताधों की न्यायप्रियता की घोषणा कर उनके माय धमर कर देता है। ‘बाहु सोहे सोने का’ की रचना ‘छत्रपति साहि सभम को सवय कर की गई थी।

यह सर्मासघाह (इस्तामघाह) शेरघाह सूरी का उत्तराधिकारी तथा नरहरि का संमानकर्ता वा। इस बार में कुल ११ छन्द हैं—प्रारम्भ म एक दोहा घोर रोप सब छप्पय। राजाधों वा काम सुबर्ण घोर सोह बोनों से पड़ता है। सुबर्ण से जनका कोय प्रपूर्ण होता है घोर धायस धस्वास्त्रों से विजय प्राप्ति क द्वारा कोष घोर यद्य को वृद्धि होती है। इसमिए बोनों धपना महत्त्व दूसरे से बढ़ा बताते हैं। सुबर्ण धपनी सेवस्त्रिता सुकता धोबठुंफता घोर कर्म धमसाधकता का बखान करता है तो लोहा धपनी दुगर्मजन-अकिठ, बलबता कीतिवर्द्धन-शामता प्रादि का। बोनों ही एक-दूसरे की सुबिधियों का रोचक ढंग से खण्डन घोर धपने धेच्छत्र का ऐतिहासिक तथ्यों से मण्डन करते हैं। संबाय बहुत धात्रस्त्री हैं जैसे—

(क) ही धपुबन सोहि पहुं सरन रवजीत रचनि दिन।
 भंजन यज्ञ समरप न कोई सरहि प्री सार दिन ॥
 तू होहि जाहि दिन पंच करहिमुपु सुनहि सुदमति ।
 जेहि धरो स्वै स्वार, जहि धात्र ही धपवति ॥
 इमि कहइ सोह कंचन सुनहि कनी धबनि उदिस भवन ।
 रहु नरम भंजि नरहरि निरौप सो मोहि सनमुप बोने कबन ॥^१

१ 'दरबारी दरबार के हिन्दी कवि' पृष्ठ ३१०-१२ । पद्य में “पंचकरहिमुपु” के स्थान पर “पंच करहि हुपु” पाठ अक्षिप्त प्रतीत होता है।

(ब) हौं सब बिधि तुम करन हुरन मनु मोहि तै सब रस ।
 जाति जिवन पन बर्म कनो जग बुगुनि अप्पुबस ।
 मोहि बिभुरत बन बसेज सूर पंडित जे पपु तुत ।
 कहु उदिध किन्हु किएउ तब जो तुम्ह तिन के हुर्य हुत ।
 सो मन सुबर्न निज नाउं मोहि लोहू न सरवरि किउबर्न ।
 सरहि न अपुन 'मरहूरि' निरवि मोहि कारन सब विज्जबर्न ॥
 'बाह तेन लंबोस का' की रचना कवि-कीतुक तथा मोह-रंजन के लिए की गई है—

धनु सकय सजि म्हावरहि एक लंबोल धर सिस्तु ।

अपति धरकर साहि सुनि सो कवि कीतुक छिति वेस ॥^१

यक्त प्रारम्भिक बोहे के अनन्तर हम म कुस ७ छप्पय है । तेन अपना उत्तम नाम स्नेह' बताता है और अपनी रोचनाशक्तता, भाषों में उपयोगिता पर, देव और धमुरों के नृहों के प्रकाशन की क्षमता धारि अनेक दुहों का सवर्ष बहान करता है तथा पाग की निरबन्ध कहता है । इसके विरुद्ध पाग देव पर पितरों के कार्याय्य अपनी उपयोगिता, शृंगार-साधनता, उपाधि-रूपता तथा सुन्दर रंजन का उल्लेख करता हुआ तेन को पितरों को कोसू में पेशवाने वाला नृसंघ कहता है । शीर्षकासीन विवाह के बाद मरहूरि उन्हें धरकर से स्थाय करवाने तथा उसके निर्णय को धिरोधाय्य करन का उपदेश देता है ।

'बाधु संमन बानि का' की रचना रीति-नारेण बनेत राजा रामचन्द्र की स्थाय-शीलता की बधाति के लिए की गई है । याचकता की निम्न तथा बहास्यता की प्रशंसा संरक्षित-कवियों का मिय बर्ष्यविषय रहा है । १० पद्यों की इस मधु-काय कृति में याचक और बानी का विवाह है । बानी याचक की तुच्छता का बड़ा सखीय और मार्मिक विमर्श करता है । परन्तु याचक भी याचना का समर्पण करता है । वह कहता है कि जगत् में सभी किसी-न-किसी रूप में याचक हैं बहो तक कि देव-पितर भी याचक हैं । बानियों को अमर और यक्षस्त्री बनाने में भी याचक ही साधन हैं । दोनों पक्षों की युक्ति प्रतिबुद्धियों को पढ़कर बानी का पसड़ा ही भापी प्रतीत होता है । याचक की प्रशंसा निम्नलिखित पद्य में द्रष्टव्य है—

(क) बहूड जो भीय मधु कहहि भीय वैहू जाति पति बर ।

जब दानिउ विज्जिये भीज मांनहि गुपति नर ।

स्वस्ति बौनि तुब विता ब्याहि बुलहिन धरि दानिय ।

भीयहुं ते मुतें मएउ भीब केहि धौति दयागिय ।

१ धरकरी बरवार के हिन्दी कवि पृष्ठ ३१० । ६

२ " " " ३११ । १

बिन्दु बहुहि भोय हेव वितर न कीड भोय तेहि उडरे ।

पुत्रिजमे बिन्दु छोड भोय रत जो तीन भुवन सोरे तरे ॥^१

इस बार में संस्कृत के गीतिकाण्ड का प्रभाव सर्वाधिक महित होगा है और मर्मस्पर्क भी सर्वाधिक महो है । संस्कृत भाषि के समान बिष्णु बलि शिवि कर्णै धारि के उपास्यागों के निर्वेत्त इसमें विद्यमान हैं और मिच्छारी को तृण और तूत से भी हसका कहकर पाचना के भय से ही वायु का उठे न उड़ाना भी उन्मिच्छित है ।^२

“बाद नन कान का” भी उपर्युक्त छत्रपति रामचन्द्र को ही सम्बोधित करके रचा गया है । नयन ध्रुवै पक्ष के समर्पन में कहते हैं— हमारे ही कारण हरि का नाम कमसनयन है । हम ही मनुष्य के सौन्दर्य बढ़क तथा सम-विषम मार्ग के प्रदर्शक हैं । हमारे बिना तो मनुष्य बस-फिर धीर का-नी भी नहीं सकता । संसार मनुष्य के लिए अन्धकारमय ही जाता है और उसकी दया कुत्राप्य के तुल्य हो जाती है । परन्तु भोज भी वेनों से दबने बासे नहीं हैं । वे निज घोरव-स्थापनार्थ निम्नांकित सुक्तिर्वा प्रस्तुत करते हैं—

अन्नम मुनिम हरि भवति मुनत समुम्भि यत्त धर्म धति ।

मुनत मुकुति पर महिय मुनत ह्य सुखिद मुदमति ।

मुनत परिषित तरेड मुनत उपजत प्रनंत मुप ।

मुनि-मुनि वैर पुरान केठ न परिहरैड विष्य मुप ।

एहि धरत्य अवन पहिरिय कह अन्नह स्वाम किञ्चिदय नयन ।

दियि बेपित पहि परधनु धनिय निडु नरहरि बोस्तहि वयन ॥^३

पर-दार धीर परब्रह्म पर ब्रह्मवि टालने के कारण ही नयन धवन-कमु-पित किए जाते हैं और पुण्य जनक बध-क्याएँ धारि मुनत के कारण कर्णै मुषणै-भरण कारण करते हैं—कितनी कमनीय कल्पना है ! धारमिक दोहे के धनन्तर दोनों ने बारी-बारी से क्रम ४ छप्पय बहे धीर अन्तिम छप्पय में मुप रामचन्द्र ने दोनों को समान बोधित कर बिबाह दान्त कर दिया ।

‘लज्जा धीर मुख’ वस्तुतः ‘बाहु’ महो है । कवि ही अपनी धीर से केवल एक ही कृदिसिमा में दोनों का बिबाह यों कण्ठित कर देता है—

लज्जा बहे न ममिये, भूप बहे तू संगु ।

इह अपरो धति कठिम हे नरहरि बने न संगु ॥

नरहरि घने न संगु नंगु नाहीं ऐहि भोतन

नान्न रहे कुप क्याइ भूप धातुर धतिइ तन ।

१, अष्टमी दरबार के हिन्दी कवि सूट ११४७२

२, " ११३१७२ ११४७४

३, " ११६१३

इतरप्राणिविषयक नीति

प्राणि-विषयक नीति के सम्बन्ध में नरहरि ने अधिक नहीं लिखा परन्तु गो हत्या को वे सख्त न कर सकते थे। कहते हैं, एक बार एक गो कसाई से रस्सी छुड़ा इनके घर में धा घुसी। धरणापतरसा स्व-ऋतंभ्य जान कर इन्होंने उसे कसाई को न बेकर उसके गले में निम्नलिखित पद्य बांध कर फरियादियों की पंक्ति में बढ़ा कर दिया—

घरिनु रंत तिनु परै साहि नहि मारि सखत कोइ ।
हम संतत तिनु बरहि बचन जबबरहि नहि बीन होइ ॥
अमरित बय नित जबरहि बचस महि बंमन जाबहि ।
हिहुहि मयुर न बेहि कदुक सुरकहि न पिवाबहि ॥
कह कवि नरहरि अकबर सुनो बिनबति पद छोरे करन ।
अपराध कौन मोहि मारियत मुएह नाम देबइ बरन ॥^१

अकबर पर नरहरि के इस छप्पम का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने साम्राज्य में कोहत्याओं के लिए प्राणवन्द का आदेश दे दिया।^२

मिथित नीति

नरहरि का अनुमो में पूर्ण विश्वास था। इसलिये विभिन्न कार्य करते समय इन्होंने दुस्ता भील गोबड़ उरमू क्यामा टीतर, मोर घादि पशु-पक्षियों के विद्या विशेष में बर्खम का कस सुभ या अकूम माना है।^३

इन्होंने राजसमासद् होने के कारण राज ऋतंभ्य सम्बन्धी अनेक पद्यों की रचना की। इनके मत में राजा की माफी के तुल्य प्रजा का प्रेम-युक्त पालन-पोषण के अनन्तर ही कल की प्राप्ति करनी चाहिए।^४ संसार की सब वस्तुओं की नस्न रण^५ तथा भाव्य की अमित देखा पर इन्हें पूर्ण विश्वास है। समाज में पाई जाने वाली कुटीतियों विषमताओं तथा अनाचारण के लिए ये व्यक्ति को बोधी न ठहरा कर परम्परा के अनुसार कमिबुग को ही उत्तरदायी ठहराते हैं जो अपने मनोबिगो कार्य लोक से सम्बन्धित आचरण करता है।^६

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ३३३। १२७

२ " " " ३३३। १३०

३ " " " ३२७। अठ-पट्ट, ३२९। ९०

४ " " " ३३७। ९

५. बही पृष्ठ ३२३। २७

६. बही पृष्ठ ३२२। ९९

समीक्षा

नरहरि के नीति छप्यों के सम्बन्ध में किञ्चिन्तनी है कि वे भक्तों को सत्य कर के रखे गये थे। जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं इनके कुछ बाद भक्तों को सत्य कर लिखे गये हैं और इनके कई फुटकल छप्यों में भी 'छितपति भक्तों साह सुनों'^१ 'गुरु धर्म भक्तों साह सुन'^२ आदि पद्यांश भी मिलते हैं। इनसे स्पष्ट है कि नरहरि भक्तों के लिए प्रबन्ध लिखा करते थे और दरवाही कर के लिए ऐसा प्रस्तावना नहीं कहा जा सकता। फिर भी उक्त प्रवाद को पूर्णतः सत्य मानने में आपत्ति यह है कि धर्म छप्यों में स्पष्टता बनता को सम्बोधित किया गया है। उनमें 'बन सुनो सकल नरहरि कहत'^३ 'नर सुनो सकल नरहरि कहत'^४ आदि पद्यांश उपलब्ध होते हैं। इसके प्रतिरिक्त जिन छप्यों में भक्तों को प्रत्यक्ष रूप से सम्बोधित किया गया है प्रामः उनके भी नैतिक सत्य राजा और प्रजा दोनों के लिए समान रूप से पद्यप्रदर्शक हैं। जैसे—

शाठ सनेह से पराहि मान बेचाहि जे सुख कहं ।
 विष बियोग सुख चाहिहि सांकरे तबहि स्वामि कहं ।
 नृपति मित्र कर गताहि धैस दुर्जन संप देखिहि ।
 मनु बंधहि पर रमनि सर्प सुख भगुन देखिहि ॥
 बुद्धहि ते सनग नरहरि निरति बड़ धाने विस्तरहि पुत्र ।
 पछिनाहि ते नरहरि भक्ति बिन तु छितपति भक्तों साह सुन ॥^५

यद्यपि नरहरि ने परदार परमन तन-बन-बीजन की बचसता विविध पूर्व लक्ष्य वरी भक्ति मित्रता कर्मियुग आदि ऐसे नीति-विषयों पर भी काव्यरचना की है जो प्रायः नीतिकाम्य में अंतर्लित होते हैं तथापि इनकी विशेषता उपर्युक्त विनोदमय तथा तर्कपूर्ण वाद रचना और साहस मय स्वामि-भक्ति रोजोभित व्यवहार आदि के अंतर्ग में है। प्रायः नीतिकवि धर्म के महत्त्व पर पर्याप्त लिखते हैं परन्तु न उन्हें धर्म पर इनके आश्रयदाताओं को कभी धर्म की कमी रही इसलिए इस विषय में वे बार्धक्य से ही प्रतीत होते हैं। उनके कर्मों के व्यक्तियों से प्रायः सम्पर्क में आने के कारण उनके जन्मजात उत्कृष्ट गुणों का उल्लेख भी उन्होंने विशेष रूप से किया है।^६

नरहरि ने हुमायूँ और साह आदि शासकों के भाग्य के उतार-चढ़ाव अर्थात् प्रायः से देखे वे और संसार के अर्थनीच का भी उन्हें पर्याप्त अनुभव था, अतः इनके नीति-कृति में पड़ी-सड़ाई तथा सुनी-सुनाई बातों की अपेक्षा निजी अनुभवों की मात्रा बहुत अधिक है। फिर भी व्यक्तियों तथा धर्म कई पक्षों में संस्कृत के नीतिकाम्य

१ कविताकौमुदी प्रथम भाग आठवाँ संस्करण, पृष्ठ २३६। १

२ ३. बहो पृष्ठ २४०।४, २४१।६, २४१।८ २४०।३

६ कविता कौमुदी, प्रथम भाग पृ० २४०।३, २४१।७

का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। जैसे—

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् बिलमेति च पाति च ।

अधीत्य बिलत लीलाः, वृत्ततस्तु हतो हत ॥^१

बिल के घटे पड़त नाहीं तब सप्त सत्य घटे घटि जय ॥^२

नहना अभावक होगा कि मरहूरि ने महाभारत के 'वृत्त' के स्थान पर 'साहस' और 'सत्य' कर दिया है (घोर के घी वृत्त के अंग ही हैं) सेप भाव अर्थ-का-र्यों है।

रस-परिपाक की दृष्टि से मरहूरि का अधिकार्य विषय महत्वधारी नहीं है। इसके अध्ययन-काल में पाठक के मन में असाह साहस वृत्ति मति घका बया हास निर्दोष धारि कई भाव अक्षय स्फुरित होते हैं परन्तु अन्य उपकरणों के अभाव से वे रस-रक्षा तक न पहुँचने के कारण पाठक को ध्यानव्यभिचार करने में समर्थ नहीं होते।

मरहूरि का अधिकतर नीतिकार्य सप्य अर्थ में है और उसमें अक्षयी भाषा का प्रयोग किया गया है। राज-वरवार में फारसी का बोलबासा होने अधिकतर नीति-पदों के अक्षर के लिए लिखे जाने तथा जनता में भी अज्ञानियों से फारसी-अरबी के शब्दों का प्रचार हो चुकने के कारण इन्होंने साहि बिताब यात्री आदि अनेक विदेशी शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। संस्कृत और फारसी के उत्तम शब्दों की अपेक्षा इनकी प्रकृति अक्षरों की ओर अधिक बिराई पड़ती है जैसे—द्रव्य दृष्य वृष परस्पर आदि के स्थान पर वरं कृपिन घिन परसपर और बहन सबी लुवा आदि के स्थान पर बहत सबी लुवाब आदि अर्थ ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं। इनकी भाषा में प्राकृत के समान द्वित्व शब्दों का बाहुल्य पाठक का ध्यान हठात् अपनी ओर आकर्षित कर लेता है जैसे—एक भिल कज्ज अज्जहि रिहम्ही भग्गरहि, बोस्सहि धारि। बुन्नेनी के अक्षर पुष्य एक अक्षर के सर्वनाम में तथा राजस्वानी के अक्षर भग्गा आदि प्रयोग भी मरहूरि के कार्य में उपसम्भ होने हैं। मट्ट बस में उत्पन्न होने तथा मुक्यत राजाओं के लिए लिखने के कारण ही कर्वाबिद् इन्होंने बरं धारि पूर्वों के समान सप्य और उत्तम द्वित्व शब्दों का प्रयोग अधिक किया है। मरहूरि ने 'अरे उपर जस सौन' एक पंख हुई काव्य 'सर्वमुक्त अमुनि मेस्ताहि' धारि मुहावरों और लोकोक्तियों से अमह-अमह अपनी भाषा को प्रभावक तथा भावव्यञ्जक भी बनाया है।

विद्या की दृष्टि से मरहूरि के 'बाहु' तो निरालम्बकार्य के अक्षर माने जा सकते हैं और वेप पक्ष मुक्तक हैं। कवि द्वारा प्रयुक्त अर्थों का अस्मैक उपर कर हो चुक है। इनमें से नीति की उक्तियों अर्थ अक्षर अक्षर तथा बोझ अर्थों में कही गई हैं।

शब्दों में कवि ने कथक-कार्य-शैली तथा संवाद-शैली का निश्चय कर दिया

१ अक्षयुतामरः : व्याख्यान माता पृ २११

२ अक्षरती वरवार के हिन्दी कवि पृ० २३६

। इसके अतिरिक्त तत्त्व-निरूपक उपदेशात्मक अथवा उपदेशात्मक तथा अध्यात्मिक कृतियों में भी धर्मिक सूक्तियाँ कही गई हैं । कुछ इने-गिने पद्यों के सिवा मरहूरि ने लंकार-प्रयोग की घोर विरोध ध्यान नहीं किया । अलंकार स्वभावतः आए तो प्रत्येक पद्य में हैं परन्तु ऐसे सहज रूप में कि कविता पर साहे हुए प्रतीत नहीं होते । रास्यारिकारों में छेदानुप्रास, व्युत्पत्त्युप्रास तथा यमक और अर्थात्कारों में रूपक उपमा, अलंकार एकावली^१ और अर्थात् शीघ्र^२ कुछ अधिक हैं ।

मरहूरि के नीति-काव्य में प्रसाद माधुर्य और शोभ तीनों गुण यथास्थान पाये जाते हैं परन्तु शोभ की प्रवेष्टा प्रसाद और माधुर्य का प्राथम्य सधित होता है ।

मरहूरि और रहीम के निम्नलिखित वाक्यों में भाव और भाषा का साम्य इतना अधिक है कि इन्हें दो कवियों की कृतियाँ मानना कठिन है । सम्भवतः रहीम ने मरहूरि के वाक्यों को कुछ आधुनिक रूप दिया है—

‘मरहूरि’ शानि हरिह बस तऊ सो मांगव जोग ।

जो सलित बस सुपियो कुमाँ यम सब लोग ॥^३

‘रहीमन’ शानि हरिह तर तऊ जाँबरे योग ।

ज्यों सरिततन सूना परे, कुमाँ जनाबत लोग ॥^४

सब विचारकर कह सकते हैं कि कुठिउल्लम की प्रधानता तथा कल्पना-उत्पन्न और भावतत्त्व की न्यूनता के कारण मरहूरि का अधिकतर नीतिकाम्य सामान्य कोटि में ही रखा जाएगा ।

२ रासा टोडरमस

टोडरमस खत्री का जन्म सन् ११८० में हुमा या और निजम संवत् १६४६ में । पहले ये देरगाह सूरी के दरबार में उच्च पद पर आसीन थे परन्तु उस बंद के विप्लव हो जाने पर अकबर के भूमिकर विभाग के मन्त्री बने । इन्होंने अपनी कार्य कुशलता तथा मुझ-कीर्तन के कारण अकबर से रासा का उपनि तथा बंगाल की सूबे दारी प्राप्त की थी । राजकीय कामकाज में हिन्दी के स्थान पर अरबी का प्रचलन इन्हीं ने कराया था । वर्तमान बहो-जाणा हुन्दी भाषि का ङग इन्हीं ने प्रचलित किया था । इनका कोई सुपुत्र्य संघ तो उपलब्ध नहीं होगा कुछ पुटल्लम कवित्त-मन्त्रिये प्राचीन हस्तलिखित तथा नवीन प्रकाशित संग्रहों में देखने में आते हैं । प्राप्त पद्यों से अनुमान होता है कि नीति-काव्य की रचना तथा जीवन-धर्म में इनकी विशेष रुचि थी । कहते हैं व्यापारियों की सुविधा के लिए मुद्रिया सिधि का प्रचार इन्होंने किया था ।

१ + अकबरी दरबार के हिन्दी कवि कुष्ठ २३८ । १, २३८ । २

३ वही, पृ० ३२३ ६८

४ सं० अकबरनशास रहिमन बितास, (इलाहाबाद १८७७ वि०,) पृ० २१ । २०२

इनके व्यापार-सम्बन्धी छन्द ही काव्य-क्षेत्र में परिष्कृत नहीं हो सके परन्तु नीति-रचना प्रबन्धी है। कुछ उदाहरण नीचे—

मुंदा निधि बैजबापरी प्रति कठिन, स्वरस्यञ्जन ध्योहार ।
 तारे जग के हित सुगम, मुंड कियो प्रचार ॥^१

बही-झाठा बाम जमा बखित्तन करच सिर पैदा पर पैट ।
 ऊपर नाम बनी लिखे हस्ते पुन री डेट ॥^२

जार को विचार कहा, यतिका को लाभ कहा,
 गवहा को पाल कहा धाँचरे को धारसी ।
 निर्बुली को पुख कहा बाम कहा बानित्री को,
 सेवा कहा लूम की, सरद को सी डार सी ।
 मधपी को सुधि कहा, प्राँच कहा लंपटी को,
 नीच को बचन कहा, स्पार को पुकार सी ।
 डोडर सुकधि ऐसे हठी से न टायो हटै,
 भाँचै कही सुबी बात धाँचै कहो पारसी ॥^३

डोडर मत के काव्य में हृष्य-तत्व तथा कल्पना-तत्व का प्रभाव-सा है बुद्धि-तत्व तथा प्रसङ्ग-बमलकार की प्रचलता है। मत-इसका काव्य सामान्य कौटि में ही रहने योग्य है।

३ बहा (महेसबास, राजा बीरबस)

मट्ट बहाण बंगाबास के पुत्र महेसबास का कर्म कानपुर जिले के तिकवाँ पुर (त्रिविक्रमपुर) नामक गाँव में सं० १३८५ के लगभग हुआ था। बड़े होने पर सम्भवतः मट्ट बहाण में से रहते अपना साहित्यिक उपनाम 'बहा' रख लिया और धरबार से 'बीरबर' की उपाधि प्राप्त की। धरबार के दरबार में भाले से पुत्र ये कासी, बालिजर और रीवा के राजाओं की सभाओं में रह चुके थे। ये अत्यंत वाक्पटु तथा प्रत्युत्पन्न-मति थे। अपनी बुद्धिमत्ता के कारण ये महरत्नों में सम्मिलित कर लिये गए। उत्तम कवि होने के कारण धरबार ने इन्हें 'अभिरथ' (मसिकुसुओधरा) की उपाधि से सम्मानित किया। इनकी योग्यता से प्रसन्न होकर धरबार ने इन्हें 'राजा' की उपाधि और पंजाब में नगरकोट (जिला काँगड़ा) के पास बागीर दी। संवत् १६४० में धरबार ने इनकी म्यामप्रियता पर रीझकर इन्हें म्यामाधीन पद पर नियुक्त किया और बोहचारी से पंजाबवादी बना दिया। धरबार द्वारा प्रवर्तित 'बीके

१ धरबारी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ४३३

२ बही पृ० ४३३

३ धरबारी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ३२

इसाही क ये एक-मात्र हिन्दू संरक्षक य धीर अकबर के प्रियतम मित्र थे । स्वात के युद्ध में जब सनायतियों से पारस्परिक द्वेष के कारण घुमकार माघ सुबो १२ सं० १६४२ को इन का देहांत हुआ तब अकबर ने वो दिन तक मनघन किया और उसके शोकास हृदय से निम्नांकित शोका निस्सृत हुआ—

बीन जान सब बीन, एक कुरायो बुसह बुस ।

तो अब हम को बीन कतु नहि राख्यो बीरबर ॥

बहा थाता है इन्होंने कम्म्यी के एक समानित विप्रबंध की कम्म्या का पाणि ग्रहण किया था । इन के ज्येष्ठ पुत्र का नाम सामा था और दूसरे का हरमराय । इन की कम्म्या इनके ही समान बुद्धिमती बही जाती है । बीरबल बल्मभद्रप्रदायी और छीतस्वामी के यजमान थे ।

अकबर के समा-कवि यम ने बीरबल के गुणों पर अनेक पदों की रचना की है । कहा जाता है कि बिचबवास के एक सबैय पर प्रपन्न हो बीरबर ने उन्हें छ कठोड़ की तुंदियां प्रदान कर दी थीं । इनका एक प्रम्य सल्लेख्य मुण्ड है—बाघी-गध्यपुण विनोद प्रियता । अकबर जैत्र मितमायी पम्बीर तथा यौरवप्रिय घासक को भाँवों का परिहास तो खिन्नर हो ही न सकता था बीरबर के सम्य छिष्ट विनोद ने प्रबन्ध उसे आकषित कर लिया था । बाजार में बीरबर के नाम से प्रसिद्ध, कुटकसों की अनेक पुस्तकें प्राप्त हैं परन्तु सम्भवतः उनमें से कोई ही कुटकता उनका हो । हाँ इस बात की सम्भावना है कि बीरबर ने कुछ समस्यापूर्ति के छन्दों की रचना अकबर के इच्छानुसार की हो ।

ब्रह्म की रचनाएँ—ब्रह्म के समयग २०० स्तुति पद्य तो प्राप्त हुए हैं परन्तु ग्रंथ एक भी नहीं । उन से सात होगा है कि ब्रह्म मुख्य रूप से शृंगारी तथा अक्षत कवि थे ब्रह्म भीति क पद्य तो इने-गिने ही हैं । शृंगार के अत्यन्त इन्होंने र-सीर्ण्य वर्णन नायिका-निरूपण तथा प्रकृति-विवरण किया है और अक्षत होने क कारण मुरली-भापुरी रामलीला सोपी बिहू घादि का । यंगा-स्तुति समस्यापूर्ति आदि पर भी इनके कुछ छन्द उपलब्ध होते हैं ।

वैयक्तिक नीति—पेट चिरकाल से नीतिकवियों का प्रिय विषय रहा है । 'ब्रह्म' ने भी जगत् को उदरपूर्ति के लिए विविध सीलाएँ करते देव एकधिक पदों का रचना की है । जैसे—

पेट से घायो तु पेट को घाबत हायों न हेरत घामब छाही ।

पेट दिवो बिहि पेट मरे सोइ 'ब्रह्म' मने तिहि घोष न जाही ।

पेट पयो तिख देतहि देव रे पाविठ पेटहि पेट समाही ।

पेट के कात्र फिर दिन राति तु पेटहु से परमेसर नाही ॥^१

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ १३१।३३

कबीर धारि अनेक मन्त्र कवियों ने जिस प्रकार सदर-पूति की विन्ता से मुक्ति का साधन प्रभु-विश्वास बताया है उसी प्रकार, परन्तु कहीं सरस भाषा में, 'ब्रह्म लोगों को विन्ता-त्याग का उपदेश देते हैं—

जब बलि न के तब ब्रह्म बियो जब बलि भए कहा प्रान न बँहै ।
 बीब बसे हि जन में बिल में तिन की सुबि सेइ सी तेरिहु लहै ॥
 जान को रेत प्रजान को रेत जहान को रेत सो'तोहूँ कं बँहै ।
 काहूँ को सोच करै मन मूरख सोच करै कसु हाव न देहै ॥^१

'ब्रह्म' का उपयुक्त पद्य पिछसे साढ़ तीन सी बयों से अरुन्धम लोगों को भीरव प्रदान करता पाया है और साथ ही अनेक सुगठित-अपठित लोगों के कठ से सुना जाता है। ब्रह्म ने मज्जता-भारण पर बहुत बल दिया और अनेक व्यक्तियों तथा पदार्थों में विद्यमान मज्जता की प्रसंसा करने के पश्चात् इस बात पर खेद प्रकट किया है कि सूजा काठ और अज्ञानी नर कभी नहीं झुकते ।^२

पारिवारिक नीति—'ब्रह्म' की पारिवारिक नीति भी अनेक कवियों जैसी ही है। ये उन के प्रति अपने कर्तव्यों के निर्वाह में आत्मिक अनुभव नहीं करते बल्कि यह समझते हैं कि मनुष्य इनके हाथ की बँब बन जाता है—

बलि कोऊ कहै पित कोऊ कहै सुत कोऊ कहै तिहूँ ताप लयो हों ।
 प्रभु कोऊ कहै जन कोऊ कहै सु बहो तुम ही तुम काहि बयो हों ।
 'ब्रह्म' भन जित ही कित हो तित ही तित हाव को बँब भयो हों ।
 पाली तिहारो कियो तुम ही इन बीब के लोपन बादि लियो हों ॥^३
 सबैये का उत्तरायेँ कियना अनुमूति-मूर्ख तथा ममरूपक है, यह सङ्कल्प ही अनुभव कर सकते हैं ।

साताजिक नीति—बीब-बया वैष्णवधर्म का मुख्य धर्म मानी जाती है। साथ के समान सन्मन्त्र उन दिनों भी साकाहारियों को वैष्णव माना जाता था बाह्य के धर्म्य धारक्यक धार्मिक धुणों से मुक्त न भी हों। ब्रह्म ने अपनी अमरकारी कल्पना के अन्त में नबाब जामे बालों को भी वैष्णव सिद्ध कर दिया है—

काम कबूतर सामल तीतर जान मुलैलन मार मिराये ।
 पारबंड के पर दूर किये घर मोह के घटिक निकालि डरये ॥
 सबम काटि मसालो बिचार को सामु सनाब से ताहि हिलाये ।
 ब्रह्म हुतासन लेकि के बाबरे बँधन होत नबाब के जाये ॥^४

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ३२४।३५

२. वही पृष्ठ ३२४।३५

३ वही पृष्ठ ३२७।३४

४ वही पृष्ठ ३२८।३३

समान में जो व्यक्ति अपना कर्तव्य-पावन नहीं करता वह, ब्रह्म के विचार में 'समुद्र में डूबाने योग्य' है। 'बाख़्शी बाँधि समुद्र में डारा' तथा 'बाख़्शी बाँधि समुद्र में बोरो' आदि पर ब्रह्म-कृप समस्या-श्रुति अवशोक्तनीय है—

पूत कपून कुलक्यनि नारी मरुत परीस भजाय न सारो ।
 बग्गु कुबुधि पुरोहित लम्पट जाकर चोर प्रतीय पुतारो ॥
 साहब मम प्रराक तुरंग किसान कठोर दिबाम नकारो ।
 'बहू' मन मुनु साहू अरुबर बारहो बाँधि समुद्र में डारो ॥^१

परन्तु कर्तव्य-समुद्र में डूबाना भी समस्या-श्रुति के लिए ही था। बीरबस यह बात मत्ता मीति जानत थ कि बुरी-स-बुरी बन्धु का भी उपयोग होता है। इसी लिए उन्होंने अपनी निरालो मूक का परिचायक निम्नांकित कवित्त रचा—

डूटे पर ईक ताकी मिकी मुड करं करो,
 ताको स प्रभाव देव बैबिन बजाइये ।
 फूट के कपास पन राखत है धामम की
 ताके होत बरत (सब ?) कहीं ली गिनाइये ।
 सड़े सब सन ताक स्वत बन कापत्र कं
 तानर फुरान पी पुरानहू सित्राइये ॥
 कहै कवि 'बहू' सुनो अरुबर बारसाह
 डूटे कूटे सड़े ताको या बिबि सराइये ॥^२

धार्मिक नीति—मन-व बियों तथा मरुहरि के समान इन्होंने भी धन के महत्त्व का बखान नहीं किया उमटा धनोराज न में तीन लामों की निम्ना ही की। परन्तु इस निम्ना का वास्तविक कारण धन के प्रति इय न या सोचों की ईश-विमुक्तता थी। 'मुबहू होती है पाम होती है, उन्न योही तमाम होतो है' का हिन्दी-कान्सार ब्रह्म के धनो-वर्ती सर्वे में देखा जा सकता है—

एन बिना (बत ?) धाम सो कामु है काहू सो सकरि काहू की बीबो ।
 ब्रह्म मन अपरीस न काप्यो न जानियो की करि से नपि बीबो ॥
 भोर से राति लों राति से भोर लों कासि कियो मु तो धाम ही बीबो ।
 साहबो सोहबो बार हा बार, अमार के कामहि ज्यों जल पीबो ॥^३

मिथित नीति—मिथित नीति के लक्ष में ब्रह्म का नाम्य मन्त्र बियों वा-सा हो है। यह संसार स्वप्न-कर्म अज्ञान है इस से विनती तीव्र मुक्ति मिल सकता है प्रभु का

१ वही, पृष्ठ ३२६।७६

२ कविता कीबुरी प्रथम भाग प० २६।१४

३ अरुबर बारसाह के हिन्दी कवि, पृ० ३२६।७८

४ वही पृ० ३२७।१३

सवास्मरसु रचना चाहिए यदि । धाव के समान विभिन्न मनुष्यों की ऊँच-नीच रथा-
का कारण स्वार्थी धूर्तपति या विविध धर्म यदि नहीं कहे बने प्राचीन कवियों के
समान पूर्वकृत स्व-कर्मों को ही उसका कारण कहा गया है । जैसे—

इस धाव की धौड़ बिनोद करै, इस धाव के कात फिर सु बुझारी ।

एक विद्या बहु पुष रमै एक छोटी सी कंत बन्नी बहो नारी ॥

एक बंधन तेज दुरंग यहै इक मापत भोज फिर सु बुझारी ।

'बहु' भर्मे फिर मेव ठरे वर कर्म की रेष ठरे नहि डारी ॥^१

'बहु' का नीतिकार्य उपदेष्टात्मक और भक्तिप्रवण है । वे नीति-विषयक
बात करते हुए व्यक्ति को विस्मृत नहीं कर सकते । प्रकृति-मार्ग की अपेक्षा धर्म के
नीति-कार्य में निष्कृति-मार्ग ही प्रबल दिखाई देता है । यथायोग्य व्यवहार या वास्त-
विक नीति इन के कर्मों में कुर्वन है । इनके नीतिकार्य में भक्ति तथा धान्त रस
की पक्की व्यवस्था हुई है । भाषा साठ-सुबरी ब्रज है । कविता सर्वथा यदि छन्दों
में नीतिकार्य का प्रयोजन किया गया है प्रायः उपदेष्टात्मक, तत्पत्निरूपक तथा
सवस्वापूर्वक धर्मिकी व्यवहार हुई है । सब नीति-रचना मुक्तक छन्दों में है ।
धर्मकारों का सुप्रयोग इन की विशेषता है । गहनत उपमाओं से काव्यकमेवर को
प्रसन्न करने के लिए तो ये विख्यात हैं ही—

वस्तुम बर कवि संय के कवना में बसबीर ।

केवल धर्म गम्भीरता सुर तीत पुन बीर ॥^२

निम्नांकित पद्यांशों से इन की धर्मकार प्रयोग की कुशलता समझित होती
है—

जात बन्धो झूरात न निकु बुर बबुरे को पय भयो हों ।^३ (मुष्टोपमा)

बाहरी सोहरो बार ही बार बमार के कामहि ज्यों बस वीरो ॥^४ (उपमा)

ऐसे पर मन मन्धो जाग्यो न कस्तपति,

धर्मकृत धौंधी परयो हाव लिए हे दिया ॥^५ (धनुमास सोकीकित)

'बहु' हुतासन वेदि के बावरे, बंधन होत कबाव के काय ॥^६

(रूपक विरोधाभास)

इन के नीति-कार्य में धोज का प्रभाव-सा है परन्तु मायुर्व तथा प्रसाव कुठ-

१ एकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ३५४-५५

२ वही, पृष्ठ १३३

३ वही, पृष्ठ ३५८-६०

४ वही, पृष्ठ ३५७-५३

५ वही, पृष्ठ ३५८-६१

६ एकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ३५७-६३

कूट कर भरे हुए हैं। इन के कुछ ही पद्यों में प्रकबर को सम्बोधित किया गया है परन्तु शेष पद्य सामान्य रूप में ही कहे गये हैं। सार यह है कि ब्रह्म ने अपने धनु मय के धारार पर कुछ मनीष विषयों पर भी रचना की है और जो कुछ प्राचीन विषयों पर लिखा है वह भी हृदयहारी है। इस प्रकार यात्रा में प्रत्यक्ष होता हुआ भी ब्रह्म का नीतिकाम्य बुण्डुष्टया प्रदर्शनीय है, 'कवियज्ञ' प्रपाधि को सार्थक करने वाला है।

४ गंग

महृ ब्राह्मण नय कवि का पूरा नाम रंगायर या गंगाप्रसाद कहा जाता है। इनका जन्म इटावा जिले के इकनौर धाम में सन् १५६३ के लगभग हुआ था। स. १६२० में गंग ने स्वयं छन्द बरनन की महिमा प्रकबर को सुनाई थी। काव्य-प्रेमी प्रकबर की ही हुई समस्याओं की पूर्ति तथा अपनी सत्साधारण प्रतिभा द्वारा गंग की ही प्रकबर, रहीम बीरवर आदि के सम्मान्य बन गये। कहते हैं निम्न लिखित छन्द से प्रसन्न होकर रहीम ने इन्हें छत्तीस लाख का पुरस्कार दिया था—

कवित प्रकबर रह गयो मयल नहि करत कमल पन ।
 कहि कनि मनि नहि तैल तैल नहीं बहुत पवन पन ॥
 हस मानसर तगयो कबक कबको न निलै प्रति ।
 बहु सुन्दरि बरमनि बुख न कहैं त करै रति ॥
 छलमलित तैल कवि गंग मनि धनित तैल रवि-रय छस्यो ।
 सानानसान बरम सुवन कबहि कोब करि तय कस्यो ॥^१

परवर्ती कवि लुब्धकन्द के उक्त पारिवीचिक का प्रस्तुत प्रसंग पर अपनी कविता में किया है—

‘अप्यै वै छत्तीस लाख गये ज्ञान जाना दियो’।^२

गंग का मुज-सम्मान स्थिर न रहा। ‘चार दिन की बीनी और फिर सैंधरी रात’ वाली बात बहोलीर के वासनकास में इन पर बीनी घोट इन्हें बिषय हो हृदय की वेदना इन कवित में व्यक्त करनी पड़ी—

एक दिन ऐसी जाये शिबका हू पञ्च-धात्रि रही
 एक दिन ऐसी जा मे सोपबो को लहसो ।
 एक दिन ऐसी जा मे मिलन मलोबा लाग,
 एक दिन ऐसी जा मे तामे को न पयसो ॥

१ कविता कोमुबो पहला भाग पृष्ठ ३३७

२, परबरी दरबार के हिरो कवि पृष्ठ ११६

एक दिन ऐसी छा मे राजन सो प्रीति होत
 एक दिन ऐसी छा मे कुवमन को पहसो ।
 बहु कवि संग पर मन में बिचार देख
 प्राण दिन ऐसी छात काल दिन कै-मसो ॥१

एक बार लड़ी अनेक बार कवि को अपने जीवन में उठार-बढ़ाव देखते पड़े थे और उनका सजीव वर्णन कवि ने अनेक पद्यों में किया है।^१ जब जब ६७ वर्ष के थे तब अहीगीर सिंहासनाब्द हुआ। प्रारम्भ में अहीगीर की प्रवृत्ति में जो संघ के मुखर पद्य लिखे परन्तु जब अहीगीर नूरजहाँ के हावों की कठपुतली बन गया और राजकीय व्यवस्था बिगड़ने लगी तब अनेक प्रतिमासाजी वृत्तारिणों के समान पंज का झुंझा भी साहज्जादा सुरम की ओर हो गया। यय ने कभी नूरजहाँ का मुलापान न किया था यह भी सम्राज्ञी का अपमान सा ही था। इस प्रकार नूरजहाँ साहज्जहाँ के प्रेमियों से दृष्ट ही की कि गय के बच एक शय्य कारण था उपस्थित हुआ। नूर जहाँ के एक सम्बन्धी जैन खाँ ने पंज के प्राण इकगौर क साहाय्यो की कृपयता-पूर्वक हत्या कर डाली। यय ने इस तथा अन्य क्रूर-क्रूरों की कड़ी आलोचना की। नूर जहाँ जस मुन गई और उसकी उत्तेजना से अहीगीर ने यय को गज म कुचसबाज का प्रदेश दे दिया। खीम के पंग को बचाने के लिए यमुनय-वियय की परन्तु व्यर्थ। जब अस्ताशे ने पंज को मस्त हाथियों के समस्त सा लड़ा किया तब ए-प्यवाही और निर्भीक पंज ने यह दोहा पठ कर प्राण दे दिने—

कबहुन महुंदा रत बहु कबहु म बाजो बच ।
 लकस ललाहि प्रनाम कर बिदा होत कवि पंज ॥२

यह दुःख पटना सं० १६८० क कुछ पूर्व हुई। नापरी प्रचारिणी समा की १९३२ ३४ ई० की खोज रिपोर्ट में यय की ययपदावली संघ पञ्चीषी और संवरस्ता वाली नाम की तीन छवियों का उल्लेख है। परन्तु 'अन्य अन्य बरनन की महिमा' के अतिरिक्त संघ-द्वय कोई संपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता ४०० के लगभग स्फुट पद्य ही मिलते हैं। यय जैसे प्रतिमासाजी कवि में समयभ्रम साठ वषों (सं० १६७०-८०) के साहित्यिक जीवन में कई उत्तम पंज दिने होंगे परन्तु पात्र के सम्भवत नूरजहाँ के कारण प्रकाशका मुख नहीं देख सके। शृंगार और भक्ति पंज की कविता के मुख दात्र हैं तथा कीर्त्य और नीति पौरु। पंज ने नायिका मन्दिष्य राम कृष्ण आदि पर धार्मिक लिखा है और मायवराताश्यों की भीरता नीति उपदेश आदि पर मून।

१ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृष्ठ १२२

२ लड़ी

पृष्ठ ४४३ ४४३

३ लड़ी,

पृष्ठ १३८

बंधितक नीति—गंय के नीति-काव्य का एक सब विस्तृत है। पारिवारिक पारिवारिक भादि प्रत्येक प्रकार की नीति पर इन्होंने सुन्दर काव्य-रचना की है। बंधितक नीति के अन्तर्गत इन्होंने बाणी के सुप्रयोग पर बहुत बल दिया है और उसका कारण स्पष्ट है। राजसभाओं में जो धन-सम्पदा और मान-प्रतिष्ठा अवश्यपूर्ण स्थितियों से प्राप्त हो सकती थी वह अग्य जवापो से नहीं। मनुष्य का मोक्ष बाणी द्वारा तुरन्त पाव लिया जाता है—

कहूँ कबि रंग सुनो साहित के साहि सूरा
घाबनी को तोल एक बोल में विद्यानि ॥^१

परन्तु कवियों को बुद्ध तो एक होता था जब श्रोता अपनी मूर्खता के कारण उनके अर्थगाम्भीर्य से परिचित न हो पाते थे। इसीलिए गग को सिधना पड़ा कि मूढ़ के सम्मुख बिद्या का प्रकाशन नीति बिरह है—

कहूँ तै समझ नाहि समुझए समझे नाहि
कबि लोग कहूँ काहि कं प्राबि सार सी।
कारु को कपूर जैसे मरकट को सुपन जैसे,
ब्रह्मज्ञ को मरका जैसे नीर को बनारसी ॥
बहिरे के प्रागे ताम चाप को सघार जैसे
हिजरे के प्रागे मारि लापति अंगार सी।
कहूँ कबि घब' मन माहि तो बिचार बेधो
मूढ़ घाये बिद्या जैसे अघ प्रागे धारसी ॥^२

संसार में, विशेषतः राजदरबार में मूर्खों के कारण मनुष्य का मान होता है। इसीलिए गंय ने सुनीपार्वन पर बिद्यप बल दिया है।^३ गंय ने देखा कि मनुष्य पशुओं और अश्वजसाय से गुली तो बन जाते हैं फिर भी उनके स्वभाव में अन्तर नहीं आता। इसीलिए उन्होंने स्वभाव के सम्बन्ध में यों कहा—

पावक को बल-बिन्दु बिचारक सुरज ताप कूँ पन लियो है।
ध्यापि कूँ घर तुरंग को बाबुऊ घोषण कूँ बस बंड बियो है।
हस्ति महामर को किय अकुस भूत पिताघ कूँ मंत्र कियो है।
दोदर है सब को सुसकारि स्वभाव को घोषण माहि कियो है।^४

पारिवारिक नीति—धन के आधिक्य और साधनों की सुलभता के कारण प्राया दरवापी सोय अविद्याये बन जाते हैं। पारिवारिक जीवन को बिषमय बनाने वाली इस बिषम कुटेव को मिटाने के लिए गंय कहते हैं—

१ २ धरदरी दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ४३३।१५, ४३३।१५

३ ४ कही

पृष्ठ ४३४।१०२ ४३४।१११

बचल नारि सो प्रीति न कीजिए, प्रीति किए हुए होत है भारी ।
 काम परे कछु घान बने कनु नारि की प्रीति है प्रेम कटारो ॥
 लोहे के घाव बसा से मिटे पर बिल को घाप न जाय बिलारो ।
 'यग' कहै सुन साहू अकबर नारि की प्रीति घगार से धारी ॥^१

पारिवारिक नीति के अन्तगत संन में पूट के दोषों का बहुत प्रमाणी बण न किया है तथा बहिन के घर रहने वाले भाई और चास के घर में रहने वाले बम्बाई को बुराई की है ।

सामाजिक नीति—सामाजिक नीति में संन में दुर्जनों का स्वभाव स्थियों की श्रमता मूल्य मित्र वाचक और दानी के बीच में हस्तक्षेप अनुचित भ्रूत रमाने से कुकर्यों का गोपन असम्भव आदि अनेक विषयों पर सुन्दर शिक्षा है । समाज में अनुप्य स्वाध-वध क्या-क्या करता है, इस बात का मार्मिक वर्णन गंग में यों किया है—

वर्जहि धर्मन हीछ भये घर वर्जहि मोबिह बनु अराये ।
 वर्जहि द्रोपदी वासि भई अर वर्जहि भीम रसोई पकाये ।
 यज बड़ी सब लोगन में अर वर्ज बिना कोई धाये न जाये ।

'यग' कहै सुन साहू अकबर गर्भ से दीबो गुलाम रिम्बाव ॥^२

समाज में अशक्तियों के अरिज की पहचान के लिए गंग का निम्नांकित संवेद्य पर्याप्त सहायक हो सकता है—

नीति अने सो महीपति जानिये, भीर में जानिये लोन दिया को ।
 काम परे लख आकर जानिए ठाकुर जानिए बूक किया को ।
 पात्र सो मातन माहि विद्यानिए जैन में जानिए मेहु तिया को ।
 पग कहै सुन साहू अकबर हाथ में जानिए हूत दिया को ॥^३

प्रायः राजकर्मचारी कोई छोटा-मोटा पद पाकर भी ऐसे भवमत हो जाते हैं कि कद्रवापण निर्बन्धों की अकथा बृहत्कोरी अस्याय विमुनता आदि दोषों में अड जाते हैं । ऐसे लोगों को सावधान करने के लिए गंग कहते हैं—

रजो बुन कर्त हूँ बीनत अँ जाने महीं
 लखे बोले बीन ताते लन में म्हाप्ये ।
 लान लख कहै कछु म्याव की न बून्हे बात
 बिपरनु म्याव सो बड़ीये मार आये ॥
 कहै कवि 'गंग' सोते जान बुपवाई लख
 मौड़ नीड़ हाथ अँ बे खेरि पखनार्ये ।

बहा पयो दिन चार गद्दी के मुसद्दी भये,
बही के करवा सब रद्दी होय चावैये ।^१

धार्मिक नीति—धार्मिक नीति के अन्तर्गत गंव न माचक्या को बुरा ही नहीं,
संसार भर में सबसे बुरा काम कहा है—

बुरो प्रीति को पय बुरो अंगल को बासो,
बुरो नारि को नेह बुरी मूरख सो हाँसो ।
बुरो सुम को सब बुरो भयनी घर भाई
बुरी नारी कुतच्छ सात घर बुरो बसाई ॥
बुरी पैठ पंचाल है बुरो सूर को भापनो ।
'गंग' कहै, धरुबर सुनो सबसे बुरो है भापनो ।^२

इस प्रकार माचक को बुरा कहने के अतिरिक्त इन्होंने कुपाय को बाल देने को भी बुराई की है ।^३

निमित्त नीति—निमित्त नीति में कवि ने, उस देश को निवास के अयोग्य कहा है जिसमें जोर तथा साह धीर जमी तथा गुड़ में बिरेक नहीं किया जाता ।^४ इन्होंने दान-मुष्य-हीन जीवन की समस स तुलना करते हुए उदारता-मुक्त जीवन को ही उत्तम माना है ।^५

गंग के नीतिशास्त्र पर एक दृष्टि

यह बात विचित्र-ही लगती है कि गंग के नीतिशास्त्र में राजनीति की चर्चा न होने के बराबर है। मरहूरि ने तो कहीं वही नृपकर्त्तव्यों का उल्लेख किया है परन्तु यम इस विषय में मौन-बलम्बी रहे हैं। कदाचित् इनकी राजनीति-विषयक कविता अतिक्रम प रसिधियों के कारण लुप्त हो गई हो इस बात पर भी निश्वास नहीं होता। जब इनके सामान्य नीतिविषयक बहूतरे पत्र उपलब्ध हैं तो राजनीति-विषयक भी अधिक न सहो कुछ तो उपलब्ध होने ही चाहिएँ। सम्भवतः इस रोग को इन्होंने मरहूरि धार्मिक के लिए ही छोड़ दिया और अपने को सामान्य नीति तक ही सीमित रखा। यम ने एक कविता में बिजया (भाण) की प्रबुर प्रयत्न को है और उसे पराक्रम तथा स्फूर्ति देने वाली कहा है—

नामरह जाय सो तो मरह से काम करे
महुरी को जाय सो तो भावै काम कात्र को ।
कहै कवि गंग गुन देखो बिजया के ऐसे
बिजिया का जाय तो जपट पड़े बात्र को ॥^६

१. वही पृ० ४३५।१३, ४३५।१०८, ४३५।१७७ ४३५।१०३

२. कविता बीमुरी प्रथम भाग, पृ० ३२२

३. वही धरुबरी बगवाट, पृ० ४४५।१६७

परन्तु यह कथन तप्य विपरीत प्रतीत होता है। यह तो सुना है कि भांग पीने पर भूख खूब कमक बढ़ती है परन्तु उससे बीरता घाबि की प्राप्ति की बात कभी किसी ने नहीं कही। घसबता यह तो कहते हैं कि भांग का मत्ता भीस्ता-जनक है। ऐसी दशा में तप्य-विरह्य बात बंग से क्यों कही, यह चिन्तन है। यह बात स्मरणयोग्य है कि पम के याचकता को तो निरूप्यतम कर्म कहा है परन्तु इस बात को भी स्वीकार किया है कि संघर्ष के सिध रास राज्यों को ही नहीं घवतारों तक को ह्रास पसारना पड़ता है—

कग्यादान सैत सब ध्रुवपति ध्रुवधारी,
हृयदान पत्र-बास धूमि-दान भारी है।
राजा भाँवे राबल से रास भाँवे जानन प
सात सुनतानन से भिन्नु छाक डारी है।
भिन्ना ही के काज करि संघ कही ठाड़े हार,
बसि से मुनति सही बाबल बिहारी है।
संघरा के काज कही को ने नहीं भौड़यो ह्रास
अहाँ जँसो बास तहाँ संतोई निचारी है।^{१३}

संग से जीवन में घन्ने-बुरे दोनों प्रकार क दिन देखे वे। बाब में जाहे उन्हें बल-संघरा की कमी न रही थी परन्तु उन्हें ब दिन बिरमुन न हुए से बल पापिन मूख को क्षान्त करने के लिए उन्हें बुरों का उपपहार से बीरबल के पास जाना पड़ा था। घन्नेबल इसी कारण से उन्होंने भूख के कुप्रभाव का मानिक पणन किया है।^{१४} इस प्रकार हम देखते हैं कि यह न सिरी घन्नेबलों की परिस्थितियों के प्रसार से तभीन विषयों पर भी नीति-काव्य रचा। परन्तु इसके घमिक महत्वपूर्ण है उसकी पीनी दृष्टि बिलके ह्राप से सामान्य विषयों को भी घमिक मनाहर पना सासते हैं। जैसे—

(क) संग कही सुन साह धरुवबद, गज से बीनी गुसान रिझाये।^{१५}

(ख) संग कही सुन साह धरुवबद, ह्राप में जानिये हैत हिबा को।^{१६}

स्वार्थ-निष्ठि के लिए वेदनों का बाधों की जाटुकारी करना और बाध के ह्राप ह्राप के प्रम की पहचान होगा मनोबिबातिक तप्य है जो संघ से घोरक न रह सके।

संग का नीति-काव्य भाव-पूर्ण है। उसके घम्ययन-काल में पाठक के मन में मम घसाह स्मृति घंका घामनस्य घमय भास भूति विपाद भूला घाबि भावों का घहन उदक होता है। यह ह्राप में बिभिन्न भावों को घमयाता ह्राप ही पाठक को बुराईयों से घाबपाल तथा पुणों में प्रबुल करता है। संघ की घावा स्वच्छ और प्रवाहपूर्ण बनमाया है परन्तु उसमें इजबत दरम्यान नपाज, गरी, मुगरी बरी रही घाबि बिदेपी घम्यों का निस्तकोष प्रयोग किया गया है। संग देसी और बिदेपी

तरसम शब्दों की अपेक्षा उद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक करते हैं जैसे ताहक—मना-हक, गुपति—निपति, न्याय—न्याय विमूति—ममूत गृह—ग्रिह आदि । कुछ स्थलों पर, छंद की मति को अधिकतम तथा मात्राएँ पूरी करने के लिए शब्द-रूप भी विवृत किये हैं जैसे—देसो—पयसो कैसो—कै—मसो आदि ।

साक्षात्कार प्रयोगों तथा मुहावरों का मुम्बर और प्रचुर प्रयोग रंग के नीति-काम्य की विशेषता है । कहीं-कहीं तो पद्य के एक एक चरण में एकाधिक रुद्रियाँ प्रयुक्त की गई हैं । जैसे—मान के गुण-वर्णन में कवि ने कहा है—

बिजया जो बिलार जाय स्वानहू क काल यह
स्वान हू जो जाय सो तो भावे गबरान को ।
गज राज हू जो जाय कोटि सिंह हाथ डारे,
बनिया जो जाय तो मुटाय बेट नाम को ।^१

इन पद्यांश में 'काल यह' 'भावे गबरान को' और 'मुटाय बेट' इन चार मुहावरों का प्रयोग हुआ ।

रंग ने नीति के लिए मुक्तक काव्य की ही रचना की है । अधिकतर नीति-पद्य सरीया तथा कवित्त शब्दों में लिखे पये हैं । कहीं कहीं पर छन्द तथा मूलना का प्रयोग भी किया गया है । इनकी छन्द-रचना निर्धेय है । कहीं-कहीं बिबाई बने वाला गति-रंग शेष श्लोकियों की अनवसाधता से अनित प्रतीत होता है ।^२

रंग ने प्रायः सारेशारमक शैली का प्रयोग किया है । वे अपने पद्यों के सीम चरणों में तो चर्चों का प्रतिपादन करते हैं और प्रायः चतुर्थ चरण में अक्षर वा सामान्य जनों को सम्बोधित कर जनका ध्यान विरोध रूप से आकर्षित करते हैं ।^३ इस शैली के प्रतिरिक्त रंग ने तथ्यनिरूपक तथा अत्यापेशारमक शैलियों का भी प्रयोग किया है ।

रंग कवि ने जिन कुछ पद्यों में अनेक मेटिक चर्चों का निरूपण किया है वे विशेष प्रसिद्ध नहीं हैं । इनकी श्रिय और प्रभावक शैली तो बहू है जिसमें वे एक ही तथ्य को हृदयगम कगने के लिए अनेक अस्तुतों की योजना करते हैं ।^४ कहीं-कहीं तो अस्तुत के समर्थन के लिए एक ही अस्तुत को जमस इतनी अवस्थाओं में से गुजाराते हैं कि तथ्य का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है । जैसे—

सहस्रन गाँव कपूर के नीर में डार पसासक बोड़ रंगई ।
किसर के मुट दे दे के करि कु अमल बिजय की साँह गुसाई ॥

१ २ कहीं पृ० ४४, ४१, १६७, ४३, ३१, १६६

३ कहीं पृ० ४३, १६३ तथा ४३, ३१, १६७

४ अस्तुत प्रबन्ध के १६६ पृ० पर पत्र-सम्बन्धी पद्य देखें ।

(पद्य ७) सोमरै साहि तपेट धरी पर बास सुवास छु बापन पाई
ऐसे हि नीब कूँ ऊँच की संयत कोटि उपाय कुटेव न जाई ॥^१

एक अर्थकारों के प्रयोग में विशेष कुशल हैं । इन्होंने सभ्यताकारों में प्राप्त नृत्पनुप्रास, छाटानुप्रास तथा शीघ्रा का धीर अर्थानुसारों में उपमा या स्थितिरूप धातु-दीपक तथा अर्थानुसारों का प्रयोग अधिक किया है । प्रयोग में इनकी विशेषता यह है कि वे परंपरागत अस्तुत्यों से ही संतुष्ट नहीं प्रमाद पर आसक्त हृदि बाल कर ज्यों में वे अक्षरप्रयोगों की नवीन अर्थ-मते हैं, जैसे—

काक को कपूर जैसे मरकत को सुपन जैसे,

ब्राह्मण को मक्का जैसे धीर को बनारसी ।^२

काक को कपूर चुगाने धीर बहर को बिबर पहनाने के उपमान तो धीर ने ही दिये हैं परन्तु ब्राह्मण को मक्का धीर मुम्बा को काशी बिनाने की बात ही मूर्खी ।

तब यह कि संय का नीति-काव्य नव-नव विचारों विविध भाषों महीन भाषों सुन्दर अर्थकारों विचित्र भाषा तथा साहित्यिक प्रयोगों के कारण उत्कृष्ट होने का अधिकारी है ।

५ रहीम

बीबली—अशुद्धीम का जन्म बीरमजी के गृह में संवत् १६१३ में हुमा से चार ही वर्ष के थे कि पिता की एक पठान ने हत्या कर दी धीर अकबर ने पिता का उत्तम प्रथम कर दिया । रहीम ने म्यारह वर्ष के वय में काव्यप्रत्यय किया । अकबर ने इनका विवाह अपनी बानी की पुत्री साहबानु से कर दिया होने पर रहीम ने गुजरात कृष्णनगर जयपुर आदि पर विजय पाई धीर अशुद्धि हो इन्हें अजमेर की सूबेदारी तथा एराचंधीर का दुर्ग प्रदान किया । विद्वता और कर्म-वशता पर मुग्ध होकर अकबर ने इन्हें साहबानु लसीन का लौक विमुक्त किया । विद्व-विजय तथा दक्षिण पर मुघलों की भाक बीबली के अकबर ने इन्हें खानखाना की उपाधि धीर पाँच हज़ारी पद प्रदान किया । १६६१ में साहबानु दारिद्र्य विषंयत हुमा तक खानखाना को दक्षिण का विमुक्त किया गया । अहमदीर ने भी विहासनाक होने पर इनका प्रसूत धार-किया । परन्तु जब अहमदीर ने शासन की बागडोर नुरजहाँ को छोपी तब रहीम विन भाये । नुरजहाँ साहबानु अरम (साहजहाँ) की अयेखा अपने जमा

साहसाके साहसिक को ऊँचा उठाने लगी। बच घर की इस फूट में बूढ़ रहीम ने जहाँ गीर के बिरोधी साहजहाँ का साथ दिया तब जहाँगीर ने बेरम साँ की बूढ़ावस्था में घनवर के प्रति लमक-हरामी का उत्तेजक करते हुए कहा 'भेड़िये का बच्चा भावमियों में बड़ा होकर भी भेड़िया ही रहता है। पीछे इन्होंने स्वकृत्य पर परधासाप किया और जहाँगीर ने इनका धपराध क्षमा कर इन्हें पुन खानखाना की उपाधि और कनीज का शासन दिया। इनका नियम १६८६ बि० में हुआ।

रहीम को पारिवारिक जीवन में सुख नहीं मिला। पिता इन्हें बच्चा ही छोड़ परसोक सिभारे से। पत्नी एक पुत्री तथा तीन पुत्रों को जन्म देकर सं० १६५२ में मृत्यु कर गई। पारों सन्तानों को इन्होंने अपनी धाँकों से काम-कर्मनिष्ठ होते देखा। इस प्रकार रहीम का बार्द्धक्य तिमिराच्छन्न हो गया जिसकी भक्तक इनके दोहों में दिखाई देती है।

रहीम घरकी कारसी तुर्की और हिन्दी भाषाओं के प्रौढ़ विद्वान् थे और संस्कृत भाषा तथा हिन्दू-धार्मिकों से भी परिचित थे। सकल भाषाओं में से किसी एक का ग्रंथ देखते हुए दूसरी भाषा में उसका अनुवाद ऐसी योग्यता से करते जाते थे कि श्रोताओं को वही मूल भाषा प्रतीत होती थी। पुण्य और मात्रा की दृष्टि से इनकी कविता अक्षर-बरी बरबार के कवियों में सम्भवतः सर्वातिशायी थी। ये सभी भाषाओं की कृतियों में अपना अनाम रहीम ही मिलते थे।

बीर और विद्वान् होने के प्रतिरिक्त रहीम बहुत सवार, शानी सुसीध और शान्त सज्जन थे। इन्होंने अपने धामित धनेक भाषाओं के कवियों को नासों करोगों की सम्पत्ति-पुरस्कार रूप में प्रदान की थी। हिन्दी-कवियों को बित्तमै मूस्य के पुरस्कार इनसे प्राप्त हुए उसका दशमांश भी कारसी-कवियों को मही। यही कारण है कि कैतबदास गम नरहरि धारि ने इनकी मुण्णावली का मुक्तकण्ठ से मान किया।

कृतियाँ—रहीम की हिन्दी रचनाएँ विभिन्न शीघ्रों से प्रकाशित हुई हैं, जैसे रहीम रत्नावली रहिमन पतक रहिमन अम्बिका रहीम रहीम-कवितावली, रहिमन विनोद, रहिमन बिलास धारि। प्रायः इनमें रहीम की ये रचनाएँ संगृहीत हैं—बोहा बली मपरछोमा शृंगार सोरठा बरबँ नायिका भेव १०१ स्वतत्र बरबँ मदनाटक, शेटकीतुफजातणम् संस्कृत श्लोक फुक्कम पह सबँये धीर कविल। नीतिकाम्य, बोहा वाली तथा कुछ स्पुष्ट कवित-सबयों ही में उपसम्प्य होता है येप रचनाएँ तो शृंगार, व्योक्तिप धारि विषयों की हैं।

बोहावली का ललतई—रहीम के अपरिमिषित प्रकाशित सग्रहों-में तब से पूर्व बोहावली उद्धृत की गई है। स्व० प० मयाधंकर माशिक^१ धारि कुछ लोगों का अनुमान है कि रहीम ने 'सजसई की रचना की होगी उसमें से किसी ने शृंगारिक दोहों

१ सं० मयाधंकर, रहीमरत्नावली, सं० १६८३, धूमिका पृ० १७

को पुनर्क कर नीति-बोहों को प्रलय करने दिया होगा। ७२ वर्ष के बीजब में सतसई रचना प्रसम्भन नहीं है। बस्तुतः बहुत अनुमान गिराकार है। प्रकृत अनुमान के विपरीत निम्नवर्ती एक दिने या सकते हैं। अपसम्भ बोहावनी में ३०० के सगमग बोहे मिलते हैं। अथ बार ही बोहों का रहीम-कृत श्रुंगार-सबह प्रसम्भ है। रहीम ने श्रुंगारिक भाव शोरठों बरई नायिका सेव, मरुताप्टक प्रादि से प्रसिद्ध्यक्त कर दिये हैं। किसी को प्रावकमता ही क्या भी कि श्रुंगारिक बोहों को प्रलय करता? जब बिहारी प्रादि की कृतियों में श्रुंगार में नीति मिश्रित रह सकती थी तो रहीम सतसई में रहने पर किसी को क्या प्रापति हो सकती थी? किसी समय-सीमा या परवर्ती कवि ने 'रहीम सतसई का सम्भेक भी नहीं किया है। बस्तुतः रहीम-से व्यस्त व्यक्त के पास कोई बड़ा सम्पूर्ण प्रबंध मिलने का प्रवनाश ही न था। बरई नायिका सेव' निबद्ध प्रबंध है जो सम्भवतः उनके जीवन के प्रारम्भिक वास में रचा गया होगा। विपक्ष के हल सनों से इसी बात की पुष्टि होती है कि रहीम ने समय-समय पर भक्ति तथा समाज व्यवहार सम्बन्धी जो फुटदम बोहे रचे वही दो/राजा? में सम्पूरीत हैं।

वैयक्तिक नीति—रहीम की 'बोहावनी' नीतिकाम्य की एक उत्तम रचना है। इस में मानव-व्यवहार से सम्बन्धित प्रायः सभी प्रमुख विषयों का समावेश दिखाई देता है। जिस शरीर के रक्षण-पोषण के लिए प्रायः सर्वसम्भ उद्योग किये जा रहे हैं उसे भक्ति। भुम के प्रत्येक कर्मियों के समान रहीम ने भी विषय महत्त्व नहीं दिया है। उसे अनेक बोहों में अतः मिट्टी घोर काम्य का पुतता तथा बाणभनुर कहा है घोर बसकी स्वतन्त्रिभा पर प्रावक्य प्रकट किया है—

काम्य को तो पुतरा सहजहि में भुलि जाय ।

रहिमन यह प्रवरक लसी लोळ लोखत बाय ॥^१

रहीम ने प्रनुर भाषण के महत्त्व तथा कदुबचनों के त्याग पर अनेक बोहे रचे हैं। अद्यपि कहा जाता है कि उन्होंने स्वयं वैयक्तिक जीवन में कभी किसी पर कोष नहीं किया तथापि वे बहुभाषियों के लिए निम्नलिखित वचन के पक्षपाती थे—

औरा सिर तें काटिए, मलियत नमक बनाय ।

रहिमन कहए मुखन को, अक्षिमत इहे लजाय ॥^१

यह कदुबाषण व्यक्तिगत जीवन में इतना निन्द्य बोध है कि इस के कल-स्वरूप जूते तक पड़ने की सम्भावना रहती है^२। रहीम शरीर के प्रबंधों में सब से सुरा पेट को समझते थे। कारण, पूर्ण होने पर, यह दृष्टि से विकार उत्पन्न कर देता है और रिकत होने पर आत्मसंभ नी मनुष्यों को ऐसे-ऐसे बर-पशुओं के सम्मुख सीध

१. सं० प्रवर्तनवता रहिमन विलास प्रयाग, १९२७, पृ० ४११९, (१२ व १२७ बोहा भी देखें)।

२-३. वही पृ० ४१६ १०।१२४

मुझने तथा आदरजन कहने पड़ते हैं बिनकी पेट के न होने पर, मोन मूरत बैतना भी पाव मममन । रक्षोम न कार-नाच दोहों में इत पाणी का उल्लेख किया है परन्तु उदाहरणार्थ एक ही दोहा पद्याल है—

भक्तो मयो घर सं सुदयो हँस्यो सीस परि चेत ।
का के का से नचत हम अपन पेट के हेत ॥^१

विद्या का महत्त्व उनके साधन प्रादि बौद्धिक विषयों पर नीतिकाम्य की बिलनी मात्रा की धाया रहीम-म विद्वान् कवि ने जो आती की उतनी दोहावली में दिखलाई नहीं देती । उगुने विद्याविहीन को संकृत क नीतिकाम्योंकारों के समान पयु^२ कदम तथा एक एक बड़ी में नमक डालने जैसे घोर एक-एक पत्त की सीप बाने को मन्मकुटि^३ रहने म तो संशोष नहीं किया परन्तु बुद्धिवायिनी बाग्देवी में माहात्म्य का यथल यथोपाय नहीं किया । कदाचिन् उनका विचारस वा कि कुि प्रमूयवत् ऐसा पदाय है जो पुष्पार्थ सं प्राप्त नहीं किया जा सकता—

जसो आकी बुद्धि है तसो कहै बनाय ।
ताको बुरा न मानिए, सेन कहाँ सो जाय ॥^४

प्राथमिक नीति—गृहीम की प्राथमिक नीति का स्वर भक्तों से भिन्न प्रती नहीं हुना । पाया ममता विषय माइ, विन्ता दब कुटिलता प्रादि के त्याग तप नम्रता धमा गूरता सीम प्रादि गुणों में समुराम की जो प्रेरणा भक्त-कवियों में नीतिकाम्य में दिखलाई देनी है बरी प्रार्थन की बत है कि बरबाये कवियों में सं पाई जाता है । मन्मवन-इनका कारण यह है कि उत्तर भारत में उन दिनों भक्ति की जो मन्मकिनो बह रही थी उसका वेग इनका प्रबल वा कि रात्र-रवारों के वा भी सबसे प्राप्ताबित हुए बिना न रह सक । जैसे—

जो विषया संतन लखी मूहु ताहि लखात ।
जो नर डारत बमन कर, स्वाम स्वाह सो जात ॥^५
करबो साह न हूँ करे गति टही तासोर ।
रतिमन लीखी घास लीं प्यारी होत बजोर ॥^६

परन्तु की-बही रहाम नम्रता गूरता प्रादि गुणों में कुछ चतें जोड़कर भक्त कवियों क दाव से अपने मन्म में कुछ बिगिटना भी उत्पन्न कर देते हैं । जैसे—

यह गृहम पाने नहीं दिस से नबा यो होय ।
धना बोर कमान के, नये से प्रबगुन होय ॥^७

१ ४ ल० उद्भवशास्त्र रत्नमन्त्रिणास प्रयाग १६७७ पृ० १५१३८, २५२३।
१३।२। काउ

२-७ वही पृ १।८६, १३।२२ १५।१६०

पारिवारिक नीति—रहीम ने वैवाहिक जीवन को व्याधि घोर पीर की बेड़ी कहा है।^१ एक तो इसलिए कि प्रायः मूढ़ी जन द्वारा घोर दुःखों के भ्रमे में इतना फँस जाया कि प्रभु को ही मूल जाता है^२ और दूसरे, जसा कि पहले कह चुके हैं रहीम को पत्नी तथा संतान का मर्मवेची बियोग सहना पड़ा था। फिर भी इन्हीं पति पत्नी के वैमत्य से जनति दुःख^३ दण्डिता में मार्या और कुलमय में बन्धुधर्मों की परीक्षा परमारी-परित्याग सपूत-कपूत के ससलु जर की कूट का दुष्परिणाम एगोत्रों की समृद्धि से होने वाला सुख प्राधि पारिवारिक विषयों की घोर पाठकों ध्यान मानिक रीति से सीखा ही है। जैसे—

जो रहिम पति बोप को कुल कपूत गति लोय ।

दारे बड़ियादो भये बड़े छोबरो होय ॥^४

रहिमन संसुधा नैन हरि शिय बुल मय्य करेइ ।

बाहि निकारो मेह से कस न भेद कहि बेइ ॥^५

संतान के प्रति जनकों के या जनकों के प्रति संतित के कर्तव्य प्राधि के विषय में रहीम मौन ही दिखाई देते हैं।

सामाजिक नीति—रहीम की सोहाबनी के अधिकतर दोहों का सम्बन्ध सामाजिक व्यवहार से है। समाज कैसा है उसके व्यक्ति जैसे प्रसन्न किये जा सकते हैं अपत् से प्राप्य पीरक का वास्तविक मूल्य क्या है, स्वार्थ-सिद्धि के लिए हाँ में हाँ बिजना धारस्मक है हितैषी तथा सन्तु की पहचान क्या है, मनुष्यों को कैसे बस में किया जा सकता है धात्मसमान छोटे और बड़े परदार-ममन परोपकार, कुसंवति सुसंवति सुमिन्न कुमिन्न मूर्ख, सुजन कुजन प्रेम प्राधि सैकड़ों उपयोगी बातों का रहीम ने समुचित-पूर्ण संक्षेप किया है। रहीम ने अपसुख विषयों पर एक-से-एक बढ़कर एकाधिक दोहों की रचना की है परन्तु प्रबन्ध की क्लेश-बुद्धि के मय से बो-चार शोहे ही उद्भूत कर संतोष करते—

काज परे कसु और है काज सरै कसु और ।

रहिमन पीबरी के मय, बरी तिराबत नीर ॥^६

रहिमन जो रहिबो जहि, कही बाहि के बाब ।

जो बातर को मिस कही ती कचपची दिखाव ॥^७

समाज में छोटे भी होते हैं, बड़े भी। यह छोटाई-बड़ाई प्रायः सम्पत्ति या शरस्वती की म्युनाधिकता पर की उज्जावचता तथा जाति-वंश की प्रतमाभ मता पर प्रबलमित्त होती है। प्रायः सम्पन्न विद्वान्, उज्जाधिकारी और

१४ सं० बजरत्नवास रहिमन विलास प्रयाग १६८७ पु० २७।२१६ ११।१०८,
११।१२४ १।८२

१८० यही पु० १८।१७१ ४।२७ २।१२६

कुलीन लोग दरिद्रों मूर्खों अमीनों तथा दुष्कृमीनों से बुरा का व्यवहार करते देखे जाते हैं। रहीम-स उदार धार्मिक और विद्वान् सज्जन को यह बात बहुत बुरी समी और उन्होंने डैच-नीच का भाव मिटाने तथा छोटी के प्रति उदारता का दृष्टिकोण अपनाते पर दर्जनों सुन्दर दोहे लिख दाले। जैसे—

रहिमन बेल बड़ेन को मपु न रोजिए डारि ।
जहाँ काम धाबे सुई क्हा करे तलबारि ॥^१
घोटेन सौं छोई बड़े, कहि रहीम यह रेख ।
सहसम को हय बाधिघल, स हमरो की मेख ॥^२

रहीम ने अपना अधिकतर जीवन तो मान प्रतिष्ठा पूर्वक व्यतीत किया था परन्तु बुढ़ापे में उन्हें कुछ दिन धनमानपूर्वक जीवन का बटु स्वाद भी चखना पड़ा। घटएव संमान-हीन जीवन उनकी दृष्टि में निघन से भी निकृष्ट था। यही कारण है कि उन्होंने इस विषय पर दर्जनों पद्यों की रचना की है। एक-जो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

रहिमन मोहि न सुहाय, धमी निघारै मान बिनु ।
बच बिय बेय बुलाय, मान सहित मरिबो मलो ॥^३
कोन बड़ाई बलमि मिसि मंग नाम भो धीम ।
केहि को प्रभुता नहि घटी पर घर गये रहीम ॥^४

धार्मिक नीति—सामाजिक नीति के समान ही रहीम ने धार्मिक नीति पर भी बहुत और बहुत प्रच्छा मिखा है। वे भाकों-करोड़ों में भी ऐसे वे और मनुकरी पापकर भी पा चुके थे। वे सम्प्रतिलभ्य सम्मान का गौरव भी धनुमय कर चुके थे और दाखिय-अनित धरबा का कटुस्वार भी बस चुके थे। यही कारण है कि उनके काव्य में धन का महत्त्व लक्ष्मी की बचलता सम्प्रति के लय से गौरव-नाथ बिल के बिना मिर्चों का धमाक बखिरता से मृत्यु की येच्छता बान-हीन जीवन की निष्कलता, याचकता से निघन की उतमता सज्जनों का धन-संचय उदकारार्थ विपति में धन नाथ पान की कमाई बपुधों के पध्य में दरिद्र का मानहीन जीवन, धनी-बनी ही का सहायक याचकता सापक की बननी पन से भी समान बड़ा प्रादि अनेक धार्मिक विषयों की सुन्दर अभिव्यक्ति को गई है। जैसे—

बिपति भए पन ना रहे रहे को लाक करोर ।
नम तारे छिय जात हैं जगो रहीम भए मोर ॥^५
धन घोरो इज्जत बड़ी क्हु रहीम पा बात ।
जने कुल की कुलबधू बिघड़न माई सनात ॥^६

१४ स. अमरतरास रहिमन बिमात प्रजाप ११८७ पृ० २११२०४, ११२८, १८१८३, २१४४

२५. वही पृ० १४११६, १११२०७

इतर-मास्तिबिषयक नीति—इतर प्राणियों के प्रति क्या धारि की भावना रहीम के काव्य में दिखाई नहीं देती। उसमें तो बुद्धा भी वही पालने का चस्केब है जो अपनी मृगया-कुशलता के द्वारा स्वामी का रक्षण-सौख्य प्राप्त कर सके—

नाहि रहीम कसु रूप गुन, नाहि मृदया अशुराय ।

देखी स्वान को राखिए, भ्रमसत बुझ ही लाग ॥^१

पशु-शक्तिवों से विद्या लेने की प्रकृति ज्ञानमय-नीति धारि में हम देख ही चुके हैं रहीम के काव्य में पर्याप्त पाई जाती है। कहीं तो वह प्रत्यक्ष रूप में प्रतिहित है और कहीं अत्यापदेशों द्वारा व्यंग्य। जैसे—

पावस देखि रहीम मन, कोइल साये मौन ।

अप्य बाबुर बकता अप हम् को पूछत कोन ॥^२

निहित नीति—इस अन्त में भी रहीम की रचना पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है। समय का महत्त्व समय पर चलने से हाथि समय पर सहिष्णुता रक्षण की महिमा कर्मों की पति पुरुषार्थ से लक्ष्मी अत्राप्य निहितम्यता की प्रवसता धारि कुरा अस्त कुरा मुझ-मुझ जीवन-सफलता ईतर दिक्वास राजनीति धारि अनेक विषयों को रहीम ने अपने दोहों का रूप बनाया है। बुद्धावे में परभ्युत होने के कारण रहीम को अनेक निष्कट अष्ट सहने पड़े थे। जीवन में भी निष्कट सम्बन्धियों के अत्यन्त विमोह से वे पिसे थे। इस कारण पुरुषार्थ की निष्कटता और होनहार की प्रवसता का स्वर पर्याप्त तीव्र दिखाई देता है। निहितनीति के कुछ बोदे नीति—

रहिमन अतमय के परै, हित अनहित हूँ धाय ।

बनिक अने मूम जान सौं अगिरं देत अताय ॥^३

निज कर अिया रहीम कहि सुचि भावि के हाथ ।

पति अपने हाथ में, हाथ न अपने हाथ ॥^४

समीक्षा—दोहावली का अध्ययन करने पर उसकी छ विक्षेपताओं पर अ्यान देखा जाता है—

(क) आत्मानुभूति ।

(ख) मन्मीर सांसारिक अनुभव ।

(ग) अवार कृपि (अ्युरात्मता)

(घ) अलान्त ।

(ङ) अ्युर अलान्त ।

(च) अ्युर अलान्त ।

१ वही पृ० १२।१११ १ ।१२०, १।१७१

४ वही पृ १२।११६

(क) धारानानुभूति—रहीम के दर्शनो बोहे ऐसे हैं जिनसे ज्ञात होता है कि रहीम जन्में सोकानुभव का वयान नहीं कर रहे हैं भाप-बीती गुना रहे हैं । परन्तु वह भाप-बीती भी शिलापूर्ण होती है जैसे—

बोये बारर कबार के ब्यो रहीम घहरात ।
 धनी पुबय निर्धन भये, कर पाछिमी बात ॥^१

(ख) गम्भीर सांसारिक अनुभव—जिस प्रफ्हर रहीम प्रौढ़ विद्वान् थे उसी प्रकार पूर्ण अनुभवो भी थे । वे लोगों के बाह्य तथा धाम्यस्तर व्यवहार के भेद से सम्पन्न परिचित थे । उनके अनुभव की इस गम्भीरता का पता कई दोहों से सहज ही बन जाता है । जैसे—

रहिमन निब मन की बिबा, मन ही राखो गोय ।
 सुनि घठिन्हें लोय सब, बटि न लैहै कोय ॥^२

(ग) पकार दृष्टि (शुत्पन्नता)—बोहाबसी के अध्ययन से सिद्ध हो जाता है कि उदारवेश रहीम ने हिन्दुओं के रामायण महाभारत पुराण आदि ग्रन्थों से सम्पन्न परिचय प्राप्त कर लिया था । वे नैतिक सत्यों के समर्पण के लिए उक्त ग्रंथों से ऐसी उपयुक्त घटनाएँ प्रस्तुत करते हैं कि पढ़कर चित्त गदगद हो जाता है । जैसे—

मान लहित बिय बाप के समु भये अपबीस ।
 बिना मान समृत हिये राठु कदायो सीस ॥^३
 घोरो किए बहन की बड़ी बड़ाई होय ।
 ब्यो रहीम हुनुमत को गिरघर कहत न कोय ॥^४

(घ) दृष्टान्त—रहीम अपनी नीति की उक्तिओं की पुष्टि प्राचीन कथानकों के अतिरिक्त समीपवर्ती पदार्थों तथा जियाओं से भी करते हैं । जिन वस्तुओं और चटनाओं में होने कोई बिदेयता दिखाई नहीं देती उन्हीं में से रहीम ऐसे सुन्दर दृष्टान्त विकास करते हैं कि कुछ कहते नहीं बनता । जूमा येनन के पास घतरब के मोहरे, बीपड़ की मोटे बुन्दहार का चाक रसुन की मड़ियाँ आदि अनेक पदार्थ उनके नैतिक कथनों के उपबृहत्साथ सदा सदा सन्तुष्ट दिखाई देत हैं । यथा—

जय जय बीबन जगत में, सप बुज मिसन समोट ।
 रहिमन छूँ मोठ ब्यो परत बुहुँन सिर चोट ॥^५
 रहिमन रीति सराहिए, जो घट पुन सम होय ।
 नीति बाप पे डारि क सब बिबाई लोय ॥^६

१ ३ सं० बजरंगदास, रहिमन बिलास, प्रयाग १०।१६, २१।००० १६।१२२

४ वही पृ० ११८० १०।१०

५ ६ वही, पृष्ठ ७।६०, २४।२१४

(क) सुहर कल्पना—यद्यपि रहीम के कई बोहे कोरे पद्य हैं तथापि अधिकतर दोहों में उनकी उद्भावना सहज ही दिखाई दे जाती है । जब पामा दुष्टों से पक जाए तब हीभी संवलयों से भी नहीं निकलता इस नीति के समर्पन के लिए रहीम की कल्पना ने कुम्हार के बक घोर डंडे को खोज निकाला—

रहिमन बक कुम्हार को माये दिया न बेइ ।

द्वेय में डंडा डारि के चाहे नाब ले लेइ ॥^१

उन दिनों बसवड़ी से समय को धानकर बकिमास की खेत से सबकी सूचना हो जाती थी । रहीम की कल्पना ने उही बटना में स कुसंगति तपाम की सिखा ग्रहण कर सी—

रहिमन नीच प्रसंग से नित प्रति साम बिकार ।

नीर खोरखे संपुटी माय सहै दरिघार ॥^२

(ख) सूक्ष्म-व्यवहार—नीति हृष्टि रहीम के नीतिकार्य की धर्म विवेकता है । वे सामान्य वस्तुओं पर भी इतनी तीव्र निगाह डालते हैं कि सुरस्य ही उनमें से कोई काव्योपयोगी नैतिक तथ्य निकाल लेते हैं । जैसे—

रहिमन प्रीति न कीजिए, बस घीरा ने कोम ।

अगर से तो बिल मिला भीतर फाई तीम ॥^३

रस घीर जाब—सरसता घीर भावपूर्णता रहीम के नीतिकार्य के उत्प्रेक्षणीय गुण हैं । यद्यपि रहीम के कुछ बोहे ऐसे भी हैं जो बुद्धि-तत्त्व को प्रभावता के कारण पद्यों की कोटि में ही परिगणनीय हैं तथापि उनके अधिकतर बोहों में से सच्चा कवि-हृदय भाँकता प्रतीत होता है । जीवन की सच्चावच परिस्थितियों में उनके मस्तिष्क का ही स्पर्श नहीं किया उनके भावुक हृदयमें विभिन्न मनोबोगों का उन्मेष ही किया । यही कारण है कि उनके बोहों में विविध भावों की सफल तथा प्रभावपूर्ण व्यंजना हुई है । उनकी आत्मानुभूति भी उन भावों की तीव्रतर करने में विशेष सहायता प्रदान करती है । अधिकतर नीतिकार्यों में इस गुण का समावेश रहता है । वे निराला होने के लिए नैतिक तथ्यों का उत्प्रेक्ष करते हैं घीर अपने कथन को इतिवृत्तात्मकता तथा पञ्चमयता से बचाने के लिए किसी इष्टान्त या प्रसंगकारादि का आश्रय लेते हैं । इस प्रकार उनकी रचनाएँ सुकितर्वा तो बन जाती हैं परन्तु भावों की कमी के कारण सरसता से सूख रह जाती हैं । रहीम किसी नैतिक तथ्य का उत्प्रेक्ष मात्र नहीं करते बल्कि नायिक वस में भाग पहुँचे हो जाते हैं घीर तब हृदय के माध को बोहों में उन्मेष देते हैं । यही कारण है कि हिन्दी-भाषी प्रदेशों में लोगों के मुख से विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप रहीम के बोहे धनायास ही निःसृत होते सुनाई देते हैं । जैसे—

१ २ सं० प्रवरत्नवास, रहिमन बिकार १६५७ प्रयाग १९१५, २१।२१०

३ यही २१।२११ ॥

८८ । कुङ्किलन संय रहीम कहि सायु बबते नाहि ।
 क्यों नना सना करे, उरज उमेठे भाहि ॥^१ (शुभार)
 पछवि धबनि घनेक है कुपबंत छरि ताल ।
 रहिमन जान-सरोबरहि मनसा करत मराल ॥^२ (रति)
 रहिमन योहि न सुहाम्य धमी विप्रार्थ मान बिनु ।
 बब बिय बेय बुलाय मान सहित मरिबो मनो ॥^३ (मान)

तत्पर्य यह कि रहीम नीति की छान्ने काव्य से मिथित कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं जैसे ही नहीं ।

भाषा—गुलसीदान भी के समान रहीम का भी ब्रज और धरणी दोनों भाषाओं पर अधिकार था परंतु रहीम ने नीति-रचनाओं में ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है । रहीम की भाषा में तत्सम शब्दों की भी कमी नहीं है परन्तु संस्कृत के शब्दों को प्रचलित रूप में व्यवहृत करना उन्हें अधिक प्रिय है जैसे—स्वर्ग पाठाल रूपण, नरेण, प्रियतम निष्ठुर बसा आदि के स्थान पर उन्होंने सरण पठाल रूपण, नरेच, प्रीतम निठुर दया आदि का प्रयोग अधिक किया है । मंग के समान इनकी भाषा में भी छारमी धरमी आदि के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं और वे भी तत्सम रूप में जैसे—परीब हजूर धरम काणब, कबीहत आदि के स्थान पर गरीब हजूर धरम काणब कबीहत आदि व्यवहृत हुए हैं । इन्होंने पर कुछ सोचीसितियों तथा मुसबरे भी इनकी भाषा में मिल पाते हैं । जैसे—

घनकीर्णी बर्ये करे छीबत जाय जोय ।
 ताहि सिखाय बगायबो रहिमन उचित न होय ॥^४
 जैसे निहहू निबल जन करि सब तन बों वर ।
 रहिमन बलि सापर निब करत मगर सों बेर ॥^५

विमान और छन्द—रहीम का नीतिकाम्य केवल मुश्तक रूप में मिलता है । इनका अधिकतर नीतिकाम्य दोहा छन्द में है । इसके अतिरिक्त कुछ इने-विने सोरठे, कविल और सारैये भी उपलब्ध होते हैं । छन्द-शास्त्र की दृष्टि से रहीम के पद्य निर्रोध नहीं हैं । कहीं-कहीं माध्यामों की ग्युनाधिकता पाई जाती है । छन्द निर्रोध बनाने के उद्योग में कहीं-कहीं अक्षर की बिगाड़ किया गया है जैसे ब्याबि को बिप्राधि और कदा बित् को कनाधि । वस्तुतः रहीम का सव्य छोटे से बोहोँ द्वारा विस्तृत अर्थ की धमि ब्याबि या हुसरी सब बातें गोल थीं—

१ रहिमन बिलास, पृष्ठ ३४१, ११।१३७, २७।२२३

४ बही, पृष्ठ ११४

५ बही पृष्ठ ३४२ । और भी देखें ७०।१७

(क) सुंदर कल्पना—यद्यपि रहीम के कई बोहे कोरे पद्य हैं तथापि अधिकांश दोहों में उनकी कल्पनाएँ उच्च ही दिखाई दे जाती हैं । जब पामा दुष्टों से पड़ जाए तब सीधी संघर्षियों से भी नहीं निकलता इस नीति के समर्थन के लिए रहीम की कल्पना ने कुम्हार के बरत घोर उहे को लोग निकाला—

रहिमन जाक कुम्हार को, मारने दिया न बेह ।
 धेर में उडा खारि से चाहे नरि संसेह ॥^१

उन दिनों बसवड़ी से समय को जानकर बड़ियाम की ओट से सबको सूचना दी जाती थी । रहीम की कल्पना ने उसी बटना में से कुसंघर्षि स्वयं की घिसा प्रहण कर दी—

रहिमन नीच प्रसंग से नित प्रति साम विचार ।
 नीर खोरसे संजुटी भाव सहे खरिमार ॥^२

(ख) सूक्ष्म-वर्णन—द्वैती दृष्टि रहीम के नीतिकाम्य की श्रेष्ठ विशेषता है । वे सामान्य वस्तुओं पर भी इतनी तीव्र निगाह डालते हैं कि तुरन्त ही उनमें से कोई काव्योपयोमी नैतिक तथ्य निकाल लेते हैं । जैसे—

रहिमन प्रीति न खोजिए, बस खोर ने कोम ।
 खर से तो बिल मिला भीतर फाँसे तीन ॥^३

रस घोर भाव—धरसता घोर भावपूर्णता रहीम के नीतिकाम्य के उत्प्रेक्षनीय गुण हैं । यद्यपि रहीम के कुछ बोहे ऐसे भी हैं जो बुद्धि-रत्न को प्रभावता के कारण पद्यों की कोटि में ही परिगलनीय हैं तथापि उनके अधिकतर दोहों में से उच्च कवि-बुद्धय भ्रंशता प्रतीत होता है । जीवन की कल्पनावय परिस्थितियों से उनके मस्तिष्क का ही स्पर्श नहीं किया उनके भावुक हृदयमें विभिन्न मनोवर्णों का उभेय भी किया । यही कारण है कि उनके दोहों में विविध भावों की सफल तथा प्रमत्तियुक्त व्यंजना हुई है । उनकी धारवानुसृति भी इन भावों को तीव्रतर करने में विशेष सहायता प्रदान करती है । अधिकतर नीतिकवियों में इस गुण का प्रभाव रहता है । वे बिधा देने के लिए नैतिक तथ्यों का उत्प्रेक्ष करते हैं घोर अपने कथन को इतिवृत्तारमकता तथा पठनमत्ता से बचाने के लिए किसी हृष्टान्त या धर्षकारारि का प्राथम्य बूँद डेते हैं । इस प्रकार उनकी रचनाएँ सुनिश्चयां तो बन जाती हैं परन्तु भावों की कमी के कारण धरसता से शून्य रह जाती हैं । रहीम किसी नैतिक तथ्य का उत्प्रेक्ष मात्र नहीं करते उसके मार्गिक पक्ष में मग्न पहले ही जाते हैं घोर तब हृदय के भाव को दोहों में उजल डेते हैं । यही कारण है कि हिन्दी-भाषी प्रदेशों में लोगों के मुल से विभिन्न परिस्थितियों के उन्मुक्त रहीम के बोहे प्रगाथाव ही निरूप्य होते तुनाई डेते हैं । जैसे—

१ २ सं० उदरतनवास, रहिमन बिसाल, १८७७ प्रयाग १८१८७, २२१२६०
 ३ यही २१।२११ ॥

- ८ । कुतिलन सय रहीम कहिं छापु बचते माहिं ।
 क्यों जना सेना करे, उरख जमेते आहि ॥^१ (शू पार)
 यद्यपि धरनि धनेक है, कूपबत छरि तात ।
 रहिमन मान-सरोबरहिं मनसा करत मरात ॥^२ (रति)
 रहिमन मोहिं न मुहाय धमी विघाबे मान बिपु ।
 बह बिप देय पुलाय मान छहित मरिबो भलो ॥^३ (मान)

उपर्य यह कि रहीम नीति को सच्चे काव्य से मिश्रित कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं बसे ही नहीं ।

भाषा—नुनसीदान जी क समान रहीम का भी जब और धरणी दोनों भाषाओं पर अधिकार था परंतु रहीम ने नीति-रचनाओं में जबभाषा का ही प्रयोग किया है । रहीम की भाषा में उत्तम शब्दों की भी कमी नहीं है परंतु संस्कृत के शब्दों को प्रचलित रूप में व्यवहृत करना उन्हें अधिक प्रिय है जैसे—स्वर्ग पाठास कूपण, नरेश, प्रियतम निष्ठुर बसा धारि के स्थान पर उन्होंने सरण पठास कूपन नरेश प्रीतम, निठुर बसा धारि का प्रयोग अधिक किया है । रंग के समान इनकी भाषा में भी आग्नी धरणी धारि के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं और वे भी तदुत्तम रूप में, जैसे—परीब हुनूर धरम काण्ड, ऊबीहुत धारि के स्थान पर परीब हुनूर धरम काण्ड फरोहुत धारि व्यवहृत हुए हैं । इन्होंने पर कुछ सोकोक्तियों तथा मुहावरों की इनकी भाषा में मिला जाते हैं । जैसे—

धनकोन्ही बार्ते करे सोबत जाने जोय ।

ताहि सिखाय सगायधो रहिमन उचित न होय ॥^४

कसे निबहू निबस बन करि सब तन सों पैर ।

रहिमन बलि सागर निबं करत मगर सों बर ॥^५

विद्याल और छन्द—रहीम का नीतिकाम्य केवल मुक्तक रूप में मिलता है । उनका अधिकतर नीतिकाम्य दोहा छन्द में है । इसके अतिरिक्त कुछ इने-पिने खोरक, कथित और सर्वमे भी उपलब्ध होते हैं । छन्द-शास्त्र की दृष्टि से रहीम के पद्य निर्वीच नहीं हैं । कहीं-कहीं भाषाओं की म्यूनाधिकता पाई जाती है । छन्द विर्वीच बनाने के उद्योग में कहीं-कहीं शब्द को विपाद दिया गया है, जैसे ध्यादि को विघ्राधि और कस्त-बित् को कदाधि । बस्तुतः रहीम का मध्य छन्द से दोहे श्राय विलुप्त श्रय को धधि स्थिति या कूपण सब बातें मौजूद थीं—

१ १ रहिमन वितान, पृष्ठ ३५४, १९१, १२७, २८३, २८२

४ वही, पृष्ठ ११४

५ वही पृष्ठ २१२ । और भी देखें ७०१३

शिरस्य बोहा धरस्य के आसुर धीरे धार्ति ।

बयो रहीम नव कुप्यती तिमिति कुबि कदि धार्ति ॥^१

शैली—रहीम के नीतिकार्य में प्रायः छः शैलियों का प्रयोग दिखाई देता है—
उप्यतिक्रमक, उपवेशात्मक, कथारमक, धम्मपदेशात्मक, प्रश्नोत्तर और सञ्चारक ।
इनमें से प्रथम तीन का प्रयोग अधिक किया गया है और उनके उदाहरण पीछे उद्धृत
पृष्ठ पद्यों में सुलभ हैं । अन्तिम तीन के उदाहरण निरस हैं ।^२

धर्मकार—धर्मकारों की दृष्टि से बोहावमी का स्थान बहुत ऊँचा है । रहीम
वर्ष विषय का बसेस-मात्र नहीं कर देते साहित्यमयम्ब होने के कारण उधे किसी-न
किसी धर्मकार से सम्बन्ध भी करते हैं । इनके पद्यों में सदा धर्म और धर्म-शीर्षों
प्रकार के धर्मकार दिखाई देते हैं ।

(क) धर्मसंस्कार—धर्मसंस्कारों में से एकानुप्रास नृत्यनृपास साटानुप्रास,
ममक श्लेष और कीप्ता का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है । जैसे—

काहु कामरी पामरी काहु नए से काज ॥^३ (एकानुप्रास)

सेर सुन काधी सुतो बैर प्रीति मर-पान ॥^४ (नृत्यनृपास)

काही काहु नर बही, माही बह धमपान ॥^५ (साटानुप्रास)

रहितम धरने पैट धों बहुत कट्टी लमुम्माव ।

बो तु धन-बाये रहै तो सीं को धनबाय ॥^६ (ममक)

पामी नए न ऊबरे मीठी मानुप कुन ॥^७ (श्लेष)

बायन बेड़ी पकत है डोल बजाव-बजाय ॥^८ (कीप्ता)

(ख) धर्मसंस्कार—धर्मसंस्कारों में से धर्मस्तरस्यास इष्टास्य और काम्बसिय
का प्रयोग अधिक देख पड़ता है । उरमा कथक उत्प्रेषण धर्मसंस्कार धम्मोपमक धानुति
बीषक, धम्मोक्ति धार्ति धर्मकार भी बधास्यास प्रयुक्त किये गये हैं । जैसे—

बड़े बड़ाई न करै, बड़ो न घोसै घोस ।

रहितम हीरा कप कही लाख बजा मेरी घोस ॥^९ (धर्मस्तरस्यास)

बिरहु कप धन तम मयो धरधि धास फतोत ।

बयो रहीम भावै निघर बनकि जान बायोत ॥^{१०} (इष्टास्य)

रहितम कम्मि बितान से बितान को चित बैत ।

बितान बहति निरौब को बितान जोब तपेठ ॥^{११} (काम्बसिय)

१ रहितम बितान, पृष्ठ १२१७०१

२ बही, पृष्ठ १२१२५७ १२१२२२ १२१२४०

३-८ बही, पृष्ठ २१४० २१४८, १२१२४० १२१२६६ १२१२६२ २२१२६६

९ ११ बही पृष्ठ १४, १२३१ २६१२२२, १८१ ७०

बसहि मिलाय रहीम ज्यों कियो प्राणु समधोर ।

संगबहि प्राणुहि धार ल्यों सकल बाँध की भीर ॥^१ (धरणीधर)

अपने हाथ रहीम बंधों, नहीं प्राणुने हाथ ।^२ (विरोधामास)

(घ) समपासकार—इन प्रकार के समचारों में सुदर की अपेक्षा नमृष्टि अधिक हृष्टिमत होती है। यथा—

समत समत मापन रही, बही नहीं बिसपाय ।

रहिमन मोई मीत है भीर परे ठुराय ॥^३

इसमें बोध्या बुत्वनुप्राप्त छेदानुप्राप्त तथा पर्याप्तगम्याप्त का प्रयाग तिसतइस-क्य हुआ है मत संमृष्टि है।

पूरु—बोहावसी में प्रसार धीरे मापुय गुण की बहुमता है। प्राज गुण उन पद्यों में अनन्य होता है जिनमें रहीम ने या बकता दरिद्रता, दुःखीकता प्रादि की अपेक्षा मृत्यु की अधिकता दिया है।

धोप—सुदर भावों तथा प्रमादपूरु भाषा से युक्त भी रहीम का मोनिकाव्य शोषमुक्त नहीं है। कहीं कहीं उसमें ऐश प्रयोग का आते हैं जो भावात्म्य में बाधक सिद्ध होत हैं। जैसे—

(क) धोपे की सतसंय, रहिमन सबहु संघार बधों ।

सावो बारें संय सीरो री कारो तगें ॥^४

अतः बोधे में सत का प्रयोग निरर्थक है नहीं उपहामजनक भी है। धोपे अनुप्य का सगति की सुसंगता भले ही कह दिया जाए, सतसंय करना तो बदती-क्यापात है।

(ख) बन धोरो इजगत बड़ी कह रहीम का बात ।

बंसे कुल की कुलबधू बिपइन माहि समत ॥^५

बाहे का तृतीय चरण अधिकवदत्त वाप म युक्त है क्योंकि 'कुलबधू' या 'कुल की बधू' का अर्थोत्तर धर्य की प्रतीति हो जाती है, फिर 'कुल' का दो बार प्रयोग अपायक हो है। इसी प्रकार 'कुल' की 'पुनरहित' सम्पन्न भी भी पर है।^६ भावों तथा हृष्टान्तों की पुनरहित भी अनेक पद्यों में सुलभ है।^७

आचार्य प्रकाश—प्रायः प्रत्येक साहित्यकार पद्यकर्ता तथा मन्वयमधिक निम्नको से प्रभावित होता है धीरे समकालीन तथा परवर्ती साहित्यमन्त्रियों की प्रभावित करता है। रहीम भी इस नियम के अन्वय में थे। उनको रचनाओं पर संस्कृत मीर प्रकारों के हाँ सेवकों का नहीं कबीरदास पुनःशोधकारि का भी प्रभाव कवित्त होता

१ ५ रहिमन विनास पृष्ठ ७१३ ७१२ १२१४४ ६८ २५० १११०७

२ बही पृष्ठ ६४६

३ बही सुनना करे बोहा ६८, ६९ ७२ १११ १० १३२

है। परन्तु वे प्रथमएँ ही नहीं प्रथमएँ भी थे। बिहायी बन्धु रसनिधि घाबि की रचनाओं पर रहीम की छाप स्पष्ट मलित होती है। बूँकि इस विषय पर धर्म्य विद्वान् पर्याप्त विवेचन कर चुके हैं, इसलिये विष्टपेयसु निरर्थक प्रतीत होता है।^१

उपर्युक्त विवरण से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि रहीम विषय की व्यापकता भावों की मानिकता धनुमूर्तियों की नवीनता भाषा की स्वच्छता कल्प-भाषों की कोमलता प्रसंकारों की सुन्दरता घाबि की वृष्टि से नीतिकवियों की प्रथम देखी में परिवर्णनीय हैं। उनकी 'बोहावसी' एक सुन्दर नीतिकाव्य है।

धकवर की दरबार के नीतिकाव्य का सिंहावलोकन

व्यक्तित्व नीति—धकवर दरबार के कवि हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के प्रथम-प्रथम घाबे हैं। ये कवि धार्मिक और मानिक से इसीलिये इन की रचनाओं में एक घोर तो अन्ध-कवियों का-सा नीतिकाव्य दिखाई देता है, और दूसरी घोर पर-बारी नीतिकाव्य। घरीर की नदरता बाणी की मञ्जुरता चीम की महता संतोप की उपादेयता तथा विषयों की हेमता मन्त्रों के नीतिकाव्यों के प्रिय विषय थे। जहाँ उपर्युक्त दरबारी कवियों ने इन विषयों के वर्णन में संश्लेष नहीं किया वहाँ मृप और कृपासासन से सम्बन्धित विषयों पर भी विशेष बल दिया है। इन कवियों ने धनुमन्त्र किया कि दरबार के बिनासी जीवन का परिणाम दुःखप्रद होता है, सुखा सत्य संभल सु-पोषर्नक और विद्वत्ता से दरबार में संमान प्राप्त होता है और पेट के कारण धरमान भी सहाता पड़ता है। इसलिये इन्होंने परजातापबन्धक बातों से पाठकों को संश्लेष किया बिघाबि मुणों के प्रहस की प्रबल प्रेरणा की और पापी पेट को बिककारा। ध्याम देने की बात है कि उन दिनों मुरा अफ्दीम मंग घादि का प्रथमन पर्याप्त था। धकवर स्वयं भी मुरापामी का और उसके दो पुत्र भी धरत्यकि मुरापान के कारण प्रकाश में ही काशकबलित हो गये थे। परन्तु इन कवियों ने इन धरसनों का निवेध नहीं किया। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला यह कि ये कवि स्वयं भी मद्यप हों और दूसरा यह है कि ये लोग अपनी रचनाएँ दरबार में मुरामा करते थे। जब धकवर तथा समासधु इन धरसनों में सिप्ट हों तो कवियों को इनका निधा करने का साहस न हो सकता था। इन कवियों ने बिघाबिहोनों को पशु कहा है विद्वत्ता की प्रसंता की है और बेद, कुरानाबि की सत्य कवियों के समान निधा नहीं की। कारण स्पष्ट है विद्वत्ता के कारण ही इनका दरबार में धाबर-संमान का और धरधर्मों के प्रथों का वहाँ धाबर होता था। इसके अतिरिक्त ये कवि कोई संत-महात्मा भी न थे जो ध्याम-ध्याम से इनने नीम रक्षते कि धर्मधर्यों की धरज्ञा कर बैठे। यहाँ यह प्रथन हो सकता है कि धकवर को निरधार कहा जाता है इसलिये इन्होंने धरने काव्य में

विद्याहीन को पन्न कहने का साहस जैसे किया। वस्तुतः अक्षर मिरकर नहीं या करने क्यों तक पुस्तकों से शिक्षा प्राप्त की थी और वह फारसी तथा हिन्दी में कविता किया करता था। श्री एन० एन० सा ने भी उन्हें साधारण ही प्रमाणित किया है। यह अनेक विद्वानों से निरर्थक प्रश्नों को सुनता था और पाठ के समाप्तिस्थान पर पेंसिल से बिन्दु लगाया करता था। छात्रों के लिए स्वयं पढ़ने की प्रवृत्ति कर्मचारियों से सुनना अधिक गौरवपूर्ण माना जाता था। इसलिए अक्षर जैसे बहुयुक्त को ज्ञान होना किसी भी प्रकार नहीं कहा जा सकता और इसीलिए दरबारी-कवि विद्याविहीन को निस्संकोच पद कह सकते थे।^१

पारिवारिक नीति—इस क्षेत्र में इन कवियों की कोई विशेष देन दिखाई नहीं देती। एक तो हम पर इन्होंने शिक्षा ही छोड़ा है और दूसरे जो शिक्षा है वह भी संत कवियों के ही अनुकूल। विवाह म्याथि है पुत्र-कमल धारि का मोह कुलपद है, गृह-मुष धारि धन नहीं है जीवन बचस है, पाठिपत्र और पत्नीपत्र प्रसन्ननीय है, पूर परिवार की बिम्बसिका है स्त्री पुरुष का वैमत्य दुःखजनक है धारि सामान्य बातों का ही प्रसंगबस निर्देश किया गया है। पारिवारिक समस्याओं के परस्पर वर्तमान, उन में प्रेमोपचय के साधन भाई-बहिनों धारि का परस्पर स्नेह मार्गस्थ को स्वयं मय बनाने के साधन धारि की विशेष चर्चा नहीं मिलती। वस्तुतः इन कवियों पर भी मध्यकालीन विद्याधारा का प्रभाव इतना अधिक था कि इन में जीवन के प्रति वह उत्साह-पूर्ण दृष्टिकोण प्रायः ही नहीं हुआ जो इन्हें इस प्रकार की काव्य रचना की स्फूर्त प्रदान करता।

सामाजिक नीति—इन कवियों का वास्तविक महत्त्व इनकी सामाजिक नीति के कारण है। इन्होंने सच्चा मित्र कपटी साधु, प्रेम परोपकार धारि परम्परागत विषयों पर भी काव्य-रचना की है परन्तु इनका वैशिष्ट्य स्वामिभक्ति सम्मानमुक्त जीवन कुलीन और छोड़े बच्चों की कृपा से उत्पत्ति, हीन प्रेम राम पुण्य व विना जीवन की व्यर्थता याचना की निम्ना गुण-आहुकता धारि विषयों के प्रतिपादन में है। कहना न होना कि प्रायः इस सब विषयों का भूनातिक सम्बन्ध इनके दरबारी जीवन से है। ये लोग राजमन्त्र से सम्मानित जीवन व्यतीत करते व अल्प कुत्तों से उत्पन्न हुए थे धाधकबातधों की कृपा से समृद्ध बने थे तथा मुसिधा के कारण कार्यभार के जीवन को निरर्थक याचना को व्यर्थ और गुण-आहुकता को वर्तमान सम-मते थे। इसलिए अपनी परिस्थितियों के अनुसार उक्त विषयों पर बस देना इन के लिए सामाजिक था। ये संसार की केवल प्राचीन पुस्तकों के कौनों से ही नहीं अपनी भावों से भी देखते थे और जो बात धरी सगरी थी उसे परम्पराबिन्द्य होने पर भी

१ अक्षर की दरबार के हिन्दी कवि, पृष्ठ ११

सैमी—नीति के मुक्तकों की हीनी अपभ्रंस-काव्य में प्रचलित थी हो। पाणि-
काव्य में पठान-पासन के समय में बीरवापायों की अधिकता के कारण ऐसी रचनाएँ
या तो सिधी ही नहीं गई या फिर परिस्मितबन्ध सुप्त हो गईं। भक्तिकाव्य में कबी,
मानक भाषि सत्तों के पुनः नीति तथा उपदेशप्रमक बोहे निबिहे। मुक्तकों की यही हीनी
नीतिक विषयों के लिए पुनः स्वीकृत हुई।

अन्व—नीति की मुक्तक रचनाओं के लिए अनेक भाषिक सत्तों का प्रयोग
सिया गया उनमें से बाह्य अल्प्य कवित्त और सबसेया मुख्य हैं। छोटा कुंडलिमा
मुक्तका का भी प्रयोग किया गया परन्तु कुछ ही पद्यों में। ये उन्व उपबन्ध रूप में
कही-कही मात्राओं की मूल्यविक्रता के कारण सदोप्य हैं।

घसकार—ये नीतिकार निरन्तर पद्यकार नहीं थे। ये साहित्यशास्त्र के विद्वान्
और प्रायः सुकवि थे। इसलिये इन्होंने नैतिक लक्ष्यों के निकषण में प्राय और भाषा
दोनों का कुछ-न-कुछ चमत्कार लाने का यत्न किया है। प्राय इनके पद्य सन्ध, अर्ध
और समय हीनों प्रकार के घसकारों से मण्डित दिखाई देते हैं। सुन्दर उपमाओं और
दृष्टान्तों से स्वबन्ध को अधिक रोचक और प्रभावशाली बनाना ये नीतिकार कभी
नहीं ससे। घस्यासकारों में से इन्होंने ऐक्यनृप्रास वृत्तनृप्रास बीप्सा और नाट्य
प्रास, यमक तथा अन्वसेव की अपेक्षा प्रियतर थे। अर्थकारों में उपमा रूपक
मासोपमा, अर्थात्तरम्यास दृष्टान्त तुल्ययोगिता उत्प्रेक्षा धातुतिवीचक, शिपोक्ति
असंकारों का प्रयोग मपार्थक्य अस्यासन्ध, एकावली अतिरेक आदि की अपेक्षा
अधिक हुआ है। सुकर की अपेक्षा संसुष्टि में इन कवियों की शक्ति अधिक थी।

मूल-बीच—इन कवियों के नीतिकाम्य में प्रसाद पुण्य सर्व प्रधान है। माहूर्त्त
की मात्रा उघे कुछ कम है और धोच की उच से कम। इन कवियों के आभयवाताओं
के बीरत्व-अर्जुन में तो धोच की मूल्यता नहीं परन्तु ये रचनाएँ नीति-काव्य में अस्वहित
नहीं हो सकती बस्तुतः वे प्रचलित ही हैं। कुसल कवियों की कृतियाँ होने के कारण
ये सामान्य रचनाएँ सामान्य रूप से निर्दोष हैं।

इस काम्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रायः इसका दृष्टिकोण ऐहिक
है और यह कौर्त्तों को लोक-अवधार की शिक्षा देने को ही सिखा गया है। पाणिनाम
के कवियों में नीतिकाम्य प्रसंभबन्ध समाविष्ट है, संतों तथा भक्त कवियों का नीतिकाम्य
अर्थप्रबण और मोक्षीमुख है। इन बरबारी कवियों ने ऐहिक जीवन को सफल बनाने
के लिए ऐसी काव्य-रचना की जो इनके जीवन के अनुभवों पर आधारित है और
काव्यात्म-दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है।

३—अनुशासक कवि

बहारसीदास—जैन महाकवि बमारसीदास के कुछ नीतिकाम्यों का असेक
अन्व कर ही चुके हैं। इन्होंने मूल्य मुक्तकावली, अस्यास्यविर स्तोत्र तथा अनेक

सहस्रनाम नाम के तीन संस्कृत ग्रंथों के हिंदी अनुवाद भी किए थे, जिनमें से प्राच्य सोमग्रन्थ (बिष्णो तैत्तिरीयों) की 'मन्त्रिमुक्तावली' या 'सिद्धरत्नकर' संस्कृत का सुंदर नीतिचतक है। प्रारम्भिक पद्यमुक्त मंगलाचरणालम्बक है मध्यवर्ती १० पद्य २२ अधिकारों में विभक्त है अंत में ८ उपदेश-भाषाएँ हैं जो न प्राकृत भाषा में हैं न भाषा छंद में। वे संस्कृत के सिद्धरिणी चार्दुसबिभीहित आदि छंदों में हैं। इन गाथाओं में से दो मत्स्य हरि के नीतिचतक पद्यों के ही जन स्याम्तर हैं।^१

उक्त ग्रन्थ का अनुवाद बनारसीवास ने अपने अमिलहृदय मित्र कुबरपाल के सहयोग से सन् १९११ की बंगाल दुबसा एकादशी सोमवार को सम्पूर्ण किया था।^२ कुछ पद्यों में बनारसीवास बनारसि या बनारसी नाम आया है और कुछ में कुबरपाल कौरपाल या कुबरा। जिन पद्यों में किसी का भी नाम नहीं सम्भवतः उनकी रचना में लोगों का सहयोग रहा होगा।

मूल पुस्तक दो संस्कृत के चार्दुसबिभीहित सिद्धरिणी बसन्ततिसका, हारिणी आदि छंदों में लिखी गई है परन्तु अनुवादकों ने अपने हिन्दी ग्रन्थ के कारण अनुवाद में मनहरण (मनासरी सर्वथा इकतीसा) मत्तमयम् छण्य दौषकांतबेसरी^३ कबितमात्रिक (मात्रा ३१ मात्रा) सोरठा आमानक^४ मोठा वस्तु^५ कुडमिया मरुद्व्य रोडक (रोना) करिका चौपई, चौपाई, बेसरी पठरि हरिणीतिका पद्या बती^६ तथा बोहा छंदों का व्यवहार किया है। लक्ष्य करम की बात है कि अनुवादकों ने बोहो और चौपाई का प्रयोग ठा एकाव ही स्वस पर किया है परन्तु मनहरण मत्तमयम् कबित मात्रिक (३१ मात्रा) और छण्य का बहुत अधिकांश। कारण यह

१ बनारसी बिलास पृष्ठ ६५।१७, १८, शतक त्रयम् पृष्ठ २१।२१, ३०।२३

२ कुबरपाल बनारसी मित्र सुपत्त इकचित।

तिर्नाहि र्थं भावा क्रियो बहुबिभि र्थं कबित ॥

सोतहू है इयमानवे श्रुतु पीष्म बजाक।

सोवधार एकारती टरनचक्र तितपाक। (बनारसी बिलास पृष्ठ ४१)

३ दोषकांत बेसरी। बोहा। बसरी के चार चरणों में क्रमत् १९ १९, १२, १२ मात्राएँ होती हैं। (बनारसी बिलास पृष्ठ १८ २ ३)

४ आमानक के प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती हैं और ११, १० परपत्ति। (बही पृष्ठ ३०।२६)

५ वस्तु चार पाँच चरणों का बिधम दम्ब है। इसके प्रथम चरण में १४ व की पति से २२ मात्राएँ द्वितीय तथा तृतीय चरणों में ११, १२ की पति से २६-२६ मात्राएँ होती हैं तथा अंतिम दो चरण बोहे के होते हैं। (बही पृष्ठ २२, ४१)

६ पदमानती ४ प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं और १६, १६ पर पति (बनारसी बिलास, पृष्ठ ४८ ८० ६१।८२)

है कि मूक पद्य संस्कृत के बड़े-बड़े छंदों में हैं और उनके एक-एक पद्य में अनुशासक के लिए भी बृहदाकार छन्द ही अपेक्षित होते हैं ।

पुस्तक के विषयों का परिचय २२ धर्मिकारों के निम्नांकित शीर्षकों से ही हो जाता है—बर्म पूजा मूक, जिनमठ संघ, अहिंसा, उत्सवजन अदलबान, दीप्त परिवह क्लेश मान माया (कपट) सोम सज्जन मुण्डिम रक्षिय कयमा (लक्ष्मी) वान, तप सावना और बैराग्य । अर्थाधिकार में ९ पद्य हैं और सेव सभी के आर-आर । बर्म पूजा जिनमठ संघ और बैराग्य के धर्मिकारों के विषय मय में धामाय्य नीति का यज्ञ है । परन्तु वह सामान्य नीति आणुबन्ध-नीति यदि है सतना साम्य नहीं रखती जितना संतों के नीतिकाम्य से । अदाहरणार्थ अमलाधिकार में लक्ष्मी की निन्दा ही निन्दा है उपादेयता का अस्मैय नहीं । अर्थाधिकार में क्लेश के बोधों का ही उल्लेख है उचित अमवर पर उसकी उपादेयता का नहीं । शीर्ष पराक्रम, अशोक धारि पर धर्मिकरणों का अभाव है । कारण यह प्रतीत होता है कि मूक संघ मुनिप्रणीत है और उनका ध्यान धारणों की ओर रहना स्वाभाविक ही था । एक उदाहरण इष्टम् है—

पावक तैं अत होय बारिघ तैं अत होय
 सार तैं कमल होय प्राप्त होय अत तैं ।
 कुल तैं बिबर होय पर्वत तैं अर होय,
 बातक तैं बास होय हितु कुरकम तैं ॥
 तित् तैं कुरम होय ध्यात स्थान अंग होय,
 बिष तैं विपुल होय मासा अहिंफन तैं ।
 विषम तैं सन होय संकट न ध्यात कोय ।
 एते गुन होय अयबारी के बरस तैं १

सार यह है कि कृति अनुशासक होते हुए भी बहुत सक्रिय है । आणु-बन्धीति मनु-हरि-कृत नीतिशतक धारि के अनेक कवियों ने अनुशासक क्रिये परन्तु इतने सुन्दर, सरस और असाधारण अनुशासक विरस ही हैं ।

४—फुटफर नीति काव्य

१ सातवें—अकाली बरवार के रत्न प्रख्यात संघीतनिष्णात कान्हेन का अम सं० ११८८ म मकरद पाखे के गृह में हुआ था । मुसलमान बनने के परनाम् में श्री विठ्ठलनाथ धारि के अभाव से पुन-संयुक्त बन गये थे । इनके फुटफर परों में अर्थ, अत्य धारि की प्रेरणा पाई जाती है ।

२ मनोहर कवि—कछवाहा सरदार मनोहर मकबरी दरबार के एक अधि-
कारी थे। हिंदी के प्रतिरिक्त फारसी में कविता क्रिया करते थे। संवत् १६०० के
लगभग इन्होंने गुंवार के प्रतिरिक्त नीतिविषयक फुटकस दोहों की भी रचना की थी।

३ धमूत कवि—सिर्वांसह सेंगर के महासुधार इनका जन्म सं० १६०२
में हुआ था और ये सम्राट् फकर के प्रासिद्ध थे। ता० प्र० सना कापी के स प्रह
सं० १३३४।८३६ में "पंचबड़ाई" नाम से इनके केवल तीन पद्य स कसित हैं।
'गिरांसिह सराज' में इनका केवल एक ही पद्य स सूत्रित है और वह भी पंचविषयक
ही है। पद्य सुक्तिमात्र है।

४ कन्नेस—इनका जन्म सं० १६११ में और कविता-काल समय सं०
१६३७ माना जाता है। मझपाब नरहरि के साथ मकबरी दरबार में उपस्थित हुआ
करते व तया वाक्यशास्त्र सम्बन्धी विषयों पर रचना करते थे। इनके नीति के फुटकस
पद्य भी सुन्दर हैं।

५ जमाल—सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध में यवन-कवि जमाल ने नीति के दोहे
लिखे थे जो राजस्थान में लोकप्रिय हैं। धर्म तक इनका कोई रस प्राप्त नहीं हुआ।

६ नरायणदास—इनका जन्म सं० १६१३ में हुआ था। इन्होंने सं०
१६४० में हितोपदेश का उम्बोजड अनुवाद किया।

७ काबिर—मिसा हरबोई के निवासी समय इब्राहीम के सम्लेवासी काबिर
रचना का कविता काल सं० १६६० के लगभग है। इनके नीतिविषयक कुछ स्पुट
सुन्दर पद्य इतर-उतर मिलते हैं।

८. समय सुन्दर—इनका "दानधीमठपमावता संवाह" जयपुर के पुरा-
तस्वमदिर में सुरक्षित है। क्रमांक ८८१ पत्र ४ भाकार १०"×४३"। रचना सीगा
नेर में १६६२ में की गई है। राजस्थानी-मुजराती भाषा की इस संवाधारमक कृति का
विषय नाम से ही स्पष्ट है।

९. मुनिहेमराज—मुनिजी ने "घरर बावनी" या "हितोपदेश बावनी" की
रचना सं० १६६३ में की थी। इसकी प्रति जयपुर के तेरहवींशियों के बड़े मंदिर
में सुरक्षित है। इसकी क्रमसंख्या १८८६ पत्र-जल्मा १२ भाकार १"×४" तथा
निर्णयकाल सं० १७३७ है। राजस्थानी की इस रचना में जनप्रिय नीति का उम्बोज
है। संक्षेप कविता छाप्य छन्द ब्यबहृत हुए हैं।

१०. मुनि समय सुन्दर—जम जैन मुनि ने सं० १६६८-६९ प मध्य में राज-
स्थानी भाषा में नीति की निगमनिगित छह छत्तीसियों की रचना की—१ कर्म
छत्तीसी (सं० १६६८ मुनग्रान) २ पुष्य छत्तीसी (सं० १६६९ सिद्धपुर) ३ स-तोप
छत्तीसी (सं० १६८४ नृणजसुंसर) ४ प्रस्ताव सवदा छत्तीसी (सं० १६६० जमाल)
५ धानोपला छत्तीसी (सं० १६६६ पहमदपुर) ६ लमा छत्तीसी (नागोर) इनमें
प्रथम द्वितीय तृतीय तथा छठी छत्तीसी हमने जयपुर के पुरातस्व मंदिर में देखी।

इन छत्तीसियों के विषय नाम से ही स्पष्ट है। उन्हें ऐतिहासिक दृष्टान्तों से पुष्ट भी किया गया है। परन्तु रचनाएँ काव्यस्वरूप-रहित हैं। सम्भवतः उन युक्त समय सुन्दर से अभिन्न हैं।

११ सीखामण्ड डाल—प्रजापताया कवि की सप्तहत्ती सती की यह रचना जयपुर के पुरातत्व मंदिर में सुरक्षित है। प्रतिसंख्या २०७५, माकार १० × ४३ गुजराती लिखित राजस्थानी की इस रचना में मोसे सोमों के सिद्धार्थ केवल ४७ पद्य हैं।

१२ ईसर—ये प्रख्यात राजस्थानी चारण कवि ईसरबास से भिन्न हैं। इनकी 'ईसरसिद्धा' जयपुर के पुरातत्व मंदिर में विद्यमान है। क्रमांक २ ३६ है और माकार १० ४ × ४३। दो पत्तों की इस पुस्तिका की भाषा राजस्थानी गुजराती है और मांस-भक्षिणों के व्यसनों का निषेध किया गया है। रचना का सिद्धिकार सप्तहत्ती सती है।

१३ सार्धस या खेम—सम्भवतः जैनमुनि थे। इनकी 'द्विपंचासिका' (बाबनी) जयपुर के मुरुकरण पांडेय के मंदिर में सुरक्षित है। गुटके (सं० १९) का लेखन-काल सं० १६३३ है। राजस्थानी भाषा में २४ छप्पय हैं। विषय जैन-प्रिय नीति है। बाह्यणों तथा जनों के इतिहास पुराणों की कथाओं के पर्याप्त संकेत हैं।

चतुर्थ अध्याय

भक्तिकाव्य में नीति-सत्त्व (सं० १३७५-१६००)

स्वामी रामानन्द और बाल्मनाथार्थ की प्रेरणा तथा हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के संघर्ष के फलस्वरूप विजय की चौ-हवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से सप्तहवीं की समाप्ति तक हिन्दी में भक्तिकाव्यों की रचना इतनी अधिक और सुन्दर हुई कि उस युग को भक्तिकाव्य की सृष्टि के समीचीन समझा गया। उसी युग में कबीरदास मुहम्मद बानसी गुरदास तुलसीदास आदि सत्रों मूक्तियों और मठों ने अपनी अमर रचनाओं से हिन्दी के युग का उज्ज्वल किया। यद्यपि रीति-काल में भी कुछ योगिन्य सिंह विरगनाथ सिंह नामदीदास आशा हितबन्दासन राम प्रबन्दीदास आदि अनेक संतों और मठों ने भक्ति काव्य का प्रयोग किया तथापि इनकी रचनाओं में बहु लचीलता, स्फूर्ति भावविशेष तथा काव्यत्व नहीं जो उपर्युक्त कवियों की कृतियों में सुप्रसिद्ध है। गद्य अध्याय में तो हम ने उन मौलिक तथा अनुचित रचनाओं का परिचय किया है जिसका विषय ही नीति या प्रत्युत अध्याय में हिन्दी के उस भक्तिकाव्य का नीति की दृष्टि से मूल्यांकन करने का यत्न किया जायगा जिनकी रचना भक्तिकाव्य और रीतिकाल के अन्तर्गत हुई। पूर्ण भक्ति की पारा स्पष्टतः चार प्रकारों में बहती हुई ललित होती है अतः उसका अध्ययन निम्नलिखित चार वर्गों के अन्तर्गत करना अनुचित न होगा—(क) सत्त्व काव्य में नीतिकाल (ख) मूक्तिकाव्य में नीति काल (ग) राम काव्य में नीतिकाल और (घ) कल्याणकाव्य में नीतिकाल।

(क) सत्त्वकाव्य में नीतिकाल

शोक में सत्त्व काव्य का व्यवहार साधु संन्यासों ईश्वर भक्तियों के लिए किया जाता है। इन कृतियों में तो रामभक्त कल्याणभक्त और सुधी सभी अन्तर्गत माने जा सकते हैं और माने भी जाते हैं। परन्तु प्रत्युत प्रसंग में सत्त्व काव्य से हमारा अभिप्राय कबीर साहब, मुद नानक दासदास आदि उन निर्गुणिया महात्माओं से है जिन्होंने हिन्दी-साहित्य के भक्ति काव्य में जो उच्च भाव भी एक विशेष विचारपारा का प्रवर्तन तथा प्रचार किया। ये सत्त्व विचार के उत्तम के अन्तर्गत मूक्तिकाव्य आदि के विशेषी से तथा निर्गुण राम की भक्ति और सात्त्विक जीवन के प्रचार के हैं। ये हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही वर्गों के अन्तर्गत ईश्वर विचार के अन्तर्गत, समा समा परोपकारादि से तो साक्षात् सत्त्व परन्तु नीतिकाल, तीर्थ या सेवा समाज आदि बाह्य साधनों

से दूर रहने का समुद्रोप करते थे। ये धर्ममेव सम्प्रदायवाचक बर्णों जाति-नीति, ऊँच नीच भूषाकृत आदि बो हेय मानते थे और इन बातों का उँके की चोट से खंडन करते थे। यद्यपि वे स्वयं शिक्षित न थे तथापि साधना और सवाचार के धनी थे। उन्होंने मुस्योह इय सोमों को निराकार के प्रेम में लीन करना या और इसी उद्देश्य से इन्होंने अपनी रचनाएँ कीं। परन्तु प्रभु की प्राप्ति के लिए भक्तों को एक विशेष प्रकार के आचार-व्यवहार को धर्मीकार करना ही पड़ता है। यही कारण है कि इन की रचनाओं में व्यावहार नियमक अनेक समुस्य बातें समाविष्ट हो गई हैं जो प्रस्तुत प्रबन्ध से सम्बन्ध रखती हैं। सप्त-काव्य के अध्ययन से विदित होता है कि जैसे तो अद्यमें पूर्वोक्त उहाँ प्रकार की नीति विद्यमान है परन्तु अधिक बस आत्मिक समाजिक, प्रासिदियक तथा मिश्रित नीति पर है।

१—व्यक्तिकी नीति

आधैरिक नीति

शरीर के सम्बन्ध में अन्तों के मुख्य विचार दो हैं। एक तो वे इस की सगु संगुरता पर अत्यधिक बल देते हैं और दूसरे बसकी दुर्बलता पर। कहीं ती वे उसे बल के कुलकुलों और प्रमात के लक्षणों के समाने^१ अणुस्थायी कहते हैं और कहीं एक-एक स्वास की बीरह धुबनों के तुल्य मूस्यवाम्। बस्तुतः इन दोनों विचारों में कोई विरोध नहीं है। जब उन्होंने देखा कि सामान्य मनुष्य अपने जीवन सोमयें अहित धारि के कारण दुष्ट होकर अनैतिक माय पर अग्रसर हो जाता है तो उन्होंने उसे सचेत करने के लिए शरीर की सागुसंगुरता का उपदेश दिया। अधितर सोय अपना समय आत्मस्य, मित्र और विपत्र भावों में व्यय करते हैं। अन्तों के मत में इस प्रकार के जीवन से नि-अवस की प्राप्ति असम्भव है। इसलिये उन्होंने ऐसे सुकरय करने की प्रेरणा की जिससे मनुष्य का प्रेत्यमाव हो ही नहीं। जीवन-काष में तो शरीर को प्रभुभक्ति में लमाना ही चाहिए मरने पर भी बसका सदुपयोग हो जाए तो अच्छा ही है। इसलिये बाहू की ने उसे असाते तथा बफजाने के बजाम पसु-पधियों को बिलाने की सत्प्रेरणा की है। उक्त मर्तों के निबर्णक कुछ पद्य देखिए—

(क) काहेरे नर गरक करत हो बिनसि आइ मूठी देही ॥^१ (नामदेव)

(ख) (बाहू) ऐसे मँहूये मोल का एक तास जे आइ।

पोरह लोह समान सो, काहे रेत मिलाइ ॥^२

(ग) हरि भबि लाडिल जोबना पर उपगार समाइ।

बाहू मरखी लहू मला अहूँ पसु पंसी आइ ॥^३

१ कबीर बचनावली (पा० प्र० स काशी सं० २००३), पृष्ठ १२वा१६६

२ अणुसाहब नाम १ पृष्ठ १६२

३ सप्त बाहू और उनकी बाखी (हिमालय प्रेस बनिया) पृष्ठ १३०

४ यही " " (" ") पृष्ठ ११०

साधक नीति

सन्त-काम्य में बाणी के प्रयोग के विषय में बहुत ही मार्मिक तथा काम की बातें कही गई हैं। जैसे न ता बाबासता हितकर है भोग न मोन। अक्सरानुसार मधुर भावी या मोनी तो होना चाहिये परन्तु कटु भावी कर्षादि नहीं। अहंकार को त्याग कर ऐसा बाणी बोलनी चाहिए जिससे अपना मन घोटल हो और मोटाघों को मुख। मधुर वचन घोषम-सङ्घ होते हैं और कटु वचन तीर-सुख्य। के प्रविष्ट तो कर्ष-पक्ष से होत है परन्तु प्रभावित सकस धरीर को करते हैं। संसार में भिक्षा का रस सर्वोत्तम है। मासी का अन्तर मासी छ न देना चाहिए। धारम-बसाधा और पर-निम्बा समान रूप से त्याग्य हैं। संतों ने धारम-अस्कार के लिए पर-निम्बा का तो प्रतिषेध किया है परन्तु अपनी बदचरिता के कारण निम्बक को बुरा न कहकर उसकी प्रशंसा की है। उसके कीर्त्तियुष्य के लिए प्रार्थना की है और उसकी मृत्यु पर अशुभाव किया है। कारण निम्बक हमारा अफकारी नहीं अफकारी है। हमसे दोष होने तो निम्बक के अर्थों से प्रभावित होकर हम उनके परिहार का प्रयत्न करेंगे। इन कर्षियों ने साधमापण को सर्वोत्तम तप और मूयाबाधन को निकृष्टतम पाप कहा है। अत्यन्तरी के हृदय में ही प्रभु विराजते हैं दूसरों के मन में नहीं। अत्यन्त वही है जिसकी "कबनी घोर करनी" में धामजस्य हो। भोग अन्धे अन्ति पर तो विन्नास नहीं करते परन्तु मूठे पर कर सते हैं। और सबसे बढ़कर बाणी का अनु-धोय है नाम के पाप में अिध के बिना जीवन ही निरर्थक है। अगाहरणायं—

मधुर वचन है घोषणि बहुत वचन है तीर ।
 अरुण द्वार हू संबर, सारें सकल दारीर ॥^१ (कबीर)
 बोबी घोबे कापड़ा (रे) निरुक्त घोबे पत ।
 नार हमारा सै परं (अपु) बलिधारा को बम ।^२ (अपना)
 सफेठु में बरिइके बोयेठु बिकरे माम ।
 बाके बग की पैतरी, मेरे ठग को चाम ॥^३ (कबीर)

मानसिक नीति

उन विनों न हिन्दुओं में पंडितों की कमी थी न मुत्समानों में उसमा की। परन्तु उनकी विद्या मनुष्यों को प्रेम-सूर्यक रहता न शिक्षा सकी। दोनों एक दूसरे के धर्म और संस्कृति को बुरा बसा कहने में मग्न रहन और अपने ही धर्म की अष्टता

१ कबीर अचनावली, पृष्ठ १३१।४६६

२ अपना बी की बाणी (अपपुर, सं० १६६३) पृष्ठ ६७

३ कबीर अपनावली पृष्ठ ६७।४२॥ और भी देखें मन्त्रमुपासार रचयक की बाणी, पृष्ठ ३२२ कबीर अचनावली, पृष्ठ १३७।२६६ १४१।६०४

से दूर रहने का अनुरोध करते थे । ये धर्मभेद सम्प्रदायवाद बर्ण जाति-याति, अंध कीच छुमाछुत भादि भी हेब मानते थे और इन बातों का बर्के की कोट से बंडन करते थे । यद्यपि ये स्वयं शिक्षित न थे तथापि साधना और सहाचार के धनी थे । सर्वोका मुख्योद्देश्य बोग्यों को निराकार के प्रेम में सीन करना वा और इसी उद्देश्य से इन्होंने धपनी रचनाएं कीं । परन्तु प्रभु की प्राप्ति के लिए भक्तों को एक विशेष प्रकार के साधारण-स्यवहार को अंगीकार करना ही पड़ता है । मही काव्य है कि इन की रचनाओं में व्यावहारिक विषयक अनेक समुच्च्य बातें समाविष्ट हो गई हैं जो प्रस्तुत प्रबन्ध से सम्बन्ध रखती हैं । अन्त-काव्य के अध्ययन से विदित होता है कि जैसे तो उसमें पूर्वोक्त ज्यों प्रकार की नीति विद्यमान है परन्तु अधिक बस आत्मिक समाजिक, प्राणिविषयक तथा मिश्रित नीति पर है ।

१—व्यक्तिकी नीति

धारीरिक नीति

धारीक के सम्बन्ध में अन्तों के मुख्य विचार दो हैं । एक तो वे इस की अणु अनुरोध पर अत्याधिक बल देते हैं और दूसरे बसकी दुर्बलता पर । कहीं ती वे उसे बल के बुलबुलों और प्रमात के लक्षणों के समाने^१ साणुरमयी कहते हैं और कहीं एक-एक स्वास की चौबड़ मुचनों के तुल्य मूल्यवान् । वस्तुतः इन दोनों विचारों में कोई विरोध नहीं है । बल जहूँनि देखा कि सामान्य मनुष्य अपने जीवन सौन्दर्य अक्षि धादि के कारण वृष्ट होकर धार्मिक मार्ग पर धपसर हो जाता है तो जहूँनि उसे सचेत करने के लिए धारीक की साणुअनुरोध का उपदेश दिया । अधितर बोग धपना समय व्यावस्य निद्रा और विषय-भागों में व्यय करते हैं । अन्तों के मत में इस प्रकार के जीवन से विभेसकी प्राप्ति असम्भव है । इधलिए जहूँनि ऐसे सुद्धरम करने की प्रेरणा की निगधे मनुष्य का प्रेर्यमात्र हो ही नहीं । जीवन-काल में तो धारीक को प्रमुधक्षि में सजाना ही चाहिए मरने पर भी उसका अनुपयोग हो जाए तो अक्षता ही है । इधलिए दाडू जी ने उसे बसने मना बरुनाने के बजाम पधु-पधियों को बिजाने की सधेरखा की है । धरत मत्तों के निरधेक कुछ पध देखिए—

- (क) काहेरे नर मरन करत हो बिनिहि जाइ मूठी बैही ॥^१ (जामदेव)
- (ख) (बाडू) ऐसे मंडूये मोल का एक सांस जे जाइ ।
घोड़ह लोक समान तो काहे रेत निजाइ ॥^२
- (घ) हरि नहि साधिस जीवनता नर उपचार समाइ ।
बाडू नरलौ ठहूं भला जहूं पधु पंखी जाइ ॥^३

१ कंधार बचनावली, (भा० प० ल० काशी सं० २००३), पृष्ठ १९५३६६

२ अम्बताहृद भाष १ पृष्ठ १६२

३ सप्त बाडू और धरकी बाणी (हिजालय प्रेस, बलिया) पृष्ठ १३०

४ मही " " " ") पृष्ठ ११०

वाचिक नीति

सन्त-काम्य में वाणी के प्रयोग के विषय में बहुत ही सामिक तथा काम की बातें कही गई हैं। जैसे न ता वाचासदा हितकर है घोर न मौन। प्रथमसंज्ञानुसार मधुर मापी या मीनी तो होना चाहिये परन्तु कटु मापी कबारी मर्दा। यहकार को त्याग कर ऐसे वाणी बोसनी चाहिए जिससे अपना मन दौलत हो घोर बोलाघों को मुक्त। मधुर बचन घोष-सहस्र होते हैं घोर कटु दम्भ तीर-तुल्य। वे प्रविष्ट तो कर्ण-मय से होते हैं परन्तु प्रभावित सक्त शरीर को करते हैं। संसार में जिज्ञा का रस सर्वोत्तम है। वाणी का उत्तर वाणी से न होना चाहिए। आत्म-स्माया घोर पर निम्ना समान रूप से त्याग्य है। सन्तों ने आत्म-संस्कार के लिए पर-निम्ना का तो प्रतिषेध किया है परन्तु अपनी उदारता के कारण निन्दक को बुरा न कहकर उसकी प्रशंसा की है। उसके वीर्यायुष्य के लिए प्रार्थना की है घोर उसकी मृत्यु पर अभिशाप किया है। कारण, निन्दक हमारा अपकारी नहीं उपकारी है। इमसे शोष होने तो निन्दक के शब्दों से प्रभावित होकर हम उसका परिहार का प्रयत्न करेंगे। इन कर्तव्यों ने सत्यभाषण को सर्वोत्तम रूप घोर मूषावादन को निन्द्यतम पाप कहा है। सत्यवादी के हृदय में ही प्रभु विराजते हैं दूसरों के मन में नहीं। सज्जन बही है जिसकी कपनी घोर करनी" में धर्मव्यस्य हो। सोम सन्ने कर्णित पर तो बिनास नहीं करते परन्तु झूठे पर कर सते हैं। घोर सबसे बढ़कर वाणी का अनु-योग है नाम के साथ में जिस के बिना बीजन ही निरर्थक है। अशाहरणाय—

मधुर बचन है घोषवि कटु बचन है तीर ।
 बबलु द्वार ह्य संबर, साने सकल शरीर ॥^१ (कबीर)
 घोषी घोष कापदा (२) निन्दक घोषी मेल ।
 आर हमारा से चल (३) बलिबारा को चल ॥^२ (बयना)
 सन्नेहु में बरहिने भोगेहु निकरे नाम ।
 बाके पप को वेतरो, मेरे तन को घाम ॥^३ (कबीर)

मानसिक नीति

उन दिनों में हिन्दुओं में पंडितों की कमी थी न मुसलमानों में उममा की। परन्तु उनकी विद्या मनुष्यों की श्रेय-पूवक रहना न विद्या सकी। दोनों एक दूसरे के धर्म घोर संशुद्धि को बुरा-मत्ता कहने में मग्न रहत घोर अपने ही धर्म की श्रेष्ठता

१ कबीर बचनावली, पृष्ठ १३१४६६

२ बयना की की वाणी (बयपुर, सं० १६६३) पृष्ठ ६७

३ कबीर बचनावली पृष्ठ २७४८-११ घोर को देखें मन्त्रमुपाहार रजद्व की वाणी, पृष्ठ १ ३ कबीर बचनावली पृष्ठ ११७२६२ [४२१-२४

प्रतिपादित करते थे। यद्यपि सन्त भोग सबाबारी और अन्धधार्मी ने तथापि विशेष विद्वान् बने। इसलिए मानिक कसहों से कौन्से हुए सन्तों की चम्ड़ी में यदि विद्या का पहलू चसकी उपसर्गिक के धामन, विद्वानों की प्रसंसा प्राधि नहीं मिलनी तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं। उन्हीं के, कुराम पुगण की उपेक्षा की है और सब छाकी की प्रसंसा। सस्कृत जन-साधारण के लिए दुर्बोध हो चुकी थी इसलिए उन्होंने प्रथमित भाषा की स्तुति की है। जो सोच विविध विषयों के अर्थों के सम्बन्ध और बाद-विचारों में रूठ रहते थे, उन मोर्कों को इन्होंने भाड़े हाथों लिखा है। वे सोच विवेक और बुद्धि पर जो बल देते थे परन्तु साक्षरता का विवेक और मन्त्रि से कारण-कार्य का सम्बन्ध मानने को उद्यत न थे। कुछ उदाहरण देखिये—

पढ़ि बड़ि के जबर भये, लिखि लिखि भए जो ईद ।

कबिच भन्तर प्रेम को लागी बैर न छीट ॥^१ (कबीर)

देव सु वाली रूप बस, दुख सूं प्रापति होइ ।

सब सति सरबर ससिस सुख पीरि सब कोइ ॥^२ (रघुबर)

धार्मिक नीति

सन्तों के नीतिकाम्य में धार्मिक नीति का स्थान सर्वोच्च है। धारमा के मन्त्रि रहते हुए परमात्मा की प्राप्ति अवश्यम्व है इसलिए सन्तों ने धार्मिक पवित्रता पर बहुत अधिक सिखा है। धारमा को कमुदित करने वाले सोय हैं— काम श्रेय सोय, मोह, अहंकार पात्स्य छन प्राधि। इसलिए प्रत्येक सन्त ने अनेक दोहों पदों प्राधि में सन्त दोषों से पूबक रहने की मन और इन्धियों से बस में रहने की तथा शील, क्षमा, ईर्य नम्रता निष्कपटता प्राधि सुल्लों को प्रहस करने की प्रबल प्रेरणा की है। मनुष्य का सम्मान सुल्लों से होता है, कुसीतता प्राधि से नहीं। सुली व्यक्ति को विवास भी पुण्यप्राप्तकों में करना चाहिये, अशुल्लकों में नहीं क्योंकि सुल्लों में विवास से न सुल्लों का विवास हाता है न जन-मान प्राधि की प्राप्ति। मान-विवास धार्मिक मार्ग के तीर कर्मक है इसलिए सन्तों के परिहार की विद्या की प्रदान-स्थान पर ही गई है। तथा—

सीस की धबध सनेह का जनकपुर सन्त की जानकी ध्यात कीता ॥

धर्महि बुझा बने प्राय रहनाथ श्री, धान के पीर तिर दाँव नीता ।

प्रेम बारात बर बनी है धर्मनि के छिमा बिछाय जनबाँस बीता ।

सुप पहकार के माव को मरि कै, पीरता धनुय के जाम बीतर ॥^३ (पसन्द)

१ कबीर बचनान्तरी, पृष्ठ १३३।४३३

२ अंत तुमानाद, पृष्ठ ५३२

३ सन्त तुबासाद, अध्, २ पृष्ठ २४२।१३

किसका मना क्या पुनि किसका किसका पंमुड़ा जोई ।

पहु सतार बजार मेंहुया है जारंगना जन कोई ॥^१

मुझ मानकदेव की को भी संसार में कोई सबा बिचाई नही पठा । वाप भिब,
पुनाबि सम्बन्धी मुख के ही साबी हैं—

धा जप मीत न देख्यो कोई ।

सकल जपस धपने मुझ साम्यो बुझ में संप न कोई ॥

बारा मीत पुत सम्बन्धी सगरे जन सों भागे ।

जप ही निरबन देख्यो तर को सग छाड़ि सब माये ॥^२

अमन्य मकित क प्रसप में सप्तों ने जो साक्षियां पब धारि लिखे हैं उनसे पास्ति-
ब्रत की प्रससा सती होने वाली तापी की स्तुति तथा व्यभिचारिणी की निन्दा सुस्वर
क्य से ध्वनित होती है । जैसे—

पतिबरता पति को भजे और न धान सुहाय ।

तिहु बचा को भयना, तो भी मास न जाय ॥^३ (कबीर)

सच्ची पतिव्रता बड़ी है जो पति-गृह में बुझ सहर्ष सहने परन्तु पर-मुख से
प्राप्य सुखों की धोर धाँक उठाकर भी न देखे—

रंज होय तो पीव को धान पुख बिय जप ।

छाँह कुरी पर धरन की, धपनी भली बु रूप ॥^४ (बरबदास)

रज्जब की भी दृष्टि में वीन-पुःखिनी विषया की अपेक्षा वृद्ध संकल्प-पूर्वक सती
हो जाने वाली स्त्री कही स्तूय है—

‘रज्जब’ कायर कमिनी, रही विपत के सप ।

सती वाली सरि बड़न कू पहरि पटबर धग ॥^५

गाईस्य में प्रविष्ट होने वाले व्यक्तियों को धपने सारी के बय का विशेषरूप
से विचार कर लेना चाहिए क्योंकि दोनों तरफ हों तो मझीमाँवि निर्बाह होवा रूहा
है परन्तु जब कोई जगद सुपति का पाणिग्रहण कर लेता है तब उसे बचकर ही रहना
पड़ता है—

होत तबन के तबनि बसि, विरम तबनि बसि होइ ।

इही रीति सय जपत की जानत है सब कोइ ॥^६ (गुब गोबिर्दास)

१

१२०।१०१॥

-

२ गजप्रसाद-हिन्दी के कवि और काव्य (१९३९ ई०) पृष्ठ ७०॥

३ कबीर बचनावली पृष्ठ ११०।२५०॥

४ संतमुपासार पृष्ठ २ पृ० १२६।७॥

५ संतमुपासार पृष्ठ १ पृष्ठ ३२७

६ गुब गोबिर्दास-द्वयप्रश्न (अमरतर २०१३ वि०) पृ० ८१।६६

सामाजिक नीति

सम्प्रदाय में पारिवारिक नीति की ग्यूनता सामाजिक नीति की प्रकृता द्वारा बुर कर दी गई है। सन्तों ने सामान्य जन साधु, पाखंडी बेप बुद्धन वर्ण-जाति हिन्दू-मुसलमान शक्त छूत-छात स्त्री परनारी मुद-दिव्य पंडित-मूर्ख पड़ोसी प्रतिनि सग-रुसग प्रभृति विषयों पर, अपनी अनुभूति के आधार पर, पर्याप्त धौर सुन्दर सिखा है।

सामान्यजन

इनका मत है कि सामान्य जन प्रायः कृषक तथा स्वार्थी होते हैं। भोग सत्य को मिथ्या तथा मिथ्या को सत्य मानते हैं। सत्यनिष्ठ व्यक्ति उनकी मिथ्या मान्यताओं में विघ्न डालने का प्रयास करते हैं। अतः वे उनके प्राण तक सेने पर उतर आते हैं। वे धार्मिक सदाचारी परोपकारप्रिय जनों को भी कर्मकठ करने में सकोच नहीं करते। अतएव उनके भ्रमबाध की आवश्यकता करना अनुचित है। यद्यपि भोग तो उक्त लोगों से मुक्त है ही तो भी मानव-सैवा सर्वोच्च धर्म है और सबसे विमुक्त होना मनुष्यता से ही प्युत होना है। उदाहरणार्थ—

ताँब कड़ू तो मारिहूँ भूटे जग प्रतिपाद्य ।

दे जग काली कुररी जो छेड़े ता पाप ॥' (कबीर)

'बाहु' डरिदै सोक सैं, केसी परे उटाइ ।

अभदेखी अन्नपत्र की, पैसी कहूँ बनाइ ॥'

हरि भक्ति साक्षिज जीवन पर उपचार समाइ ।

'बाहु' मरणा तहूँ मता जह पमु पखी घाइ ॥'

साधु-पाखण्डी

ज्ञान परोपकार धौर मन वाली तथा कम में साम्य ही साधु का मुख्य ससख है। जिसके विचार बचन धौर कार्य में बैपम्य हो वह धौर कुछ भसे ही हो जाए, सन्त नहीं हो सक्ता। सन्तों ने देखा कि अधिदतर भोग सन्तों धौर महन्तों का बेप धारणकर निरीह जनता की प्रबन्धना कर रहे हैं। इसलिये उन्होंने जहाँ सन्तों के सभ्रण कठम्यादि का निरक्षण किया वहाँ पाखण्डियों स बचाव के लिए लोगों को सतर्क भी किया। सन्तों की सद्दिव्यगुता तथा परोपकारिता का प्रतिपादन पसन्ददास का यह सुन्दर पद्य इष्टम्य है—

अत सासना सहत हैं जैसे सहत कपाल ।

जैसे सहत कपाल नाप चरती सैं मोट ।

१ कबीरवचनायामौ, प० १४६।२ ६०२

२ सप्तदाहू धौर जमजी घामो पृ० १३२

३ सप्त बाहु धौर जमजी घामो, पृ० १३०॥

किसका मर्मा अधा पुनि किसका किसका पंगुड़ा जोई ।

पहु सतार बजार भंडूपा है जानपा जन कोई ॥^१

गुब मानकदेव जी को भी संभ्रम में कोई सत्ता दिखाई नहीं देता। बारा मित्र, पुत्रादि सम्बन्धी सुख के ही छाबी हैं—

या अग भीत न देख्यो कोई ।

सरल सपत अपने सुख जाग्यो बुझ में संग न कोई ॥

बारा प्रीति पूत सम्बन्धी लगरे जन लों लागे ।

अब ही निरघन देख्यो नर को सय छाड़ि सब भाये ॥^१

धनम्य भक्ति के प्रसंग में सन्तों ने जो साक्षियाँ पद प्रादि लिखे हैं उनसे पाति व्रत की प्रसंसा सती होने वाली नाथी की स्तुति तथा अमिचारिणी की निन्दा सुन्दर रूप से ध्वनित होती है। जैसे—

पतिपरता बति को नर्ब, धीर न धाम सुहाय ।

सिंह बचा जो भयना तो भी घात न धाय ॥^२ (कबीर)

सच्ची पतिव्रता नहीं है जो पति-गृह में दुःख सहर्ष सहने परन्तु पर-मुख्य के प्राप्य सुखों की धोर झींक उठाकर मी न देखे—

रंग हीय तो पीब को, धाम पुख्य बिय रूप ।

छाँह कुरी पर धरन की धपनी भली नूप ॥^३ (अरमदात)

रज्जब बी की दृष्टि में हीन-दुःखिनी विवशा की अपेक्षा बड़ सकल्प-पूर्वक सती हो जाने वाली स्त्री नहीं स्तूय है—

‘रज्जब’ कामर कामिनी, रह्यो बिपत के सय ।

सती बली सरि बड़न नू, बहुरि पटंबर अंग ॥^४

पारुस्य में प्रविष्ट होने वाले व्यक्तिमों को अपने छाबी क रूप का विशेषरूप से विचार कर लेना चाहिए क्योंकि दोनों तरफ हों तो मनीमति निर्बाह होता रहता है परन्तु जब कोई जठ सुबधि का पाणिग्रहण कर लेता है तब उसे बरकर ही रहना पड़ता है—

होत तदन के तबनि बसि विरन तबनि बसि होइ ।

इहै रीति सब जपत की, जानत है सब कोइ ॥^५ (गुब नोबिर्वासिह)

१

२ नवमसतारः हिन्दी के कवि धीर काव्य (१८३८ ई०) पृष्ठ ७०॥

३ कबीर बचनावली, पृष्ठ ११८।१५०॥

४ संतमुखासार पृष्ठ २ पु० १२६।१०॥

५ संतमुखासार पृष्ठ १ पृष्ठ २९७

६ गुब नोबिर्वासिहः बसमधम्य (अमरतर २०१३ बि०) पु० ८१।६६

सामाजिक नीति

संस्कृत में पारिवारिक नीति की गूढ़ता सामाजिक नीति की प्रचुरता द्वारा दूर कर दी गई है। सन्तों ने सामान्य जन साधु, पाखंडी वैप दुर्जन बर्ण-व्यति हिन्दू-मुसलमान धातु छूट-सात स्त्री परलारी मुक-विषय पवित्र-मूर्ख पड़ोसी भविष्य सग-कृष्य प्रभृति विषयों पर, अपनी धनुसूक्ति के साधार पर, पर्याप्त धीर सुन्दर लिखा है।

सामाजिक जन

इनका मत है कि सामान्य जन प्रायः कृत्य तथा स्वार्थी होते हैं। लोग सत्य को मिथ्या तथा मिथ्या को सत्य मानते हैं। सत्यनिष्ठ व्यक्ति उनकी मिथ्या मान्यताओं में विश्वास करने का प्रयास करते हैं। अतः वे उनके प्राण तक लेने पर उत्तर धाते हैं। वे सामाजिक सवाधारी, परोपकारप्रिय जनों को भी कसकित करने में सहोप नहीं करते। अतएव उनके अपवाद की प्रवृत्तता करना अनुचित है। यद्यपि लोग तो जय होंगे से युक्त हैं ही तो भी मानव-सेवा सर्वोच्च धर्म है और उससे विमुक्त होना अनुप्यता से ही श्युत होता है। उदाहरणार्थ—

साधु कृते तो मारिहूँ, झूठे जग प्रतिपाय ।

ये जय काली बुरो, जो छेड़े ता जय ॥' (कबीर)

'बाहु' खरिपे सोक से, केती परे उदाइ ।

अपदेही अजगद की, वेती बहूँ बनाइ ॥'

हरि मनि ताठिस जोबना पर अपमार समाइ ।

'बाहु' मरणा तहू नता प्रह पनु पखी छाइ ॥'

साधु-पाखण्डी

ज्ञान परोपकार धीर मज बाणी तथा कर्म में शान्ति ही अनुभव न सफल है। जिसके विचार बचन धीर भाव में वैयम्य हो वह धीर कृष्ण न हो पाए, अन्त नहीं हो सकता। सन्तों ने देखा कि अविद्यमान जो सन्तों को मानते हैं वेप धारणकर निरपेक्ष जनता की प्रवृत्तता कर रहे हैं। इनके अन्तर्गत सन्तों के लक्षण कर्मधारि का निरूपण किया बर्ण पार्वतियों क बचन के विषयों में भी किया। सन्तों की सहिष्णुता तथा परोपकारिता का उदाहरण सन्तों के सुन्दर पद्य इत्यन्त है—

संत सासना सहत हैं जैसे मज बरन ।

जैसे सत्य अपम मान बाणी में अन्त ।

१ कबीरबचनावली पृ० १४६।२ ६०२

२ सन्तदाह धीर जनकी बाणी पृ० १३२

३ अन्त बाहु धीर जनकी बाणी/पृष्ठ १३०॥

कई बार जब तुने हाथ से बोट निमोटे ॥
 रोम रोम घलगाय पकरि के सुतिपा पुनी ।
 पिउनी महु बै कात चुत से चुलहा बुनी ।
 बोबी मट्टी पर बरी, कुम्बीपर दुपरी मारी ।
 बरजी टुक टुक फारि बोरि के क्रिया तयारी ॥
 पर स्वारण के कारणे हुए सई 'पसदूबास' ।
 संत सातना सहत हैं सस सहत क्यास ॥^१

परन्तु सप्त प्रकार के सप्त संसार में बंसे ही विरल होते हैं जैसे सिद्धों के समूह-
 हसों की पंक्तियाँ और रत्नों की बोरियाँ ।^१ यदि ऐसे सप्त सीमाय से कहीं बिनाई
 पड़े तो वे सर्वथा संशय्य हैं । उनके विषय में जाति-पाति का विचार करना बुद्धि-
 हीनता है—

जाति न पुछो शास्त्र की पूछ भोजिए जान ।
 मोक्ष करो तलवार का पकी रह्य हो म्यात ॥^२ (कबीर)

परन्तु जिन लोगों ने साधुत्व को सम्पात्त-सप्रह, का साधन बना लिया है, उन
 पर पसदूबी ने सीला ध्वंस्य बसते हुए कहा है—

पपरी परा उतारि टका रहु घात का ।
 मिला हुआस्य प्राय बपया शाठ का ।
 सीढ़ परे कसु बेहि नुंशये मूढ़ के ।

(धरि हरी पसदू) ऐसा है कब्यार कीजिए हूँ के ॥^३ (पसदूबास)

इसी प्रसंग में सन्तों न उन लोगों की भी लुप्त खबर भी है जो विविध व्यसनों
 में सिद्ध कुकर्मों और प्रभु-विमुख पापच्छिदों को भी पूज्य और समान्य मानते हैं—

बीबत भाँप तिबारी तमाकूहि ताम अधीम रहे रंग भीतर ।
 कर्म प्रदूष कर केइ कुकृत सुकृत तुम सँ होम बछीता ॥
 राम को नाम गह्यो पिज ऊठ्य, राम के काम गुलाम अधीता ।
 रामचरण से भेष जवाबत ऐसे कूँ सत कहूँ मत्थीता ॥^४ (स्वामी रामचरण)

बाग्य जाति-पाति

विरकाल से बर्लु-म्यबस्ता का स्वल्प विद्वत हो गया था । जो ब्रह्म-ज्ञान और
 वेद-ज्ञान से विहीन हो जुटे के ये भी ब्राह्मण माने जा रहे थे । जो बीरठा से विरहित

१ सप्तमुखासार, पृष्ठ ९, पृष्ठ २२३॥

२ कबीरबचनावली, पृष्ठ १२२।३९७॥

३ " १२५।३९७॥

४ सप्तमुखासार, पं. ९, पृष्ठ २४७।६॥

५ स्वामी रामचरण: प्रथम भाषी (धरपुरा १९२१ ई०), पृष्ठ ६६॥

ये वे भी अपने का लयित कहने में गर्व अनुभव करते थे । जो छस-कपट से युक्त व्यापार करते थे व भी बलिष्क कहाँ से घोर दुःख तो मीच माने ही जाते थे । भाव यह कि यौरव का मानवर्द्ध सुलोपार्जन न रहा वा वद्य-विशेष में जन्म ही रह गया वा । यह कुम्पवत्सा वस्तुतः ही ऐसी कि कोई भी उद्यम इसका विरोध किये बिना रह ही नहीं सकता । यही कारण है कि बौद्ध धर्म सिद्धादि ने इसका प्रथम विरोध किया वा । महागम्भुक मुसलमानों में भी इस प्रकार का जन्ममूलक भेदभाव न था । बात बसुँ ठा ही सीमित न रह गई थी क्योंकि प्रत्येक वयस में अनेक जाति-जातियाँ बन चुकी थी जो एक-दूसरे से खान-पान तथा व्याह-व्यापी का प्रतिपन्न करती थीं । अन्तों ने इस सामाजिक बन्धन पर प्रबल कुठारघात करना अपना कर्तव्य समझा और योग्यता तथा सम्पत्ति को ही यौरव का आधार प्रतिपादित किया । उदाहरणार्थ—

- (क) एक बूँद एक पत्त मुतर एक घाम एक घूबा ।
एक प्रीतिप राव उतपना कौन बाहू म कौन घूबा ॥^१ (कबीर)
- (ख) बाह्य तो जो म्हा पिछान बाहर जाता भीतर धाम ।
पीथो बस करि भूठ न भाजे, इया जनेऊ अन्तर राजे ॥^२ (बरणदास)
- (ग) अमी बाह्यन शूद्र बंस भी जाति पूछि नहिं बेला बाता ॥^३ (माणकदेव)

हिन्दू मुसलमान

हिन्दू मुसलमान अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता के प्रतिमान से अन्धे हो रहे व घोर एक-दूसरे से घृणा करते थे । हिन्दू विमर्क लगाते मासा फरते प्रतिमा-युगल बरते घोर यज्ञोपवीत पहनते थे । मुसलमान मस्जिद में उम्ब स्वर से बाँस बेटे रोने रवने घोर परिश्रमात्मिक मन्त्राव घटा करते थे । परन्तु उनमें इतनी घृति कहाँ थी कि राम घोर रहीम को कृष्ण घोर करीम को काबा घोर काशी को एक समझते ! धार्मिकों में छँडे हुए लोग धर्म के धान्तरिक या वास्तविक तत्व से दूर थे । इन अन्तों ने निर्भीकतापूर्वक लोगों के धर्म का टंके को बाट स बसन किया घोर सदम-निराक उत्तमव का प्रचार किया । जैसे—

- (क) बही महारेव बही सुहम्पद, ब्रह्मा घावक कहिए ।
कोइ हिन्दू कोइ तुस्क बन्साप, एक जमी पर रहिए ॥^४ (कबीर)
- (ख) बाह्यन तो भये जनेऊ को पहिरि के, बाह्यनी के गले बटु नहिं बेला ।
घायी घृतिनि रहे परं दे बीब में, करं तुम जगु यह कौन सेवा ।

१ कबीर ग्रन्थावली पृष्ठ १०६।२७॥

२ सं० विद्योमी हरि सन्तबाधी (दिल्ली, १९३० ई०), पृष्ठ ७१

३ " " " " " " " " " ९७

४ कबीर वचनानुसारी पृष्ठ २०८

सेवा की गुणवत्ता से मुसलमानी भाई तिखानी को नाहिं तुम कहो सेवा ।
 पापी हिन्दुइति रहै घर के बीच में परतू सब कुहल के मार सेवा ॥^१
 (पसतूबास)

(ब) बोनो भाई हाब-याग, बोनो भाई कात ।
 बोनो भाई नम हूँ, हिन्दू मुसलमान ॥^२ (बाहुजी)

सूत-छात

छन्तों के समय में सूत-छात में इतना भूषित रूप बारण कर लिया था कि उच्च-जुनीत हिन्दू तथाकथित अस्त्युस्य जातियों के स्वर्णमात्र से अपने को अपवित्र मानने लगे थे । शीशे-बून्हे की पवित्रता का इतना अधिक ध्यान रखा जाता था कि न कोई किसी की पकड़ी हुई रोटी खाता था और न हाब से छुई हुई । छार यह कि स्वच्छता का स्वान अत्यविश्वास में ले लिया था । छन्तों में इस बाह्याङ्ग्य का बंधन कर धार्मिक पवित्रता का अनुरोध किया । उनके मत में तो उन्हीं से सम्पर्क बर्जित है जो माया में लिप्त हैं अथ्य लोगों से नहीं ।^३

एक पवन एक ही पाँची, कटी रसोई म्यारी जाती ।
 माटी सूँ माटी से पोती लागी कही कहाँ नू जैसी ॥
 बरती भीपि पबिब कीम्ही छीति जपाम नीक बिधि बीम्ही ।
 पा का हम सूँ कही बिचारा, बयू सब तिरिहो इहि प्राचारा ॥^४

स्त्री

मरित के मार्ग में यदि पुरुषों के लिए स्त्री कटक रूप है तो स्त्रियों के लिए पुरुष भी पुष्प रूप नहीं है । परन्तु अधिकतर अन्तःकाम्य पुरुष प्रणीत हैं स्त्री रचित नहीं । कबानिष् मही कारण है कि अन्तःकाम्य में स्त्रियों को तो पानी पी-पी कर कोठा गया है परन्तु पुरुष की पुरुष रूप में निन्दा बुध्तिगोचर नहीं होती । सहजोबाई और वयाबाई स्त्रियाँ थीं परन्तु उन्हें भी सम्भवतः पुरुष (बरणवात भी) की दिव्याएँ होने के कारण पुरुषों के विरुद्ध कुछ सिखाने का साहस नहीं हुआ । अस्तु, छन्तों के मत में स्त्री सूती से भी अधिक मातृक और कासी नागिन से भी अधिक विपत्ती है । सब यही है जो कामिनी तथा कनक के प्रभाव से अपने को बचा सकता है । स्त्री को बिल मने ही दिया जाए परन्तु बिल कभी न बना चाहिए क्योंकि वह उष्णा प्रेम नहीं करती । स्त्री बरिब अस्पृष्ट बुर्बोष है और स्त्री से प्रेम करने वाले महामूर्ख होते हैं । जेते—

१ सप्त मुखासार पृष्ठ २४२-४३

२ सप्त बाणी पृष्ठ ६२

३ सप्तबाणी पृष्ठ १४७

४ कापीर परकावली सप्तमी पृष्ठ २४२

सुंदरि धेँ सुभी भली, विरला बंधे कोइ ।
 लोह निहाना धयनि में, बलि बलि कोइसा होय ॥^१ (कबीर)
 कास कनक धद कामिनी, परिहरि इन का धय ।
 दासु धब जग बलि मुबा, क्यों बोपक क्योंति परतग ॥^२ (बाबू)
 वे स्याने हूँ जगत में त्रिय सो करत पियार ।
 साहि म्हा बड़ समुन्धिये, बित भीतर निरपार ॥^३

यह स्मरण रहे कि 'कामी नर' की तो निन्दा सन्तों न की है^४ परन्तु नर-मात्र की नहीं। हाँ, वहीं कबाल से सकाम स्त्री-मुदय दोनों को ही रूपित ठहराया है—
 नर नारी सब नरक हैं, अब लग बेहू सकाम ।
 कहे कबीर ते राम के, वे सुमिरें निहकाम ॥^५

परमारी

परदारामिगमन अत्यन्त अनैतिक क्रयं है क्योंकि इससे जहाँ पारिवारिक पवित्रता भंग होती है वहाँ सामाजिक मर्यादा बिभ्रस्त। सच तो यह है कि इससे पुण्यित कार्य इन्हे ही मिलेगा। इसलिये यदि नारी-मात्र को निन्द्य कहने वाले सन्तों ने परदारामिगमन का प्रबल निषेध किया है तो कोई आश्चर्य नहीं। नामदेव जी परमन तथा परकमन के परिहार का प्रमूत्राप्ति का प्रमुख सामन मानते हैं और कबीर साहब व्यक्तिभार को समुन्धोन्मुक्त—

परमन पर - बारा परिहरी । ताके निकट बसहि नरहरी ॥^६ (नामदेव)
 परमारी राता फिरें, बोरी बिड़ता जाहि ।
 दिबस चारि सरसा रहे प्रति समुता जाहि ॥^७ (कबीर)

गुरु-शिष्य

जो सन्त लौकिक विचारों को ही महत्त्व न देते वे वे उनके विराक्त पंडितों और विद्वानों को मुख्य क्यों मानते ? हाँ जो प्राध्यात्मिक गुरु मनुष्यों को देवता बनाने तथा प्रभु का साक्षात्कार करने में समर्थ थे उनही इन्होंने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उन्हें लोकोत्तर व्यक्ति कहने मात्र से इन्हें सम्तोष न होता था इसलिये इन्होंने उन्हें परमात्म-स्य और नहीं-कहीं तो बड़ा ही बड़ा बता दिया है। प्राचीन मान्यता

१. कबीर प्रणयावली पृष्ठ ४०।१६॥

२. सप्त गुणासार, अङ्क १, पृष्ठ ४७६।१२॥

३. अष्टम अंग, पृष्ठ २३२।१४॥

४. कबीर प्रणयावली पृष्ठ ३६४१

५. " " " ३८

६. सप्त गुणासार, अङ्क १, पृष्ठ २४

७. कबीर प्रणयावली पृष्ठ ३३

जसी घाटी है कि दूध को जान भने और प्राप्त कर भेजे पर कुछ भी श्रावण्य और प्राप्त्य्य सेव नहीं रहता । यही कारण है कि सत्तों ने गुरु को कष्टकर, कामचतु घाबि संज्ञाओं से अभिहित किया है । गुरु के जुगल में शिष्य को विशेष सावधानता से काम मना चाहिए क्योंकि जहाँ सबगुरु शिष्य को नरक तक पहुँचाने में समर्थ होता है, वहाँ कर्म-पूर्वका गुरु उसके जीवन को ही गण्ट कर देता है । गुरु योग्य हा तो शिष्य के काम का उसके बर्धम-मात्र से भी उपचय होता रहता है । शिष्य तो ऐसा होना चाहिए कि गुरु पर सर्वस्व स्मोछावर करने में भी संकोच न करे और गुरु ऐसा कि शिष्य की सदा-साधना से ही सम्पुष्ट रहे, सोम का उन्मीय तक हृदय में न होने दे । वहाँ शिष्य का पात्रत्व देखकर ज्ञान देना गुरु का कर्तव्य है वहाँ अनितीत शिष्य को तर्जना लाड़ना हाथ बित्तीत बनाना भी जरी का कार्य है । ऐसे अवसरों पर गुरु के सम्पुष्ट बोध पढ़ना या कठ कर अम्यन प्रश्नाम करना सम्पिष्य का काम नहीं । अस्तु, इन विषयों के बो-चार पद्य द्रष्टव्य है—

- (क) गुरु योगिन्य बोक पड़े, काके भायों पाय ।
बलिहारी गुरु घापने, गोबिब विमो घताय ॥^१
- (ख) नन पूंका गुरु सयत का, राम मित्तावन और ।
छो सतगुरु को जानिये, सुक्ति मिच्छावन ठौर ॥^२ (बदरनबाव)
- (ग) मार जसी जा सतगुरु वैहि । कैरि बबन औरं करि लैहि ।
धुं माटी लूं कुटं लूंमार । लुं सतगुरु की मार बिचार ॥
जसा लोहा पड़ं सुहार । कुडि काडि करि लैने मार ।
लुं रज्जव, सतगुरु का देल । ठाते लामी मार सप भैल ॥^३

बुद्धिमान् मूर्ख

यद्यपि साधारण से बुद्धि की बुद्धि होती है तथापि इस बात का प्रतिपेक नहीं किया जा सकता कि निरक्षर व्यक्ति भी बुद्धिमान् और साधार भी मूर्ख हो सकते हैं । सत्तों ने जहाँ विद्या और विद्वानों की प्रेम-विमुख तथा विवादोन्मुख करने के कारण यहाँ की है वहाँ मुबुद्धि व्यक्तियों की स्तुति और मुबुद्धि सोयों की तुल्ना करने में भी वै पीछे नहीं रहे हैं । जैसे—

जिन बलीसे जाठरी जिन बुद्धि की देह ।
जिना काल का जोयना फिर जपाय देह ॥^४ (जमीर)

१ कबीर बचनावली, पृष्ठ ११६॥

२ संतगुणासार पद्य २ पृष्ठ १७३।१॥

३ , १, ४९२-२३॥

४ कबीर बचनावली, पृष्ठ १४७

मूरख को समझावते ज्ञान गीठि की जाय ।
कोइला होय न ऊबरो, नी मन साहज लाय ॥^१ (कबीर)

संस्मरण-सुसंग

मनुष्य सदा एक-जा नहीं रहता । उस के विचार, बाणी और कार्य संगति से प्रभावित होते रहते हैं । निराल संकल्प वाला व्यक्ति स्वयं से ही प्रभावित होता है तो कुछ संकल्प वाला कुछ विरल से । ऐसे व्यक्ति तो कुर्मम ही होते हैं जो विरलम तक संस्मरण या सुसंग करने पर भी पूर्ववत् ही बन रहते हैं । इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का सर्वतो मे मसी नीति अनुभव किया था और इसीलिए प्राय सभी संतों ने संस्मरण में प्रवृत्त होने तथा कुर्मम का परिहार करने की प्रबल प्रेरणा की है । उन का मत है कि मत्संग से बुझ दूर होते हैं और कुर्मम से प्राप्त । मत्संग में रहने हुए भी की भ्रमी प्राप्त हा तो अच्छी परन्तु सुसंग में रह कर निराल भोजन भी बुझ । जब तक मत्संग न हो तब तक तोय यात्रा भी निराल है और जीवन भी । कुर्ममगति से मयने वाला भ्रम्य नहीं भुमता । मनुष्य को तभी सचेत होना चाहिए जब वह कुर्ममगति में पड़ने लगे क्योंकि जब कुर्मम का रंग पर्याप्त बढ़ जाता है तब धनक उपायों से भी दूर नहीं होता । उन्हीं लोगों की मगति करनी चाहिए जिनके विचार समान हों क्योंकि विभिन्न विचार वाला की मगति का विरलम तक निर्वाह सम्भव है । कुछ उदाहरण नीचे—

कबिरा संगत साहु की जो की भ्रमी जाय ।
कीर धाड़ भोजन मिल साहज लग न पाय ।
कबिरा साईं कोट की, पानी पित न कोय ।
जाय मिल जब गंग से सब नगोबक होय ॥^१
हुसा फौदा न बन जाके होय विचार ।
हुता सुखताहस गुण, बे दिव्या भोजनहार ॥^२ (रामचरण)

पड़ोसी

सामाजिक दृष्टि से हमारा प्रितना सम्बन्ध प्रतिबेगी से होता है उतना सगे संबंधियों से भी नहीं । प्रतिबेगी से सम्बन्ध अच्छे हों तो जीवन अधिक सुखी बन जाता है और यदि मनुष्यता हो तो जीवन की शान्ति मग्न हो जाती है । पण्डू साहब का मत तो यह है कि यदि पड़ोसी से प्रतिदिन कगह हो तो मजान को छाड़ कर मत्संग बने जाना अच्छा निग्य की सटपट बुगि ।^३ स्वामी रामचरणजी की नीति यह है कि मनुष्य का बह्मरामी न हाना चाहिए । पानी गृहस्त्री का मार ही दुर्बह होना है इसलिए पड़ोसी

१ कबीर कपनासती पृष्ठ १५८।

२ " " । १२५।३०५ १२५।३०६।।

३ स्वामी रामचरण कपनासती (सन् १६२५), पृष्ठ २३।।

४ रामचरणजी, पृष्ठ २३५।३२।।

का मार भी अपने सिर पर सेना नीतिमत्ता नहीं ।^१ कबीर साह्य का बिचार है कि पानी छान कर पीने की अपेक्षा पड़ोसी से प्रेमपूर्वक व्यवहार करना अधिक प्रच्छा है । कारण, जब छानने से तो कुछ कीटाणुधर्मों की ही रक्षा होती है परन्तु पड़ोसी से रूठ होना प्रतिश्रय अपनी ही हानि करना है और सामान्य कीटाणुधर्मों से मानव-जीवन कहीं नुस्वबाद् है ।

पड़ोसी तु क्यथा, तिल तिल मुख की हांजि ।

पड़ित भए सराबगी पानी पीबे छांजि ॥^२ (कबीर)

इस प्रकार सन्तों ने कतही पड़ोसी से भागने उधका मार सिर पर न देने तथा उससे न रूठने की प्रेरणा तो की है परन्तु बाइबल की-सी 'तु अपने पड़ोसी से अपने ही समान प्रेम कर'^३ की प्रबल प्रेरणा इस काव्य में दिखाई नहीं देती ।

प्रतिपि

प्रतिपि-पूजा को भारत में शिरकास से परम कर्तव्य माना जा रहा है । मनु महाराज ने तो इन्हीं गृहस्थों के परम धर्म रूप पत्र महायज्ञों—ऋषियज्ञ देवयज्ञ भूत-यज्ञ नृयज्ञ और पितृयज्ञ—में स्थान दिया है । उन्होंने नृयज्ञों—प्रतिपि पूजामूर्त्त धर्मत् प्रतिपि पूजा को ही नृयज्ञ नाम दिया है और प्रतिपियों की धर्म से सेवा करने का विधान किया है ।^४ यद्यपि सन्तों ने धर्म की कमी विशेष कामना नहीं की तथापि प्रभु से इतने विरक्त की याचना की ही है जिसने से उनका अपना भी निर्वाह हो जाए और प्रतिपि को भी भूखा न जाला पड़े—

साई इतना बीजिए जामें कुटुंब समाप ।

मैं भी भूखा न रहूँ छात्रु न भूखा जाय ॥^५ (कबीर)

जिस घर में शम्भरिब छात्रु-सन्तों का सम्मान नहीं होता उसे स्मरण और उस घर में रहने वालों को मानव नहीं बूढ प्रेठ समझना चाहिए—

जिहि घर साब न पुजिये, हरि की सेवा नाहि ।

ते घर मङ्गल छारये सुत बस तिल भाहि ॥^६ (कबीर)

ध्यान

ध्यान देने की बात है कि सन्तों ने हिन्दू-मुसलमानों को तो परस्पर समीप लाने का भरसक उद्योग किया है परन्तु भावनों से सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद की ही प्रेरणा की

१ स्वामी रामचरण अणम बाणी १०५१।७ २ कबीर प्रणवावली पृष्ठ ३७।१२

३ होसी बाइबल, लैबिटिकस अध्याय १२।१८

४ ५ मनु० १।१०० ३।५१

५- १।० रामनरैस त्रिपाठी कविता कोमुदी भाग १ (दरबई १२५४ ई०) पृष्ठ १६०।६८

६ कबीर प्रणवावली १० ५३।३

है। कारण यह है कि सन्त तो सञ्चारिक को जीवन-वर्षों में प्रमुख स्थान देते थे और शास्त्रों का आचार-व्यवहार अत्यन्त महत्त्व था। यही कारण है कि उन्होंने द्विज-कुल में उत्पन्न सन्त ब्राह्मण के वर्णन को भी वर्ण्य कहा है और स्वयं-अंश में उत्पन्न वैष्णव को भी धामिन्य। जैसे—

सायत बामन मति मिले बैसगौ मिल खंडाल ।

धंरु मास बं भेटिये, यानी मिले गोपाल ॥^१ (कबीर)

दुष्ट

दुष्टों के विषय में सन्तों के विचार कीरणाशास्त्रों से सर्वथा विपर्यय है। और यदि तो दुर्जनों को शस्त्रबल से सीमा करन की शिक्षा देते हैं^२ परन्तु सन्त-नाम्य धर्मियों का काम्य नहीं मत्तों का काम्य है। वे पग्पीड़कों को सबसे अपन्य भी कहते हैं^३ और उसकी मृत्यु स पृथ्वी के भार का हलका होना भी परन्तु उनका मत है कि सुसंपत्ति से दुष्ट का प्रायः सुधार नहीं होता। सद्गुणों से वे संबरते नहीं और शस्त्र प्रहार की इनमें क्षमता नहीं इसलिये एक ही उपाय उपेय रह जाता है कि उनके दूर रहो और इसकी शिक्षा वे अनेक स्थलों पर देते हैं। जैसे—

बाहु कीड़ा मरु का, राक्ष्या चंदन मर्हि ।

असति अपुठा मरु में चंदन मार्ब मर्हि ॥^४

धाय भसे तो सबहि मत्तो है, बुरा न काह कहिये ।

आके मन कहु बसं बुराई तासों भाये रहिये ॥^५ (मनुस्मृत)

धार्मिक नीति

यद्यपि सन्तों ने कामिनी के समान कंचन की भी उत्कृष्ट तुलना ही की है तथापि अधिकतर सन्त स्वयं गृहस्थ होने के कारण उसे सर्वथा त्याग्य नहीं कह सके। उन्होंने परिश्रमपुत्रक बिलोपार्जन करने वाले गृहस्थों को परदम्य पर धामित सन्तों से अछटा ही कहा है।^६ परन्तु इस बात का उन्होंने विशेष ध्यान किया है कि कमाई पुष्प की होगी चाहिए न अस्त-कूपट की न बम खोल-नाप की।^७ उनकी रचनाओं में निर्धनता अथ सामाजिक अनादर का भी कई स्थलों पर उल्लेख किया गया है।^८ यही कारण है

१ कबीर सम्बाबली पृष्ठ २३।२॥

२ प्रस्तुत प्रबन्ध का १२२पृष्ठ देखें।

३ संतनुशास्त्र, प्रथम लघु, पृष्ठ ३६।२०

४ " प्रथम ' ४६५

५ " दूसरा " ३३।४

६ " ' " २४५।७

७ " ' " २३३।२५

८ कबीर सम्बाबली, पृष्ठ ३०२।१३०

कि उन्होंने वाक्या को मृत्यु-पुण्य कहा है। यहाँ प्रत्येक करने की बात यह है कि अपने लिए वाक्या की निन्दा करते हुए भी परमार्थ के लिए माँगने को भुला नहीं कहा गया। पान के उचित महत्त्व को स्वीकृत करते हुए भी उन्होंने विष-उपम का निषेध किया है। प्रभु पर विदवास उन्हें इतना अधिक था कि धन-सम्पत्ति की प्राप्ति-कक्षा न चूटी थी। उन्हें प्रभु सर्वथा धीर सर्वत्र अपने धर्म-धर्म दिखाई देता था धीर उन्हें बड़े विदवास था कि जो माँगने मिस जायगा। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में उल्लोप की स्तुति बहुत की गई है। धर्म प्रत्येक तथाकथित धर्म्य देश अपना धीर-स्वर उन्नत करने की चिन्ता में व्यस्त दिखाई देता है। परन्तु सत्तों का विचार यह था कि धीर-स्वर जितना उन्नत करने का उद्योग किया जायगा उतना ही समाज के नैतिक स्तर का पतन हो जायगा। इसलिए उन्होंने कुपकी धीर सारी रोटी पर सूखी धीर धापी रोटी को प्रतिपाद दिया है।^१ ध्यान देने की बात है कि सन्त-काव्यों में विचारार्थ पर उल्लोप बल नहीं जितना वाक्य-पुण्य पर। वे अनुभव करते थे कि सोप-प्रेम की लहर में स्वतः एक इतना अधिक बड़े जा रहे हैं कि उन्हें धर्मोपार्जन की शिक्षा देना धनावश्यक है। परन्तु वे यह भी अनुभव करते थे कि लोग उपायित धर्म्य को अपनी ही सुख-सुविधाओं तथा विपय-सोचों के लिए व्यय करते हैं, सत्कर्मों में उसका विनियोग नहीं करते। यही कारण है कि उन्होंने कुप्यों की निन्दा की है धीर धर में धन बड़े जाने पर उसे हीनों हाथों से दान करने की प्रेरणा।^२ बान करते समय पाशापाश का ध्यान रख लेने की नीति का भी उनके काव्यों में उल्लेख मिलता है। सत्त कथन के समर्थक कुछ पद्य प्रयत्नोक्त हैं—
धन-निन्दा

माया की मत्त जय बरया, कलक कामिनी सागि ।

कहु बीं किहि विधि राखिबै, कई लपेटी धागि ॥^३ (कबीर)

याचक-निन्दा

भरि बाऊं माँगू नहीं, अपने तन के काम ।

परबाराय के कारये मोहि न धरबै लाख ॥^४

पाप की कमाई

जैसी है दुकान का मैं पीके बकवान भरै,

जड़े हैं गिवाँर सोच जाँबै हलवाई है ।

भूर की मिमाई चाप जेप सु बगई,

नहीं भाव में भलाई धाड़ तोता सु तुलाई है ।

१ कबीर दक्कनापसी, पृष्ठ १४८।१९७

२ " " १४३।२०२

३ कबीर दक्कनापसी पृष्ठ ३५।३२

४ कबीर दक्कनापसी, पृष्ठ १४३।३८२

कपट कमाई कुपा घात हू न जाई
 बाम सेत है बजाई बाल चोर की बसाई है ।
 साब घरम पाई तोही साब नहि भाई,
 'रामचरण' राम बिना कुनी भरसाई है ॥^१

इतर-प्राणिधियमक नीति

यथा दामा पीसादि के प्रकारक सन्तों की नीति इतर प्राणिनों के प्रति भी उदार है। उन्हें याप बकरी मुर्गी आदि में भी जैसे ही जीव की प्रतीति होती है वैसे समुप्य में। इसीलिए सन्तों में पीबमात्र को हत्या का निषेध किया है—

यथा कौन पर कीजिए, कापर निरय होय ।
 साई के सब जीव हूँ, कोरी कुबर होय ॥^२

सन्तों ने देखा कि हिन्दू यज्ञी आदि को तो हड़प कर जाते हैं परन्तु गी को पूज्य मानते हैं और मुसलमान गौ-बकरी आदि को तो भय्य मानते हैं परन्तु गुरुर के प्रमथ्य। उनका मत यह था कि जब धारमाएँ सभी में एक-सी होती हैं तो एक क मदाए पुष्य क्यों और दूसरे का पाप क्यों? इसीलिए उन्होंने सभी को मांस-मान के परित्याग की प्रेरणा करते हुए कहा—

यथा बकरी यथा पाप है, यथा घपनो ज्ञाय ।
 सबको तोहू एक है, साहिब फरमाया ।
 पीर पराबर धीसिया, सब मरने भाया ।
 माहूक जीव न मारिये, पोषन को काया ॥^३ (मुह नामक)
 पीर सबल की एक सी, गुरुर जानत माहि ।
 कांदा भूभे पीर है, पसा काटि को काइ ॥^४ (मनुस्मृतिस)

सन्तों की यह दया-भावना प्राणियों क प्राणायहरण के निषेध तक ही सीमित नहीं थी। उन्होंने तो उन सोचों की भी निन्दा की है जो बछड़ों को पूरा रूप भी न पीन बैठे बूयों की हरी दायाओं को विच्छिन्न करने हैं तथा बर्षा-पूजा आदि क मि पत्र-मुष्य छोड़ने में संरोध नहीं करते। जैसे—

बछा बू पत उपजी न दया, बछा बांमि बिछोही मया ।
 ताका रूप धाप बुहि पीया, ग्दान बिचार बछू नहीं बीया ॥^५ (कबीर)

१ रामचरण धर्म्य बामी वृत् १००१६

२ कबीर धरनाबती वृत् १४२।२२८

३ पद्मप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के कवि और काव्य (१९३६ ई०), १०७०

४ विद्योगो हरि : संतवाणो, १०८१

५ कबीर प्रयागती, वृत् २४४ ४२

हरी बारि न तोड़िये, भारी घूरा मान ।
बास 'भलुका' मों कहे, अपना सा ब्रिह जान ॥^१

भारत में विकास से यह भावना प्रबलित है कि जिस पशु का मांस हम नहीं खाये वही पशु हमसे जन्मों में हमारा मांस खाया । मांस शब्द की व्युत्पत्ति भी इसी बात की धीरे धीरे करती है । "मां स" अर्थात् मुझको वह (खापना) जिसे मैं भव पाता हूँ ।^२ इसी भाव की धीरे धीरे संस्कृत-शास्त्र में भी प्राप्ति है । जैसे—

सुख जाना है जीवरी, माहि परा दुक नीत ।

मांस पचया जाय कर परा कटाई कीन ॥^३

मिथित नीति

सर्तों की मिथित नीति निम्नांकित सर्तों में विभाज्य है—१-संसार, २-मृत्यु, ३-वेग ४-काम, ५-माय-पुरुषार्थ ६-पुत्र ७-सकून-व्योतिष ८-भूत-प्रेत, ९-धर्म ।

संसार

संस्कृत-कवियों के मत में संसार निःसार स्वान है स्पृहणीय नहीं । यही उक्त गद्दी, वे तो इसके वास्तविक अस्तित्व का ही प्रत्याख्यान करते हैं धीरे धीरे स्वप्न के समान मिथ्या मानते हैं । वे इसे सेमन के सुमन के समान ध्यायात्मक मानते हैं । इसलिए उनकी दृष्टि में मन को कभी संसार में न लगाना चाहिए । जीवन में कुछ-न-कुछ तो प्रत्येक व्यक्ति करता ही रहता है, परन्तु बिनेकी मागव नहीं है जो धीरे धीरे बाह्य कार्य करता हुआ भी मन को महेश्वर में ही मग्न रखता है । संसार यह कि समुप्य को संसार में ऐसे ही अनासक्त रहना चाहिए जैसे मुक्त में जिज्ञा । उदाहरणार्थ—

ऐसा यह संसार है, जैसे शेर फूल ।

जिन इस के व्योहार में मूठे रप न भूल ॥^४

जय माहीं ऐसे रही, क्यों जिहू या सुख माहि ।

जीव बना मज्जन करे, ती भी विकनी माहि ॥^५ (बरबरार)

२ मृत्यु

मृत्यु सदा ही धर्मप्रचारकों का धर्मोपदेश रही है । इसी का स्मरण कर के जन-साधारण को ईश्वर-रोमुद्ध करते रहे हैं । सर्तों में भी मृत्यु की अनिवार्यता धर्मकरता

१ सप्तसुधासार, अष्ट, २ १० ३८।२०

२ मां स अर्थात् मांस पशु यत्न मोक्षनिहाइम्यहम

एतन्मोक्षस्य मांसस्य अन्वयित्वं मनीषियम् ॥ (मनुस्मृति ३।१५४)

३ कबीर बचनावली १० १४५।१३४

४ कबीर बचनावली, पृष्ठ १२५।४०६।।

५ सप्तसुधासार, अष्ट, २, १६७।५।।

आत्मस्थितता धारि का स्थान-स्थान पर उन्नत कर लोगों को विषयबिमुख तथा परमा-
धोनुक्त करने का उद्योग किया है। सन्तों ने इस बात पर तो आश्चर्य प्रकट किया है कि
मनुष्य जीवा कैसे रहता है इस बात पर नहीं कि वह मरता क्यों है। उन की दृष्टि में
तो जीवन मूटा है और निश्चय सच्चा। जहाँ उन्होंने सामान्य लोगों के लिए मृत्यु को
मर्यादित बताया है वहाँ सन्तों के लिए ध्यानम्भवायक क्योंकि मृत्यु के पदपाद ही 'पूरम
परमात्मन्द' की प्राप्ति होती है। अन्त-काल में पुन पत्नी धारि सम्बन्धियों का स्मरण
करने वाला मनुष्य विभिन्न नीच योनियों में जाता है 'किमी के कासकबलित होने पर
कल्पे कल्पे धर्म है इत्यादि नीतियाँ भी जहाँ-तहाँ उन्मिश्रित हैं। यथा—

धसती बकली बेजि के दिया कबोरा रोय ।

बुद्ध पठ भीतर धाड़के साबित यथा न कोय ॥

जा मरने से जय डर मेरे मन ध्यानम् ।

कब मरिहो कब पाइहो पूरम परमात्मन्द ॥' (कबीर)

देश

यों ही मगा यमुना धारि नदियों की काशी हृदयार प्रयाग धारि तीर्थों की
यात्रा का भाव इस देश में बिरकाल से बना आ रहा है तो भी इस भाव का प्रत्या-
स्थान करने वाले सिद्ध ना धारि समय-समय पर धारिभूत होते रहे। सन्तों ने भी तीर्थों
की यात्रा से और नदियों में स्नानादि से निष्पन्न होन का प्रबल सङ्कल्प किया है। इन के
मत में तो सच्चे तीर्थ मानवीय मन में ही विद्यमान हैं और उन्हीं में स्नानादि से मनुष्य
का बन्धाण समन है। जैसे चरणदासजी का एक पद है—

(क) घट में तोरप क्यों न गहायो ।

इत उत शोकत पविष्ट बने ही मरति मरति क्यों जग पबायो ।

सत यमुना संतोय सरस्वती गंगा घोरज पायो ।

भूँ पटाकि नितोभ होय करि सब हो बोध तिर सु डारो ॥'

(चरणदास)

परीब्रह्म जी के मत में तो सन्दर्भानी तथा निष्कपट माणुषों का ममात्म ही
सच्चा तीर्थ-मन्त्र है—

साहिब जिकरे जर बसे मूठ कपट महि धग ।

तिनका बरतन ग्हाव है कहें परबो किर संम ॥'

स्मरण रहे कि सन्तों ने तीर्थादि के संकल्प में हिन्दू-मुसलमान का भेद नहा

१ धर्मसाहब भाग १ पृष्ठ ५२६॥

२ कबीर ब्रह्मनामसी पृष्ठ १३०।१४०, ११६।२५१।

३ सतगुरुपासाद, पृष्ठ २ पृष्ठ १६०।१५

४ 'जियोयो हरि' सतनामसी, पृष्ठ १४३॥ और भी देखें 'ब्रह्मनामसी की भाषा'
पृष्ठ १०८।६

हरी डारि न छोड़िये, जामे घुरा बाज ।
बास) 'मसूका यों कहै, अपना सा जिब बाज ॥'

'मातृ' में विरकास से यह भावना प्रथमित है कि जिस पशु का मांस हम यहाँ खायेंगे वही पशु अपने जन्मों में हमारा मांस खाया। 'मांस' शब्द की व्युत्पत्ति भी इसी बात की ओर इंगित करती है। 'मां स' अर्थात् मुझको वह (खाया) जिसे मैं खाने खाता हूँ।^१ इसी भाव की ओर संकेत सन्तकाव्य में भी प्राप्य है। जैसे—

बुध घाना है चौबरी भाहि परा दुक मोन ।
मांस पराया घाय कर परा कटाई कौन ॥^२

मिथित नीति

सन्तों की मिथित नीति निम्नांकित वर्णों में विभाज्य है—१-संसार, २-मृत्यु, ३-देह ४-काज ५-माय-मुख्यार्थ ६-दुःख ७-शकून-ज्योतिष ८-भूत-प्रेत ९-वर्म।

संसार

सन्त-कवियों के मन में संसार-निन्दार स्वान है, स्पृहणीय नहीं। यही तप नहीं है तो इसके वास्तविक अस्तित्व का ही प्रत्याख्यान करते हैं और इसे स्वप्न के समान मिथ्या मानते हैं। वे इसे ऐमज के सुमन के सर्वथा धापातरमणीय कहते हैं। इसलिए उनकी दृष्टि में मन को कभी संसार में न लगाना चाहिए। जीवन में कुछ-न-कुछ तो प्रत्येक व्यक्ति करता ही रहता है परन्तु विवेकी मानव वही है जो शरीर से बाह्य कार्य करता हुआ भी मन को महेश्वर में ही मग्न रखता है। सारांस यह कि मनुष्य को संसार में ऐसे ही अनासक्त रहना चाहिए जैसे मुख में बिज्जा। उदाहरणार्थ—

ऐसा पशु संसार है जैसा सेमर फूल ।

जिन इस के व्योहार में भूटे रंग न मूल ॥^३

जग माहीं ऐसे रजो ज्यों जिहूँ बा मुख भाहि ।

वीर बना मद्यम करे तो भी चिकनी नाहि ॥^४ (बरधराज)

२ मृत्यु

मृत्यु तथा ही वर्मप्रचारकों का अमोक्ष घात रही है। इसी का स्मरण करत वे जन-साधारण को ईश्वरोग्रस्त करते रहे हैं। सन्तों में भी मृत्यु की अनिवार्यता सर्वकटा

१ सन्तमुखासार पद्य २ १० ३५।२०

२ मां स अर्थात् जिहूँ बा मुख भाहि
एतन्मोक्षस्य मांसत्वं प्रकल्पितं मनीषिणः ॥ (मनुस्मृति ३।३३)

३ कबीर बचनावली, १० १४५।६३४

४ कबीर बचनावली पृष्ठ १२५।४०३॥

५ सन्तमुखासार, पद्य २, १६७।५॥

रखा । कबीर, बुल्लाखाह आदि ने मक्का-यात्रा, योजा आदि का भी उसी निर्भीकता से विरोध किया है जिससे काशी गया आदि का ।^१

कास

धर्म के सम्बन्ध में सत्तों की नीति यह है कि जो कुछ करना हो पुरान्त कर दायो, बिलम्ब उचित नहीं । कौन कह सकता है कि जिस कार्य को हम किसी प्राणामी काल के लिए स्वर्गित करते हैं वह समय प्राणामी भी या उससे पूर्व ही हमारा महा-प्रस्थान हो जायगा ? जो व्यक्ति प्रभु भक्ति या कोई धर्म्य कर्तव्य कार्य समय पर नहीं करते उन्हें अन्त में परमात्मापन करना ही पड़ता है । जो व्यक्ति अपने धर्मसम्बन्ध समय को निद्रा, संन्यास आनन्द आदि में ही व्यर्थ कर देते हैं वे कौड़ियों के बदले हीरे से आसने वाले महामूर्ख हैं ।^२

भाष्य, पुरुषार्थ

सत्तों की रचनाओं में पुरुषार्थ की विशेष चर्चा नहीं मिलती । जिसकी भी है तो भक्ति नाम-रूप आदि के लिए उद्योग करने की । सत्तार को अज्ञान मानने वालों से सांसारिक सुख-सुखों के लिए प्रयास की प्रेरणा भी प्राणा स्वयं ही है । इनके विचार में तो जो ईश्वर ने दे दिया है उसी पर सन्तुष्ट रहना उचित है और यदि कोई पुरुषार्थ करे भी तो भी उससे क्या बनता है ? उपसर्ग तो उतनी ही होती जितनी कि साम्य में प्रकृत की जा चुकी है—

जाकी जैता निरमया तामो तैता होइ ।

रली घट न तिल बड़े, जो सिर दूटे कोइ ॥^३

बात यह है कि जिनके मन में धर्मस्वयं तथा सांसारिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने की कामना रहती है, वही प्रकृत अचेतनीक होते हैं । जिन्होंने इच्छाएँ ही समाप्त कर लीं उनकी जिन्दाएँ और जिन्दाओं के साथ ही पुरुषार्थ भी समाप्त हो जाता है । कबीर भी का कथन है—

बाह गई जित्ता किटी मनुष्यो बेपरबाह ।

जिन को कह न चाहिए, तोई तार्ताह ॥^४

कर्मगति—

धर्म का निर्माण मनुष्यों के पूर्व जन्मों के कर्म से होता है और उन कर्मों में सत्तों का घटन विरहाह है^५ इसलिए इनका मत है कि कर्म-गति को बढ़े-बढ़े विद्याय और और भी नहीं टास सकते ।

१ विद्योपी हृदि-सम्बन्धी' पृष्ठ १४३

२ कबीर कथनावली पृष्ठ १९८।४००-४०२

३ बुद्धीराम : कबीर कथनावली सुमिका पृष्ठ ६३

४ कबीर कथनावली, पृष्ठ १४३।१७२

करम पति टारे माहि टरी ।

मुनि बसिळ से पंडित घानो सोम दे सगन परी ।

सीता हरन मरम बसरप को बन में बिपति परी ॥

बोदि पाप निन पुन करत नृप, गिरदिब जोन परी ।

पाब्दब गिनके घाप धारयो तिन पर बिपति परी ॥^१

सुख बुख

सेमस-सरीबे छसार में सन्धे सुख का स्थान कहाँ ! सन्तों की दृष्टि में जगत् के सभी सुख भूटे हैं और उन्हीं को पाकर लोग मोहबध धपने को सुसी मान बैठते हैं । जब धान या कम सभी को कास-कर्मित होना है तो फिर यहाँ सुख कहाँ ? वास्तविक सुख तो उन्हीं को है जो प्रभु-नाम के जाप में लीन हैं । मनाहर स्व मन्त्र संगीत सरस भव्य सुमंथित इष्य स्त्री-सस्पर्श को सामान्य जनों के लिए विशेष धार्कषण रखते हैं सन्तों के लिए किसी काम के नहीं कमन के समान जयम्भ हैं । उनमें तो भूख धन ही लिप्ट होते हैं बिबेधी नहीं—

बासर सुख ना रैन सुख, ना सुख सपने माहि ।

जो नर बिछुड़ नाम से तिग को पूप, म छाहि ॥^२

सकून, प्योतिप

सगन मुहूर्त सकूनारि के शुभागुम होने का बिचार धान की धयेदा उन दिनों कहीं धधिक था । परन्तु सन्तों का बिचार यह था कि इनमें बिदबास करना प्रभु में पास्या के धमाध या कमी को सूचित करना है । सब धिल धड़ियाँ और मुहूर्त मगनाम् के बनाये हुए हैं और कर्म का पल धनस्वम्भाषी है । इसलिए सकून-मुहूर्तारि में बिदबास करना निष्याबिदबास मान है । सन्धे धास्तिर्कों को इन धर्मों से ऊपर ही उठना चाहिए । धीसे—

(क) मन तै इतने भरम धबायो ।

बलत विदेस धिप्र बनि पूछो, दिन का बोप न साधो ।^३ (ममुच्छाता)

(ख) लपम धुहरत भूठ सब, धोर बिगाड़े काम ।

धोर धिगाड़े काम साइत बनि धीप कोई ।

एक भरोसा माहि कुत्ता कहुवां से होई ॥

'पतद्र' सुम धिग सुम धड़ी धाव पड़े अज नाम ।

सगन धुहरत भूठ सब धोर बिगाड़े काम ॥^४

१ कबीर बघनायकी पृष्ठ २११।११४, और भी देखें, दही पृष्ठ २११।११३

२ " " , १२८।४२०

३ उल्ल मुपातार पृष्ठ २ पृष्ठ ३३४

४ " " , २२८।१७

धर्म

समस्त लोग एकमात्र निराकार ईश्वर के उपासक थे। धर्मतार मूर्तिपूजा मूल प्रेरण तथा धर्म्य देवी-देवताओं में इनकी रसी भर भी प्राप्त न थी। श्रीराजी के धर्मन से कृष्णा और धारम-तत्त्व को परमात्म-तत्त्व में सीन कर देना ही इनका परम उद्देश्य था। 'शुक्ति धर्म-नीति' हमारे विवेक्य धर्म से बाहर है। प्रत्येक उसी सविस्तर चर्चा करना प्रतापस्मक है।

सन्तों के नीतिकाम्य की आलोचना

नवीन विषय

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि सन्तों की इच्छियों का मुख्योद्देश्य प्रभु-प्राप्ति है तथापि उनमें नीति-विषयक बहुत सी उपयोगी बातों का उल्लेख किया गया है। उन बातों में अनेक ऐसी हैं जिनकी चर्चा प्राचीन संस्कृत और हिन्दी-काव्यों में प्रायः दृष्टिगत नहीं होती। उदाहरणार्थ राज को भस्म करने की अपेक्षा पशु-मर्तियों को सिमाना अष्ट है। जिज्ञा-रस ही सर्वोत्तम रस है। मार्हस्य नहीं सम्बन्धियों का मोह त्याग्य है। कमपूजा गुरु गुरु की भगवान् से उच्चता। कुसु-हृत् ताड़ना की प्रसंसा। तस्वी तस्वी-नष्ट होती है। तो बुद्ध तस्वी-नष्ट। परिश्रमी गृहस्थ की निष्ठसे साधु से श्रेष्ठता। परोपकार के लिए याचना निष्ठ नहीं। हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई। चौके-बूढ़े तथा छूत-छात का खंडन स्त्री को वित्त से वित्त नहीं। मौ-बकरी की समानता इत्यादि। बहुत न होना कि मौमिक चिंतन तथा तत्कालीन परिस्थितियाँ ही धर्मिक-तर नवीन विषयों का प्रेरण सिद्ध हुई।

उपेक्षित विषय

यहाँ हम काव्यों में अनेक नवीन विषयों की चर्चा दिखाई देती है। यहाँ कई प्राचीन विषयों की अपेक्षा भी दिखाई देती है। जैसे क्षुपा शक्ति प्रसंसा कुसुमव पर सत्य मापण से ज्ञानि विद्या का महत्त्व साधन और विष्णु मुक्ति-मुक्ति-धम्माय का महत्त्व प्रताप का प्रतिकार, व्यवहार-ज्ञान के बिना पंडित भी मूर्ख मान लीय की प्रसंसा। पत्नी की अपेक्षा मित्र की बात मानना हितकर, पराये कार्य में हस्त श्रेय तथा धर्मरिषित को प्रायय देने का धनीपितृत्व स्वार्थसिद्धि में कपट की धनिधर्मता ईश्वरवासी का विनाश। नीच सोमी को पंच न बनाओ इत्यादि। उपर्युक्त प्रकार के विषयों की अपेक्षा का कारण है। सन्तों के दृष्टिकोण में ऐहिकता की कमी। न उन्हें मौमिक जीवन को सुखी-समृद्ध बनाने की चिन्ता थी और न वे सुख-समृद्धि की प्राप्ति के साधन बताते को ही उत्सुक थे।

पूर्ववर्ती प्रभाव

यह दो सर्वविधित ही है कि धर्मिकतर समस्त-काव्य ऐसे व्यक्तियों के द्वारा प्रणीत हुआ है जो विवेक विज्ञान न थे। यद्यपि उनमें से धर्मिकतर समस्त संस्कृत भाषादि भाषाओं से धर्ममित्र थे तथापि यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि उनके

हृदयों में महात्माओं तथा बिद्वज्जनों के सस्य से ज्ञानमोति जगमया रही थी। यही कारण है कि उनके छन्दों पर पूजार्थी साहित्य का प्रभाव अनेक स्तरों पर सक्षित होता है। प्राकृत व भवभूत की अपेक्षा उन दिनों संस्कृत तथा हिन्दी का प्रचार कहीं अधिक था। अतः छन्दों के नीति-काम्य पर संस्कृत और हिन्दी-साहित्य का ही प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

१ संस्कृत-साहित्य का प्रभाव

संस्कृत तथा छन्दों के नीति-वर्णों में जहाँ कहीं भाव-साम्य या इष्टान्त-साम्य दिखाई देता है वहाँ ध्यान से देखने पर, स्पष्ट हो जाता है कि छन्दों में संस्कृत श्लोक को सामन रक्त कर उनका अधिकतम अनुवाद करने का यत्न नहीं किया है। अपितु युक्त मात्र भाव और उदाहरण को घाने छन्दों में व्यक्त कर दिया है। उदाहरणार्थ—

(क) र्वंभ सूता षडुत्सव्य सुश्री येवम्युवस्करः ।

वंशनी शोडशुम्भन्घ षष्यते वास्तु दाहयन् ॥^१

पञ्चमहायज्ञ-प्रकरण में मनु जी ने लिखा है कि गृहस्थ के घर में ब्रह्मा यज्ञकी बुहायि उमूलस मुयल और असयट य पाँच पदार्थ ऐसे हात्र हैं जहाँ कीट-वर्णों की हत्या होती रहती है। पञ्चमहायज्ञों का उक्त पाप क प्रतिकारार्थ विधान किया गया है। अथ रज्जव जी का इसी आशय का एक पद्य सीत्रिए—

राग रामगिरि

बीटो दस बीके में मारे दूध दस हाँडी माहीं ।

बाकी चूहे बीब मार जो सो समुझ कणु माहीं ॥

पाती फूल सदा ही तोड़ें, पूजन कं पापाय ।

छार पतया/होहि भारती, हिरबे नहीं यिनाय ॥^२ (रज्जव)

मुनिजी का ध्यान तो यज्ञकी चूहे आदि तक ही सीमित रहा परन्तु रज्जव जी ने प्रतिमा-पूजन के लिए पत्र-मुं'पादि के भवभय तथा भारती के समन होने वाले घसम दाहना भी उल्लेख कर दिया है।

(ख) विहृति नैव गण्डगति संशोचन साधयः ।

आवेष्टितंमहा सपैरबन्धनं न विधापते ॥^३ (शांगपर)

'कुसगति के दोष से संश्रुतों में बिकार नहीं उत्पन्न होता। जन बड़-बड़ गर्वों से आवेष्टित भी बन्धन का बूझ विधेमा नहीं होता।

सन्त न छोड़ें संतई कोटिक निस घसंत ।

ममय मुपयहि बधिया शीतसता न तत्रत ॥^४ (जबोर)

१ अनुसन्धि (श्रीगम्भा सस्कृत नीतिरस रत्नाकर, १९३५ई०) अन्वय ३।६०

२ सन्तमुपाहार पण्ड १ पल्ल ५१४

३ मुमादित रत्नाकर, पल्ल ११३

४ कबीर वचनावली, पल्ल १२३।३३०

निस्सन्देह बोहे का भाव भीरुदृष्टान्त स्मोक से लिया गया है परन्तु 'कोटिक' तथा 'शीतलता का विचार कबीर जी का ही है।

(घ)

ब्रजंभीयो मतिमता बुजंन सस्यंवरयो ।

स्वा भवत्यपकापाय सिंहल्पि बसन्तपि ॥' (सदात कवि)

बुझिमात् मनुष्य को बुजंन घ न मीची करनी चाहिए न बीर । कुटा चाहे चाटे भीर चाहे काटे दोनों प्रकार से अपकार ही करता है ।

पान पड़ाई जपत से, कूजर की पहिचानि ।

मीत किए मुक चाठही बीर किए तन हानि ॥'

स्मोकरा ने जिस दृष्टान्त को बुजंन से सस्यंवर के निषेध के लिए प्रस्तुत किया है, कबीर जी ने उही को सांसारिक मान-बड़ाई के परिहार के लिए ।

इस प्रकार प्रस्तुत भीरु अप्रस्तुत दोनों के ही क्षेत्रों में सन्तकाव्य कुछ सीमा तक सस्कृत-साहित्य का खली है ।

२ हिन्दी साहित्य का प्रभाव

सन्तकाव्य के पूर्व कुछ नायकाव्य तथा कुछ भीरु-काव्य सिधे वा चुके थे । सन्तकाव्य की इन पूर्ववर्ती काव्यों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि सन्तकाव्य जितना नायकाव्य से प्रभावित हुआ है उसका बराबरा भाग भी भीरु-काव्य से नहीं । भीरु-काव्यों के अध्ययन के पश्चात् अब हम सन्तकाव्यों का व्यवसोक्त करते हैं तब ऐसे मनता है जैसे हम भीतिभ्रता से साम्प्रतिकता की भीरु वा रहे हैं, बाह्य बन्ध से धार्मिक जपत् में प्रवेश कर रहे हैं । परन्तु नायकाव्यों से सन्तकाव्यों की भीरु चाते समय ऐसे प्रतीत होता है कि दोनों एक ही श्रुतता की दो कड़ियाँ हैं; नायकाव्य पहली सन्तकाव्य दूसरी । उदाहरणार्थ मानव घटीर की दुर्लभता तथा मरबटा का अस्तेष तीनों बायधों में किया गया है । परन्तु उसे सार्थक बनाने के साधन भिन्न-भिन्न हैं । भीरु-कवियों की दृष्टि में उसकी संकता बीरगति द्वारा मध्य-प्राप्ति तथा रणक्षेत्र में अथवा मांस पशु-पक्षियों को बिमाने में निहित है । नाथों भीरु सन्तों के मठ में उसकी सफलता कर्मच नायक-वद की प्राप्ति तथा ब्रह्मप्राप्ति पर निर्भर है । जगदिक के समान बाहु भीरु भी घटीर को इतर प्राणियों को बिसाने में पुष्प माना है परन्तु यहाँ भी पूर्ण ऐकमत्य का प्रभाव है । भीरु-कवियों का धारण तो यह है कि पुरु मूमि में जो जोड़ा लड़-मर कर अपना मांस पीबजन्तुओं का भय बना जानता है वह पुष्पवान् है भीरु बाहु भी का भाव यह है कि निरर्थक घटीर को जमाने-दफनाने की अपेक्षा पुष्प-वस्तियों का भोग्य बना जानना सचका सधुपयोग है । भीरु-काव्यों में देव घास्त्र पुराण प्योत्रिवादि के सन्तों के प्रति मद्धा विलाई देती है परन्तु नाथों तथा सन्तों ने पुस्वकी ज्ञान की अपेक्षा की है भीरु धामना

१ तुमाधित रत्न माण्डागार, पृष्ठ ५४।१८

२ कबीर बचनावली पृष्ठ १३७।१४

तथा ज्ञान पर अधिक बल दिया है। चीन तथा दया दानता काम भोग भोग मोह प्रहंकारादि धार्मिक विषयों पर तो बीर-काम्य प्रायः चुप ही रहते हैं परन्तु नामकाम्य तथा सन्तकाम्य चीसादि के कारण और कामादि के समय पर अत्यधिक बल देते हैं। धर्म और बीरताकी समी ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है परन्तु एक विभिन्न हैं। जहाँ बीरकवि मुठ-भूमि में इन गुणों को बीरों का धामरण कहते-हैं जहाँ सन्तकवि इन्हें नभित-पथ पर अग्रसर होने वालों का धमकरण।

पारिवारिक नीति के क्षेत्र में भी सन्तकाम्य का दृष्टिकोण बीरकाम्यों तथा माय काम्यों से संबंधित है। बीर-काम्य पारिवारिक जीवन को प्रशसनीय तथा स्त्री को धन' कहते हैं। मायों के मत में गार्हस्पत्य-जीवन परह्य है अक्षय्य ब्रह्मचर्य काम्य वस्तु है स्त्री बाधिन है और उसके हाथ से जल पीना भी अनुचित है। सन्त भी स्त्री को कोई संमान्य पर नहीं देने परन्तु गार्हस्पत्य की उग्र निन्दा भी नहीं करने।

सन्तनाम्य ने 'स्वामि-धर्म' का भाव तो बीरकाम्य स ग्रहण किया है परन्तु सत्य परिवर्तित कर दिया है। बीर-काम्यों में स्वामी का अभिप्राय या राजा या धर्मदाता और 'स्वामिधर्म' का भाष्य या प्राणपण से उसकी सेवा। सन्तकाम्य में 'स्वामी का धर्म हो गया है भगवान् और, स्वामिधर्म का धर्म धन्य भगवद्भक्ति। ऐसा ही धर्म परिवर्तन 'पातिव्रत' का भी किया गया है। बीर-काम्यों में तो धन्य पतिपरमणा तथा मृत पति के साथ सती होने वाली साध्वी को पतिव्रता कहा गया है परन्तु सन्तकाम्यों में धन्य मृत को पतिव्रता और उसकी धन्य भक्ति को पातिव्रत। बीरकाम्यों में धर्मसूक्त ऊँच-नीच भाव तथा जाति-पाँति को स्वीकृत किया गया है परन्तु सन्तों ने मायों के तुल्य उच्च गुणों को ही व्यष्टता का समलक्ष माना है धर्म को मही।

सन्तों की धार्मिक नीति बीरकाम्यों से संबंधित विपरीत है और मायों की प्रवेशा कुछ उदार। जहाँ बीरकाम्यों में धर्मदरवादि को काम्य और भोग्य कहा गया है जहाँ माय-काम्यों में सम्पत्ति को स्वाग्य और भिला को स्तुत्य। सन्तों की बाली में कंचन की बुद्धा की भी कमी नहीं परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से गृहस्थ के लिए उसे विधाय निन्द्य नहीं कहा गया।

इन्द्रप्रति-विषयक नीति के क्षेत्र में भी सन्त-काम्यनाम्य काम्य का अनुकरण करता है बीर काम्यों का नहीं। बीर काम्यों में हिंसा, धावेट मद्य-मांस-शुभनादि की निन्दा नहीं दिखाई देती। माय-काम्यों में मांस मद्य भागादि के पठियाग की प्रशंसा की गयी है और सन्तनाम्य में तो नहीं-जहाँ हठी गायामो और पुण्य-यत्रों तक को भी छोड़ने का नियम दिखाई देता है। बीरकाम्यों में तो भी ही पुण्य भी परन्तु सन्तों ने गो बकरी घाँस सभी में औष का सादृश्य यणित कर प्राणिमात्र की हत्या का प्रतिषेध कर दिया है।

विधित नीति के क्षेत्र में भी सन्तनाम्य आपनाम्य स प्रभावित है बीरनाम्य से नहीं। गीता तीर्थ चक्रेन महूर्त्तादि में बीर-कामियों का विरवाड तो पा परन्तु सन्तों

का विमोक्षण भी नहीं। बीरकाव्यों में हिन्दू-संस्कृति के प्रति प्रेम है और इस्लाम के प्रति द्वेष। परन्तु शत्रुओं ने शार्ङ्गों के समान ही दोनों धर्मों के बाह्य धाड़म्बरों का पकड़ कर जनसाधारण को एक-दूसरे के समीप जाने का उद्योग किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सन्तकाव्य पर बीरकाव्य का प्रभाव बहुत योद्धा है और भावकाव्य का बहुत अधिक। परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि यह प्रभाव भावपत्र पर ही अधिक पड़ा है कथापत्र पर कम। शार्ङ्गों के समान ही शत्रुओं की रचनाओं में भी हमें साहित्यिक धीप्ठक दिखाई नहीं देता परन्तु बीर-काव्यों को न शार्ङ्गों की दृष्टि से उपेक्ष्य कहा जा सकता है न भाषा आदि की दृष्टि से।

यहाँ शक्य करने की बात यह भी है कि सन्त-काव्य अपने पूर्ववर्ती काव्य से ही प्रभावित नहीं है परन्तु शत्रुओं पर पूर्ववर्ती शत्रुओं का प्रभाव भी कहीं-कहीं स्पष्टतया दिखाई देता है। इस प्रभाव का कारण है कबीर जी की प्रसाधारण प्रतिभा तथा परवर्ती कवियों की उनके प्रति प्रभाव प्राप्त्या। जैसे—

(क) चलती चल्ती बैचि के बिया कबीर रोय ।

हुइ पठ भीतर बाइके, साक्षि यथा न कोय ॥^१ (कबीर)

चलती चल्ती बैचि बिया में रोय है ।

पीस यथा संसार यथा न कोय है ॥

अपबीचे में परा कोड न निरबहा ।

(भरे हों पसद) बचेगा कोऊ सत्त जो खुं ठे सनि प्छा ॥^२ (बनद)

(ख) निरक निपरे रासिद, घांनल कुटी छबाय ।

बिन पानी तागुन बिना निर्मल करे सुमाय ॥^३ (कबीर)

(बाहू) निरक पपुरा बिनि मर, वर उपमारी सोइ ।

हम खुं करता ऊजला, बापक संभा होइ ॥^४

बनद जी ने जहाँ कबीर के बोहे की व्याख्या कर दी है, वहाँ बाहू ब्रह्मण ने कबीर से निरक-अर्थात् का भाव लेकर उसके दीर्घबीबी होने की कामना भी की है।

रस और भाव

सन्तकाव्य के अधिकतर प्रयुक्त न विशेष विज्ञान से न सिद्धहस्त कवि। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में कल्पना का कल्प तथा सरलता की कमी है। ऐसा होते हुए भी इन काव्यों के अध्ययन से मन में निर्वोद, वैभव, शक्ति, मति, ज्ञान, ज्ञान उदात्ता

१ कबीर बचनावली पृष्ठ १३०।४३०

२ सन्तमुपासक अष्ट २ पृष्ठ २२३।३०

३ कबीर बचनावली पृष्ठ १३२।२३६

४ सत्त बाहू और जनकी बायी (दशिता, प्रथम संस्करण), पृष्ठ १३१।४

सन्तोष प्रादि के भावों का बोझ-बहुत उभरे होता ही है और इस दृष्टि से इनमें रस रत्न का सबसा प्रभाव नहीं है ।

भाषा

अधिकतर सन्त-कवियों का ध्यान भाषा-नीष्ठता की ओर न होकर भावों की सुशोभ समिन्धित की ओर ही था । सुन्दरदास भी की भाषा तो प्रांजल ब्रज है परन्तु वेप सन्तों की भाषा का 'सकुण्टली' ही कहा जाता है जिसमें भोजपुरी पूर्वी ब्रज पंजाबी राजस्थानी लखी-बोली फारसी अरबी मनी के शब्द सुलभ हैं । प्रचलित कवियों तथा लोककवियों का प्रयोग भी कहीं-कहीं दृष्टिगोचर होता है । जैसे—

- (क) धव पछतावा क्या कर विड़ियां चुम पाई जेत ।^१ (कबीर)
- (ख) यह तो घर है प्रेम का धाता का घर नाहि ॥^२ (पद्म)

काव्य-विधान तथा छन्द

सन्तों का नीतिराम्य मुक्तक छन्दों तथा राग-बद्ध गानों (गीतों) का रूप में ही उपलब्ध होता है । सर्वाधिक प्रयोग बोहा छन्द का किया गया है । भूमता अगिस्त कवित्त सबसा छन्दय कँडसिया चौपाई प्रादि छन्दों का भी सुन्दरदास पसन्दनाम प्रादि ने मुष्ट प्रयोग किया है ।

धर्सेकार

सन्तों के अधिकतर नीति-छन्द पद्यमात्र हैं । उनमें न तो कोई शाब्दिक पम रकार विचार पड़ता है न प्राविच । यद्य तो यह है कि अधिकतर सन्तों ने शब्द या पम को कमलूठ करण का उद्योग किया ही नहीं । हां विषय को सम्यक रूप में हृदयगम करण के लिए वे विरोप मतरक रहने से और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो अनुप्रास उपमा यमक बीप्या रूपक दुष्पान्त अग्योक्ति प्रादि धर्सेकार स्वत एव हृदय से उद्गुत होते से उनके प्रयोग में से कोई अशोभ न करते से । उदाहरणाय—

- (क) कौनो काया मन अचिर, पिर पिर काज करंत ।
ज्यों ज्यों नर निपड़क पिरत, त्यों त्यों काज हंत ॥^३ (कबीर)

(दिकानुप्रास ताटानुप्रास बीप्या)

- (ख) गुद व्याता परजापति सैबक भाटी दन ।
'रज्ज' रज सूँ केरि कँ, पड़ि से कँम अनुर ॥^४ (अपट)

१ कबीर सपनावली पृष्ठ १२८।४०१
 २ सप्तमुपासार, गण्ड २ पृष्ठ २२७।१६
 ३ कबीर सपनावली पृष्ठ १३ ।४३५
 ४ सप्तमुपासार पद्य १, पृष्ठ ५२३।१६

- (ग) पर त्वारथ के कारणे हुअ छई "पतद्रास" ।
सन्त सासता सहुत हँ बसे सहुत कपास ॥^१ (अपमा, वाचति-दीपक)
- (घ) कब बहियरँ बस थापनी छाँड बिरानी धास ।
जाके ध्रापन नबी है, सो कस मरै पिभास ॥^२ (कवीर) (इच्छाम्भ)

सैली

सन्तकाव्य के नीति-विषयक संघों में तथ्य-निरूपक उपदेशात्मक तथा आत्मनिर्देशक शैलियों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। धन्यापरिहिक संवादात्मक, धन्यावर्तक तथा झूठ शैलियों का भी प्रयोग किया गया है परन्तु उपर्युक्त शैलियों से कम।

गुण-दोष

सन्तकाव्य में प्रभाव गुण की प्रशंसा है। धोज धीर मातुर्य का सर्वथा प्रभाव तो नहीं कहा जा सकता परन्तु उनकी भाषा उन्मत्त नहीं। संतों की भाषा में संघों की ठोड़-मरोड़ भाषाओं की स्तूनाधिकता धरमीसत्त्वादि अनेक शास्त्रीय दोष दुर्भंग नहीं है परन्तु सन्त-काव्य की आलोचना के समय उनकी ज्येष्ठा ही उचित है।

सन्तों के नीति काव्य का मूल्यांकन

हमारे महागुरु संतों के नीतिकाव्य का सबसे बड़ा दोष है—ऐहिक दृष्टि की कमी। उसकी दृष्टि प्रभु प्राप्ति पर केंद्रित है उतनी लौकिक सुख तथा सफलता पर नहीं। जब ब्रह्म ही सत्य है संसार, परिवार और मनुष्यमात्र मिथ्या है तब लौकिक दृष्टिकोण था ही कैसे सकता है? यही कारण है कि इस काव्य में सांसारिक धीर मातुर्य विकास पारिवारिक कर्तव्यपालन आदि विषय उपेक्षित रह गये हैं। इसी प्रकार सम्पत्ति तथा स्त्रियों की निन्दा गुरु की ईश्वर से उन्नता सांसारिक सुखों की निन्दा उपेक्षा तथा माम्भाव में अत्यधिक आस्था भी आधुनिक दृष्टि से स्तुत्य नहीं मानी जा सकती। इन स्तूनाघों के चूते हुए भी संतों के नीतिकाव्य का अपनी आदर्शमकता के कारण विशेष महत्व है। वह मनुष्य को काम क्रोध लोभ मोह, भ्रूँकार ईर्ष्यादि दोषों से बचाकर उसे समी ध्यात धनुष्ट निर्मोह तथा विभक्त बनाता है। उसके सम्पत्त से मनुष्य स्वार्थी तथा कुल्लय का भी भला करने तथा अपकारी का भी उपकार करने की पुनीत प्रेरणा प्राप्त करता है। वह उस ओर सामाजिक धर्मपर निर्भीकतापूर्वक तीव्र कूटाघवात करता है जिसके कारण एक निर्बुद्ध व्यक्ति भी उच्च कर्म में अगम प्राप्त कर लेने मात्र से पुण्य धना चूटा है और कुल्लय बुली मनुष्य भी तबाकविष मीच बंध में उत्पन्न होने के कारण मावकीकन नीप ही माना जाता है। वह उन ब्रह्म-सात बीक-पुण्ड्रा जाति-नाति धार्मिक

१ सन्त सुधासार बंड २ पृष्ठ २२३।७

२ " " १ " १०५।११

इन्हीं दोषों के समुच्चय-मूलन की शिक्षा देता है जिनके कारण मनुष्य परस्पर दर्श-स्पर्श-ज्ञान-मान-व्याह-शाधी तथा अन्य व्यवहार नहीं कर सकते । वह पड़ोसी से ही प्रेम करना नहीं सिखाता बिस्वजमीन प्रेम की भी शिक्षा देता है । उसके प्रेम की सीमा मनुष्यों को ही नहीं पशु-पक्षियों तथा भ्रूषण-वन्स्पष्टियों तक को अपनी परिधि में ले लेती है । सत्य प्रहिंसा हीन क्षमा तथा परोपकार तत्रता धैर्य उदारता आदि सत्त्वगुण के प्रयोग पर इस काम्य में विशेष धन दिया गया है । परन्तु जो धर्मध्वजी हिन्दू और मुसलमान तथा पाश्चात्ती साधु रोना नमाज वरु हीन कंठी माता कपाय आदि द्वारा घातों गहर स्वार्थ-साधन में तत्पर रहते थे उनकी हीन भर्त्सना की गई है । जो भक्तानी लोग शकून, मुहूर्त विश्वास आदि से मीन-वस्तु रहते थे उन्हें एकेश्वर-विश्वास के द्वारा निर्मय बना दिया गया है । सार यह है कि सन्तों का पाप-मासक चरित्र प्रचारक और प्रेम-विस्तारक नीतिकाम्य निवृत्ति-परिचय लोगों को उच्च जीवन की प्रेरणा देने के कारण तो स्तुत्य है परन्तु सांसारिक सुख-समृद्धि के इच्छुक आचार्य गृहस्थों के लिए विशेष उपयोगी नहीं है ।

सन्तों के नीतिकाम्य की प्रमुख विशेषताएँ

- १—सन्त-नीतिकाम्य का दृष्टिकोण ऐहिक नहीं पारमात्मिक है ।
- २—उसमें धार्मिक-व्यवस्था प्रमाण है व्यावहारिकता गौण ।
- ३—उसमें पारम्यिक नीति की तो प्रचुरता है परन्तु सांसारिक तथा मानसिक नीति की कमी प्रचुरता है ।
- ४—सम्बन्धी स्वार्थी तथा सम्बन्ध भूत बताए गये हैं । उनके प्रति कर्तव्य पासन की शिक्षा का प्रभाव-सा है ।
- ५—धार्मिक साम्प्रदायिक, जातिगत भेद-भाव को मिटाकर मनुष्यों को परस्पर समीप लाने का उद्योग किया गया है ।
- ६—धन-सम्पत्ति तथा गरीबी की शिक्षा की गई है ।
- ७—अहिंसा और दया का महत्त्व बहुत अधिक बताया गया है । जीवनमान को ही ही के समान धर्म्य माना गया है ।
- ८—बाह्य आदर्शों का हीन खंडन किया गया है और धर्म दमादि पर धन बहुत अधिक है ।
- ९—संसार और उसके मुल झूठे हैं । प्रभु प्राप्ति ही प्रधान लक्ष्य है ।
- १०—प्रायः सत्त्वगुणों का हीन खंडन तथा पशु में रक्षित है ।
- ११—इसके धर्मिकतर मान्य परमान है सरलता तथा साहित्यिकता मूल्य है ।
- १२—वास्तविक-नीति तथा साहित्यिकता की कमी के कारण यह काम्य धर्मो-पदेश-सा लक्ष्य है नीतिकाम्य के समान नहीं ।

- (घ) पर स्वारस के कारणे, दुख सई "पतदूबास ।
सस सासना सहत हूँ, बंसे सहत कपास ॥" (उपमा प्राबुत्ति-दीपक)
- (घ) कस बहियाँ पस घापनी छाँड बिरानी बास ।
जाके घाँपन नबी हूँ, सो कस मरे निभास ॥" (कबीर) (बुध्यास)

धीमी

संस्कृतकाव्य के नीति-विषयक धर्मों में तप्य-निरूपक उपदेशात्मक तथा धारमाभि-
व्यंजक धीमितियों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। धर्म्यापदेशिक संवारात्मक,
धर्म्यावर्तक तथा कूट धीमितियों का भी प्रचय किया गया है परन्तु उपर्युक्त धीमितियों
से कम।

गुण-दोष

संस्कृतकाव्य में प्रचार गुण की प्रथागत है। बाब और माधुर्य का संवपा समान
सो नहीं कहा जा सकता परन्तु उनकी भाषा उन्मेष्य नहीं। सतों की बाणी में धर्मों
की तोड़-मरोड़ भाषाओं की श्लाघात्मकता धम्मीतत्वादि अनेक धार्मिक दोष दुर्लभ
नहीं है परन्तु संस्कृतकाव्य की आलोचना के समय उनकी उपेक्षा ही उचित है।

सतों के नीति-काव्य का सूक्ष्मात्म

हमारे महादुष्टार सतों के नीतिकाम्य का सबसे बड़ा दोष है—ऐहिक दृष्टि
की कमी। उसकी दृष्टि प्रभु प्राप्ति पर जितनी केन्द्रित है उतनी सौकिक सुख तथा
सफलता पर नहीं। जब बड़ा ही सत्य है संसार, परिवार और मनुष्यमात्र मिथ्या है
तब सौकिक दृष्टिकोश धा ही कैसे सकता है? यही कारण है कि इस काव्य में धार्मि-
क और मानसिक विकास पारिवारिक कर्तव्यपामन आदि नियम उपेक्षित रह गये
हैं। इसी प्रकार सम्पत्ति तथा स्त्रियों की मिथ्या मुष की ईश्वर से सम्बन्ध सांसारिक
सुखों की नितास्य उपेक्षा तथा भाव्यकाव्य में धार्मिक धारमा भी धार्मिक दृष्टि से
स्तुत्य नहीं मानी जा सकती। इन मूलधर्मों के रहते हुए भी सतों के नीतिकाम्य का
अपनी धार्मिकता के कारण विक्षेप महत्त्व है। वह मनुष्य को काम श्रेष्ठ शोभ
मौह धाँकार, ईर्ष्यादि दोषों से बचाकर उसे संदमी धारमा साधुद्वि निर्मोह तथा
विनम्र बनाता है। उसके धर्म्यन से मनुष्य स्वार्थी तथा कृतघ्न का भी भला करने
तथा अंधकारी का भी उपकार करने की पुनीत प्रेरणा प्राप्त करता है। वह उस धीर
धार्मिक धर्म्याय पर निभीकतापूर्वक तीव्र कूटाचवात करता है जिसके कारण एक
निर्दुष्कृत व्यक्ति भी उच्च कुल में जन्म प्राप्त कर सेने मात्र से पूज्य बना रहता है और
सुघरा सुणी मनुष्य की तथाकथित नीच बंध में उत्पन्न होने के कारण यादग्रीक
नीच ही माना जाता है। वह उन धून-सात शीला-कूला जाति-पाति धार्मिक

१ सस सुधाधार लख २ धृष्ट २२३।७

२ " " १ " १७५।११

द्वेषादि दोषों के समूहोद्भूतन की शिखा देता है जिनके कारण मनुष्य परस्पर दर्श-स्पर्श ज्ञान-मान ब्याह-बाबी तथा अन्य व्यग्रहार नहीं कर सकते । वह पड़ोसी से ही प्रेम करता नहीं सिखाता विद्वज्जनीन प्रेम की भी शिखा देता है । उसके प्रेम की सीमा मनुष्यों को ही नहीं पशु-पक्षियों तथा भोपपि-वनस्पतियों तक को अपनी परिधि में ले लेती है । सत्य सहिष्णुता शील क्षमा तथा परोपकार नम्रता धैर्य उदारता आदि सम्पत्तिक के लक्षणों पर इस काव्य में विशेष बल दिया गया है । परन्तु जो कर्मव्यवस्था हिन्दू धर्म-मुसलमान तथा पाश्चात्ती सामु-रोमा नमान शत तीर्थ कंठी माता कात्याय आदि द्वारा आठों पहर स्वार्थ-साधन में उत्पन्न रहते थे उनमें तीव्र भ्रष्टता की गई है । जो अज्ञानी लोग शकून मुहूर्त विद्याशुभादि से भीत-भस्त रहते थे उन्हें एकेश्वर-विश्वास के द्वारा निर्मय बना दिया गया है । सार यह है कि अन्तों का पालन-नाशक, अरिज प्रचारक और प्रेम-विस्तारक नीतिकाम्य निवृत्ति-मरण लोभों को उच्च जीवन की प्रेरणा देने के कारण तो स्तुत्य है परन्तु सांसारिक सुख-समृद्धि के इच्छुक सामान्य गृहस्थों के लिए विशेष उपयोगी नहीं है ।

अन्तों के नीतिकाम्य की प्रमुख विशेषताएँ

- १—सत्य-नीतिकाम्य का दृष्टिकोण ऐहिक नहीं पारमाधिक है ।
- २—उत्तम आदर्शमकरता प्रधान है ब्यावहारिकता वीर्य ।
- ३—उत्तम आत्मिक नीति की तो प्रश्रुता है परन्तु शारीरिक तथा मानसिक नीति की कमी प्रचरती है ।
- ४—सम्बन्धी स्वार्थी तथा सम्बन्ध भूते बचाए गये हैं । उनके प्रति कर्तव्य पालन की शिक्षा का अभाव-सा है ।
- ५—धार्मिक साम्प्रदायिक आतिथ्य भेद भाव को मिटाकर मनुष्यों को परस्पर समीप लाने का सदुद्योग किया गया है ।
- ६—धन-सम्पत्ति तथा गति की निम्ना की गई है ।
- ७—सहिष्णुता और दया का महत्त्व बहुत अधिक बताया गया है । जीवनान्न को ही ही के समान प्रथम माना गया है ।
- ८—बाह्य आदर्शों का तीव्र खंडन किया गया है और अन्त समाधि पर बल बहुत अधिक है ।
- ९—संसार और उसके मुल सूते हैं । प्रभु प्राप्ति ही प्रधान लक्ष्य है ।
- १०—माय' सबुत्कड़ी माया और बोहा तथा पशों में उचित है ।
- ११—इसके अधिकतर माय पद्यमाय हैं; सरसता तथा साहित्यिकता शून्य है ।
- १२—वास्तविक-नीति तथा साहित्यिकता की कमी के कारण यह काव्य बर्मा-पदेश-सा समता है नीतिकाम्य के समान नहीं ।

१३—सन्तों का नीतिकाम्य उच्च आदर्शों के कारण महान् धन्य है परन्तु व्यापहारिकता की कमी के कारण सामान्य गृहस्थों के लिए विशेष उपयोगी नहीं ।

(ख) सूफीकाव्य में नीतितत्त्व

जहाँ मुसलमान शासकों ने खूब के बस से भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया वहाँ मुस्लिम प्रचारक हिन्दुओं को स्वधर्म में रीक्षित करने के लिए भी सीसाह प्रयत्न हुए । ऐसे धर्म प्रचारकों में सूफियों का अपना विशेष स्थान था । सूफियों का जीवन सारा हुबब उबार, बिचार उच्च ज्ञान उत्कृष्ट तथा प्रचार का डंग प्रेम-पूर्ण था । ये लोग राजाओं की सभाओं में पीठों के साथ धास्तावों का आयोजन कर अपने मत की ओझा का प्रतिपादन करने का उद्योग करते थे । इनके उद्योग के परिणाम रूप में हिन्दुओं की सामाजिक विपत्ता से पीड़ित बहुत से लोगों ने इस्लाम को धनीकार कर लिया । जहाँ इन्होंने मौखिक प्रचार से उहल्लों लोगों को प्रभावित किया वहाँ अपने मत के प्रचार के लिए मेखनी से भी धाहात्म्य दहल्ल किया । परिणामतः इनकी कृतियाँ हमारे समकालीनों में विद्यमान हैं (१) प्रेम-काम्य (२) स्फुट रचनाएँ ।

१ प्रेमकाम्यक

प्रेमकाम्य की परम्परा—प्रेमकथाओं की रचना भारत में बिरकाम से मद्य, पद्य नाटक और जम्बू रूपों में होती आई है । रत्नावती पद्यावती वासवदत्ता कृष्णयमाता आदि उत्कृष्ट की ऐसी ही कृतियाँ हैं । इन कथाओं की बढनाएँ तो प्रायः काव्यमिद होती थी परन्तु मायक-नरबाहुनदत्त उदयन धूरक विक्रमादित्य आदि—कनी-कनी ऐतिहासिक व्यक्ति भी होते थे । प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में भी यह परम्परा प्रसुम्ण रही । कौतूहल की 'सीसावती असूर कवि की पद्यावती कथा तथा जैन कवियों के बसहर बरिद छायाकृमार बरिद, कुरकण्ड बरिद आदि बरिद-काव्य ऐसे ही प्रेम-काव्य हैं । फिर 'पुष्पीराज राधो में बरिद पुष्पीराज के पद्यावती हुंसावती इन्द्रावती आदि से पाणिग्रहल्ल के प्रसंग भी प्रेमकाम्यों की परम्परा में ही परिगणनीय हैं । आसवी ने 'पद्यावत' में प्रेमकथाओं की जो विस्तृत सूची दी है उससे भी यही सिद्ध होता है कि उन दिनों उपन्यासी मुसणावती बिरणावती प्रेमावती आदि कई प्रेमकथाएँ मौखिक या लिखित रूप से प्रचलित थीं । ऐसी कथाओं में तीव्र मोरु-बधि वैतकर सूची धावकों ने इन्हें धाव्यारिभक सिद्धान्तों के प्रचार का साधन बना दिया । यह उनकी कोई नई मूक न थी । महामारत और पुचल्लों में बौद्ध पाठक-कथाओं तथा धनवान साहित्य में और जैन कवियों के बरिदकाम्यों और पुचल्लों में मोरु-कथाओं काय धार्मिक और धाव्यारिभक उपदेश देने की प्रकृति धनेकव देवी जा

सकती है। उपलब्ध सूत्री प्रेमरूपानकों में कुतबन की मृगावती मम्मन की मधुमालती, चापली की पद्मावत उद्यमान की बिनावती जान कवि की कनकावती कामसता मधुकरनालती रतनावती घोर छीटा काशिमताह की हुमत्रवाहिर, मूरमुहम्मद की इन्द्रावती और अनुराव बांसुरी तथा रोख निहार की मूसुऊरुनेसा विशेष प्रसिद्ध हैं। यद्यपि उक्त कवियों में से प्रथम तीन पीढ़ि-जगमीन हैं तथापि भावपाठ व साम्य के कारण उन्हें यही परिगणित करना समीचीन होगा। सूत्रिकाव्यों में नीति की गौरवता

लौकिक विषयों से मन को विरक्त कर सौन्दर्यमय प्रभु में अनुभवत रहने वाले लोग सूत्री कहते हैं। सूत्री-मठ का प्राणात् प्रभु प्रेम की आधार-निमा पर ही सब स्थित है और उसी दिव्य प्रेम का प्रसार करने के उद्देश्य से ही सूत्री कर्तों ने उपयुक्त प्रेमकाव्यों का प्रणयन किया है। इस सत्य की सिद्धि के लिए इन्होंने माध्यम-रूप में प्रायः हिन्दू-समाज में प्रचलित उन प्रेम-कहानियों को चुना है जिनमें कोई राजकुमार किसी राजकुमारी के अनुप-रूप-सादर्य को देख-मुगडर उस पर धायकत हो जाता है और जयकी प्राप्ति के लिए पर-वार का मुख छोड़ भोगी बन अनेक विकट विघ्न बाधाओं को पार कर प्रियतमा के मिलन-मुल का अनुभव करता है। चूंकि ऐसी कथाओं में मायक-नायिकाओं को जीवन की विविध परिस्थितियों में से होकर निकलना और बहु-विध प्राणियों के सम्पर्क में घटना पड़ता है, अतएव इनमें लोक व्यावहारिक-विषयक अनेक बातों का सम्मिश्रण स्वभावतः ही हो गया है। यही प्रासंगिक नीतिकार्य हमारे अनुभवान का विषय है।

व्यक्तिगत नीति—तात्त्विक दृष्टि में सूत्री लोग अपना या किसी नी धन्य वस्तु का पूषक अस्तित्व नहीं मानते। उन्हें मुस्लिम बेदान्ती की समा देन में कोई प्राप्ति न होनी चाहिए क्योंकि—

प्राप्ति मोक्ष विषय पुनि प्राप्ति प्राप्ति तन मन सोइ ।

प्राप्ति प्राप्ति करे जो चाहै, कहाँ सो बुहार कोइ ॥^१

हमारा तन और मन जीवन और मरण करना और कराना कुछ भी स्वतंत्र नहीं है सब प्रभु-रूप है और प्रभु प्रदत्त। ऐसी मान्यता की विद्यमानता में वास्तविक नीति का अस्तित्व ही कुछ हो जाता है क्योंकि काय-विशेष की नैतिकता या धर्मनैतिकता आवश्यकता की स्वतंत्रता पर निर्भर रहती है। जो भी व्यावहारिक दृष्टि से सूत्री कवियों ने दार्शनिक मानसिक और आर्थिक नीति के विषय में सुन्दर तथा उपयोगी कथ्यों का प्रतिपादन किया है।

सूत्री-काव्यों में शरीर की मरवृत्ता के कारण उत्सवजगमी गर्भ के त्याग का उत्सव अनेक स्थानों पर उपलब्ध होता है। मूर मुहम्मद इन्द्रावती के महान-संघ में कहते हैं—

परपठ रंग देह को देखि त मरये कोइ ।

भाव एक दिवस भ्रष्ट छार कलेबर होइ ॥^१

ऐसा होते हुए भी इन वाक्यों में शरीर की वह क्लेश या यहाँ लक्षित नहीं होती जो सातकाम्य में देनेकब दिखाई देती है। इनमें स्वास्थ्य के नियमों का उल्लेख है रोगों के उपचारार्थ औषधों की बर्षा है। वाया-रूपी पुत्र को सुख-रूपी पत्न से हरा भरा रखने का आदेश है तथा रूप और जीवन क महत्त्व की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा है। वात-ज्वर क विनाशार्थ नूरमुहम्मद कहते हैं—

उपजे हैह बाम बर बाको । होइ कम्प बमुहाई ता को ।

मोह मरम और मुख कन्साई । धीरो पाव होइ अपिखाई ॥

अभया लौठः पिरायत कना । सोबर बिबहि बुरन मना ।

माहत बर यह बुरन हमई । प्राल सम को भोजन करई ।

बहुत न सोऊ बेवस कहुँ धीर न रैन सँझार ।

आहु न उबर भरे पर, पिपु न मिस कहुँ वार ॥^१

जब मूरतिपुर नगर के राजा जीवन के पुत्र प्राप्त करण ने ब्राह्मण बचण से समेह नगर के राजा बर्षनराम की अनुजा सर्व-संगता के शौन्दर्य का बखुन सुना तब वह माता-पिता के मोह और राजप्रासाद के सुखों का परित्याग कर सर्व-संगता को प्राप्त करने के उद्देश्य से समेह-नगर को जाने के लिए कटिबद्ध हो गया। उस समय उस की पत्नी महामोहिनी उससे प्रभावजन्य बुझों से बचने-धीर शरीर को सुखी रखने की बर्षा नरमोहम्मद के शब्दों में इस प्रकार करती है—

बाधो हास पर्यंत बुरण, जेहि सेवा परमोदत रंग ।

रम-कनक-मोती-नय-हीरा जेहि बाए सुख पीब सारीरा ।

यह तब तजि टो बतिबौ, जसो न होइ ।

यमुहत काया पावप सुख के सोइ ॥^२

सूझी सोय प्रमी रे धीर उनके अनुसार प्रेम का प्राचार शौन्दर्य है।^३ इसलिये सूझी-वाक्यों में शौन्दर्य की महिमा तथा उससे प्रेम करने की प्रेरणा का उल्लेख पद्य पर प्राप्त होता है—

१ लं० मल्लप्रसाद द्विवेदी: हिन्दी प्रथमाया काम्य संप्रह (प्रमाण, प्रथम संस्करण) पृष्ठ १०४॥

२ इन्द्रानती: ज० सरता बुरल: कापती के परपत्नी हिन्दी सूझी कवि धीर काम्य (आगत, २०१३ वि०) पृष्ठ ४७७॥

३ नूरमुहम्मद अनुशासक बोनुरी (प्र० हि० सा० रा० प्रयाग) पृष्ठ ३६॥

४ 'दि वसित ऐंड दि काय भाव भास लव इउ धूरी ए० ई० एलिडी दि मिति कय छितागामो भाउ मुदीजदीन दमुत दरकी पृष्ठ १७३॥

सुंदर मनु देखें सुख होई, सुंदरता चाहि सब कोई ॥
 चंद्रबननि बन सर्वे जाको, परती सरग मिसा है ताको ॥
 देखें मित बाला रूप बीम्हा सुंदर रूप सुन्दरा दुग कीम्हा ॥
 रूप प्राइ भाषिम भां हूब समाइ ।

हिएँ समाने प्रेमी, कहा, प्रघाइ ॥^१

परन्तु यह रूप-सौन्दर्य विरस्यायी नहीं है यौवन के साथ ही इतना आरम्भ हो जाता है। इसमिए इसका समय रहते ही उपयोग करने में संकोच अनुचित है। यौवन तथा रूप का ह्रास हो जाने पर मनुष्य का मूक्य उदना ही रह जाता है जितना अक्षयियों की दृष्टि में निर्वास सरोवर का। पद्मावत^२ में वैष्णव की दूरी कुमोदिनी पद्मावती को इस नीति का उपदेश यों देती है—

बोलन-बल दिन-दिन बस बटा । नंबर छ्यान, हंस परपटा ॥

सुन्दर सरोवर जो लहि मोरा । बहु प्रावर, पंखी बहु तीरा ॥

मीर घटे पुनि पूछ म सोई । बिरसि जो मीज हाय रह सोई ॥^३

रूप और प्रेम निस्तन्देह बांछनीय तथा प्रयोजनीय पदार्थ हैं परन्तु उन पर अभिमान करना बुद्धिमान् के लिए उचित नहीं क्योंकि रूप सदा स्थिर रहने वाली वस्तु नहीं और उसके धमाक में प्रेम का ह्रास भी स्वामात्रिक है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का प्रतिपादन मुरमुहन्द ने इन शब्दों में किया है—

रूप प्रेम पर छा अभिमान् ? बौद्ध तबि घट चाहि मिशान् ॥

सबा म रूप रहत है, प्रेम नसाइ ।

प्रम रूप के तासहि तें घट जाइ ॥^४

वस्तुतः जीवन का धान्य जीवन में ही है। कार्यरूप में तो बुद्धि क्षीण इन्द्रियाँ क्षिप्त और शरीर निश्चल हो जाता है तब पराधीनता-जन्य बुद्धि सहने की अपेक्षा मरण कहीं प्रथम है। बुद्धावस्था की कष्टप्रसता का वर्णन जायसी ने पद्मावत की समाप्ति पर इस प्रकार किया है—

वन जो पएउ के शीत सरीक । बिस्दि परै नैतहि बेइ भीक ॥

बसन मए के पधा कपोला । वन गए मनबब बेइ बोला ॥

बुद्धि जो परै बेइ हिय बौराई । परब पएउ तरुँत तिर माई ॥

जो लहि बीयन जोबन साया । पुनि सो मीजु पयाए हाया ॥

बिरिय जो सीस जोलाब सीस पुनै तेहि रोस ।

हुँजी प्राऊ होउ मुन्द, केइ महु मीगु असीस ॥^५

१ अनुराग वाँसुरी पृष्ठ ४५

२ जायसी रंयावली पृष्ठ २७१

३ अनुराग वाँसुरी पृष्ठ ३

४ जायसी रंयावली, पृष्ठ ३०२

वाणी सत्यनायण तथा मधुरभाषण का महत्त्व और बाधाभता तथा मीन की निम्न इन कवियों के श्रिय विषय रहे हैं। मनुष्य तो सदा-सर्वदा नहीं रहता परन्तु उसके बचन-कुसुम सदा संसार को सुवासित करते रहते हैं। मूरमुहम्मद के विचार में तो सुबचन मनोवार्धिका के सुरमित सुमन हैं—

हे मन कुलवारी हो माई । कुन सर्ना मह बचन सोहाई ॥
बचन शय है वास समाया । कबि जोता है धँवर सयाया ॥
जब बहु कुल जगत कुलवारी । विकसत वास हैत प्रपिकारी ॥
जुग जम रहत न तपु कुम्हिसाई । विम विम वास बहुत प्रपिकाई ॥^१

वाणी के व्यवहार में विशेष सतर्कता अपेक्षित है क्योंकि जब धीर धनस दोनों का माध्य होने के कारण वह हास्य और रस गज-दान और गजचरण मर्दन दोनों ही का कारण मगती है। 'इन्द्रावती' में मूरमुहम्मद कहते हैं—

बचन सोह जासो सुख पाई, बुझब बचन चातुर कित काइ ॥
तो न पुछिए कैहि सुमि किया, होई पबन तापे जनु बिया ॥
बहुत बचन तें मातृज हँसे, बहुत बचन रत्नासु खसे ॥
मुसम परप छै पूज पाऊ रसना-पाव रहै किलगाऊ ॥
समुक्ति जोतिए रसना, भाषित भाषि ।
है रसना में प्यारी बल धो भाषि ॥^२

परन्तु मधुरभाषण ही पर्याप्त नहीं है 'श्रियं च नातृत् वृषाद् ने अनुसार सत्य की उपेक्षा भी करनी न करनी चाहिये क्योंकि नाम की स्थिरता के लिए सत्य सम्मान की अपेक्षा भी अधिक बलवान् है। उसमान का कथन है—

सत्य समान पूत जम नाही, सत सो रहै नाजें जय माहीं ।
जोति पूत एक हैस बखामा, सत पूत चारों छेड जात ॥^३

जायसी ने भी 'पद्मावत' के राजा सुधा सबाद संड में सत्य को सर्व पुष्पों का मूलकारण ठेजोबड क और ऐश्वर्य तथा सिद्धिमा का दाता कहा है—

होइ सुध रात सत्य के बाता । जहाँ सत्य तहँ धरम सँपता ॥
बाँधी सिद्धि छहै सत देरी । सछिमी अहै सत्य के धेरी ॥
सत्य जहाँ साहस तिथि बापा । धो सतवारी पुख्य कहावा ॥
सो सत छाँड़ि जो धरम दिनासा । धो अविहीब परम करि नासा ॥^४

१ मूर मुहम्मद इन्द्रावती का हस्त लिख 'हिन्दी प्रमयादा काव्य संग्रह' पृष्ठ ७८

२ अनुदास बागुरी पृष्ठ १२

३ 'उत्तमान' विभावली, जायसी के परवर्ती द्वितीय सूत्री कवि धीर काव्य, पृष्ठ २१०

४ जायसी पद्मावती, ३८

नितान्त मौन रहने से मानव के गुण गुप्त रहते हैं और परिणामतः उसका समाज में भावर-समान नहीं होता। बाबाभता अभिमान और बुद्धता दोनों ही का बसल है। इस नीति को अनुपम बाँसुरी में सवमगमा स्व सखियों के समक्ष यों व्यक्त करती है—

गुन बोली सों परगठ होई वित बोलेँ सदि जात न कोई ।
 बैसे साधु माप नित रहै ताको समति कष्ट प लहै ।
 मनो म बहुत बुप होइ रहना, मनो न बहुत भावित कहना ॥^१

मानसिक मोति—सूखी कृषि निरक्षर न ये। ये विद्या और स्वाध्याय के महत्त्व से सुपरिचित थे और अपने धर्मग्रन्थों के समान ही अन्य मतों के ग्रन्थों का भी बड़ा-पूर्वक अध्ययन करते थे। वहाँ य समी धर्मों के प्रवक्तारों और देवदूतों को भावर की दृष्टि से देखते थे वहाँ उनके धर्म-ग्रन्थों के प्रति संमान का भाव रखते थे। यही कारण है कि इन प्रमकथानकों में विद्या बुद्धि तथा धर्मग्रन्थों के प्रति भावर की भावना दृष्टिगत होती है। नूरमुहम्मद के शब्दों में विद्या बस्तुतः एक विद्यास और प्रगाथ ग्लानकर है जिसकी वाह पाना या पार पहुँचना किसी के लिए भी सम्भव नहीं—

बखन धरप है सिधु प्रपारा। संपुरन कोउ तिरै न पारा ॥
 नई नई लहर नित तासी। सापर मरम परपटै कासी ॥
 बड़े बड़े कवि सोय सपाने। तिरि नहिँ सके ठीब बियकाने ॥^२

इस विद्या-रूपी सर्वोत्तम तथा अभिजात्य धन के बिना मनुष्य पशु-मुल्य रहता है और जो इसे प्राप्त कर भी प्राचरण में नहीं लाता उसकी बधा तो प्रन्ववाही गर्भम की सी है—

विद्या सों मर मानुस होई, बाहि न विद्या है पसु सोई ।
 विद्या बरय न बाँई भाई नहिँ तस्कर ठग हाय बाई ।
 नहिँ नून कर न सहोबर मार्गे, अपिक बड़त अब बाटे सायें ।
 विद्या मने जने जो नाहीं, पोषी लाहे पर उपराही ।
 विद्या-बल सों सुन्देँ प्रापम बाइ ।

बहुत बस्तु मनोरम विद्या ह्राइ ॥^३ (नूर मुहम्मद)

विद्या से वास्तविक साम उठाना प्रत्येक के साम्य में बरा नहीं होता। जिनके मनोमुक्त निर्मल और हृदय-नेत्र जमीनित होते हैं वही इस धार्मिक प्रकाश से भासोचित हो सके हैं। धन तो उस ठोठे के समान हैं जो कुछ धान्य छील तो मैठा है परन्तु माणिक्य और मोती को बाकिम और राजा मान मुँह में डालने का उद्योग करता है। परमावत में जायसी कहते हैं—

१. अनुपम बाँसुरी, पृष्ठ ६० ।

२. नूर मुहम्मद : धनुषराग बाँसुरी पृष्ठ ३ ।

३. यही पृष्ठ ६ ।

सुधा जो पढ़ें पढ़ाए बीना । लेहि कत बुधि जेहि हिये न लेना ।

मानिक मोती देखि बहु हिये न जान करेइ ।

बारिज बाल जानि के अर्जहि ठौर भरि लेइ ॥^१

विद्वान् को अपनी विद्या विद्वानों के सम्मुख प्रकट करनी ही चाहिए । वही इस छे घन-मान प्राप्ति की प्राप्ति होती है वही विद्या का विकास भी । 'पद्मावत' में बाह्यसु बनिबाध व्याप-निगूहीत हीरामन मुकु से यों कहता है—

पण्डित हो तो सुनाबहु बेहू । बिम पूछे पाइम नहि लेहू ।

ही बाह्यसु भी पंडित कहू धापन पुन सोइ ।

पदे के सामे जो पढ़े हुन नाम तिहि होइ ॥^२ (आयसी)

बेद के प्रति इन कवियों के आदर का अनुमान श्रेष्ठ नबी की निम्नलिखित शीपाईं से उह्न ही हो जाता है—

बेद भेद जो मारय जइया, पंच हीराम लही छिन पइया ।

पैर बिहल सुनी सो कामा, पसु के अस बरी नर कामा ॥^३

विद्या बुद्धि की बननी है धीर विकसित बुद्धि सर्व बिध सफलताओं की । इसलिए इन काव्यों में बुद्धि का पुण्यवान भी यत्र-तत्र उपलब्ध होता है । 'पद्मावत' के शोचबाबल मुद पण्ड में शोच धीर बाबल बस की अपेक्षा बुद्धि के उत्कर्ष का यों उल्लेख करते हैं—

सुबुद्धि सों सत्ता सिप कहू माप । कुबुधि सिध बूझां परि हारा ॥^४

नूर मुहम्मद भी बुद्धि के अनेक गुणों के कारण उसे अपने काव्य का एक पात्र कल्पित कर उतकी महिमा को धसीम बठाते हैं—

बुद्धि-बल्लान-प्रंत की पार्वे मबुल काज जानि नित धारै ।

बुद्धि के पतें बल जो कोई, ताके काज सिरेयस होई ।

मनो बुद्धि समा 'जेहि बाठा कतहें बक बरने सुख-भाता ॥^५

धार्मिक नीति— इतिहासिक समय आयबेटी में सुरक्षित 'अलखिर छि अफनास पससुक्रिया नाम के इस्तिकबित ग्रंथ की समाप्ति पर सूझीमत की जो उम तीस संक्षिप्त परिभाषाएँ उपस्थित हैं उनमें प्रथम इस प्रकार है—

अखिल-सूझी मत का तात्पर्य सद्गुणों की प्राप्ति एवं दुर्वुणों का अन्नाह है ।^६

१ आयसी अम्बाबली पृष्ठ ५१

२ वही पृष्ठ ११

३ शोच नबी ज्ञान बीच, आयसी के परबती हिन्दी सूझी कवि धीर काव्य पृष्ठ ४२६

४ आयसी अम्बाबली, ६५ २८६

५ नूर मुहम्मद : अशुराम बाबुरो पृष्ठ ६

६ आयसी के परबती हिन्दी सूझीकवि धीर काव्य, पृष्ठ २२३

इस गुण को प्राथमिकता देने का आशय यही है कि सुश्रीमत् धर्म विषयों की अपेक्षा सद्व्युत्पी बनने का विशेष आग्रह करता है। यही कारण है कि सुश्री-काम्यों में सुखों के महत्त्व तथा सुखी की सार्वभिक प्रतिष्ठा का कई स्थलों पर उल्लेख मिलता है। आत्मन कहते हैं—

गुन देखें गुनिजन सुखी निर्गुन होइ अनु कोइ ।

राय रत सब बीज से, जो रं देठ गुन होइ ॥

ऊँच नीच पूछहि मंहि कोई । बँठहि सर्ना और गुनु होई ॥

धुनी पुरिय जो पर धुमि जाई । त्यों त्यों पहिगे मोस बिजाई ॥

जैसे पुत्रहि पामे माई । त्यों गुन रहै सदा सुखराई ॥

गुन बिन पुरिय पंज बिन पची । गुन बिन पुरिय धप क्यों धंसी ॥^१

सुखी होने के कारण इन कवियों का काम, शोच लोभ आदि पापों की पूर्ण तथा अप तप कर्म धर्म नेम आदि की प्रशंसा करना स्वाभाविक ही था परन्तु जो बात विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है वह है इनके काम्यों में यज्ञ कीति बुद्ध-संकल्प साहस बीरत्व जैसे आदि की स्तुति। इन कवियोंपित गुणों की वसावा के दो कारण हैं। प्रथम तो यह कि इन काम्यों के अरि-नायक प्रायः राजा लोग हैं जो अनेक विघ्न-बाधाओं के बदन-मर्दन के पदवात् ही प्रियतमार्थों की प्राप्ति में सफल होते हैं। द्वितीय यह कि प्रभु प्राप्ति के इच्छुक साधक को भी क्रम कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। उसे भी जैसे साहस आदि की उत्तनी ही अपेक्षा रहती है जिसकी प्रेमी पुष्पी-मार्तव्यों को। स्थियों के लिए इन साधकों में मरणा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अधिक न कह कर अपने कर्म के समर्थन में कतिपय पदों को उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा—

(क) निरुद्ध बला भरम जिउ जोई । साहस बहाँ सिद्धि तर्हें होई ॥^२ (जायसी)

(ख) तुइ बबला पनि । कुनुबि-बुधि जाने काहू कम्हार ।

बेहि पुबयहि द्विय बीर रस भाव तेहि न सिगार ॥^३ (जायसी)

(ग) तिरबो एक बार न धारं तिरत तिरत तिरबो गुन पाई ।

होइ साहसिउ साहस राखें, बबता होइ बाक के भाव ॥

या नर जा मग रायें पाऊ, गोनत पूरा होइ बटाऊ ।

पहसें बीजिउत बिधा दोही, बँत गुब कहवाव दोही ॥^४ (शूरमुहम्मद)

(घ) पनि सोई जब खोरति जायु । फूम मरे प मरे म बायु ॥^५ (जायसी)

१ आत्मन : भाष्यदानस कामकंदला, हिन्दी प्रमयापा काव्य संग्रह, पृष्ठ १२३

२ जायसी प्रमयावली, पृष्ठ ६२

३ वही, पृष्ठ २८४

४ शूरुराय बासुरी पृष्ठ २०

५ जायसी प्रमयावली, पृष्ठ ३०१

(क) सुन्दर मुख की बाँधिन, बाही लाय ।

साज बिना सुन्दरता कौनै काज ॥

साज सोना सुन्दरता को है, बा को मर्या सुन्दर तो है ॥' (सूर सुहस्रनाम)

(ख) जो नहि ऊपर छार न पर तो सहि यह तिसना नहि मरै ।^१

मनुष्य का दुर्गुणों से पूबक धीर गुणों से पूर्यं होगा ही पर्याप्त नहीं है । भाद्र-मान की प्राप्ति के लिए इन गुणों का यथा-स्थान तथा यथा-अवसर प्रकाशन भी आवश्यक है ।^२ इस नीति का उल्लेख 'पद्यावत' में यों किया गया है—

बाम्हन बाइ सुया सो पूछा । बहूँ गुनबंत कि निरगुन छूछा ।

बहु परबतै ! पुन लोहि पाह्यौ । गुन न छिपाइय हिरदय माह्यौ ।^३

पारिवारिक नीति—हम ऊपर कह चुके हैं कि हिन्दू-समाज में प्रचलित बाम्पत्य प्रेम की कजामों को सुखी सन्तों ने धार्मिक प्रेम का रंग देने का प्रयास किया है । उस सन्दर्भ की विद्यमानता में ही इन काव्यों के धम्मयत्न से यही प्रभाव पड़ता है कि बाम्पत्य प्रेम भी एक बढ़ा बरवान है वह धार्मिक प्रेम की प्राप्ति का साधन है और उसके बिना जीवन की पूर्णता असम्भव है ।

(क) 'सुहस्र बाजी पैस के ज्यों मार्बै त्यों खेल ।

तिस फूमहि के संप ज्यों होइ फुलापल खेल ॥' (जायसी)

(ख) 'अंजन' जो बस जगम से बिरह न कीया पाव ।

सूने घर का पाहुना ज्यों आवा त्यों आव ॥' (संझर)

वास्तव में इन काव्यों में प्रेम के विभिन्न चर्यों पर इतना अधिक उपयोगी और सुन्दर सिद्धा यथा है कि प्रेम-मन्य के प्रत्येक पाँच के लिए उसका अध्ययन बिलना उपयोगी है जतना ही हृदयहाथि भी । प्रेम में सुख का स्थान नहीं सुखर पदाब्ध भी प्रेमी के लिए दुःख प्रभियों के कष्ट प्रेमाशुचों की मूर्ख्यता प्रेम रोव की असाम्यता प्रेम का छिपाना अथवा प्रेम म दूरी का अभाव त्रियोग-बुद्ध बिल देना ही मूल अर्थ की अथवा प्रेम कमज धीर जस के समान बाहिए धार्मिक विषयों से इत क्षेत्र की व्यापकता और मासिकता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है । कुछ उदाहरण यन्तोऽनीय है—

१ अमुराग यानुरो पृष्ठ ७९

२ जायसी पम्पावनी पृष्ठ ३००

३ दे दे कौकिल मा मज मौजम किबिबुरम्बय बंभमरागम् । जो बेरबायिह को बाणीते, काकम्बाम्बकपिहिते बूठे । (सु० १० भा० पृष्ठ २९३, १३१)

४ जायसी पम्पावनी, पृष्ठ ३१

५ जायसी पम्पावनी ९३

६ 'मपुमासती', डा० कमल बुलमठ हिन्दी प्रेमाख्यातक काव्य (अनन्तर, १९३३ ई०) पृष्ठ ३१२

- (क) ओ जेहि रस नित है मकरंदी, ता भरघा सुनि होइ अगम्यी ।
 तपो तपस्या सन सुख पाव, मदिरा खात महुपहि माबे ॥
 विद्या रामी विद्या सुनै, फूस सनही फूस पुन ।
 जो पाको नग नाशन होइ, ता पुन सग भुव माने सोइ ॥^१ (नूर मुहम्मद)
- (ख) ओ सनेह मग पर पग रातें सो करेज को स्तवित जात ।
 जिय सों गब होइ ओ कोइ सो सनेह को पथिक होइ ।
 यह संदान न बीते पारे, अर्जुन घोर अस्त्र जहूँ डारै ।
 है सनेह के कठिन लड़ाई सकती पाइ लक्षण मरि जाई ॥^२ (नूर मुहम्मद)
- (ग) 'आत्म' से नर सुख्य मति, जे पर हंष मनु बंदि ।
 पुन सपति सख्या तबे, बुझ बिरहा सोइ बंदि ॥^३ (आत्म)

परन्तु प्रेममार्ग के ये कौटे सच्चे प्रेमी को पूरा प्रतीत होते हैं और वह अपने प्रेम को इसी जीबन तक सीमित न रख कर मरणानन्तर भी जीवित रखना चाहता है—
 का तो प्रीति सन मांह विसाई ? सोई प्रीति बिज साथ जो जाई ॥^४ (आत्म)

प्रेम की परिणति और माय को अमर रखने के लिए सन्ताप का होता प्रायः
 व्यक्त है । इसविषय आज कवि कहते हैं—

व्याह विना सन्ताप न हीई, पुनै नाम न ले है कोई ॥^५

वस्तुतः शम्पत्य-जीवन की सफलता सापत्य होने में ही निहित है—

(क) रज महीपति घर उजियारा । बालक दीप दिमा दीपियारा ॥^६

(ख) आत्मजा जो होत एक, होत लखन उजियार ।

अप्यमान बिहै घों, होते मुहुन हमार ॥^७ (नूर मुहम्मद)

इन काव्यों में पति-वली दोनों के ही वचनों का मयाप्रसंग उल्लेख मिलता है परन्तु जिस उच्च न पवित्र जीवन भी प्राप्ता पत्नी से भी जाती है पति से नहीं ।

१ अमुराग दीपुरी पृष्ठ १४ २२

२ बही, पृष्ठ २६

३ आपसलल कामकंदरता विक्रमसहायता पञ्च, हिन्दी प्रेमवाधा शब्द-संग्रह, पृष्ठ २०६

४ आत्म रंभावती, पृष्ठ २२

५ कथा उचितायर सीमन्तियान की, आत्म के परवर्ती हिन्दी सुधी कवि और काव्य पृष्ठ ४१४

६ ७ इन्द्रावती, स्वप्नसङ्घ कुंभर, हिन्दी प्रेमवाधा का काव्य संग्रह पृष्ठ ७३

पति का यह कर्तव्य तो निर्दिष्ट है^१ कि जिस स्त्री का उसने पाणिग्रहण किया है, उसकी जीवन-नीचा को पार पहुँचा दे परन्तु उसके यह ध्याया नहीं की जाती कि वह केवल उसी का हो कर रहे । पुराने ब्रह्मणे में इस विषय में पुत्रियों के प्रायः कभी धरने पर यह बल्लभ नहीं लगने दिया और वे सुखी काव्य भी उस नीति के दायकार नहीं है । एक पत्नी के रहते हुए भी नायक काव्य सुरूपवती स्त्रियों के समन्वार पाकर कामातुर हो उठते हैं और उन्हें पाने के लिए प्रथम पत्नी या पत्नियों माता-पिता तथा राज-कीय सुश्रेष्ठियों को सर्वप्रथम तिसांभसि दे देते हैं । हाँ इस बात के लिए वे कुछ सीमा तक प्रसन्न-मान प्रवश्य हैं कि मर्यादा पाकर वे प्रीड़ा का परिष्कार नहीं कर देते हैं— धरने स्नेह के कुछ कस्यों से उन बातकियों की तृप्ता भी प्राप्त रहते हैं । जब संश्रियत बाह्य से संतप्त नायकवती ने रत्नसेन को यह उपालम्भ दिया—

कहूँ हूँ तो तुम मो लों किएज और सोँ मेह ।

तुम मुझ बनके बीजूरी मोहि मुझ बरितै मेह ॥^२

तब रत्नसेन ने उस कष्टा को निम्नलिखित शब्दों से तुष्ट किया—

बाधमती तू पहिनि विपत्ती । कठिन प्रीति बाहै अस बाही ॥

बहुत बिनम भाव जो पीऊ । धनि न मिल धनि पाहूँ बीऊ ॥

पाहुँ लीहूँ पौड़ अब बीऊ । तज मिलहि जो होइ विछोऊ ॥

भलेहि सैत संघजल शीटा । जमुन जो साम नीर प्रति मीठा ॥

कोइ नेहु पाव भास के हेग । धनि धीरहि बरस-निरास न कैरा ॥^३

पत्नी के लिए पाठिष्ठ धर्म की सम्बाधीमता, की उच्छ्रब्धता के परिष्कार की तथा पति-सेवा धारि की प्रेरणा पय-पय पर प्राप्त होती है, परन्तु कदाचित् पुंस होने के कारण इन्हें धरने सजातीयों के लिए भी ऐसी ही बातें लिखने का साहस नहीं हुआ । पत्नी के कर्तव्यों के सम्बन्ध में जायसी लिखते हैं—

(क) रही जो पिय के धायमु धी बरतै होइ हीन ।

सोई बहि धर निरमल, बनन न होइ समीन ॥^४

(ख) जो न कंत के धायमु यहीं । कौन भरोस नारि के बाही ?^५

राजाधों की कथाधों में सम्राजों का बर्णन स्वाभाविक ही है और उनके लिए हृषी पर सिर रख कर सड़ने बालों की धारण्यकता होती है । इसलिये स्त्रियों को सिद्ध-सङ्घ सुतों को अन्व देने की प्रेरणा भी दिखाई देती है । कवि सामग्य कहते हैं—

१ का संग क्याहूँ होत अग माहीं, संघ विबाहूँ ली बरि बाहीं ॥

बनन संबाती होन ली का से संग यियाहूँ ।

अस पर तस धेयव धन को दरे निबाहूँ । (बुर मुहम्मद इन्द्रावती, महान पंड
हिन्दी प्रेम नाचा काव्य संग्रह पृष्ठ १०६)

२ इ जायसी संघावली पृष्ठ १०६

३ जायसी संघावली पृष्ठ ३७

४ वही पृष्ठ ३३

सिंहनि ऐसी पूत बनि, पर रन मंडहि धाइ ।

कुम्भ बिहारन राज बलन प्रबरन मंडे जाइ ॥

सिंहनि ऐसी पूत बनि सिंह बिहारन जोप ।

पर मुरा रन मायना जिन स हूँसे ये सोप ॥'

इन काव्यों में माता-पिता के सम्मान पर उपकारों तथा सम्मान के उनके प्रति कर्तव्यों का भी प्रसंगबद्ध उल्लेख किया गया है। 'मनुष्यग वासुदे' में जब नायक (मन्थ करण) सर्वमंपसा को पाने के लिए प्रस्थान करने लगा तब माता के निषेध करने पर उसने जनकों के वात्सल्य तथा उनके प्रति मन्दा का बर्णन यों किया—

मात पिता बापा की छाहँ पाएउ सुख मिल मया निबाहुँ ॥

जो पितु मानु मया बस गार्डे, हारे रतना ब्रह्म म पार्डे ॥

जहाँ रहीं तहँ सिमरीं गार्डे, धायसु मेदि कहीं मैं जाई ॥

मात पिता पग पैनु, वैइ बृग जोति ।

बोळ मम के कठें, मुकति म होति ॥'

यही नहीं नूर मुहम्मद ने माता-पिता की सेवा को ईस्वीय धारणा कहा है—

मात-पिता लग करहु भलाई करता की याका अस आई ॥

जो अपने धामे बिभ्रिं। उम्हें बात उह माको माहीं ॥

घोर न कीजे जाहँ निदासु। उन मिल मांगु सरय सुख बासु ॥'

माता-जीवन के दो भाग होते हैं। प्रथम माय माता-पिता के पर व्यतीत होना

है द्वितीय समुदाय में। जो वात्सल्य घोर स्वतंत्रता कन्या को पितृगृह में सुलभ होती है उम्हें वह जीवन भर स्मरण किया करती है। उन के जीवन का द्वितीय भाग अनिश्चित होता है। सात-नव के उपासना तथा पति-निश्चित बन्धन उस के हृदय को प्रायः व्यथित करते रहते हैं। चायसी नै दोनों धरन्धराओं का सुन्दर उल्लेख किया है। पद्यावत' के भागसरोवरक खण्ड में जब पद्मावती स्व सखियों के सहित सरोवर तीर पर जाती है तब सखियाँ कहती हैं—

ए रात्री । मग बेसु बिचारी । एहि नेहर रहना दिन चारी ॥

जो सयि बहै पिता कए रामु । जेलि लेहु जो सेलहु धामु ॥

पुनि सागुर हम पवनब कासी । कित हम कित यह सरवरपाली ॥

सासु ननर जोलिह बिज कैही । बावन सपुर म मिसरें बैही ॥

१ धायसु मायबानस कामबंदना पुढ अड, हिन्दी प्रमगाया वाप्यबंद, पृष्ठ १२३, २२५

२ नूरमुहम्मद मनुष्यग वासुदे, पृष्ठ ३६

३ नूरमुहम्मद इग़ाबती, चायसी के परपत्नी हिन्दी सूठी कवि घोर वाप्य, पृष्ठ ४८१

पति का यह कर्तव्य तो निश्चित है कि जिस स्त्री का उसने पाण्डित्य किया है, उसकी बीचन-संवा को पार पहुँचा दे परन्तु उससे यह आशा नहीं की जाती कि वह केवल उसी का हो कर रहे। पुराने जमान में इस विषय में पुरुषों ने प्रायः कभी अपने पर यह आश्रय नहीं करने दिया और वे सूझी काम्य में उस मीथि के अग्रवाद नहीं हैं। एक पत्नी के रहते हुए भी नान्यक अन्व सुदृढवती स्त्रियों के समाचार पाकर कामासुर ही चले हैं और उन्हें पाने के लिए प्रथम पत्नी का पल्लियों माता-पिता तथा राज-कीय मुखैश्वर्यों को सहर्ष विमोक्षित दे देते हैं। ही इस बात के लिए ब कुछ सीमा तक प्रसंसा-पात्र अवश्य है कि नबोड़ा पाकर वे प्रौढ़ा का परिष्कार नहीं कर देते हैं— अपने स्नेह के कुछ कारणों से उन जातिकियों की रूपा भी प्राप्त रखते हैं। जब वीतिथर बाहू से संतप्त मापमती ने एलसेन को यह उपानम्य दिया—

काहू हँसी तम मो सीं किएज और सीं मेह ।

तुम मुख जमकें बीबूटी मोहि मुख बरिते मेह ॥^१

तब एलसेन ने उस स्त्रिया को निम्नलिखित शब्दों से तुष्ट किया—

मापमती तू बहिनियियाही । कठिन प्रीति बाहू बस बाही ॥

बहुते विगत धाम जो पीऊ । पनि न मिले पनि पाहन बीऊ ॥

पाहन सोहू पीऊ जय बीऊ । तेज निरहि जो हीह बिछोऊ ॥

जनेहि सेत पयजल बीठा । जमून जो साम नीर प्रति मीठा ॥

कोह कैहू पास पास के हेव । पनि मोहि बरत-निरास न केव ॥^२

पत्नी के लिए पाण्डित्य धर्म की सम्बाधीसता की उन्मुखता के परिष्कार की तथा बहि-संवा आदि की प्रेरणा पत्र-पत्र पर प्राप्त होती है, परन्तु कदाचित् पुरुष होने के कारण इन्हें अपने सजातीयों के लिए भी ऐसी ही बाते लिखने का साहस नहीं हुआ। पत्नी के कर्तव्यों के सम्बन्ध में वापसी लिखते हैं—

(क) रही जो पिय के भायसु धी बरतै होइ हीन ।

छोई यदि धरत निरमल, जतम न होइ मलीन ॥^३

(ख) जो न केश के भावसु भाहीं । कीन भरोस मारि के बाही ?^४

राजाधों की कथाओं में सदाओं का बखाने स्वाभाविक ही है और उनके लिए हमेशा पर चिर रस कर मङ्गने वालों की प्राथम्यकता होती है। इसलिए स्त्रियों को निम्न-सदृश सुतों को जन्म देने की प्रेरणा भी दिखाई देती है। कवि प्रथम कहते हैं—

१ का संघ ब्याहू होत जय भाहूँ, पंच निबाहूत सो परि बाहूँ ॥

जतम संघाती होत सो जा के जंग विवाह ।

जस परे तस संवर्ष धन को धरे निबाहू । (नूर मुहम्मद इम्ब्राबती, महान जय, हिंदी प्रथम पात्र काव्य संग्रह, पृष्ठ १०६)

२, ३ वापसी संवावली पृष्ठ १८६

४ वापसी संवावली पृष्ठ ३०

५ बाही पृष्ठ ३२

सिद्धि ऐसी पुत जति पर रत्न मंडहि जाइ ।
 कुम्भ बिहारन पज बलन, प्रबलन मंडे जाइ ॥
 सिद्धि ऐसी पुत जति, सिद्ध बिहारन जोग ।
 घर मूरा रत्न मायना जिन त होते ये सोप ॥^१

इन काव्यों में माता-पिता के सन्तान पर उपकारों तथा सन्तान के उनके प्रति कर्तव्यों का भी प्रसंगिक उल्लेख किया गया है। पशुपति ब्रह्मरूप में जब मायक (प्रकृत करण) सर्वमंगला को पाने के लिए प्रस्थान करने लगा तब माता के निषेध करने पर उसने जनकों के वात्सल्य तथा उनके प्रति भद्रा का वर्णन यों किया—

मात पिता बापा की छाहूँ, पाएउ सुख नित मया निबाहूँ ॥
 जो पितु मातु मया जस पाऊँ, हारे रसना भक्त म पाऊँ ॥
 जहाँ एहो तहें सिमरीं नाऊँ, भायसु मेदि कहां में बाऊँ ॥
 मात पिता पम रेनु, बेइ दुग जोति ।
 ब्रह्म मन के कठे, मुक्ति न होति ॥^२

यही नहीं नूर मुहम्मद ने माता-पिता की सेवा को ईश्वरीय धार्मिक कहा है—

मात-पिता सग करहु भसाही करता की धाआ भक्त धाई ॥
 जो अपने प्रागे बिपहिं। उन्हें बात उह भाली नाहो ॥
 धीर न कीजे उन्हें निरामा उन नित भांगु सरप मुल बासु ॥^३

माता-जीवन के दो भाग होते हैं। प्रथम भाग माता-पिता क पर श्रद्धा हाता है द्वितीय समुदाय में। जो बाल्यस्य धीर स्वतंत्रता कस्या को विद्वृद्ध में मुमन होती है उन्हें वह जीवन भर स्मरण किया कर्णी है। उस क जीवन का द्वितीय भाग अनिश्चित होता है। साधु-नगर क उपास्य तथा पति-निर्दिष्ट कपन उम के हृदय को प्रायः व्यथित करते रहते हैं। जायसी ने दोनों प्रकल्पों का सुन्दर उल्लेख किया है। 'पपावत' के मातपुत्रक लाल में जब पद्मावती स्व मन्त्रियों क मन्त्रित साधु धीर पर जाती है तब अकिला कहती है—

ए रानी । मन बेसु बिचारी । एहि नहूँ उता हिन बारी ॥
 जो लवि प्रहूँ निता कर रासु । जेनि नेतु सो बानु छातु ॥
 पुनि साधु रहम नदनब कानी । छिद्र इन छिद्र पर नानदरणी ॥
 सासु ननर बोनिहूँ जिह देखीं । बालन प्रभूर न निग देखीं ॥

१ प्राशन मायकजन कायकरका एउ सत, द्विती प्रकृत कल्पवृक्ष, १८०३, २२३

२ पुरुषुहम्मद पशुपति ब्रह्मरूप, पृष्ठ ३६

३ पुरुषुहम्मद इत्यादनी काव्य क जहनी निरुद्ध मुक्ति कवि कवि कल्प, पृष्ठ १८३

इसीलिए जीवन में पित्रों के सुनाव के समय धीर परवान् भी महावित्र की
बहुराम के लिए उसमान-निबिष्ट यह गुर विशेष उपयोगी है—

वो मूज पर देवुन बहै, महामिम है सोद ।
ताको मित्र न जानिये, ऐगुन राखै सोद ॥^१

समाज में स्त्री का स्थान भी भादरणीय नहीं दिखाई देता । उसको मान
प्रतिष्ठा उसके सौन्दर्य पर ही प्रबलम्बित दिखाई देती है । यह गया तो वह भी गई ।
इस सम्बन्ध में दोस नबी कहते हैं—

त्रिय जीवन बस नर की पानी, उतरि गये को मेघ घानी ।
तिरिया जाति रूप की नाई बिमसे बहुरि सबाह न पाई ॥
तिरिया कंबस एम सम सूता, पानी मये न तो रय फूला ।
तिरिया कबलि रंभ की नाई एक बार दर होइ निदि नाई ॥
तिरिया जादिक यासन जैसे पाए छुति रसोई न पसे ।
तिरिया बस माटी की यगरी माहुर बूँद पछ पन बिगरी ॥
घोगुन मरी तो तिरिया तता गुन धपार ।
संत करहु पित भीतर, जा पुरबहि करतार ॥^२

स्त्री के मन को छस-कपट से पूरा नह्रा गया है और उससे सावधान रहने की
प्रेरणा की गई है—

तिरिया बरित न कीन्ह बिबारा, तिरिया मते बूड़ संसारा ॥
तिरिया बल भेह धाग लपाब तिरिया सुये नाब बसाब ॥
तिरिया छार पुरय मुख मेसे तिरिया छस नाटक(?) जैसे ॥^३
उसका मन ही कपटी नहीं बुद्धि भी मर कही गई है—
मते बंदि बाबल धी मोरा । सो मत कीब पर नहि मोरा ।
पुरय न करहि नारिमति कीबी । उस नोपाबा कीन्ह न कीबी ॥^४

समाज में व्यक्तियों को उगची योग्यता बिधा सम्पत्ता धारि के समुहार ही
स्थान दिया जाना चाहिए 'घबेर नयरी बीपट राजा टके सेर मानी टके सेर
बाबा' की नीति प्रथम नहीं मानी जा सकती । गुर मुहम्मद के शब्दों में इसका प्रति-
पादन यों हुआ है—

जो बतो तेहि तसी बहिय टोर ।

उसम फूस होत है, सिर की घोर ॥^५

१ गुरमुहम्मद इनायती काजसी के परबतों • पृष्ठ ४८१ ४८२

२ दीवानबी जामरीन बही पृष्ठ ४२८

३ कासिमशाह हस जनाहुर (नबतलिघोर प्रठ लखनऊ, १९१७ ई०) पृष्ठ १०३

४ बापसी प्रयागजी, पृष्ठ २८३

५ गुरमुहम्मद : समुराय बामुरी पृष्ठ ६३

समाज में विभिन्न गुणों के आकार पर उत्तम मध्यम धनम जनों का विधा-
यन अस्वामयिक नहीं कहा जा सकता । परन्तु इसका आशय यह नहीं कि उत्तम लोग
बर्षान्ध हो कर छोटी से बूणा करें । वस्तुतः उत्तम नहीं है जो छोटी को अपने श्रीधर्य
से इतकृत्य करे । प्रिया की ब्या का अभिसारी अन्त-करण पत्र में मिलता है—

कमल आम-बापा लें फूला, ना तु रबि कहीं कहीं यह फूला ॥

फूल कुमुद बंध की बाया गा तो फही कुमुद को काया ॥

पसुहै भरती तेहि बाया लों, ना तो का पुन-रूप रसा लों ॥

उत्तम होंहि धनम पर, धाय बयाल ।

मन को पुकन कंधार्ये बाया-बास ॥^१

समाज-प्रिय मागव किसी-न-किसी की संगति में तो रहता ही है परन्तु उच्चता
उस ही उपसम्प्य हाथी है जो अर्थों से मेम-बोस रहता है । पदमावत^२ में जब हीरामन
ने उच्च सिद्ध-दुर्ग को पदमावती का निवास-स्वान बतया तब उत्तम ने उत्साह
पूर्वक कहा—

पुरुषहि चाहिये अंच द्विधा । विम-विम अंचे राखी पाऊ ॥

छा अंच परे सेइय पाए । अंचे छी कीजिय बेच्छारा ॥

अंचे अई अंच पाव सुम्हा । अंचे पास अंच मति सुम्हा ॥

अंचे संग सपति निति कीर्त । अंचे काब जीउ पुनि कीर्त ॥

दिल विम अंच होइ सो बेहि अंचे पर पाउ ।

अंचे चहुत सो छति परे अंच न छपिय काउ ॥^३

कूर पड़ोसी के कारण सज्जन का जीवन दुःखमय हो जाता है इस नीति को
हीरामन पद्मावती के सम्मुख प्रकट कर राजरूप के कारण नहीं से विदा होना
चाहता है—

मारि सोइ निसोपा करे न भयभे सोस ।

केरा केलि करे का ली जा बैरि परोस ॥^४

ऐसे प्रतीत होता है कि उन दिनों अनेक लोग यागियों का बेप सो कारण कर
लेते थे परन्तु होते थे वस्तुतः बहुला जगत् । यही कारण है कि इन कवियों ने जगत्
को बेस-आरियों से छतर्क किया और सन्धे उपस्थितों के लिए बेप को अनावश्यक
टहटाया । वेदान्त-वृत्त शास्त्रीय में रसाक, राम सुन्दर को भीयों से सावधान
रहने की प्रेरणा करते हैं—

(क) भोगी भयल रूप तब रह्यौं फह्यौं अमर कुछ अमरे कर्यौं ।

भोगी नहिं अत्य पतिपाइय, अहं देवी तहं मारि अहाइय ।

१ कूर मुद्गम्बर : अमुराग वासुदेवी, पृष्ठ ७०

२ बायसी प्रेमापत्नी पृष्ठ १९

३ पही, पृष्ठ २१

जोनी छलत फिरहि संसारा हाय धँयारि साइ मुय छारा ॥

जोनिहि नहि पत्रिप्राइय, ईडिय पात न बौरि ।

बैई भीयि मँपाइके, बठे बेइ न पोरि ॥^१

(घ) तपी न होहि भेस क फिन्हें रंग-कुस मासा के सिन्हें ।

उज्जल दास घोष भल जोग, रहैं टिपान न जोग्हें सोपू ॥

दुविरत ध्यान राति बिन बाहैं इहै तपस्या पूज प्राहैं ॥^२

अब सत्रासीय सोम परम्पर भिजते हैं तो स्वभावतः व्यवसाय-विषयक चर्चा
अस ही पड़ती है । अंत 'पपावत' में द्वाइयाग हीरामन से प्रकृता है ।

हम तुम जाति परामूल बोळ । जातिहि जाति पूळ सब बोळ ।

पंडित ही ली दुनापहु बेहु । बिशु पूछे पाइय नहि भेहु ॥^३

बैसे ही 'आनदीप' में जब बबजानी का सरहट बासी से आनदीप प्रभावित
हुया सब योग नहीं ले मिला—

पन्डित पन्डित मिल जो कोई बहुत सवार बात कर होई ॥^४

उस दुम में सेबक स्वामी के सिर पर सवार न थे । स्वामी के माथे पर बस
पड़त ही उनके प्राण दुष्क होन लयत थे और उन्हें जान बचा कर भागन में कुशल
सोम दिखाई देता था । जब रत्नधन ने हीरामन दुष्क के बभ का आवेण दिया सब भीठ
बसत दुष्क ने पपावती से कहा—

ठाकुर कंत अहैं दिहि मारा । तेहि सेबक कर कहुँ उबारा ?^५

उना का प्राण-पण से हित करना अभिय बन अपना परम कर्तव्य मानते थे ।
जब स्वामी विपद्ग्रस्त होता था सब सेबकों को घर-बार ब वाग्ग्य मुक्त हेम प्रतीत होते
थे । स्वामिभ्रात्र की प्राणयिकता ही जाती थी । 'पपावत' के गोरु-बाएन मुठयाबा बंड
में जब पत्नी ने बाइस को मुठ में जाने से रकने को कहा तब बाइस ने यों उत्तर दिया—

जो तुइ गबन धाइ बपगामी गबन मोर अहैंवाँ मोर स्वामी ॥

जो लयि रात्रा छुटि न धाबा । मार्ब बीर तिगार न भावा ॥

तिटिया दुमि पाइय बँ बेरी । बीठ जो पडग होइ तेहि करी ॥

तेहि पर पडग योंछ तेहि पाड़ी । जहाँ न बडग योंछ नहि बाड़ी ॥

तब महुँ-मोंछ पीठ पर खेतों । स्वामि कात्र इग्रासन पैतों ॥^६

१ आयसी के परपती हिन्दी सूती कवि घोर काव्य, पृष्ठ ४२६

२ धूम्रुद्धमरु अत्रुराम बाँसुरी पृष्ठ ३२

३ आयसी प्रंयादती पृष्ठ ३१

४ आयसी के परपती हिन्दी सूती कवि घोर काव्य, पृष्ठ ४२७

५ आयसी प्रंयावती, पृष्ठ २१

६ वही, पृष्ठ २८४

इन काम्यों में बीसे तो उज्ज्वल चरित्र को ही नीति कहा गया है परन्तु जब पाता कपटी अनु से पक जाए और मन से काम न बने तो छत्र-पुर्ण व्यवहार को ही प्रयोग कहा है। जब मपनों ने रत्नसेन को उस से यन्त्री बना लिया तो गोर-बाबल ने सोचा—

अस तुरन्त राजा घर जाना । तस हन साजि छोड़ावहि राजा ॥

पुख तहाँ वे करे घर, लहें बर किए न प्रादि ।

बहाँ पून तहाँ पून है, बहाँ कादि तहू लीट ॥^१

इसी प्रकार इन काम्यों में उज्ज्वल प्रकार कवचसे भी उपकार करते हैं^२ दया तथा प्रेम सब को बचीभूत कर लेते हैं अपना दुःख सहस्य पर ही प्रकट करना चाहिए^३ उज्ज्वल कंचन है धीर दुर्जन मिट्टी^४ आदि अनेक धार्मिक विषयों पर सुबर पद्य उपलब्ध होते हैं। अर्थ में उन सब व्यक्तियों का उल्लेख कर इस प्रकारण को समाप्त करते हैं जिन पर विश्वास करना विपणनक कहा गया है। कवि धारम का कथन है—

राजा मिया सुनारि, बिडिया रोक्य प्राति अनु ।

पौसा सापिन हारि, ए बस होइ न प्रापने ॥^५

धार्मिक नीति—सूफ़ी प्रभुप्रेमी ने धीर इनकी दृष्टि में निर्भयता का विशेष महत्व था^६। ब्रह्मचर्य अस्मद् धन कुरेसी के मत में तो सर्वस्व ही प्रभु को अर्पित कर देना चाहिए जिसे से अपने पास कुछ भी न रहे।^७ फिर भी इन प्रेमकथानकों में प्रसन्न-मन कई पानों के मुक्त से मन की महिमा का कहीं-कहीं वर्णन करवाया गया है। इन काम्यों में धन-सम्पत्ती अनेक प्रसंगों के अध्ययन से सामूहिक रूप से जो प्रभाव पड़ता है वह यह है कि धन कोई विशेष आदरणीय पदार्थ नहीं है। इसके उपार्जन में अनुचित साधनों का व्यवहार अनिष्ट है। इसका लोभ न करना चाहिए और धन-सुख आदि कायों में इसका अत्यन्त ही श्रेयस्कर है।

पश्चात्त में जब रत्नसेन असपोत पर धाकड़ होकर स्वयं को बीटने लगा तो मित्तु-बेपवादी अनु ने उससे कुछ बात मीया। तब उसकी साधना को विफल करते हुए रत्नसेन ने धन का महत्व जो बखित किया—

१ आससी प्रभावसी पृष्ठ २८०

२ बही मुमिका, पृष्ठ १०२

३ आससी प्रभावसी पृष्ठ १४६

४, बही पृष्ठ ९८६

५ भाषाभाषन कामकंचन हिन्दी प्रमयाशास्त्र संस्कृत, पृष्ठ १६२

६ सरदार इकवास अलीयाहू : इस्लामिक सुफ़िज्म, पृष्ठ २४२

७ मार्गरेट स्मिथ एडवोड इन धर्मो मिस्टिफिकेशन (इन नियर ऐंड मिडिल ईस्ट)

पृष्ठ ६

- (क) सोई पुण्य कर्य जेइ सेतो । बरबहि तें सुनु बाते एतो ॥
 बरब तें परव कर जे चाहा । बरब तें परती सरा बसाहा ॥
 बरब ते हाव पाव कपितासु । बरब तें प्रछरी बरि न पासु ॥
 बरब तें निरयुत होइ गुनबता । बरब से कुबज होइ कपवता ॥
 बरब रहे मुई बिये सिसारा । प्रस मन बरब देइ को पारा ? ॥
 बरब तें परम परम प्री राबा । बरब तें सुख बुद्धि प्रस गाबा ॥^१
- (घ) बरबहि ते यहू राम पसारा । बरब लागि कय पाइ सोहारा ॥^२

(उत्तमान)

यद्यपि इम्य की उन्मुक्त महिमा में कुछ अस्पृशित प्रतीत नहीं होती सो भी सुधी कवि सोम सुखजोरी पाठी-हरण धारि न द्रव्योपपय का निषेध ही करते हैं क्योंकि अन्ततः ये बातें मनुष्य के अन्न-पचन का ही हेतु बनती हैं । ग्लान का रोक के इम्य से दुष्ट बेश कर जायसी सोम तथा इम्योपपय के दोष बिताने हैं—

- बरब तें परव, सोम बियनुरी । बस न रहे सत होइ बुरी ।
 बस सत हैं, कुनी भाई । बस न रहे, सत प पाई ॥
 जहाँ सोम तहें पाप सँघाती । सधि के मरे प्रान कँ पाती ॥
 काहू बौर काहू भा राहू । काहू अन्त बिय मा काहू ॥^३

पूतघोर व्यक्ति परबदा पापमन्त्र, सत्यविहीन ही नहीं हो पाते अपन स्वामी क कार्य को भी हानि पहुँचाते हैं—

- (क) सीन्हू पंदोर हाव जेहि बीड बोन्हू देखि हाव ।
 जहाँ बसायें तहें बस केरे फिरे न भाव ॥
 सोम पाप के मरी पंकोच । सत न रहे हाव जो मोच ॥
 जहें पंकोर तहें भीर न राहू । टापुर केर बिना सँ काहू ॥^४

- (घ) सासब बाँधा सय सँसारा । सासब सीं मुहु होय पहारा ।
 सासब हस्ती कर बस हरा । सासब सीं हजानुदा परा ॥^५

(उत्तमान । विभावली)

पाठी-रथा के सम्बन्ध में कामिनिसाह 'श्रेय जबाहर' य कहते हैं—

- जो पाती काहू सीं नाने प्रानुइ पाव न लाही पासे ।
 जो पाती पाती न परई नान उतर ताहि को करई ॥

१ कावली संवावली पृष्ठ १७२

२ बिजावली, कावली के परवर्ती हिन्दी सूत्री कवि और काव्य पृष्ठ २६१

३ कावली संवावली पृष्ठ १७१

४ बही पृष्ठ २८७

५ कावली के परवर्ती हिन्दी सूत्री कवि और काव्य पृष्ठ २६१

को पाती हूँ पर माही डर तो डारा कर लेहि माही ॥^१

वन की निवा का एक धर्म्य कारण यह भी है कि मनुष्य सम्पन्न होने पर सप्टा को विस्मृत कर देता है। जायसी का मत है—

तो सहि सोप बिछोह का, भोजन परा न पेठ ।

धुनि बिसरन भा सुमिरना जब संपति पै भेट ॥^२

वन की तीन प्रकृतियाँ होती हैं—भोग बान धीर माध^३ । नूरमुहम्मद ने पुण्योपाजित सम्पदा का मितव्ययिता-पूर्वक विनिमुक्त करने की प्रेरणा यों की है—

पद बाहर जेह पाँव पसारा । जाड़ा कठिन धँत लेहि मारा ॥^४

इन काव्यों में दाम का महत्त्व मात्रा पात्रादि पर सकिन्तु प्रकाश ज्ञाना पया है। दिया हुआ दान वाचक का तो कल्याण करता ही है लोक-परमोक में दाता के लिए भी कई गुना हितकर होता है। पचावत में रत्नसेन राधा गजपति से कहते हैं—

धनि जीवन धीं ताकर दिया । जेव जगत मई जा कर बीबा ॥

दिया जो रूप तप सब उपराही । दिया बराबर जग किछु माही ॥

एक दिया ते बस गुन जहा । दिया धेपि सय जय मुख जहा ॥

दिया करे भागे जदियारा । जहाँ न दिया तहाँ धँपियारा ॥

दिया मंदिर निसि करे धजोरा । दिया नाहि पर भूछहि चोरा ।

हाठिन करल दिया जो तिला । दिया रहा धर्महु मई तिजा ॥

दिया तो काध बुधो जग धावा । दहाँ जो दिया उहाँ सय पावा ॥

निरमल रस कीलु तेह जेह है दिया किछु हाव

किछु न कोह लेह जादहि, दिया जाँ रे साव ॥^५

बैस तो प्राणण भोट भिक्षुक धादि पात्रों का जितना दान दिया जाय सम्पदा है परन्तु दान का वासीतपो माग ता वैस ही है। भिक्षुक-वेपी सागर इतने ही धर्म के लिए गन्तम से प्राणी है—

जातिव धंस दरय जहँ, एक धंस तहँ मोर ।

नाहि त परे कि कूँ को निसि भूछहि चार ॥^६

यों भोग न धम का सम्बन्ध भाग करते हैं न दान-पुण्य उत्तरी जीवन-नीचा तो नामागर न भूती ही है। जायसी कहते हैं—

१ 'जायसी के परपत्नी' पृष्ठ २११

२ 'जायसी संवाचनी' पृष्ठ २६

३ 'रत्न-पयम्' पृष्ठ २०१३४

४ 'जायसी के परपत्नी' पृष्ठ ४८०

५ 'जायसी संवाचनी' पृष्ठ ६१

६ 'जायसी संवाचनी, पृष्ठ १७२

हरब-भार संग काटु न जटा । खेइ सेता ताही सो पटा ।

गहे पञ्चान पत्त नहि उड़ । 'मोर मोर' जो करै सो बुड़े ॥

हरय जो जानहि प्रापता भुलहि परब मनाहि ।

जो रे जटाइ न खेइ सके, बोरि बसे जल माहि ॥^१

इतरप्राणि विषयक नीति—प्रेमकाम्यों में पशु-पक्षियों की बर्त्ता अनेक प्रसर्गों में हुई है। पधावत^१ में हीरामन ठोठा राजा रत्नसन और पधावती के पारिप्रेक्ष्य में सहायक हुआ। 'इन्द्रावती' में जब राजकुंवर दुर्जनराय द्वारा बंदी बना लिया गया तब उसने ठोठे ठाण ही अपने बन्दी होने का समाचार इन्द्रावती के पास पहुँचाया। अनुराग बाँसुरी^२ में भी सनेहगुह ने नायक अन्त-करण के साहाय्यार्थ उनदेसी नाम के मुक को साथ भेज दिया। 'चित्रावती' में जब मुजान नेत्रहीन होकर बीहड़ पग में घटक रहा था तब एक जनमानुष के बिये हुए अन्न के प्रयोग से उसके नयन पूर्ववत् ज्योतिपूख हो गये। इस प्रकार प्रायः तो पशु-पक्षी कथा-पार्श्वों से सहायुभूति ही प्रकट करते हैं परन्तु कहीं-कहीं कथा में अमत्कार धान या नायक की बीरता अभ्यन्त करन के लिए उन्हें विभ्रजायी भी विभिन किया गया है जैसे चित्रावती में अन्नमर मुजान को निगल जाटा है परन्तु उसके बिरह-ताप से तप्त होकर उपम देता है। इसी कथा में एक पक्षी नायक की मस्त हाथी से रखा करता है। जैसे ये प्राणी पार्श्वों के प्रति सहायुभूति रखते हैं वैसे ही कवियण भी इनके प्रति ब्यामुता का उपवेग ही देन हैं। यद्यपि राजाओं की कर्बाएँ होने के कारण इनमें घाबरे का उल्लेख हुआ है तो भी इन कवियों ने अहिमा का विधान तथा मंसमलण का निषेध किया है। 'पधावत' का निम्नलिखित ब्राह्मण-व्याख-संवाद इसी बात का समर्पन करता है—

मुनि बाम्हन बित्ता बित्तिहाक । करि पदगिह कहुं भया न मारु ॥

निठर होई जिउ बपसि पराबा । हत्या केर न तोहि डर घाबा ॥

कहुसि पंखि का बोल जनाबा । निठर तेइ जे परमस छाबा ॥

घाबहि रोइ बसत पुनि रोना । तबहुं न तबहि भोग मुख सोना ।

जो जानहि तन होइहि नासु । पोछे मांसु पराये मांसु ॥

जो न होहि अस परमस-प्रासु । नित पदगिह कहुं पर बियासु ॥

जो ब्यापा नित पदगिह मरई । सो बबत मन सोन न करई ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि जीव-हत्या के वास्तविक अपराधी मान-भयक सोय नहे गये हैं ब्याब नहीं क्योंकि उन्हीं की उदर-पूर्ति के रमना की धाम्नि के लिए बहेमिये निरीह पशु-पक्षियों के प्राणों के ग्राहक बनते हैं।

निधित नीति—राजाओं की प्रेमकथाओं द्वारा प्रभु प्रेम का प्रतिपादन होन के

१ जायसी प्रयावती पृष्ठ १७३

२ जायसी प्रयावती पृष्ठ ३१

कारण सूक्ष्म प्रेमकाव्यों में प्रेम का स्वरूप गुण धीरे प्राप्तिसाधन तथा राजा मंत्री आदि के कर्तव्यों की पर्याप्त जर्षा उपलब्ध होती है परन्तु ये विषय हमारे विवेक्य क्षेत्र से बाहर हैं अतः इन विषयों में हम मौन रहना ही उचित समझते हैं।

संसार—सूक्ष्म मठ के अनुसार यह संसार सत्य नहीं है मिथ्या है। यह स्वप्न के समान है छाया के तुल्य है बोधे की टट्टी है समझदार मनुष्य इसके फेर में नहीं पड़ते^१। इसीलिए सूक्ष्म-कवियों के प्रेमकाव्यों में भी इसी नीति का उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे—

(क) 'कामपाव' जगजया, सपन-समान ।

दुःख-दरिद्र-मुष-संपति, धाद निदान ॥' (नूरमुहम्मद)

(ख) छाया बेति मूल नेच हेरा, करै न छाया की बिति केरा ।

हम छाया पर भुल दिन धी रात ।

मरम बीब हा । बीबन, बीतो जाता ॥^२ (नूरमुहम्मद)

(ग) 'कामिम' जदत जाल सय घोसा । जो जप भुस गयो सो घोसा ॥

घोसा पगल फिर बिन राती । घोसा बेखि बलपसा भति ॥

घोसा गवर कोटि घर धारा । घोसा इष्य धीर रूप सिगारा ॥

घोसा राज काम सुत भोग । घोसा सब लक्षण कुत भोग ॥^३

प्रम-रूप इस संसार के पहाड़ों से विरक्त तथा सत्य-रूप प्रभु पर अनुरक्त करने के लिए इन कवियों ने मृत्यु की अनिवायता का उल्लेख करते हुए काम-नयाके की ध्वनि को सुनने के लिए सब को स्वप्न-स्वप्न पर सचेत किया है—

(क) बत दुवार केहि पीअर माहा । कते बाप नजारी पाहाँ ?^४ (बायसी)

(ख) कोइ दिन बस भागे कोइ पाछे । है नित काम सो काठे-काठे ॥

बे कोइ जनम सीगु जग माहीं । सो जाग्यो एक दिन है माहीं ॥^५ (निसार)

(ग) यजे नमारा कृष का करहु सुपेत संसार ।

प्रयम यंय साधी नहीं केहि बिधि उत्तरब पार ।^६ (निसार)

पुनर्जन्म—जातमात्र का निदान ता धरत्यन्त्रावी है परन्तु विबंयत का पुनर्जन्म भी धारस्यक है या नहीं इस विषय में सूक्तियों का मत स्पष्ट है। वे धन्य मुसलमानों

१ भारपेरट तिमय धरतपञ्चासी दि मिस्त्रिक पृष्ठ १२६

२ नूर मुहम्मद अमुराय बीनुरो पृष्ठ २८

३ वहीं, पृष्ठ ६६

४ कामिमग्रहः हंस लबाहर, पृष्ठ २७१

५ बायसी प्रंभावली, पृष्ठ ३६

६ निसार : मुमुक्त दुःखा हिन्दी प्रेमपाया काव्यसंग्रह पृष्ठ २६५

७ वहीं " " , पृष्ठ २३३

के तुल्य ही पुनर्जन्म में विश्वास नहीं रखते ।' फिर भी इन काव्यों में कहीं-कहीं ऐसी झलक दिखाई देती है जिससे इस विषय में कुछ सम्यह उत्पन्न होता है । 'मधुमासत' में मनोहर मधुमामती से कहता है कि 'उसका प्रेम सघोषाठ नहीं अमजम्मान्तर का है ।' इन्द्रावती के फूलबाड़ी खंड में इन्द्रावती भ्रमर की कमल के प्रति प्रीति को सूठी कहती हुई प्रभु प्रमी की भ्रमरता का यों वर्णन करती है—

मित्र जो हूँ करतार के भयत नाहि हूँ सोइ ।

एक भरि तत्रि सुतरें भवतत हूँ ये सोइ ॥'

इस बोहे के उत्तरार्ध से पुनर्जन्म में विश्वास का आभास मिलता है । प्रस्त होता है कि पुनर्जन्म में आस्वा न रखने वाले सुकर्मियों ने अपनी कृतियों में इन विचारों को स्थान क्यों दिया । उत्तर यह हो सकता है कि मनोहर और इन्द्रावती दोनों ही हिन्दू थे और उन्होंने अपने विश्वास के अनुसार ये विचार प्रसंगवत् व्यक्त किये यह मत सूझी कवियों का नहीं है । शितीय समाधान यह भी सम्भव है कि मनोहर ने बचन भावावेश में कहे गये हैं । इन्द्रावती के उत्तरार्ध का आशय कदाचित् पुनर्जन्म का न होकर स्वर्ग में भग्य सरीर की प्राप्ति का हो । तीसरे यह भी हो सकता है भारतीय सुफी कवि इस विषय में भारतीय विचार-धारा से कुछ-कुछ प्रभावित हुए हों और इधीनिए उनसे संपत्नी से चर्चुक्त भाव व्यक्त हुए हों । हमारा हृदय प्रथम उत्तर की ओर अधिक झपटता होता है ।

बैब—इन काव्यों में कर्म-गति को घटन तथा भाग्य रेखाओं का प्रतिष्ठ कहा गया है । मनुष्य अपने पुरुषाय से भले ही भाभी सुख-दुख के बीज बो दे परन्तु जो सुख-दुख उसके भाग्य में मिल दिया गया है वह अपरिमाजनीय है । आत्म कवि करते हैं—

(क) जो बंदिन शुभ भस्तरै, तप्त अग्नि सिबत्तइ ।

परिचम नाग सब कर तऊ न कम गति जाइ ॥

पद लायिक सिता जड़ाहीं । पाहग अरि कमल मिहसंही ।

जो इतनी विपरीत बसाब । तऊ न कम तौ घूटन पायै ॥

कर्महेत हरिचर पल मरा । कर्म हेत बलि सबंस हारा ॥

कम हेत पाइब परा पाये । कर्म रैद रुपपति बन पाये ॥

सोइ कर्म मनुष्य में, कोटि करारब हि भैरा ।

सो 'कवि आत्म म निद कठिन कर्म को रैरा ॥'

१ इकबाल प्रमीदाह इस्लामिक सुक़्कियम पृष्ठ ३०

२ 'आपती के परबती' पृष्ठ ३३६

३ शूरमुहम्मद : इन्द्रावती, हिन्दी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह पृष्ठ २६

४ 'मायबानल कामबंरता, हिन्दी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह पृष्ठ १८६

(ख) मित्रा जो करता की, सोइ होइ ।

जनम पत्र को घाछर जास न बोइ।^१

इस प्रकार सघार में मनुष्य पर मित्र कर्मों के अनुसार जो सुख-दुख या पदों उन्हें धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए । दुःख में प्रवीर हीना धनुषत है क्योंकि वे सुख से धनुषत होते हैं । मूसुछ भुनेबा में मूसुछ स्वप्न में बिख्याकुस भुनेबा को यों धैर्य प्रदान करता है—

कुछ दिन राहो बिच्छु कुछ बाहू । बिन कुछ प्रेम न प्राप्त काहू ।

जो कुछ ते नहि होब जबास । पंत होय कुछ भोय बिलास ॥^२

धीर यह ठो पहले ही कह चुके हैं कि सांघारिक भोग-विलास वस्तुतः इन कवियों के अभीष्ट नहीं है उग से विरक्ति ही इन का वास्तविक ध्येय है ।

वेद्य, कास—इन काव्यों में स्वान धीर समय के सम्बन्ध में प्रत्येक व्यावहारिक तथ्यों का उल्लेख मिलता है । प्रत्येक को योग्यतानुसार ही स्वान की कामना करनी चाहिए, धर्म्यथा हानि उठाने की सम्भावना है । नूरमुहम्मद इराबती में कहते हैं—

जो पंकी बित वाहर पाबा । सो निदान भहि ऊनर पाबा ॥

अपने जीम ठाव बेहि सीगहा । सब कोऊ तेहि घाबर बीगहा ॥

सब काहू कर्हू ठाव हैं अपने अपने मान ।

रानी राजा भोय है सति जोमें है मान ॥^३

इन प्रेमकथानकों में राजकुमार प्रियतमाओं की प्राप्ति के लिए स्वदेष्ट को छोड़ कर विदेश जाने का संकल्प करते हैं । ऐसे अवसर पर उन्हें सये-सम्बन्धी स्वदेष्ट वास के सुखों तथा प्रवास के दुःखों का स्मरण करा के उन्हें विशेषयमन से रोकने का मल करते हैं । परन्तु वे सख प्रेमी मूहवास की हानियों तथा प्रवास के तारों का बखन करते हैं । धनुषाग बाँसुरी में जब 'धन्य वरण' सनेहपुर को जाने के लिए उचल हो गया तब उसके मित्र (बुद्धि) ने उसे यों समझाया—

का परदेस जाव तोहि बाबा । है परदेस गवन अति पाबा ॥

प्यारै नपर पराए पांम्र । यहू कठिन धर्म्यक सान्म्र ॥

अपने देस परमु जौ कोई । मायभ-रहित विदेसहि होई ॥

हो तुम राजकुमारे अति सुकुमार ।

का जानतु परदेसे, संकट मार ॥^४

इस पर ईश्वर-विश्वासी राजकुमार विदेश-यात्रा के तारों का यों वर्णन करता है—

१ नूरमुहम्मद 'धनुषाग बाँसुरी' पृष्ठ ६७

२ नितातः मूसुछ दुगेला हिन्दी प्रमगापा काव्यसंग्रह पृष्ठ २६३

३ हिन्दी प्रमगापा काव्यसंग्रह पृष्ठ ७६

४ नूरमुहम्मद, धनुषाग बाँसुरी, पृष्ठ १३

जा पर होइ तामु अनुकंपा तापर होइ सुमन सम संपा ।
जनम भूमि मों जब लवि कोई तब लवि पुनी-बिदास न होई ॥
सुमन तौरि जब बाहर प्राव, उन्मत्त और पाव तब पाव ॥

पर बिदेश बहुत कुछ, प्राव विस्टि ।

तहि परबेस-धरम नर बैसे विस्टि ॥^१

नीतिकार्य की दृष्टि में काम का भी विशेष महत्त्व होता है । प्रत्येक कार्य हर समय नहीं किया जा सकता है न करना उचित ही होता है । इसलिए हम के समान काम का विचार भी आवश्यक है । 'धनुराय बाँसुरी' में रानी की प्रार्थना पर उपदेशी कुछ कहता है—

उपदेशी ब्रह्मा मन माहीं । निती समय फिर आवति माहीं ॥

बोल समय में बोलव मनो । बोल-समय में बोलव मनो ॥

अपनी समय पपीहा बोले । सुनि ता बचन बहुत मन बोले ॥

अपनी समय मेघ बल बारा । हरित होइ परती संतारा ॥

समय पाइ शीबन तन प्राव । सुम्बरता छवि बेह बडाव ॥

समय पाइ जब मारुति फूल । तब मधुकर मन ता पर मुल ॥^२

इन काव्यों में प्रहृ राधि भगन-मूर्ध्व दिया-गूल प्रादि विषयों की भी बर्णना की गई है । सोम प्रत्येक कार्य करने समय इन बातों का भी ध्यान रखा करने के अर्थ हम मृष्टी कवियों ने इन विषयों की उपेक्षा करना भी अनुचित समझा । जैसे काशिमशाह दिया-गूल के विषय में कहते हैं—

बैजं पंकित बेद बिधारी । अहित शुक पच्छिम दिशि पारी ॥

संपन्न मुख उत्तर दिशि पाइ । समहुं काल कटक मिये ठाढ़ा ॥

सोम सनीबर पूरव हीना । बेक बज्रम सो श्रीगुन चीना ॥^३

परंतु यदि किसी को अनिवाय कार्य से विषम का में भी प्रस्थान करना ही पड़े तो उसके प्रतिहार भी निश्चित है—

ओ रे उताहित चहुं सिपारं । शीषय प्राय सिप सुल पाव ॥

बुप रवि श्री बध गुक भीठा । रवि ताहुस जाय सुल बीठा ॥

राई प्राय सुक पम पार । बर्पंगु बेद सो सोम सिपारं ॥

बायबहिप सनीबर मुरी । संपन्न पनिया पा हुल हुरी ॥^४

शकुन—प्राचीन काम से जमी प्रावी हुई सकून-वरम्परा की मान्यता इन

काव्यों में भी दिखाई देती है । अकस्मात् दिखाई देने वाले विशेष पशु-पक्षी ही प्राचीन

१ वही पृष्ठ २

२ धनुरायबाँसुरी, पृष्ठ ६१

३ व ४ काशिमशाह हस जबाहिर, 'बायसी के परबर्ता' पृष्ठ २६४

(क) मित्रा जो करता को, सोइ होइ ।
जनम पत्र को बाछर जात न सोइ॥^१

इस प्रकार सघार में मनुष्य पर निज कर्मों के अनुसार जो सुख-दुख या पड़े उन्हें वैयर्थपूर्वक सहन करना चाहिए । दुःख में प्रवीर होना अनुक्त है क्योंकि वे सुख से अनुगत होते हैं । दूगुल पुनेषा में दूगुल स्वप्न में विरहाकृम पुनेसा को यों वैयर्थ प्रदान करता है—

सुख विन सड़ो विरह दुख बाहु । विन दुख प्रम न प्रापत काहु ।
जो सुख ते नहि होय उबासा । संत होय सुख भोग बिनासा ॥^२

धीर यह तो पहले ही कह चुके हैं कि सांसारिक भोग-विनाश वस्तुतः हर कवियों के समीप नहीं है जब से विरक्ति ही इन का वास्तविक ध्येय है ।

देवा काल—इन काव्यों में स्थान धीरे समय के सम्बन्ध में अनेक व्यावहारिक तथ्यों का उल्लेख मिलता है । प्रत्येक को भोगतामुसार ही स्थान की कामना करनी चाहिए धन्यता हाति उठाने की सम्भावना है । 'नूरमुहम्मद इत्राबरी' में कहते हैं—

जो पंजी बित बाहर भावा । तो निबात महि ऊपर भावा ॥
धपने धोय डाय बेहि सीग्या । सब कोऊ तेहि बाहर बीग्या ॥

सब काहुं कहूँ ठाड़ हैं धपने धपने माप ।

रानी राजा जीव है सति धीरों है भात ॥^३

इस प्रेमकथानकों में राजकुमार प्रियतमाओं की प्राप्ति के लिए स्वदेस को छोड़ कर विदेश जाने का संकल्प करते हैं । ऐसे अवसर पर उन्हें सने-सम्बन्धी स्वदेश भास के सुनों तथा प्रवास के दुनों का स्मरण करा के उन्हें विदेशगमन से रोकने का यत्न करते हैं । परन्तु ये सच्चे प्रेमी गृहभास की हातियों तथा प्रवास के लाभों का बर्णन करते हैं । 'धनुराय बागुरी' में एक 'धन्य करण' सनेहपुर को जाने के लिए उद्यत हो गया तब उसके मित्र (बुद्धि) के उसे यों समझाया—

का परदेश पाव सोहि बाबा । है परजेल मवन अति पाबा ॥

प्यारे मपर बराए मांभ । अही कडिन धप्यगल सांभ ॥

धपने देत परमु जो कोई । जाय-रहित विदेशहि होई ॥

हो तुम राजहूगारे अति सुकुमार ।

का जानहु परदेश, संकट मार ॥^४

इस पर ईश्वर-विश्वासी राजकुमार विदेश-यात्रा के लाभों का यों बर्णन करता है—

१ नूरमुहम्मद 'धनुराय बागुरी' पृष्ठ ६७

२ निताय दूगुल दुरोरा हिन्दी प्रकाशा काव्यसंग्रह, पृष्ठ २६२

३ हिन्दी प्रमदाया काव्यसंग्रह पृष्ठ ८६

४ नूरमुहम्मद. धनुराय बागुरी, पृष्ठ ११

जा पर होइ तामु अनुकंपा तापर होइ सुमन सम संपा ।
जनम मुमि मों जब सवि कोई तब लयि गुनि-विदाव न होई ॥
सुमन तोरि जब बाहर आव, उम्मात ठीर पाय तब पावै ॥

एवं बिदेग बहुत कुछ आवै बिस्ति ।

सहि परबेस-सरम नर बेसे सिस्ति ॥^१

नीतिकारों की दृष्टि में काम का भी विधेय महत्त्व होता है । प्रत्येक कार्य ही समय नहीं किया जा सकता है न करना उचित ही होता है । इसलिये देश के समाज काम का विचार भी आवश्यक है । अनुराग बामुरी में रानी की प्रार्थना पर उपदेश कुछ कहा है—

उपदेशी सूना मन माहों । निभी समय फिर आवति माहों ॥

बोल समय में बोलब मनो । बोल-समय में बोलब मनो ॥

धपनी समय पपीहा बीसे । सुनि ता बचन बहुत मन डोले ॥

धपनी समय मेघ बल द्वारा । हरित होइ बरछी संसारा ॥

समय पाइ जोबन तन आव । सुम्बरता छवि बैह थडाव ॥

समय पाइ जब मारुति कूल । तब सपुकर मन ता पर भुलै ॥^२

इन काम्यों में प्रथम यति जगन-मुहूर्त विद्या-दूत भावि विषयों की भी चर्चा की गई है । लोग प्रत्येक कार्य करते समय इन बातों का भी ध्यान रखा करते थे प्रथम सूफी कवियों ने इन विषयों की उपासना करना भी अनुचित समझा । पंसे कासिमशाह दिवा-सूत के विषय में कहते हैं—

देवें पंडित वेद विचारी । धरित भूक पच्छिम दिशि भारी ॥

मंसल युग पत्तर बिडी गाड़ा । समहुं काल कटक लिये ठाड़ा ॥

सोम सनीबर पूरव होना । वेठें बजल सो द्यौगुन बीना ॥^३

परंतु यदि किसी को धनिवार्य कार्य से विषम कार में भी प्रत्यान करना ही पड़ तो उसके प्रतिचार भी निश्चित है—

जो रै उताहित बहै सिपाय । सोपब ज्ञाय सिव सुख पावै ॥

बुध बयि श्री बेकें पुड़ नौठा । रवि ताबूल ज्ञाय सुख बीठा ॥

राई ज्ञाय शुक पग धार । बर्षण बैल सो सोम सिपारै ॥

वायबडिग धनीबर मुरी । मंसल बनिया छा दुख डुरी ॥^४

संज्ञान—प्राचीन काम संजानी जाती हुई सकल-परम्परा की मान्यता इन काम्यों में भी दिखाई देती है । अकस्मात् दिखाई देने वाले विधेय पदु-नसी ही भावी

१ बही पृष्ठ २०

२ नूरमुहम्मद अनुराग बामुरी पृष्ठ ११

३ व ४ कासिमशाह हत जवाहिर, 'जायसी के परबती' पृष्ठ २६४

धुम धधुम को सूचित नहीं करते विभिन्न व्यक्तियों का एसेम भी सामाजिक या अर्थव्यवस्था का भाग जाता है। ऐसी नवी-कृत 'मानवीय' में जब मानवीय विचारधारा को प्रस्तुत करने लगा तब ये विधि-नृपक शक्य हुए थे—

बहिनै काब सखिया बोला । जबकि निर्मै पत्र होय मिडोला ॥
 रजक परोहन मारे धारा । बहिनै धोर मिरप रेकराबा ॥
 मानसि प्राइ कुम कर बीन्हा । बंसो बवाइ काहु सुर लीन्हा ॥
 नीला खेमकरी रेकराई । सोभा बाबल द्विम मा धाइ ॥
 बहिनै धहीरिन सेठ पुकारी । सोमर धाइ नबल सेइ कारी ॥
 बाए बिसि बोला पतिहारा । तरनि सोस कसस जलमरा ॥
 बामन तिलक पुधाबस कीन्हें । सिद्धि-सिद्ध मुख घसीस बीन्हें ॥^१

धार्मिक के कुछ लोग इसे ही इन श्रुतियों को निम्न-विषयों के अन्तर्गत मानें परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन तथा मध्यकाल में लोग धुम या धधुम शब्दों से कर-कमरा प्रदान या विपणन हो चकते थे। और इन्हीं के अन्तर्गत प्राचीन कालों के धनुष्यधन या परिवर्धन का निश्चय कर लेते थे। इसी प्रकार रत्न मन्त्र, बाहु-टोना धादि की बर्णों भी इन काव्यों में कही-कही उपलब्ध होती हैं।^२

विषय—'वस्त्र' या धनु-निर्माण के इच्छुक स्त्रियों की रचनाएँ होने पर भी प्रेमकालक नीति-काव्य की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व रखत हैं। इनमें धीर, बौध्द, लप-सावध की वह उपेक्षा प्रायः दिखाई नहीं देती जो बौद्धों जनों तथा सन्तों की रचनाओं में प्रचुरता से पाई जाती है। धीर को स्वयं धीर पुष्ट रक्षता तथा बौध्द के सुखों का उचित उपभोग करना इनमें निम्न नहीं माना गया। इनमें लौकिक प्रेम को प्रभु प्राप्ति का साधन माना गया है और उस प्रेम का व्यापार है बीबत धीर-धीर्य। परन्तु वे प्रसन्न हैं हेय नहीं। विद्या और बुद्धि की प्रशंसा इनमें अनेकानुसृत होती है। बर्ण-धर्मों की भी उपेक्षा इनमें दिखाई नहीं देती। प्रायः सभी नायिकाएँ बेह पुण्यलों की विधुषी नहीं गई हैं। वेह धीर विद्या से विहीन जनों को पशु तक कहा गया है। विद्या की अधिमाग्यता तथा अहर्षता का भी उल्लेख मिलता है। साथ ही इस उपयोमी बात का भी कि उसे छिपा कर न रखना चाहिए, अपितु पुण्य-जनों के समक्ष प्रकट करना चाहिए क्योंकि ऐसा किये बिना न समाज को उस से लाभ की प्राप्ति होती है और न विद्या को मान-प्रतिष्ठा की। इसी प्रकार धर्म, साहस, बुद्धि, संकल्प यग बीति धादि पुण्यों के उपाजन पर विशेष बल सन्निहित होता है। कृष्णार्थ है कि यही वे पुण्य हैं जो सांसारिक सफलता के लिए अनिवार्य हैं।

प्रेमकालकों के धनुषार माता-पिता, माई-बहिन पुत्र-पुत्री धादि सम्बन्धी

^१ 'आवसी के परबसी' पृष्ठ ४२७

^२ 'आवसी के परबसी' पृष्ठ ११०

उपेक्ष्य नहीं है। माता-पिता अत्यन्त ही नहीं हैं, सम्यक् सेष्य हैं। उनकी आज्ञा सर्वदा विरोधार्थ है परन्तु एक भ्रमसर ऐसा भी है जब उसकी उपेक्षा ही नीति कही गई है। सुनसी दास जा ने उसका उल्लेख यों किया है—

माते मैह राम के मतिगत मुहुर मुसेष्य जहाँ लीं ।

धर्मम कहा काहि बोहि फूटे बहुतक कही कही लीं ॥^१

ऐसे ही माता-पिता को सुखी रखने का उपदेश वेन के अन्तर्गत गुरुमुहम्मद करते हैं—

एक बात मों कहा न कीजे मुनि यह बात धिरा लीं सोजे ।

जो सिहि कहे कि बगह मझरी, पगु ब्रम्हू दूसर करतारी ॥^२

यह बात भारतीय परम्परा के भी प्रतिकूल नहीं है। जब माता पिता प्रभु प्राप्ति या धर्म के मार्ग में व्यवधानक हुए तब उनका धादेग भी उपेक्ष्य हो गया। प्रह्लाद न इमी नीति को अपमान देते हुए पिता की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया था और मीराबाई ने भी सन्धिधर्मों को भक्तिपथ में प्रत्यक्ष मान कर गृहपरित्याग ही उचित माना। जनकों का स्वसत्तान के प्रति कितना स्नेह होता है इस विषय में कासिम शाह की उक्ति है—

करा जिउ माता की और पिता को प्रान ।

बालक पगु को बाँटा मात पिता धँदियान ॥^३

परन्तु परिवार में पुत्र तथा पुत्री का स्थान समान नहीं कहा गया है। जहाँ पुत्र का जन्म उत्साह का कारण है^४ वहाँ कन्या की उत्पत्ति चिन्ता की जननी। भारत में यह भावना बिरहास से कभी धाई है।^५ बहु दिन पाय माना जाता है जब पत्नीय बन पुत्री पितृमुह स पतिकुल को प्रस्थान करती है।^६

१ बिलपपञ्चिका (गीताप्रेस सं० २००७) पृष्ठ २८३

२ गुरुमुहम्मद इब्राहिमी, (का ना० प्र० समा ११०६) पृष्ठ १६६

३ कासिम शाह इस अबाहिर, 'जायसी के परबर्ता' पृष्ठ ११८

४ धनि यह रग पुत्र की होइ, धरतो रवय हुला सय कोई ॥ (कासिम शाह इस अबाहिर, पृष्ठ ११)

५ आतेति कन्या पृती हि चिन्ता, कस्य प्रदेपेति पृहम् बिसकः ।

शशा मुख यास्तति वा न वेति कन्यापितृत्व क्षमु नाम कव्यम् ॥ (सुभादित-रत्नमोहापार पृष्ठ १०)

६ (क) कन्या गिरकासिता खेका बधू खेका प्रदेपिता । कस्य संकसितं खेठं धर्मः खेठो दिने दिने । (बही, पृष्ठ १६६)

(ख) धर्मोह कन्या परकीय एव तास्य संप्रथम परिग्रहोतु । आतोममार्थ विदाहः अकारं प्रायपिक्रयास इवान्तरप्रमा ॥ (कासिबास अमिष्ठानगाकुन्तल ४।२२)

बब ले बुद्धिटा अबनी सतत हिये सतपात ।
निकसे कांटा लखहि बब धायन भाउ बराय ॥^१

इन काव्यों में पारिवारिक जीवन की पवित्र मर्यादा को धूमिल रखने का भरसक उपदेश दिया गया है। उच्च परिवारों में प्राचीन काल से प्रचलित बहुपत्नी-विवाह का उल्लेख तो प्रायः सभी प्रेमकाव्यों में हुआ है परन्तु न तो मायक कमी किसी परकीया के प्रेमपाद्य में छँसते हैं और न ही कमी किसी प्रेयसी से विवाह-विधि की सम्मतिता से पूरक संयोग-मुक्त श्री कामता करते हैं। केवल जाग-हुत 'रूप मंजरी' में ही इच्छा अपवाद दिखाई देता है जहाँ रूपमंजरी प्रेयातिरेक के अधीन होकर स्व पितृवृह से नायक जानसिंह के साथ भाग जाती है। हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्मों में प्रचलित बहुपत्नी प्रथा के विरुद्ध कुछ कहने का साहस इन कवियों ने नहीं दिखाया। साम्राज्य जीवन की पवित्रता का सारा भार इन्होंने धर्मशास्त्रों के निर्बंध कथनों पर ही डालना उचित समझा। 'तिय बिन घर माहिन बरन ब्यों मोठी बिन सीप'^२ कहकर बाह्यस्म जीवन के लिए स्त्री की अनिवार्यता तो विवशतः स्वीकार कर ली गयी परन्तु उस पर प्रतिवन्द्य इतने अधिक सजा दिये गये कि जो प्राधुनिक नारी को घरपाचार से कम प्रतीत न होयि। घर से बाहर पाव न रखना घूँसट काटना बीरे बलना धीने बोलना नीचे देखना पर-पुत्र को देख छिप जाना आदि ऐसे प्रतिबन्ध हैं^३ जो सम्भवतः इस्लाम के आब मारत में आए और प्रसंगवश इन काव्यों में उल्लिखित हुए।^४ वस्तुतः इन काव्यों में स्त्री के धीम पर इतना अधिक बल है जितना किसी अन्य विषय पर नहीं—

आ के घर में होइ सत पति सो हिय छुराइ ।
धीन बिना 'कवि जान' कहि घर घर बप बिकाइ ॥^५

परन्तु जब पति की दुःखीमता के कारण घर में एकाधिक पत्नियाँ या ही जाएँ तब नैतिक क्रमही धीनेका जनका पति के अधीन तथा परस्पर प्रेमपूर्वक रहना ही

१ सतमान बिनाबकी पृष्ठ १८६

२ ३ 'आमसी के परबराँ पृष्ठ १८३

४ 'ताय नहि वैहि आदिन माही, हुँ वह पनु हे मानव माही ।
घूँसट पहिर सज य्यु आही पगु बहं बीने राऊर आही ॥
घी पन डंभी सबह म मोने, मुगत बिराने को मन छोटे ।
कौये गपव राऊर सौं कीने धी मुत ऊपर घूँसट बीने ।
हो प्यारी जब पहिरनु घरना पुत्रव बिराने सो छिप रहना ॥ (शुभमुहम्मद-
इशाबती पृ० १०)

५ 'आमसी के परबराँ ' पृष्ठ १८४

नीति है। इसी नीति का उल्लेख कासिदास ने 'धर्मज्ञानभाद्रुन्वत' में भी उद्यमान ने 'विभावती' में किया है।^१

इतना कुछ होने पर भी बेचारी नारी जाति को इन काव्यों में उच्च स्थान नहीं मिला। कमा कमावती में नायक पुरन्दर घाठ पत्नियों की विद्यमानता में भी कमावती के लिए धीर होता हुआ बोपी नहीं उड़ गया था परन्तु नारी के जीवन में डीन देख कर वह बन्धन घोषित कर ही गई—

भली मही जिहरी की जाति अब तब इन से पालित बात ।

जो तिय धपनो घोब सीस, मारहु ताकि न साबहु डील ॥^२

यहाँ यह बात सक्ष्य करने की है कि इन काव्यों में बाराँयना-श्रम की शर्मा न होने के तुल्य है। इन्द्रावती में रम्भा कसिका का उत्पन्न हो हुआ है परन्तु उसका श्रम धारधारिक है। वह श्रम क मिचारी राजा हसराम को धपन से विमुक्त कर स्व स्वामिनी 'बन्धन' की धार प्ररित करती है। राजाओं की इन कथाओं में गणिका-विषयक नीति की शर्मा के धमाक का कारण कथाविज्ञान यह है कि जब उन्हें कुसीन तथा कपनीय राजकुमारियों की कमी न थी तब उच्छिष्ट बाराँयनाओं को उनकी प्रमपात्री दिवाना राजाओं के गौरव हास का ही कारण होता।

कथाओं की स्थिति भी तुल्य नहीं है। जिन व्यक्तियों क साथ उन्हें जीवन भर निर्वाह करना होता है उनके कुशाभ में भी इसकी सम्मति धारधारिक नहीं बही गई। व सज्जा भय धादि के कारण इस विषय में जिज्ञा तक नहीं हिला सकती।^३ उन्हें संयोगवश धमीष्ट पति प्राप्त हो जाए तो उनका सीमाव्य है धम्यमा पुस बुनकर मरना है। हाँ जान कवि ने इस विषय में कथाओं को कुछ स्वावभ्य देने का माहस दिखाया—

१ (क) 'गुणवत्तव गुणम् कुर प्रियसखीवृत्ति सपत्नीव्रमे
भु विप्रहृता प्रिय रोपणतया मा स्व प्रतीपं गम । (कासिदास' धर्मज्ञान
भाद्रुन्वत, ४। १८)

(ख) सोपिन कर इरया नहि करला साईं संग सरा प्रिय करण ।
धत्य मान सेवा धाधिक रिति राजन निज मारि ।
वेहि घर महुं ये हीन गुन सोइ सोहागिन मारि ॥ (उद्यमानः विभावती
पृष्ठ २२३-२४)

२ जान कवि कमा उच्छिष्टापर जायसी के परिपत्नी पृष्ठ १८३ ॥

३ (क) हों सौ धारी पिता घर, योक्त बचन सजाव ।
तब सँ बचों कर्मक से प्राय कति पर बाव ।

(ख) पिता जो मुने कर जिब डार माता मुने धोर रिय मारे ॥ (कासिदास' हंत बनाहिर पृष्ठ ४२ २०६)

(घ) हाते हीते न मायिस्मं मोक्षितं न मजे यजे ।

सायवो न हि सर्वत्र, कर्म न नो बने ॥^१

यस यस मग न होहि जेहि ओती । कम बल सोप न उपनहि पोती ॥

बन बन बिरिछ न चंदन होई । तन तन बिरह न उपनै सोई ॥^२

(बाबरी)

(घ) न चौछार्य न च राजसुयं, न भ्रातृमार्षं न च भारकारि ।

व्यये ह्येते यद्यत् एव तिर्यं विद्यायन सख्यमपमानम् ॥^३

विद्या बरव न बाट भाई नहि तस्कार छप हायें बाई ॥

नहि नृप कर न सहीबर-भाप भविक बढ़त जब बाई भायें ॥^४

(भूरभूमव)

कहना न होया कि ऐसे स्वयं पर भी सूत्री-कवियों ने बरकरार अनुवाद नहीं किया भाव ही ग्रहण किये हैं । जैसे— 'घ' में वीमे-वीमे के स्थान पर 'यस-यस' और 'यजे-यजे' के स्थान पर 'जस जस सीप' से ही संतोष कर लिया गया है परन्तु एतलो और मोठियो की दुर्गमता को मुख्य प्रतिपाद्य है दोनों में तुल्य ही है ।

बिदेही प्रभाव—सूमुक्त-जुमेला लैलामजनू भादि कुछ कथाओं को छोड़ कर छय प्रेम-कथाएँ हिन्दूनाताबरस से प्रपूण है । फिर भी सुसममान सूक्तियों की कृतियाँ होने के कारण उन पर इस्लाम तथा बिदेही साहित्यों के प्रभाव की भलक कहीं-कहीं दिखाई दे ही जाती है । भाग्य-मेघ के अमित होने का उल्लेख तो हिन्दू और सुसममान दोनों के साहित्यों में समान रूप से किया गया है परन्तु आदम-हम्मा की भूष के कारण होने वाले भारतीय दुःखों का बर्णन सामी संस्कृति से ही आया है । 'पद्मावत' में जब पद्मावती की विदाई के समय उसके सम्बन्धियों तथा सखियों के हृदय बिदेही तथा वेच छात्र हो गये तब उनके मुख से अनायास निकल पड़ा—

सावि अंत जो विता हमार । छोहु न यह विन हिमे विचारा ।

छोह न कीरु बिछोही भोह । का हम्ह बोय लाय एक पोह ॥^५

हम्मा की प्रेरणा से ही आदम न गेहूँ का बजित कल जामा का धोर उसीके अग्रपक्ष के आरस निरीहकारियों को अन्त-विद्योम का यह पुच्छ कष्ट सहेता पड़ता है । यह 'करे कर्द और भरे कोई' की नीति भारतीय साहित्य ने नहीं बिगती । यहाँ तो यही ऐसा पाया है कि जब किसी पाप पर विपत्ति घाती है वह अपने ही पूर्व-कर्मों को कोसता

१ चापलय नीति, पृष्ठ २१२

२ बाबरी संभावनी भूमिका पृष्ठ १७३

३ सुभाषित रत्न भांडाकार पृष्ठ १०१३

४ भूरभूमव अनुवाय यासुरी, पृष्ठ २

५ बाबरी संभावनी पृष्ठ १६०

है किन्ती धर्म को नहीं ।

मनुष्यों को अपने सभी भले-बुरे कर्मों के फल क्यामत या प्रसय के दिन ही प्राप्त होते हैं यह सिद्धान्त भी भारतीय नहीं है । भारतीय धारणा तो यह है कि ये इस जीवन में साध-साध भी मिलते आते हैं और आगामी जन्मों में भी मिल सकते हैं । सूफी धर्मशास्त्रों में प्रसय के दिन कर्मफल की प्राप्ति का उल्लेख कई स्थानों पर हुआ है । जैसे पद्यावत में कहा गया है—

पुन धरगुम विवि पुछ्य होइहि लेख श्री धोख ।

व दिनदव आगे होइ करब अपत कर मोख ॥'

दान-रूप में आलीसबाँ प्रस वेना भी इस्लामी संस्कृति के ही धर्मरूप है ।' इसी प्रकार प्रतिपाद्य नीति के समर्पण में इन कवियों ने कही-कही हासिल इस्करदर मौखबा धारि विवेकी व्यक्तियों की जीवन-वटनामों की धोरनी संकेत किये हैं ।' कई पद्यों में फारसी की सोझोक्तियों की छाया स्पष्ट प्रतीत होती है । जैसे—

फारसी—(क) दुरी या-असर नजबीक व नजबीऊँ बेबसर दूर ।'-क

दृष्टि बासों के लिए दूर भी समीप और दृष्टि रहितों के लिए समीप भी दूर होता है ।'-क

नियरहि दूर दूम अस फाँटा । दूरहि नियर सो अस पुर फाँटा ।'-ख

(घ) फारसी—इदक व मुश्क रा नतबाँ नहुफतन ।-ग

(प्रम और मुगमर छियाये नहीं छिपते)

परिमस प्रम न फाँछे छवा ॥-घ

कभावय—सूफी काव्य के कसापस पर सर्वथी रगजइ सुनस गणेशप्रसाद द्विवेदी सरना शुभ कसम कुसमअड धारि विद्वान् इतना अधिक मिल चुके हैं कि उसका सविस्तर उल्लेख घनापदयक प्रतीत होता है । उल्लेख में इतना ही कवन पर्याप्त हुआ कि सूफी काव्यों के नैतिक धर्मों में शृंगार बीर और सान्त रस का प्रामाण्य है और वेप रसों की व्यंजना छिटपुट रूप से हुई है । भावों में से रचित धसूया धौमुक्य वल्लाह श्रुति निबंन हर्ष विपाद बीडा निष्ठा इया मति धारि की धमिब्यक्ति अधिक हुई है ।

आज कवि की भाषा पिगस है और घशावकर्तृक कामरूप की कसा की भाषा कड़ी जोती । वेप कवियों ने बोल-भास की मधुर प्रबधी भाषा में धपनी रचनाएँ की हैं । भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से जामसी आज असमान और नूरमुहम्मद क नाम विशेषत उल्लेख्य हैं । सुसमान कवियों की इतिमा होने क कारण सूफी-काव्यों में

१ जावसो प्रंवावली, सुमिठा, पृष्ठ १०३

२ वहीं , सुम पृष्ठ १७२

३ वहीं सुम , पृष्ठ २५६

४ क-य वहीं भूमिष्ठा पृष्ठ १०३

झरती धरती धादि के भी संकर्मों सम्बन्धित हैं। संस्कृत के उत्तम शब्दों की प्रोक्षा उद्भव शब्दों का प्रयोग बहुत अधिक है और रचियों तथा लोकप्रियताओं की भाषा भी पर्याप्त है।

काव्य-विमान की दृष्टि से वे प्रमत्त प्रकाश-काव्य के अन्तर्गत आते हैं और झरती की मसगती शैली में रचित हैं। अधिकतर प्रेमकाव्य दोहा-चौपाई शैली में लिखित हैं परन्तु ज्ञान कवि ने दोहा-चौपाई और गुरुमुहम्मद ने चौपाई-बरबे का भी प्रयोग किया है। ऐसा तो कोई निम्न नहीं दिखाई देता कि कथा तो चौपाईयों में ही निबद्ध हो और नीति बोधे या बरबे में ही यह बात कई स्थलों पर उचित होती है कि जहाँ कोई नीति-विषय कड़क की अस्मिता चौपाईयों में आरम्भ होता है वहाँ उचित परबलाग दाहे या बरबे में।^१

इन रचनाओं में अमकार प्रयोग तो पर्याप्त दिखाई देता है परन्तु वह इतना नहीं प्रतीत होता। शब्दात्मकताओं की अन्धा अर्थात्कारों का अन्वहार अधिक किया गया है।

अमकारान्तों के नीति-विषयक अर्थों में प्रकाश वृत्त तो सर्वत्र प्रोक्त है परन्तु भावार्थ और भाव को भी कमी नहीं। इन काव्यों में हठवृत्त, मूलपदल अन्तसंस्कृत धादि कई दोष कहीं-कहीं दृष्टिगत होते हैं परन्तु इनसे भी बड़ा दोष है उन शब्दों की इतिवृत्तात्मकता नहीं य कवि पविनी आदि अतुलित नदियों याता-विचार, योग तथा उपचार धादि विषयों का वर्णन करते हैं। अन्वयात्प्राधारि की रक्षा के लिए शब्दों को कहीं-कहीं छोड़ा-मरोड़ा भी गया है।

नीति के अर्थों में प्रायः तत्पत्रिकपत्र उपदेशात्मक निष्कर्षात्मक संवादात्मक ऐतिहासिक धात्मात्मिक अन्वयापदेशात्मक तथा अन्वयात्मक शैलियों का प्रयोग किया गया है। इनमें से प्रथम दो का प्रयोग शेष की अपेक्षा अधिक है। कुछ शैलियों के उदाहरण तो ऊपर उद्धृत पत्रा में सुकर्य हैं। निष्कर्षात्मक शैली का एक विशाल अष्टक है—

पित्त बड़ तो अोजर पावे चंचल और मुलाय मिठायें ॥
जहाँ परेम-पिरा-बुल अहं तहाँ मुलाय न चंचल सहे ॥
पौं मासत तन-बुल उपजाय मुनवर केसर ताहि नसाय ॥
मुमकुम मिरासतार पुनि तहाँ, सहे म प्रेम-बाइ-बुल अहाँ ॥
बौं अस्तमेसम म्याधि लरीरा दक्षि-मार्गबो नसत पीर ॥
जहाँ प्रेम अस्तमेसम बाइा रंभी सौं बहु भाइ न काइा ॥
प्रेम-म्याधि धीउर सौं, पाइौं जाति ॥
हरति जाति गुम तन सौं, दिन धी राति ॥^२

१ गुरुमुहम्मद : अतुराय बीगुरी, पृष्ठ ६३

२ गुरुमुहम्मद : अतुराय बीगुरी, पृष्ठ ३८

२ स्फुट रचनाएँ

यद्यपि सूफी सन्तों ने अपनी स्फुट रचनाएँ प्रेमकवियों से पूर्व ही प्रारम्भ कर ली थीं तथापि प्रायः वे पर्याप्त संख्या में प्राप्त नहीं हैं। जिन अमीर खुसरो की कविता हम प्राक्काल के नीतिक्रम्य में कर चुके हैं उन्होंने पूर्वोक्त हास्य विनोदमयी रचनाओं के प्रतिरिक्त सूफी सिद्धान्तों तथा नीति के प्रतिपादक कुछ दोहे और पद भी लिखे। उनके पदवाच जायसी की अक्षराक्षत प्राचिरी कलाप तथा 'महरी बाईसी' खलफ़ीर के दोहे बख़्त के दोहे तथा बख़्त नामा (प्राक्कलाप) जान कवि का बतनामा पाटी साहब के मसन कवित्त मृचने साही अलिफ़ामा धाह सैयद बरकतउल्ला 'प्रेमी' का 'प्रेम प्रकाश' बुल्लेधाह की सीहृष्टी अठवारा बायामासा काफ़ी और दोहे बीन बरबेस की कुम्बलिया नबीर अकबरवादी के फारसी सन्दों में रचित पद्य हाजी बली के दोहे और प्रेमनामा तथा अब्दुलसमद के मसन प्राप्त होते हैं। इन रचनाओं का मुख्य विषय अम्प्रात्म है नीति का प्रतिपादन नहीं। फिर भी प्रभु से एक-कता प्राप्त करने के इच्छुक लोगों के लिए एक विधिष्ट प्रकार का व्यवहार करना अनिवार्य होता है और इसी व्यवहार का अस्मेह इन स्फुट रचनाओं में कहीं-कहीं किया गया है। निम्नस्थ पंक्तियों में उन्हीं व्यावहारिक विषयों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

व्यक्तिक नीति—बहु प्रेमकवियों में शरीर के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य तथा उसके बनाव विचार की कविता अनेकन की गई है बहाँ इन स्फुट रचनाओं में इति परमार्थ पर अविचल केन्द्रित होने के कारण शरीर का अंगार अहित कहा गया है। 'महरी बाईसी' में जायसी कहते हैं—

हुइ पायल पायल धी बुरा अल-अस के कीमह विपारा रे।

काया साजि भाजि के दरपन बैरै सबहि सितारा रे ॥

कहै मुहम्मद कोन मुने हुई हुई जग से सब आनेउ रे ॥

बाहिन बाँव बुझि के होइ रतु ती प्रापुहि पहिचानेउ रे ॥^१

कहीं-कहीं इस काया को पूज्य भी कहा गया है परन्तु इस कारण नहीं कि इसे बना-संवारकर अम्प मनुष्यों को अपना प्रेमी बनाया जाए अपितु इसी कारण कि प्रभु इसी के अन्दर विराजमान तथा प्राप्त्य है। 'प्रेमी' का कथन है—

बैह-बेबरा पुभियो, तीग लोह तिल माँह।

तीरप पटबर्तन सभ्यो मेरे बैठे माँह ॥^२

१ इन में 'महरी' नामक पान के २२ गीत हैं। यह नाम जायसी प्रदत्त नहीं है डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा कल्पित है। (सं माताप्रसाद गुप्त जायसी प्रभावली हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग १२४२ ई०, भूमिका पृष्ठ १०२)

२ माताप्रसाद गुप्त जायसी प्रभावली पृष्ठ ७१६ ॥

३ बरकत उस्ताह पेमी वेम प्रकाश (फ़ैट अरसं, दिल्ली, १ ४३ ई०) पृष्ठ १५१६

इच्छियों के मसीकरण से सम्बन्धित भाव तो इन रचनाओं में प्रेमकथानकों के ही तुल्य हैं परन्तु पोषी-मवा विषयक नीति कुछ भिन्न प्रतीत होती है। प्रेमकथानकों का शाठानरूप राजकीय होने के कारण जनमें विद्याओं तथा कलाओं में मुख्य पात्रों का बिल धीरे कलावित् होना प्राबल्यक था। परन्तु यहाँ इच्छि प्रभु पर केन्द्रित है और इस लक्ष्य की शिक्षा के लिए पुस्तकी ज्ञान की अपेक्षा साधना अधिक अपेक्षित है। यही कारण है कि इनमें अमंगल्य उदेषित से हैं। जैसे—

(क) ना-नारद तत पाहुठ काया । चारा भेति फीर जग माया ॥

भाव वैव की भूत संभारा । तब अरुभ्यइ रहा संभारा ॥^१ (आपसी)

(ख) वेद पुरान सर्व फई पुबिदल प्रथमाई ।

बिना पैम कछु माई, पूजा बिरवा हूँ ।^२ (पेमी)

(ग) तुती इसन कितावां पढ़े हो केहे जसदे माने करे हो ।

बेमूबब ऐं लड़ै हो केहा जलदा बेव बढ़ाया है ॥^३ (बुद्धिवाह)

पारिवर्क नीति प्रेमकथानकों के तुल्य ही है परन्तु स्तु रचनाओं में काम-क्रोधादि तथा माया-गोहादि के त्याग का साधन बहुत अधिक है। आखरी व 'पेमी' मन के विषय में कहते हैं—

(क) मनुषो अंजन हाप, अरुके अहभिर ना रई ।

पाल पडोरे साप, 'गुहमब' तेहि बिधि राखिए ॥^४

(ख) रे मन तू तो बढ़ो मनीत ।

ममा मोह माया मम मुस्यी जाड़ि हरि की प्रीत ।

छाई बिरह किरं भ्रम सुस्यी, बैक लई परतीत ॥^५

साधक के लिए मज्जा-बुण अनिषार्व हैं; परएव इन कृतिओं में इस पर बहुत बल दिया गया है। यारी साहब अनिष्ठाने में कहते हैं—

इजया नरहरि सुमिरन करे, धीनु प्रयास भक्ततापर तरें ॥

बीन जगपतो हीरैये रावहु है हामीन होय नरहरि भावहु ॥^६

पारिवारिक नीति—प्रेमकथानकों में तो कहीं-कहीं सवे-सम्बन्धियों के प्रति कर्तव्य-पालन के उपदेय मिल जाते हैं परन्तु स्तु रचनाओं में 'प्रीत-मार्ग' में साधक होने के कारण सवे-सम्बन्धियों से सम्बन्ध सर्वथा त्याग्य कहा गया है। 'पेमी' की

१ आपसी प्रथावली (प्रथरावट) पृष्ठ ३ - ३११

२ पैम प्रकाश पृष्ठ ६० ।

३ अंतपानी संप्रत इतरा नाप (दिलवेडिपर प्रेम, शाहावाव १९३० ई०) पृष्ठ १८०

४ आपसी प्रथावली (प्रथरावट) पृष्ठ ३२६

५ पैमप्रकाश पृष्ठ ३६ ॥

६ आपसी के परवर्ती पृष्ठ ३०७

कठि है—

सत्री कुटुम्ब को हेतु हित करता पैस की हास ।
सोना क्या मैं कीजिये, बातों दूँ नान ॥^१
केहु मर्हि तापिहि साय, जब मीनब बधिसास मह ।
बलब मारि बोज हाय, 'मुहमब' यह सग छोडि के ॥^२

सांसारिक नीति—इन रचनाओं में हिन्दू-मुस्लिम के भेद भाव और ऊँच-नीच के परित्याग तथा एक-दूसरे के धर्म के प्रति सहिष्णुता दिखाने की प्रेरणा बहुत अधिक दिखाई देती है। जैसे—

(क) पुनि माया करता कहूँ मई । भा भिनसार रन हृदि गई ॥
सुबब जए कबल बल सुने । कुबी भिने पंच कर भूने ॥
लिहू संतति उपराजा भातिहि भाति कुमीन ।
हिन्दू तुपक कुबी मए अपने अपने बोन ॥^३ (आपसी)

(ख) 'पैमी' हिन्दू-मुसलमँ हूर रंच रहो समाय ।
देवल और मतीत में, बीप एक ही जाय ॥^४ (पैमी)

हिन्दू कईं सो हम बड़े, मुसलमान कईं हम्म ।
एक मुंय बो प्यड़ हँ कुल जाबा कुल कम्म ॥
कुल जाबा कुल कम्म, कबी करना नहि कबिया ।
एक नपत हो राम, कुबी रैमान से रहिया ।
कहे बीन बरजेय बीय सरिता मिल सिन्धु ।
सबदा सगहब एक एक मुसलमान हिन्दू ।^५ (बीन बरजेय)

प्रेमकथानकों के समान ही इन रचनाओं में भी मुसलमानों के महत्त्व का अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। जिन पर मुसलमानों की कृपा होती है उसके लिए तो प्रेम-भाव बिलबाड़ बन जाता है परन्तु जो अपने ही बल पर बस पय पर अघसर होता है उसकी बचाए टूट जाती है और अठएब वह पन्तभ्य तक नहीं पहुँच सकता।^६ सच्ची बात तो यह है कि गुरु-प्रीति के बिना प्रभु-प्रीति असंभव है। जो मुसलमानों से बीछा लिए बिना ही बरब रंजा जाता है, न उसका सोच संबरता है, न परसोक। बरहून का

१ पैमी पैमप्रकाश पृष्ठ २५१ ११७

२ आपसी प्रभाषसी (अक्षरावट) पृष्ठ ३१६

३ आपसी प्रभाषसी (अक्षरावट) पृष्ठ ३००

४ पैमी पैमप्रकाश पृष्ठ २१३६

५ आपसी के परबती, पृष्ठ ३११ १२

६ आपसी प्रभाषसी, (अक्षरावट), पृष्ठ ३२०

ये बिन पुत्र कोई पैर न पाई धरती से आकाश को पाई ।
 पहिले प्रीत पुत्र से कर, प्रेम उपर में तब पपु परी ।
 बिन पुत्र बन्हुन जो कोई सित है कवन रंगाय ।
 यह पुत्र निरक्षय आनिबो लो बोज धोर से जाय ॥'^१
 क्या किन्तु धीर क्या मुसलमान दोनों ही वर्ग के तरफ को विस्मृतकर बाह्या-
 चारों तथा रुढ़ियों में धार्मिक निगम हो गए थे। इन रचनाओं में दोनों के बाह्यौ
 पाठमंत्रों का उल्लेख किया गया है और उसका स्वर कहीं-कहीं कबीर धारि उल्ल-
 क्तियों से रूप लीजा नहीं है। जैसे—

‘बुन्सा’ धर्मशास्त्रा बिच जाइबी रहै, ठाकुरद्वारे छप ।
 महीता बिच कौली रहै धार्मिक रहन धरमग ॥
 ‘बुन्सा’ धरके गया पल्ल पुखी नहीं बिचर बिलों न प्राप मुकाय ।
 रंग्य गया पाप नहिं पुखे भावें ली-ली धोते जाय ॥'^२
 बुसा' मुखा से मत्तलबी, बोहाबा इको बित ।
 लोकां करे जातना प्राप हुरेरे बिचन ॥'^३

धार्मिक नीति—कृि सुको भोग सिद्यामठः जन को हेय ही मानते के धरत
 इन सिद्यामठ-बहुम फुटकम रचनाओं में जन के महत्वादि का उल्लेख नहीं है। जब यह
 संसार ही सूठा है तब इसकी जन-सम्पदा धोर विभिन्न भोग कहाँ छप्य हो सकते हैं ।
 जायसी के मत में प्रेम रस की तुलना में जन धीर उज्ज्वल भोगों के रस पीके हैं—
 यह संसार फूट बिर लागी । जठहिं मैघ बैजं बाइ बिलाही ॥
 जो एहि रस के बाएँ नपूज । तेहिं कहुँ रस बिप नर होइ पपूज ॥
 तेइ सब राजा धरप बैबहाक । धी धर बार कुनुम परिबाक ॥

और बाँट तेहिं मोठ न लागी । जहँ बार होइ भिषखा मापी ॥'^४
 इतरप्राणिविषयक नीति—इन स्पुट काव्यों में मसूरी-मांस धारि हिंसा के
 प्राप्त होने वाली वस्तुओं का ही नहीं बूब भी धारि पयाओं के खेवन का भी प्रतिषेध
 किया गया है। कारण यह कि वे पदार्थ सुपीष्टिक होने के कारण कामबर्द्धक और अधिक
 माय में बाधक हैं—

सांभु धिउ ली मसूरी मांहु । तुये भीजन करहु परासु ।

- १ जायसी के परबर्ती, पृष्ठ ३२२
- २ सत्यवाणी संघर्ष भाग १ (बैतवेदियर प्रेस प्रयाग सन् १९६६ ई.) पृष्ठ १३२
- ३ सत्यवाणी संघर्ष भाग १ (बैतवेदियर प्रेस प्रयाग सन् १९४६), पृष्ठ १३४
- ४ जायसी पत्रिकाधी (धरतराबड) पृष्ठ ३१५
- ५ मरुहृदि शतकप्रयाग पृष्ठ १०३१००

दुप मांसु बिद कर न प्रहाव । रोटी घानि करतु करहाक ॥
एहि बिधि काम घटावतु काया । काम भीम सितना मव माया ॥^१

विधित नीति—प्रभु नीति, संसार की घसल्यता, मृत्यु की घनिवार्यता, उपदेश
बेताबनी आदि विषयों की कविता जितनी इन स्फुट काव्यों में है घसका सड़
खास भी प्रेमकथानकों में नहीं । कारण इन कृतियों की रचना प्रत्यक्ष रूप से इन्हीं
विषयों के प्रतिपादन के लिए की गई है । अथवा की भ्रामकता के विषय में तजीर ने
लिखा है—

कोई ताज करीबे हुँतकर कोई तस्त खड़ा बनता है ।
कोई कपड़ रंगे पहने है कोई गुबकी मोड़े खाता है ।
कोई भाई बाप बचा नाता कोई नातो पुत कहता है ।
बच देखा कुछ तो भाखिर की ना रिस्ता है ना नाता है ।
गुस छोर बड़ला घाग हवा भीर कीबड़ पानी मिट्टी है ।
हम देख चुके इस दुनिया को यह बोखे की सी टही है ॥^२

इस बनत में सर्वना मुको कोई नहीं जहाँ मुज है वहाँ कुछ भी घनिवार्य है—

जहाँ पीत तहाँ बिरह है जहाँ मुज कुछ देख ।

जहाँ कूल तहाँ कति है, जहाँ बिरह तहाँ देख ॥^३

किसी किसी कवि की रचना में पुनर्जन्म का विचार मुत्तर हो पठा है । मारवाड़ी
हरिवा का बचन है—

बीबत मुज-मुज में बिल भरै, मुधा परै बीरानी परै ।

जान हरिया बिल राम न घ्याया, बसुवा ही ज्यों जनय यवाया ॥^४

स्फुट सूफी काव्य पर एक दृष्टि

नीतिकाम्य की दृष्टि से उपनयन स्फुट सूफी काव्य का महत्त्व प्रेमकथानकों की
घपेखा कम है । दोनों का चरम जहेस—सूफी-साधना द्वारा प्रभु प्राप्ति—समान होते
हुए भी घमिर्घालि में पर्याप्त घन्तर है । प्रेमकथानकों में इस लक्ष्य की जिद के लिए
प्रायः हिन्दू-समाज में प्रचलित लीकिक प्रेम कथानों को माध्यम बनाया गया है और
प्रस्तुत कृतियों में सूफी सिद्धान्तों की चर्चा स्पष्ट रूप से ही की गई है । संक्षेप में यों
कह सकते हैं कि जहाँ प्रेम-कथानों का आशावरस ऐदिकता प्रबान है वहाँ इन कृतियों
का आध्यात्मिकता और नैतिकता-प्रधान । जैसे उनमें आध्यात्मिकता कहीं-कहीं ही

१ जायसी घग्पावनी (घजराबट) पृष्ठ ३२०

२ जायसी के परबर्तो० पृष्ठ ३१२

३ वैनी : वेमरकास, पृष्ठ २०

४ जायसी के परबर्तो० पृष्ठ ३१०

के सम्बन्ध में शीनहरवेण का कथन है—

माया माया करत है, खर्चा खाया नाहि ।
तो नर ऐसे चाहिगे, ज्यों बाहर की छाहि ॥
ज्यों बाहर को छपहि जायगा प्रामा खेसा ।
जामा नहि जगदीश प्रीति कर बोझा पंसा ॥
कहु शीन हरवेण नही कोइ प्रम्भर काया ।
खर्चा खाया नाहि करत नर माया माया ॥^१

रस और भाव—इन श्रेष्ठ प्रकृत रचनाओं में न रसों की विविधता है न ही परिपाक। शान्त रस तथा निर्द्वेष ग्लानि ईश्वर विबोध यति प्रादि भाव ही यत्र-तत्र स्थित हुए हैं।

भाषा—अधिकतर स्फुट मूलीकाव्य लिखित प्रश्नों द्वारा नहीं व्युत्पन्नरा से हम तक पहुँचा है। इन मौखिक आशान-प्रदान के कारण यह कहना कठिन है कि सूची-सूची की रचनाओं की भाषा में क्या और कितना हेर-फेर हुआ है। प्राप्त रचनाओं की भाषा प्रथमो द्वय पंजाबी वा पंजाबी-मिश्रित द्वय है। प्रेम उपानमों की अपेक्षा इन रचनाओं में फारसी शब्दों प्रादि के अन्त और बाह्योप बहुत अधिक मिलते हैं। सम्भवतः इसका कारण यह है कि प्रेम-काव्यों के प्रसमान ये रचनाएँ जनसाधारण के लिए नहीं अपितु वन शिष्यों और शस्त्रियों के लिए की जाती थी, जो इन शास्त्रों के निकट श्रम कर्म में रहते थे और इनके उपदेशों में सामान्यतः होने के कारण इस्लाम के पारभाविक शब्दों से भी परिचित थे। लोकोक्तिों तथा कथियों की भी इनकी भाषा में कमी नहीं है। इस प्रसंग में अधिक न कहु कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होना—

- (क) मीहु कोहु मन में अरे, प्रेम पाप को जाय ।
जसी बिराई हज्ज को, मो सी बूहे जाय ॥^२
- (ख) बीरी तो मैं कठिन है, बीजे नाहि प्रयाय ।
कुत्ता खोच बढ़ाएय, बाली खाटन जाय ॥^३
- (ग) 'तसबिह' कहियो 'ताम' नू 'तौबिह' कज्जै बखान ।
मरे तु पुरी बेकिहै हम क्या करे बिनाम ॥^४

काव्य-विद्यान-तथा उद्देश—अधिकतर स्फुट मूलीकाव्य मुस्तक रूप में है और उसमें बोधा (साक्षी समोक) सर्वथा कबित अन्वय, मूलना कृत्रिमता तथा फारसी की

१ परशुराम चतुर्वेदी-मूलीकाव्य संग्रह, पृष्ठ २९०।३

२. बरकतजनाहू पेयो-पैमप्रकाश, पृष्ठ ११।६६

३ " " " " ३१।२५

४ " " " " २।२४

कुछ बहुरों का प्रयोग किया गया है। बायसी-रुठ 'धाबिरी-कनाम' तथा 'घसरावट' का कुछ भाग निबन्ध-काव्य के अन्तर्गत बहानीय है। प्रथम कृति में चौपाई-बोहा का तथा द्वितीय में चौपाई-बोहा-सोरठा का प्रयोग किया गया है। परन्तु यहाँ इतना स्मरणीय है कि जहाँ इन रचानाओं में दो-एक घसरावटों या माभाओं का इधर उधर होना साधारण बात है वहाँ छन्दों के नाम भी कई स्थलों पर भ्रामक है। उदाहरणार्थ २६ माभा के मूलना छन्द में ७७७२ पर यति होती है और अन्त में गुरु-सङ्घु अक्षर होते हैं जैसे—

‘तब लौकनाच बिसोकि कै रघुनाच को निज हाथ ।’ (वेदप्रकाश)

परन्तु यारी साहब का एक मूलना देखिए, जिस पर न उक्त अक्षर परिवर्तन होता है न चारों चरण समान हैं—

घाँसों सेती धो दिखये, सो तो घालम फानी है।

कानों सेती जो सुनिये रे, सो तो लीसे बहानी है ॥

इस बोलते को बलटि देखे छोई धारिछ सोई जानी है।

यारी कहै यह कृष्णि देवा, धीर सबे तावानी है ॥^१

पैमी^२ कवि ने 'वेदप्रकाश' में 'कवित्त' छन्द का प्रयोग मनहरण तथा सबैया दोनों छन्दों के लिए किया है।^३ सम्भव है दोनों छन्दों के परंपरिक प्रचार और प्रायिक सहवर्तित्व के कारण अनसाधारण में दोनों छन्दों के लिए एक कवित्त छन्द का ही प्रयोग बल पड़ा हो। यहाँ पर यारों के नाम का निर्देश अनेक कवियों ने किया है परन्तु पैमी द्वारा कवित्त पर उपनाम (जै अबन्दी) का उल्लेख^४ यह सूचित करता है कि कभी कभी कवित्त विविष्ट यारों में पाये भी जाते थे।

सैनी—सुकुं सूकी काव्य में प्रायः निम्नलिखित सैनियाँ व्यवहृत हुई हैं—
 लघ्वनिक्यक सैनी उपदेशात्मक सैनी धारमाभिर्यंत्रक सैनी सन्भावर्तक सैनी संवा
 वारयक सैनी कूट सैनी पदसंघी धठवार सैनी वारहमासा सैनी धीर ककका सैनी।
 ककका सैनी में जहाँ भारतीय कवियों ने अथवा या हिन्दी आदि में देवनागरी लिपि के
 घसरावटों के आचार पर कविता की भी जहाँ सुफियों ने देवनागरी के प्रतिरिक्त उरारी लिपि
 का भी आशय किया है। बायसी की 'करावट' तथा आन कवि का 'बर्ननामा' तो देव
 नागरी के आचार पर रचित है और यारी साहब का 'सलिक-नामा बजहान का पवि
 कवाए' (बजहान नामा) तथा कुस्सेघाह की 'सी हूर्थी' उरारी लिपि के आचार पर।
 यहाँ एक बात धीर ध्यान देने योग्य है। जहाँ कुछ कवि देवनागरी घसरावटों के सामान्य
 अन्वाराह—क क न धारि—का सामय सैकर पद्य रचना करते हैं वहाँ कुछ कवि

१ परदेवराजस्य छन्द सिद्धा पृष्ठ १११

२ परचुराम अनुबेरी सुक्री काव्यसंग्रह पृष्ठ २११

३ वेदप्रकाश पृष्ठ १६-१७

४ पैमी वेदप्रकाश पृष्ठ ११

धीर के समान' इन के बोहरे रूपों—कपटा बचका—पारि का । दोनों निपियों के
इस उदाहरण देखिए—

(क) बेचनागरी बलमाता सामान्य रूप
कपटाबकर-तन माई मन सुते । कपटह माह पूल बनु पून ॥^१ (जायसी)

(ख) बेचनागरी बलमाता बोहरे रूप
इहं देहु पाहि नाम को अपहु धनपरिन रैन ।
संतन की यह रीठ है सुनिरन ही में खन ॥^२ (जान कवि)

(ग) पारसी बलमाता :

साम—बरा भी शक ना रख मनतें तुहीं होहु बेअरक पुर कसम साईं ।
जिबें सिध मुझाय बल भावए नूं, परे पास मिल अजामें अजाग्याईं ॥^३ (कुनै-साह)
धर्मकार— अज्ञानकारों में प्रनुमास धमक तथा बोप्या का धीर अर्थानकारों
में सपना धीर सांग क्यक का प्रयोग अम्य धर्मकारों की अवेसा अर्थिक हुमा है ।
जायसी तथा पैमी की अवेसा अम्य कवियों में धर्मकार प्रयोग अर्थिक स्वामाधिक लगता
है । पैमी में लोकोक्ति धर्मकार का प्रयोग भी प्रचुर है धीर सतो के बलुंग में प्रमुक्त
निम्नलिखित उल्लेख तो हिन्दी-साहित्य में प्रचुरी ही है—

तब लोरहु तिमार बनी लबसा पिय-कामिनि ।

कंठम-अप्य मुझ मेंन अंग अंगन इतरामनि ॥

पती संव धा रहैं लबल नारी मगरबन ।

रोम-रोम उस्ताह बाह-बुबे बल खंजन ॥

अति हुलास हित बित कर चिता, बैठ लियो उन अंक धल ।

कवि कहत परनिनी रूप अवि, अंगन मुझ कुतिबो कमल ॥^४

गुल-बोध—फट्ट फट्टी रचनाओं में प्रोज तथा भावुर्म की मात्रा अत्यन्त ही कम
है । अवाद निस्तम्बेह व्यापक है परन्तु अहाँ कवियों ने रेकडा, उलटबांसी या इस्लाम क
पारिभाषिक शब्दों तथा भाषा शैली का प्रयोग किया है अहाँ उलका भी अभाव हो जाता
है । इन रचनाओं में हतवृत्तत्व बोध व्यापक-ता है, यह अजर कह ही चुके हैं ।

सन्तों और सुफियों के नीतिकाव्य की तुलना

अपर हम देल चुके हैं कि सन्तों का नीतिकव्य स्वरूप में ही अलग-अलग होता

१ कबीर अम्याबसी पृष्ठ ३१०-३१३

२ जायसी अम्याबसी (अखराष्ट), पृष्ठ ३१४

३ जान कवि, बन-नामा, जायसी के परबतों, पृष्ठ २६६

४ कुनै-साह सीहणों परगुराम बनुरेबो सूखेकाव्य सपह पृष्ठ २१६

५ पैमी वेमप्रयाग, पृष्ठ २६-२४

कुछ बहनों का प्रयोग किया गया है। बावली-कृत, 'माखिरी कसाम' तथा 'घरघरघट' का कुछ भाग निरुद्ध काम्य के अन्तर्गत मूलनीय हैं। प्रथम कृति में बीपाई-दोहा का तथा द्वितीय में बीपाई-दोहा-सोरठा का प्रयोग किया गया है। परन्तु यहाँ इतना स्मरणीय है कि यहाँ इन रचनाओं में दो-एक प्रसंगों या मामलों का इपर उबर होता साधारण बात है यहाँ कवियों के नाम भी कई स्थलों पर आया है। उदाहरणार्थ २६ मापा के मूलनाम अन्त में ७७७२ पर बलि होती है और अन्त में गुद-जन्तु घसर होते हैं जैसे—
 सब लीकनाम बिलोकि के रघुनाथ को निज हाथ ।^१ (दोहाबला)

परन्तु यारी साहब का एक मूलनाम देखिए, जिस पर न उबर लक्षण भरिताई होता है, न चारों चरण समान हैं—

धीरों सेती घो दिखये, ली ली आलम फानी है।

काबों सेती जो सुनिये है, सो लो जैसे कहानी है ॥

इत बोलते को उलखि देखी, छोई प्रारिख छोई आनी है।

यारी कही यह कृषि देखा, धीर सब नावानी है ॥^२

पैमी' कवि ने 'वैमप्रकाश' में 'कवित्त' शब्द का प्रयोग मनहरण तथा सर्वत्र दोनों शब्दों के लिए किया है।^३ सम्भव है दोनों शब्दों के अत्यधिक प्रचार धीरे प्रायिक सहस्रवर्ष के कारण अन्तसाधारण में दोनों शब्दों के लिए एक कवित्त' शब्द का ही प्रयोग बन गया हो। यहाँ पर दोनों के नाम का निर्देश अनेक कवियों ने किया है परन्तु पैमी द्वारा कवित्त पर उपनाम (जै जैवन्दी) का अस्सेख^४ यह सुचित करता है कि कभी कभी कवित्त विशिष्ट रूपों में पाये भी जाते थे।

दौबी—सुक्री काम्य में प्रायः निम्नलिखित छंदियाँ व्यवहृत हुई हैं—
 तन्वतिकरक दौबी उपदेशात्मक दौबी पारमाभिन्त्रक दौबी, अन्वार्त्तक दौबी अथवा अन्वार्त्तक दौबी कूट दौबी बहदौबी अठबाण दौबी बारहमासा दौबी धीर कनका दौबी। कनका दौबी में यहाँ भारतीय कवियों ने प्रथम स हिन्दो प्रादि में देवनागरी लिपि के प्रयोगों के साधारण पर कविता की भी यहाँ सुकियों ने देवनागरी के अतिरिक्त प्रारंभी लिपि का भी आशय लिया है। बावली की 'कटाघट' तथा बान कवि का 'वर्ननामा लो देव नागरी के साधारण पर रचित है धीर यारी साहब का 'मलिङ्गनामा बजहल का मलि फज' (बजहल नामा) तथा कुल्लेसाह की 'ली हली' प्रारंभी लिपि के साधारण पर। यहाँ एक बात धीर ध्यान देने योग्य है। यहाँ कुछ कवि देवनागरी अक्षरों के साधारण अन्वार्त्तक—क ख ग घादि—का आशय लेकर वच रचना करते हैं यहाँ कुछ कवि

१ चरमेरवरात्मक अन्त सिद्धा पृष्ठ ११६

२ परशुराम अनुबेदी सुक्री काम्यसंग्रह पृष्ठ २१३

३ वैमप्रकाश, पृष्ठ ६६-६७

४ पैमी वैमप्रकाश, पृष्ठ ६३

कबीर के समान^१ इन के शोहरे कर्पो—कपडा चबडा—घारि का । दोनों किरियों के कज उदाहरण देखिए—

(क) बेचनापरी बरुमाता तामान्य रूप
झा-झौलर-तन मह मन भूसे । काठम्ह माह कूत बनू कूसे ॥^२ (बापसी)

(ख) बेचनापरी बरुमाता शोहरे रूप
दई देहु यहि नाम की, अप्ठु घलपबिन रैन ।
सतन की पठु रीत है मुमिरण ही में बन ॥^३ (बाग कवि)

(ग) पारसी बरुमाता :

नाम—बरा भी घकक ना रल मनतें तुहीं होहु बेदानक खुर कसम साईं ।

जिबें तिध मुझाय बल प्रापलें नूं बरे घात मिल धबार्में धबार्माई ॥^४ (बुल्लेसाह)

धर्मकार—^५ धर्मकारों में अनुप्रास समक तथा बोधका का और धर्मनकारों में उपमा और छंद रूपक का प्रयोग अन्य धर्मकारों को थपेसा धर्मिक हुआ है । बापसी तथा पैमा की प्रेरणा अन्य कवियों में धर्मकार प्रयोग धर्मिक स्वामाधिक समता है । पैमा में सोकोक्ति धर्मकार का प्रयोग भी प्रचुर है और छंदी के वर्णन में अनुप्रास निम्नलिखित उत्प्रेषणा ही द्विती-आहित्य में प्रकृष्टी ही है—

सब सोरुह निगार बली नबसा विप-कामिनि ।

कंबल-रूप मुख नन धम धंयन इतरायनि ॥

पती संप धा बहैं, नबल नारी मगरदल ।

रोम-रोम उस्ताह बाहु-बुबे बख खंजन ॥

धति हुलास हित बित कर बिठा, बेंठ लिये उन धक बल ।

कवि कहत परमिनी रूप छवि, धयन बुझ पुसिबो बमल ॥^६

गुल-बोध—सूट^७ श्री रचनाओं में बोध तथा साधुय की भाषा धरमज ही कम है । प्रभाव निस्सन्देह व्यापक है परन्तु वहाँ कवियों ने रेखा उदन्तबीगी या इस्लाम के पारिभाषिक धर्मों तथा बाण धर्मों का प्रयोग किया है, वहाँ उपमा भी प्रभाव ही उदा है । इन रचनाओं में हलन्तत्व बोध व्यापक-आ है, यह ऊपर यह ही बुझ है ।

सस्तों और सूक्तियों के नीतिवाच्य की तुलना

ऊपर हम देख चुके हैं कि अन्तों का नातिक्रम्य लक्षण कर में ही उदन्तत्व

१ कबीर धर्मवाणी पृष्ठ ११०-१११

२ पारसी धर्मवाणी (धर्मवाणी), पृष्ठ ११६

३ बाग कवि कनकना बापसी के परवर्ती, पृष्ठ १६६

४ बुल्लेसाह कीहर्षो परापुरान बनुरेयो नृयेकम्ह बन्नु कूड ३१६

५ पैमा धर्मकार पृष्ठ, ८१-८४

[हिन्दी में नाति-काव्य का विकास

है परन्तु सूक्तियों का प्रेमकथा तथा स्फूर्त दोनों रूपों में। बौद्ध सत्तों के नीतिकाम्य का सूक्तियों की प्रेमकथाओं के नीतिकाम्य से वैपम्य है और स्फूर्त नीतिकाम्य से साम्य, इत लिए सौकर्य की दृष्टि से तुमनात्मक विवेचन को दो बनों में विभाजित करना उचित होगा—

- (क) सत्तकाम्य और सूफी प्रेमकथात्मक काव्य
(ख) सत्तकाम्य और सूफी स्फूर्त काव्य

(क) सत्त-काव्य और सूफी प्रेमकथात्मक काव्य

सत्त-काव्य और प्रेमकथाओं की तुमना करने पर विरिष्ठ होता है कि सत्तों ने शरीर और पठन-पाठन की उपेक्षा की है परन्तु सूक्तियों ने दोनों बातों का उचित महत्त्व प्रकटित किया है। सत्त तो कविनी की निम्ना करते न सकते थे परन्तु प्रेम का धीरो पाँव बर्लन सूक्तियों का मुख्य विषय है। सत्तों की रचनाओं में सब पारिवारिक सम्बन्ध सूक्त और सम्बन्धी स्वार्थी बढाये गए हैं परन्तु प्रेमकथाओं में उन सब के प्रति कर्तव्य पालन की प्रबल प्रेरणा की गई है।

प्रेम का महत्त्व साम्य की सेवाभावना हिन्दू मुस्लिम का ऐश्वर्य धारि भाव तो दोनों में तुम्य है परन्तु पूर्व-पूजा तीर्थादि का जो कथन सत्त काव्य में सुमन है वह यहाँ दुर्लभ है। और इस सत्त का कारण भी गूढ नहीं है। सत्तों की रचनाएँ विद्यात्मक रूप में हैं और इनकी प्रायः हिन्दू कथाओं के रूप में। इसलिए इन कथाओं में हिन्दू साम्यताओं और विस्वासाओं का यथा-सम्भ विषय भी धारणक ही था। फिर भी इस बात का श्रेय उन्हें देना ही होगा कि अपने मठ में सुदृढ़ होने पर भी इन्होंने हिन्दुओं की रीति-नीति के बर्लन में बढाभवात्म्य संश्लेष से काम नहीं लिया जोदार्थ का ही प्रयत्न किया है। सत्तकाम्य सत्तुओं के प्रति भी धीरार्थ का उपदेश देता है। परन्तु इनमें 'जैसे की जैसा' की नीति भी पाई जाती है। जन का महत्त्व इन काव्यों में उठता नहीं है परन्तु उतनी जगपक व तीव्र नहीं जितनी सत्तकाम्य में। संसार की बघारता जीवन की नस्कारता साम्यदेखा धारि के विचार दोनों में समान हैं परन्तु विवेचनमन के हानि ताओं की बचा सूक्तियों में ही है सत्तकाम्य में नहीं।

(ख) सत्त काव्य तथा सूफी स्फूर्त काव्य

अगर हम कहें कि सत्त-कवियों के नीतिकाम्य तथा सूक्तियों के स्फूर्त नीतिकाम्य में भाव-साम्य है। दोनों की वहिद्वय नीति समान है। यदि वह साम्य भावों तक ही सीमित होता तो हम कह सकते थे कि निगुणों वासक पाप या प्रेमी होने के कारण ही इनकी नीति ऐद्विष्टता-बिभुक्त तथा परबार्थ की ओर उगुक्त हो गई है। परन्तु ध्यान से देखने पर विरिष्ठ होता है कि इनके नीति-काव्यों में विषयों के प्रतिरिक्त

परिम्यक्ति का भी साम्य है और यह साम्य नहीं कहीं तो इतना अधिक है कि उसे प्राकृतिक मानना कठिन हो जाता है। जैसे—

बिरहा बुरहा जिनि कही, बिरहा है सुखितान ।

जित घट बिरह न संभरे, सो घट तदा मसान ॥^१ (कबीर)

बिरहा-बिरहा घालीये, बिरहा तू सुखतातु ।

‘करीबा’ जितु तनि बिरहु न रूपमें से तनु बाछ मताछ ॥^२ (देसफरीब)

दोनों दोहों का भाव और भाषा समान है केवल, पंजाबी होने के कारण कबीर की म पा में पंजाबी का कुछ पुन रूप है।

काम्ह करे सो घाम कर, घाम करे सो घाम ।

पल में परने होयपी, बहुरि करेगा काम ॥^३ (कबीर)

करना होय सो घाम कर, काल परों के घाम ।

‘हाजी’ बुलहिम सातरे, तास न माने साइ ॥^४ (हामीबली)

कृि कबीर का स्फुरण-काल स्फुर काव्यों के रचने का अधिकतर मूळी कवियों के प्राचीन है यद्यपि अनुमान स्वामाधिक है कि प्रायः मूळी कवि सप्तकाम्य से प्रभावित हुए हैं। परन्तु जब हम कबीर की रचना की तुलना कुमारो से करते हैं तो दिव्यो के प्रथम मूळी कवि माने जाते हैं, तब हमें यह मानना पड़ता है कि कबीर को मूळी-प्रभाव के प्रसृष्ट न थे। जैसे कसरी का मृत्यु-विषयक एक पर हम प्रकार है—

बहुत रही बाहुत पर बुलहिम, चल तेरे पी नै बुलाई ।

यहुत पैल पोसी सकियन सों घंत करो करिकाई ॥

गुहाय भोग के बस्तर पहिरे, बबहि नियार बनाई ।

बिरा करन को बुहुम्य जब भाये, तियरे लोप जुलाई ॥

घार कहारन बीबी उठाई संघ पुरोहित नाई ।

जसे हो बनेमो होत कहा है नयनन नीर बहाई ॥^५

यद्यपि कबीर की तुलना कबीरजी के हम पर से कीजिए—

घाई यवनन की सारी जमिदि अयहो मोरी बारी ।

साज समान पिपा नै घाये और बहुरिया बारी ।

बन्हना बेबरबी अचरा पररिसे भारत पठिया हमारी ।

सखी सब पावत मारी ॥

१ कबीर सम्याबली, पृष्ठ ६। २।

२ मूळी काव्य संग्रह, पृष्ठ, २११। २

३ कविता कौमुदी भाग १, पृष्ठ १२१। १६

४ मूळी काव्य संग्रह, पृष्ठ २२७। ६

५ मूळी काव्य संग्रह पृष्ठ २०२

है परन्तु मूर्खियों का प्रेमकथा तथा स्फुट, शोनों कर्मों में। बूढ़ि सत्तों के नीतिकाम्य का मूर्खियों की प्रेमकथाओं के नीतिकाम्य से बेपरव्य है और स्फुट नीतिकाम्य से साम्य, इस सिद्ध धीकर्म की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन को दो बनों में विभाजित करना उचित होगा—

- (क) सत्तकाम्य और सूफी प्रेमकथात्मक काव्य
(ख) सत्तकाम्य और सूफी स्फुट काव्य

(क) सत्त-काव्य और सूफी प्रेमकथात्मक काव्य

सत्त-काव्य और प्रेमकथाओं की तुलना करने पर बिहित होता है कि सत्तों के धीर और पठन-नाठन की उपेक्षा की है परन्तु मूर्खियों ने शोनों बाटों का उचित महत्त्व प्रबलित किया है। सत्त तो कानिनी की निम्ना करते न बचते थे परन्तु प्रेम का धीमो पाय बर्णन मूर्खियों का मुख्य विषय है। सत्तों की रचनाओं में सब पारिवारिक सम्बन्ध मूठे और सम्बन्धी स्वार्थी बताने गए हैं परन्तु प्रेमकाम्यों में उन सब के प्रति कर्तव्य पालन की प्रबल प्रेरणा की गई है।

पुरुष का महत्त्व सिध्य की सेवाभावना हिन्दू मुस्लिम का ऐक्य धारि भाव तो शोनों में तुल्य है परन्तु पूर्व-पुरुषा तीर्थादि का जो उन्नत सत्त काव्य में तुल्य है वह यहाँ दुर्लभ। धीर इस सत्तर का काव्य भी गूढ़ नहीं है। सत्तों की रचनाएँ सिद्धान्त रूप में हैं और इनकी प्राय हिन्दू कथाओं के रूप में। इसलिये इन कथाओं में हिन्दू धार्यताओं और विचारों का सवा-सध्य विमल भी धारक्य ही था। फिर भी इस बाग का योग इन्हें बना ही होगा कि अपने मत में गूढ़ होने पर भी इन्होंने हिन्दुओं की रीति-नीति के बर्णन में मन्त्रात्मकतात्मक संकोच से काम नहीं लिया धीरार्थ का ही प्रयय लिया है। सत्तकाम्य पञ्चुओं के प्रति भी धीरार्थ का उदरेष है। परन्तु इनमें 'बेधे की उँठा' की नीति भी पाई जाती है। जन का महत्त्व इन काम्यों में जतना दुर्लभ नहीं जितना सत्त काव्य में। इपर प्राणियों के प्रति दया भावना दिखाई तो यह है परन्तु जतनी ब्यापक न तीव्र नहीं जितनी सत्तकाम्य में। समार की बसाराता जीवन की नरबराता साम्बरेखा धारि के विचार शोनों में समान हैं परन्तु विवेकधमन के हाति लामों की बर्षा मूर्खियों में ही है सत्तकाम्य में नहीं।

(ख) सत्त काव्य तथा सूफी स्फुट काव्य

अगर हम कह चुके हैं कि सत्त-कवियों के नीतिकाम्य तथा मूर्खियों के स्फुट नीतिकाम्य में माद-साम्य है। शोनों की पद्धिब नीति समान है। यदि यह साम्य बाबों सत्त ही सीमित होगा तो हम कह सकते थे कि निपुणों पासक मरत या प्रीथी होने के कारण ही इनकी नीति ऐहिच्छता विमुक्त तथा परमार्थ की धीर उन्मुख हो गई है। परन्तु प्यान से देखने पर बिहित होता है कि इनके नीति-काम्यों में विषयों के अतिरिक्त

अभिप्यक्ति का भी साम्य है। और यह साम्य कहीं कहीं तो इतना अधिक है कि उसे आकस्मिक मानना कठिन हो जाता है। जैसे—

बिच्छा बुच्छा जिनि कही, बिच्छा है सुमितान ।

बिछत घट बिरह न लंघरे, सो घट सब मसान ॥^१ (कबीर)

बिरहा-बिच्छा प्राचीने, बिच्छा पू बुलतापु ।

'करीब' जितु तनि बिच्छु न अममें, से तनु बाछु मयाछु ॥^२ (शिवकवीर)

दोनों दोहों का ध्यान और भाषा समान है कबल, पंजाबी होने के कारण कवीर की म वा में पंजाबी का कुछ पुन स्पष्ट है।

कासह करे तो प्रात्र कर, प्रात्र करे सो अरु ।

पस में परने होमगो, बहुरि करेया कप ॥^३ (कबीर)

करना होय सो प्रात्र कर, काल परी है प्राङ् ।

'हाजी' बुलहिन साहरे, सास न माने जाङ् ॥^४ (हाजीबली)

चूँकि कबीर का स्फुरण-काल स्फुर काम्यों के रचि ता यमितकाम्य सुखी कवियों से प्राचीन है। परन्तु जब हम कबीर की रचना की तुलना कुमारों से करते हैं तो हिन्दी के प्रथम सुखी कवि माने जाते हैं। तब हमें यह मानना पड़ता है कि कबीर भी सुखी प्रभाव से प्रस्पृष्ट न थे। जैसे सचरी का मृदु-विषयक एक पद इस प्रकार है—

बहुव रही बाबुस पर बुलहिन, बल तेरे बी ने बुलाई ।

बहुत पैस पैसी सखियन लों अंत करो सरिकाई ॥

म्हाय भोय के पस्तर पहिरे, सबहि निगार बनाई ।

बिरा करन को बुदुम्य सब प्राये, सिगरे सोय सुगाई ॥

चार कहारन डोली छलाई, संव पुरोहित नाई ।

जैसे ही बनेपो होत कहा है, मयमन शीर बहाई ॥^५

पर उक्त पद की तुलना कबीरजी के इस पद से कीजिए—

प्राई गबनबा की सारो जगिरि प्रमही मोरी बारी ।

सात्र तामन बिवा लं प्राये और बहुरिया बारी ।

बन्हना बेबरडी प्रचरा पकरिकै मोरत गठिया हमारी ।

सखी सब पाबत गारी ॥

१ कबीर प्रभाषली, पृष्ठ ६। ११

२ सुखी काव्य संग्रह, पृष्ठ, २११। ९

३ कविता कीदुबी, भाग १, पृष्ठ १२६। १६

४ सुखी काव्य संग्रह, पृष्ठ २२७। ६

५ सुखी काव्य संग्रह पृष्ठ १०२

[हिन्दी में नीति-काव्य का विकास]

बिनाप प्रति काम कसु समझ परत ना, बेरी कई महतारी ।
रोय रोय संसियाँ मोर पौछत घरबा से बैत निकारी ।
मई सबको हुम मारी ॥'

बूँक कबीर के पूर्व का स्पूट सूछी काव्य धार्मिक प्राण्ड नहीं होता इसलिए उप-
सभ्य सामग्री के आधार पर इसके धार्मिक कहना उचित न होया कि वहाँ कबीर धार्मि
कुछ माता में सूछी काव्य के लए हैं वहाँ स्पूट सूछी काव्य भी सग्लों का कथाबिद्
मयेदाकृत धार्मिक सामग्री है । इस प्रकार सभभय समकालीन होने पर दोनों सम्प्रदायों
के नीतिकार्य में कुछ साद्वान प्रदान होता रहता था ।

निष्कर्ष

सूच्यो-साहित्य के उपर्युक्त विवेचन से हम सहज ही निम्नलिखित मुख्य निष्कर्षों
पर पहुँचते हैं—
१ सूच्यो कवि मुख्यतः नीति-कवि न के धार्मिक कवि थे ।
२ वस्तुतः उन्होंने धार्मिक जर्जस्य से ही प्रेमकथानकों तथा स्पूट कृतियोंकी रचना
की ।

- ३ प्रेमकथानकों में प्रथमसय सब प्रकार की नीति पर्याप्त मात्रा में सम्मिश्रित है ।
- ४ सब नीतियों में पारदर्शिक धर्माद् स्वकीया-परक उत्सर्गिक तथाकथितहिन्दु
प्रेम से सम्मिश्रित नीति का प्राधान्य है ।
- ५ स्त्री के शीस तथा सतीत्य पर बहुत बल दिया गया है, परन्तु पुरुष के सम्बन्ध
में मीन बहुत कटकटा है ।
- ६ भिन्नतया परमेस्वर की प्रतीक धारण है परन्तु सामान्यत स्त्री का स्वान पुरुष से
निम्न ही दिखाया गया है ।
- ७ मुसलमान होते हुए भी इन कवियों द्वारा माँग मछली धार्मिक का निवन्ध तथा
सग्ल होते हुए भी विवेच-पमन जन महत्त्व बँधे को टीसा धार्मिक विषयों का
निरूपण विवेचन रूप से द्रष्टव्य है ।
- ८ भारतीय कथानक वातावरण माया तथा छन्द धीर विदेसी मसनवी शैली
तथा ऐतिहासिक धीर वीराणिक कथाओं का समावेश दो संस्कृतियों का सुन्दर
मिश्रण है ।
- ९ स्पूट सूच्यो काव्य देखितवा तथा सरसता की कमी के कारण विवेचन महत्त्वपूर्ण
नहीं तथापि जनमें धारा धीर शैली की विविधता प्रसंसनीय है ।
- १० जीवन के सभी क्षेत्रों में सरस रीति से मार्ग प्रदर्शन के कारण सूच्यो प्रेमकथाओं
के नीतिकार्य का हिन्दी नीतिकार्य में प्रसस्त स्थान है ।

कविता-कौमुदी भाग १ पृष्ठ १७१

(ग) रामकाम्य में मोति-तत्त्व

सत्तर बारस में स्वामी रामानन्द ने भक्ति की जिस बेमती तरंगियों को प्रवाहित किया वह वो चारों में विभक्त हो गई—निर्बुन घोर सपुण्ड । निर्बुन चारा में कबीर, मानक दादू आदि सत्तों ने भक्ति का कुछ प्रकार ही किया और 'राम' का मुखवाच भी किया परन्तु उनके राम ब्रह्मांड के प्रसु परमाणु में रमने व ले परब्रह्म ही थे, दशरथाश्रितिविहारी नहीं । कबीर का कथन है—

दशरथ कुल प्रवर्तरी महि घापा । महि लंका के राय सताया ।

महि देवदत्त के परमहि घापा । नहीं यमोवा गोद खिनाया ॥^१

इसके विपरीत सगुण चारा में जिन राम के चरित्र का यथोमान तुलसीदास, जगन्नाथ प्रसाद ब्रह्मदास हृदयराम आदि कवियों ने किया है वे प्रसुण्ड प्रकृत्य प्रसन्न और प्रसन्न होते हुए भी पुर, भुपुर, सुरभि, तथा प्रकृतों के कष्ट नष्ट करने को दशरथ-मुक्त के रूप में प्रवर्तित हुए थे—

बन बन होइ परम क हानि । पाईहि भुपुर प्रथम अभिमानो ॥

करहि प्रनीति पाइ महि बरनो । सोबहि विप्र जेनु सुर परनो ॥

भुपुर मारि पापहि सुरगह, राखहि निज भुति-सेतु ।

बन बिस्तारहि बिसर बस, रामभग्न कर हेतु ॥^२

(गोस्वामी तुलसीदास)

सोभाम्य से रामकाम्य के प्रणेतारों ने सुरदास के प्रसमान, श्री रामचन्द्र के समस्त जीवन को अपने काम्य का विषय बनाया है । इन काम्यों में हमें श्रीराम के जीवन, काम्य कीर्दार्य जीवन प्रीतिरूप आदि सभी प्रवृत्तियों के वर्णन ही नहीं होते हैं हमें विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए भी ललित होते हैं । क्रमशः वे जनक-जननी की गोरी की शोभा बढ़ाते हैं नन्है-नन्है धनुष-बाण लेकर सरयू तीर पर बिहार करते हैं; मुह कसिष्ठ से सास्त्राम्यास तथा श्रुति विस्वामिष से सस्त्राम्यास करते हैं वन रसा टाड़का-बन तथा प्रहस्योद्यार करने के परचात् शिवधनुष धर कर सीता का परिग्रहण करते हैं प्रयोध्या सीटने पर दीवराज्य का उन्नास बन वास की विषयताओं में परिवर्तित हो जाता है वन में सीता का अपहरण होता है और वे रावणों का संहार कर जार्वा का उद्धार करते हैं तथा प्रन्त में कुछ राजकुमारों के उपशोच के परचात् प्रजा रंजन के लिए प्रिय पत्नी तक का परिह्राय कर देते हैं । तात्पर्य यह है कि जितने मुख-कुत्र और सत्तर चढ़ार एक सामान्य मानव के जीवन में प्रायः पाये हैं उनसे कहीं अधिक सम्भाव्य और भागिक परिस्थितियों में श्रीराम की जीवन चारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है । यही कारण है कि रामकाम्य का मुख्य विषय

१ प्रयोध्यातिह प्रपाप्यायः दबोर बधमावसी (काशी सं० २००३ पृष्ठ १८३)

२ रामचरित मानस गुदका (प्र० पीठायेस, गोरखपुर, सं० १०१३) पृष्ठ १०४

[हिन्दी में नीति-काव्य का विकास

बिनाप पति नाम कसु समझ परत ना, बेरी भई महतारी ।
रोय रोय अंतियाँ मोर भौंछत धरबा से बैत मिकारी ।

भई सबको हम भारी ॥'

बुकि कबीर के पूर्व का स्तुत सूखी काव्य अधिक प्राप्त नहीं होता इसलिए जग-
सभ्य सामग्री के आधार पर इसके अधिक कहना उचित न होया कि वहाँ कबीर यादि
कुछ मात्रा में सूखी काव्य के ज्वाला हैं वहाँ स्तुत सूखी काव्य भी सतों का कथावि-
प्रवेष्टाकृत अधिक सामग्री है। इस प्रकार सपभय समकालीन होने पर दोनों सम्प्रदाय
के नीतिकाव्य में कुछ आधार प्रदान होता रहता था।

निष्कर्ष

सूखी-साहित्य के उत्पन्न विवेचन से हम सहज ही निम्नलिखित मुख्य निष्कर्षों
पर पहुँचते हैं—

१ सूखी कवि मुकवत नीति-कवि न के धार्मिक कवि थे ।
२ वस्तुतः उन्होंने धार्मिक ज्ञान से ही प्रेमकथानकों तथा स्तुत कृतियों की रचना
की ।

३ प्रेमकथानकों में प्रसंगगत सब प्रकार की नीति पर्याप्त मात्रा में उल्लिखित है ।
४ सब नीतियों में धार्मिक धर्मार्थ स्वकीया-परक उत्सवपरिक तथा कष्टवहिन्य
प्रेम से सम्बन्धित नीति का प्राबल्य है ।

५ स्त्री के शील तथा सतीत्व पर बहुत बल दिया गया है, परन्तु पुरुष के सम्बन्ध
में यौन बहुत उल्लेख है ।
६ प्रियतमा परदेवर की प्रतीक धारण है परन्तु सामान्यतः स्त्री का स्वान पुण्य से
निम्न ही दिखाया गया है ।

७ पुससमान होते हुए भी इन कवियों द्वारा मान्य मछनी धादि का निषेध तथा
सम्प होते हुए भी विवेक-नयन मन बहुरथ जैसे को तँसा धादि विषयों का
निरूपण विषेय रूप से उल्लेख है ।

८ भारतीय कथानक नाट्यरूप भाषा तथा छन्द और विदेशी मयनवी संज्ञा
तथा ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों का समावेश दो संस्कृतियों का सुन्दर
मिश्रण है ।

९ स्तुत सूखी काव्य ऐतिहासिक तथा सरसता की कमी के कारण विषेय महत्त्वपूर्ण
नहीं तथापि उनमें भाषा और शैली की निश्चिता प्रसंगीय है ।

१० बौद्ध के सभी दोषों में सरस रीति से मार्मिक प्रदर्शन के कारण सूखी प्रेमकथानकों
के नीतिकाव्य का हिन्दी नीतिकाव्य में प्रचलन प्रदान है ।

१ कविता-कीमुदी भाग १ पृष्ठ १७१

(ग) रामकाव्य में नीति-तत्त्व

उत्तर भारत में स्वामी रामानन्द ने भक्ति की जिस बेमिसाली तरंगिणी को प्रवाहित किया वह दो कारणों में विभक्त हो गई—निर्गुन और सगुण। निर्गुन धारा में कबीर मानक बाहु धारि सत्तों ने भक्ति का तूफ प्रचार ही किया और 'राम' का मुखान भी किया परन्तु उनके 'राम' ब्रह्मांड के धातु परमाणु में रमने व नै परब्रह्म ही थे, ब्रह्मकारिर्बिहारी नहीं। कबीर का कथन है—

बसवत कुस प्रवतति नहिं प्राया । नहिं लंका के राय प्रताया ।

नहिं वैविकि के गर्बहिं प्राया । नहीं यगोबा मोर जिताय्या ॥^१

इसके विपरीत सगुण धारा में जिन राम के चरित्र का यथोमान तुलसीदास, मन्पादास धर्मदास वैद्यदास हृदयराम धारि कवियों ने किया है वे धर्मसु धर्म्य, अनन्य और अन्म होते हुए भी गुर भूसुर मुर्धनि तथा मन्तों के कष्ट नष्ट करने की बसवत-मुत् के रूप में प्रवतीर्ण हुए थे—

जब जब होइ परम के हाति । पाईहिं धमुर धपम प्रभिमानी ॥

कराहिं प्रनीति जाइ नहिं बरनी । सीबहिं विप्र बेनु मुर परनी ॥

धमुर मारि पापहिं धुरम्ह, राकहिं निज मुति-सेतु ।

जप बिस्तारहिं बिसर जप, रामबग्न कर हेतु ॥^२

(गोस्वामी तुलसीदास)

श्रीराम्य से रामकाव्य के प्रणेताओं ने सुरदास के समकाली श्रीरामकाव्य के समग्र जीवन को अपने काव्य का विषय बनाया है। इन काव्यों में हमें श्रीराम के खेचन, वास्य श्रीमार्ग, जीवन प्रीइत्य धारि सभी प्रवक्तव्यों के वर्णन ही नहीं होते, वे हमें विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए भी लक्षित होते हैं। क्रमशः वे जनक-जननी की पोषी की छोमा बढ़ाते हैं नन्हें-नन्हें अनुप-बाण लेकर सरयू धीर पर बिहार करते हैं गुह बसिष्ठ से धास्त्राम्यास तथा ऋषि विष्वामित्र से बरनाम्नास करते हैं यज्ञ रत्ना ताड़का-जप तथा महस्योद्धार करने के परचात् धिबजनु धन कर सीता का पारिग्रहण करते हैं प्रयोप्या लौटने पर मौबराज्य का उत्सास जन वास की विपमताओं में परिस्थित हो जाता है जन में सीता का प्रपहरण होता है और वे राक्षसों का संहार कर बापा का उधार करते हैं तथा अन्त में कुछ राजसूयों के उप भोग के परचात् प्रजा रंजन के लिए प्रिय पत्नी तक का परिस्वाग कर देते हैं। तात्पर्य यह है कि जितने गुण-दुःख और उदार बड़ाव एक सामान्य मानव के जीवन में प्राप्त होते हैं उनसे कहीं अधिक उच्चस्तर और मानिक परिस्थितियों में श्रीराम की जीवन धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। यही कारण है कि रामकाव्य का मुख्य विषय

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय: कबीर बचनावली (काशी, सं० १००३) पृष्ठ १६३

२ रामचरित मानस गुटका (प्र० गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० १०१३) पृष्ठ १०४

पीराम का चरित्रवान होते हुए भी उनमें नीति तब सुन्दर और व्यापक बन में व्यक्त हुआ है। वैसे तो नीति के पूर्वोक्त चर्चों प्रकारों पर इन कवियों ने प्रचुर मात्रा में काव्य रचना की है। तपानि साधेन हृष्टि से कह सकते हैं कि धर्म विचारों की अपेक्षा पारि वारिक तथा सामाजिक नीति पर इनकी हृष्टि अधिक केन्द्रित रही है।

वैयक्तिक नीति (क) शारीरिक नीति—राम-शास्त्र में शरीर के प्रति उत्तमी परामर्शिता तो हृष्टिबल नहीं होने की तबनी अन्तःकाम्य में इन देश युके हैं परन्तु उनका मतक और उमंग भी नहीं तबनी कि वैदिक मर्मों में दिखाई देती है।^१ मोस्वामीजी के दिन बीरह प्रकार के मनुष्यों को बीरगमूढ कहा है, उनमें सदा योगी के साथ 'तनु-पोषक' को भी पारेवलित कर दिया है—

शौल कामवस हृष्टि विमुदा । प्रति हरिद प्रथमी प्रति वृदा ॥

सदा रीनवत संतत फोरी । विभ्य विमुद्य भुति संत विरोधी ॥

तनुपोषक निबंध धम-शास्त्री । बीरत सब तम बीरह प्राणी ॥^२

कहाँ वैदिक युग के धारों का नवजात धिगु को चट्टान के समान तुड़क तथा कष्टसहिष्णु और कुम्हड़े के तुल्य अनुसहारक बनने का आशीर्वाद देना^३ और कहीं शरीर के पोषक को मृतकमुम्प कहना। ऐसा होते हुए भी मोस्वामीजी शम्भुदा के साथ हैं कि उन्होंने अनु-धमि पात स्वामी और सर्व के समान रोग को भी छोटा न समझने का उपदेश दिया है—

रिपु बज पावक पाव प्रभु अहि मनिष न छोड करि ॥^४

राम-शास्त्रों में शरीर की धम्य भी कहा गया है और महार्थ भी परन्तु तबिता इनकी तुल्यता का उल्लेख है जतना मूल्यवत्ता का नहीं। इसे तुल्य और धम्य कहने का कारण है इनकी धम्यमंदुरता, पूर्यपीलितमयी तथा अस्विकममयी रचना और इनका शोभो और विकारों का आकार होना। यद्यप्युस्वामान् इसे धमिय कहा गया है कि इनके हाथ ही मनुष्य बचसावर करने में समर्थ होना है और स्वयं के सुधों तथा धम्यमय के अक्षय धान्य का प्राणी बन सकता है। इस प्रकार शरीर-सम्बन्धी हृष्टिकोश में जो विशेष तबनी हीता है वह वास्तविक नहीं आशान-वाच है। श्रीराम के हाथों पति का प्र गान्य होने पर जब सारा विकल विनाप करती है तब श्रीराम उसे सम्भला भेते हुए जोष को निरवता तथा शरीर की धम्यता का इन प्रकार बर्णन करते हैं—

१ परीमा : इशान सरह शान् मूक्य सरह अठान् । (पञ्चोदध ३६ । २४)

२ शय अरिज जालम मुटका पृ० ३०४

३ अं पदरा बज परसुभेक । (मं० आशुल १।१।२)

४ सं० शिवोदी हृष्टि मुनत्रीमुक्तिमुदा (साहित्य सेवा सदन, बनारस १९५६ वि०) पृष्ठ ३६१।६

छिति जल पापक मगन ममोरा । पक्ष रक्षित धति धयम सरीरा ॥
मगठ सो सनु तत्र धार्ये सोबा । बीर निरय कहि सगि सुन्द रोबा ॥'

(पोस्वामी तुलसीदास)

केदारनाथ की हृष्टि भी 'रामचरितका' में बिलनी बास्य योवन तथा काठपप के दुर्गों पर पड़ती है उतनी घोरबा बास्य घोर तादस्य में सुनय मुक्तों पर नहीं । बिरल पपपत्र बिस्वामित्र धारि से कहते हैं—

बचपम के दुख—

हूँ निनु घातक ते कुष्य मारे । धो गुण ते धरि होत दुखारे ।
भूत न प्याम न नीर न जोबे । येतन को यह मातिन रोये ।'

योवन के दुख—

जबत सीम बसी बिछी को यहि मोह महा इत फातिहि बारे ।
झवे ते यह विरायत योमहु बीरहि सुन्दर सावत मारे ॥
ऐसे में कोइ की लज ह्यो 'केदार' मारत कामहु बाण निनारे ।
मारत पाँच बरे पंच दूदहि बासों कहै बग जोब बिपारे ॥'

जराबन्धित दुख—

क्यों उर बानि इये बर डौठि त्यथा उठि कुबै सनुबै मति-बैली ।
नबै नवपीब फरै पति नेशब बालक ते संप ही संग खेती ॥
निये सब धायिम ध्यायिम सय जरा नब धारै ज्वरा को सहैली ।
भयै सब बैह-बधा बिय हाथ रई कुरि बौरि बुग्याा प्रकैली ॥'

इतना मानने में तो हमें कोई संकोच नहीं कि परलता की रक्षा में पारिरीक तथा ऐगिद्य धाकितयों की शीणता के कारण मनुष्य को विभिन्न दुर्गों का सामना करना पड़ता है घोर उन्हें भी बुद्धिमानु मानव प्राकृतिक नियम समझकर सहर्ये सहन कर लेता है—परन्तु इस बात को हम कदापि स्वीकार करने की तैयार नहीं हैं कि निरिचरुता घोर तादस्य से परिपूर्ण बास्य तथा स्वास्य शीमर्य स्वाधीनता घोर मुक्तमोनों से घोर-घोर योवन में भी सुक्तों की धयेजा दुःख धरिषि होते हैं । भजे ही सन्त महात्मा घोर बिरल नीतिकार इस प्रकार समय योवन को दुःखमय कहते रहें परन्तु स्वस्य हृष्टिकोण रखने बाका कोई कुचल कबि बास्य घोर तादस्य को दुःखबहुक कहने का साहस न करेना । धरनु, इन्हीं कवियों के पारिस्तुति-विषयक विचार भी इत्यस्य हैं—

- १ रामचरित मानव पुटका पृष्ठ ४३३
- २ केदारनाथ रामचरितका, प्रकाश २४१४
- ३ " " " " २४१८
- ४ " " " " २४१९

- (क) भर सग सग नहि, कवनिउ बैही । बीब बराबर जावत बेही ।
नरक सर्व अपवर्म निलेनी । ग्याम बिराय भगति सुख बैनी ॥^१
- (ख) भर तनु भव बारिपि कहुँ बेरो । सगमुख भवत भगुण्डु मैरो ॥^२

(बो० तुमठीदास)

उपरोक्त उद्धरणों से इतना तो स्पष्ट ही है कि इसकी दृष्टि में घरीर का महत्व ऐहिक सुख-संपृक्ति की प्राप्ति का साधन होने में नहीं अपितु ज्ञान वैराग्य बलिष्ठ भावि द्वारा स्वर्ग भीर मोक्ष के सुखों की प्राप्ति का साधन होने में है । जो सोय उदार को सागर भीर उद्यमे बार-बार घाने को घपार बुझो का कारण समझते हों उनकी दृष्टि में ऐहिक सुख मोर्गों का महत्व हो ही कैसे सकता है । ऐसा होठ हुए भी ये कवि ऐहिक दृष्टि से घरीर की साबंकरता परापकार, बीन-यासन धारि सव्-कावों में समझते थे—

कावु कहा भरतनु घरि ताधो ।

पर-उपकार सार धुति को बो, सो बोबेहु न बिचार्यो ॥

सम सम बया बीनयासन तीतन धुप हरि न संगार्यो ॥^३

(यो० तुमठीदास)

विषय मोर्गों को इन कवियों ने विष की लाग के समान प्रासापहारक कहा है । उनके सेवन से मानव को घतनी ही धाम्ति मिल सकती है जिसकी कि घीर के भ्रम से बनिवदा-बहाण करने वाले कृत्तों को—

तजत भगिब उपदेश गुब, मजत विषय विष-जान ।

बभ्र-किरण बोले पमस, बावत बिनि घठ स्वान ॥^४ (तुमठीदास)

ऐसा होठ हुए भी जो सोय विषय-मोर्गों के इच्छुक हों घीर बीवन को स्वामी समझे बीठे हों उन्हें सापधान करने के लिए कही-कही इत प्रकार की उक्तिवाँ भी मिल जाती हैं । बिजटा घीवा को राबलेगुप करने के उद्देश्य से कही है—

बोबब बंजल पिर नहीं कयो कर-भंजरी-बारि ॥^५ (सूरदास)

भयं दम तक पर के काम-वर्णों ही में मिष्ट रहता प्राचीन साधन-म्ववस्था के प्रतिबुद्ध है । इसी नीति का अनुसरण करते हुए पुरातन धर्म पुन के सपुत्र हो जाने पर, नानप्रत्य साधन में प्रविष्ट हो जाते थे ।^६ यह नीति सामान्य जनों तक ही सीमित

१ तुमठीनुक्तिनुवा, पृष्ठ ३२०।६

२ रामचरितमानस, बुदका,उत्तरकाण्ड, पृष्ठ ६२०

३ बिबवपत्रिका (पीता श्रेत सं० २००७ बि०) पृष्ठ ३२४

४ तुमठीतलतई (सरस्वती मंदार, बरवा, १९२६ई०) पृष्ठ २४६

५ सूर : रामचरितावली (गीताप्यत मीरघनुट, सं २०१४), पृष्ठ ८२ मनु० ६।२

न भी रघुवंशी भुव भी इस पर आश्चर्य करते थे ।^१ इस नीति का प्रतिपादन राम-काव्य में भी किया गया है । जब भीराम जन प्रस्थान से पूर्व माता कौशल्या से मिलने गये तब वे बोलीं कि जनबास तो राजा को करना उचित ही है परन्तु अन्तिम वय में—
मुझे कुछ इसी बात का है कि तुम्हें वह जीवन में करना पड़ा—

प्रसङ्ग उचित नृपति जनवात् । जय बिलोक ह्यिह होइ डरासू^२ ॥ (तुलसीदास)
पूरदासजी ने भी इसी नीति को पूर्ण व्यक्त किया है—

महाराज बरारज मन धारी ।

यवघण्टी की रास राम ई, लीजै यत जनकारी ॥^३

शरीर का प्रसन्न होने पर समे-सम्बन्धियों का कष्ट भ्रम स्वभाविक ही होता है परन्तु बुद्ध या बुढ़ा के शास्त्र विद्योप पर रोना-नीटना अनावश्यक है क्योंकि उनकी मृत्यु प्रकाम में नहीं उचित काल में होती है । यदि अधिक देर भीत रहते तो कार्यक्षम के घट्ट कष्टों को पाते । हाँ सावधानी इस बात की करनी चाहिए कि यमराज उस मर से सुपरिचित होकर कहीं बार-बार उसे अपनी बिहार-स्वप्नी न बनाने सके । जब सकल के हाथों नरुही-बूनी होकर मूलशक्त रावण की समा में पहुँची तब कुछ समा सत्तों को हँसी घा गई । इस पर उन में से एक बोल उठा—

एक कहे तुम हँसो जिन कहे बात समझाय ।

बुझिया मुए न रोइये रँ जम गौबो जाय ॥^४ (हृदयधाम)

बाणी के सुप्रयोग के विषय में नीतिकवि आदिकाल से ही निश्चते घाए हैं । सभी कवियों के समान राम-काव्य के प्रणेताओं ने भी सत्यमायल मधुर बचन प्रतिज्ञा पामन घाकि की प्रेरणा धीर प्रसंसा की है तथा दिव्याभाषण कटुबचन प्रतिज्ञाबंध की निन्दा । परन्तु बाणी-विषयक कुछ ऐसी नीतियों का भी उल्लेख इन कवियों ने किया है जो अत्यन्त विरल स्वभाव पर ही दृष्टिगत होती हैं । उदाहरणार्थ राम-नाम के आप से विज्ञा धीर जीवन को सफल बनाना चाहिए; धार्म स्वार्थ-परायण धीर धीन जन के कृत्रुणों पर शोष करना अनुचित है; शोष में मीनधारण ही श्रेयस्कर है; प्रतिज्ञा के बनी प्रार्यों को तृण-तुल्य तुच्छ समझते हैं, तीर्थादि पर तो बन्धमयी बाणी का व्यवहार सर्वथा त्याग्य है; धर्मों से बाधनाप न करना ही हितकर है; अपने मघ की बातें सभी को भ्रमण-मुक्त होती हैं; बरातियों को रिक्तियों की गालियाँ भी सहर्ष सह सेनी चाहिए, प्रतिज्ञा मन्त्र होने पर मुख पर कालिमा मय जाती है इत्यादि । जैसे—

१ कलिदास रघुवज १।८

२ रामचरितमानस पुरुका पृष्ठ २६६

३ पूररामचरितावली पृष्ठ २७

४ हृदयधाम-हनुमन्नाटक (वेकटेस्वर प्रेस, १९४२ वि०) पृष्ठ ४७।४४

(क) राम राम कहि जै जगुहारी । तिनहि न पाप-पुंज समुहारी ॥
जलका नाम जगत जगु जाया । बालमीकि भए बहू लजाना ॥^१
(दुलसीदास)

(ख) ज्येप न रसना जोलिये बह जोलज तरवारि ।
मुनत मपुर परिनाब हित, जोलज बचन बिचारि ॥^२ (दुलसीदास)

(ग) शत्रुघ्न के प्रति विस्वामित्र की वक्ति—
प्रथम प्रतिज्ञा करी घासन कर्षेनो सब
मुठ के लनेहु बस कस बिसराइये ।
यहु विपरीत रघुवंतिन बचित माहि,
धाबु लौ न ऐसी भागुबंधिन से पाइये ॥
परं 'रघुराज' जो कन्याग होइ राबरे को
ती तो हुन प्राये बस तले फिर जाइये ।
भिष्याबाही हूँ के भुप भोग भोगिये धनुष
बंभुन समेत मुछ संपति कमाइये ॥^३

(महाराज रघुराजसिंह)

मानसिक नीति—मानसिक नीति के क्षेत्र में रायकाव्य का बृष्टिकोण सप्तकाव्य के सर्वथा विपरीत है। इसमें वेद धारण पुरान धारि धर्मग्रन्थों के प्रति पय-पग पर प्रवाद यज्ञ के वर्धन होते हैं। राजकुमार मझापूरक वेदशास्त्रादि का प्राम्थन करते हैं यज्ञ-याग और विभिन्न संस्कारों के समय वेदमन्त्रों के यन्त्र उच्चारण की ध्वनि से मगन मूँज उठता है। वेदानुष्ठान धारण की प्रभुत प्रवसा तथा वेदविज्ञ धारण की तीव्र निष्ठा सभी राम-काव्यों में की गई है। जैसे—

(घ) बंदनं चारिउ वेद भव-चारिष-जोहित सरिस ।
जिनहि न जपनेहु वेद, बरगत रघुवर बिसर जस ॥^४

(दुलसीदास)

जो वेद जगणुष के पार पहुँचाने नामे जहाम हैं उनके निष्कर्षों तथा विवेकायों को भोग तरु में बाणु बालनाएँ सहन करनी पड़ती है। धीराम के बतवाच में धर्मो निर्दोषता को प्रमाणित करने के लिए भरत कीधस्या को जिन छव्यों में विरवास दिखाते हैं उनमें उक्त भावनाएँ प्रमायास लिहित हो गई हैं—

१ रामचरित मानस मुद्रका प्रयोप्याकांड, पृष्ठ ३३६

२ दुलसी सतसई पृष्ठ २६७।११४

३ सं० चंद्ररत्नदास : संक्षिप्त रामचरितं (भा० प्र० सं० काशी, सं० १९८१)
पृष्ठ ५७-५८

४ दुलसी पूर्वाभुजा पृष्ठ ४२४।२४

बेबाह्रि बेब परनु बुहि सेही । विमुन पराय पाप कहि बैहीं ॥
कपटो कुटिस कलह प्रिय बोधी । बेब विदुपक बिस्व बिरोधी ॥
पावों में तिन्ह क गति मोरा । जो बननी यहु संमत मोरा ॥^१

(तुलसीदास)

केशवदासजी के मत में तो बेब के निन्दक निन्दनेह पाखडी हैं—

तथा गुड प्रति आमकी, निरत यों जल जाल ।

जैसे धृतिहि शुभाय ही, पाखडी सब ज्ञास ॥^२

वैदिक ज्ञान के समान ही इन काव्यों में विषय लौकिक विषयों के प्रति भी पूर्ण यत्न पाई जाती है क्योंकि उनकी प्राप्ति से मानव अनेक विपत्तियों और मोह मद प्रादि दुर्गुणों से बच कर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने में समर्थ होता है—

‘तुलसी’ सापी विपत्ति के बिद्या बिलय बिबेक ।

सहस सुहृत जल्पवत राम-मरोछो एक ॥^३

बरपहि असब भूमि निभराएँ । जया नबहि बुब बिद्या पाएँ ॥^४

हुपी निराबहि जतुर किसाभा । बिमि बुब तबहि मोह मद माना ॥^५

(तुलसीदास)

बसा और प्रतिबसा बिद्याएँ तो ऐसी हैं जो घापीरिक्त भ्रम तथा मानसिक भ्रम को मल्ट कर बुद्धि की रखा तथा प्रसन्नता का प्रसार करती हैं ।^६ कहीं-कहीं इन काव्यों में प्रसन्नवच काव्यकला के सम्बन्ध में भी कुछ नीतियों का उल्लेख किया गया है जैसे—बिना नही भ्रष्ट है जो लोकहितकारिणी हो सत्-कर्म को भाव और माया दोनों पर ही वृष्टि केमिश्रित रखनी चाहिए, प्रादि—

कीरति मनिति भ्रुति भनि सोई । गुरसरि-सम सब कहें हित होई ॥^७

कबिहि अरय घाबर बस लाबा । अगुहृरि वास गतिहि नद नाबा ॥^८

(तुलसीदास)

इन कवियों के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक बिद्या का अधिकारी नहीं है । जैसे निरुद्धकार यास्काचार्य ने सुपात्र को ही बिद्या-दान देने का निर्देश किया है ।^९

१ रामचरित मानस, गुटका, पृष्ठ ३२२ २३

२ रामचरित्रिका, प्रकाश ३३, पद्य ३०

३ तुलसी सतसई पृष्ठ २४१।४६

४, ५ रामचरित मानस, गुटका, पृष्ठ ४३४, ४३५

६ रघुराजतिह संक्षिप्त रामस्वयंवर पृष्ठ ३६

७, ८ रामचरित मानस, गुटका, पृष्ठ ४४, ३६०

९ अथुपहायानृत्रये धयताय न माद्रूया धीर्यवती यया स्याम् । (निरुद्ध)

(धर्मई संस्कृत ऐष्य प्राङ्गत सीरिठ १६१८ ई०) पृष्ठ १७५

बैठे ही इन काव्यों में भी पुष्पकाम्या रामकथा के धारिकाएँ भी बिरसे ही बन चढ़े गये हैं—

रामकथा के ते धारिकाएँ । जिन्हु के लस्तपति भति प्यारी ॥

पुष्प-पुष्प-प्रीति नीतिरत भेई । द्विज सेवक धारिकाएँ तेई ॥^१

जो लोग सठ हठी लोमी कामी, लोभी धीर नास्तिक हैं वे इस कथा के सबल के धारिकाएँ हैं ।^२

धार्मिक नीति—रामकाव्य की धार्मिक नीति सन्तकाव्य के समान ही है परन्तु उसके प्रतिपादन की शैली भिन्नलग है । भावा, ममता काम प्रीति, लोभ, मोह, मर, मात्सर्य रूप रूप धारि राजस्य विकार हैं परन्तु प्रायः उनके परिणाम की प्रत्यक्ष प्रेरणा नहीं की गई अथवा वे सुझाव मात्र दिया गया है । इसीलिए ऐसे स्वर्णों के सम्बन्ध में भी ऊँचा नहीं धनायास प्रभावित होता जसता है । जैसे गुमचीपाव-रूप माया-कटक का वर्णन बेलिए—

पुन हूठ लम्पिपात नहिं केही । कोउ न मान भव तजेउ निवेही ।

बोवन-बवर केहि नहिं बलकावा । ममता केहि कर अनु न मलाका ॥

बखतर काहि कलक न लावा । काहि न लोक समीर डोलावा ॥

जिस्ता-सांझि को नहिं जाया । को जग जाहि न ब्यापी मया ॥

कौठ मनोरथ दात लरीरा । केहि न नाय पुष को घत धीरा ॥

गुन बित लोक दीपना तीनी । केहि के मति इन्हु हूठ न जलीनी ॥

ध्यापि छेउ लंसार नहै, माया कटक प्रबंड ।

तेनावति कामादि नद रंस कपड पाखंड ॥^३

श्राव नीतिकार परीकार के उद्देश्य से कभी-कभी कपटमय धारण की कूट दे देते हैं परन्तु यहाँ इहे भी विन्य कहा गया है—

विशुभ काज बाबन बलिहि छनो भलो बिप जाति ।

इनुला लखि बस मे तरपि धमते बई न ग्ताति ॥^४ (गुमचीपाव)

पुष्पा-क्या नदी से ऐसी विद्याल धीर वैभवती है कि उसमें बड़े-बड़े सज्जाबाग, धीर धीर सत्यवादी भी धनायास ही बहु जाते हैं । केवलराज अक्षयी धर्मकथा तथा पुस्तक का वर्णन एक छन्द में इस प्रकार करते हैं—

कौन धर्म मति लोक तरीन बिलोक बिलोकि जहाजब बोरे ।

नाज विद्याल मता बबरो लग धीरज कल्प समात्म तोरे ॥

१ २ रामचरित मानस, पुष्पक, पृष्ठ १७५

३ रामचरित मानस, पुष्पक, बखतर काव्य पृष्ठ ११५

४ गुमची लस्तर्ष पृष्ठ २४२, २४३

संस्कृता अपमान प्रदान प्रदान भुजंग भवानक कृत्वा ।

पाद बड़ो कहुँ पाद न 'किशोर' क्यों तरि जाय तरंगिनि कृत्वा ॥^१

सबत विकारों के परिहार का सबसे सुगम उपाय है श्रीराम की धरण में जाना और उनके नाम का जाप । अपने धरणागतों के रसायं जहाँ श्रीराम स्वयं सदा सनात रहते हैं वहाँ कभी अपने किसी सेवक को भी भेज देते हैं । भी लक्ष्मीनारायणदास पौहारी का अनुभव तो इस प्रकार का है—

काम कहै हमरो कहवाबहु, कोप कहै हमरो कह भाई ।

भोग कहै हम भोग लियो, तर्हवा रघुनाथ की बीन बोझाई ।

सुनि लियो महाराज धनी हनुमान बनी कहुँ बीन पठाई ।

जातम मारि क काँड़ि बियो अपने जन जानि के लीन्ह छोड़ाई ॥^२

रामनाम्य में भयं, धीम धामा तप कृपा समता मम बम, परोपकार विरहित, सम्योप धारि पर बिधेय बस दिया गया है । भ्रम्य स्थलों की तो बात ही क्या मुझ के प्रसंग में भी गोस्वामीजी इनका महत्त्व प्रतिपादन करने से नहीं चूके । राम रावण का संग्राम होने लगे वा । रावण कबच धारि कारण कर और मुझ रूप पर धारुड होकर रणभूमि में आया । श्रीराम के पास न रूप न कबच । वे मनुष्य-बाण लेकर पदाति रूप में ही रावण के सम्मुख आ बटे । श्रीराम को साधन-विहीन देखकर विन्तागुर विभीषण उनकी विजय में सम्येह करल मगा । तब श्रीराम उसके संग्रह को प्राप्त करते हुए बोले—इस संग्राम में विजयी होगा तो सरल है कठिन है संग्रार-कपी रिपु पर विजय-प्राप्ति जिसके सामन निम्नलिखित हैं—

सुनहु लजा कह कृपा निधाना । बौहि जय होइ सो स्वर्गन धाना ॥

सौरज बीरज तेहि रूप जाका । सत्य सीम इहु पवना पठाका ॥

बस बिनेक बम परहित धोरे । छमा कृपा समता रहु धोरे ॥

इस भजन सारणी सुजाना । चिरति जर्म सम्योप कृपाना ॥

बाग परमु बुधि सक्ति प्रचडा । धर बिम्मान कठिन कोरडा ॥

धमल धवल मम भोग समाना । मम बम नियम सिलीमुक भाना ॥

कबच धमेद विप्र गुर पुजा । एहि मम विजय उपाय न भूजा ॥^३

(गुलसीदास)

पिठ और बड़ांड में शान्ति के प्रसन्न साम्राज्य की स्थापना धार्य-संस्कृति का प्रधान साध्य रहा है । यह भावना अनेक वैदिक मन्त्रों में प्रोत प्रोत सतिष्ठ होती है ।^४ वैराग्य

१ रामचरितका प्रकाश १४, पद्य २१

२ लक्ष्मीनारायणदास पौहारी भी चरितप्रकाशिका, पद्य २२- रामचरित में रतिक-संग्रहाय पृष्ठ ४४० पर उद्धृत ।

३ रामचरित मानस गुटका लकाकांड, पृष्ठ ३३३

४ देवें प्रमेद ७।१३। ११ तथा मद्भेद ३।१८ १०-१२ १७

सदीपिनी' में मोस्वामी तुमसीदास ने इस विषय गुण की प्राप्ति के साधनों तथा महत्त्व का विस्तार बखुब किया है। उनके मतानुसार सात द्वीप तब पश्य तीन भोक और सप्त ब्रह्मांड में धाम्नि की तुमता कर सकने वाला कोई पुत्र नहीं है। सद्-पुत्र की कृपा से जिस का मन शान्त हो जाता है उसके मन में क्रोध की बड़ बल जाती है काम वासना बिलीन हो जाती है और अहंकार की धमि शान्त हो जाती है। धाम्नि को मानवीय आत्मा का परम गुणल वतावे हुए मोस्वामीजी लिखते हैं—

रज को भुवन इंदु है दिवस को भुवन धाम् ।
 दास को भुवन धरित है प्रसित को भुवन शान ॥
 धाम को भुवन ध्यात है ध्यात को भुवन त्याग ।
 त्याग को भुवन धाम्निपर तुमसी धमम परदाय १

धन्य प्रेम की सर्वोच्छ्रिता^१, कष्टमय धाररस से प्रेम का नास^२ प्रेम और वैर क्षिपाये नहीं छिपते^३ जिस से प्रेम हो जाए वही धम्या सपता है^४ वेबस्वी व्यक्ति सप्ता कर होने पर भी भवक्य होता है^५ क्रोध से काम बलवती है^६ धारि विपत्तों पर सैकड़ों सुन्दर सुविद्यों राम-काव्य में विकीर्ण कक्षित होती है परन्तु प्रबन्ध का धाकार उन्हें उद्बुत करने से बर्जित करता है ।

पारिवारिक नीति—हम ऊपर कह चुके हैं कि रामकाव्य में परिवारिक नीति पर विशेष बल दिया गया है। प्रायः मह कि इसमें पिता माता पुत्र पति पत्नी भाई बहिन धारि के कर्तव्यों का विस्तार और सूत्र्य विवेचन किया गया है। ऐसा हावे हुए भी हम पुनः यह स्मरण करारें कि रामकाव्य कलि-काव्य है और अतएव उसका पुरय उद्देश्य रामकलि का प्रचार है। इसलिए राम-काव्यों का परिशीलन करते समय जो तत्त्व बार बार हमारे सम्मुख आ उपस्थित होते हैं वे ये हैं कि पुत्र-कलम धारि के सम्बन्ध मायाकलित हैं बास्तविक नहीं। जो सोय मुत स्त्री सम्पति सब धारि में ममता रखते हैं वे मारक्रीय जीवन व्यतीत करते हैं। सुखी पुत्र सुख्य नारी और विपुत्र की का स्वामी होता हुआ भी जानब रामकलि के बिना कीड़ी काम का नहीं। सभी सम्बन्धी स्वार्थी हैं और स्वार्थिधि के पदवाद् कितार कर पाते हैं, धर जो व्यक्ति इनका परिहाय नहीं करता वह बस्तुन पामर और धरिबेकी है। धारि बड़ने से पूर्व जगत

१ तुमसी संवाचनी अंश २ धराम्य संदीपिनी पृष्ठ १२।४३-४४

३ रामचरित धारण पृष्ठका पृष्ठ ३४१

४ तुमसी सुक्तिपुत्रा, पृष्ठ ३१२।१०

५ रामचरित मानस पृष्ठका पृष्ठ ३३४, ३०१

६ तुमसी सुक्तिपुत्रा पृष्ठ ३१५।४

७ तुमसी सुक्तिपुत्रा पृष्ठ ४००।११ १४

८ तुमसी ततघई पृष्ठ २६६।११२

कर्म के समर्थन में कुछ उद्धरण प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा—

(क) मारी सेती नेहू लागायो । कबहुं हिरब राम नहिं प्रायो ॥
बैंये काम कीयो औरंपा । सुत बटो मार कोइ नहिं संग ॥ (स्वामी रामानन्द)

(ख) सुत-बनितारि जानि स्वारपरत न कछ नेहू सय ही से ।
संतहु लोहिं सबगै पामर, तु न तबैं प्रय ही से ॥^१
(मुमतीवास)

(ग) सुख सम्पति परिवार बढ़ाई । सब परिहरि करिहुई सेवकाई ॥
ए सब राम भाति के बापक । कहुहि संत तय पर प्रबरापक ॥
सम् मित्र सुख बुख जग माहीं । मामा-कृत परमारय माहीं ॥^२

(मुमतीवास)

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि तात्त्विक दृष्टि से रामकाम्य की परिवारिक नीति अन्तकाम्य के सदृश ही है । परन्तु इसकी विमिश्रणता है इस का द्वितीय पक्ष जिस का अन्तकाम्य में प्रायः धर्मात्मक है । रामकाम्य परमात्म्य की दृष्टि से उपर्युक्त सम्बन्धों को मिथ्या मानता हुआ भी व्यावहारिक दृष्टि से उन्हें सत्य मानता है और परिवारिक कृत्यों के साम्यक पावन पर इतना अधिक बल देता है कि पाठक संसम में पड़ जाता है । वह सहज ही निरवयव नहीं कर सकता है कि कौन-सा मत स्वीकार्य है और कौन सा परिहार्य । परन्तु यत्र-तत्र विचौल्य परस्पर विरोधी-सी उन्नतियों पर गम्भीर विचार करने पर निष्कर्ष यही निकसता है कि जो सगे-जन्मबन्धी राम-भक्ति में बाधक हों वे तो बहिष्कृत होते हुए भी त्याज्य हैं और जो रामभक्ति में सहायक हों वे सुतेज्य—

आके प्रिय न राम-बैरेही ।

तजिये ताहि कोइ बरी मम अद्यपि परम सनेही ॥

सम्पौ पिता प्रह्लाद विभीषन जन्म भरत भृत्यारी ॥

बलि गुह सखी कंत ब्रजबनितगिह मये मुदमपसकारी ॥

'दुलसी सो सब भाति परमहित पूज्य प्राण है प्यारे ॥

जासौं होय सनेह रामपर एतो भतो हमारो ॥^३

रामकाम्य में प्रायः निम्नलिखित पारिवारिक वर्गों के कृत्यों का निषेध किया गया है—

(क) पिता

(ख) माता

१ पीतांबरदास बङ्गप्यास रामानन्द की द्विती रचनाएँ ग्याम कीसा, पृष्ठ ६

२ बिनयपत्रिका, पृष्ठ ११६

३ रामचरित मानस गुहदा किष्किन्दा कांड, पृष्ठ ४५०

४ बिनय पत्रिका, पृष्ठ २८२ ब३

- (ग) पुत्र (घ) पुत्री
 (ङ) पति
 (च) पत्नी (छ) बहू (ज) दास-सवुर
 (झ) माई

(क) पिता—पिता का सम्मान के प्रति सद्गुण स्नेह होता ही है परन्तु जसम्न तब वा उपस्थित होती है जब सम्मान एक से अधिक हो। गुण-कर्म-स्वभाव के भेद के कारण पिता एक बच्चों से समान स्नेह नहीं रख सकता। कोई योग्यता कोई रूप और कोई धर्म गुणों के कारण पिता का प्रिय प्रियतर वा प्रियतम बन जाता है। तुलसीदासजी का इस विषय में मत यह है कि जो धर्मग्य भाव से पिता की सेवा करता है वही पिता का सबसे प्रिय पुत्र हो जाता है गुणी धर्मगीम बनी शूरवीर धारि पीछे रह जाते हैं—

एक पिता के विपुल कुमार। हौंहि बुबक गुन तीस बभारा ॥
 कोउ पंक्ति कोउ तापस जाता। कोउ धनबंत सुर कोउ बाता ॥
 कोऊ सर्बत भरभरत कोई। तब पर प्रीति नितहि सम हौई ॥
 कोऊ पितु-भयत बचक-भन-करमा। सपनेहुँ जान न हूसर धरमा ॥
 सो सुत प्रिय पितु-मान-समाना। बधयि सो सब भति धरमा ॥^१

प्राचीन काल से प्रायः यह प्रथा प्रचलित रही है कि जिन देशों में राजा बंधा-पुत्र से होते आए हैं, वहाँ पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकारी नियत करता था है। परन्तु यह नियम निरपवाद नहीं रहा। यदि पिता की सम्पत्ति में ज्येष्ठ पुत्र धर्मोत्थ कुमदण धारि होता वा तो वह किसी छोटे पुत्रादि को भी राज्य दे सकता था। रामकाव्य में पिता का यह अधिकार सुस्पष्ट दिखाई देता है। बचरत्न के देशम्पत्ति के बाद जब भरत नेकय वैध से धर्मोत्थ में सौते तब पुत्र वशिष्ठ ने उन्हें इन धर्मों में धामन संमानने की प्रेरणा दी—

धरति नरैत दक्षत सुर कष्टु। पासतु प्रजा सोडु पट्टहस्तु।
 वैद विहित संमत सब हो का। जेहि पितु वैद सो पाबइ डीका ॥^२

(तुलसीदास)

इसी भाव को मुनिवर भट्टाचार्य ने भी प्रयाग में भरत के धर्मगुण व्यक्त किया था।^३

साहस्य की सफलता पुत्रवत्ता में निहित है। पुत्री तो सवपुत्र ही परम्य बन है। इधीनिए हमारे यहाँ पुत्रहीन गृह धूम्यन् बर्षादि सुव विन सुता सधुय^४ की लोकप्रिय प्रचलित हो गई है। परन्तु सभी गृहस्त्र समान रूप से सीमाव्यथाती

१ रामचरित मानस गुटका उत्तरकांड वृत्त ६४५
 २ रामचरित मानस गुटका धर्मोत्थाकांड, वृत्त ३२६
 ३ रामचरित मानस, गुटका, धर्मोत्थाकांड वृत्त ३४२

मही होते । निस्सन्तानों को घरेला तो निस्सन्देह वे धर्ये ही हैं जिन्हें पुत्रों के सुखदर्शन का सीमाम्य प्राप्त होता है । ऐसे धन्यवाम्य लोग सुधीस जामाठा के दर्शन से ही कुछ सन्तोप प्राप्त कर सेते हैं । इस नीति का उल्लेख भूपरिचयोर से निम्नलिखित सर्वे में किया है—

निबही तिहुं लोक में 'सुर किशोर' बिजं रज में तिमि के कुल की ।
 बल जाइ रह्यो सत बीप सुकाम कया कमनीय रसातल की ।
 भिबिसा बसि राम लहाय बहै ती उपासक कीज बहूँ मल की ।
 बिज के कुल बीब सपुत नहीं करे प्राप्त रमारत के बल की ॥^१

(क) माता—भारतीय विचार-धारा के अनुसार माता को पिता से श्रेष्ठ माना गया है । प्राचीन धर्म विविध पुत्रों के धाधार पर गणबान् को माता पिता बन्धु सजा कह कर शर्यनार्य करते थे । परन्तु सर्वप्रथम स्थान माता को दिया जाता था—

स्वमेव माता च पिता स्वमेव, स्वमेव बन्धुश्च सदा स्वमेव ॥^२

ननु महाजन के मत में धाधार्य का धीन्य दस अध्यापकों से पिता का धी धाधार्य से धीर माता का सहस्र पिताओं से धनिक होता है—

उपाध्यायान् दशाधाय धाधार्यानां दानं पिता ।

सहस्रं तु पित्र माता पीरदेयातिरिच्यते ॥^३

कालिदास से रघुबन्ध के मयलाचरणात्मक प्रथम पद्य में जमत् के जनकों की बलना की है । ध्यान देने की बात यह है कि उस पद्य में उन्होंने पहले पार्वती का स्मरण किया है परन्तु परमेश्वर (शिव) का—

कवत पिठरी बग्ने पार्वतीपरमेश्वरी ॥^४

इसी प्राचीन परंपरा के अनुसार रामकाम्य में भी माता को पिता से उच्च परकी धी गई है । जब धीराम बल को प्रस्थान करने क पूर माता कीयस्या की धनु-बधि सेन जाते हैं तब से कहती है कि यदि धादेश बलन पिता का है तब तो उसकी छेला भी सम्भव है परन्तु यदि धामा माता (कन्ये) की भी है तो तुम्हें जाना ही चाहिए—

१ मिथिला माहात्म्य अध ६ रामनक्ति में उल्लेख कम्पराय पद्य ५००

२ धय—हे भगवन्, तू ही धाता है धीर तू ही पिता तू ही बन्धु है धीर तू ही सजा । (स० धनुष्मताम्य : ध्यारयाजमाता लाहोर, १९२७ ई०) पृष्ठ ११६

३ धनुष्मति अध्याय २१३८

४ रघुबन्ध १११

जो केवल पितृ धामसु लम्बा । तो जनि जातु जनि बड़ी लम्बा ॥
जो पितृ मनु कहेन बन जाना । तो कामन सत प्रथम लम्बा ॥^१

(तुलसीदास)

प्रश्न होता है कि जहाँ माताएँ एक से अधिक हों वहाँ कौन सी माता प्रथमतर होयी—सभी या धीरेसी ? रामकाव्य इस प्रश्न का उत्तर श्रीराम के आचरण द्वारा प्रस्तुत करता है । जब भरत माताओं के साथ चित्रकूट पहुँचे तब श्रीराम ने प्रथम सीकेयी की ही आरक्षण्यता की बाप में प्रथम माताओं की—

प्रथम राम भेटी कैंकेई । सरल सुभाय भयति मति मेई ।

पग परि कीरिह प्रपौव धरौरी । काल करम बिधि तिर बरि खौरी ॥^२

(तुलसीदास)

इसी प्रकार जब वे बनवास से लौट तब भी सबसे पूर्व सीकेयी को ही मिलने को बने—

प्रभु जानि कैंकेई लजानी । प्रथम तामु यहू मये मजानी ॥

ताहि प्रबोधि बहुत सुख बीन्हा । पुनि निज भवन बसन हरि कौन्हा ॥^३

[तुलसीदास]

(ब) पुत्र—सम्मान के सम्बन्ध में रामकाव्य की प्रथम नीति यह है कि—
जैसे बहुत बोलना बहुत काममाएँ धीरे बहुत आचार-व्यवहार दुःख के कारण होते हैं वैसे ही बहुत सम्मान भी । अधिक सम्मान से जैसे उनके सम्बन्ध पालन-पोषण में कठिनाई का होना स्वाभाविक है वैसे ही उनमें पारस्परिक कसह-कलह की सम्भावना भी बढ़ जाती है । इसीलिए कहा है—

बहु सुतसु बधि बहु बचन बहु आचार व्यवहार ।

इपको भसो मनाइबो यहू घटान प्रपार ॥ (तुलसीदास)

सम्मान का अधिक या म्यून होना तो देव धीरे जनकों के अधीन है परन्तु माता-पिता के प्रति कर्तव्यता का पालन सम्मान के अधीन । रामकाव्य की नीति के अनुसार पुत्र का सर्वोत्तम धर्म माता-पिता की आज्ञा का अनुवर्तन है । जो पुत्र इस धर्म का सर्वात्मना पालन करता है उसी का जन्म धर्म्य है । जब सीकेयी से श्रीराम को दण्डन की मुछा का कारण निहित हो गया तब व बोले—

१ रामचरितमानस गुडका, अयोध्याकांड पृष्ठ २१२

२ रामचरित मानस गुडका अयोध्या कांड पृष्ठ १६१

३ रामचरित मानस, गुडका उत्तर कांड पृष्ठ ५२२

४ तुलसी सतसई पृष्ठ २३९, १४

सुनु जमनी सोइ सुत बड़ भागो । जो पितृ मातृ बचन अनुसारी ॥
तनय मातृ पितृ तोषनिहारा । दुलम जमनो सकल सवारा ॥^१

(तुलसीदास)

बन को प्रस्थान के समय विद्वान पिता को साम्प्रदाय देने के लिए उन्होंने अपने माय्य श्री रसाभा इन शब्दों में की—

मय्य जनमु जयती-तन ताम् । पितृहि प्रमोह चरित मुनि वाम् ।
चारि परारय करतल ठाके । त्रिय पितृ मातृ प्रान सम बाके ॥^२

(तुलसीदास)

इसी प्रसंग में केशवदास ने भी श्रीराम के मुन से ऐसे ही शब्द बहुभाषण हैं । जब राम ने अपने बनेबात की सूचना श्रीरामा को दी ता वे विपद् दर बोलीं— तुम्हारे पिता बुझाने के कारण बचन हो गय है उन्हीं शब्दों का पालन करते हुए तुम्हारा बचन को प्रस्थान अनुचित है । इस पर पितृभक्त राम ने कहा कि जो सेवक मुन और श्राव स्वामी पिता और पुत्र को श्राव का सम्भजन करता है वह करोड़ों जन्म मरक-दुःख भोगता है—

जन्म रेइ तीस रेइ राधि सेइ प्राण जात ।
राज बाप मोत सं कर बु पीवि होतु मात ॥
बात होय पुत्र होय शिष्य होय कोइ भाइ ।
सासना न मासई तो कोटि जन्म नष्टं बाइ ॥^३

इन शब्दों में पिता के शत्रु से प्रतिशोध लेने की नीति-सम्मत कहा गया है और जो पुत्र इस कर्तव्य को पूरा करने में असमर्थ रहता है उसे मृतक-सुप्य माना गया है । मेर-नीति का धारण मठा हुआ राजराज धंगर को श्रीराम के विद्वत् उत्तरित करते हुए कहना है—

जो पुत्र अपने बाप की बीर न लेइ प्रकास ।
तासों बोलत ही मरुपी, भोग कहैं तत्रि घास ॥^४

पाषाण-पालक पुत्र का और संजानावना से श्रेष्ठ होना ही पर्याप्त नहीं है उसका चरित्रवान् तथा समझद्व होता ही आवश्यक बताया गया है । जो पुत्र चरित्र और समझद्व से रहित है, वह तो माता के यौवन-रूप बन के लिए कृदार-मात्र है-पाकार से चाह वह मानव क्यों न हो । जब निवारणविपु ने मरत को सत्य भाठे देखा तब अर्जुन होकर उनसे मुड करने की तैयारी करता हुआ बोला—

- १ रामचरित मानस गुटका अयोध्या कांड पृष्ठ २२५
- २ रामचरित मानस गुटका, अयोध्या कांड पृष्ठ २६०
- ३ केशवदास रामचरितका प्रकाश ६, पृष्ठ ६
- ४ केशवदास रामचरितका प्रकाश १६ पृष्ठ १६

करतु सबाज न जाकर सिखा । राम प्रसन्न मनु जातु न रेखा ॥
 जीव विप्रत बच सो नहि भाव । अगनी जीवन विप्रत बुझाव ॥^१

(तुलसीदास)

जब लक्ष्मण भी राम के साथ ही अगवाह को उछल हो गये तब बुझाव ने भी

‘रामवन्द पुन की ही प्रशंसा की—

पुनवती कुच्छी बय लोई । रघुपति भगनु जातु पुनु होई ॥
 कछ कौड भनि बाधि बिबायी । राम विनुछ मुल ले हिय जारी ॥^२

(तुलसीदास)

यहाँ सुपुत्र उपर्यक्त बुरों से मुक्त होने के कारण अपने कुल का नाम उज्ज्वल करता है वही कृपुण अपने दोष-दुर्मूर्खों से कुल-जनों को मष्ट भ्रष्ट कर कुल को कर्णिकर कर देता है । जब किष्किन्धा में बर्षा ऋतु में सीराम बाजुबेन से योनों को छिद्र-भिन्न होते देखते हैं तब उन्हें जगत नीति सहज ही स्मरण था जाती है—

कबहुं प्रबल बहु मरुत, जई तई मेघ बिजाहि ।

जिनि कपूत के जन्मे कुल छडमं नछाहि ।^३ (तुलसीदास)

“तुलसीदासजी” में इन श्लोकों को निम्नी भी कृपुण में की गई है जो बाहर अपमान करने वालों का सो कुछ भी विबाह नही करते परन्तु उलका बरसा कर के भिन्न सम्बन्धियों से सैत है—

ओरहि मूरज तिन सदन, सार्य उड्डक पटार ।

कायर कूर कपूत कनि, बर घर भरिस उहार ॥^४

(घ) पुत्री—रामकाव्य में पुत्री-सम्बन्धी नीति का उल्लेख कदापि न-कदापि ही दिखाई देता है । सर्वप्रथम काल के समान जन कितों भी विबाह के अन्तर पर माता-पिता और कनिष्ठा उभे कछ उपयोयी बातों की सिखा दिवा करती थीं, जिससे सुसदान में उलका जीवन मुखपूरक व्यतीत हो । जब पालकी मायके के विवा होये सयीं तब माता ने उन्हें निम्नलिखित शब्दों में धायीबाप और सिखा दी—

होएतु संतत विपदि^५ विपारी । बिन बहिवात सवीत हमारो ॥

जातु समुर मुर खेवा करेहु । पति सब तबि धामतु बजुतरेहु ॥^६

(तुलसीदास)

१ रामचरित मानस पुटका अयोध्या कांड वृत्त ३३४
 २ रामचरित मानस मुरका अयोध्या कांड, वृत्त २७४
 ३ रामचरित मानस पुटका, किष्किन्धा कांड वृत्त ४३३
 ४ तुलसी सतसई वृत्त २७ । १२३
 ५ रामचरित मानस, मुटका, बालकांड, वृत्त २३०

पिता ने तो उन्हें सास समुर घोर दुःख की सेवा तथा पति के प्राजापत्य की शिक्षा ही परन्तु बलिभ्राम्यो ने मारी-बर्म घोर पिता ने कृत-बर्म के भी उपदेश दिये ।^१ मोस्वामीजी ने तो बलिभ्राम्यो घोर पिता के उपदेशों का संकेत-भाष्य कर दिया है परन्तु महाकाव्य रघुकाव्यसिंह ने कुछ विवरण भी दिया है—

बस तस्ये हरि घोरज राजा । बोस्यो बितसत मंद घबाबा ॥

कीन्ह्यो सागु समुर सेवकाई । पतिव्रत धर्म कबहुं माँह बाई ॥

करिहुं मोसे अथिक दुलारा । ज्ञानि-सिरोमनि समुर तिहारा ॥^२

सीता के साथ ही उसकी तीन प्येरी बहिनें भी बरतादि से ब्याही गई थी । जब एकाधिक बहिनें सयोगवश एक ही परिवार में ब्याही जाती हैं घोर जेटानी-बेबरानी बन जाती हैं तब धमेक बार उन में सहज ही ईर्ष्या आदि उत्पन्न हो जाती है । उससे बचाव के लिए 'रामस्वयंवर' में उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया गया है—

जाति भयिनि किसी रहियो नित कबहुं न होय विरोप ।

सब सागुन को नाम राजियो सिह्यो न कबहुं जोष ॥

पर बुज बुझी मुभी पर बुज सौ, सब सौ हँसि मुज भास्यो ।

बधाओष बलकार सबन को करि सनेह मुठि राच्यो ॥^३

(रघुकाव्यसिंह)

मानव-प्रकृति से घननिष्ठ कई लोग इस बात की कामना किया करते हैं कि जब कम्पा पितृकुल से पतिकुल में जा पहुँचे तब उसे पितृकुल का मोह एकदम त्याग देना चाहिए । ऐसे लोग बल-पूर्वक उस भावक जाने से रोचते रहते हैं । इस प्राकृतिक नीति के कई बट्ट पारिणाम भी समाज में देखे जाते हैं । परन्तु इस अनुचित व्यवहार से बर्जित करने के लिए सूरकिशोरजी कहते हैं कि मुभी को मुसपल में फिटाने ही सुख क्यों न मिले वह पिता के घर को सर्वथा विस्मृत नहीं कर सकती—

जर्म कुलरोप सिद्धामनि जानको लीक ब बेव की निङ्ग न मेटी ।

बरी मुज संपति घीबगुरो रबजानि सबै लछना सो लपेटी ।

करे निबिना बित 'सूरकिशोर' सनेह की बात न जात समेटी ।

कोदिन सुरसुँको होइ समुरारि तो बाप को भीन न मुसति बेटी ॥^४

(क) पति—मार्हस्प्य-जीवन की सफलता दम्पती के घनम्य प्रथम पर प्रबलभित है । वहाँ पति-पत्नी में से एक भी अपने जीवन-सहचर से बिस्वासघात कर किसी घम्य को अपने प्रेम का पात्र बनाता है वही मार्हस्प्य-मवन की नींव बन्धित हो जाती है

१ रामचरित मानस मुद्रका बालकाण्ड, पृष्ठ ६२०-६२३

२ संक्षिप्त राम स्वयंवर पृष्ठ १८३

३ संक्षिप्त राम स्वयंवर पृष्ठ १८१

४ सूरकिशोर निबिना दिनास पृष्ठ १६ रामनक्ति में रचित सप्तशतक, पृष्ठ ४०६

घोर बरेलू बीजन के मुक्त नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिये रामकाव्यों में पतिघत और पत्नीघत दोनों के ही पातक का विशेष भाव है किन्ना गया है। मिथ्या की पुण्यवाटिका में सीताजी को देखकर जब श्रीराम के मन में विषोम उत्पन्न होता है तब वे रघुसिंहों के पित्त की निर्मलता का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं—

रघुसिंह कर यह सब सुभाऊ । मनकुपंख पनु बरह न काऊ ॥

योहि अतिसय प्रीति मन केरी । बेहि लवनेहुँ परमारि न हरी ॥

बिन्हु के लखि न रिपु रन पीडी । नहि पाबहि करतिम मन बीडी ॥

संगन लखि न बिन्हु के माहीं । ते नरकर जोरे जब माहीं ॥^१

(गुप्तसीता)

पोम्बायीजी की उक्त शीपाइयों के ही आधार पर महाराज रघुनाथसिंह ने इसी प्रसंग में निर्मांकित सर्वे में रचना की—

जबो न लामक नाम जत बर बारन के बिह बसे बिचारी ।

घाये इति भूमिघातन न नहि जानी रही मरबाह हमारी ॥

रीति है धर्म घरीमन की रघुसिंहन की अण जाहिर मारी ।

बीठि परे नहि संपर धे नहि बीठि परे स्वपयो परमारी ॥^२

उक्त परिस्थिति से भी धार्मिक भाविक परिस्थिति यह भी जब रामस राजकुमारी रघुसिंहाने एकान्त मन में राम या लक्ष्मण का बरह करने की कामना प्रकट की। इन्हीं घोर घोरन का विषय है कि दोनों रघुसिंहों राजकुमारों ने उक्त विघटन परीक्षा में उठीं होकर एक-पत्नीघन की धजा फूटा है। श्रीराम ने तो सीता की घोर संकट कर पूर्णता के पालिबहल का प्रतिबंध कर दिया और लक्ष्मण कहने से कि जब से तुने राम को बरने की इच्छा प्रकट की तब से तू मेरे लिये मातृसुख हो गई। क्वि हृदयघन ने लक्ष्मण के उदात्त भावों को निर्मांकित सर्वे में व्यक्त किया है—

तोहि कदों मुन बात निघावरि तु जगनी घेरी है तय ही ते ।

काम को भाव बरं मन में रघुबीर के सीर गई जब ही ते ।

के भव जाहि तहि प्रभु रं अस मास लखी हमरी धव ही ते ।

जो अस पुरय की तटवी मग्नी अलटी न बहो कब ही ते ॥^३

केयवरासजी ने भी भीरयवरा के विवाह के घनघन पर लेखनार के प्रसंग में मारिषों हाथ श्रीराम की प्रजा के धनुषार जो घासियाँ बिसबाई हैं उनमें बघरम पर परस्नी (बन्तुन भूमि) के घमियम का अलंक लयाया गया है।^४ जैसे तो परमारी

१ रामचरित मानस मुद्रका बालकांड पृष्ठ २६२

२ संक्षिप्त राम लक्ष्मण, पृष्ठ १०१, १४७

३ हृदयघन : हनुमन्नाटक, पृष्ठ ४१, १७६

४ केयवरास रामचरितका प्रकाण ६, पृष्ठ ३०

सबथा परिहाय है ही परन्तु अनुज-बधू बहिन तथा पुत्रघणू तो पुत्री-दुस्व ही कही गई हैं । जब आहत बानि ने श्रीराम पर निरपराध व्यक्ति पर प्रहार करने का दोषारोपण किया तब श्रीरामचन्द्रजी न अपने कर्ण का समर्थन यह कह कर किया कि अनुज की भार्या से अपमिचार करने बाने व्यक्ति के बध में कोई पाप नहीं—

अनुज बधू भगिनी सुत-जापी । सुनु सठ बन्धा सम ए चारी ॥

इतहि कुबुद्धि बिसोकत बोई । ताहि बध करु पाप न होई ॥^१

(तुलसीदास)

रामकाव्यों के अनुसार जारी काम त्रीका का कदुक-मात्र नहीं है सन्तान के लिए ही उपगम्य है । केवल विषय रस के आस्वादन के लिए रमाविभास करना तो कुत्ते के ममान बमन मक्षण करना है—

रमा बिलास राम-अनुरापी । तजत धमन हब हम बड़भापी ॥^२

(तुलसीदास)

धर्म करत प्रति धम बड़ाबत । सतति हित रति कोबिब भावत ॥

संतति उपवत ही निधि बासर । साधत तन मन मुक्ति महोचर ॥^३

(केशवदास)

संयममय जीवन की प्रवृत्ति के साथ-साथ रामकाव्य में पत्नी को सुखी रखने तथा उसकी रक्षा करने की परम कर्तव्य कहा गया है । श्रीराम ने एक भी बार तो सीताजी से कही यह नहीं कहा कि तुम्हारे बिना मेरी बगबास की प्रवधि सुख से न कट सकेगी इसलिए तुम्हें मेरे साथ चलना ही चाहिए । इसक विपरीत पति को सुखी रखने के लिए जब सीताजी ने साम जाने का आग्रह किया तब श्रीराम ने उसे बल क विविध विच्छेद दुःखों का परिषय देते हुए घर में ही सुख-पूर्वक समय व्यतीत करने की प्रवृत्ति की । जो पति पत्नी को कष्ट में डेर कर भी निश्चिन्त रहता है उसके उदार के लिए धरसक उद्योग नहीं करता वह नीति की मर्यादा का मंजक है । जब श्रीराम की प्रेरणा से हनुमान् सका में पहुँच कर सीताजी को बूँड मेठा है तब सीताजी हनुमान् के साथ श्रीराम को यह सन्देश भेजती हैं—

यह तो धर्म बीसहुँ लोचन, धस बल करत धानि मुख हेरो ।

आइ लूगाम सिद्ध-बलि बाहुत यह मरबाद जाति प्रमु तेरी ॥^४

(सूरदास)

१ रामचरित मानस, मुद्रका त्रिविक्रमा काण्ड पृ० ४३२

२ तुलसी सुक्ति सुभा पृ० ३६७

३ रामचरितका, प्रकाश १८ पद्य ८

४ सूर रामचरिता-तो प० १०१

घोर घरेलू जीवन के कुछ तन्त्र भ्रष्ट हो जाते हैं। इन्हिए रामकाव्यों में पतिव्रत और पत्नीव्रत दोनों के ही बालन का विशेष भाव है किवा गया है। विपत्ता की पुष्पवाटिका में सीताजी को देखकर जब भीरुम के मन में बिजौन उत्पन्न होता है तब वे रघुवीर्यियों के चित्त की निर्ममता का उल्लेख इन शब्दों में करते हैं—

रघुवीर्यिन्हु कर सख्य सुभाऊ । मनशुपब मयु भरह न काऊ ॥
 मोहि अतिसय प्रतीति बन कैरी । बेहि सपनेहुँ परमारि न हैरी ॥
 बिन्हु के लखुहि न रिपु रन पीठी । नहि बाबहि परतिय मन बीठी ॥
 मंगल लखुहि न बिन्हु के नाहीं । ते नरवर जोरे अप माहीं ॥^१

(सुसतीशर)

पोस्वामीजी की अलत बीपाइयों के ही धाकार पर महाराज रघुवीर्यसिंह ने ज़ही प्रसंग में निम्नांकित शब्दों की रचना की—

बैबो न सायक नाम उठ नर वारन के बिब वरम बिचारो ।
 घाबे इतं पुबिसासन न नहि जानी रघु मरजाव हवारी ॥
 रोति है घमं बुरीमन की रघुवीर्यन की अप बाहिर घारी ।
 पीठि परे नहि संपर धे नहि बीठि पर स्वपयो परमारी ॥^२

उक्त परिस्थिति से भी अधिक मोहक परिस्थिति यह थी जब रावण राजकुमारी पूर्णछाया से एकान्त बन में राम या सतमण का बरख करने की कामना प्रकट की। हर्ष और वीरव का विषय है कि दोनों रघुवीर्यी राजकुमारों ने उक्त विषय परीक्षा में ज़ही लं होकर एक-पत्नीव्रत की ध्यजा पढ़ा दी। भीरुम ने तो सीता की घोर सकेत कर पूर्णछाया के पाणिग्रहण का प्रतिबंध कर दिया और लक्ष्मण कहने लगे कि जब से तुने राम को बरमे की इच्छा प्रकट की तब से तू मेरे लिए मातृवुस्य हो गई। कबि हृदयवम ने सतमण के उवाच भावों को निम्नांकित शब्दों में व्यक्त किया है—

रोहि कहीं तुन बात निघावरि तु बननी मेरी है तब ही से ।
 काम को भाव धरं मन में रघुवीर के लौर गई जब ही से ।
 बं प्रब बाहि तहि प्रभु वं अल घास लखी हवारी धब ही से ।
 जो अल पुरव की लखनी नबनी उसटी न बहो जब ही से ॥^३

केदारदासजी ने भी भीरुमवर्ग के विवाह के शबधर पर विचार के प्रसंग में शारियों द्वारा भीरुम को प्रवा के अनुसार जो गालियाँ बिनबाई हैं उनमें दपरव पर परानी (बस्तुन भूमि) के धमिनमन का कर्मक भयाया गया है।^४ जैसे तो परनाटी

१ रामवीर्य मानस मुठका, बालकांड पृष्ठ १११

२ संनिता राम स्वयंवर, पृष्ठ १०१४७०

३ हृदयवम हृदयवम, पृष्ठ ४१।७६

४ केदारदास : रामवीर्यका प्रकाश ६, पृष्ठ ३०

सर्बपा परिहार्य है ही परन्तु धनुज-बधु, बहिन तथा पुत्रबधु तो पुत्री-तुल्य ही कही गई हैं। जब धाह्य जाति ने श्रीराम पर निरपराम व्यक्ति पर प्रहार करने का दौपारोपण किया तब श्रीरामचन्द्रजी न धपने करय का समर्थन यह कह कर किया कि धनुज की भार्या से व्यभिचार करने नाम व्यक्ति के बध में कोई पाप नहीं—

धनुज बधु भविषी मुक्त-भारी । सुगु सठ कन्या सम ए चारी ॥

इन्हि कुदृष्टि बिकार्यत जोई । साहि बधे कष्ट पाप न होई ॥^१

(तुलसीदास)

रामकाम्यों के अनुसार नारी काम शीका का कानुक-मात्र नहीं है सन्तान के लिए ही उपयुक्त है। केवल विषय-रस के आस्वादन के लिए समाधिमास करना तो कुत्ते के समान बयन-भक्षण करना है—

रमा बिसास राम-भगुरायी । तजत बयन ह्य बन बड़भायी ॥^२

(तुलसीदास)

बर्म करत धति धय बड़ाहत । सतति हित रति कोइइ भावत ॥

इतति उपबत ही गिति बासर । सापस तन मन मुक्ति यहीपर ॥^३

(विद्यवासा)

सयममय जीवन की प्रशंसा के साथ-साथ रामकाम्य में पत्नी को मुक्ती रखने तथा उसकी रक्षा करने को परम कर्तव्य कहा गया है। श्रीराम न एक भी बार ही सीताजी से कहीं यह नहीं कहा कि तुम्हारे बिना मेरी बनबास की धरमि मुक्त हो न कर सकेगी इसलिए तुम्हें मेरे साम बसना ही चाहिए। इसके विपरीत पति को सुली रखने के लिए जब सीताजी ने साथ जाने का आग्रह किया तब श्रीराम ने उसे बन के विविध विष्ट वृक्षों का परिचय देते हुए वर में ही मूल-पूर्वक समय व्यतीत करने की प्रेरण की। जो पति पत्नी को कष्ट में देखा कर भी निरिचिन्त रहता है उसके उदार के लिए परसक उद्योग नहीं करता, वह नीति की मर्यादा का धर्मक है। जब श्रीराम के प्रेरणा से हनुमान् संका में पहुँच कर सीताजी को बँड सेवा है तब सीताजी हनुमान् के शाय श्रीराम को यह सम्बोध मंजती है—

यह तो प्रेम बीसहूँ मोघन, दस बन करत धानि मुक्त हैरी ।

आइ सुगल सिंह-बलि जाहूत यह भरबाव जाति प्रमु तेरी ॥^४

(भूरदास)

१ रामचरित मानस, मुद्रका द्विगिर्या काण्ड पृ० ४२२

२ तुलसी मुक्ति मुया पृ० ३६७

३ रामचरित्रिका, प्रकाश १८ पृ ८

४ भूर रामचरिता-ली पृ० १०१

पति का कर्तव्य है कि जिस गारी का परिग्रहण करे, उसे धाकड़गीजन धाब रहे, कभी परित्याग न करे क्योंकि एक तो उसके परित्याग से पति पापी हो जाता है और दूसरे उसके बिना किये हुए धर्म-कार्य सफल नहीं माने जाते। परन्तु भीराम के जीवन में ऐसी भी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि उन्हें प्रका में भर्षा का रखा के लिए पत्नी का परित्याग करना ही पड़ा। निस्सन्देह उन्होंने अपने तथा पत्नी के सुख की उपेक्षा कर सीता जी को निर्वासित हो कर दिया परन्तु कभीपि का मार उनके हृदय को कुचलने लगा। इसी बोझ से बचने के लिए उन्होंने बेदेही के बिना भी धर्ममेव यत्न करने की ठानी—

सीय-त्याग पाप से हिये तुहों महा डरौं ।

धीर एक प्रबन्धमेव जानकी बिना करौं ॥^१ (केसवदास)

परन्तु पत्नी के बिना धर्मकर्म निष्फल होते हैं इसलिए कल्पम ऋषि ने उन्हें एक सुषर्णमयी सीता-मतिमा बनवाने की आज्ञा की—

धर्म कर्म कष्ट कीजई सफल तबहि ते साथ ॥

ता बिन जो कष्ट कीजई, निष्फल सोई भाव ॥

करिये युत भुवन क्षयरथी । निबिसेष सुता इक स्वर्ण भयो ॥^२ (केसवदास)

बहुत-पारिवारिक जीवन की सफलता पति और पत्नी के पूर्ण सहयोग पर निर्भर है। केसवदास के मत में तो पत्नी के बिना पति का धीर पति के बिना पत्नी का जीवन ऐसा ही नीरस और शीविहीन है वैसे राजा और पत्नी का एक दूसरे के बिना—

पतिनी पति बिनु बीन प्रति, पति पतिनी बिनु बंध ।

बंध बिना ज्यों जामिनी, ज्यों बिन जामिन बंध ॥^३

(क) पत्नी—पत्नी-सम्बन्धी नीति दो भागों में विभाज्य है—

(१) सभवा-सम्बन्धी नीति

(२) विधवा-सम्बन्धी नीति

१—सभवा-सम्बन्धी नीति—यमकाव्यों में विद्वता बल पति के पालिश पर

दिया गया है। सभवा ही बन्धिका उससे भी अधिक बल पातिशत पर लक्षित होता है। इसका कारण प्राचीन परम्परा तथा अधिकतर कथितों का पुण्य-कृत होता है। जन-वचन-कर्म से जैसे-जैसे भी पति का ध्यान करना और सब प्रकार की सेवा से उसे प्रसन्न रखना ही पातिशत है। जो सभवा इन कर्तव्यों का मनीमात्रि पालन करती है वह पतिशत

१ रामचरितका प्रकाश ३३, पृष्ठ २

२ वही, प्रकाश ३३, पृष्ठ ३-४

३ रामचरितका प्रकाश १३ पृष्ठ १०

है। स्त्री के लिए पतिव्रत के पालन से थोड़ा कोई कर्त्तव्य नहीं है। इस पर आचरण से स्त्री सदृश ही परमगति प्राप्त कर लेती है। उसे अन्य ऋष तप आदिकर्त्तव्यों के पालन की आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु जो मारी इस कर्त्तव्य की उपेक्षा करती है वह जीवन में वैश्य के दु सौ धोर घत कस्य पयस्य रौरव नरकके कपटों की भागिनी बनती है। अत्रि-पत्नी अनन्या सीताजी को स्त्री के कर्त्तव्यों का उपदेश इन शब्दों में देती हैं—

मातु पिता भ्राता हितकारी । मित प्रब सद्य द्युगु रात्र्युमारो ॥
 धर्मित बानि भर्ता बयदेही । धर्मम तो मारि को सेव न तेही ॥
 क्षीरक परम मिथ धर मारी । आपर कास परित्तिग्रहि चारी ॥
 वद रोग-वत्त शुद्ध बन हीमा । धन्य वदिर धीरो धति बीना ॥
 ऐसेहु पति कर किये अपमाना । मारि पाव समपुर कुल नाना ॥
 बिनु धम मारि परम गति कहई । पतिव्रत धम छाडि छक पहई ॥
 पति प्रतिपूज नमन बहूँ जाई । बिपबा होइ पाइ तबनाई ॥^१

(दुलसीदास)

केवल ने भी पतिव्रत पर अत्यधिक बल दिया है परन्तु एक धन्य प्रसंग में। जब वन-यमन के लिए उच्छत भीराम कौशल्या से अनुमति माँगने गये तब ममता-वश कौशल्या भी साथ ही जाने को उच्छत हो गई। उस समय भीराम ने कौशल्या से कहा कि स्त्री के सर्व सुख उसके पति में निहित हैं। पति क बिना उसके लिए माता पिता भाई देवर जेट पुत्र पौत्र कोई भी सुखप्रद नहीं होता^१। इसलिए पति कसा भी क्यों न हो उसका साथ छोड़ना पत्नी के लिए उचित नहीं—

मारी तजै न आपनो सपनेहु भरतार ।
 पगु गुंग बौरा बपिर धंध धनाथ अपार ॥
 मय अनाथ अपार पृथ बाबन अतिरौपी ।
 वासः पंडु कुबप सबा कुपधन लड छोपी ॥
 कलही लोही भीन क्षीर प्यारी ध्यमिचारी ।
 धधम धभापी हुन्सि हुमति पति तज न मारी ॥^२

(दिग्दर्शास)

वस्तुतः पतिव्रता के सब आचार प्रमोद पति पर ही अवलंबित हैं और पति के बिना उसके लिए सब सांसारिक सुख दुःख-दर बन जाते हैं। जब जनबास क दुःखों का बर्तन कर भीराम ने सीता को साथ चलन स रोना तब पतिव्रता सीता बोली—

अहँ समि गाय नेहु धर मत्ते । पिय विन तिपहि तरनिहु ताते ॥

१ रामचरित मन्तर पृष्ठका, पृष्ठ ४०६ १०

२ रामचरितका प्रकाश ६ पद्य १३

३ रामचरितका, प्रकाश ६, पद्य १६

निरक मारिये प्राप्त न कीजै ।

यहै धर्म गित प्रति द्युति पावै सखन को गुण दीज ॥^१

(अ) सखन-बुजैन—सखनों और बुजनों के सम्बन्ध में प्रायः सामान्य नीतियों का ही उल्लेख हुआ है। जैसे सखन तो सम्पत्ति प्राप्त कर ममता धारण करते हैं और बुजन दुष्ट हो जाते हैं। सखन तो कबला क कारण परोपकार के लिए प्राणों तक का परिष्कार कर बैठे हैं और बुजन दूसरों को निष्कारण ही कर्मकृत करते रहते हैं। वर्ण बर्णन के प्रसंग में नंबदास कहते हैं—

अरे पवन सु खोजन परये । सब के दुख करवै मन हरये ॥

जैसे कबन पुष्य पर हेत । अपने प्यारे मानन देत ॥^२

(ब) बुद्ध-शिव्य—भक्ति-काव्य की श्रेष्ठ धाराओं के समान बुद्ध-काव्य में बुद्ध के प्रति प्रगाथ भक्ति दिखाई देती है। श्री बन्तमाचार्य, सोवाई विठ्ठलनाथ स्वामी हरिदास भाषि भाषायों के नाम की बेंचे ही अपने की प्रख्या की गई है जैसे श्री राधा और श्री कण्ठ के नाम की। वही तक कि भाषायों को भी कृष्णका भवतार तक मान लिया गया है। यथा छीतास्वामी भी की उक्ति है—

श्री विठ्ठल प्रगटे घजनाथ ।

नंद लखन सन्निपुय में धाय निज जन किए सनाथ ॥

तप के बेरपय छड़ि रात मिस जाना भाँति बताए ।

अथ के हरी-सुबासिक सब को बह्य सम्बन्ध कराए ॥^३

इस धरीम अज्ञा का कारण यह विश्वास है कि समुदाय ध्यतित ब्रह्ममृत के पान का अधिकारी होता है, निगुण नहीं—

सरा सुरा धमृत पीबै, निगुरा प्याता जसरी ।

समय जया मेरा मन सुझ में पोरिब का गुण गाती ॥^४ (मीरबाई)

महापद मनु में धम क विद्यागुणों के लिए प्रपक्की द्युति को परम प्रमाण माना जा^५, परन्तु हित हरिबंद जी के शिष्य सेवक भी के मन में श्रुत का पर निर्पुण, समुदाय वैश बेद तीर्य तप ज्ञान ध्यान आदि सभी अपास्यों और साधनों से उच्च है—

कर्म मर्म कोड करहु वैश विधि कोड बहुविधि वैदतन उपाती ।

कोड तीरप तप ज्ञान ध्यान तप धर कोड निर्पुण ब्रह्म उपाती ॥

१ परमानंद सागर, पृष्ठ १६७

२ नंददास शम्भारसी, पृष्ठ २८६

३ 'छीतास्वामी' पृष्ठ ११

४ मीरबाई की बराबरी पृष्ठ १३६

५ धम विद्यासमाप्तानां प्रमाणं परमं ध्यति । (मनुस्मृति २।१३)

कोठ धन लेन करत अपनी रति, कोठ धनहार कबन्ध उपासी ।

मन कम धन निमुद सकल मत, हम धीहित हरि बंस उपासी ॥^१

जो गुरु विवेचिय और विषय-स्वार्थों से ऊपर उठा हुआ है वही शिष्यों को सँवार सकता है। धेप तो पत्थर की नाब में सोहा नर कर पार उठारना चाहते हैं ।^२

शिष्य—शिष्य तीन प्रकार के कहे गये हैं—कनिष्ठ मध्यम और उत्तम । जो शिष्य शास्त्र के दण्ड से प्रसन्न हो कर गुरु की सेवा करता है। बड़ा भक्ति से नहीं, बहू कनिष्ठ शिष्य है । मध्यम शिष्य बहू कड़ाठा है जो गुरु के स्वभाव को समझे बिना तन, मन धन से प्रेमपूर्वक सेवा करता है । उत्तम शिष्य अपने स्वभाव पर विषय प्राप्य कर गुरु के स्वभावानुसार आचरण करता है ।^३

जो शिष्य उत्तम प्रकार का हो गुरु भी उल्लेखि कित्ती बात को गुप्त नहीं रखता ।^४ जो शिष्य गुरु से साम ही उठाने के इच्छुक हों और उसकी मुक्त-मुक्ति की ओर धनिक भी ध्यान न देते हों उनका चित्र व्यास जी ने एक पद में यों लीखा है—

गुरुहि न मानत भेली सेना ।

पुत्र रोटी पानी सों पूँटत ये बुप पीरें कृन्नेसा ॥

शिष्यन के सीने के बासन, गुरु के कुँडी कुँडेसा ।

और चिकित्सा की बहु प्रकार पुत्र को ठेसी-ठेसा ॥

शिष्य तो मीठीचूसा मुनियत गुरु पुनि पाल उबेसा ।

बहू कायर यहू कृपन हठीसी, ईद मारि दिखरावतु मेसा ।

कृप्य कृपा बिनु विधि असमबस बुझसागर में सेली-सेला ।

'व्यास' व्यास जे करत शिष्य को सिततें भसे भँडेसा ॥^५

(द) विद्वान् और मूर्ख—प्रेम भक्ति के इस काव्य में विद्वानों की प्रशंसा से सम्बन्धित अधिक रचना न मिले ता कोई आश्चर्य नहीं । मूर्खों के विषय में नीति की जो उक्तियाँ इतर-उपर दिखाई देती हैं उन्हीं से प्रविष्टा नाथ की प्रेरणा ग्रहण की जा सकती है । मदवास भी के दो पद्य द्रव्य्य हैं—

(क) जाको कहें अविचार न कोई । निकरहि बस्तु कुरि है सोई ।

सोम कमल के द्विग ही रहै । रुप रंग रस मपुतिहू सहै ॥^६

१ 'हितामृत ताम्पु' में सेवक वाली पृष्ठ १०६।१

२ सिद्धान्त रत्नाकर में भक्ति सिद्धान्त मणि, पृष्ठ २।७

३ सिद्धान्त रत्नाकर में भक्ति सिद्धान्त मणि पृष्ठ २।१२

४ मदवास वंशावली, पृष्ठ २६४

५ व्यासवाणी, पृष्ठ १२३।२३३

६ मदवास वंशावली, रत्नमंजरी पृष्ठ १६१

(क) जो कोऊ मति मर धर प धूरि उड़ाव ।

उसति हगमि जब परी मुझ कोँ तब सुधि धारै ॥^१

(द) पाखंडी—प्रत्येक सम्प्रदाय के अनुयायी को अन्य सम्प्रदायों के अनुयायियों से भेद स्पष्ट करने के लिए, छापा तिरक मासा कडी यज्ञोपवीत धारि कुछ बाह्य चिह्न भी धारण करते ही पढ़ते हैं। छापातरु जन वहाँ उन बाह्य चिह्नों द्वारा उनके सम्प्रदायों से परिचित हो जाते हैं वहाँ उनकी धामिष्ठा से प्रभावित हो कर कुछ सेवा-श्रमणा भी करने लगते हैं। उनके बाहर-सम्मान को देखकर कुछ पाखंडी लोग भी धन व प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए वैसे ही बाह्य चिह्न धारण कर सीधी-सादी जपठा की बंधना करते हैं। ऐसे कापटिक लोगों की मिथ्या भी कृष्ण-काव्य में विचार देती है। इसी विषय में महर्षि किशोर्दास जी का एक कवित्त श्रेष्ठ है—

हारस तिसक चित्रकार भी बनावत है,

कंठ किर्न माल समे पाय कें मयत है ।

धामिधि धाधार धनाधार की धनेक विधि

धुमधू धुमिग के यत कूं मयत है ।

धेप धरे धवतन को धवतन कूं धया धैत

धक्ति धपाय धेधि धकतनि तयत है ।

धाता धिता कूडि धुध धावन की कूडि,

धैम्य धर्मनि तें कूडि धिप्र धास को धयत है ॥^२

(इ) कुडकत नीति—उक्त मुक्त सामाजिक नीतियों के प्रतिरिक्त कई अन्य कुटकत सामाजिक नीतियों का जन्म भी इधर-उधर किया गया है। जैसे—धनुष्य की सेवा से प्राप्त सुख स्थायी है। धनवर्धना से अन्य सुख स्थायी, सुख मनुष्य की हत्या धनुषित है। होली में सामाजिक मर्यादों का सम्भ्रन हो ही जाता है। परोपकारी से प्रेम करना चाहिए, धन लोभ एतयों क साथी है। प्रायः लोग कुडकत कुडकी धौर धावनिधक होते हैं, यथायोग्य धवधार ही धचित है। इत्यादि।^३

धामिधि नीति—धामिनी के समान धावन भी प्रायः कृष्ण कवियों की कृष्णा का ही विषय रहा है। क्योंकि प्रमथ में यह भी जलना ही धारी विधन धाना धया है। धितना धारी। प्रायः पुरुषों का समस्त जीवन इन धों के धवधर में देली धुरी धरह पड़ा रहा है कि उन्हें धरतो-धुधार की सुध ही नहीं रहती। मयत कवियों की कृष्टि स्वधावः लक की धयेधा धरतो-धुधार पर धधिक धधित रहती है। इसधिए धनुषि सधधा

१ मधवात धंधाधनी रधधधरली धृठ २११

२ 'धिधधध रलधधर' में धुधधर कधित धृठ १७१४६

३ धुरतो-धुधार धृठ १६३, धुरी धृठ ४६६ 'धधधधधध धृठ ३६, धधधधधध, धृठ १६३।२२ धीरधधध की धधधध १४८।१६०, धिधधध रलधधर में धिधधध धधधध धृठ ३४।३६६

को अपनी समझने बातों को समझ कर कह दिया है—

(क) बाड़े बन बसे काम कानिनि धन ।

ताकें स्वप्न हूँ नहिं सम्भव प्रान्मकर स्याम-धन ।^१ (व्यास)

(ख) हरिहि धरि खे किरि संजन । धन के द्वार बये ते रणे ।

हरि क खोर भये ते प्राणी । जिनि माया अपनी करि जानी ॥^२

(स्वामी पति)

माया को अपनी न मानना ही उचित है तथापि इसकी निदान्त असम्भव है । साधु-सन्त भक्त और बैरागियों की बात प्रसंग है सामान्य मूढ़ जीवन सम्पदा के बिना कभी सुखी नहीं हो सकता इस बात को इन कवियों अप्रत्यक्ष रूप से मानना पड़ा है । जैसे तुलसीदास जी ने किष्किन्धा-काण्ड में कहा कि—

जस संकोष विधम भइ मीना । अथुप कुटुबी जिनि बन्यहीना ।^३

जैसे ही मन्दास को भी स्वीकृत करना पड़ा—

तुच्छ सलिल के दुनि ये मीन । सरह ताप तपि भये बु बीन ।

इत्यन बरिह कुटुम्बी बसे । अजितेभिय पुल मरत हूँ तेसे ॥^४

यद्यपि हम प्रकार धन की आवश्यकता की ओर इन्होंने संकेत तो कर दिया है तथापि धन के महत्त्व पर बहु बल नहीं भी नहीं दिखाई देता जो संस्कृत क कालों में दिया गया है । इन्होंने तो सोन की निन्दा और संतोष की स्तुति ही की है । व्यास जी ने सोनी व्यक्ति का बँसा बिना निर्माकित पर में प्रस्तुत बैसा धन्यत्र दुःख है । सचमुच ही तपिसामिभूत मनुष्य की दशा बमूले के पत्र धूम, मही के तूण तथा मलिका और कूबकुर के समान ही होती है—

सोमी बागकरे को सौ पात्र ।

सात छानि को पूँस धूम सौ का के नैन समात ॥

पावस सकिता के तिनका ज्यों, जलन म कर्हूँ छटात ।

बामनि भगि गनिका लौं निधि बिन सब क हाय बिकात ॥

नितवन सजुब महि पर मर्हौं सब ही सौं सतरात ।

भङ्गिहा कूरर लौं, कातो मारत हूँ किदियात ॥^५

गृहस्थ के लिए बित्तोपाजन ही नहीं परसपह नी अनिवाय होता

अभिन्नतर साय इन बातों के लिए पर पर याचना इच्छता, अनुप, कष्ट

१ व्यासवाणी, पृष्ठ १२३।२३६

२ हिन्दुत्व समाज में भक्ति सिद्धांत मणि पृष्ठ ६।१२

३ राम चरित मानस मूल्या पृष्ठ ४३६

४ मरदास प्रयागजी, पृष्ठ २६१

५ व्यासवाणी, पृष्ठ १३८

भाषि का भावय सेठे हैं धीर पर-धन को भी हृदयाने में सकोच नहीं करते । धरता को कुचसने वाले इन कार्यों को हृदय-कवियों ने बहुत बुरा मला कहा है । सूरदास जी का एक पद है—

जग में जोषल ही की माली ।

म मेरी कजहूँ मँहूँ कीज, कीर्न पंच-सुहाती ॥

सौच-सूठ करि माना जोरी धापुन पन्नो धाली ।

‘सूरदास’ कए धिर न रह्यौ जो धायो हो पाती ॥^१

महन्त किशोरदास भी इस विषय में सूरदास जी से सर्वथा सहमत हैं—

करि टस बन द्यो पाप धाप कू होति रे ।

ध्यायो बवि कमाय धर्म कू पेति रे ॥

तात धियो कुकर्म विर्य रस पागि रे ।

हरि हूँ ‘बास किसोर’ भये दिन धर्म धामाधि रे ॥^२

जग की निम्ना के उपयुक्त कारण ने अतिरिक्त एक अन्व कारण है धनरूप्य मय । श्रेष्ठ मोय हो जन प्राप्तकर नम्र धन बाते हैं परन्तु अधिकतर लोग बनावत की दया में ऐसे पुत्र धीर मत हो जाते हैं कि भूमि पर पाँव नहीं रखते धीर विविध विमोक्षकारी व्यवहारों में फसकर धनमा धीर दूसरों का भी नाश कर बैठते हैं । धन के इस कुपरिणाम से भी हृदय-कवियों ने पाठकों को सचेत करने का उद्योग किया है । मंत्रदास ने सञ्जन व कुर्जग दोनों पर धन के प्रभाव का यों वर्णन किया है—

(क) भीठी धुनि धुनि धस मन धारं । मैन मनो परधार पढ़ाये ।

फलन के मार ममित धुम ऐसे । लपति पाप बढ़े जन बसे ॥^३

(ख) पाछे मुक्त हुती जो सरिता । उत्पन्न जनी बहुत जन भरिता ।

अजितैशिय नर ज्यो इतराइ । बेह गेह धन संपति बाइ ॥^४

अपचित तथा संपृष्टीत धन को धरने ही दान-दान में व्यय करना उचित नहीं । विशेषी मनुष्य का कर्तव्य है कि उसका पर्येषकार के कार्यों में भी सक्रियता करे । मीराबाई के मत में तो धान-पुष्प में व्यय किया हुआ ही धन परम सहायक होता है, दूसरा नहीं—

जग में जोषला जोड़ा राम कुल कट्टे रे धनार ।

कट्टे जाइयो कट्टे रे लपियो, कट्टे रे धियो उपकार ।

विद्या लिया तेरे संग बसेगा धीर गहूँ तेरी मार ॥^५

१ सूरदास, पृष्ठ ६६।६०२

२ ‘तिब्बाल रत्नाकर’ में ‘अपदेश धानग्र तत’ पृष्ठ २४६।१७

३ मंत्रदास संपावती रूपमंजरी पृष्ठ ११६

४ “ भाषाशाम स्वरूप’ पृष्ठ २८६

५ मीराबाई की बरावती, पृष्ठ १४६।१६६

इतर प्राणि-सम्बन्धी नीति— जीवन्त्या वैज्जकों का प्रमुख सिद्धान्त है जोर
 कृष्णकाव्य बंध्यावकाव्य है इसलिये इसमें प्राणियों के प्रति करुणा रखन की गिना
 अनेक स्थलों पर दी गई है। इनके मत में कोई व्यक्ति दया भावना के बिना हरि को
 प्राप्त नहीं कर सकता—

(क) 'परसुराम' के पंथ में जीव दया-विस्तार।

पर कौ पीड़ा काण्डे आगे पर उपकार ॥^१

(ख) दया शीलता दास भाव बिनु 'व्यास' न हरि पहिचान्यो ॥^२

जहाँ जीवदया प्रमुख महत्त्व रखती हो वहाँ मानसदास्य धातुट भादि का
 विशेष सम्बन्धित है क्योंकि मांस की प्राप्ति तथा धातुट प्राणिकम के बिना प्रजनन
 है। मुसलमान लोग हलाक मांस खाते हैं और हिन्दू-सिख मत्का। इन दायियों की
 कृष्टि में मत्का हो या हलाक दासों ही हृद्यम अर्थात् त्याग्य है। मांसमद्यरु तो नरक
 में ही जायगा स्वर्ग में नहीं क्योंकि दूसरों के प्राण लेने वाला स्वर्गीय सुखों का घनि
 कारी कैसे बन सकता है। परसुराम जी का कथन है—

प्राय न मारे जीव क्ये, तब हराम हुआस।

'परसा' बोझल परहुरे फिदित मिसे कर हाल ॥

प्रायो जो मुरदार कर, सो हुआस क्यों होय।

'परसा' कम हराम कर, गर्ये बहिस्तहि प्रोय ॥^३

अन्य प्राणी तो इपा के पात्र हैं परन्तु गौ प्रेम कौ। उसके लिए तो नगवान्
 बैकुण्ठ के सुखों का परिप्याग कर पृथ्वी पर घबतीएँ हुए हैं—

अबनि-अकुर अति प्रथम मुनीजन-अर्धे दुहाण।

गळ सगठम के हेत देह परि बज में प्राण ॥^४

अब प्रभु स्वयं पृथ्वी पर आ पहुँचे वा गौधों की देख रैय में क्यों कसर रहे।
 वे उन के मुख पर सभी मूस को पीत पट स प्रेमपूर्वक पॉछने हैं। गौधों को स्वर्गीय
 से सुमुपित करते हैं। गसे में हार दासते और बँटा सटकाते हैं तथा पाँच में नुार पहा
 गाते हैं।^५ वे उन्हें प्रेमपूर्वक अपने को बन में ले जाते हैं और मुरभी की मभुर अकनि से
 उन्हें प्रसन्न करते हैं। मार यह कि कृष्णकाव्य में यी एक पशु नहीं प्रतीत होती सब
 मुच माठा-सी दिवाई वेती है।

सिंह, बूकर, बृककर आदि प्राणियों से सम्बन्धित भी कई नीतियों की अर्थात्
 कृष्णकाव्य में की गई है। जैसे सुप्त सिंह को कभी मत जपाइए, सिंह के पावक वृण

१ परसुराम सागर, पृष्ठ २०१।२१२१

२ व्यासवाणी पृष्ठ १३१।२४६

३ परसुराम सागर, पृष्ठ १६६।२०६६ ६७

४ 'कुंभमदास' पृष्ठ १४

५ 'अनुर्मुसदास' पृष्ठ १२०, 'परमातरकापर' पृष्ठ ८१

भक्षण नहीं किया करते मनुष्य को न झूकर के सम कामी और न कुकुर के तुल्य सोधी होना चाहिए । मधुरा-नामन के प्रसंग में नारद ऋषि को कहते हैं—

समाचार सब नारद भाते, सावधान रिपु शीतो ।

सोबत सिंह जपायो पापी, सन्तन को बुझ बीतो ॥^१

मिथित मोति—उपर्युक्त विषयों के प्रतिरिक्त कृष्णकाम्य में चित्त ग्रन्थ मुख्य विषयों के सम्बन्ध में नीतिबचन बृष्टिबोधर होते हैं वे ये हैं—(क) संसार (ख) माया (ग) भाग्य कर्मफल (घ) देस नदी तीर्थ (ङ) काल (च) कलिकाल (छ) ज्योतिष यजुन (ज) जन्म-साक्ष्य (झ) पुनर्जन्म मुक्ति (ञ) धर्म पंच ।

(क) संसार—कृष्णकाम्य में संसार को मिथ्या कहा गया है । उसके वास्तविक प्रतीत होने का कारण प्रभु की माया है जिसके कारण हम उसके सच्चे स्वरूप से अनभिज्ञ रह जाते हैं । जैसे बुरुक सेमस बृह के घापातरमणीय पुष्पों को देख उधकी ओर पत्र की घापा से उड़कर जाते हैं परन्तु उनकी निस्वार्थता के कारण निपुत्र मीठ जाते हैं ऐसे ही भ्रमारी जन इस मिथ्या संसार के भुजों की ओर घापापित होते हैं परन्तु घल्लत उन्हें परचाताप ही करना पड़ता है । यह नरवर संसार उस मयी के समान है जो रात को उठ जाती है । इसमें तो राजाओं को भी घुस नहीं सामान्य जनो का तो कहना ही क्या । यह एक घापाह अपार सागर है जिसमें मनुष्य सब तक मोते जाते रहते हैं जब तक सवुगुह-रूपी बेबट उन पर कृपा नहीं करता । यथा—

(क) मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया ।

मिथ्या है यह देह कही क्यों हरि बिसराया ॥^२ (सूरदास)

(ख) 'ध्यात' न सुण संसार में जो धार छत्र फिरत ।

रेव धनो धन वैजियत भोर नहीं लहरत ॥^३ (ध्यात जी)

(घ) सत जी नाथ खेवटिया सतगुर, बचतापर तरि धायी ।

'मीरा' के प्रभु गिरवर नापर, हरति हरति जल पायो ॥^४

घपिकरत तो संसार का चित्र ऐसा ही निरुधामय चित्रित किया गया है परन्तु नहीं-नहीं यह बहकर साम्प्रता देने का भी मल किया गया है कि जिस संसार में रहकर ही मनुष्य प्रभु प्राप्ति में समर्थ होता है उसे मिथ्या कहना अनुचित है—

सो जग वष मिथ्या कहि धाइ । जहाँ तरं तुम्हरे गुन माइ ।

प्र म भक्ति बिनु मुक्ति न होइ । नाथ क्या कति बीस सोइ ॥^५ (सूरदास)

परन्तु स्मरण रखना हीमा कि ऐसी बिरत उचितियों से उतनी ही साम्प्रता

१ 'परमात्मन् सागर' पृष्ठ १६२

२ सूरदास पृष्ठ ४३०

३ ध्यातपाली ध्यात जी की साप्ती पृष्ठ १६३।१२५

४ मीरादाई की बदावनी पृष्ठ १४०।१२७

प्राप्त होती है जितनी शक्ति की समावस्था की राशि में लक्ष्यों की शक्ति से ।

(क) माया—माया का इन काम्यों में प्रचुरता से बहुरंग किया गया है । वह शक्ति की ऐसी शक्ति है जो भक्तानी मनुष्यों को पापों में ऐसे ही प्रवृत्त करती है जैसे कामुक जनों को दूतियाँ । उस मोहिनी भुवंगिनी नटिनी आदि उपाधियों से कोसा गया है । ऐसी प्रबल अनिष्टकारिणी शक्ति से ब्रह्मण का एक-मात्र धारण है शक्ति । शक्ति हीन मनुष्य उसके शंभुस से मुक्त होने में असमर्थ रहते हैं और काम क्रोध आदि व्यसनों में पड़कर जीवन को जीपट कर बैठते हैं । यथा—

माया मदी सपुत्रि कर सीगहे कोटिक नाथ नचाबै ।

हर-हर सोन नाथ सिधे डोलति नाना स्वांग बनाबै ॥

महा मोहिनी मोहि आत्मा अपमरणाहि मयाबै ।

क्यों हुती परबन्धु मोरि रं रं पर पुत्रव विखाबै ॥^१ (सूरदास)

(ग) माय्य कर्मफल—इष्टशास्त्र में माय्य-रेखा की असुष्णता और कर्मफल की अनिवार्यता पर जितना बल दिया गया है उतना सहस्रांश भी उद्योग की प्रसंगा पर नहीं । निस्संदिह कहीं-कहीं ऐसा भी लिखा मिलता है कि भक्तान से किये हुए कर्म का फल भी मिलता ही है बुद्ध और बुद्ध कर्मों के अनुसार होते हैं निष्काम कर्म करने चाहिए, इत्यादि तथापि विधि के निम्ने धर्मों पर जितनी प्राप्ति दिखाई देती है उतनी अपने बल पुण्याय और उद्योग पर नहीं । माय्य के बिना भोग्य और बन्धन एक भी नहीं प्राप्त होते और जो हानहार है वह हुए बिना टम भी नहीं सकती ।

(क) मायी कहूँ तो न हरे ।

कहूँ कहूँ राहु कहां कहूँ रधि ससि आनि सभोग परे ।

मुनि बसिष्ठ पंडित प्रति ज्ञानी रधि पधि सगत धरे ।

तात मरण, सिध हरन राम बन-बपु धरि विपति पर ॥^२ (सूरदास)

(ख) अपना कौया दूर कर हरि का कौया देख ।

मिटे न काहूँ के किये 'परमुराम' हरि-सेख ॥^३ (परमुराम)

(घ) सुभर नारी दाहि बिबाहै धसन बसन बहु बिधि सो बाहै ।

बिबा माय सो कहां त प्राबै । तब बहु मन में बहु बुद्धि पाबै ॥^४ (सूरदास)

(घ) वेद—वेद शास्त्र में प्रयोप्या चित्रकूट जनकपुरी आदि नगरों

और रंगा सरयू आदि सरिताओं की महिमा का प्रचुर बहुरंग मिलता है जैसे ही इष्टशास्त्र में श्री इष्ट और श्री रामा की जगन्मूर्ति और सीता-भूमि होने के कारण राम मधुर शृंगारण मोक्षम मोरजन बरसाना मनुना आदि का महत्त्व गान करने-

१ सूरदास पृष्ठ १५

२ सूरदास, पृष्ठ ८३।२६४

३ परमुराम कापर, पृष्ठ १६।१८७

४ सूरदास, पृष्ठ १३६

मसल नहीं किया करते मनुष्य को म सुकर के सम कामी और न कुकर के तुल्य सोनी होना चाहिए । मनुष्य-मन के प्रसंग में नारद कंस को कहते हैं—

सनाचार सब नारद भाखे, साबधान रिपु कीतो ।

सोक्त सिंह बयावो पापी, सतत को बुझ दीतो ॥^१

निमित्त शक्ति—उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त इष्टकाव्य में जिन अर्थ मुख्य विषयों के सम्बन्ध में नीतिबचन दृष्टिमोचक होते हैं वे ये हैं—(क) सत्कार (स) मामा (म) भाव्य कर्मकर्म (ब) वेद्य गरी तीर्थ (ङ) काम (च) कर्मकाम (छ) ज्योतिष घट्टन (ज) जन्म-साफल्य (झ) पुनर्जन्म मुक्ति (ञ) बर्म पंच ।

(क) संसार—इष्टकाव्य में संसार को मिथ्या कहा गया है । उसके वास्तविक प्रतीत होने का कारण प्रभु की माया है जिसके कारण हम उसके सच्चे स्वरूप से धनमित्र रह जाते हैं । जैसे दूक सेमस बुध क प्रापातरमणीय पुण्यों को देख उसकी ओर धम की प्राप्ता से चढ़कर जाते हैं परन्तु उसकी विस्तारता के कारण निपट सौट जाते हैं ऐसे ही भक्तानी जन इस मिथ्या संसार के सुकों की ओर प्राकपित होते हैं परन्तु अन्ततः उन्हें परचात्तान ही करना पड़ता है । यह नरवर सत्कार सस मण्डी के समान है जो राठ को उठ जाती है । इसमें ठो टबाधों को भी मुक्त नहीं सामाम्य बनों का सो कहना ही क्या । यह एक घनाह अपार सागर है जिसमें मनुष्य सब तक बोते पाते रहते हैं जब तक सबगुण-रूपी नेबट उन पर डूपा नहीं करता । यथा—

(क) मिथ्या यह सत्कार और मिथ्या यह माया ।

मिथ्या है यह बेहू कहीं बनी हरि विचाराया ॥^२ (मूरदास)

(घ) 'ध्यात' न मुस संसार में जो सिर छत्र फिरत ।

रत घनी धन वैखियत, भीर नहीं ठहरत ॥^३ (ध्यात भी)

(ग) सत की नाब लेबटिया छतपुट, भक्ततपर तरि भायी ।

'भीरत' कै प्रभु विरपर नागर, हरति हरति बस पायी ॥^४

अधिकतर वा सत्कार का विषय ऐसा ही निरासामय चिन्तित किया गया है परन्तु बड़ी-बड़ी यह बहकर सास्त्रना देने का भी यत्न किया गया है कि जिस संसार में रहकर ही मनुष्य प्रभु प्राप्ति में समर्थ होता है उसे मिथ्या कहना अनुचित है—

सो जग बप मिथ्या कहि जाइ । जहाँ तरं तुम्हरे गुण नाह ।

प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होइ । नाब कया करि बीम छोड़ ॥^५ (मूरदास)

परन्तु स्मरण रखना होना कि ऐसी बिरस उचितियों से उठनी ही सान्त्वना

१ 'परमानन्द सागर' पृष्ठ १६२

२ मूरदास पृष्ठ ४३०

३ ध्यातवासी दयाल भी की सादी, पृष्ठ १६२।१२५

४ भीरानाई की पदावली पृष्ठ १४७।१४७

५ मूरदास, पृष्ठ १७१२

प्राप्त होती है जितनी साधन की समावस्था की राशि में लक्षितों की भ्रमक से ।

(ब) माया—माया का इन काव्यों में प्रचुरता से बहण किया गया है । वह स्वयम्भू की ऐसी शक्ति है जो अज्ञानी मनुष्यों को पापों में ऐसे ही प्रवर्तित करती है जैसे कामुक जनों को द्रुतियाँ । उसे मोहिनी मुर्खिणी नटिनी प्रादि उपनिषदों से कोसा गया है । ऐसी प्रबल अनिष्टकारिणी शक्ति से बचाव का एक-मात्र साधन है भक्ति । भक्ति ही मनुष्य उसके बन्धन से मुक्त होने में सक्षम रहते हैं और काम क्रोध प्रादि व्यसनों में पड़कर जीवन को चौपट कर बैठते हैं । यथा—

माया मदी लक्ष्मि कर सीम्है कोटिक नाच नचावै ।

हर-हर कोम लाग जिये डोलति, नाना स्थाग बनावै ॥

महा मोहिनी मोहि आत्मा अपभारपहि नचावै ।

वर्षों ब्रुती परबबु जोरि क लं पर पुढव रिखावै ॥^१ (सूरदास)

(ग) भाम्य, कर्मफल—कृष्णशास्त्र में भाम्य रेखा की प्रबुद्धता और कर्मफल की अनिश्चयता पर जितना बल दिया गया है उसका सहस्रांश भी उल्लेख की प्रसंघात नही । निस्संदेह कहीं-कहीं संसा भी सिखा मिलता है कि अज्ञान से किये हुए कर्म का फल भी मिलना ही है, मुझ और दुसरे कर्मों के अनुसार होते हैं । निष्काम कर्म करने चाहिए, इत्यादि तथापि विधि के सिद्ध ग्रंथों पर जितनी आस्था दिखाई देती है उतनी अपने बल पुण्यार्थ और उद्योग पर नही । भाम्य के बिना भोजन और वस्त्र तक भी नहीं प्राप्त होते और जो होनहार है वह हुए बिना टल भी नहीं सकती ।

(क) भाबी काहू लौं न डरै ।

कहाँ बहू राहू कहाँ बहू रवि ससि, घामि सजोग परै ।

भुनि बसिष्ठ पंडित धरि ज्ञानी, रवि पवि लयन करै ।

तात नरन छिय हरन राम बन-बनु परि जियति परै ॥^२ (सूरदास)

(ख) अपना कीया हूर कर, हरि का कीया देख ।

मिटे न काहू के किये, 'परसुराम' हरि-सेज ॥^३ (परसुराम)

(ग) गुम्बर नारी ताहि विबाई अलग बचन धनु विधि लो बाई ।

विना भाग लो कहाँ त थावै । तब बहू मन म बनु रूप पावै ॥^४ (सूरदास)

(ब) देस—जैसे रामशास्त्र में अयोध्या चित्रकूट बनकपुरी प्रादि नगरों

और गंगा सरयु प्रादि सरिताओं की महिमा का प्रचुर बहण मिलता है, वैसे ही कृष्णशास्त्र में भी कृष्ण और श्री राधा की जगन्मूर्ति और सीता-भूमि होने के कारण प्रबुद्ध बुन्दावन मोकुल मोरईन परवाना यमुना प्रादि का महत्त्व पान प्राप्त-

१ सूरदास पृष्ठ १५

२ सूरदास, पृष्ठ ८५।२५४

३ परसुराम सायन, पृष्ठ १५।१८७

४ सूरदास, पृष्ठ १५६

बिक है। कृष्णमवर्तों को ये स्वतः बंधुवृत्त से भी अधिक मनोरम प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ गोविन्दरत्नामी का यह पद देखिए—

कहा करों बेकुंठे बाह ।

जहाँ नहीं पंतीबट जमुना गिरि गोवर्जन मंत्र की गाँह ॥

जहाँ नहीं ए कुंज भला हुम मंत्र सुर्यम पायत मति बाह ।

कोबिस मोर हस नहि कुंजत ताकी बसिबो काहि सुहाह ॥^१

श्रीर मन्तबर व्यास जी की तो बुद्धावनवासी स्वपक्ष की जूठन और कहीं के बापी बिग्र के मिथ्यात्म से भी मधुर मामूम होती है—

‘व्यास’ मिठाई बिग्र की ता में भायें घाग ।

बुद्धावन के स्वपक्ष की जूठन छये मणि ॥^२

इसके विपरीत वे नगर जहाँ अपार ऐश्वर्य के कारण भाओं बाम नाच रंभ और जहम-जहत बनी रहती की भक्ति-सामना में बिभ्न-रूप होनेके कारण इनको कूटी झाल न माते थे। सम्राट् धरुवर के धार्मिकता पर बुद्धमनवास सीकरी में जैसे तो गए परन्तु उससे इसके मन म जो गतानि हुई उसका अनुमान निम्नांकित पद से सहज ही हो सकता है—

मवत को कहा सीकरी काम ?

घावत जात पहैयां दूडी बिसरि पयो हरि-नाम ॥

जाकों मुल देसत बुस अपजे ताकों फरती परी प्रताम ।

‘कुंजन बात’ ताम गिरिबर बिनु यह छय दूठी पाम ॥^३

काल—काल घाव प्रायः दो धर्मों में प्रकृत होता है मृत्यु और समय। मृत्यु को संमुख देकर बड़े-बड़े मनस्वी भी कंथित हो उठते हैं और प्राण-पना के लिए ताबों की सपदा देने को तैयार हो जाते हैं परन्तु बसी काम से घाव तक न कोई प्राणी बचा और न बचेगा। मृत्यु की इस अनिनायता को दिखाते हुए सब देशों और कामों के मवतों ने मूढ़ सोचों को नीति-मय पर धरुवर करने का मत्न किया है। कृष्ण-काव्य में भी काम की बसबसा दिखाते हुए मनुष्य को सत्यवचामी बनाने का मत्न किया गया है और साथ ही यह भी बता दिया है कि सबबुरु की हवा से ही कासजय का निवारण हो सकता है—

(क) काम बनी तें सब जय काँषो जहाविक हूँ रोए ।

‘सुर’ धमम की कशी शोन गति जबर मरे, परि सोए ॥^४

१ ‘गोविन्दरत्नामी’, पृष्ठ २१३

२ व्यासवासी, व्यास जी की तापी पृष्ठ १६६।१३३

३ ‘कुंजनबात’ पृष्ठ १२०

४ सुरतापर, पृष्ठ १८।३२

(घ) बोहत धनुर, बाण फल आहत, जीवत है फल सागे ।

'सूरसागर' सुन राव न भयिष्य विरत वास संप सागे ॥^१

(ग) 'परसा' पावर वास की तुटी बेही माहि ।

सतगुण विना न मोहरे, सासै माहों माहि ॥^२

समय का प्रवणन के सम्बन्ध में इनके सुन्दर नीति-वचन दृष्ट्य-काव्य में विचार देय हैं । उगाहरछाय समय पर की गई छानि-सी सहायता से जो काय सिद्ध होता है वही प्रबन्धन पूरा जाने पर बहुत साहाय्य से भी सम्पन्न नहीं होता । व्यास की का कथन है—

एक पुत्र जस प्यारो जीव यों राजे सो मन ।

पाउं सुपा सिन्धु बहा कीज दृष्टि गये अ प्राप्त ॥^३

कसिंलास—देव और जाति में प्रवर्तित पाप अन्याय अत्याचार आदि के सिद्ध पापी अन्याया अत्याचारी आदि का बोधी न टहण कर कलि-काल को ही अन्वित करन की प्रथा इस देश में बिरकाल से जसी पाठी है । यदि यवन-शासन के कारण हिन्दू अटाय जाय वे यों काली जाती थी और मन्दिर किष्मस्त किए जाते थे तो इनका कारण भी कसिकास हो माना जाता था । यदि सत्य व्यवहियों का उत्सपन करत और पुत्र पिठा का तो इनका दोष भी कलि क ही माये मझा जाता था—

पुत्र न बहो पिता की मानत करत आपनी भायी ।

बेटी बेजात सक न भानत दिन-दिन मोस बहायो ।

याही ते धरिया नर होत है पुत्र्य से पाव सयायी ।

इतनों कुप्य छहिये के कपयै काहे को 'व्यास' विवायी ॥^४ (व्यास जी)

इन कवियों में यह विचार भी पाया जाता है कि कलि-काल का नाश करने के लिए ही अथवान् दृष्ट्य और सम्प्रदायों के आचार्यों ने जन्म लिया है ।^५

(७) ज्योतिष शकुन—इन कवियों का सुमाशुन समय मुहूर्त यह नक्षत्र शकुन आदि में विज्ञान तो है परन्तु बहुत अधिक नहीं । कारण यह कि ये सोय की दृष्ट्य पर इतना अधिक विश्वास रखत हैं कि उनकी बुद्धा-दृष्टि कर ग्रहों और अथ-शकुनों के अनुमान का भिन्न बेती है । इनकी यह भी आस्था है कि यदि दृष्ट्य की दृष्टि काम हा तो सुम यह और सुमाशुन भी हमारा हित नहीं कर सक्ते । उपर्युक्त कथन के समय में दो पद्य प्रस्तुत किए जाते हैं—

१ सूरसागर, पृष्ठ २३१६१

२ पद्मपुराण सागर, पृष्ठ १२२।१२२३

३ व्यासपारो पृष्ठ ११।२४

४ व्यासपारो, पृष्ठ १२२।२३३

५ सूरसागर पृष्ठ १४।४१ द्वािदृष्ट सिन्धु सिन्दरणी पृष्ठ ७९ ७

(क) पीपाम कि वेष करन को कीजे ।

गुप्त मत सिद्धि बल नष्टप्रकार बलि सुम धरी बिचार लीजे ।^१ (परमानन्द बास)

(ख) जानु इक्ष्मन् जतम्भ मित्रापति मंपस बुद्ध शिष्यस्य लीके ।

औ सुध हों परम्भ भवन्भ के तो धूपुनंभ सुमह नबी के ॥

तोसरो केतु समेत बिषु प्रत तो हरिबंध भग कर्म पीके ।

गोबिंद छाड़ि प्रमत्त बिसौं बिग ली करहहि कहा नवप्रह माके ।^२ (हितहरिबंध)

(क) जन्म-साफल्य—कृष्ण-कवियों की दृष्टि में मातृ-जीवन की सफलता प्रभूत भव-सम्पत्ति या सुख-सामग्री एकत्र करने में नहीं बल्कि हरि-भजन सुख-रीति प्रवृत्ति-वाच्य भावबल-वशय भक्त-विरह-साधन और राधाकृष्ण की प्रतिमा के सम्मुख प्रेममग्न होकर नृत्य करने में है। प्रायः हमारे यहाँ पश्चार्धकृत्य धर्मात् धर्म धर्म नाम मोक्ष की प्राप्ति को ही जीवन-लक्ष्य माना गया है परन्तु श्री कृष्ण के प्रेमियों का ये पश्चार्ध भी तुच्छ प्रतीत होते हैं। व्यास जी के मत में जो वे पश्चार्ध राधा-कृत्य के सम्मुख पानी भरते हैं—

श्री कृष्णान के राधा बोक स्याम राधिक रागी ।

लौन बहारप करत भैरूरी, मुक्ति भरत अहें पानी ॥^३

(ख) पुनर्जन्म, मुक्ति—धार्मिकतर भारतीय सम्प्रदायों के अनुसार इन कवियों का पुनर्जन्म में विश्वास है। वे मानते हैं कि श्रीकृष्ण की भाक्त योनियों में धनकर कर्म-कर फिर कभी मनुष्य की दुर्लभ देह प्राप्त करता है। परन्तु बार-बार इस धर्मस्य काया की प्राप्ति की कामना इसमें नहीं बिछाई देती। वे एक ही बार प्राप्त इस सुमनस्य से लाभ उठाकर संसार-सागर से पार उतरना चाहते हैं। संसार और काया को निष्ठा मानने वालों में इन कर्मियों के प्रति घास्वत धाकपण हो भी कैसे सकता है। मोक्ष में भी इन कवियों का विश्वास है परन्तु उसे वे प्रायः धर्म सम्प्रदाय वालों के लिए ही रहने देते हैं और प्रायः निरुद्धिहायी के भीमार्थन में ही उससे भी उच्च कोटि का सुख प्राप्त करने के इच्छुक हैं। इस सुख के लिए वे अनेक जन्म धारण करने को भी उत्तम न।

(क) साज श्रीरासी शोनि भरनि के, फिरि बाही धन हीनी ।

‘सुरदास’ धनयंत मजन बिनु ज्यौं अ जसि-जस छोनी ॥^४

(ख) यही विषया ! तो प अ बरा पस्तारि मारौं

जानमु-जानमु हीनै पाही अक पतिबो ।

१ परमानन्द बास, पृष्ठ १८

२ हितामुल सिधु पृष्ठ १११

३ व्यासबागी, पृष्ठ १७१६४

४ सुरदास पृष्ठ २२।६१ (और भी वेदों, पृष्ठ १८।२०१)

अहीर की जाति, समोप नर-वर,
घरो-घरी घनस्याम हेरि-हेरि हूँसिजे ॥^१ (छीतस्वामी)

(ब) धर्म, पंच—मागधत धर्म के अनुयायी इन कृष्ण-कवियों में धर्म के प्रति भास्वा का होना स्यामाधिक ही है। श्री कृष्ण के जातकर्म मामवरण धर्म-प्राप्तन यशोपवीत आदि धार्मिक संस्कारों का उल्लेख तो इन काव्यों में बराबर मिलता है परन्तु रामकाव्य की-सी उदारता प्रायः इन काव्यों में दिखाई नहीं देती। प्रायः अपने सम्प्रदाय की तुलना में अन्य सम्प्रदायों को हीन ही समझा जाता है—

(क) सेवा-रीति बताई विधि सौ अपने मन की परम अनुप।

'छीत स्वामी' की किट्ठस प्राये और पंच जैसे बल कृत ॥^२

सेवक भी नै हरिबल कं अनुयायियों को तो पाके धर्म कहा है और दूसरों को कापे धर्म।^३ गणेशपूजकों की तो मृत्यु की कामना तक की गई है।^४ इस संकीर्णता के चूले हुए भी कभी-कभी कोई भक्त कुछ उदारता का प्रदर्शन कर ही देता है—

अपने अपने भक्त लगे, बाब भवावत सोर।

पयो ल्यों सब को सबने एकं नर किछोर ॥^५ (व्यास जी)

कृष्णकाव्य पर एक दृष्टि

नवीन विषय—पूर्वोक्त विवरण से स्पष्ट है कि कृष्णकाव्य मुख्यतः कृष्ण-भक्ति से सम्बन्ध रखता हुआ भी नीतिकार्य के विचार से नितान्त उपेक्ष्य नहीं है। यह भी निश्चयतः रूप से कहा जा सकता है कि उसमें नीति-सम्बन्धी कई ऐसी बातों का उल्लेख किया गया है जो पिष्ट-लेपण मात्र नहीं हैं। कई बातें ऐसी हैं जिनकी जर्बा पूर्ववर्ती हिन्दी नीतिकार्यों में दुर्लभ है जैसे—एकाकी बीबा से प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती रसिकों की नामी भी मसी बाह्माभुर्न के साथ मनोमार्दव भी धाबस्यक है गीता और भागवत का पद भुति से भी उद्वृष्ट है गुणी व्यक्तित्व का प्रत्य र्प सहा है पिता की दृष्टि सन्तान के दायार्य कृत्यों पर नहीं पड़ती पति का पत्र पढ़ीसिन से न सुनना चाहिए राजा, कृष्ण और गुरुओं के नाम का अप करता चाहिए कृष्णप्रेम के लिए घालन परिवार और समाज की मर्यादाएँ भंग होती हों तो कोई बिन्ता नहीं युवतियों को ज्ञानयोग का उपदेश देना अनुचित है निदक हस्तस्य है विविध सिध्य सन्तों की पूजन भी भय है होनी में मर्यादोन्मत्तन उपेक्ष्य है सम्पत्ति को स्वकीय-समझे बासा तस्कर है बुढ़ावन के काय्याम की पूजन ग्रम्य कहीं कं विप्र के निप्टाम्

१ 'छीतस्वामी', पृष्ठ ५१ (और देखें रसजानि, पृष्ठ २१२)

२ 'छीतस्वामी', पृष्ठ ११०। (और देखें सिद्धास्त रत्नाकर सर्वया पचीसी, पृष्ठ १७)

३ हितामृत सिधु, पृष्ठ १२८, १३३

४ व्यासवाणी, पृष्ठ ८०।१४६

५ व्यासवाणी, पृष्ठ १३८।६३

से सम्बन्धी है, मुक्ति की अपेक्षा जन्म-जन्मान्तर में कृष्णसीमा-वर्षांत भेड़ है इत्यादि ।

पूर्ववर्ती साहित्य का प्रभाव—कृष्णकाव्य पर पूर्ववर्ती साहित्य का प्रभाव मुख्यतः दो बयों में विभाज्य है—(क) संस्कृत-साहित्य का प्रभाव और (ख) हिन्दी साहित्य का प्रभाव ।

(क) संस्कृत-साहित्य का प्रभाव—कृष्णकाव्य पर भीमम् भागवत पुराण का प्रभाव सब से अधिक पड़ा है । जहाँ मूरदास ने उक्त पुराण के आधार पर मूरसागर का प्रथमन किया है वहाँ नरदास ने उसी के दशम स्कन्ध का प्रथमाया काव्य में अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है । मेघदूत महर्षिहरि-कृत नीतिपाठक आदि काव्यों का प्रभाव भी कहीं-कहीं लक्षित होता है । जैसे—

(१) भवति भद्रास्तरुः फलोद्भयमनवान्भूमिभू रक्षितम्यगो घना ।

अनुब्रता सत्पुत्रया समृद्धिभिः स्वभाव एवैव परोपकारिणाम् ॥^१

(महर्षिहरि)

फलम के भार समित हुम एते । सपति बाव बड़ पत भंडे ।^२ (नरदास)

महर्षि के उपर्युक्त श्लोक का आशय यह है कि जैसे फल सपने पर बल बल-पूर्ण होने पर मेघ और सम्पन्न होने पर सज्जन विनम्र हो जाते हैं वैसे ही परोपकारी भीष स्वभावतः विनीत होते हैं । नरदास ने श्लोक के प्रथम तथा द्वितीय शरण को ली प्रहस कर दिया है और दोबोरे का परिवर्तन कर दिया है ।

(२) मेघदूत में जब विरहानुराग मग्न विवेकहीन हाकर बड़ मेघ द्वारा ही प्रियतमा के पाठ संदेश भेजने को उत्सुक हो गया तब कामिदास ने उसके इस विवेक-रहित काम का समबल गीति की निम्नांकित उक्ति द्वारा किया—

कामप्रती हि प्रकृतिरूपसाधयेतनाभेतनयु ।^३

धर्मान् मन्त्र-वीरिण मनुष्य बड़ और चेतन में विवेक करने की शक्ति से संबंधित हो जाते हैं । इसी नीति का उल्लेख नरदास ने 'रासपचाप्यासी' के प्रसंग में किया है जिसमें गोपियों को शपथ देकर भी कृष्ण अन्तर्हित हो गये और गोपियों विरह-व्यापित हाकर प्रियतम का पता बूलों और शक्तियों से पूछने लगीं—

हैं गईं विरह विपन्न तब कृष्ण हुम बेनी-रम ।

को बड़ को फलन्य कसू न जानत विरही पत ॥^४

(३) वीमद भाववत् में पातिव्रत की प्रशंसा निम्नांकित पद्यों में की गई है—

१ दत्तक-प्रसम् पुष्ठ ३२।६१

२ मंडवात प्रभाबली, उपमज्जरी पुष्ठ ११६

३ कासिदास मेघदूत पद्य ३

४ मंडवात प्रभाबली, रासपचाप्यासी, पुष्ठ १४

कुञ्जीलो दुर्मनो पुत्रो ज्यो रोष्ययसोऽपि वा ।
 पतिः स्वामिर्न ह्यस्तस्यो लोकेऽप्युगिरपातपी ॥
 अस्वर्ष्यमयास्यं च पन्तु इच्छु नयाबहम् ।
 बुगुप्सित च चरन्त घौपपत्यं कुलस्त्रिया ॥^१

'उत्तम शोक प्राप्त करने की इच्छुक स्त्रियों को पापी के सिवा किसी भी प्रकार के पति का परिष्कार न करना चाहिए चाहे पति पुञ्जील भाष्यहीन बुद्ध मूख रोगी या निर्धन ही क्यों न हो। कुञ्जील स्त्री के लिए आराधिममन स्वर्पनादाक अपकीर्ति-जनक तुच्छ दुःखदायक भयकर और बुणा-जनक होता है।

मागध की इसी नीति को मूरबास भी ने निम्नलिखित शरणों में व्यक्त किया है—

बिरथ घट दिन मागधूं धौ, पतित भौ पति होइ ।
 घळ मूरख होइ रोगी सब नहूँ जोइ ॥
 तजि बरताइ धौप दी भकिय, सो दुःखीस नहि जोइ ।
 मरै नरक, बौवत या लग से जनी कही नहि जोइ ॥^२

(४) मागधता मौर्य-शासिनी है इस नीति का उल्लेख बसि-बामन की सिद्ध कथा की धोर संकेत करते हुए 'प्रसगरत्नाबसि' में निम्नवर्ती पद्य में किया गया है—

सावमनहतां नद्वती यादत्किमपि न वाच्यते लोकम् ।
 दक्षिमतुयाचम-समये धीपतिरपि बामनो वातः ॥^३ (पट्टपमट्ट)
 मकतबर कथास भी ने इसी आशय को निम्नांकित दोहे में स्पष्ट किया है—
 'ध्यास काव करि भागिनी हरिहृ हरिनी होय ।
 यावन हूँ दक्षि के गये यह जानस सब क्षेय ॥^४

उपरोक्त बिबरण से हम निस्तब्ध कह सकते हैं कि इण्डिकाव्य में विद्यमान नीति की उचितता भाव और भाषा दोनों दृष्टि से सस्कृत-साहित्य की अपेक्षा अच्छी हैं।

हिन्दी-साहित्य का प्रभाव—संस्कृत-साहित्य के समान ही इण्डिकाव्य हिन्दी के पूर्ववर्ती साहित्य से भी प्रभावित मिलित होता है। इस क्षेत्र में इस काव्य पर कबीरदास, तुलसीदास का प्रभाव अत्यंत हिन्दी कवियों की अपेक्षा अधिक प्रतीत होता है। भाव-क्षेत्र में ही नहीं भाषा क्षेत्र में भी यह प्रभाव इतना अधिक है कि कहीं-कहीं

१ भीमरू मागधत बाम स्तुत्य अस्याय २६।२५, २६

२ मूरसागर पृष्ठ ६११ । पद्य १०१६, १०१७

३ सुभाषित रत्नाकर, पृष्ठ ६६।७

४ व्यसबाणी, पृष्ठ १३५।३७

तो कृष्णकाव्य की उचितया पूर्ववर्ती कवियों के पद्यों का कर्पांतर-मान प्रतीत हो गि है। जैसे कर्मगति के विषय में कबीर का एक पद्य इस प्रकार है—

(क) करम गति बारे नाहिं डरी ।

सुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी सोमि के सगल बरी ॥

सौता हरन भरन बरारम को बल में बिपति परी ।

नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाग बलि पलास बरी ।

पांडव जिनके प्राणु सारथी तिन पर बिपति परी ।

राजू केनु धौ भानु बंडमा बिधि संभोग परी ।

कहत कबीर सुनो भई छाबो होनी होके रहीं ॥^१ (कबीर)

उपर्युक्त पद्य के आधार पर भीराबाई और सुरदास ने भी पद्य रचना की है—

करम गति बारे नाहिं डरे ।

सतबारी इतिवन्द से राबा (सो तो) नीच घर नीर भरे ।

पीच पांडु अब सती होपरी, हाड़ हिमालं गरे ॥^२ (भीराबाई)

भाबी काहु सौं न डरे ।

कहं बहु राहुकहाँ बं रवि सति ज्ञानि संभोग परं ॥

सुनि बसिष्ठ पंडित प्रति ज्ञानी रवि-रवि समन बरे ॥

तास-भरन तिय-हरन राम बन-बनु बरि बिपति भरे ।

हरिचन्द्र सो को बग राता सो घर नीच भरे ।

‘सुरदास’ प्रमु रबी सु हू बं है को करि सोच परं ॥^३

उपर्युक्त तीनों पद्यों पर कृष्टिपाठ करने से स्पष्ट हो जाता है कि इनमें कर्ष्य विषय की ही समानता नहीं है उदाहरण भी समभग समान हैं और शब्दावली में भी साम्य है ही ।

(ख) साफल कामण मति मिले, बीसनों मिल बडाल ।

ब कमास के भविये जानों मिले मोपाम ॥^४ (कबीर)

साकत-बामन तिन मिली बँदुख मिलि बरडाल ।

बाहिं मिले सुन पाइबे जनो मिले मोपाम ॥^५ (ध्यास)

उपर्युक्त दोहों में काह्यण साकत की अपेक्षा बँडाल को श्रेष्ठ कहा गया है। ध्यास भी नाच के लिए ही कबीर जी के सामाची नहीं हैं अपने दोहे के तीन चरणों की शब्दावली के लिए भी कबीर जी के श्रेणी हैं ।

१ कविता कोशुरी भाग १ पृष्ठ १०३

२ भीराबाई की पद्यावली पृष्ठ १३६

३ सुरदास, पृष्ठ ८२।२६४

४ कबीर प्रयागजी भूमिका पृष्ठ ३४

५ ध्यास-वाणी पृष्ठ १६६।१६६

(घ) गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'कवितावली' के उत्तरकाण्ड में ऐसे अनेक पद्यों की रचना की है जिन का आशय यह है कि चाहे मनुष्य संसार की सभी प्रकार की सुख-सुविधाओं से सम्पन्न हो तो भी उसका जीवन ठब ठक सफल नहीं माना जा सकता जब तक उसके हृदय में सच्ची रामभक्ति का संचार न हो। उनमें से कुछ सर्वियों के अन्तिम चरण ऐसे भये तो कहा तुलसी' इस शब्दावली से आरम्भ होते हैं। कृष्ण भक्त महन्त किशोरदास जी ने अपनी सम्पूर्ण 'सर्विया-पञ्चीसी' की रचना इसी शैली में की है और अर्ध विषय भी प्रायः वही है। जैसे—

झुलत द्वार अमल मतग जंजोर करे मर प्र बु बुभाते ।
तीखे तुरग मनोगति बजस पौन के गौबहु तें बड़ि जाते ॥
भीतर अंगमुली अदलोकति, बाहुर मूप करे न समझे ।
ऐसे भये तो कहा तुलसी, जून जानकी-नाम के रग न राते ॥^१

(तुलसीदास)

इंड करे कर माहि प्रबड सुबान हुसान समान सबारी ।
मानत जान अमान गरिइ म्हा अनु बेव भर कर भारे ॥
मत मतग करिअ तुरग रई सुय सय अनेय सैमारी ।
ऐसे भये तो कहा हरिदास भये नहीं नित्य 'किसोर' बिहारी ॥^२

(किशोरदास)

परिस्थितियों का प्रभाव—कृष्णकाव्य में जो थोड़ी-बहुत नीति दिखाई देती है उस पर उत्कामीन परिस्थितियों का प्रभाव भी वही-वही दिखाई देता है। एक ओर तो जैन साग य ओ अत्यन्त ईश्वर में विश्वास ही न रखते थे और कठोर संयम के पक्षपाती थे। वे केवलसूचन उग्र तप आत्यधिक जीवदया दिना भोजन धारि इत्यों को आत्यधिक महत्त्व देन थे और उस भक्ति रस से सर्वथा रहित थे जिसमें कृष्णभक्त अपने जीवन को सामक समझते थे। इसलिए इन कवियों ने जैनों को उक्त व्यवहारों में लिए प्राड़े हाथों लिया है। यथा—

सु बित केस कलेस कलेबर काम करम लिये अधिकारी ।
रसक बीब अनेह्यक ईश्वर बातर भोजन अस्य सुमारी ॥
इंद्रिनि भीति अतीत पराहुव पान सकामन तें मति टारी ।
ऐसे भये तो कहा हरिदास भये नहीं नित्य 'किसोर' बिहारी ॥^३

दूसरी ओर योपपत्ती लोप अपने मत का प्रचार करने में मग्न थे। वे बताएँ

१ तुलसी प्रभावली पृष्ठ २, कवितावली, पृष्ठ १७१, १४

२ 'तिष्ठान्त रत्नाकर' में 'सबदा पञ्चीसी' पृष्ठ २६३।१२ (सर्विया पञ्चीसी के सभी पद्यों में महन्त किशोरदास ने अष्टादश आपार्य हरिदास की छाप लगाई है।)

३ वही वही पृष्ठ २६२।८

रखते मल भीर रोम बढ़ाते फाग फड़काते मसम रमाते प्राण-संबन्ध करते भीर
भीगिक बियाघों के प्रति भोगों को उन्मुख करते थे। परन्तु हृष्यकर्मियों को ये सब
बियाघें हृष्यवर्धन के बिना बंजास दिखाई देती थीं।

मुनि के उपदेश सुनेस मये यों भेष बिठा त्यों घासत मारी।

धीर बटा ज्य कांग फटा नय रोम घणवित स्वमु बकारी ॥

बाहु उठाय बिभूति रमाय समाधि तयाय सुपौन प्रचारी।

ऐते मये ती कहा हरिबास मये नहीं नित्य 'किशोर' बिकारी ॥^१

परमुराम भी ने भी इस मार्ग को बिकट पाटी के तुल्य बुढ़ारीह भीर हृष्य
प्रेम के मार्ग को विमान के समान सुरन्त प्राप्तमान पर पहुँचाने वाला कहा है—

त्रिभुव कोट पाबी बिकट दूम्य न बड़ई प्राण।

परसा पंच न जानई, पायो प्रेम-विमाल ॥^२

हीररे मुसममान भोग से जिनके मुस्ता काबी घादि जूया, बहिष्ठ, रोबख,
कुपान घादि के सम्मम में बहुत-कुछ काँते करते थे परन्तु रसना की मोक्षपता की
घाति के लिए निरीह प्राणियों का निर्दयतापूर्वक बध करने में रती भर भी संकोच
न करते थे। इतना ही नहीं बिभूमियों के प्रति धर्याय तथा उनके पुत्रास्पानों के विध्वंस
करने में प्रसन्नता का अनुभव करते थे। ये सब कार्य हृष्यकर्मियों की दृष्टि में कुत्सित
भीर हेय से हीनिए उन्हीं इतका निस्संकोच लगन किया। जैसे—

घापण मारे हुक बड़े, करता हती हराम।

'परसा' खारवि भीम के, बुढ़ि मुए बेकाय ॥

करतें करवी शरि के, सबदा करे हमार।

'परसा' बरण्ड हीन की, क्विचित लहू बर हार ॥^३

जनेक माबु-संन्यासी बर-बार के परिप्राण मात्र की ही कस्याए का सावक
समझ कर परिभ्रमण में मिरत रहत थे। इन कवियों के मत में वे हृष्यविमुख होने
के कारण हीमे ही यमलोक के मार्ग पर दबसर हो रहे थे—

संन्यासी घुमे जलें बाणि बुद्धि जम-लोक।

जयति बिभुज पनु 'परमुरा' सके न काहू रोक ॥^४

इन कवियों की रचनाओं में जहाँ-जहाँ कति-काल का वर्णन किया गया है
वहाँ-वहाँ भी तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भक्तपर व्यास
की निम्नलिखित पंक्तियों में तत्कालीन सामाजिक रता का दख्खान विन प्रस्तुत

१ वही वही, पृष्ठ २६२।७।

२ परमुराम तापर, पृष्ठ १००।११७

३ वही, पृष्ठ, १२१।१६०८ १२७।१६१२

४ वही पृष्ठ १६१।१६८२

किया गया है—

धम कुयो कलि बई रिजाई ।
 धम भयो भीत धम भयो बरो पतिनन सौ हितबाई ।
 सोपी जपी तपी सन्यासो व्रत छ'इयो प्रभुसाई ॥
 बैप्रत सल्ल भयानक सागल, भावत सभुर जमाई ।
 बान लन जों पड़े तापसी यच्चलनि की र्यभनाई ।
 सरन सरन छी बड़े तामनी चारों फोटि जसाई ॥
 अन्दरेहन की गुण गुसाई आचरने धयमाई ॥^१ (व्यास)

कसा-पदा

(क) रस भाव—कृष्णकाम्य के अधिकतर रचयिता धर्मोक्ति के लिए थे। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ प्रायः सरस और भावपूर्ण हैं तथा उनमें प्रसंगिक सम्बन्धित नीति के धर्म भी रसों और भावों से घुल्य नहीं हैं। जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है, उनके नीति कथनों में। अथ और शृंगार रस की बहुसंख्या है। हास्य और वात्सल्य भीमत्सादि रसों की भी व्यवस्था 'कहीं कहीं' हुई है जैसे—

धुबिहि कुमी धामरिहि जाजर नक्यी पहिर बेतरि ।
 मुबली पाली पारन भाई कोड़ी ध पहि बेतरि ॥
 बहिरी सों पति मठा कर सो जतर कीन पं पाव ।
 ऐसो म्याव है ता जो ऊयो जो हमें जोग तियावै ॥^२ (हास्य रस)
 भात्रि न जाई देखि करि रण भावत भरि पुर ।
 'परसु राम' छाई नहों बहै धम भजे सुर ॥^३ (युद्धरस)
 अमुमति कान्हूहि यहै सिलावति ।
 मुनहुस्याम, धम बड़े भये तुम कहि स्तन-पान झुझावति ॥
 ब्रह्म-नरिका तोहि पौगत देखत, हंसत नात्र नहि आवति ॥^४ (वात्सल्य रस)
 त्रिहि कुस उपगयो पुत कपूत ।
 ताकी बल मास हूँ बहै बिहि गिययो बम भूत ॥
 जो नु पितहि बिरोधे सोई है सखहिन को भूत ॥^५ (भीमरस रस)

भावों के अन्तर्गत प्रबुधमिथ प्रबुधमिथ मति औरमुष्य वृत्ति चकारता क्या पातिव्रत निर्भयता मन्त्रता वज्रप्रम गोप्यम आदि की कबली व्यवस्था हुई है।

१ व्यासवासी पृष्ठ १२२।२३२

२ लं० भयवान् बीन मुरपचरल पृष्ठ ८।१२

३ परसुराम सागर पृष्ठ ४३।४२८

४ मुरसापर पृष्ठ ३३६।८४०

५ व्यासवासी पृष्ठ ७५।१३७

रखते मरुत भीर रोम बढ़ाते कान फड़बाते मरुत रमाते प्राण-संयम करते भीर
वीथिक विद्याओं के प्रति सोगों को उन्मुख करते थे। परन्तु कृष्णमठों को ये सब
विद्यार्थे इच्छादर्शन के बिना बंजाल दिसाई देती थीं।

सुनि की उपदेश सुनेस मये यों भिय बिसा स्वीं घासल मारी ।
सीस कटा बुग कान कडा मय रोम प्रपंडित स्वंभु प्रकारी ॥

बाहु पडाय विमूठि रमाय समापि लपाय सुपौन प्रकारी ।
ऐसे मये ती कडा हरिवाल लये नहीं नित्य 'किसोर' बिहारी ॥'

परसुराम भी ने भी इस मार्ग को बिकट पाटी के तुल्य दुरासोह भीर कृष्ण
प्रेम के मार्ग को बिमान के समान गुरल घासमान पर पहुँचाने कामा कहा है—

बिहुट कोट पाटी बिकट दुम्य न चढ़ई प्राण ।
परसा रंप न चालई पायो प्रम-बिमार ॥'

ठीसरे मुसममान सोय ने जिनके मुस्ता काबी पादि बुवा बहिस्त सोबब
कुरल पादि के सम्बन्ध में बहुत-कुछ वातें करते थे परन्तु रसना की सोनुपठा की
घाति के लिए निरीह प्राणियों का निर्दयतापूर्वक बह करने में रती भर भी संकोच
न करते थे। इतना ही नहीं विधियों के प्रति ध्याय तथा उनके पूजास्वार्थों के विषय
करने में प्रसम्भता का अनुभव करते थे। ये सब कार्य कृष्णमठों की दृष्टि में कुत्सित
भीर हेय थे इसीलिए उन्होंने इसका निस्संकोच बहदन किया। जैसे—

घापरल मारे हक कहे करता हवी हराम ।

'परसा' लबारवि बीम के बुकि मुए बेकाम ॥

करते करवी डारि से सबयां करे हलाम ।

'परसा' बरपह बीन की स्थिति लई बर हाल ॥'

घनेक माबु-संन्यासी बर-बार के परित्याग मान को ही कसपाण का घाबक
समक कर परिभ्रमण में निरत रहते थे। इन कवियों के मठ में वे कृष्णविमुख होने
के कारण सीधे ही यमसोक के मार्ग पर प्रपसर हो रहे थे—

सन्पासी सुये जलें जालि बुकि जम-सोक ।

मयति विमुष पमु 'परसुरा' सजे न काहू रोक ॥'

इन कवियों की रचनाओं में जहाँ-जहाँ कति-काल का बर्णन किया गया है
वहाँ वहाँ भी तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। मकतबर म्यास
की की निम्नलिखित पंक्तियों में तत्कालीन सामाजिक दशा का अच्छा चित्र प्रस्तुत

१ वही वही पृष्ठ १६२१७ ।

२ परसुराम सापर, पृष्ठ १००।२२७

३ वही पृष्ठ १२६।१६०८, १२७।१६२२

४ वही पृष्ठ १६१।१६८२

क्या गया है—

जर्म कुयो कलि बई रिखाई ।
 धन मयी भीत जर्म मयी घेरी पतितन सो हितबाई ।
 जोपी कपी लपी सन्यासी बत छांड्यो अक्रुनाई ॥
 देसत तस्त भयानक लायत, भावत समुर जमाई ।
 बाल संन नो धड़े तामसी सचकनि को वैभनाई ।
 सरन मरन छो बड़े तामसी, धारो फोटे कसाई ॥
 अदेसन को गुब पुसाई आचरन अपनाई ॥^१ (ध्यास)

कसा-पक्ष

(क) रस भाव—कृष्णकाव्य के अधिकतर रचयिता अन्धे कवि थे। यही कारण है कि उनकी रचनाएँ प्रायः सरस और भावपूर्ण हैं तथा उनमें प्रसंगबद्ध सभी विष्ट नीति के अर्थ भी रसों और भावों से भूम्य नहीं हैं। जैसा कि उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है उनके नीति कथनों में। तब और शृंगार रस की बहुलता है। हास्य और वात्सल्य, भीमत्वादि रसों की भी खूबना 'कहीं कहीं' हुई है जैसे—

सूचिहि सुनी, अपरिहि काबर, नकटी पहिर बेतरि ।
 मुइली पाटी पारन चाहे कोड़ी अ गहि केसरि ॥
 बहिरी सो पति मता करे सो उतर कोम पर पावे ।
 ऐसे म्याव है ता को ऊँचो सो हुमें जोग सिखावे ॥^२ (हास्य रस)
 भात्रि म चाई बैलि करि, रस भावत धरि पूर ।
 'परसु राम' छाँडे नहीं जहें पम मडे सूर ॥^३ (मुठबीर)
 अनुमति काहूहि यहै सिखावति ।
 मुनहुस्याम धर बड़े भये तुम कहि स्तन-पान झुझावति ॥
 ब्रह्म-सरिका तोहि पीयत बेकत हंसत नात्र नहि आबति ॥^४ (वात्सल्य रस)
 जिहि कुन अपग्यी पुत कपुत ।
 ताको बंस नस झूँ जहै जिहि पिबयो जम बूत ॥
 जो सु पितहि बिरोधे सोई है सबहिन को मुत ॥^५ (वीमत्स रस)
 भावों के अन्तर्गत प्रमुमकित पुरुमकित मति प्रीत्युभय भुति उदाहृता, वया पातिप्रव निर्मयता नभ्रवा ब्रह्मप्रेम माप्रेम आदि की अन्धी खूबना हुई है ।

१ ध्यासवाली, पृष्ठ १२२।२३२

२ सं० ममबान बीन सुरसंवरत्न, पृष्ठ ८।१२

३ परसुराम सागर, पृष्ठ ४३।४२८

४ सुरसागर, पृष्ठ ३३६।८४०

५ क्यासवाली पृष्ठ ७५।१३७

(क) भाषा—इस काव्य की रचना प्रायः राजभाषा में की गई है। परपुराण धीरे धीरे वार्द की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव पर्याप्त लक्षित होता है। परमा मन्द दास ने कहीं-कहीं लड़ी बोली का भी प्रयोग किया है।^१ 'अतुर्भुजवास' और 'सेनक' के कुछ पदों की भाषा मरहट-बहुस है।^२ संस्कृत की बाली में धरम्म प्रगट्ट निपट्ट, प्रहृति कुयति धादि शब्दों में द्वित्वाक्षरों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में दिखाई देता है। गोबिन्दस्वामी के एकाम पद की भाषा को बेचनागरी में लिखी चर्चू कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।^३ अन्य कवियों की धरसा परपुराण की भाषा में बिन्धी छन्दों का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है जैसे—बदगी मरीबनिबाज बेहरव कुदाय मसीति बीजल मुरवा वहिस्त हकक, हुमास कात्री नमाज धादि। छन्दों को अधिकतम रखने के विचार से कहीं-कहीं छन्दों के रूप विहृत भी कर दिये गए हैं जैसे परपुराण की 'नाचपण' 'ताचपण' और 'समाज' के स्थान पर 'नारायेण' 'ताचयेण' और 'सामाज' लिख दिया है।^४

(ग) परसा जो नर मन सुखी धाने स्वान सुभाइ ।

सित्तासन बैठाइये, धाकी-बाट न पाइ ॥^५ (परपुराण)

(घ) धाकी जानि परी सधि बैसी सो तिहि टेक रह्यी ॥^६ (सूरदास)

(ग) सुये होत न स्वान पूछ ज्यी, पकि-पकि बीर मने ॥^७ (सूरदास)

(घ) जा के कटक सुम्प्यो न होइ । जा धाने पर पीरहि तोइ ॥^८ (मन्द दास)

उंर—अधिकतर द्वय्यकाव्य की रचना येस मुक्तकों के रूप में की गई है जिन पर उनके रचयिताओं ने राग रागिनियों के नाम का भी उल्लेख किया है। परपुराण सूरदास मंडरास किशोरदास बजवासीदास रसदान धादि ने पर्याप्त रचना दोहा चौलाई, कवित्त सर्वया कुंडमिमा धरिस्त धादि छन्दों में भी की है। पदों की धपेसा दोहा कवित्त सर्वया धरिस्तादि छन्दों में नीति की मात्रा अधिक है।

दोसी—इन काव्यों में तन्पनिकरूपक उपदेशात्मक चरित्रवर्तक और आत्मा-मिथ्यजक दोसियों का प्रयोग अधिक किया गया है और अन्वयपरिचात्यक तथा नीतिक उपमाओं की दोसी का कम। गोबिन्द स्वामी जी ने विविधीली में भी कुछ रचना की

१ परमानन्द तागर, पृष्ठ १३।३०

२ 'अतुर्भुजवास' पृष्ठ १६८ 'कुम्भनवास', पृष्ठ ६३ द्वित्वाक्षरसिद्धि पृष्ठ ६८३-४

३ 'गोबिन्द स्वामी', पृष्ठ ३=२

४ परपुराण तागर पृष्ठ १०।१६३, १६४

५ वही पृष्ठ २२।२१३

६ सूरदास, पृष्ठ १=३१।२६३२

७ वही पृष्ठ १५१=४३४८

है। चौदसी साल योनियों के बाह्य बुद्धों से ब्राह्म के लिए हितहरिबध जी ने हित चौदसी की रचना की है। हरिबासी महन्त किशोरबास ने सतक और 'पञ्चीसी' की रचना में भी काव्य लिखे।

धर्मकार—सुकवि होने के कारण इष्टकाव्य-कवियों ने नीति के पक्ष-मात्र नहीं रहे उन्हें मात्र-गुरु बनाने के प्रतिरिक्त प्रसन्न करने का भी उद्योग किया है। इन के नीति-विषयक ग्रंथों में सदा धर्म और समय सनी प्रकार के धर्मकारों का प्रयोग कथित होता है। शब्दाकारों में अनुप्रास कीप्ता और साटानुप्रास का तथा धर्मास कारों में उपमा रूपक इष्टान्त तुल्ययोगिता उपमेका आदि का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक किया गया है। धर्मासकारों में जो धर्मस्तुत-योजना की गई है वह संस्कृत काव्यों से पर्याप्त प्रभावित है।

गुरु—इष्टकाव्य प्रवाद तथा माधुर्य-गुरु से अंतप्रोत है परन्तु धर्म गुरु की उसमें स्पृहता है। कवियों ने कुरु-सद्यों के परिव्याय और मधुर पदावली के पुत्रा में विशेष सतकता से काम किया है। यदि यह कहें कि माधुर्य की दृष्टि से इष्टकाव्य समग्र भक्तिकाव्य में अनुपम है तो अनुचित न होगा।

शेष—यद्यपि इष्टकाव्यों में भी धर्म काव्यों के समान हृत्कृत्य धर्मकार प्रसादाभाव आदि कई शास्त्रीय शेष कही-नहीं विद्यमान हैं तथापि नीतिकाव्य की दृष्टि से वे उच्यते हैं। नीतिके विचार से इस काव्य की सबसे अधिक धार्मिक धार्मिकीय बात है—पारिवारिक और सामाजिक मर्यादाओं का उस्तंभन। गार्हस्थ्य-जीवन की पवित्रता सामाजिक जीवन की नींव है और यही वह मूल हुई वही सामाजिक जीवन का भवन उपमाने गया। राम-इष्ट और गोपी इष्ट की प्रव-नीमाओं का जो उद्यम शृंगारिक बलाग अधिकतर इष्ट-कवियों ने किया है वह पारिवारिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य के लिए हिनकर नहीं कहा जा सकता। पुरपात्र पर विशेष बल का समान भक्तिम्यता पर अत्यधिक निर्भरता ईश्वर भाग्य और कसियुग की दक्षिणों के सम्मुख मनुष्य की विवशता स्वतन्त्रता-पूर्वक कार्य करने की क्षमता का समान प्रभावितरक नीतियों के उस्तंभन की कमी चापि बाप भी ऐसे हैं जिनकी और अतामास ही ध्यान धारण हो जाता है।

रामकाव्य और इष्टकाव्य—यद्यपि रामकाव्य और इष्टकाव्य एक ही समुच्चय भक्ति की दो शाखाएँ मात्र हैं तथापि इन की नीति में कुछ भेद है जिन पर पाठक की दृष्टि आयास ही जा पड़ती है। प्रथम बात तो यह कि रामकाव्य में नीति की मात्र इष्टकाव्य की अपेक्षा वही अधिक है। इस मात्रा भेद का कारण है उन उन काव्यों के रचयिताओं के दृष्टिकोण का भेद। रामकाव्यों का लक्ष्य या धीरमादि के आदेश अति को प्रस्तुत कर पाठकों को रामायण के अष्ट पात्रों के समान आदर्श जीवन धारण करने की प्रेरणा करना। इस समय की स्थिति के लिए रामकाव्य के प्रसंग में स्थान-स्थान पर नीति के पक्षों का समावेश निःसंकोच कर देते हैं। इष्ट

(ख) भाषा—इस काव्य की रचना प्रायः राजभाषा में की गई है। परशुराम धीरे धीरे बाई की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव पर्याप्त महित होता है। परमा मन्द बाध ने कहीं-कहीं बाकी का भी प्रयोग किया है।^१ 'भक्तुर्भुजबास' धीरे धीरे के कुछ पदों की भाषा मरुत-बहुत है।^२ सेवक की बाणी में भरम प्रमट्ट पिपट्ट, प्रवृत्ति कुमति धारि चन्द्रों में द्विरबाधरी का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में दिखाई देता है। गोविन्दस्वामी क एकध पद की भाषा को बेवगाणी में सिद्धी चर्चु कहुना ही अधिक उपयुक्त होना।^३ धन्य कवियों की अपेक्षा परशुराम की भाषा में बिन्धी शब्दों का प्रयोग बराध अधिक हुआ है जैसे—'बंदरी गयीबनिबाज बेदरब कुदाम मसीठि दोबल मुरदा बहिरत हबक हुमास काबी ममाब धारि। चन्द्रों को अधिकस रखने के विचार से कहीं-कहीं शब्दों के रूप बिठल भी कर दिये गए हैं जैसे परशुराम की 'नारायण' 'नारायण धीरे समान' के स्थान पर नारायण नारायण धीरे 'सामान' लिख दिया है।^४

(ग) परसा जो मर मन मुक्ती बाले स्वान सुमाइ।

सिहासन बैठइये बाकी-बाट न जाइ ॥^५ (परशुराम)

(ख) बाकी बानि परी सकि बंसी लो तिहि टेक रह्यी ॥^६ (सुरबास)

(ग) लुये होत न स्वान पूछ ज्यो पधि-पधि बंब मर ॥^७ (सुरबास)

(घ) जा लो कबक लुम्बो न हाइ। का जार्ने पर पीरहि सोइ ॥^८ (मन्द बाध)

छंद—अधिकतर इन्द्रकाव्य की रचना वेग मुक्तकों के रूप में की गई है जिन पर उनके रचयिताओं ने राम रायिनियों के नाम का भी उल्लेख किया है। परशुराम सुरबास नरबास किशोरबास बजबासीबास रसलान धारि ने पर्याप्त रचना दोहा चौगई कवित्त संधैया कुंडनिया धरिल्ल धारि छन्दों में भी की है। पदों की अपेक्षा दोहा कवित्त संधैया धरिल्लधारि छन्दों में नीति की भाषा अधिक है।

शैली—इन काव्यों में 'तन्मनिरूपक' उपदेशात्मक, शब्दावर्तक धीरे धातमा-धिम्यजक शैलियों का प्रयोग अधिक किया गया है धीरे धन्यापदेशात्मक तथा नैतिक उपायों की शैली का नाम। गोविन्द स्वामी जी ने तिबिन्दी में भी कुछ रचना की

१ परमातर बापर, पृष्ठ १३।३७

२ 'भक्तुर्भुजबास' पृष्ठ १६८ 'कुम्भनबास', पृष्ठ ६३ 'द्वितामृतसिधु' पृष्ठ ६८।३-४

३ गोविन्द स्वामी' पृष्ठ ३०२

४ परशुराम बापर पृष्ठ १७।१६३, १६४

५ वही पृष्ठ २२।२१३

६ सुरबास, पृष्ठ १ ३१।२६३२

७ वही पृष्ठ १५१।४३४८

८ 'द्वितामृतसिधु', पृष्ठ ६३

है। 'बीचसी भाव मोदियों के बाइल बुझों से भाए के लिए हितहरिदश भी ने हित बीचसी' की रचना की है। हरिदासी महन्त किशोरदास ने 'सतक' और पन्नीसी की खेसी में भी काव्य लिखे।

प्रकार—सुकवि होने के कारण कृष्ण-कवियों ने नीति के पक्ष-मात्र नहीं रखे उन्हें भाव-पूर्ण बनाने के प्रतिरिक्त प्रसन्न करने का भी उद्योग किया है। इन के नीति-विषयक ग्रंथों में सब्ध धर्म और समय समी प्रकार के धर्मकारों का प्रयोग सखित होता है। शब्दात्मकारों में अनुप्रास बीप्सा और जालानुप्रास का तथा धर्मात्मकारों में उपमा क्यक इत्यादि तुल्ययोगिता उपमेदा धारि का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक किया गया है। धर्मात्मकारों में जो प्रप्रस्तुत-योगता की गई है, वह संस्कृत काव्यों से पर्याप्त प्रभावित है।

गुण—कृष्णकाव्य प्रसार तथा भाव्युर्म गुण से अत्यंत प्रोष्ठ है परन्तु प्रोज गुण की उसमें न्यूनता है। कवियों ने ककच-सम्बन्धों के परित्याग और मधुर पवावसी के पुनाक में विषय सतर्कता से काम लिया है। यदि यह कहे कि माधुम की दृष्टि से कृष्णकाव्य समग्र भवितकाव्य में अनुपम है तो अनुचित न होगा।

शेष—यद्यपि कृष्णकाव्यों में भी अन्य काव्यों के समान हतभूतत्व सम्बन्धिकार प्रसाशामात्र भावि कई शास्त्रीय दोष कहीं-कहीं विद्यमान हैं तथापि नीतिकार्य की दृष्टि से वे उपेक्ष्य हैं। नीतिके विचार से इस काव्य को सबसे अधिक धार्मिक धार्मिकीय बात है—पारिवारिक और सामाजिक धर्मार्थों का संस्तंभन। मार्तुस्व्य-जीवन की पवित्रता सामाजिक जीवन की नीव है और जहाँ यह मज्ज हुई वहाँ सामाजिक जीवन का भवन डगमगाने लगा। पचा-कृष्ण और गोपी कृष्ण की प्रेम-मीमांशों का जो उदर शृंगारिक बर्णन अधिकतर कृष्ण-कवियों ने किया है वह पारिवारिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य के लिए हिनकर नहीं कहा जा सकता। पुरुषार्थ पर विरोध बस का अभाव भवितव्यता पर अत्यधिक निर्भरता ईश्वर, माता और कसियुग की शक्तियों के सम्मुख मनुष्य की विवशता स्वतन्त्रता-पूर्वक काय करने की क्षमता का अभाव प्रेमातिरिक्त नीतियों के उन्मेष की कमी भावि दोष भी ऐसे हैं जिनकी घोर अनायास ही ध्यान आकृष्ट हो जाता है।

रामकाव्य और कृष्णकाव्य—यद्यपि रामकाव्य और कृष्णकाव्य एक ही समुदाय भवित की दो शाखाएँ मात्र हैं तथापि इन की नीति में कुछ भेद है जिन पर पाठक की बहिष्ठ अनायास ही जा पड़ती है। प्रथम बात तो यह कि रामकाव्य में नीति की मात्र कृष्णकाव्य की अपेक्षा नहीं अधिक है। इस मात्रा भेद का कारण है उन उन काव्यों के रचयिताओं के दृष्टिकोण का भेद। रामकाव्यों का सत्य का भीरामादि के आदर्श बरित जो प्रस्तुत कर पाठकों को रामायण के श्रेष्ठ पात्रों के समान प्राप्त जीवन कारण क ने की प्रेरणा करना। इस सत्य की सिद्धि के लिए व रामकथा के प्रसंग में स्वान-स्वान पर भावि के पक्षों का समारथ नि-संशय कर देते य। कृष्ण

कवियों का बहुमय ही भिन्न था। उन्हें समाज को धारदोष्ण करने की विन्ता न थी। वे तो अपने प्रियतम और उनकी प्रियतमा के नाम के अप और उनकी सीमाधों के गान में ही इतने निरत थे कि परिवार और समाज उनकी दृष्टि में कोई महत्त्व ही न रखते थे। उनका कथन तो यह था कि जैसे गोपियाँ वेदशास्त्र के विधि-नियम, परिवार के बंधन और समाज के उपहास की विन्ता छोड़कर कृष्णप्रेम में मग्न हो गई थीं उसी प्रकार प्रत्येक अनुप्य को हो जाना चाहिए। यही कारण कि इन काव्यों में नीति की बातें प्रत्यक्ष रूप से कटू ही कम पाई जाती हैं।

वैयक्तिक नीति के क्षेत्र में सार्वीर्य और धार्मिक नीतियाँ तो प्रायः दोनों जाकाप्रो की समान ही हैं परन्तु मानसिक नीति में अंतर दिखाई देता है। वेद शास्त्र पुराण और विद्या के प्रति अतिनी प्रभाव भद्रा रामकाव्य में दिखाई देती है उतनी कृष्णकाव्य में नहीं। इसके विपरीत अतिनी मिष्टा कृष्णकवियों की भयबद्धता और यमभ्रातृपुत्र पुराण में अक्षित होती है उतनी वेदशास्त्रादि में नहीं। संक्षेप में इनका कारण यही है कि रामकवि तो वेदशास्त्र के प्रति भद्रा को धर्म्य बनाए रखकर सामाजिक अर्थात्सो के पास पर विवेक बस देते थे और कृष्ण-कवि कृष्ण और उनकी सीमाधों के प्रति ही अनन्त में प्रेम का प्रचार करना चाहते थे। बूँक गीता में श्रीकृष्ण के उपदेश हैं और रामकवि में उनका सीमा-दान प्रत्यक्ष यही प्रथम कृष्ण-कवियों की दृष्टि में दृष्टि-स्मृति से भी प्रधान बना दिये गए हैं।

पारिवारिक नीति में भी दोनों काव्यबाराधों का अंतर स्पष्ट है। माता पिता, पुत्र भाई पति पत्नी आदि के कर्तव्यों का अतिनी विचार और विस्तृत वर्णन राम कवियों ने किया है उतना कृष्णकवियों ने नहीं। यद्यपि पारिवारिक संबंधों के पारस्परिक सम्बन्धों को तत्काल दोनों ही कवियों ने विख्या कहा है तथापि व्यवहार में सम्बन्धियों के प्रति कर्तव्यपालन पर अतिनी पर रामकाव्य में अक्षित होता है उसका अर्थ भी कृष्णकाव्य में नहीं। यदि यह भी कह दिया जाए कि राममें कृष्णप्रेम के कारण निकट सम्बन्धियों की अक्षयता तक की प्ररक्षा की गई है, तो कथावित् अनुचित न होगा।

सामाजिक नीति के क्षेत्र में यद्यपि दोनों की बन्दनीयता दोनों ही पाठकों में समान रूप से विद्यमान है तथापि वर्णाश्रम के कर्तव्यों के अर्थात्सो पालन और ऊँच नीच जातियों के अंतर पर जो बस रामकाव्यों में अक्षित होता है उसका कृष्णकाव्यों में अभाव है। कृष्णकवियों के मत में तो कृष्णमन्त्र काशन की अक्षय पद का अर्थिकारण है। यद्यपि ये कवि कबीरादि अर्थों के समान अर्थव्यवस्था और जात-जात का अक्षय पालन तो नहीं करते तथापि भी कृष्ण की परण में धा जाने वाले विधार्मियों अर्थों और अर्थव्यवस्थाओं तक अर्थ करने में अक्षय नहीं करते। बूँक कृष्णकाव्य का एक अर्थव्यवस्था विषय अर्थव्यवस्था और अर्थव्यवस्था का अर्थ है अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था के अर्थ से अर्थव्यवस्था नीतियों का अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था है अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था में नहीं।

गुरुत्वों के लिए बन की प्रतिबन्धिता को दोनों धाराओं के कवियों ने दबी ब्रह्मण से स्वीकार किया है परन्तु उठे विरोध महत्त्व किसी भी धारा के कवि ने नहीं दिया। उठोप धीर बान-मुग्ध करने की जितनी प्रेरणा इन काव्यों में की गई है उतनी धनी पार्श्व धीर बनसंग्रह की नहीं। धारण्य की वात है कि इनके धाराध्य तो की के पति है धीर लुब ठट-बाट स रहते है परन्तु ये भक्त धन को विष्ण रूप मानत है। कारण इसका यह है कि सभी भक्त विरह के समान सम्पत्ति के मध्य में रहकर भक्ति नहीं कर सकते। विरह धन का बस्का सग जाता है यह मयबान् को भूम ही जाता है। तो भी इतना तो कह ही सकते है कि धन-सम्बन्धी जितनी धार्मिक नीतियों का उल्लेख राम राम के धर्तिकाव्यों में किया है उतनी का बालकृष्ण धीर धोपीबस्त्रम के सीता पावकों ने नहीं।

इतर प्राणियों के प्रति दया की भावना रामकाव्य की प्रवेद्या कृष्णकाव्य में धार्मिक है। जहाँ रामबलि बसुरय रामान्ति के धावेट-बर्णन में बीबरया का प्रश्न नहीं उठात वहाँ कृष्ण कवियों ने जैन कवियों के समान उठे निन्द कर्म कहा है। गौ की धरधरता धीर पुन्यता का बर्णन दोनों काव्यों में समान है परन्तु उठकी जितनी धार्मिक सेवा सुखरूपा कृष्णकाव्य में ललित होती है उतनी रामकाव्य में नहीं। सोपाम कृष्ण से सम्बन्धित काव्य में यी की यह प्रतिष्ठा स्वामाधिक ही है।

निश्चित नीति के लक्ष में राधार, माया भाग्य पुनर्बन्ध धाराध्य-भक्ति धार्मिक के विषय में दोनों धाराओं की नीति एक-सी ही है। राम के उपासक कवि जहाँ धर्मोप्या विरहकृत धरयु धादि की महिमा का बर्णन धार्मिक करते हैं वहाँ कृष्ण के प्रेमी यमुना मधुरा वृ दाबन धादि का। धरने धरने धाराध्य से सम्बन्धित होने क कारण धन-धन स्थानों के प्रति प्रेम की धार्मिकता स्वाभाविक ही है। इसके धर्तिकाव्य में धन्य धर्मप्रशामों के प्रति जितनी उदाहृता पाई जाती है उतनी कृष्ण काव्यों में नहीं यह ऊपर कह ही चुके हैं।

कला की दृष्टि से धेर—धर्म-विषय की उपर्युक्त विभिन्नताओं के धर्तिकाव्य की दृष्टि से भी दोनों काव्यों में कुछ भेद है। रामकाव्य मुख्यतः धरणी धीर ब्रह्म माया दोनों मायाओं में रचित है धीर कृष्ण काव्य धर माया में ही। राम-कवियों ने धरणी धार्मिकतर रचनाएँ प्रबन्ध-काव्यों के रूप में लिखी हैं धीर कृष्ण-कवियों ने प्रायः मुक्तक-रूप में। यद्यपि कृष्ण-कवियों ने धरणी मुक्तक रचनाएँ दोहा कवित्त संवेया धादि छन्दों में भी लिखी हैं तथापि धाबाय पदों का है जो विभिन्न रूप रधिवियों में देख है। इसका कारण यह है कि कृष्ण कवि प्रायः धरणी पदों की रचना मन्दिरो में धाराध्य की मूर्ति के धम्मूख गाने के लिए किया करते थे। राम काव्यों में सभी रमों धीर मावों की धरना हुई है परन्तु कृष्ण-काव्य में धाम्ठ मृंगार धीर बालस्य ही मुख्य हैं। रवों की विविधता की दृष्टि से तो राम-काव्य ही उदाहृष्ट माना जाय परन्तु मृंगार धीर बालस्य की जो मुमपूर धारा कृष्ण-काव्य में प्रबालित हुई है उठकी राम काव्य में

कमी है। दोनों ही काव्य विविध घटनाकारों से सुभूषित और प्रसाद युक्त से युक्त हैं परन्तु यह भी स्पष्ट है कि न राम-काव्य में कृष्ण-काव्य का-सा माधुर्य है और न कृष्ण-काव्य में राम काव्य का-सा शोभ।

अन्त में सार रूप से कह सकते हैं कि प्रेम-विषयक नीति और सरसता में तो राम-काव्य कृष्ण-काव्य के समकक्ष नहीं कहा जा सकता परन्तु नीति की विविधता व्यापकता और उपयोगिता की दृष्टि से जो महत्त्व राम-काव्य का है उसकी समता कृष्ण-काव्य कदापि नहीं कर सकता।

कृष्ण-कवियों के नीतिकार्य की प्रमुख विशेषताएँ

१ इस काव्य में प्रेम-सम्बन्धी तथा धार्मिक नीति की प्रचुरता है परन्तु अन्य नीति-विषय प्रायः उपेक्षित हैं।

२ श्रीकृष्ण और श्री राधा के नाम के रूप पर बहुत बल दिया गया है।

३ कृष्ण प्रेम की तुलना में शैविक और लौकिक मनोंवाएँ त्याग्य मानी गई हैं।

४ बेटों और छात्रों की अपेक्षा भयवद्गीता और भागवत-पुराण को अधिक महत्त्व दिया गया है।

५ पारिवारिक कृत्यों के निर्यस्त तो प्रायः नहीं दिखाई देते उसका कृष्ण प्रेम की तुलना में उन्हें त्याग्य कहा गया है।

६ कृष्ण प्रेम से ही महत्त्व प्राप्ति होती है बल जाति कुल धर्म के शीरव मिथ्या है।

७ धार्मिक और युव कृष्ण के बतार हैं और उनके नाम भी श्री कृष्ण के समान अपने योग्य हैं।

८ धन की विशेष रूप से पापोपाजित धन की विशेष मिथ्या की गई है।

९ गणसूत्रा तथा अन्य छन्दधारियों की सम्बोधना की गई है।

१० यमुना नदी बुधवारदि कृष्ण-सम्बन्धी स्थानों की महिमा का विशेष बर्णन किया गया है।

११ श्रीकृष्ण के सुवर्णम जीवन का वर्णन तो लूब किया गया है परन्तु सोपों के लिए सांसारिक सुखों को ह्य कहा गया है।

१२ अधिकतर रचनाएँ सरस व भावपूर्ण हैं तथा ब्रजभाषा में की गई हैं।

१३ प्रबन्धात्मक रचनाओं की अपेक्षा मुक्तकों का प्रयोग बहुत अधिक है। मुक्तकों में भी पदों की ही प्रचुरता है।

१४ सांसारिक जीवन को सफल बनाने वाली नीति की कमी के कारण, भक्तों के लिए मनोमोहन होता हुआ भी कृष्ण-काव्य सामान्य गृहस्थों के लिए विषय उपयोगी नहीं है।

रीतिकाल का नीति-काव्य (स० १७००-१९०० वि०)

हमारे आसोप्य काल (सं० १०१०-१९००) में नीतिकाव्य की दृष्टि से जो महान् रीतिकाल का है वह न आदिकाल का है न मक्तिकाल का। बस कि हम देख चुके हैं आदिकाल में हिन्दी की एक भी काव्य-कृति ऐसी उपलब्ध नहीं होती जिसका उद्देश्य या प्रबन्ध विषय नीति हो। मक्तिकाल निम्नलिखित आदिकाल की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उसमें तुलसीदास देवीदास बनारसीदास रहोम गय गायि सुकविषों ने नीति-विषयक तथा नीति-बहुस मौखिक और अनुशासनिक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। परन्तु रीतिकाल अधिक की दृष्टि से मक्तिकाल की अपेक्षा दो-तिहाई से कम होता हुआ भी नीतिकाव्य की दृष्टि से उसकी अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि—

- १ इस काल की कृतियों में ऐहिकता अधिक है और यह बात नीतिकाव्य की दृष्टि से विरोध महत्त्वपूर्ण है।
- २ रीतिकालीन प्रमुख कवियों की सस्या मक्तिकालीन की अपेक्षा बहुत अधिक है।
- ३ रीतिकालीन कवियों की रचनाएँ सस्या में अधिक हैं और आकार में बड़ी।
- ४ इन रचनाओं के विषय अधिक व्यापक तथा विविधतापूर्ण हैं।
- ५ कविता की दृष्टि से भी ये रचनाएँ अधिक उत्कृष्ट हैं।
- ६ अनुचित कृतियों की सस्या भी अधिक है।
- ७ नीतिपदों के समूह भी प्रस्तुत किये गये जिनका मक्तिकाल में समाप्त था।
- ८ नीति के फुलकर कवि भी मक्तिकाल की अपेक्षा अधिक हुए।

रीतिकालीन नीतिकाव्यकार पाँच वर्गों में विभाज्य हैं। प्रथम वर्ग उन कवियों का है जिन्होंने विभिन्न नीति विषयों पर स्वतन्त्र मौखिक काव्यों की रचना की। द्वितीय वर्ग में वे गणनीय हैं जिन्होंने प्राचीन नीतिकाव्यों के अनुवाद-मात्र किये। तृतीय वर्ग गृह्यारो कवियों का है जिनकी रचनाओं में नीति का उल्लेख प्रसंगिक ही हुआ है। चतुर्थ वर्ग के धर्मतज उन कवियों या काव्य-रसिकों को रखा जा सकता है जिन्होंने अपने संग्रहों में विभिन्न कवियों की नीति-विषयक सूक्तियों को भी स्थान दिया। पंचम वर्ग उन फुलकर नीतिकवियों का है जिन्होंने सामान्य नीतिकाव्य या स्पष्ट नीतिपदों का प्रणयन किया। इस प्रकार रीतिकालीन नीतिकवियों तथा उनकी रचनाओं का

अध्ययन निम्नांकित बयों में सुममता पूर्वक किया जा सकता है—

(१) प्रमुख नीतिकवि (२) धनुवादक कवि (३) गृहकारिक कवियों के काव्य में नीतिवत्त्व (४) संघ-ग्रन्थों में नीतिकाम्य, (५) परिशिष्ट—कुटकर नीतिकवि ।

१ प्रमुख नीतिकवि

नीतिकामीय प्रमुख नीतिकवियों की सख्या तीन बर्ज के समम है । उनमें से एक तिहाई के लगभग कवि जैन मुनि और गृहस्थ हैं जिन्होंने अपने प्रख्यात विद्या-भेद के कारण अनेक प्रकार की नीति रचनाएँ प्रस्तुत कीं । मगधतीरास बसपत्र लक्ष्मी बन्धन धर्मसिंह धारि ने बोहा सर्वमा कवित्त छप्पय कुम्हलिया धारि छन्नों में सुन्दर पञ्चीसी बत्तीसी बाबनी धारि की रचना की । जिनरंग सूरि ने 'बहूतरी' का प्रथमन क्रिया तो भुधरदास ने 'सतक' का ज्ञानमार्ग जी ने अष्टोत्तरियों (१०८ पद्यों की रचनाओं) का निर्माण किया तो बुधजन ने सतसई का । इनकी कृतिमां मुख्यतः पद्यो कथाओं सबाहों धीर धर्मोक्तियों के रूप में बिकाई देती हैं । इन कृतियों में मध मांस मुर घृत व्यधिकार बेस्मादि बसनों का मन्डन तो ही स्वास्थ्य के साधन, विद्य प्राप्ति के उपाय पाँच मातार् पाँच पिता आत्म-हित क भिए 'मन दाण परिचार का त्वाज बत का महत्त्व धारि व्यावहारिक विषयों का भी उल्लेख पाया जाता है । अन्य कवियों में से बुध अपनी सतसई गिरिधर अपनी कुम्हलियों दीनदमान मरती अन्धोक्तियों तथा बाप और महदरी अपनी कृपि तथा ज्योतिष सम्बन्धी कहानियों के कारण प्रख्यात ही हैं । परन्तु नीतिकामीय नीतिकाम्य इन्हीं तक सीमित नहीं है । इसी काल में सुखदेव ने अपने दीर्घकामीय बाण्ड्य-विषयक धनुषबों के बाण्ड्य-नीति में उपनिबन्ध किया । बेबीदास ने प्रम के स्वल्प तथा प्रदार्थों पर 'प्रेम रत्नाकर' का प्रथमन क्रिया । रघुराज ने समासार नाटक' में छिप्य-मुष्ट के संवाद-रूप में सत्कामीय समाज के धंगभूत विविध व्यक्तियों धूर्त पुष्ठा चिकित्सा दुष्टदुष्ट मङ्गदुष्ट प्रवट दुष्ट धारि का रोचक वर्णन किया है । इसी प्रकार की परम्पु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण रचना गुणासकृत 'दण्डि-नायक विमाल' है जिसमें विविध व्यवसायों क गुण-दोषों का सविस्तार उल्लेख है । सत्कामीय धार्मिक स्थिति के अध्ययन के लिए ये दोनों ग्रन्थ विशेष उपयोगी हैं । बाबा हित बुन्दावनदास ने अपनी कतिहरिज बेसी में संघ-परिचार प्रथा के गुणों तथा सद्गुरु बहू का मन्डन विर्र सीका है । इसी प्रकार धूर्तभद्र स्त्री वाचस्प, दाठा और दूर दुष्ट पञ्ज धारि विषयों पर भी अष्टी रचनाएँ की गईं । परन्तु सबसे उच्च स्थान रामस्वाम के महाकवि बाण्ड्यका का है जिन्होंने बचन-विवेक विगुणता बीरता कायरता, वैश्य वैरदाकृति, मुनि दाना कपण अन्धोव मोह धारि विषयों पर अन्धीय सरस नीति कृतियों की रचना की । इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू धीर जैन दोनों ने ही नीतिकाम्य के निष्ठा में जो मारा दिया वह बरतु सतुत्य है । इनक नीतिकाम्य की समीक्षा

करने के पूर्व इनकी नीतियों तथा कृतियों का कुछ विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

१ जयसराज (जिन हर्ष)

जयसराज सरहदराज्य के छात्रि हर्ष के शिष्य थे। इनका प्रारम्भिक जीवन राजस्वान में व्यतीत हुआ और बाद का पाटण (गुजरात) में। इन्होंने सं १७०४ से १७६३ वि० तक राजस्थानी तथा गुजराती भाषाओं में समस्य एव ही पुस्तकों की रचना की। इनकी कुछ रचनाएँ निम्नलिखित हैं—(१) चन्दन मसयापिरी चौबारी (२) विद्याविनाश रास (३) ममस कसस चौबारी; (४) मत्स्योदर राज (५) लापटा बार चौबारी (६) मातृका बावनी या जसराज बावनी (७) कवित बावनी (८) सन्देश बत्तीसी।

१ उपदेश बत्तीसी—इस कवि का रचना-काल सं० १७१३ है और तिनिकाल सं० १८१०। १६ इफ्तीहा सर्वप्रथम धर्मात् कवियों में उचित इस काम्य की हस्तलिखित प्रति हमने बीकानेर के समय जैन ग्रंथालय में देखी। मुनि जी ने इस बत्तीसी में काया-स्वरूप माया-त्याग क्रोध-रूपण मान-रूपण हिंसा मृदावाद, अदत्ताहार उपमहत्त्व वाम शीत धारि विषयों पर भावपूर्ण रचना की है। बत्तीसी के पद्यों में छाप जसराज की नहीं, जिनहर्ष की शैलियत होती है। मानरूपण विषयक कवित इस प्रकार है—

अपम न करि मान मान विद्य होइ हानि
मानि देरी सीप मानि सुजगही मानि रे।
मान ते राबल रात्रि लंबा सी ययो अकाज
कियो है अकाज सास गई सप मानि रे।
दुर्पोषन मान करि हारो सब धर धरि
मान ल ययो है मुज जानुपी रो पानि रे।
बहु जिन हर्ष मान धन जे न धामि मान
धारिओ अमानभद्र जेते मान अरि रे ॥^१

२ मातृका बावनी—इस बावनी की हस्तलिखित प्रति हमें बीकानेर में देखने को मिली। प्रति का त्रितीय पत्र सुप्त है अथ १ ३ ४ पत्र विद्यमान हैं। २७ पद्यों की यह बावनी सर्वथा छन्द में है जिस विषयपर मु० युनाल विषय न 'कवित' लिखा है। बावनी के अन्तिम पद्य से विरहित होता है कि इसकी रचना सं० १७३८ में की गई थी। भाष्य जयम राज भूज, पर दुग्ध का अज्ञान धारि विषयों पर कवि ने राजस्थानी-निर्मित अरभाषा में इस बावनी का वर्णनात्ता प्रथम से प्रथम किया है। रचना के कई पत्र मान और माया की दृष्टि से सुन्दर हैं। जैसे—

१ उपदेश बत्तीसी पत्र १।८

२ प्रथम जैन ग्रंथालय बीकानेर, प्रति सं० ८००३

अध्ययन निर्माकित वर्षों में सुगमता पूर्वक किया जा सकता है—

(१) प्रमुख नीतिकवि (२) अनुवादक कवि (३) सांज्ञारिक कवियों के काव्य में नीतिरस्य (४) संग्रह-ग्रन्थों में नीतिकाम्य, (५) परिशिष्ट—छूटकर नीतिकवि ।

१ प्रमुख नीतिकवि

रीतिकामीय प्रमुख नीतिकवियों की सख्या तीन दर्जन के लगभग है। उनमें से एक तिहाई के लगभग कवि जैन मुनि और गृहस्थ हैं जिन्होंने अपने प्रख्यात विद्या-धर्म के कारण अनेक प्रकार की नीति-रचनाएँ प्रस्तुत कीं। भगवतीदास जसराज लक्ष्मी-वस्त्रम धर्मसिंह धादि ने दोहा शैली का कविता रूपम बुद्धलिया धादि कर्णों में सुन्दर पञ्चीशी बत्तीशी बाबनी धादि की रचना की। बिसरय सूरि ने 'बहुरी' का प्रस्तुत किया तो भुवराज ने 'सतक' का ज्ञानधार की ने अष्टोत्तरियों (१०८ पद्यों की रचनाया) का निर्माण किया तो बुधबन ने सतसई का। इनकी कृतियाँ मुख्यतः पद्यों कथाओं संवादों धीर धर्मोक्तिओं के रूप में लिखाई गयी हैं। इन कृतियों में मध्य मास सुरा सुत ध्यमिचार बेव्याधि ध्यसनी का ध्यम्य तो है ही स्वारस्य के साधन, विद्य प्राप्त के उपाय पाँच साठारें पाँच पिता ध्यात्म-हित के लिए 'बन धारा परिवार का रसाय धन का महत्त्व धादि ध्याबहारिक विषयों का भी उल्लेख पाया जाता है। धर्म कवियों में से सुन्दर धपनी सतसई गिरिपर धपनी बुद्धलियों दीनदयाल धपनी धग्बनोक्तियों तथा धाध धीर मङ्गरी धपनी कृपि तथा ज्योतिष सन्कग्नी कृद्वावर्तों के कारण प्रख्यात ही हैं। परन्तु रीतिकाामीय नीतिकाम्य इन्हीं तक सीमित नहीं है। इसी काल में सुबदेव ने अपने बीचकामीय काशिग्य-विषयक धनुमकों को काशिग्य-नीति में उपनिबद्ध किया। देवीदास ने धर्म के स्वरूप तथा प्रकारों पर 'धर्म रत्नाकर' का प्रस्तुत किया। रङ्गराज ने 'समासार नाटक' में सिध्य-गुरु के संवाद-रूप में तत्कामीय समाज के धर्ममूल विविध ध्यक्तियों कुर्न पुग्वा धिकनिया गुप्पुष्ट महाकुष्ट प्रगट कुष्ट धादि का रोचक बर्णन किया है। इसी प्रकार की, परन्तु इससे भी धधिक महत्त्वपूर्ण रचना बुपासकृत 'बपदि-वाक्य-विमोक्ष है जिसमें विविध ध्यवहारों के सुख-दोषों का ध्यविस्तार उल्लेख है। तत्कामीय धामाजिक स्थिति के धध्ययन के लिए ये दोनों धर्म विद्येय उपयोगी हैं। धाधा द्विध बुन्वावनदास ने धपनी धनिकरिज बेली में संयुत-परिवार-धर्म के सुखों तथा अङ्कध धू का धध्या धिन पीषा है। इसी प्रकार सुर्धभेध रभी बाँधन्य, दाठा धीर धूर कुष्ट पञ्ज धादि विषयों पर भी धधली रचनाएँ की गईं। परन्तु सबसे उच्च स्थान राजन्बाब के महाधनि बाँधीधाम का है जिन्होंने बचन-विधेक धियुगता धीरदा कायरता, धीरय वेदयानुक्ति-जुक्ति दाता बपण सन्धेय मोह धादि विषयों पर धनीस सरस नीति कृतियों की रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू धीर जैन दोनों ने ही नीतिकाम्य क निर्माण में जो योग दिया, वह बरनुत स्तुत्य है। इनके नीतिकाम्य की धपीषा

कारणों के पूर्व इनकी बीबनियों तथा कथियों का कुछ विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

१ जसराम (जिन हर्ष)

जसराम जरतराज के छात्रि हूय न सिष्य मे । इका प्रारम्भिक जीवन राजस्थान में स्थित हुषा घोर बाघ का पाटण (गुजरात) में । इन्होंने सं० १७०४ से १७६३ वि० तक राजस्थानी तथा गुजराती भाषाओं में लगभग एक सौ पुस्तकों की रचना की। इनकी कुछ रचनाएँ निम्नलिखित हैं—(१) बन्दन मसपागिरि चौपाई (२) विद्याविभास रास (३) मंगल कसस चौपाई (४) मत्स्योदर रास (५) सापरत पार चौपाई; (६) मातृका बाबनी या जसराम बाबनी (७) कवित बाबनी (८) उपदेश बत्तीसी।

१ उपदेश बत्तीसी—इस कवि का रचना-काल सं० १७१३ है घोर विपिकाल सं० १८१०।३६ इकतीसा वर्षों भवति कवितों में रचित इस काव्य की हस्तलिखित प्रति हमने बीकानेर के समय जैन प्रयाग में देखी। मुनि जी ने इस बत्तीसी में काया-स्वल्प भाग्य-त्याग शोष-रूपण मान-रूपण हिंसा मृपावाद, धरताबाध उपमहत्त्व दान पीस धारि विषमों पर भावपूर्ण रचना की है। बत्तीसी के पद्यों में छाप जस-राज की नहीं, जिनहर्ष की दृष्टिगत होती है। मानरूपण विषयक कवित इस प्रकार है—

अपम न करि मान मान किमि होइ हानि,
मानि मेरी सोय मानि सुखप्राप्ती मनि रे ।
मान तै राखण राजि लका ली गयो यकाज
किमो है अकाज भाज गई ताप धानि रे ।
दुर्पोषन मान करि हारी सब पर धरि
मान तै ययो है मू म चातुरी रो पानि रे ।
बहै जिन हर्ष मान, मन में न धारिण मान
धारिणो बजानमद्र बसे मान धरिण रे ॥^१

२ मातृका बाबनी—इस बाबनी की हस्तलिखित प्रति हमें बीकानेर में देखने का मिली। प्रति का द्वितीय पत्र मुक्त है पद्य १ ३ ४ पत्र विद्यमान है। १७ पद्यों की यह बाबनी संक्षेप छन्द में है जिसे विपिकार सु० पुमान विजय ने 'कवित' लिखा है। बाबनी के अन्तिम पद्य से विदित होता है कि इसकी रचना सं० १७३८ में की गई थी। भाग्य उद्यम दान भूख, पर-दुःख का अज्ञान धारि विषयों पर कवि ने राजस्थानी-निर्मित धरताबाध म इस बाबनी का वर्णनमात्र कम सं प्रणयन किया है। रचना के कई पद्य भाष घोर भाषा की दृष्टि से सुन्दर हैं। उदा—

१ उपदेश बत्तीसी पत्र १।८

२ समय जैन प्रयाग बीकानेर प्रति सं० ८००३

अध्ययन विन्नाहित बरों में सुगमता पूरक किया जा सकता है—

(१) प्रमुख नीतिकवि (२) अनुवादक कवि (३) शृङ्गारिक कवियों के काव्य में नीतिवस्त्व (४) सर्वह-ग्रन्थों में नीतिकाव्य, (५) परिशिष्ट—पूतकर नीतिकवि ।

१ प्रमुख नीतिकवि

रीतिकामीन प्रमुख नीतिकवियों की संख्या तीन दर्जन के लगभग है। जिनमें से एक-तिहाई के लगभग कवि जैन मुनि और गृहस्थ हैं जिन्होंने अपने प्रख्यात विद्या-धन के कारण अनेक प्रकार की नीति-रचनाएँ प्रस्तुत की। भयवतीदास बसराज लखी-वस्सम धर्मसिंह आदि ने दोहा शैली, कवित्त छन्द्य कृष्णभिया आदि छन्दों में सुन्दर पञ्चीसी बत्तीसी बाबनी आदि की रचना की। विनय सूरि ने बहुरंगी का प्रथमम किया तो सूत्रपास ने 'सतक' का सामानार जी ने अष्टोत्तरियों (१०५ पदों की रचनाया) का निर्माण किया तो बुधबन ने सतसई का। इनकी कृतिवाँ मुसक पदों कवाधों संसारों और अयोक्तियों के रूप में दिखाई देती हैं। इन कृतियों में मध नाथ सुरा दूठ अन्विचार वेत्यादि व्यसनों का सङ्गन तो है ही स्वात्म्य के साधन विद्या प्राप्ति के उपाम पाँच माताएँ पाँच पिता आरम-हित के लिए 'धन दाय परिवार' का त्याग धन का महत्त्व आदि व्यावहारिक विषयों का भी अन्वेष पावा जाता है। अन्त्य कृतियों में से दून्ध अपनी सतसई विरिपर अपनी कुम्हियों कीनवयान अपनी अन्त्योक्तियों तथा नाम और अद्दरी अपनी कृति तथा अयोक्ति सम्बन्धी कहावतों के कारण प्रख्यात ही हैं। परन्तु रीतिकामीन नीतिकाव्य इन्हीं तक सीमित नहीं है। इसी काम में सुखदेव ने अपने दीवकासीन बाणिक्य-विषयक अनुबनों को बाणिक्य-नीति में सपनिबद्ध किया। देवीदास ने प्रेम के स्वरूप तथा प्रकारों पर 'प्रेम रत्नाकर' का प्रथमम किया। रघुराज ने 'समाधार पाठक' में पिथ्य-पुत्र के संवाद-रूप में तत्कामीन समाज के अंगभूत विविध व्यक्तियों भूर्त्त, बुध्या, चिकित्सा बुध्दुध्द मद्दादुल् प्रपठ बुल् आदि का रोचक वर्णन किया है। इसी प्रकार की परन्तु इतने भी अधिक महत्त्वपूर्ण रचना गुणासकठ 'अपति-काव्य विकास' है जिसमें विविध व्यवसायों के मुख-दोषों का सविस्तार उल्लेख है। तत्कामीन सामाजिक स्थिति के अध्ययन के लिए ये दोनों अन्त्य विषय उपयोगी हैं। पाषा हित वृत्तान्तवात के अपनी 'नमिचरिच बसी में संयुक्त-परिवार प्रथा के गुणों तथा उद्देश्य बहु का अन्वेष चित्र लीका है। इसी प्रकार पूर्वमेव स्त्री-वाचस्य, दाता और धूर बुध्द अन्त्य आदि विषयों पर भी अच्छी रचनाएँ की गईं। परन्तु सबसे उच्च स्थान राजस्थान के महाकवि बाँनीदास का है जिन्होंने कथन-विवेक, विद्युतता बीरता, कामरता, वैद्य वेत्यानुति बुकवि दाता अण, अन्तोप मोह आदि विषयों पर अन्तीस सतस नीति कृतियों की रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू और जैन दोनों ने ही नीतिकाव्य के निर्माण में जो योग दिया वह अत्युत्त स्तुत्य है। इनके नीतिकाव्य की समीक्षा

करने के पूर्व इनकी बीबलियों तथा कठियों का कुछ विस्तृत अध्ययन आवश्यक है ।

१ अक्षराक्ष (जिन हर्ष)

अक्षराक्ष अक्षरसम्बन्ध के शान्ति हर्ष के शिष्य थे । इनका प्रारम्भिक जीवन राजस्थान में व्यतीत हुआ और बाद का पाटण (गुजरात) में । इन्होंने सं० १७०४ से १७६३ वि० तक राजस्थानी तथा गुजराती भाषाओं में लगभग एक सौ पुस्तकों की रचना की । इनकी कुछ रचनाएँ निम्नलिखित हैं—(१) बन्दन मसयागिरि चौपाई (२) विद्याविज्ञान रास (३) मंगल क्रमस चौपाई; (४) मत्स्योदर राज (५) खापर पार चौपाई; (६) मातृका बाबनी या अक्षराक्ष बाबनी (७) कवित्त बाबनी (८) उपदेश बत्तीसी ।

१ उपदेश बत्तीसी—इस कवि का रचना-काल सं० १७१३ ई और लिपिकाल सं० १८१०-१६ इस्वीसा सर्वथा अज्ञात कवियों में रचित इस काम्य की हस्तलिखित प्रति हमने बीकानेर के अमय पत्र प्रकाशक में देखी । भुनि भी ये इस बत्तीसी में काया-स्वरूप माया-स्वाप शोभ-रूपण मान-रूपण हिंसा मृगाबाह, अदत्तादान उपमहत्त्व, बान शील आदि विषयों पर भावपूर्ण रचना की है । बत्तीसी के पद्यों में छाप 'अक्षराक्ष की नहीं, जिनहर्ष की इष्टियत होती है । मानरूपण विषयक कवित्त इस प्रकार है—

अथ न करि मन मान निम्न होहिं हानि
मानि मेरी सोय मीनि सुखप्रदौ मीनि रे ।
मान ते राखण राखि लंका सौ पयो अक्षर
दियो है अक्षर साज परै सब धानि रे ।
दुर्योधन मान करि हारो सब धर धरि
मान ते मयो है मुज धनुरो तो दानि रे ।
बहै जिन हर्ष मान, मन में न धारि मान
धारितो अमानमत्र जसे मान धारि रे ॥^१

२ मातृका बाबनी—इस बाबनी की हस्तलिखित प्रति हमें बीकानेर में देखने को मिली । प्रति का द्वितीय पत्र सुष्ठु है पद्य १ ३ ४ पत्र विद्यमान हैं । २७ पद्यों की यह बाबनी सर्वथा छन्द में है जिसे लिपिकार मु० मुनाल विजय ने 'कवित्त' लिखा है । बाबनी के अन्तिम पद्य से विरहित होता है कि इसकी रचना सं० १७१८ में की गई थी । नाम्य उपम, बान मृग, पर दुःख का अज्ञान आदि विषयों पर कवि ने राजस्थानी-निर्मित अक्षराक्ष मं इस बाबनी का सर्वांगीण अर्थ से प्रयत्न किया है । रचना के कई पद्य भाव और भाषा की दृष्टि से सुन्दर हैं । जैसे—

१ उपदेश बत्तीसी, पत्र १।८

२ अमय पत्र प्रकाशक, बीकानेर प्रति सं० ८००३

धर्म्यजन निर्मातृत्व बर्णों में सुगमता पुनः किन्ना जा सकता है—

(१) प्रमुख नीतिकवि (२) अनुवादक कवि (३) शृङ्गारिक कवियों के काव्य में नीतितत्त्व (४) संप्रह-ग्रन्थों में नीतिकाव्य (५) परिशिष्ट—पूटकर नीतिकवि ।

१ प्रमुख नीतिकवि

रीतिकालीन प्रमुख नीतिकवियों की संख्या तीन बर्जनों के सममय है । उनमें से एक-विहाई के सममय कवि जैन मुनि धीर महस्व हैं जिन्होंने अपने प्रख्यात विद्या-शेख के कारण अनेक प्रकार की नीति रचनाएँ प्रस्तुत कीं । भयवतीदास बसराज सत्मी बन्सभ बर्मसिंह आदि ने दोहा सर्वया कबिल छप्पय कुण्डलिया आदि छन्दों में सुन्दर पञ्चीसी बत्तीसी बावनी आदि की रचना की । जिनरंग सूरि ने 'बहतरों' का प्रणयन किया तो मूबरदास ने 'सठक' का शानसार भी ने अष्टोत्तरियों (१०० पद्यों की रचनाओं) का निर्माण किया तो बुभन ने सतसई का । इनकी इतिमां मुस्तक पद्यों कथाओं संवादों और धर्म्योक्तियों के रूप में दिखाई देती हैं । इन कृतियों में मद्य भांश सुरा शूत ध्यमिचार वेत्यादि व्यसनों का पचन तो है ही स्वास्थ्य के साधन, विद्या प्राप्ति के उपाय पाँच माताएँ पाँच पिता धारम-हित के लिए 'मन दारा परिवार का त्याग जन का महस्व आदि व्यावहारिक विषयों का भी सस्नेह पाया जाता है । धर्म्य कवियों में से वृक्ष अपनी सतसई, गिरिधर अपनी कुण्डलियों दीनदयाम अपनी धर्म्योक्तियों तथा बाध और महइरी अपनी इति तथा ज्योतिष सम्बन्धी कथाओं के कारण प्रख्यात ही हैं । परन्तु रीतिकालीन नीतिकाव्य इन्हीं तक सीमित नहीं है । इसी काल में सुलवेक ने अपने बीचकालीन बाण्ड्य-विषयक धनुमकों को बाण्ड्य-नीति में उपनिबद्ध किया । देवीदास ने प्रम के स्वल्प तथा प्रकारों पर 'प्रम ररनाकर' का प्रणयन किया । रजुराज ने 'समासार नाटक' में शिष्य-गुरु के संवाद-रूप में तत्कालीन समाज के धमभूत विविध ध्यमित्यों पूर्ण पुष्पा, शिकमिया गुप्तदुष्ट महापुष्प प्रबट दुष्ट आदि का रोचक बर्णन किया है । इसी प्रकार की परन्तु इससे भी अधिक महस्वपूर्ण रचना बुभनकठ 'संपति-जागय-विलास' है जिसमें विविध ध्यपसायों के गुण-दोषों का सविस्तार उल्लेख है । तत्कालीन सामाजिक स्थिति के अध्ययन के लिए ये दोनों धर्म्य विशेष उपयोगी हैं । भाषा हित बुन्दावनदास ने अपनी बसिचरिद बेसी में संयुक्त-परिचार प्रया के गुणों तथा उद्भव बहू का पच्छा चित्र लीखा है । इसी प्रकार मूलभर स्त्री वाचस्प दाता और गुर दुष्ट गजन आदि विषयों पर भी अच्छी रचनाएँ की गईं । परन्तु सबसे उच्च स्तान राजस्थान के महाकवि बानीदास का है जिन्होंने बचन विवेक विपुलता औरता वापरता बद्य वेत्यावृत्ति, बुबनि दाता बपण सम्भोग मोठ आदि विषयों पर उन्नीस सरस नाति कृतियों की रचना की । इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू और जैन दोनों ने ही नीतिकाव्य क निर्माण में जो योग दिया, वह बरानुत स्तृत्य है । इनक नीतिकाव्य की समीचा

करने के पूर्व इनकी बीबनियों तथा कवियों का कुछ विस्तृत अध्ययन आवश्यक है ।

१ बसराज (जिन हर्ष)

बसराज सरतगम्य के छात्रि हर्ष के सिष्य थे । इनका प्रारम्भिक ज्ञान राजस्थान में व्यतीत हुआ और बाद का पाटण (युवराज) में । इन्होंने सं० १७०४ से १७६३ वि० तक राजस्थानी तथा युवराजी भाषाओं में लगभग एक ही पुस्तकों की रचना की । इनकी कुछ रचनाएँ निम्नलिखित हैं—(१) बन्दन मन्मथगिरि चौपाई (२) विद्याविलास रास (३) मंगल कसस चौपाई (४) मत्स्योदर राज (५) सापरा चोर चौपाई; (६) मातृका बाबनी या बसराज बाबनी (७) कवित्त बाबनी (८) सपदेश बत्तीसी ।

१ उपदेश बत्तीसी—इस कवि का रचना-काल सं० १७१३ है और सिपिकाश सं० १८१०।३६ इकतीसा सर्गों अर्थात् कवित्तों में रचित इस काव्य की हस्तलिखित प्रति हमने बीकानेर के भ्रमय पत्र प्रकाशय में देखी । मुनि जी ने इस बत्तीसी में काया स्वल्प माया-त्याग भोग-दूषण मान-दूषण हिंसा, मुपाबाध, भवतादान उपमहृष्य दान बीस प्राय विषयों पर भावपूर्ण रचना की है । बत्तीसी के पद्यों में छाप 'बस-राज की नहीं, जिनहर्ष की दृष्टिगत होती है । मानदूषण विषयक कवित्त इस प्रकार है—

भ्रमय न करि मान मान किय होहि हाति
मानि मेरी सौप मानि गुणगच्छी मानि रे ।
मान तें राजर राजि रका छौ पयो यकाज
कियो है अफाज मान धई सय मानि रे ।
दुर्पोषन मानि करि हाती सब पर धरि
मान त गयो है मुन बसुरी रो मानि रे ।
कई जिन हृष्य मान, मन में न धारि मान
धारिस्तो ब्रह्मामत्र जैसे मान धारि रे ॥^१

२ मातृका बाबनी—इस बाबनी की हस्तलिखित प्रति हमें बीकानेर में देखने को मिली । प्रति का द्वितीय पत्र मुष्ट है दोष १, ३, ४ पत्र विद्यमान हैं । १७ पद्यों की यह बाबनी सर्वथा छन्द में है जिसे सिपिकाश मु० गुमास्त विजय ने 'कवित्त' सिखा है । बाबनी के अन्तिम पद्य से विदित होता है कि इसकी रचना सं० १७३८ में की गई थी । भाग्य उद्यय, दान भूष, पर-दुःख का घञ्जान प्राय विषयों पर कवि ने राजस्थानी-निमित्त श्रद्धभाषा में इस बाबनी का बहामासा अम से प्रणयन किया है । रचना के कई पद्य नाभ और भाषा की दृष्टि से सुन्दर हैं । जैसे—

१ उपदेश बत्तीसी, पत्र १।८

२ भ्रमय पत्र प्रकाशय, बीकानेर प्रति सं० ८००३

शुद्धि सही धर बान बीज नहीं तो कहा शुद्धि सही न सही हूँ ।
 पासो सही धर काम सही नहीं तो कहा पास सही न सही हूँ ॥
 बहू सही धर नेह बहू नहीं तो कहा बहू बहो न बही हूँ ।
 प्रीति सही धर प्रेम सही नहीं तो कहा प्रीति सही न सही हूँ ॥^१

इस भावनी पर पूर्ववर्ती श्रौत तथा जनेतर नीतिकार्यों का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है । कहीं-कहीं तो मुनि जी ने सोमप्रभाचार्य के अनेक पद्यों से भाव ग्रहण कर अपने पद्यों की रचना की है जैसे—

स्वर्णस्वासे क्षिपति स रजः पावकौष पिबसे,
 पीयूषेण प्रवरपरिषं पाह्यमत्येषमारम् ।
 क्षितारसम विकिरति कराः वायसोऽड्यायगार्य
 यो बुध्यायं ममयति मुखा मर्त्यं जन्म प्रमत्त ॥
 ते वसूतारं वपन्ति मन्वे प्रोग्मुत्स्य वस्पद्रुम
 क्षितारसमपात्य वायदात्मं स्वीयुवति ते जडाः ।
 त्रिद्वीप द्वारं विरीशसहस्रं धीएणि ते रासमं,
 ये मर्त्यं परिहृत्य धर्ममपदा पावन्ति भोगाशया ॥^२ (सोमप्रभाचार्य)
 इषम चरन पठ करे पुर पूज जपारि वतुरम घोरे ।
 शीषम धाम भरे रज ते मुधा रस मुकर पाव ही घोरे ॥
 हस्ती महामन मस्त मनोहर मार बहाइ के ताइ धियोरे ।
 मूठ प्रभाइ गयो जतराम न धर्म करे मर सोमल घोरे ॥^३

उपर्युक्त संस्कृत-पद्यों में मनुष्य-जन्म को धर्म छोड़े तथा धर्म को त्याग कर विषया-सक्त होने वाले मनुष्यों की मूर्खता व्यक्त करने के लिए सात दृष्टान्त प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें से 'इषम चरन काठ करे' के बिना चारों दृष्टान्त संस्कृत-पद्यों से व्यर्थ के र्यों से लिये गये हैं । फिर भी मुनि जी की इस रचना के विषय में यह निस्संकोच कहा जा सकता है यह सामान्य व दानियों की अपेक्षा अधिक ऐहिक तथा सुन्दर है ।

१ मातृका भाष्यो पृ १२

२ बनारसी शिवालय पृष्ठ १८ १९ पृष्ठ, सुविन मुनगावली पृष्ठ ५६,

अप- 'जो प्रमादी मागव बुध्याय मनुष्य जन्म को धर्म संवाता है वह मानो मुषण के पास में पूज बासता है धर्म से दौव पकारता है, अष्ट हाथी पर इषम होता है और कट्ये उड़ाने के लिए विन्तामस्त्रियों को फेंकता है । जो मोक्ष सोम भोगों की प्राप्ति से धर्म का परिखाण करते हैं व वस्पद्रुम का उन्मुत्सव कर वतुरे वा पीषा सगाने हैं क्षिप्रारणि को फेंककर काय-जन्म]ग्रहण करते हैं तथा हाथी बचकर गया छोड़ने हैं ॥

३ भागवत भाष्यो पुरातरु मंरिद कमपुट, प्रभांक २०१८, पृष्ठ ११८

३ कबित्त बाबनी—इस बाबनी की प्रति जयपुर के पुगातल्ल मंदिर में देखने का अवसर मिला ।^१ काव्य का रचना-काल सं० १७४८ है और प्रति का निष्पत्तिकाल सं० १८५७ । प्रति पूर्ण है और वम पत्रों पर लेखबद्ध है । गुजराती-मिथिन राज स्वामी-भाषा में रचित यह कबित्त बाबनी छन्द छन्द में ही है । काव्यत्व की दृष्टि से रचना सामान्य है । जैसे—

घरुां करे हुंकार, घरा मल मंबर रायें ।
 घरा क्यट के लखे घरा घबिचार्यो भावें ॥
 घरा मोच सगती घरा नर हट्ट हरासी ।
 घरा घाय दगारपी, घरा शोमी तें कानी ॥
 निलत्र निपर भोगुण घरा फायत लियरें त्रिहां त्रिहां ।
 बिन हर्ब हंस बीम घोडभा रुजन बिबें कीहां कीहां ॥^२

ग्रन्थ में कह सकते हैं कि 'मानुषा बाबनी' के लिए हिन्दी-संसार मुनि भी का विशेष धारणी है ।

२ सुन्दरबेव

मुसदेब ब्यापारी भी ये और कवि भी । बाण्ड्य-विषयक साठ बयों के सुदीर्घ अनुभव के आधार पर इन्होंने सं० १७१७ में 'बाण्ड्य मीति' की रचना की—

सख्खु खो सख्खु बरत सख्खु की नाम ।

कबिता कहि सुख बेव सुत लेखक भाषाराम ॥^३

पुस्तक में कुल ३४८ पद्य हैं जो दोहा सोरठा चौपही (चौपई) कबित्त, सबया परिमल कौडमिया घादि छन्दों में निबद्ध हैं । पुस्तक अनेक प्रकरणों में विभाजित है जैसे—तिसी लखे को बिचार नोन लखे को बिचार उधार बर को बिचार घादि । ब्यापारियों के पत्र-व्यवहार के लिए ता पुस्तक की उपयोगिता निर्दिष्ट है, सामान्य जनो क काम की कई बातें भी रोषक रीति से कही गई हैं । उपाय-विषयक निम्नवर्ती कबित्त से पुस्तक के कबित्त का प्रामुख्य क्रिया जा सकता है—

धौ न गयो सोभ सोम सासव गदाबे सब
 सय ही कहत हाय हाय के न पाइये ।
 बरस आद धैर होइ फारज गसाइ सब,
 बार-बार ताके गूह खिये धाव धाइये ॥
 सांकरे सहाय स्थिय गुन पर मिट मयी,
 तां को साम जोटी जरी कहिये कड़ाइये ।

१ प्रति का क्रमांक २०८५, आकार ८३ × ४३

२ कबित्त बाबनी पद्य ४।२१

३ मुसदेब बाण्ड्य मीति (प्र० आधुनिक प्रेत कविता १९५२ ई०), पृ० ६३।३४८

मानियो सयांभी ब्रह्म मानियो हमारी यात
बीने न उमार ब्रह्मघार में बहुदये ॥^१

३ हेमराज

जैनों में हेमराज नाम के कई हिन्दी-कवि हो चुके हैं। प्रथम, मुनि हेमराज जिमको सं० १६६३ में प्रणीत 'घसर बाबनी' का संकेत मस्ति-कास के परिशिष्ट में किया गया है। द्वितीय धामरा-निवासी पांडे हेमराज जिनका समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का अन्तुर्ग पाठ तथा घटारहवीं का प्रथम पाठ था। ये प्रबलन-घार टीका आदि टीकाओं के कारण प्रसिद्ध है। तृतीय प्रस्तुत हेमराज जो सांघानेर के निवासी थे और जिन्होंने कांगायड में सं० १७२३ में 'उपदेश घटक' की रचना की थी—

बलभी सांघानेरि की घर कांनारु यास ।
तहां हेम बोहा रबे, म्भ-पर बुद्धि-परकास ॥
सतएह से र पभीत की घरत संगत सार ।
कातिग मुहि सिपि पबभौ, पूरण जयो बिचार ॥^२

'उपदेश घटक' की हस्तलिखित प्रति हमने अकपुर के बधीचन्द्र जैन के मंदिर में देखी थी।^३ १०१ पद्यों के इस घटक में अधिकतर तो बोहे ही हैं कुछ एक शारटे। मन-भरकट इंडिम-निग्रह ब्रह्मचर्य महत्त्व दान न केन का कट्ट परिणाम जग्म विबाह तथा मरण में समानता बुजंग मूक आदि विषयों पर इस घटक में नीति-रचना की गई है। अधिकतर दीहों में दृष्टान्त तो पुराने ही हैं परन्तु अनेक बोहे भाव-पूर्ण तथा साहित्यिक गुणों से युक्त हैं। जैसे—

फटे बलम समहूँ सद्यूँ धरि-धरि मांयत भीस ।
बिना बिये की फस गहूँ बित सिरत गहूँ सीस ॥
मिले सोग बाजा बज, पान गुसास कुलेस ।
बनम-मरण सब ब्याहूँ में हूँ समान सौ लेस ॥
करत प्रबट बुरजत सदा, होय करत उपमार ।
सपुर सबिबकए बाव से करत मार क्यो मार ॥
बोहूँ बबक भव बनि बसे बाम बागुरा जनि ।
एहूँ अटकि सूँ नहीं नृग नर मूंड बघाभि ॥^४

१ मुजबेब बालिग्य नीति (प्र० आपुनित प्रेस, बलिया १९३२ ई०), पृष्ठ ३२।१३५

२ उपदेश घटक पद्य २८, १००

३ उक्त प्रति मुख्या सं० ६३६ में संरक्षित है और पद्यों का आकार २ × ६" है

४ उपदेश घटक, बोहा सं० ३१, ३६, ४३, ६०

४ भया भगवती दास

भाम जी के पुत्र भगवती दास पाण्ड के निवासी थे और औरंगजेब के सम कालीन । ये एक धम्माली कुशल कवि थे जिनकी ६७ रचनाएँ ब्रह्म विलास^१ में संगृहीत हैं । यद्यपि इनकी ध्वनिस्वर रचनाओं में भी कुछ-न-कुछ मीति है तथापि पंचेन्द्रिय-संवाद वृष्टान्त-पञ्चीसी मन बत्तीसी बाईस परीक्षा और फुलक पद्यों में मीतिकाम्य की प्रचुरता समित होती है ।

१ पंचेन्द्रिय-संवाद—सन् १७११ में एबिन ११२ पद्यों के इस सवादात्मक काव्य में प्रत्येक इन्द्रिय अपने को दूसरों से भ्रष्ट सिद्ध करने का यत्न करती है परन्तु पद्य में मन को राजा तथा सब इन्द्रियों को उसका सेवक निर्णीत किया गया है । इसमें दोहा छोरठा दास तथा गणों का प्रयोग हुआ है । विशेष कवित्वगुण के प्रमाण में भी रचना सवाद की रोचकता के कारण धरती है । जैसे—

नाक— नाक रहे तै सब रट्टी नाक पये सब जाय ।
नाक बराबर जगत में, और न बड़ी कह्य ॥
नाक गजरा सीता सती प्रपन्नो नन्द में पैठी रे ।
सिहासन बैदम रख्यो तिहि ऊपर का बठी रे ॥^२

कान— तैरो झोंक गुन जिठे, कर न जलम काज ।
बूब फुल दुगप में लऊ न ग्राव लाज ॥
सतों सुर को पायबो, प्रबुज मुजमय स्वाव ।
इन कानन कर परखिये भीठे-भीठे नाव ॥^३

२ वृष्टान्त-पञ्चीसी—२६ दोहों की इस इति का रचना-काल सन् १७१२ है । दोहों में प्राहिना दान चीन अपरिग्रह प्राय के महत्त्व को मुन्दर वृष्टान्तों द्वारा हृदयपम कराया गया है । पंचेन्द्रिय-संवाद की प्रवेसा यह रचना अधिक साहित्यिक है । कुछ दोहे नीचे—

जिय हिता जप में बुरी हिता फल बुझ देत ।
मरपी मारी भयती, ताहि बिरी भज सेत ॥
ब्रह्म के जिन बस लीं घठ कीं घठ कीं प्रीत ।
प्रति प्रबुज पे देखिये, हर्षुर नरम-नीत ॥^४

३ मन-बत्तीसी—इति का विषय नामानुसार है । ३४ पद्यों की इस पुस्तिका में क्रमशः २७ दोहे ० धरिस्त ४ बीनाइयाँ और एक बीपई छंद हैं । इसमें मन की

१ प्रकाशक, जैन बुक डिपो, मंगलवार पेठ, शोलापुर, सन् १९२६ ई०
२ ब्रह्मविलास, पंचेन्द्रिय संवाद, पृष्ठ २४०
३ ब्रह्मविलास पंचेन्द्रिय संवाद पृष्ठ २४१
४ " " , वृष्टान्त पञ्चीसी पृष्ठ २११, २६१, २२

बनबला बेमबला धारि का बर्णन करने के अनन्तर अठ पंखेटी वाले (मम) को बध में करने की प्रेरणा की गई है। अधिकतर पद्य तो इतिवृत्तारमक ही हैं, कुछ एक का शब्द-बमत्कार धवस्य धाकर्पक है। जैसे—

रोहा—बिप मसन तें कुछ दर्ई, जाने सब ससार ।

तजह मन सनहा नहीं, बिपमन सेती प्यार ॥^१

धरिस्त—रुहा मु बाये मूंड गये रुहा मट्ट का ।

रुहा नहाये गंग नदी के लदठ का ॥

रुहा कपा के सुने बचन के पदठ का ।

जो बध नाही तोहि पसेरो अदठ का ॥^२

४. **बाईत परीसा**—कबीर धारि सर्तों में सच्चे साधुओं की स्तुति तथा पालकी साधुओं की निन्दा में अनेक पद्य रचे हैं। प्रस्तुत रचना भी कुछ उसी कोटि की है और दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। प्रथम इसमें उन्हीं साधुओं को सच्चा कहा गया है जो भूय भीत दुया लुबा धारि सहने में समर्थ होते हैं तथा स्त्री के धाकर्पण मानापमान धारि स दूर रखते हैं। द्वितीय जहाँ गृहस्थों को तपोमय संयम पूर्ण जीवन की शिक्षा स्वभावतः प्राप्त हो जाती है वहाँ सच्चे साधुओं की सेवा व संपत्ति की भी प्रेरणा मिलती है। अवाहरण के लिए एक कवित्त दिया जाता है—

स्त्री-वरीपह—गारी के निहारत बिचार सब मूल धार्ये,

गारी के निहारे परिणाम किये बात हैं ।

गारी के निहारत अज्ञान भाव प्राय स्मर्ये

गारी के निहारत ही शील गुण बात हैं ॥

गारी के निहारत न दूर बीर धीर धर्ये

तोहन के मारे जे अडिम ठहरात हैं ।

ऐसी गारी नागिन के मन को निमेष जील

भये हैं अजीत मुनि जगम् बिस्थात हैं ॥^३

५. **कुठकल पद्य**—मगबती दास के स्फुट पद्यों में भी पर्याप्त नीति-बर्णन है। निदर्शन के रूप में निम्नलिखित पद्य देखिए जिसमें एक वीरद्व कुत्ते को उस मनुष्य के घम का घोंस घाने से बर्जित करता है जिसने जीवन में शकर्म नहीं किये।

छप्पय—धीन्य पबं महि नम्यो कान महि सुनं बन सत ।

नन ब निरसे साधु, बिन तै नही न सिबपति ।

कर तें दान न बीन हूबय दछु बया न कीनी ।

पेट भयो करि पाप पीठ परतिय महि बीनी ॥

१-२ " , मन बलीती, पृष्ठ २६३। १७ २६४। २८

३ अनापब प्र० अज्ञानम इत्यादि, सन् १९१२ ई०, बाईत परीसा, पद्य १९

जबल जैसे कवि सीर्य कर्तुं सिद्धि सारो र पदा कीरिये ।

इमि कहै ज्वाया रे ज्वाया यह निद, निदुष्ट न कीरिये ॥^१

अन्त में इतना ही कहना यथेष्ट होया कि जेना मयवती दास जी की रचनाएँ व्यावहारिक शीर्ष की कुछ कमी के रहते हुए भी, प्रावर्णिक शीर्ष के सुन्दर प्रतिपादन के कारण प्राज्ञ हैं ।

५ सप्तमीवत्सम

अभि परिचय सप्तमीवत्सम जी का विषय वृत्त उपसम्प नहीं हुआ । इनकी सर्वप्रथम कृति 'कुमार वदमव वृत्ति का रचना-काल सं० १७२१ ई । इनके जन्म-नाम (हेमराज) से अनुमान किया जाता है कि ये किसी उच्च वर्ग में उत्पन्न हुए होंगे । इनके कुछ सप्तमीकृति ने बीना के समय इनका नाम सप्तमीवत्सम रखा । विक्रम की मठापट्टनी सती के छत्रराज्यीम जैन विद्वानों में इनका स्थान महत्त्वपूर्ण है । संज्ञात्मक विद्वानों के प्रतिरिक्त ये काव्य व्याकरण, छन्द, श्लोक आदि विषयों के भी अध्ये विद्वान् थे । संस्कृत हिन्दी तथा राजस्थानी भाषाओं पर तो इनका अच्छा अधिकार था ही हिन्दी में भी इनके तीन स्तोत्र प्राप्त होते हैं । इन्होंने म ना अन्तिम ग्रंथ सं० १७४७ में हिसार में रखा । अतः इनका परबोधवास सं० १७४७ वा उसके पश्चात् हुआ होगा । कविता में यह अपनी छाप राज, कविता राजकवि और वत्सम रखते थे ।

साहित्यिक परिचय—इनकी समस्त रचनाएँ ७८ हैं जो संस्कृत हिन्दी राजस्थानी तथा सिन्धी भाषाओं में विहित हैं । इनके हिन्दी-ग्रंथ निम्नांकित हैं—

- | | |
|-------------------------|---------------------|
| १ कासमान ब्रह्म माया वच | २ नवतत्त्व माया बंध |
| ३ भावना विसास | ४ चौबीस जिन सबैया |
| ५ चौबीसी | ६ दूहा बावनी |
| ७ सबैया | ८ उपदेश बावनी |

अन्त में छठ हिन्दी-ग्रंथों में से हृदयारे प्रतिपाद्य विषय से दो ही ग्रंथ सम्ग्रह रखते हैं—(१) दूहा बावनी (२) सबैया बावनी । यद्यपि उपयुक्त दोनों कठिणों के रचना संभव सात नहीं तथापि दोनों काव्यों को तुलना पर दूहा बावनी सबैया बावनी से पहले की रचना प्रतीत होती है । सबैया बावनी का प्रणयन सं० १७३८ के पूर्व हो चुका था इसलिये इन दोनों काव्यों को सं० १७२१ ३८ के बीच की रचनाएँ मानना होगा ।^२

१ महाविद्यालय, कुम्भन पत्र, पृष्ठ २७३।१०

२ सप्तमीवत्सम के सविस्तर परिचय के लिए बेटिए—'राजस्थानी', भाग २ (म० राजस्थानी साहित्य परिषद्, जयपुर) में अग्रपत्र मद्रुट का 'राजस्थानी भाषा के दो महाकवि' शीर्षक निबंध ।

बुढ़ा बाबनी^१—इस काव्य की जो प्रतिलिपि श्री धरमचन्द नाहटा के यहाँ है, उसे मुनि हीरानन्द ने सं० १७४१ में लिपिबद्ध किया था।^२ वृत्ति में इस काव्य की रचना अपनी तथा दूसरों की शिक्षा के लिए की थी—

बुढ़ा बाबनी करी, अक्षय परहित काज ।

पढ़त सुखत वाक्य लिखत, नर होवत कविराज ॥^३

बुद्धि मह कोई साहित्य-शास्त्र नहीं इसलिये उपर्युक्त बोधे में 'कविराज' काव्य का अर्थ अत्यन्त अतुर या बुद्धिमान् ही उपादेश है 'कविमण्ड' नहीं। इस रचना में कुल ३८ बोधे हैं जिनमें नीति अथवा धर्म काव्य का अर्थ अत्यन्त कम है। कुछ बोधे तो किसी भी प्रकार के अर्थकारण से सम्बन्धित न होने के कारण पद्यमात्र ही कहे जायें परन्तु अनेक बोधे साहित्यिक छटा से युक्त होने के कारण सुन्दर या काव्य के क्षेत्र में गणनीय हैं।

जै—

गरवत तज तुं मज घटा, करि करि अविश्व गाज ।

अज तुं भारत मोरिसे, अछत न सुपराज ॥^४

तज तुं 'राज' न होइ है, सुख-मालिक की घोष ।

अज जीहा अरसाए परि, अई न अज तुं घोष ॥^५

सर्वथा बाबनी—इस काव्य की एक प्रति श्री बीकानेर के अक्षय जैन अयागार में विद्यमान है और एक पत्रपुर के पुरातत्व मंदिर में। सामग्री की दृष्टि से दोनों प्रतियाँ समान हैं परन्तु पुरातत्व मंदिर के कार्यालय के रेजिस्टर में इस बाबनी के अर्थात् का नाम 'राजनी' (राजसिंह) लिखा हुआ है जो सम्भवतः सर्वथों में 'राज या कवि राज' को लेखकर मिल जाता गया है। यस्तुतः यह बाबनी 'राजसिंह' की नहीं 'सर्वथी' बलात्कृत-रचित ही है। इस बाबनी की पद्य संख्या भी 'बुढ़ा बाबनी' के समान ३८ ही है जिनमें प्रथम पाँच पद्य अंगमाचरणायक हैं। अथ में अध्यात्म की अनेका नीति का आशय है। कई पद्यों के अंतिम अक्षर की अबाबनी ('छोई बढ़ो जा की अंठ खैमा' आगत मार्ग वं अक्ष न मारी आदि) से देखा अशुभान होता है जैसे कि के अशुभान पूर्ण क लिये रहे गये हों। नीति के विषयों में तो विशेष अनीयता नहीं परन्तु भाव और भाषा की रचना की दृष्टि से सुन्दरता में अनेक नहीं। निम्नोक्त अ पद्यों में आशय अथ अत्र अनीय हैं—

१ 'बुढ़ा बाबनी' की हस्तलिखित प्रति बीकानेर में अक्षय जैन अयागारों में अरक्षित है।

२ ए.ि. श्री अयागार की अनीयबाबनीय अरक्षित अक्षय बुढ़ा बाबनी अरक्षितम्। अंत्य १७४१ अरक्षित अनीय १ अरक्षित हीरानंद मुनि ॥ (अनीय, अरक्षित)

३ २ बुढ़ा बाबनी, अनीय ३८, २४, ३८

पूह कमह—कहा भोजन प्राज तो पारो भयो, अपिको तुम जौन मुं काहे नु जारो ।
 बात सुने लै सुनि हूँ लयी, हम नाहि करै तुम्हहीं बस बारो ॥
 बिगु पापन तू हम सुं ब बहै पिय पत्नी है तू तेरो बाप हल्यारो ।
 राज कहै कमहो सिन को सिन तो पूह को पूह कीजयं कापो ॥^१

प्राचीन कवियों का प्रभाव—यों तो सवमीवस्तम भी की दोनों ही वाकियों पर संस्कृत के मीति-काव्य का प्रभाव सक्षित होता है परन्तु 'बुहा बावनी' तो भाव और भाषा की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य की अत्यधिक श्रेणी है। जैसे—

अथ गणितं पमित्तं मुष्णं, ब्रह्मविहीनं धार्तं तुष्णम् ।

कुत्रो याति गृहीत्वा बन्धं, तत्रपि न मुच्यत्याद्यापिष्णम् ॥^२ (शंकराचार्य)

अथ गणितं सिर सब पमित्तं भयं बत को धत ।

तोड पुड करि बड पहि, असाधरत अनंत ॥^३ (सवमीवस्तम)

अन्त में दोनों वाकियों की तुलना से यह निस्संकोच कह सकते हैं कि 'बुहा बावनी' की सामान्यता को "सबैया बावनी" की सरलता ने धाक्काभित कर दिया है। कुस मिसाकर हिन्दी प्रमी विरकाल तक मुनिजी के आभासी रहेंगे।

६. बुन्द

बुन्द का जन्म शाक्यीपीय ब्राह्मण-कवि कम भी और कौशल्या के घर में मेड़ता (राजस्थान) में स० १७० वि० में हुआ। काशी में तारा जी नामक विद्वान् से विद्याध्ययन करने के बाद जब वे मेड़ते लौटे तब बोजपुर-नरेश महाराजा असबन्त सिंह ने इन्हें कुछ भूमि समर्पित कर सम्मानित किया। महाराज के मित्रत्ववाद मुहम्मद शाही के द्वारा वे औरंगजेब की समा में जा पहुँचे और अपनी योग्यता के बत पर दर-बारी कवि तथा सम्राट् के न्यय्य पुत्र मुयज्जम (बहानुरशाह) और पीठ अजीमुरजान के सिदारक नियुक्त हुए। किशममङ्ग-नरेश महाराजा राजसिंह ने स० १७६४ में इन्हें बहानुरशाह से भाय लिया और जावीर प्रदान की। स० १७८० में वहीं बुन्द का स्वयं-वास हुआ और वहीं इन के संघज प्राज भी विद्यमान हैं। बुन्द ने छोटे बड़े ग्याहू प्रयोग का प्रणयन किया। बुन्द विनोद सतसई (बुज्जान्त सतसई) यमक सतसई भाव पचाधिका शृंगार सिदा, बचनिका और सत्य-स्वरूप इनके बड़े ग्रंथ हैं तथा पवन पचीसी समेत सिधर छत्र हितोपदेशाटक भारत कथा और हितोपदेश संपि छोटे।

बुन्द विनोद सतसई—बुन्द की कीर्ति मुरपत इही ग्रंथ पर प्रबलगदित है। इस

१ बही बुहा २३

२ शंकराचार्य अर्पण्यवरिका स्तोत्रम्, पद्य ६॥

३ बुहा यावनी बुहा २०॥

सतसई का धारम्भ बुन्द ने झांझा नगर में सं० १७६१ में अजीमुद्दौलान के मनोविमोद तथा सिखा के लिए किया था।^१ दोहों की संख्या ७०२ से ७११ तक प्राप्त होती है। सतसई के ध्व्यवन से बुन्द की व्यापक पंती वृत्ति का सम्बन्ध परिचय मिल जाता है। इतर प्राणि-विषयक नीति के सिवा शेष सभी नीतियों पर बुन्द ने प्रचुर और सुन्दर सिखा है। बुन्द इसके जीवन का अधिकांश समय राज दरबारों में व्यतीत हुआ इसलिये पशु-पक्षियों के प्रति-व्यवहार के वर्णन को उभेसा अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। सतसई की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्रायः उन्हीं विषयों का उल्लेख नहीं है जिन पर प्रायः नीतिकार सिखा करते हैं। ऐसी अनेक बातों की भी चर्चा है जिनका वर्तुम प्रायः उल्लेख रहता है। नीचे हम प्रायः ऐसी ही असामान्य बातों का विवरण करते हैं।

बैयस्लिख नीति—छातौरिक नीति के शेष में बुन्द ने दो बातों पर विशेष बल दिया है—बस और बाणी। कारण भी कुछ नहीं है। बुन्द ने अनुभव किया कि यलवान् व्यक्ति जसे-तैसे अपना काम सिद्ध कर ही भेठा है निबंस का गुण भी उसके लिए कुछ प्रद सिद्ध होता है और मनुष्य ही नहीं बिभावा भी दुर्बल-मातक दिखाई देता है। इसलिये मनुष्य को सबसे बनना चाहिए—

बोरापर कौं होति है सब के सिर पर राहु।

हरि बकमनि हरि तै मयी देखत रहे सिपाह ॥^२

होत अफिक गुन निदाल ये जपजठ मर निबान।

मुय मुयनद धमरी धमर सेत वुष्ट हत प्राण ॥^३

हरत बैरहु निबान धर बुरवस ही के प्राण।

दाघ सिंह कौ छांड़ि के, बेत छाग बनिदान ॥^४ (बुन्द)

परन्तु बल के दुर्बलपयोग से हागे वाली हातियों से भी बुन्द अपरिचित न थे। उन्होंने एकत्र से बहुरकार कार्य करने का भी विषय^५ और अनेक दुर्बलपयोग से सम्भाव्य विभाग^६ के प्रति भी उपाय किया है।

सत्यवचन मधुर भाषण प्रतिज्ञा-नासन धबसरोहित कपल धादि के प्रतिरिक्त बुन्द ने घोड़ा भूट भी बोलने की भूट को सत्यवच कहने की कमी-कमी मर्बाप को भी न कहने की हाथ से विपकी का बाणी द्वारा सेवारन की ज्ञात विषय पर ही मुख घोसने की तथा जत से पुष्ट बात न कहने की भी प्ररणा की है। इनमें से कई विषयों

१ सतसई सति रस धार सति क्वटिक सुदि सति धार।

छातैं झांझा सहर में बननी इहै पियार ॥

सं० इमानसुन्दर दास : सतसई सप्तक पृष्ठ सतसई पृ० ३४१।७०६

२ भोतीनास भेनारिया : रायस्वामी बाबा धीर साहित्य, पृष्ठ २२१

३-७ सतसई सप्तक पृष्ठ सतसई सौदा ३६८, ३६८, ३७८, २५१, १६१

का धर्मशास्त्र से विरोध स्पष्ट ही है और इनकी प्रेरणा करने वाले कवियों पर सदा जारी और आत्मिक जन उबसी उठा सकते हैं। परन्तु बृह न धर्म का प्रतिपादन कर रहे थे न सदाचार का। उन्हें तो भोक्तव्यवहार की चर्चा परती थी और वह उन्होंने निर्भीकता पूर्वक कर दी—

भूठ दिना धीरी लयें, धर्मिज भूठ दुप मोन ।
 भूठ ठिती ही भोलिये, ज्यों घाटे में लौन ॥^१
 पर दिगरी गुपर बहहि बेसैं दगिक बिसेख ।
 हीग मिरक धीरी करै, ह्य पर पर सिक्क लेख ॥^२

विद्या और दृष्टि के विषय में बृह का दृष्टिकोण सर्वोत्तम तथा सूठी स्फुट-काव्यों के रचयिताओं से सर्वथा भिन्न था। जहाँ सत् सामु पोषी-धर्म और पाण्डित्य के निम्नक से बड़ी बृह सवमा प्रशंसक। बृह को विपुल धन-मान की प्राप्ति विद्या द्वारा ही हुई थी और भोक्त में भी विद्या की धीरक प्रयत्ना प्रकट थी। इसलिये धन्य कवियों के समान विद्या का गुणगान तो उन्होंने किया ही परन्तु इतने मात्र से ही वे संतुष्ट न हो गये। उन्होंने सतसई के धनक दोहों में जयम धीर विद्या पुर मक्ति धीर विद्या धम्यास धीर विद्या दुष्टि-वस धीर जयम के मोप से काय की सिद्धि गुबमुख छ धधीत विषय का महत्त्व कुठिबनी को धनु से निर्मयता, पुण्यामवण प्रससा प्रादि धनेक विषयों का जम्मेक किया है—

विद्या गुब की प्रथित छों, छ कौन्ही धम्यास ।
 लौल प्रोण के बिन कहे, सीप्यो दानबिमास ॥^३
 जाधैं बुमियस ह्येठ है, ताहि न रिपु दी धामु ।
 यन बृह कह करि लकैं तिर पर सतना जामु ॥^४

संसार में प्रायः मूर्खों के पास धन की प्रचुरता बिलाई देती है और विद्वानों के पास कमा। यह विषमता देखकर कई बार पण्डितों के मन भी विद्या-प्राप्ति के प्रति विरोधी हो जाते हैं। ऐसे अवसरों पर बृह का यह दोहा उक्त धरान्ति को मट करने के लिए रामबाण सिद्ध होता है—

जनि पण्डित विद्या लकडु यन मुरत धररेख ।
 कुलदा लौल न परिहरे पुसदा भूपित देख ॥^५

प्रारम्भिक नीति के सत्र में यद्यपि बृह ने कन्नडा दया, क्षया प्रादि साम्बिक गुणों का बड़ी-बड़ी जम्मेक किया है तथापि गजनीय काठान्तरण के कारण ये इनक प्रथम विषय नहीं हैं। इन सत्र न इन्होंने धर्म से पुण्यों का महत्त्व गुण से मान मुख धीर वेध एक ही गुण छ यध की प्राप्ति विमुन धीर गुण उजस्विता, साहस परा

१-२ सतसई धपक, बृह लततई बोटा ४०२ २०६

३ ४ पही, बोहा २६३, २३०

५ पही, बोहा ११६

कम धारि की प्रसंसा निस्तेज की बबसा भारमभिरवास उद्यम, धनेक निष्कर्मों से एक कर्मठ की श्रेष्ठता धारि राजस विषयों का जगह जगह उत्तेज किया है; जैसे—

होत दहत बन होत तज, गुन गुन भए उबोत ।

नेहु भयो बीपछ लज, गुन बिनु जोति न होत ॥^१

जसै पु संभ पिपोसिका, समुद्र पार है पाय ।

जो न जसै ती पबड़ हू, पंडहु पसै न पाय ॥^२

बिना तेज के पुबध की धमसि अग्या होय ।

धायि सुई ज्यों राखि औ धामि सुई सब कोय ॥^३

पारिवारिक नीति—सुपुत्र कुपुत्र साधवी कुसटा, बर की पूट धारि सामान्य विषयों के अतिरिक्त ब्रह्म ने बुद्ध-दायक धपना भी बुरा सुखदायक वेगाना भी अग्या^४, माता-पिता तथा बंध का संवत्ति पर प्रभाव^५ धारि विषयों पर भी सुनिश्चय कर्तों हैं—

दो काहे धपनौ तऊ का समय सक्रिय पीर ।

असै रोग सरीर त उपकसत दहत सरीर ॥^६

सामाजिक नीति—इनकी सामाजिक नीति का विस्तार धारकर्मजगह है ।

संजत दुर्जन छोड़े-बड़ सुसय-कुसय मुक-बिहाम् स्वामि-सेवक धारि प्रशंसित विषयों के अतिरिक्त इन्होंने बंध स दुख की अग्या बीरों की प्रसंसा स्वभावों की विभिन्नता सरन-कुटिम में मिस मही सब समाने एक मत धनु स छत-बल करने का धीरत्व सबल को मित्र बनाने में दित धति परिचय से हानि अमठ की उलटी रीति जगत की भेड-बास सुरे से भी कभी भसे की सम्भावना वलवान् की निर्बल से सहज अग्या स्त्री-बुद्धि की निम्दा किमों का धभाव्य धनों से प्रम स्वामि-बुद्धि से संयक-बुद्धि सबकी सदायता सबल के बूते निर्बल का मय अनुबिध व्यक्तियों से सदाय पुख्य की अनुबिध परीसा लोक-समूह बाह्यण धीर मुकजनों से हार मानना ही अग्या सुप्य-बल का अधिक-बल धामे से ही बलह की अग्या साकायवाद का धय छोड़ों से बड़ों की धोमा-बुद्धि धारि सैकड़ों सामाजिक नीतियों का बहुत सुगरता से प्रतिपादन किया है । जैसे—

छल बल समय दिवारि क, धरि हलिए धनयात ।

कियो अकेले डौल-मुत निगि पांडय-पूल जात ॥^७

या जग की विपरोति मति रूपभी देखि तुमाप ।

कई अबाईन कृप्य की, हर की अपर लीन ॥^८

छोछे मति मुदतोन की कई निवेश मुराय ।

बधाय रानी के बदन बन पट्ट रघुराय ॥^९

हीत सुरे हू तें भसो बाहु तमं प्रकात ।

अधिक मास तें ज्यों सिद्धो पांडय फिर बनबाय ॥^{१०}

शास्त्रमें यह कि इन्होंने समाज का यथा-सम्यक् विचार किया और ऐसा व्यवहार करने की प्रेरणा की जिससे अपने धर्मोपेक्षा की सिद्धि हो। समाज में बड़े और छोटे रहते ही हैं और प्रायः बड़े लोग बुरे बुरे धर्मों के बल पर मनमानी कर बैठे हैं। छोटे लोग उनकी उच्छृङ्खलता देखकर भी चुप रहते हैं और जन पर उभरी उठान का साहस नहीं करते। उदात्त रहन वास बुन्द को इस विषय में इससे अधिक कहने का साहस न हो सका—

बड़े कहें तो कौटिल्य, करें तो करिये माहि ।

हुर क्यों पंचन में फिरें और जो बिकल कहार्हि ॥^१

धार्मिक नीति—बुन्द ने मन का महत्त्व मन्त्री की शपथता दान सन्तोष धारि सामान्य विषयों के प्रतिरिक्त धर्म अनेक उपयोगे बातों का भी उल्लेख किया है; जैसे मन का अनुपयोग^२ धर्म के अनुसार धर्म^३ जोड़ता और है और शांति और,^४ निश्चय का दान-विषयक प्रसाधर्म्य तथा सचन के दान की सीमाता^५ इत्यादि का मन^६ बलों की समृद्धि के धार्मिकों को ह्य^७ मन संयुक्तों की यष्टता^८ पूरा संयुक्त-सपदा का माध^९ याधक का समाज में साधक^{१०} धर्म-भूतक मय^{११} धारि । उक्त धीपकों से सिद्ध होता है कि बुन्द का मन-विषयक दृष्टिकोण स्वस्थ था । उन्होंने मन के उचित सीमा में भोग की अनेक प्रशंसा की और इत्यादि उपह की गर्हा। परन्तु इस विषय में उक्त कने वाली बात यह है कि विद्योपार्जन में जो महत्त्व उद्यम को देना चाहिए वा उसकी बुन्द में कमी दिखाई देती है । बुन्द के विचार में उद्योग का लेख धर्मित है प्रामाण्य छापी को भाग्यवान् बनाने में देवता भी धर्ममय हैं प्राण्य मिसक ही रहता^{१२} है और मिसता भी हर एक को उसकी प्रावश्यकताओं के अनुसार ही है । यथा—

यन संध्यो किं हि काम की जाड करव हरि प्रीति ।^{१३}

बेधो संयोली रूप बल, कड दड इहि प्रीति ॥

काह सों नाहीं मिटे, धरतपत के धक ।

बसत ईश के सीत ठड मयो न पुन मयंठ ॥^{१४}

बिहि बेतो सनमान तिहि तेतो रिबड मिलाय ।

कन कोड़ी, कूर कूर मन मर हापी छाप ॥^{१५}

जब मन के बिना जीवन असम्भव है तो उसे प्राप्त करने के लिए कर्म-कर्म प्रयुक्त मार्ग भी अपनाया हो पड़ता है—

दातों निबही बीबिका, करिए तो धन्यास ।

बेस्य पासे सीत तो कसे पूरे प्राप्त ॥^{१६}

निश्चित नीति—बुन्द के बिभ्र होने के कारण सतसई में ईश्वर देवता धर्म धारि विषयों का तथा राज-धर्म होने के कारण राजनीतिक विषयों का उल्लेख तो

१ १६ सतसई सप्तक, बुन्द सतसई श्लो १२४, १२०, १२, १८७ १२७, ४०२,

७०१ २३२, ६००, ६४७, १०१, ११८, १४७, १०४, १०४, ७०

अपनी प्रवृत्ति निश्चय की अवस्था प्राप्तविश्वास उत्तम अनेक निकम्पों से एक कर्मठ की श्रेष्ठता का विषयों का अर्थ बगल उल्लेख किया है जैसे—

होत बहुत धन होत सब सुन जुन भए ज्योत ।

बेह धर्मों दीपक लज्ज, पुन बिनु जोति न होत ॥^१

जसे नु पंच पिपीलिका समूह पार है पाय ।

जो न जसे तौ गबड़ हू, पेड़तु जसे न पाय ॥^२

बिना श्रेय के पुण्य की अक्षति प्रपन्ना होय ।

आयि दुर्भे ज्यों रात्रि की आनि दृषे सब कोय ॥^३

पारिवारिक नीति—सुपुत्र कुपुत्र साध्वी दुसटा पर की पूर आदि सामान्य विषयों के अतिरिक्त वृद्ध न दुस-दायक प्रपन्ना भी बुरा शुभदायक वेगाना भी अच्छा^४ माता-पिता तथा बच का संरक्षित पर प्रभाव^५ आदि विषयों पर भी सूक्तियाँ नहीं हैं—

जो चाहे अपनी लज्ज का सब सहिसे पीर ।

जैसे रोग सरीर स उपजत पट्ट सरोर ॥^६

सामाजिक नीति—इसकी सामाजिक नीति का विस्तार धारणजनक है ।

सत्य-दुर्जन शोष-बड़ सुसंग-दुसम भूद-विद्वान् स्वामि-सेवक आदि प्रशंसित विषयों के अतिरिक्त इन्होंने बच स गुण की श्रेष्ठता बीगे की प्रसंसा स्वभावों की विभिन्नता सरस-कुटिल में मेम नहीं सब समाने एक मठ धनु से छल-बल करने का भीषण सफल को मित्र बनाने में हित अति परिश्रम से हानि अथवा की समटी रीति जगत की भे-बाध बुरे से भी बची भसे की सम्भावना बमबाग की निर्बल से सहज अनुता स्वी-बुद्धि की निन्दा विषयों का अयोम्य जनों से प्रेम स्वामि बुद्धि से सेवक-बुद्धि सबकी सकारता सबल के बूते निर्बल का मय अनुबिच व्यक्तियों के लक्षण पुरुष की पदु विष परीक्षा मोह-संघर्ष बाह्यता और गुणजनों से हार मानना ही अच्छा सुख-बल का अधिक-यस प्राप्त से ही कसह की श्रेष्ठता, मोहापवाद का भय छो-छे बड़ों की योग्य-बुद्धि आदि सेवकों सामाजिक नीतियों का बहुत सुन्दरता से प्रतिपादन किया है । जैसे—

छल बल समय दिवारी से, अरि हनिए अन्धकार ।

रूपो अकैने शोच-सुत गति पाठए-कुल प्राप्त ॥^७

या जग को दिपरीति गति समझी देखि सुमाय ।

कहीं बनारस हजए को हर को संघर सोद ॥^८

जोछे मति मुक्तोत की, कहीं विदेह मुनाय ।

शारण राजी के यजन धन पटए रुपयाय ॥^९

होत बुरे हूँ तें भलो काहू लर्म प्रफाल ।

अधिक प्राप्त छे ज्यों निन्दो पांडव चिर अन्धकार ॥^{१०}

सात्वर्य यह कि इन्होंने समाज का मया-उप्य विषय किया और ऐसा व्यवहार करने की प्रेरणा की जिससे अपने अभीष्ट की सिद्धि हो। समाज में बड़े घोर छोट रहते ही हैं और प्रायः बड़े लोग कम पद धारि के बस पर मनमानी कर देते हैं। छोट लोग उनकी उच्छृङ्खलता देखकर भी डुप रहते हैं और उन पर उंगली उठाने का साहस नहीं करते। राज्याभिषेक रहने वाले बुन्द को इस विषय में इससे अधिक कहन का साहस न हो सका—

बड़े कहीं सो कीजिए करें सो कविये नाहि।

हूर क्यों पंचन में किरें और को बिदल कहाहि ॥^१

धार्मिक नीति—बुन्द में बल का महत्त्व लक्ष्मी की शंभमता राम सखीय धारि सामान्य विषयों के प्रतिरिक्त अन्य अनेक उपयोगी बातों का भी उल्लेख किया है, जैसे बल का अनुपयोग^२ प्रायः क अनुभार व्यय^३ जोड़ता और है और छाता और,^४ निबंत का बान-विषय^५ असाध्य तथा सबल के दाग की सीमता^६ रूपण का बल^७ बलों की समुद्धि से धार्मिकों को हूण^८ बल स गुणों की अष्टता^९ वृष्ट से सुख-उपदा का नाश^{१०} धारक का समाज में साधक^{११} बल-मूलक भय^{१२} आदि। उक्त शीघ्रों से सिद्ध होता है कि बुन्द का बल-विषयक इष्टिकोण स्वल्प था। उन्होंने बल के उचित सीमा में भोज की अनेक प्रवृत्तियों की ओर ध्यानपूर्वक संकेत की गयी। परन्तु इस विषय में उक्त करने वाली बात यह है कि विधोपार्जन में जो महत्त्व उद्यम को देना चाहिए या उसकी बुन्द में कमी दिखाई देती है। बुन्द के विचार में इष्टिता का भेद धर्म है अभास्य-धामी को भाग्यवान् बनाने में देवता भी धममय हैं प्राण्य मित्रकर ही रहता^{१३} है और निरता भी हर एक को उसकी धारदयकताओं के अनुभार ही है। दया—

यन संभ्यो किहि काम के, आज बरष हरि प्रीति ॥^{१४}

बेधो संघोली रूप बल कई पड़ इहि प्रीति ॥

कहू लो नाहीं मिटे, अरान्त के अक।

बसत ईस के सीस तर मनो न पुनं अर्थ ॥^{१५}

किहि बेतो उमनाम किहि, ठेठी रिजक भिताय।

बन कीड़ी, कूटर दूकर, मन भरहायो आय ॥^{१६}

जब बल के बिना जीवन असम्भव है तो उस प्राण्य करने के लिए कमा-कमी अनुचित मार्ग भी अपनाता हो सकता है—

बातों निबहू पीबिका, करिए सो अन्तत।

बेत्पा पासे तीन लो, बंसे पूरे पात ॥^{१७}

निधित नीति—बुन्द के विघ्न होने के कारण उत्तर्क में ईश्वर रचना कम धारि विषयों का तथा राज-निर्णय के कारण राजनीतिक विषयों का उल्लेख हो

१ १६ सतसई अक्षर, बुन्द सतसई राहा १६५, १६७, १६, १८७ ३६७ ५७५, ५०१ २३६, ६०० ६४७ २०१, २१८, १४०, ३०५, २०५, ७०

स्वाम्याधिक ही है परन्तु दुःखम यही है कि इन विषयों की चर्चा अधिक नहीं। समय की वसवता समय से पूर्व ही विपदा के प्रतिचाराओं से मार खाना समय के अनुसार चर्चा में परिवर्तन समय-समय पर सब का धार-धनावर समय के हेर फेर से ही दुःख सुख की प्राप्ति कुरे समय में बुद्धि की निपरीतता आदि समय-सम्बन्धी अनेक नीतियों का बन्ध ने विचार वर्णन किया है। यद्यपि तत्काल की प्रसंगा तो अनेक दोहों में बखिच है तथापि ऐसे लमठा है कि मनुष्य समय के समझ संबंधा बिगड़ हो जाता है। काम को अपने अनुकूल बनाने का सामर्थ्य मानय में नहीं है। खुप चाप विर मुका देने में ही उसे अपना कल्याण निहित बिलाई देता है।

घायत सने विपत्ति के, निज हस्त हूँ प्राय।

दुःख हात घट संयत पी कम मायु की पाय ॥^१

अपने-अपन स्थान पर प्रत्येक स्थिति और वस्तु का महत्त्व और सौन्दर्य विपत्ति जनक स्थान पर जाने का नियम आदि अनेक स्थान-सम्बन्धी विषयों का उल्लेख भी बृहस्पति ने किया है—

करिये तहूँ पंसार बहूँ, को जानिये निहार।

अधम्यह अधिमम्यु को सुम्यो सबनि तसार ॥^२

बृहस्पति ने पुस्तक में प्रसंगा अनेकन की है परन्तु उन्हें ऐसे समता है कि जब सब प्रतिकूल हो तो सब पुनराचार प्रकार्य हो जाता है। पूर्वोक्त कर्मों का परिणाम इतना प्रमत्त होता है कि इस जन्म के सब उद्योग निष्फल हो गते हैं। अधीष्ट वस्तु की प्राप्ति ही सुख और अप्राप्ति ही दुःख है जिस वस्तु से बहुत बुरे बह होकर ही रहती है एक ही वस्तु किसी के लिए लाभदायक और किसी के लिए हानिकारक आदि अनेक विभिन्न विषयों की चर्चा उत्तर में मिलती है।

पुनरुत्सर्ग पर एक बुद्धि—इस उत्तर में का अर्थ बड़ा गुण है—विपुल नीति की प्रचुरता। नीति की कई वृत्तियों में अध्यात्म धर्म उपदेश का प्राय इतना प्राबल्य रहता है कि उन्हें नीति-शास्त्र कहने में स्वभावतः उपकोष होता है। परन्तु इस उत्तर में पढ़ते समय ऐसा समझता है कि हम धर्म की इतनी चिन्ता नहीं जितनी सोचनी। हम किसी आदर्श-समाज या संसारीक में जीवन-मापन नहीं कर रहे हैं वहाँ प्रत्येक व्यक्ति धर्मात्मा, सच्चा और पर्येकार्थी है। हम या उस समाज में रहते हैं जिनमें लोगों को पर्येकार्थ की अपेक्षा स्वार्थ की धर्म की अपेक्षा धर्म की पर्येकार्थ की अपेक्षा सोचनी चिन्ता अधिक है। जब आतावरण ही स्वाक पूर्ण है तब हमें पूर्ण धर्मात्मा बनकर इस संसार में जीवन व्यतीत कर सकत हैं? इसीलिए बृहस्पति प्राय धर्म की अपेक्षा पर व्यावहारिक बातें कहते हैं। यैस—

को सेती सिहूँ तैतिपे करिये नीति-शकत।

काम कठिन हैई धमर, मुनु धरदिब निवात ॥^३

सुप्त विप्राय दुष्ट बीजिय तस छौं भरिये तादि ।
 जो गुर बीजे ही मर पयो दिव बीज तादि ॥^१
 या मैं हित तो कोबिये फौज रह्यो हमार ।
 छस बल छामि बिन करे, पारय धारय पार ॥^२

उक्त उद्धरणों से यह निष्पन्न निकामता प्रशुभित होगा कि बुन्द के हृदय में उष्ण भावनों के लिए कोई भी स्थान नहीं है, वे नतिक पनीतिक सभी साधनों से स्वार्थ-बिद्धि की ही प्रेरणा करते हैं। बस्तुतः सतसई में दादरस-व्यापक पद्यों का भी समान नहीं है, यद्यपि अधिकता व्यावहारिक नीति की है—

व्याप चलता विपर कतू तौ न करो धरसोत ।
 पार परत जो राक्षस तौ न बैत कोड बोत ॥^३

शायं यह कि बुन्द धारय का बस्तुतः मित्रदर तो नहीं करना चाहते परन्तु सामान्य जनता धारसबादी समझ कर कष्ट सहने में प्रसन्न होती है और बुन्द सती के काम की बातों का उत्सुक करते हैं।

सतसई की दूसरी विशेषता है—सुन्दर दृष्टान्त। यह तो नहीं कह सकते कि बुन्द ने प्रत्येक नतिक लक्ष्य के समर्पन में कोई-न-कोई बृष्टान्त प्रस्तुत किया ही है तथापि यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि उनके प्राय सभी बोधे सुन्दर दृष्टान्तों से समन्वित हैं। सपन्न नीति-कवि अपने प्रतिपाद्य विषयों को मनोहर उदाहरणों द्वारा पाठकों के हृदयंगम करने का उद्योग किया ही करते हैं और इस दृष्टि से बुन्द हिन्दी के अग्रगण्य कवियों में स्वाम पाने के अधिकारी हैं। समर्थकार तो बिना पूछे कुछ बताने का निषेध करते ही रह गये परन्तु बुन्द ने उनके विपरीत कहकर भी अपनी बात को सुन्दर दृष्टान्त से समन्वित कर हमें प्रभावित कर ही दिया है—

बिन पूछे ही कहत हैं सरजन हित के यैत ।

मने बुरे फौं पतूत हैं, ज्यों समदर पत रैन ॥^४

पौराणिक तथा ऐतिहासिक संकेत इस सतसई की तीसरी विशेषता हैं। बुन्द ने अपनी नैतिक उपदेशों के समर्पन में तत्कालीन जीवन से ही दृष्टान्त नहीं बिले रामायण महाभारत पुराणों की कथाओं से भी इतने अधिक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं कि पाठक का ध्यान इतावत् उनकी घोर पाहण्ट हो जाता है। विभिन्न नीतियों के समर्पन में बुन्द ने धनु न घोर कृष्ण, मेनाक घोर उषधि युधिष्ठिर घोर नल भीम घोर श्रीबल धनु न घोर विराट् पुत्र राम घोर विभीषण कृष्ण घोर सुदामा धारि की बर्षनों प्राचीन कल्पानों का यथास्वाम को उल्लेख किया है उन्से सिद्ध होता है

१ २ सतसई सप्तक बुन्द सतसई बोहा ३११, ५०२

३ सतसई सप्तक बुन्द सतसई पृष्ठ ३१८।५११

४ मनु स्मृति अध्याय २।११०

५ सतसई सप्तक, बुन्द सतसई बोहा ३१७

कि उन्होंने इतिहास-पुराणों का संयन ही नहीं किया था उनका अनेक कवार्ण उन्हें मुखाय भी थी और धारम्य-कथानुसार कीतवासी के समान सुरम्य उपस्थित हो जाती थी। जैसे—

बड़े विपत्त में हूँ परे भसे बिराने काम ।

किय बिराट तनु की पिअय अर्जुन करि सखाम ॥^१

बृन्द की बन्धु विधेयता है—सूत्रम निरीक्षण । जैसे तो इस युग के धर्माय में कवि होना ही धर्ममय है परन्तु जिसमें यह युग जितनी अधिक मात्रा में विद्यमान हो उसकी कविता में जगती ही सजीवता पा जाती है। जैसे—

विष से जिहूरे बिरह पच नन न कर्तुं ठहरत ।

बरनि पिरतु बीषाहि फिरतु पयो भेसूरे पत ॥^२

स्वच्छ-संगत भाषा इस सतर्क की पाँचवीं विगिठता है। बृन्द ने अपने पाश्चर्य प्रवर्धन के लिए न कहीं न पा को बुद्ध बनाया है न कृष्ण पदों की रचना की है। सहज सुबोध भाषा के कारण ही इस सतर्क के संस्करणों को ही अस्वस्थि धामीयों तक को कष्टमय है।

इस सतर्क की छठी बिदायता है—कवियों तथा साधोभित्तियों का सुन्दर प्रयोग। अनेक कवियों और कथावतों का बृन्द ने ऐसा सुशिक्षित प्रयोग किया है कि वे अस्वाभाविक और दूरी हुई नहीं लगती। यह भी धर्ममय नहीं है कि बृन्द के द्वारा प्रयुक्त अनेक सूक्तियाँ ही कवियों के मन में प्रथमतः हो गई हों। एक-दो उदाहरण दृष्टम्य है—

माप बुरे अप है बुरो भसि भलो अप जाति ।

तजत वहेरा छह रूप गहल काम को जाति ॥^३

एक भेष के धाधरे जाति धरन टिय पत ॥

ज्यों हापी के पाँव में सब को पाँव समान ॥^४

सतर्क की सातवीं बिदायता है—सुन्दर कल्पनाएँ। जैसे तो प्रत्येक मौखिक दुष्टान्त के कवि की कल्पना-सुधावता का कुछ-न-कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है परन्तु कहीं-कहीं तो कल्पनाएँ इतनी उत्तम हैं कि इन्हीं हर सेठी हैं। मौखिकता से मोन जागते ही हैं कि मकली धाने के बाव दूब प्यास लगती है। इस लक्ष्य पर बृन्द की चरनावता देखिये—

प्रेमो प्रीत न टोड़हीं, होत न प्रन से हीन ।

मरे परे हूँ उबर से बत बाहूत है मोन ॥^५

एक धर्म बोधे में कथावत धोर कल्पना वा सुन्दर विषय देखिये—

यह कहकर जाता करे तैसी पाप सोय ।

धीरम ही प्राप्ते कर क्षीणी कक्षियत सोय ॥^१

रक्त धीर भाव—यद्यपि रक्त-परिपाक के विचार से बृन्द सतसई विधोप महत्त्व प्राप्त नहीं है तथापि इस में ऐसे दोहे दृष्ट-ही पाये हैं जिन्हें पद्यमान कहा जा सके । अधिकतर दोहे मात्रपुण तथा सहस्य पाठकों क मन में संतोष सहिष्णुता नम्रता, भय उद्यम, शोष, उत्साह प्राप्ति भावों के संचार में समर्थ हैं । जैसे—

विष संतोष विचारिये होय बु निष्कयी मसीब ।

जल मुर काज क्षीर सौ, मानत रसो परीय ॥^२ (संतोष)

मीति धनीति बड़े सह रिष भरि बेत म पारि ।

मुपु उर बीनी सत की बीनी हरि हनुहारि ॥^३ (क्षमा)

सोचन के अपवाद को उर करिय विन रन ।

रमुदति सीता पचिहरी सुमत रजक क बन ॥^४ (भय)

रम को रंग पपीतिका समुद पार ह्व जाय ।

औ न जल लो पकड़ हू पैड़हु बसे न पाय ॥^५ (उद्यम)

बोरावर की होति है सपके विर पर राह ।

हरि बकनि हरि ल मयो बैजठ रहे सिपाह ॥^६ (उत्साह)

भाषा—बृन्द सतसई की भाषा की सुशोभता और स्वच्छता तथा उसमें रुढ़ियों और लोकोक्तियों के सुप्रयोग के सम्बन्ध में पीछे कह ही चुके हैं । इस की भाषा का एक अन्य प्रसङ्ग गुण है—समाहार-शक्ति । यह गुण इन में बिहायी बितना तो लक्षित नहीं होता फिर भी इसकी शक्त इनके अनेक दोहों में स्पष्ट दिखाई देती है—

मने-भसे विपिना रचे ये सरोय सव कीन ।

कामधेनु पसु टठिन मनि बनि जायी सति छीन ॥^७

सतसई की भाषा यह है जिसमें संस्कृत के उत्तम शब्द भी पर्याप्त हैं । फारसी, पारसी प्रादि भाषाओं के शब्द हैं तो सही परन्तु थोड़े धीर उनका प्रयोग भी प्रायः तदुभय रूप में किया गया है, जैसे—सुस्माल (सुसहास) अपसोक (अप्रसोक) । कहीं-कहीं उत्तम रूप में प्रयुक्त तदुभय हिमायत प्रादि भारी भारी विदेशी शब्द लटके हैं । इसी प्रकार एनाथ स्थल पर संस्कृत का सविभक्तिक पद धीर बहु भी विदेशी शब्द के साहचर्य में विभिन्न सा समता है—

प्रभु सौं बात बुरी न तउ करिये धरज मुपेन ।

बिरमलि धनुष्या तिखी हरि कहा जातत हेन ॥^८

अस्थानुभास तथा सम्बन्धित को अविभक्त रखने के लिए एकाव स्थल पर शब्दों

१-२ सतसई सप्तक, बृन्द सतसई, बाह्य २, ७०३ १२१ १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१

कि उन्होंने इतिहास-पुराणों का संयम ही नहीं किया था उनका अनेक कथाएँ उन्हें सुझाव भी थीं और भावस्थलासुधार कोटबासी के समान सुरम्भ उपस्थित हो जाती थीं। जैसे—

बड़े बिपत में हूँ परे मने बिराने जान ।

किय बिरात तनु धी विभव धनुंन करि सपाम ॥^१

बृन्द की वचनचं विद्यपता है—सूक्ष्म निरीक्षण । बंस ता इस कुछ के समान में कवि होना ही असम्भव है परन्तु जिसमें यह कुछ जितनी अधिक मात्रा में विद्यमान हो उसकी कविता में उतनी ही शक्ति ॥ भा जाती है । जैसे—

पिय के जितुरे मिट्टे पस नन न कर्तुं छुस्त ।

बरनि विष्यु कीवति फिरतु एमी भंभूरे पस ॥^२

स्वच्छ-संरक्ष भाषा इस सतसई की पारिबी विजिठता है । बृन्द ने अपने पाश्चित्य प्रदर्शन के लिए न कही भाषा को दुकद बनाया है न कूट पद्यों की रचना की है । सहज सुबोध भाषा के कारण ही इस सतसई का संकड़ो दोहे अचिहित प्रामाण्य तक को कच्छ है ।

इस सतसई की छठी विद्यपता है—कवियों तथा कोटोक्तियों का सुन्दर प्रयोग । अनेक कवियों और कहावतों का बृन्द ने ऐसा सुकविपूर्ण प्रयोग किया है कि वे अस्वाभाविक और टूटी हुई नहीं लगती । यह भी असम्भव नहीं है कि बृन्द के द्वारा प्रयुक्त अनेक सुनिर्घा ही कवियों के कर्म में प्रथमतः हो गई हों । एक-दो उदाहरण इत्यम्—

भाप बुरे बप है बुरे धसे धतो बप जानि ।

तजत बहेरा छाँड़ छप महत भाप की धानि ॥^३

एक भेव के घासरे जाति बरन छिप पात ।

ज्यों हाथी के पाँच में सब की पाँच समात ॥^४

सतसई की सातवीं विशेषता है—सुन्दर कल्पनाएँ । बीच तो प्रत्येक मौखिक कृत्यान्त में कवि की कल्पना-कृतकता का कुछ-न-कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है परन्तु कहीं-कहीं तो कल्पनाएँ इतनी उत्तम हैं कि हृदय हर लेती हैं । जीवनमयक सोच जानने ही हैं कि मछली खाते के बाद गूब प्यास लगती है । इत तत्त्व पर बृन्द की अनुभावना देखिये—

मैमी प्रीत न छाँड़हीं, होत न प्रथ त होत ।

मर परे हूँ छदर में बस बाझत है मीन ॥^५

एक भाष्य दोहे में कहावत और कल्पना का सुन्दर मिश्रण देखिए—

यह कहवत बीसो करं तसो पाव सोय ।

धीरम को भावे कर भापी कहियस सोय ॥^१

एत धीर भाव—यद्यपि रघु-परिपाक के बिचार से बुन्द सतसई विरोध महत्त्व
बुलं नहीं है तथापि इस में ऐसे बोहू बहुत-ही बोड़े हैं जिन्हें पद्यमात्र कहा जा सके ।
अधिकतर बोड़े भावपूर्ण तथा सहृदय पाठकों के मन में संतोष सहिष्णुता नम्रता,
भय डरम शोक, उत्साह आदि भावों के उच्चार में समर्थ हैं । जैसे—

द्विय संतोष विचारिये होय सु सिख्यो नसीब ।

जान गुर जान कसीर सौ मानत रही गरीय ॥^२ (संतोष)

नीति अनीति बड़े सही रिश जरि बेत न गारि ।

भुगु डर बीनी सात की कीनी हरि हनुहारि ॥^३ (शामा)

सोचन के अपबाह को डर करिये बिल रन ।

रघुपति सीता परिहरी तुलत रजक छे बेन ॥^४ (भय)

बनी को रंज पपीरिठा, समुह पार हूँ जाय ।

जौ न बस ती पदइ हू पंकुडु बने न पाय ॥^५ (उद्यम)

खोराजर की होति है सजके सिर पर राह ।

हरि बकमनि हरि लं पयी बैबत रहे सिपाह ॥^६ (उत्साह)

भाषा—यन् सतसई को भाषा की सुबोधता और स्वच्छता तथा उसमें कवियों
योग्य श्लोकवियों के सुप्रयोग के सम्बन्ध में पीछे कह ही चुके हैं । इन की भाषा का
एक अन्य प्रसङ्ग गुण है—समाहार-शक्ति । यह गुण इस में बिहायी बिलगता तो शक्ति
नहीं होता फिर भी इसकी मूलक इनके अनेक बोहों में स्पष्ट दिखाई देती है—

भले-भले बियिना रचे वं सरोय सय कीन ।

कामयेनु पतु कठिन मनि बनि जायी ससि धीन ॥^७

सतसई श्री भाषा वच है जिसमें संस्कृत के उत्तम शब्द भी पर्याप्त हैं । अरसी,
बरसी आदि भाषामों के शब्द हैं तो सही परन्तु छोड़े और उनका प्रयोग भी प्रायः
तत्काल रूप में किया गया है जैसे—सुत्यास (सुगहास) अपडोस (अष्टसोस) ।
कहीं-कहीं उत्तम रूप में प्रयुक्त तद्दीर्घ हिमायत आदि भारी भारी बिदेसी शब्द लट-
कते हैं । इसी प्रकार एकाव स्पस पर समूह का अधिकतम पद और कह भी बिदेसी
शब्द के साहचर्य में, विचित्र सा लगता है—

प्रभु सी बात बुरी न तउ करिये धरज मुयेन ।

बकिमनि अस्तुता लिखी हरि कहा जानत हेन ॥^८

अभयानुप्रास तथा अस्पष्टता को अधिकतम रखने के लिए एकाव स्पस पर शब्दों

१-२. सतसई सत्क, बुन्द सतसई बोहा २०२, ७०३, १११, १३८, १११, २६८,
१४०, १७७

को विद्वान् भी किया गया है जैसे—'बचन' को 'बचान' और 'तनुज' को 'तनु' ।^१

सतसई के अधिकतर शोहों में धर्मिबा का ही प्रयोग दिखाई देता है । समझा और व्यंजना व्यवहृत तो हुई हैं परन्तु बहुत भी कम । जैसे—

क्यों-क्यों तुटे अमानपन क्यों-क्यों प्रेम प्रकास ।

जैसे केरी धाँव की पकरत पके भिन्नत ॥^२ (समझा)

इन को मानुष जन्म से कहा किन्हीं मगबान ।

सुखर सुख बोल न सके, से न सके पनवान ॥^३ (व्यंजना)

यहाँ प्रथम दोहे में मिठास पकड़मा^१ का सव्यार्थ है माधुर्य से प्रयुक्त होता तथा द्वितीय दोहे में व्यंग्यार्थ यह है कि बिठा क बिना सौन्दर्य तथा दाम के बिना पन व्यक्त है ।

विधान और छन्द—सतसई की रचना मुक्तक शोहों में की गई है । कवि ने शोहों को छन्द-सात्म की दृष्टि से निर्दोष बनाने का पूर्ण उद्योग किया है और इस बात में उसे सफलता भी मिली है । यद्यपि कहीं-कहीं एक ही विषय पर कवि ने पुराबिक शोहों की रचना की है तथापि धर्म की दृष्टि से कोई भी बाधा बुरे पर निर्भर नहीं है ।^४

शैली—सतसई में मुख्यतः दृष्टान्त-शैली का प्रयोग किया गया है । शोहों के प्रथम दस में कवि नैतिक तथ्य का उल्लेख करता है और बुरे दल में अत्यन्त ब्य-युक्त दृष्टान्त द्वारा उसका समर्थन । उसके बाद ऐतिहासिक शैली का प्रयोग आया है । उपरोक्तानक शैली का भी कुछ उन्ने-गिने शोहों में प्रयोग किया गया है । छपर उठत शोहों में ये शैलियाँ सहज ही देवी जा सकती हैं ।

धर्मिकार—धर्मिकारों की दृष्टि से भी सतसई महत्त्वपूर्ण है । प्रायः प्रत्येक पत्र एक या बुरे धर्मिकार से अलङ्कृत है । यों तो तीनों प्रकार के धर्मिकार इतनी शोभा सृष्टि कर रहे हैं परन्तु धर्मिकार की अपेक्षा ब्य दो का प्रयोग अधिक है ।

(क) धर्मिकारों में धमनास साटानुवास भीष्मा और यमक का प्रयोग अधिक दिखाई देता है । जैसे—

बोह मगताम रह्यु है भी ली धाम न होय ।^५ (विमानुवास)

मान-पिता के दल के पुत्रपति मग्य प्रसार ।^६ (ब्यनुवास)

नम तहाँई ज्यों पताक बेह तहाँ घाय ।^७ (साटानुवास)

जहाँ लनेही तह रहत जमत-अमत्त मन आव ।^८ (भीष्मा)

जो य जो दो दोष्य द्यहूँ धामि न होय ॥^९ (यमक)

(ग) धर्मिकारों में प्राधान्य दृष्टान्त और धर्मिकारणता का है । इनकी प्रधानता का कारण यह है कि कवि ने प्रविणय नैतिक तथ्यों को इनकी सहायता से पुष्ट तथा समर्थित कर हृदयगत करान का उद्योग किया है । कारकमाणा तथा सार

१२ सतसई सपास, पृष्ठ सपास देहा १२८, १२८, १४२ ३०१ २०२ तथा

१८२ १८४ ४२० ६६६, ६४६ ६४६, ४०४

नामक भ्रुकतामूमक घसवारों में भी बगद की बिद्यप म्बि सदिठ होती है। उपमा उल्लेखा परिपुलि बिदेपोकिन् निबिठि घादि घतवार भी छिपुट रूप से प्रमुकउ दिने मए हैं। जैसे—

कल-कल घम्यास के दङ्गलि होत सुमान ।
 रसरी घासत कात सँ सिन पर परत निगत^१ ॥ (दृष्टान्त)
 पङ्क जो हँगाय म्पूरी हँसी कसह को मूस ।
 हाँसी ही तँ हू गदो पून बीरप निरमुन ॥^२ (घर्षान्तरन्यास)
 बङ्क को कपनि सब सपु दिवागत घनत ।
 बधि जल घन, घन जल परत, घर जस जग दिवसत ॥^३ (कारणमासा)
 प्प-एट को सपु है जो गात दसवन्त ।
 बसए कानस घन्सहि परन सारप नु पपल मरंत ॥^४ (सार)

(प) उभयामकार—उभयामकार में य सकार की घनता म्पृष्टि म्बिन म्बिठि होती है। म्बिपुठर पयों में दृष्टान्त वा घर्षान्तरन्यास ठा है ही एकाव घसवार धीर भी घा ही जाडा है, इमभिए उभयामकार भी प्रकुर है। जैसे—

सुग हू धे म्ब घूक तँ हुरयो जापक बाहि ।
 बापुनू है कहु म्गिण्ही पवन बड़ापत बाहि ॥^१

बोहे में अनुमास म्बिरेक धीर उल्लेखा के मियस से उभयामकार की संमुष्टि है।

गुल—सतसर में प्रसाव मापुय धीर घोज तीनों ही गुण पाए जाते हैं। प्रसाव प्रबल है मापुय पर्याप्त है धीर घोज मूल है।

दोष—बुद ने कानी में घाय विपयों के साथ ही काव्यकता का भी बिधिबत् म्बयन बिमा या इसमिए उन्होमे इसे निबोध बनाने का मरसक प्रमल क्रिया है। किर भी कुछ इने गिने दोहों में बटकने वाली बाते भी बिद्यमान हैं। जैसे—

✓ बल बल सों कहिय नहीं पूड क्यहूँ कति मेरा ।
 मी फँस जग बाहि गयो बस पर मूँ ब कि लेल ॥^१

बोहे में 'बूँद कि तस' स्थान पर 'तिस की बूँद' होना चाहिए। कमबिकरु होने से दोहा 'मकमल' दोष से दूषित है।

भसे-बुरे पुर जल बबन, तीपठ क्य न धीर ।
 राज-काज को छँडि क बले निपिन सपुदीर ॥^२
 गुब दय जोय घनीपठु कतिए भन बिसराम ।
 राम राज-सुघ छँडि कँ दनवाली मए जाय ॥^३

उक्त दोहों में म्बिपिठ विषय की पुनरुक्ति की म्बेसा दृष्टान्त की पुनरुक्ति

१- सतसर सप्तक, दूध सतसर, बोहा ३१०, २७४, ७०१, २६४, १४८, १४१, ६१७ ६१७

कहीं अधिक सुमती है। वो चार खसों पर दुष्टान्त मस्सीस और सुरभि के प्रतिकृत प्रतीत होते हैं—

हीन-मिरच बीरो नही हय मर घर मिल केत ।^१

धर्मो तिय भूषण साज है, निमज सुरत की डेर ॥^२

तो सोभा पावे नहीं चार गर्भ जुत मारि ॥^३

एकाध स्वप्न पर हतवृत्तव दोष भी भा ही गया है—

मङ्गल की सपति सर्व सपु विमर्तत अनन्त ।^४

बोहे के प्रथम चरण के आरम्भ में अणु की विद्यमानता ने यति को दूषित कर दिया है।

बुन्द और पूर्ववर्ती कवि—बुन्द-सतसई के अध्ययन से सिद्ध होता है कि यद्यपि कवि ने धार्मिक तथैव विषयों तथा दुष्टान्तों को अपनी रचना में निबद्ध किया है तथापि उनके दर्जनों बोहे पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं से प्रभावित हैं। यह कहना तो कठिन है कि उन्होंने प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का भी अध्ययन किया था या नहीं परन्तु उनके संस्कृत और हिन्दी-भाषा के सम्बन्ध में ठीक भी सम्यक् नहीं है। उनका जीवन वृत्त तथा रचनाएँ इस कथन का समर्थन करती हैं। इन पर पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव को दो भागों में धनापाठ विभक्त कर सकते हैं—

(क) संस्कृत कवियों का प्रभाव (ख) हिन्दी-कवियों का प्रभाव

(क) संस्कृत कवियों का प्रभाव—यह तो ऊपर कह ही चुके हैं कि बुन्द ने धर्म विषयों को पुष्प करने के लिए रामायण महाभारत और पुराणों की घटनाओं का आशय लिया है। उनके प्रतिरिक्त जैसा कि निम्नलिखित पदों से सिद्ध होता है बुन्द को आणव्य-नीति शिरोपदेश मर्त-दुष्ट नीतिघटक तथा संग्रह-धर्मों का भी अच्छी मानना ही होमा।

यह श्लोक भी प्रिविध है—

१ संस्कृत-पद्य का आधारध अनुवाद

२ संस्कृत-पद्य का विस्तार

३ संस्कृत-पद्य का संक्षेप।

४ सन्मत्त दन आधारध अनुवाद

नमस्यतं सारोर्माप्यं गतवा पश्य अनुरघमीनु ।

टिछन्ती धारसारध अन्वसितच्छन्ति पादपम ॥^१ (आणव्य)

धति ही सरस म हूमिजं डेरती ज्यो दन राज ।

तीये-तीये छ-विय बोधे तव वप पाव ॥^२ (बुन्द)

१४ सतसई सप्तक, बुन्द सतसई बोद्धा २०६ ६४५ ५२६, ७०१

२. आणव्य नीति बुन्द ३२।१२

३. सतसई सप्तक, बुन्द २६६।१४६

बुद्ध न माने गौह म शासनय-नीति क पत्र का अधिकम धनुबाध प्रस्तुत कर दिया है। भाव ही समान रहा है जगता धनिष्मन्वित क्रम भी समान है।

१ संस्कृत-वच का नित्यार

माता धनु पिता बरी येन बाधो न पाठितः ।

न धोमते समानध्ये हंसनध्ये बधो यथा ॥^१ (नारायण पण्डित)

बपुर समा में बूर नर सोभा पाठ नाहि ।

बसें बउ सोमित मही हस मइली नाहि ॥^२ (बुम्ब)

हितोपदेश के रूपविधा न तो पुत्र को शिक्षित न करने वाम माता-पिता को धनु बहा है क्याकि बह अत्र वातक उमा म बेना ही घोना-हीन होता है जैसा हर्मों में बगुमा। बुद्ध ने इस पत्र क बेबम उत्तरार्द्ध को—इष्टान्ममात्र को—बिम्बुत कर पूरा बोहा बना शासा है। अब गिधा का दासित्व माता-पिता पर ही नहीं रहा प्रत्येक के अपने कर्मों पर भी था पड़ा है।

३ संस्कृत-वच का संक्षेप

भान्नाशस्य दरभदपिच्छतमोभ्तानेगियस्य धुषा

दुराणुमिदरं स्वय निपठितो नस्त मुपे भोगिकः ।

तुपस्तलिगिनेन सत्वरत्नसो संगेव पाठः पना

स्वस्पासिच्छल एवमेव हि परं बुद्धो बाये पारणाम् ॥^३ (मनु हरि)

दुरा-मुपु रीने फों बई है धापुर इहि ठाठ ।

अहि-करंउ मूसा पयो मलि निधस्यो उहि पाठ ॥^४

दोनों पदों में वच की बाबतता तथा मतीय की महत्ता ही प्रतिपादित है। जो बुष्टान्त प्रस्तुत किया गया है वह भी एक ही है। परन्तु बुद्ध ने दाह की अस्पाकारता से बिना होकर मनु हरि के पद्य में बणित सप की दुबलता निराशा तथा बुद्ध के उद्योग का उन्मथ न कर संस्कृत-वच का हिन्दी-संक्षेप प्रस्तुत किया है। उक्त विवचन से हम इस निष्पत्ति पर पहुँचते हैं कि बुद्ध सदा धीर सबत्र संस्कृत के पदों का अन्तरा-

१ हितोपदेश पृष्ठ ८।३८

२ सतसई एष्टन, पृष्ठ ३०४।२३१

३ वातकत्रयम् पृष्ठ ४६।८२

अर्थ—एक सर्प पिठारे के नीचे बह हो जाने के कारण अत्यंत निराश और भूख से दुर्दम पड़ा था। रात्रि की एक बुहा उस पिठारे में छिप कर स्वयमेव पसके मुँह में धा पड़ा। बुहे के नाँस से तुप होकर धांप उसी मार्ग से बाहुर निकल गया। हे मनुष्यो संगीयपुत्र बडे र्हो क्योंकि बुद्धि या धाम का मुख्य कारण बँध ही है।

४ सतसई सप्तम पृष्ठ ३१४।३६१

शुभिका पैसाची धनप्रपञ्च और सिन्धी भाषाओं से सुपरिचित होने का पता चलता है। ये जीवन भर धर्म प्रचार तथा साहित्य-सर्जन में मग्न रहे। बीकानेर के महाराज धर्मसिंह तथा मुबारसिंह जैसमेर के राजस धर्मसिंह जोधपुर के महाराज जयवंत सिंह तथा इतिहास-प्रसिद्ध सिन्धी और दुर्गावास इनके प्रयत्नक थे। बीकानेरजरीय में सं० १७७६ में एक पत्र में इनकी इस प्रकार प्रशंसा की—

‘सब गुण ज्ञान विज्ञेय विराजै कबिगत रूपरि धन धर्म पावै ।

धर्मसिंह भरखीतस माहि, पंडित योग्य प्रशंसि बस ताहि ॥

८० ८१ वर्ष के वय में इनका देह-वात हुआ।

कृति-परिचय—धर्मसिंह जी के २३ छोटे-मोटे ग्रंथ^१ उपलब्ध हुए हैं जिनमें से नीति के संघ निम्नलिखित हैं—

१ पुरु-सिन्धु दृष्टान्त छत्तीसी

४ प्रास्ताविक कुंडलिया बाबनी

२ विषय छत्तीसी

५ छप्पय बाबनी

३ धर्म बाबनी

६ स्फुट पद्य ।

उक्त छह रचनाओं में से प्रथम तथा द्वितीय हमें प्राप्त नहीं हो सकीं। छेव चार का विवरण इस प्रकार है।

धर्म बाबनी^२—इस बाबनी की रचना धर्मसिंह ने बीकानेर-राज्य के रिनी नगर में संवत् १७५२ में की थी—

‘सौत सतरे पचोस कस्तो पदि भौमि शोस

चार है विमत चर धार्मि बधाबनी ।

गर रिनी की निरखि नित ही बिजे हरप

कोनी तहाँ धर्मसीह नाम धर्म यापनी’ ॥^३

प्रश्न होता है जब धर्मसिंह ने अपनी प्रथम दो बाबनियों के नाम उनमें स्पष्टरूप छन्दों के अनुसार ‘कुंडलिया बाबनी’ और ‘छप्पय बाबनी’ रखे तब इसका नाम कबित्त तथा सर्वथा कि प्रयोग के कारण कबित्त या सबैया बाबनी क्यों नहीं रखा। हमारे विचार में इसके दो कारण हैं। प्रथम इसमें धानपुण्य आदि धर्मदृष्टियों से ही जीवन की सफलता मानी गई है उनके समाज में विष्टता। द्वितीय जैसा कि ऊपर उद्धृत पद्यांश से सूचित हुआ है जहाँकि इसका नाम अपने नाम पर रखना उचित समझा। प्रथम की अपेक्षा भी द्वितीय कारण प्रबल प्रतीत होता है क्योंकि कृति में धर्म की अपेक्षा नीति का प्राधान्य है और बादबय की अपेक्षा जीवन में साहित्य-लेखियों में अपने नाम

१ मोतीमाल मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २८०

२ धर्म बाबनी की हस्तलिखित प्रति बीकानेर के धर्मप्रज्ञा सम्प्रदाय में सुरक्षित है।

३ धर्म बाबनी, पद्य ३७

बुद्ध ने अपने दोहू म पाण्डित्य-नीति व पत्र का प्रबिम्ब अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है। भाव ही समान रहा है उनका अनिर्मित क्रम भी समान है।

१ संस्कृत-वच का निस्तार

माता शत्रु पिता शरी येम शत्रो न पाठिः ।

न शोभते समाप्ये हसमप्ये बहो यथा ॥^१ (नारायण पण्डित)

शत्रु समा में शूर नर सोमा पान्त नाहि ।

बहो बह सोनित नहीं हंस मंडली माहि ॥^२ (बुद्ध)

हितोपदेश के रचयिता ने तो पुत्र को शिक्षित न करने वाला माता-पिता को शत्रु कहा है क्योंकि वह जब बालक समा में बैठा ही पोभा-हीन होता है जैसा हंसों में बगुना। बुद्ध न इस पत्र के केवल उत्तरार्द्ध को—दृष्टान्तमात्र को—बिस्मृत कर पूरा दोहा बना वाला है। जब पिता का दायित्व माता-पिता पर ही नहीं रहा प्रत्येक के अपने कर्मों पर भी था पड़ा है।

२ संस्कृत-वच का संक्षेप

गण्डाश्रम्य करणदिम्बिततमोम्सनिग्धिवस्य क्षुधा

हृन्नापुनिकरं स्वयं निपतितो नरत मुप्ये भोगिम ।

तुप्यस्तस्मिन्निनेन सस्वरमसौ सनेप यातः पना

स्वस्यास्तप्यस्त बंधनेव हि परं बुद्धो भाये कारणम् ॥^३ (मत्त हरि)

कुल-मुञ्ज दीप्ये धीं बई है शत्रु इहि ठाठ ।

अहि-करंय मुता पयो मदि मिन्नस्यो जहि याठ ॥^४

शोभी पत्नी में बंध की बानवता तथा सरोप भी महत्ता ही प्रतिपादित है। जो दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है वह भी एक ही है। परन्तु बुद्ध ने दोहू को अस्वाकारता से विवक्षित होकर भर्तृहरि क पद्य में वर्णित सन की उन्नतता निराशा तथा बुद्ध क उद्योग का उन्मत्त न कर संस्कृत-वच का हिन्दी-संक्षेप प्रस्तुत किया है। उक्त विवचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बुद्ध सदा और सर्वत्र संस्कृत के पद्यों का अन्वय-

१ हितोपदेश पृष्ठ ८१३८

२ तदसई सप्तक पृष्ठ ३०४१२३१

३ शतकत्रयम् पृष्ठ ४१८२

धर्म—एक सप पिटारे के नीचे बंध हो जाने क कारण धर्मत निराशा और भुज से बुद्धत पड़ा का। रात्रि को एक बूहा उस पिटारे में छिद्र कर स्वयमेव उसके मुँह में जा पड़ा। बूहे के मोठ से तुप्य होकर सोप उसी भाव से बाहर निकल गया। हे मनुष्यो, संतोषपूजक बँटे रही क्योंकि बुद्धि या लय का मुख्य कारण बंध ही है।

४ शतसई सप्तक पृष्ठ ३१४१२३१

कही प्रथिक् कुमती है । दो-चार स्वसों पर कृष्णान्त घसीस थीर सुखि के प्रथिक्व
प्रवीठ होते हैं—

हीण-निरख बीरो रहै हग भर भर तिल सेत ।^१

ज्यों छिप भूपन साज है, तिलज सुरत की बेर ॥^२

सो सोमा पार्य ज्यों चार मर्म कुत मारि ॥^३

एकाम स्वस पर हतबुतक दोष भी मा ही मया है—

पश्ये की सपति छवै मयु जिससंत बनस ।^४

दोहे के प्रथम चरण के आरम्भ में 'पगल' की विचभामता ने गति को कृचित
कर दिया है ।

बृन्ध कीर पूर्ववर्ती कवि—बृन्ध-सतसई के अध्ययन से सिद्ध होता है कि मध्यम
कवि ने धनक तबीन विषयों तथा कृष्णान्तों को अपनी रचना में निबद्ध किया है तथापि
उनके शब्दों बोहे पुबंपती कवियों की रचनाओं से प्रभावित है । यह कहना तो कठिन
है कि उन्होंने प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का भी अध्ययन किया था या नहीं परन्तु
उनके संस्कृत और हिन्दी-ज्ञान के सम्बन्ध में तनिक भी शक्य नहीं है । उनका जीवन
काल तथा रचनाएँ इस कथम का समर्थन करती हैं । इन पर पूर्ववर्ती कवियों के प्रभाव
को दो भागों में समायोज्य विभक्त कर सकते हैं—

(क) संस्कृत कवियों का प्रभाव (ख) हिन्दी-कवियों का प्रभाव

(क) संस्कृत कवियों का प्रभाव—यह तो ऊपर कह ही चुके हैं कि बृन्ध ने
कर्म विषयों को पुष्ट करने के लिए रामायण महाभारत और पुराणों की शतशतों
का अध्ययन किया है । उनके प्रतिनिधित्व जसा कि निम्नलिखित पद्यों से सिद्ध होता है
बृन्ध को बालमय-नीति हितोपदेश धर्तु-कृत नीतिशतक तथा संग्रह-ग्रन्थों का भी अच्छी
मातृता ही होया ।

यह श्लोक भी विधिय है—

१ संस्कृत-यत् का अक्षरान् अनुवाद

२ संस्कृत-यत् का विस्तार

३ संस्कृत-यत् का संक्षेप ।

४ संस्कृत का अक्षरान् अनुवाद

मातृमत्तं सरसीर्भाष्यं यथा पद्य धनस्यसीन् ।

टिप्पण्ये सरसासत्रं कृष्णास्तिष्ठन्ति पारवरा ॥^५ (बालमय)

अन्नि ही सरत न हूनिरे, देसी पदी दन राय ।

सोय-दीये टैरिरे बीसो तव यत् प्राय ॥^६ (बृन्ध)

१४ ताराई सप्तम, पृष्ठा १११, बोहा २०६ ६४५ ५२६, ७०१

२. बालमय नीति, पृष्ठा ३९।१२

३. ताराई सप्तम, पृष्ठा २६१।१४६

ब्रह्म ने अपने दोहे में प्राणपय-मीठि के पत्र का अतिक्रम अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है। भाव ही समाप्त रहा है, उनका अनिर्धारित क्रम भी समाप्त है।

१ संस्कृत-वच का विस्तार

माता समु पिता बरी येन बरपो न पाठिः ।

न सोमो ह्यसामध्ये हंसमप्ये वको यथा ॥^१ (भारतमण्डल पण्डित)

बहुर सना में कूर गर सोभा पात्त माहि ।

अंतें बर सोमिस्त महीं, हंस मइनी माहि ॥^२ (पुण्ड)

द्वितीयोदय के उच्यविता में ता पुत्र का निहित न करने बाम माता-पिता को अनु कहा है क्योंकि यह प्रथम बासक मना में बसा ही प्राणा-हीन होता है तथा हंमों में अनुभा। ब्रह्म ने इस पत्र के बेबस उत्तराद्य को—हृत्पान्नामात्र को—विस्तृत कर पूरा बोधा बना बना है। अब विद्या का दासित्व माता-पिता पर ही नहीं रहा प्रत्येक के अपने कर्मों पर भी था पत्र है।

३ संस्कृत-वच का संक्षेप

मन्नाशस्य करणं पिच्छिततनोमर्त्तान्त्रियस्य सुपा

दुत्तागुणिवरं स्वय निपदिता नम्रं मूल भोगिन ।

तुष्टस्तन्पिपितेन सरदरन्मौ सैगव पात परा,

स्वस्वास्तिष्ठन्न दमय हि परं बुद्धी शय कारणम् ॥^३ (मत्र हरि)

दुष्ट-मुक्त शीत शो बई है पागुर इहि टाट ।

अहि-करद मूल पर्यो नदि निपत्ता उहि पाट ॥^४

बलों वर्यो में दीव की कथना तथा संताप की महता ही प्रतिपादित है। जो बुद्ध्यात् प्रस्तुत किया गया है वह भी एक ही है। परन्तु ब्रह्म न दाह की अन्वयात्मका स विषय शक्ति, नर्तक के पद में अग्नि मय की सुसंपत्ता निरागा तथा बुद्ध न सदाय का उच्यय न कर संस्कृत का द्वितीयोदय प्रस्तुत किया है। उक्त विवरण में ब्रह्म मय विषय पर दर्शक है द्वि ब्रह्म मय शीत मय संस्कृत के पदा का प्रत्यय

धनुबाद ही प्रस्तुत नहीं करते अपनी कल्पना की सहायता से मूस पक्षों का संक्षेप या विस्तार भी कर लेते हैं उनमें कुछ भीषणता माने का भी उद्योग करते हैं।

(क) हिन्दी-कवियों का प्रभाव—जैसे बृन्द सरहृष्ट के कवियों से प्रभावित हुए हैं वैसे ही हिन्दी के कवियों से भी। मूरदास तुमसीबास रहीम बिहायी साहि की रचनाओं का प्रभाव इनके अनेक दोहों पर स्पष्ट सक्षिप्त होता है। जैसे—

(क) ऊपों, मन माने की बल ।

दास दुहारा छाँड़ि अमृत फल बिघ कीरा बिल जल ।

‘मूरदास’ का मन जासों सोई साहि सुहात ॥^१

मूरदास के इस पद के आशय को बृन्द ने जिन अनेक दोहों में व्यक्त किया है उनमें से कुछ एक में भाव साम्य के अतिरिक्त दृष्टान्त-साम्य तथा भाषा-साम्य भी सक्षिप्त होता है जैसे—

जो जा कौं प्यारी नय, सो तिहि करल वसान ।

जसे बिय को जियमज्जी, मानन अमृग सनान ॥^२ (दृष्टान्त साम्य)

जा कौं जा सो मन लखी सो तिहि आव वाय ।

भास भस्म बिच भुंज जिय, तौऊ सिबा सहाय ॥^३ (भाषा साम्य)

(ख) का पर्वा सब ऊपों बुझाने । समय चुकि पुनि का पछजाने ॥^४ (तुमसीबास)

शोभी अदहर की नकी जासौं सुबरं काम ।

छेती चुने बरिसयो मन सो फोने पान ॥^५ (बृन्द)

बृन्द ने दृष्टान्त को तो मयावत् रहने दिया है परंतु भाव-शेख को संकुचित कर दिया है। गोस्वामी जी की अर्द्धांसी तो प्रायिक कार्य में समय का ध्यान रखने का निर्देश करती है परंतु बोहा भाव के विषय में ही सावधान करता है।

(ग) जिमा अनेक को बाझिए, छोडेग को जत्याय ।

का ‘रहीम’ हरि सो घदयो जो भुगु मारी सात ॥^६ (रहीम)

नीति अनीति बड़े सहै, तिस अरि बेत न वारि ।

भुगु जर हीमी सात की, कीमी हरि मनुहारि ॥^७ (बृन्द)

मब दृष्टान्त तथा भाषा का प्रभाव तो स्पष्ट ही है परंतु द्वितीय दोहे के अनुपम अर्थ से हरि का जो पौरुष व्यक्त होता है उद्योग अथवा बल को ही है।

१ मूरदास संघ २, पृष्ठ १५२८

२ ३ सतसई सप्तम, पृष्ठ सतसई, पृष्ठ २८७।७ २६४।६०

४ कविता कौमुदी भाग १ पृष्ठ २८७

५ सतसई सप्तम, बृन्द सतसई पृष्ठ २८८।१८

६ कविता कौमुदी भाग १ पृष्ठ ३४०।१२४

७ सतसई सप्तम, पृष्ठ सतसई, पृष्ठ ३३७।६६१

- (घ) जयभासा छाने तिसक, छरै न एकी कामु ।
 मन रांघ रांघे बुपा रांघ रांघे रामु ॥^१ (बिहारी)
 उदर भरन के कारणे प्राणी करत इसाज ।
 रांघे बांध रन निरै, रांघे बाज प्रजाज ॥^२ (बृन्द)

दोनों दोहों का नाबर्बरपन तो स्पष्ट ही है परन्तु इस यात का प्रत्याख्यान करना सरल नहीं कि बृन्द के द्वितीय दस की भाषा बिहारी से प्रभावित है।

उपर्युक्त विवेचन से जहाँ यह स्पष्ट है कि बृन्द भाषा भाषा और दण्डान्त के सत्रों में पूर्ववर्ती कवियों के कुछ अंश तक ऋणी है वहाँ यह भी निर्विवाद है कि जहाँसे इस प्रकार के दोहों में अन्वय अनुकरण नहीं किया कुछ नवीनता मान का भी उद्योग किया है।

अन्त में इतना ही कहना सफेद होगा कि बृन्द सतसई विधेय सरसता के अभाव में भी व्यावहारिक नीति की प्रकृता सुन्दर दृष्टान्त सूक्ष्म निरीक्षण, लोकोपितियों के प्रयोग मनोरम कल्पना तथा मार्मिक अभिव्यक्ति के कारण हिन्दी के नीतिकार्यों में प्रमुख स्थान रखती है। यही कारण है कि लोकप्रियता की दृष्टि से बिहारी-सतसई के बाद इसी का नाम मिया जाता है।

'हितोपदेश' नाम से युक्त होने के कारण बृन्द की दो अन्य कृतियाँ—'हितोपदेशाष्टक' और 'हितोपदेश सभि'—नीतिकार्यों का आभास देती हैं। पन्तु इनमें से प्रथम साम्प्रदायिक रस की रचना है और द्वितीय संस्कृत के 'हितोपदेश' की अनुपकथा का पद्यानुवाद-मात्र। अतः इनकी रचना यहाँ अनावश्यक है।

७ चर्मसिंह

वीरवीर—इसका बच, माता-पिता, जन्मस्थान तथा चर्मसिंह सभी एक विरिध नहीं हुई। बीकानेर के कृपाचन्द मूरि के आसनभार में इसकी शक्ति 'चोल्' की ओर प्रति मुद्रित है उससे इसका जन्म सन् १७०० में प्रमाणित होता है। रचनाओं में राजस्थानी के बाहुल्य से इसके राजस्थान निवासी होने तथा चर्मसिंह नाम से कुसीन होने का भी अनुमान किया गया है।^३ इन्होंने १३ वय की अवस्था में ही जिनरत्न मूरि से जैन-बीया ग्रहण की और चर्मसिंह से चर्मवर्धन कहलाने लगे। पित्र्यग्रहण की से इन्होंने जैन धारण व्याकरण न्याय बौद्ध धारि विषयों का अध्ययन किया। राजस्थानों के प्रतिरिक्त इन्हें संस्कृत प्राकृत हिन्दी और पुनराती भाषाएँ का भी अच्छा ज्ञान था। पद्मनाभमय पार्श्वमिन्द-स्वरत्न से इनके मागधी, पेशाधी गोरगनी

१ बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ ६३।१४१

२ सतसई उल्लास युग सतसई, पृष्ठ ३३०।३५६

३ 'राजस्थान' पृष्ठ २ अंक २ (अध्याय १६६३ वि०) में श्री अमरचंद्र नाहटा का राजस्थानी साहित्य और जन कवि चर्मसिंहन' पार्श्वक निदग्ग्य है।

शुद्धिका रीयायी अथवा श्रीर सिन्धी मायाधों से सुपरिचित होने का पता चलता है। ये बीकानेर अथवा प्रहार तथा साहित्य-सर्जन में मग्न रहे। बीकानेर के महाराज धर्मसिंह तथा मुजारासिंह जैसेसमेरु के राजा धर्मसिंह जोधपुर के महाराज अजय सिंह तथा इतिहास-मन्त्रिण शिवा भी श्रीर दुर्गादास इनके प्रसक्त थे। बीकानेरमें १७७६ में एक पत्र में इनकी इस प्रकार प्रशंसा की—

‘सब मुख ज्ञान विशेष बिराजे कविपणु रूपरि धन धर्म नाम ।

धर्मसिंह भरखौलत माहि, पंडित योग्य प्रसति बस ताहि ॥’

८० व १ वर्ष के वय में इनका देह-पाठ हुआ ।

कृति-परिचय—धर्मसिंह जी के २३ छोटे-मोटे ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं जिनमें से नीति के संघ निम्नलिखित हैं—

१ मुह-सिद्ध कृष्णान्त छत्तीसी

५ प्रास्ताविक कुंडलिया बावनी

२ विशेष छत्तीसी

३ छप्पय बावनी

३ धर्म बावनी

६ स्फुट पद्य ।

उक्त छह रचनाधों में से प्रथम तथा द्वितीय हमें प्राप्त नहीं हो सकीं छेप चार का विकरल रूप प्रकार है ।

धर्म बावनी—इस बावनी की रचना धर्मसिंह ने बीकानेर-राज्य के रिनी नगर में संवत् १७२२ में की थी—

‘सौत सतरे पधोस कस्तो धरि नौमि बील,

बार है बियल बंद धारंर बधावनी ।

नैर रिनी की निरलि नित ही विने हरप

कीनी तहूँ धर्मसिंह नाम बने धावनी’ ॥^१

प्रश्न होता है जब धर्मसिंह ने अपनी धर्म की बावनीयों के नाम उनमें स्वरहित छंदों के अनुसार ‘कुंडलिया बावनी और छप्पय बावनी’ रखे तब इसका नाम कबित तथा नईया के प्रयोग के कारण कबित या सर्वथा बावनी क्यों नहीं रखा। हमारे विचार में इसके दो कारण हैं। प्रथम इनमें धानपुण्य धारि धर्मकृत्यों से ही जीवन की सफलता मानी गई है उनके धर्मात् में निष्पत्ता। द्वितीय जैसा कि ऊपर उद्धृत पद्यों से सूचित होता है उन्होंने इसका नाम धरने नाम पर रखा सचित समझा। प्रथम की धरने नाम द्वितीय कारण प्रकृत प्रतीत होता है क्योंकि कृति में धर्म की धरने नाम नीति का प्राधान्य है और बावनीय की धरने नाम में साहित्य-लेखियों में धरने नाम

१ बीतीसाल वैतारिजा राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ २८०

२ धर्म बावनी की हस्तलिखित प्रति जोशानेर के समय में प्रकाशय में सुरक्षित है ।

३ धर्म बावनी, पद्य २७

को स्थायी रखने की कानना स्वामादिक होती है। अस्तु।

धम-बावनी एक मुक्तक रचना है जिसमें देवनामरी की बर्णनासा के चारों क
कम से कवित तथा सबैया छन्दों में पद्य-रचना की गई है। इसमें कुल १७ पद्य हैं।
प्रथम पाँच पद्यों में जैन-वेदकों की प्रायिक प्रथा के अनुसार, देव युव सरस्वती साधु
घादि की बन्दना है। परबर्ती पद्यों में मुनि की ने बया क्षमा शोष मित्र घादि प्रचलित
विषयों के प्रतिष्ठित उद्य गारी कुमटा रीस (स्पर्धा) धनेक दोषों का एक मीठी बाणी
से तिरोमात्र सब संशोप है अथ किसी का भी परिहास अनुचित है। स्वगुण-कमन की
पनाबदमकता घादि विषयों पर भी सुन्दर रचना की है।

यह रचना प्रसाधपूर्ण धमकृत धमभाषा में है परन्तु इस पर राजस्थानी का
प्रभाव भी यत्र-तत्र लक्षित होता है। रत्न रुचन बरपन घादि छन्दों में चारणों
का परिव्यापी के अनुसार द्वित्व चयनों का प्रयोग भी दुर्लभ नहीं। सम्बन्धन सुमधुर
है तथा भाषा का प्रवाह प्रसन्ननीय है। जैसे—

छोरि परम्य जु प्राप्त बेखि के आबर बेह के प्राप्त बीजे ।

मीति ही के बख की मुज की मुज की बुज की मिलि बात कहीजे ॥

दूर रहीं मिलि मीठी ही मीठी बीज व बीठी तहाँ पठईजे ।

साब यहै प्रमसीज कहै भैया बाहु कर टाकी बाकरी कीजे ॥^१

रचना में तद्भव छन्दों का बाहुस्य है। विदेशी भाषाओं के बीज, सुस्वात
घादि कुछ ही छन्द दिखाई देते हैं और वे भी तद्भव रूप में। सुन्दर कुमठी हुई
कहावतों का सुप्रयोग इस रचना की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है। वे कहावतें
दो प्रकार की दिखाई देती हैं—१ परम्परागत २ कविकृत। यथा—

१ परम्परागत कहावतें—

(क) बेकरत काज जुरे सब ही जम नाचन पैठी तो मू घट कंसो ॥^२

(ख) मीन व मेख जहाँ प्रम देखे वे कर्म की रेत हरे नहीं टारी ॥^३

१ कविकृत

(क) मुरख को सोज दे के मू ही बल जोगो है ॥^४

(ख) बेब को है एक देव घबे कुं पसक है ॥^५

सार यह कि साब भाषा छन्द प्रनकार घादि सभी दृष्टियों से रचना
प्रसन्ननीय है।

कुंडलिया बावनी—इस बावनी में कुल १७ कुंडलिया छन्द हैं। अन्तिम
कुंडलिया से विदित होता है कि कवि ने इसकी रचना सन् १७३४ में जोधपुर में की—

१ २ धर्म बावनी, पद्य २३ ४४, ४६, ४८, ३४

३ कुंडलिया पावनी को हस्तलिखित प्रति अमर बन पंचालय, बीकानेर, में सुरसिंह
है। पद्यसंख्या जती प्रति के अनुसार ही गई है।

प्रस्ताविक प्रतिष्ठ दृष्टर योमारण स्तुहीम् ।

सतरं सँ बोतीस जते दिवसे भापीर्ष' ॥ १

पद्यों की रचना 'धर्म-शास्त्री' के समान ही बख्खमासा के वर्णक्रम से की गई है। इसमें सप्त ध्यसन तथा अन्य प्रतिष्ठ विषयों के प्रतिरिक्त पङ्क्तिस, घाठ प्रथ साठ सुन-सुख अन्त-स्वभाव सुख (रूपण) की सम्पदा आदि पर भी पद्य मिलते हैं। रचना की भाषा राजस्थानी है परन्तु इनमें धर्म शास्त्री-या साहित्यिक सौष्ठम दिखाई नहीं देता। अनेक छन्दों में भाषा-संख्या के म्यूनाधिक होने से यति भी अविनस नहीं रही। यह शास्त्री 'धर्म-शास्त्री' के ली बर्ष पश्चात् लिखी गई। इसलिये पाछा तो यह की जाती थी कि रचना अधिक प्रौढ़ तथा सरस होगी परन्तु बात उमटी निकली। हमारे विचार में इसके दो कारण हैं। प्रथम पहले मुनिवर का ध्यान काव्य-निर्माण पर था परन्तु बाद में सोरु-कल्याण मुख्य लक्ष्य हो गया और काव्य रचना पीछे। द्वितीय, मुनिवर कवि-संज्ञा की रचना में जितने क्रयस से उतने धर्म छन्दों के निर्माण में नहीं। एक उदाहरण देखिये—

घट नीरोगी शुभ घरमि पति नहीं रिल भय बात ।

सुपुत्र सुराग कठन्व सुख परमसीह कहँ सात ॥

परमसीह कहँ सात सात पुन जाय न सदृसा ।

बीस घर में बलिद लोक पति मीनँ लहृसा ॥

कुसहृणि मारी कुपुत्र फिरल परबैस तगे फट ।

सब सौँ सुख सातमौ घली, पति रोग रहँ घट ॥ घट नीरोगी०*

इन कुंडलियों के विषय में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। इत्यतिरिक्त प्रति में प्रत्येक कुंडलिया की समाप्ति के पश्चात् मात्रो टेक के रूप में, कुंडलिया के प्रथम कुछ पद्यों की पुनरावृत्ति की गई है। इससे यह अनुमान होता है कि कदाचित् कुंडलियाँ भी पद्यों के समान गाई जाती थीं।

उत्पम शास्त्री—राजस्थानी भाषा में लिखित इस शास्त्री की रचना धर्मसिंह से गंवत् १७५३ में बीकानेर में की। इसमें नीति की बातें सामान्य छण्यों में कही गई हैं। काव्य सौष्ठम की इसमें भी 'कुंडलिया शास्त्री' के समान ही कमी है।

कुटकम पद्य—धर्मसिंह के कुटकम नीति पद्यों में उक्त शास्त्री-मुसल की धरिया कही अधिक सुन्दरता दिखाई देती है और विषय भी अधिक व्यावहारिक हैं। यथा—

दुर सँ पोसाकरार दैलिया तिरवार,

दैलिय क कबील घीर हूँ है कोट पपर ।

मुम्बर सुभैस जाण ताको सटु बँस माने,

दोसँ जो इरिदी दो सदार कहँ कपरा ।

१ कुंडलिया शास्त्री, पद्य ५७

२ कुंडलिया शास्त्री पद्य २५

पीतांबर बेज के समुद्र प्राप बिनी मुता,
 बीली बिय कर कुं बिनीकी हाप कपरा।
 बर्मसो बहै रे नीत ऐसी हूँ संसार रोति
 एक गुर आइमो हजार गुर कपरा ॥^१

धर्मसिंह की जिन चार रचनाओं का परिचय ऊपर प्रस्तुत किया गया है उनके आधार पर सार रूप में यह कहा जा सकता है कि धर्मदासजी और फूटकस पद्य सुन्दर रचनाएँ हैं और शेष दो सामान्य। निम्नलिखित हिन्दी-जगत् को जैन मुनि का कृतज्ञ होना चाहिए जिन्होंने अपनी सरस रचनाओं से हिन्दी-साहित्य का संवर्धन किया।

८. जिनरंग सूरि

जैन मुनि जिनराज सूरि ने विषय जिनरंग की का बीलाग्रहण से पूर्व का नाम रंग विग्रम का। इन्होंने विग्रम की अठारहवीं सती के पूर्वार्ध में प्रबोध बावनी चौभाग्य पञ्चमी पोपाई और रंग बहसरी (वृहार्थ बहसरी) की रचना की। धनुत्रिंशत्पञ्चमसती की हस्तलिखित प्रति हमें बीकानेर के समय जैन पञ्चासय^१ में मिली। इति में बहसरी बोधे हैं जो अष्टात्म तथा नीति का प्रतिपादन करते हैं। सतों की साधियों के सम न प्रायः प्रत्येक बोधे में कवि की छाप 'जिनरंग' विद्यमान है। इति में जगत् की माया ममत्व-त्याग ज्ञानी कपटी और स्त्री का मन बय प्रेमहीन मनुष्य की पशुस्यवा यशस्वी जीवन की ही प्रशंसनीयता मानवीय प्रकृति की अपरिचर्तसतीकता काँटे से भी बँर करला कुछ भोजन वन तथा रमणी से तृप्ति की असम्भवता आदि अनेक विषयों पर प्रशंसा में दोहा-रचना की गई है। कहीं-कहीं रावस्थानी का प्रभाव भी स्पष्ट सङ्गठ होता है। रचना सामान्य कोटि की है परन्तु कुछ बोधे मौलिक तथा अच्छे हैं। कुछ उदाहरण नीचे—

जिनरंग रोटी-नित्र को बीज रोटी बीज।
 बचन नित्र का वचन वे, बीज नित्र को बीज ॥
 ससनेही बयन परेँ निसनेही को मोय।
 सिर के कज को बाधियेँ, नेह बर्षा का होय ॥
 साय रङ्गा साया गया, सिर कर लाया होय।
 साय रङ्गा साया गया लाय न सप्ये कोय ॥
 जिनरंग मीठी गरज है, अबर न मीठी कोय।
 जब निकते है सीजला, रासम आरर होय ॥^२

१ धर्मसिंह के फूटकस पद्य हस्तलिखित रूप में समय जैन प्रपासय, बीकानेर, में सुर लिखे हैं।

२ प्रति संख्या ८०७०, पत्र-संख्या २

३ प्रति संख्या ८०७०, बोधा संख्या १३, ३२, ४०, ४६

६. वासुदेव

इस का दोस्तानाम बिनयसाम या और साहित्यिक उपनाम 'कविचर'। ये अक्षररम्य के सप्राभ्याम बिनय प्रभोद पाठक के शिष्य थे। इन्होंने संस्कृत तथा हिन्दी में मौखिक और अनुशासनात्मक दोनों ही प्रकार के ग्रंथों की रचना की। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. देवराज बच्छराज चौपारई (मुसताफ सं० १७३०)
२. सिंहासन बन्दीनी चौपारई (फत्तोधी, बोधपुर सं० १७४८)
३. भद्र मत्तब का हिन्दी पद्यमय अनुवाद
४. पारबं भवतामर (संस्कृत में प्रकाशित है)
५. सर्वैया बाबनी।

सर्वैया बाबनी—सर्वैया बाबनी की हस्तलिखित प्रति^१ के सम्बन्ध का अक्षररम्य के समय और संवत्सय में प्राप्त हुआ। प्रति पूर्ण है और चार पर्थों पर लिखित है परन्तु उसके कई पन्ने खंडित हैं। काव्य का नाम 'सर्वैयाबाबनी' है परन्तु उसमें कवित्त भी लिखता है। पर्थों की रचना अर्थमाता के अक्षर क्रमानुसार की गई है। वष्य विषयों में तो विशेष नवीनता नहीं दिखाई देती परन्तु कवि की बल्लभ-योगी अपनी है। भाषा मधुर सागुप्रास तथा प्रवाहपूर्ण है और उसमें राजस्थानी के शब्द नहीं-कहीं ही बिपारई देते हैं। साधारणतः और मुक्तियों की रचनाओं में इतनी सरलता और मधुरता दिखाई नहीं देती जितनी इस बाबनी में लक्षित होती है। अधिक क्या कई रचना हिन्दी नीतिकाम्य का एक रत्न है। एक पद्य द्रष्टव्य है—

कम फूल सुकप सुमन भले तब बेचत ही जन नैन ठरे हैं।

एकन के कम फूल न होत तऊ मिल बीतल छाह कर हैं।

जिनके फल कम ब छाह नहीं अथ पंचिन को अम माहि हरे हैं।

'कविचर' कही विपना गर कू अथ ता तब कू रवि काहि करे हैं ॥^२

२०. अक्षर अनन्य

अक्षर अनन्य का काम इतिहास राज्य की सेंटुका तहसीस के रहेरे ग्राम में कायस-कुल में सम्भवतः १७१० वि० में हुआ था। वे योग और बेवान्त के विद्यागुरु तथा सेंटुका-नरेश प्रवीणर के मंत्री और मुद। पं० रामचन्द्र सुवल ने इनके पत्नी तरपास अत्रवाल के पास जाने तथा उनसे बटकर अक्षर में जले जाने की जो घटना मिली है वह ठीक नहीं।^३ वष्य यह है कि अत्रवाल ने इन्हें निर्ममल तो भेजा था परन्तु वे नहीं नहीं गये। हाँ राजा प्रवीणर से ही बटकर अक्षर में जले गये थे।

१. प्रति संख्या ८०८०

२. सर्वैया बाबनी पद्य ४४

३. राजपेंड गुजा रि० ता० ६०, २००६ दि० पृष्ठ ६१

इन्होंने योग और वेदान्त पर कई ग्रंथ लिखे थे और बुगसिन्धुघटी का हिन्दी पद्यों में अनुवाद किया था ।^१

इनके निर्धार घटक' में बसल १०८ दोहे हैं और प्रत्येक दोहे का चतुर्भुज परण 'कहि घनम्य निर्धार है । पुस्तक में वहाँ धर्म अध्यात्म वेदान्त तथा ज्ञान की बातें हैं, वहाँ नीति की भी स्पष्टता नहीं । साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्त्व न रखती हुई भी रचना उपेक्ष्य नहीं है । वो बोझ बेसिए—

मारी तज बन तप कर, तप तज करे जु नार ।
ए दोनों नरकहि परे, कहि 'घनम्य' निर्धार ॥
मारी बिन पेही बुझी इन्ध बिना परिवार ।
म्यान बिना सपरी बुझी, कहि घनम्य निर्धार ॥^२

११ बेबीदास

करोली के राजकवि बेबीदास के सम्बन्ध में शिवसिंह सेनार ने लिखा है कि ये अदिसल्लह के निवासी थे और सं १७१२ में उत्पन्न हुए थे । धनैक मुकामों की रचना करने के बाद ये सं १७४२ में करोली-नरेश रतनपालसिंह की समा में बसे गये और बीकनपर्यन्त वहीं रहे ।^३ इनकी तीन रचनाएं उपलब्ध हुई हैं—प्रेमरत्नाकर, वामोदर लीला और राम-नीति ।^४ जयपुर के स्वर्गीय पुरोहित हरिभारामण जी के 'विद्याभूषण पुस्तकालय' में हमें 'प्रेमरत्नाकर' की हस्तलिखित प्रति^५ के अध्ययन का अवसर मिला । उक्त प्रति पुरोहित जी से सं १९८४ वि० में प्रुसत्केप भाकार के २० पृष्ठों पर लिपिबद्ध कर्वाई थी । काव्य की पुष्पिका से बात होता है कि कवि ने इस काव्य की रचना महाराज कुंवर रतनपाल की प्रेरणा से की थी ।^६

'प्रेमरत्नाकर' केवल प्रेम-विषयक नीति का प्रतिपादन करने के लिए रचा गया है । कवि के अनुसार प्रेम मन की उस सेवा का नाम है जिसमें प्राणी धात्मा तथा देह के सब नियम विसृत कर प्रियतम में मग्न हो जाता है । लक्ष्य करने की बात तो यह है कि कवि ने पारमार्थिक प्रेम के समान ही सांसारिक प्रेम को भी मोक्षप्रद कहा है—

१ माधरी प्रचारिणी पत्रिका, वष ३९, भा १ अक्षाण्ड-आषाढ़ सं० २००४, पृष्ठ ३७-४१

२ भा० प्र० १०, अक्षाण्ड-आषाढ़ २००४ पृष्ठ ३८, ३९

३ अजयसिंह सरोज प्र० नयनकिरीट प्रेस, मन्सूर, चतुर्भुज संस्करण पृष्ठ ३९६

४ मोतीनास मेनारिया, राजस्थान का विगत साहित्य पृष्ठ १६९

५ प्रेमरत्नाकर, प्रति संख्या १३३२ (१)

६ अति धीनममहाराज कुंवर अडुबंसाजत जी भवा रतनपाल जी विरचिते प्रेमरत्नाकरे पञ्चमसर्ग ॥५॥ इति प्रेमरत्नाकर सम्पूर्णे । (वही पुष्पिका)

लसारी परमार्थी ईशियि को प्य प्रेम ।

हुँ भक्ति की बेटु है महापुक्ति को छेम ॥^१

इस प्रकार स्पष्ट है कि सांसारिक प्रेम के विषय में इनका मत उतों तथा मत्तों के तो विरुद्ध है परन्तु सूझी कवियों से मिलता-जुलता है। यद्यपि तथा सरस्वती की प्रणति के परवान् कमि न दूझा कवित्त सबैमा धरिख्त धारि छन्दों में साम् का प्रेम परमेत्तर सों' सती का प्रेम पति सों' धारि दीर्घक देकर अनेक प्रेमियों की मनोबन्ध का सुन्दर चित्रण किया है। यहाँ कवि ने परम्परा के अनुसार जातक बकोर, मौन, भ्रमर धारि की भेग अरु जस यथ धारि के प्रति समस्य अनुपमि की अभिव्यक्ति की है वहाँ कुछ ऐसे प्रेमियों का भी वर्णन किया है जिसकी चर्चा साहित्य में कदाचित् कबिपत् ही दिखाई देती है जैसे 'मरकट को प्रेम सूझी सों मकरी को प्रेम बपा सों' 'समु' ने प्रेम बडबागि सों 'मुंग्य को प्रेम पवन सों' धारि। एक अन्य विशेषता यह है कि ऐतिहासिक प्रेम-विषयक रचना होने पर भी प्रेमरत्नाकर बासना के कर्म से उभरा असूट रहता हुआ निगम प्रेम के लिए स स्व के उत्सर्ग की धिया देता है।

कवि का भाषा तथा धर्मकारों पर अच्छा अधिकार है। अनुप्रासमयी और मधुर भाषा मिलाने में कवि विशेष निपुण है। लक्षण तो प्रायः दोहों में उपयुक्त हैं और उदाहरण बड़े छन्दों में। यद्यपि विषय प्रेम है तथापि व्यंजना-शक्ति तथा कल्पना की कमी और वर्णनात्मकता का अधिकता के कारण रचना आद्यानुभव सरस नहीं बन पायी। कुछ पद्य द्रष्टव्य हैं—

परे सार दी पार में धाम्त भयो सुमार ।

उदें तीव ह सूर क मुख तें निरस्त आर ॥^२

प्रेम समुद्र क मरजो (या) सयित्त

साम् अर सती दूर पातक बकोर मौन

अवुप मराम वैम-वय ही के बीया है ।

मरकट मकरी कुरंग और कारे नाग,

प्र मर्षय अ धियार मटिभ दी बीया है ।

देवीदास दादुर बसाय गेह लीप मुंगू

हुम-अ गो पाराकत प्र म छाह छोबा है ।

कमल मुंग्य गान पूरक पर्यय धारि

प्रंग रजनाकर के एते मरजीवा है ॥^३

उपरोक्त-पद्यों में इनके नीति-विषयक सुन्दर शब्द पद्य भी प्राप्त होते हैं और कहीं-कहीं तो वे अतिव्यापीय योगावली के मूलकरण के मनी देवीदास क वर्यो में अनु-वित्त बने हैं। एक कवि द्रष्टव्य है—

ए रे मुली मुख पाद चातुरी निपुण पाइ,
 क्षीत्रिये १ मैत्री मन काहूँ जो कतू करो ।
 बारन दराने द्वार पये को छही तुभाब
 मान अपमान काहूँ रे करो कि पू करो ॥
 कूर और छवि दसे जास हूँ समा के मय्य,
 तो सौँ सौ हटक 'बेबीबास' पतदू करो ।
 बरबात्रे पत्र छाड़े कूरौ समा के मय्य
 बूजरी सो बूजरी प्री तू करो सो तू करो ॥^१

१४ केशवदास अत्र

ये कवि अरहरमण्ड के मुनि सावम्बरान जी के विषय ये और इनका बीसा-
 नाम कुशल सागर था । इनकी दो रचनाएँ प्राप्त हैं—१ केशव बावनी २ धीरमान
 उदयमान रास । द्वितीय कृति की रचना स० १७४२ वि० में मर्वा नगर में की गई थी
 इसमिए इनका स्मरण-नाम १८वीं शती है । अरत दो पुस्तकों में 'केशव बावनी'
 नीतिकाम्य है । इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अमय पत्र प्रपासय न देखने का
 अचसर भ्रमा १^१ प्रति पूर्ण है और पाँच पत्रों पर लिखित है । ३७ पद्यों की इस कृति
 के अन्त में कवि ने रचना-संबन्ध १७६६ और निर्माण-स्मान 'पञ्चाप' गाँव का उल्लेख
 किया है—

बाबन अरहर और करौ भैया पांड पञ्चाप ही में भल भाई ।

अरहर सोत छतीस को आबख पूर पांचुं पृपुहार कहुँ ॥^{१२}

पुस्तक में बर्म राम परोपकार, मूर्त के सहाय आदि अनेक विषयों का बर्णन
 तो है ही मय्य की अक्षय रेखा पर बहुत बल दिया गया है । प्रार्थनात्मक छटा की
 स्मृता में भी सुन्दर भावों तथा प्रकाशपूर्ण भाषा के कारण यह कवि-सर्वेया-मयी
 रचना अग्री बल पड़ी है । रचना का निर्दशन देखिए—

ईह में आनत है कौन मायल होय न होय तोउ जस बीर ।

आस मेरास न कीजीइ अस्तम कुस्तम हीई के कामहूँ कीजे ।

जीवन में अणार करो पीउ , योवन पौ लब हाय मसीअ ।

मानय को भय नाय के 'केनय' यो कवु राम रिताबे सो दीजे ॥^{१३}

१३ गोपाल धानरु

कवि परिचय—कवि गोपालदास के पिता का नाम गमायम या और पुत्र का

१ विबसिह सरोज पृष्ठ १२२

२ प्रति संख्या ८०४५

३-४ केशव बावनी, पत्र ३।२७, ३।६

माघनसात । गोपालदास और माघनसात दोनों ही कवि रतनपुर (बिलासपुर, मध्य प्रदेश) के राजा राजसिंह के काव्यक थे । राजसिंह का शासनकाल सं० १७२६-७६ तक था अतएव गोपाल और माघन का काव्य-काल अठारहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध माना जा सकता है । पिता-पुत्र दोनों ने मिसकर भी कुछ वीर की रचना की । माघनसात पितृमकित के कारण अपनी रचनाओं के अन्त में पिता का नाम ही निर्दिष्ट कर देते थे इसलिए निविदाद रूप से यह कहना कि कौन ग्रंथ पिता का है और कौन पुत्र का कठिन है । फिर भी निम्नांकित काव्य गोपालदास-विरचित माने जाते हैं—१ शीरघतक २ कीर्तिघतक ३ पुष्पघतक ४ कर्मघतक ५ विनोदघतक ६ शृंगारघतक १

कृति परिचय—उपरोक्त छह काव्यों में-से विनोदघतक का विषय राधा-कृष्ण न प्रेमविनोद है और शृंगारघतक का नायिका-नेद, इसलिए इनकी कर्त्ता छोड़ देप नार नीति-काव्यों का ही परिचय प्रस्तुत करना उचित होगा ।

१ वीर घतक—इस काव्य की पांडुलिपि नागरी प्रचारिणी सभा काशी में सुरक्षित है ।^१ काव्य पूर्ण है परन्तु पद्य-संख्या केवल ३८ है । काव्य का धारम्भ कवि ने बभ्रुकवाम कर शारी' श्री राम श्री यन्त्रा से किया है । इसके बाद जयने भाभय-दाता श्री इहय कुसुमकमलप्रकाश मास्कर प्रसाद राजा राजसिंह बुडामनि' की प्रशंसा की है । कवि ने तीन प्रकार के वीर धर्मों का उल्लेख किया है—सारिक राजस वीर धामस । सारिक वीर धर्म का पासन करने वाले मरेख स्वर्ग-सुखों को राजस धर्म के पासक ऐं क भोयविसासों को और धामस-धर्म पर सावरण करने वाले नारकीय बुखों को प्राप्त करते हैं । प्रायः वीर रस के नार श्रेष्ठ माने जाते हैं—दानवीर धर्मवीर, वीर वसवीर को भी वीर रस के भेदों में परिगणित किया है । गोपाल जानक ने शमा वीर तथा दसवीर को छोड़ बाप छह भेदों को स्वीकृत कर उनके उदाहरणों में ऐतिहासिक व्यक्तिता का उल्लेख किया है । काव्य के अन्त में कवि ने ब्राह्मण धर्मि-धादि के कर्तव्यों का भी उल्लेख किया है । वीर रस प्रधान इस काव्य की भाषा प्रसाद पूर्ण और शोभावी है । काव्य में कवि ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है । अनेक पद्यों में 'सद्यः पूब तमासा' वाक्यांश का प्रयोग पाया जाता है । अष्ट उदाहरण नीजिए—

बह के रजें तें सूरवीर के रजें ते

पर कौम के रजें तें सेगवाहे दल पूत हैं ।

१ कवि के विरचित परिचय के लिए दिसम्बर १९१४ की 'हितपारिणी' में वं भोयन प्रसाद पाण्डेय का निबन्ध देखिये ।

२ समाचार प्रति-सं० ६६३।४०६

स्वामित सहेत भीत भीत बुद्धयेत लेत
 ज्योतिन अघाबे नाबे भरो भदवृत है ।
 भारे भुजवहन के पैज-कुल मदन क
 बसत 'योगान कयि' कीरति बसूत है ।
 धन्य राजा पत्र धन्य धन्य बहु पंच लाज
 धन्य धन्य राजा धन्य धन्य राजपूत है ।^१

२ कीर्ति शतक— इस काव्य की पांडुलिपि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के सभा-समूह में देखने को मिली ।^१ नौ पद्यों की यह प्रति है तो पूरा परम्पु पद्य-संख्या करीब ८२ है । प्रारम्भ में माणवण ब्रह्मा संकर का तथा विष्णु के उभ कृष्ण गुणों का आदि भवधारों का कीर्तिमान किया गया है । पुस्तक के पूर्वार्ध में कीर्तिमान् के जीवन की सफलता कीर्ति की प्राप्ति तथा नाच के कारण कीर्ति की प्राप्ति के हेतु, कबिकोविदों द्वारा बलिष्ठ व्यक्तियों की ही कीर्ति की स्मरणता आनन्द की दुष्प्राप्तता आदिक कीर्ति-सम्बन्धी विषयों पर काव्य रचना की गई है । उत्तरार्ध में कीर्तिमान् राजाओं के मन्त्रण आदि का बरण है । कवि के मठानुसार कीर्ति के अत्रिसापी मरेय में जो ३२ गुण होने चाहिए उनमें से कुछ ये हैं—कुतबम-गामन धीम स्वास्थ्य सौन्दर्य भुजब्रह्मकला चारुनह चारुव्रह्म धरुगहार इन्द्रियधय मुदभक्ति दया परदार-परिषाण चतुस्योपन आदि । कवि ने प्रमदका समर कीर्ति के मागी प्रब प्रह्लाद सगर, मयीरय नल इन्द्रिपण्ड राम हनुमान आदि अनेक व्यक्तियों की चर्चा की है । काव्य में सर्वथा कवित्त बोधा और औबोला छन्दों का प्रयोग किया गया है । औबोला छन्दों में तुक या अस्पानुप्रास चारों चरणों में न होकर प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ चरणों में ही है । अनेक स्थलों पर कवि ने व्याख्यात्मक शली का व्यवहार किया है अर्थात् पहले बोधे में प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख-भाव कर बाद में उम पर सुन्दर कवित्त या सर्वथा लिखा है । 'पूब समाज देवा' इस कृति के भी अनेक पद्यों में विद्यमान है । रचना अच्छी है । एक उदाहरण नीचे—

कीन करे परमारय जो पय स्वारय पिट भरो पर सोयो ।
 सगत ज्ञानपिहीन जियो धति प्रापम बीज यई फिरि बोयो ।
 सोहू किये न कइ सुख-सखति राज निरि न भित्तादिन रोयो ।
 कीरति की करनी न कर कइ मानुय बस्य अकारय बोयो ॥^२

३ कर्मफलक— ६१ पद्यों के इस 'फलक' की हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी में विद्यमान है ।^३ प्रति पूर्ण है और प्राय छन्दय औबोला कवित्त

१ कीर्तिशतक, पद्य २

२ प्रति संख्या ६६=१४७६

३ कीर्तिशतक पद्य ३०

४ समाजसुह प्रति-संख्या ६६=१४७६

माधननाम । गोपालराज और माधननाम दोनों ही कवि छतपुर (बिजापूर, मध्य प्रदेश) के राजा राजसिंह के शासक थे । राजसिंह का शासनकाल सं० १७५९-७९ तक था अर्थात् गोपाल और माधन का काव्य-काल अठारहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध माना जा सकता है । पिता-पुत्र दोनों ने मिलकर नौ कुछ कों की रचना की । माधननाम पितृभक्ति के कारण अपनी रचनाओं के अन्त में पिता का नाम ही निबिष्ट कर देते थे इसलिए निबिष्टाद रूप से यह कहना कि कौन ग्रंथ पिता का है और कौन पुत्र का कठिन है । फिर भी, निम्नांकित काव्य गोपालराज-निबिष्ट माने जाते हैं—१ बीरसतक २ कीर्तिघटक ३ पुष्पघटक ४ कर्मसतक ५ विनोदघटक ६ शृंगारघटक ।^१

इति परिचय—अपुत्रत्व यह काव्यों में-से विनोदघटक का विषय राधा-कृष्ण का प्रेम्भिनोद है और शृंगारघटक का भाविका-भेद, इसलिए इनकी चर्चा छोड़ देष चार नीति-काव्यों का ही परिचय प्रस्तुत करना उचित होगा ।

१ बीर घटक—इस काव्य की पांडुलिपि नागरी प्रचारिणी सभा बनारस में सुरक्षित है ।^२ काव्य पूर्ण है परन्तु पद्य-संख्या केवल ३८ है । काव्य का धारण्य कवि ने अनुकूलान कर घारी भी राम की वन्दना से किया है ; इसके बाद अपने धारण्य-दाता भी हैहय कुमरमतप्रकाश भास्कर प्रताप राजा राजसिंह 'बुद्धामनि' की प्रशंसा की है । कवि ने तीन प्रकार के बीर-धर्मों का उल्लेख किया है—सारथिक राजस और तामस । सारथिक बीर धर्म का पालन करने वाले नरेश स्वर्ग-सुखों की राजस धर्म के पालक पों के योगिताओं को और तामस-धर्म पर धारण्य करने वाले नारकीय सुखों को प्राप्त करते हैं । प्रायः बीर रस के चार भेद माने जाते हैं—बानवीर धर्मवीर, पुरबीर और दयावीर । परन्तु पं० जगन्नाथ ने सत्यवीर, पाण्डित्य-वीर समावीर और बसवीर को भी बीर रस के भेदों में परिगणित किया है । गोपाल शासक थे समा बीर तथा दसवीर को छोड़ देष यह दोनों को स्वीकृत कर उनके उदाहरणों में ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख किया है । काव्य के अन्त में कवि ने ब्राह्मण धर्मिय आदि के कर्तव्यों का भी उल्लेख किया है । बीर रस प्रधान इस काव्य को भाषा प्रसाद पूर्ण और ओझादी है । काव्य में कविता छप्पन दोहा और चौबोसा छन्दों का व्यवहार किया गया है । अनेक पद्यों में 'मय' शब्द समासा बाधार्थ का प्रयोग पाया जाता है । मय उदाहरण तीव्रिए—

धर्म के दजे तें पुरबीर के दजे ते,

पर नीच के दजे तें तैपवाहे धन दूत है ।

१ कवि के विस्तृत परिचय के लिए वितम्बर १९१४ की 'हितचरिणी' में पं० सोहन प्रसाद पाण्डेय का निबन्ध देखिये ।

२ समासतः प्रति-नं० ६९३।२०९

स्वामित सद्यैत भीत भीत दुःस्येत सित,
 ज्योतिष अयावै नाचै भैरों अयपूत ह ।
 भारे भुजबंडन के पञ्ज-पुस्त मङ्गल के
 कृत गोपाल कवि' कीरति अयूत ह ।
 अय राजा पञ्ज अय्य अय्य बहु पस लाज
 अय्य अय्य राजा अय्य अय्य राजपूत ह ।^१

२ कीर्ति अतक—इस काव्य की पांडुलिपि नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के समा-संग्रह में देखने को मिली ।^२ नौ पद्यों की यह प्रति है वो पूर्ण परन्तु पद्य-संख्या केवल २२ है । भारम्भ में नारायण ब्रह्मा राकर का तथा विष्णु के राम कृष्ण मुनिह आदि अष्टद्वारा का कीर्तिमान किया गया है । पुस्तक के पूर्वाह्न में कीर्तिमान के पीबन की उपमत्ता कीर्ति की प्राप्ति तथा नाश के कारण कीर्ति की प्रमाप्ति के हेतु, कविकोषिणों द्वारा बलिष्ठ व्यक्तियों की ही कीर्ति की स्मरणता आपत्तमर्भ की दुष्प्राम्भता आदिक कीर्ति-सम्बन्धी विषयों पर काव्य रचना की गई है । उत्तरार्द्ध में कीर्तिमान उदाहरणों के सङ्ग्रह आदि का वर्णन है । कवि के मतानुसार कीर्ति के अभिसापी श्रेष्ठ में जो ३२ पुण्य होने चाहिए उनमें से कुछ ये हैं—कृतधर्म-यासन धीम स्वास्थ्य शीतल्य, मुण्यप्राहृष्टता बारस्नेह सारसङ्ग्रह भस्माहार इन्द्रियभय मुदमन्त्रित दया परदार-परियाम रहस्यपोषन आदि । कवि न प्रसंगबध अमर कीर्ति के मागी ध्रुव प्रह्लाद, अय्य, नगीरब अल हरिद्वन्त्र राम हनुमान आदि अनेक व्यक्तियों की अर्चा की है । काव्य में सर्वथा कविता बोधा और बीबोसा छन्दों का प्रयोग किया गया है । बीबोसा छन्दों में तुक या अन्त्यानुप्रास आरो अर्यों में न होकर प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ अर्यों में ही है । अनेक स्वकों पर कवि ने व्याख्यात्मक धेसी का व्यवहार किया है अर्थात् पहले बोद्धे में प्रतिपाद्य विषय का अस्नेह-नाश कर वाक में उस पर सुन्दर कविता या सर्वथा लिखा है । पूब उमासा देपा' इस कृति के भी अनेक पद्यों में विद्यमान है । रचना अच्छी है । एक उदाहरण सीधिए—

अन करे परमारय को पय स्वारय पैठ भरो पर सोयो ।
 अगत क्षामयिहीन कियो अति धायन अोज यहै किरि सोयो ।
 सोहू किये न अने सुज-संपति राय मिसं न मिलाकिन रोयो ।
 कीरति की करली न करे कहु मानुय अन्न अकारय लोयो ॥^३

३ अन्तक—११ पद्यों के इस 'अतक' की हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी में विद्यमान है ।^४ प्रति पूण्य है और प्राय अन्त्य बीबोसा कविता

- १ बीरशतक पद्य २
- २ प्रति संख्या ६६०।४०६
- ३ कीर्तिअतक, पद्य ३०
- ४ समासंग्रह, प्रति-संख्या ६६०।४०६

धीरे-धीरे छन्दों में मिलित है। प्रारम्भिक पद्यों में कर्मों के महत्त्व का प्रतिपादन प्रबल है परन्तु कवि का मुख्य उद्देश्य पाठकों को काम-क्षोभ आदि विकारों से हटाना है। यद्यपि कवि ने अनेकभक्ति-भावना को कर्मों के प्रथम कक्षा है परन्तु कर्मों के महत्त्व पर इतना बल मसिद्ध नहीं होता जितना कर्मों के अनुष्ठान करने हुए भाग्य की रेखाओं के समित होने पर।^१ प्राचीन परंपरा के अनुसार सत्यमुच्य आदि गुणों का भी कर्मों से संबंध बताया गया है। धर्म्य गुणों में तो सत्य प्रबल था परन्तु वह कम-से-कम धीरे-धीरे धीरे-धीरे कमियुग में तो अनुत्तम का ही प्रभाव्य हो गया है। सांग-रूपकों का प्रयोग इस काम्य की एक उल्लेख्य विशेषता है। कमियुग में पाप-राजा है कामदेव सेनापति है शरणी-कटाक्ष बाण है सोम-दीवान है और चिन्ता-रानियाँ हैं और निवा-तया दुर्मति उसकी सखियाँ। धारम्भ में तथ्यनिरूपक-शैली का प्रयोग करने के बाद कवि संवादात्मक-शैली का प्रयोग करता है। कमियुग काम-क्षोभ आदि कम-से-कम धर्म्य का वर्णन करते हैं। कामान्ति से-वचने के लिए कवि ने जिन पद्यों में उनके स्वभाव का वर्णन किया है उन पर रीति-शास्त्र का श्रुति-रिक्त प्रभाव स्पष्ट मसिद्ध होता है। इस प्रकार धारम्भ में कर्मों का महत्त्व तथा मध्य-म-पापों की प्रबलता बिलकर कवि धर्म में सुकृतों की विषय का उल्लेख कर स्व-रचना को समाप्त करता है। इस काम्य पर कृष्णमिश्र के प्रबोध-अष्टोत्तम-माटक के भाषों तथा शैली का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। रचना सुन्दर है परन्तु व्यावहारिक की अपेक्षा उपदेशात्मक अधिक है। एक उदाहरण नीचे—

मीन मूम हारे मीन-पंजन-विचारे, वैधि
 भन-कज्जल-भार-धामिनि-मल-चारे हैं।
 सुन्दर उरोज-विष-सीने-के-सरोज-मानो,
 मोरना-मनीज-महा-मोह-के-मुहारे हैं।
 बेध-वैधि-शारे-हृद-भावन-के-बादन-सौं
 बासन-सौ-बाधि-कौन-तपी-तप-पारे हैं।
 बाधि-अन्ध-घानन-सौं-भूमि-भूमि-आनन-सौं
 कला-कर-मान-भीत-राग-विचारे हैं ॥^२

४ पुष्पादक—नायरी-प्रधारिणी-समा-काशी-में-सुरक्षित-इस-‘घटक’-की-हस्तलिखित-प्रति-पूर्ण-है-परन्तु-उसमें-कुल-पत्र-कम-से-२७-है।-प्रति-पत्र-पत्र-पर-लिखित-है-और-उपमें-विषयी-छपाय-बोधासा-कवि-तथा-दोहा-छन्दों-का-अन्वय-क्रिया-गया-है।-यस-दान-दया-दाया-परोपकार-मत्त्व-मापण-आदि-धर्मों-का-सारणीय

१ कर्मोत्पत्ति, पद्य ६

२ वही पद्य ४४

३ अन्वय-प्रति-संख्या-१६२१७७६

परिभाषा में पुष्य कहा जाता है। 'उत्कर्' कथारम्भ में कवि ने पुष्याचरण के सुष्ठव तथा पुष्यात्माओं के महत्त्व का बखान किया है। इसके बाद उस काम में दुस्मान पापों के प्रचार तथा पुष्यों की क्षीणता पर खेद प्रकाशित किया गया है। प्राचीन काल के अनेक पुष्यात्मा गणों की महिमा का बखान करने के पश्चात् कवि समसामयिक भ्रूपाशों की उच्छृंखलता का बर्णन करता है और अंत में अपने धार्मिकता के पुष्यमय श्रासन की स्तुति से ग्रंथ का पयवसान कर देता है। जैसा कि नाम से ही संकेत मिलता है कवि का उद्देश्य पाठकों को विशेषतः नरेशों को धर्मोपेक्षा के माग से इत्य कर पुष्य-मय पर अवहित करता है। यही कारण है कि वह वेदानुक्रम आचरण तथा मन्त्रा भक्ति करने का उपदेश देना भी नहीं भूसा है। भाषा स्वच्छ सरल मधुर प्रवाहपूर्ण है। एकाक्षर स्वस पर तो वह रसबान की भाषा से प्रभावित दिखाई देती है।^१ "पूब तमासा सप्य और सप्य पूब तमासा" वाक्यांशों का प्रयोग अनेकत्र दृष्टि-गत होता है। कर्मसतक के समान इसमें भी विभिन्न गुणों का परस्पर स्याव पाया जाता है। रचना तो घञ्ची है परन्तु इसमें मीति की प्रवेदा उपदेशात्मकता अधिक है।

गुण प्रदल त्रिहि होत दाहिने, ताहि हुमत क कोई ।

तीन लोक पर अमल जनाब, जो चाहे सो होई ।

दिन-दिन सड़े पट्टे नहि दपहुँ, जो दिन में कोई रप्य ।

पूबी करे दलक में अकडा पूब तमासा सप्य ॥^२

समीक्षा—यद्यपि योपास नामक से मीति के चार उत्कर्षों की रचना की है तथापि उन्हें जनता का मीति-कवि कहने का साहस नहीं होता। वे राजाधर कवि के और इसीलिए कर्मसतक से सिवा सभी कृतियों के अध्ययन से ऐसा लगता है जैसे वे मुख्य रूप से राजाओं के लिए लिख रहे हैं जनसाधारण के लिए नहीं। बीरता कीति तथा बड़े-बड़े पुष्य क्रायों का सम्बन्ध जितना सातक-वर्ग से होगा उतना जन सामान्य से नहीं। ऐसा होते हुए भी उनके काव्य और, क्रीडमान् तथा पुष्यगीत बनने की पवित्र प्रेरणा पाठक मान को प्रदान करते ही हैं। उनका कर्मसतक सर्वसाधारण के लिए धार्मिक उपयोगी लगता है परन्तु उसमें कर्मठता की वह प्रेरणा नहीं जो मानव में अपने को अथवा भाग्यविभाता मानने का विस्वास बनाए। इस प्रकार गोपाल ने मुख्यतः चार विषयों पर रचना की—बीरता कीति पुष्य और कर्म (माग्य)। ये सभी विषय निस्संदेह नवीन नहीं हैं तथापि त्रिविध धीर धर्म कीतिमान रूप के ३२ गुण धारि अनेक नवीन बातों का भी उल्लेख कवि ने किया है।

इसकी कृतियों में बीर तथा शान्त रम और बसा उदागता, अमा धैर्य धारि भाषों की व्यक्तता सम्पन्न हुई है। इन्होंने चारों काव्यों में स्वच्छ तथा मधुर राजभाषा

१ पुष्यसतक, पृष्ठ १०

२ पृष्ठ, पृष्ठ २

का प्रयोग किया है जिसमें फौज तथासा, ठेग बादि विदेशी स्वयं अपने प्रचलित रूप में ही प्रयुक्त किये गए हैं। 'सूय तथासा' शब्दों का प्रयोग अनेकजग दिखाई देता है।

बिधान की दृष्टि से ये चारों काव्य मुक्तक हैं किन्तु जहाँ बिभिन्न मुक्तकों का परस्पर संवाद दिखाई देता है वहाँ मिश्रण की कुछ भ्रमक दिखाई दे जाती है। सर्वाधिक सटकने वाली बात तो है इनकी सटक-संज्ञा। एक भी काव्य ऐसा नहीं है जिसमें पद्य-संख्या घट या कुछ अधिक हो। चार सतकों की कुल पद्य-संख्या २०- है जिसमें से अधिकतम संख्या २२ है और न्यूनतम २७। अनुमान है कि उन दिनों घट-पद्य का प्रयोग संग्रह-मात्र के अर्थ में भी कहीं-कहीं प्रचलित हो गया होगा और तदनुसार गोपाल जानक ने भी उक्त संघर्षों को 'सटक' संज्ञा दे दी होगी। इन काव्यों में मुख्य रूप से तथ्यनिष्पन्न उपदेहात्मक संवादात्मक, ऐतिहासिक तथा व्याप्यात्मक धर्मियों का प्रयोग ही अधिक हुआ है।

अक्षकार-प्रयोग पर कवि का ध्यान नहीं है फिर भी जो अक्षकार रचनाएँ प्रयुक्त हुए हैं उनमें बहुमनुप्रास भीष्ठा उपमा और रूपक उल्लेख हैं। मुक्तों में प्रसाद तो सर्वत्र विद्यमान है और भोज तथा मायुर्ध्व दोनों यथा-न्याय प्रयुक्त हुए हैं।

अन्त में यह सक्ते हैं कि गोपाल जानक ने सतत चार गुन्जर सतकों द्वारा हिन्दी के नीति-काव्य की भी-बुद्धि में स्तुत्य योग दिया है।

१४ रघुराम

रघुराम शायर कवि के 'समासार नाटक' की हस्तलिखित प्रति^१ हमने बीकानेर में देखी। नाटक के आरम्भ में कवि ने जो आत्म-परिचय दिया है उससे विदित होता है कि वे मुजराठ प्रान्त के अहमदाबाद नगर के सारणपुर मूहल्ले में निवास करते थे और उन्होंने सम्बत् १७१७ वि० में इस नाटक की जिसे धार्मिक दृष्टि से काव्य कहना अधिक उपयुक्त होगा रचना की—

सतर से सतावन संत्र सीज पुरुवार ।

पति अरुल अरुल सुमति, कवि किय पंच बिचार ॥^२

कवि ने नाटक के अंत में एक छप्पय द्वारा इसके अन्त से होने वाले मार्गों का जो उल्लेख किया है उससे रचना के तीन उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं—इसके नाटक रचना बुद्धि-बल का विकास तथा पुण्य ज्ञान का मन में बंधार।

उक्त नाटक अक्षरित रूप से विद्यमान है तथा १४ पत्रों पर लिखित है। कुल पत्र ३२६ हैं जो कि याज्ञिकी छप्पय जोषाई दोहा सोरठा और सबंधा (बिधा)

१ मोतीबन्ध राजानवी का संग्रह बटम-नं० ७, प्रति-नं० ११८ (इतने एक छप्पय पुस्तक नामक दिनांक अज्ञात) का उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की राजस्थान रिपोर्ट भाग १ (सं० १९८०) में किया गया है।

२ कवि पत्र १ पद्य १३ ॥

छन्दों में लिखे हैं। उक्त प्रति के प्रतिनिधिकार रायसिंह से जिन्होंने सम्बत् १८४६ में बिछौ गाँव में नाटक को सिधिये किया।^१ हस्तलिखित प्रति में शब्दों के रूप इतने बिभ्रत हैं तथा अक्षर मात्राओं की संख्या इतनी ग्युनाधिक है कि उनसे रायसिंह मयम्त सामान्य सिधिकार प्रतीत होते हैं। धस्तु।

नाटक के आदि में मखेस सिब बिप्यु तथा सरस्वती की बन्ना की गई है। उत्पन्नात् कवि धात्म-परिचय प्रस्तुत कर समा का प्रणाम करता है और सिप्य-गुरु के प्रस्नोत्तर रूप में नाटक की रचना करता है। सिप्य सारभूत धस्तु तथा उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में प्रश्न करता है। युव नरदेह को सार कहकर उत्संग को ही उसकी प्राप्ति का साधन बताता है। परन्तु, उत्संग में सत्यरूप ग्युन है और प्रसत्यरूप अधिक इसलिप् 'सिप्य बाक्य से उनके सदाशों के सम्बन्ध में सिप्य प्रश्न करता है और 'गुरु बाक्य' से युव उत्तर देता है। बपटी माण्डिस समा-बातुर समा-बिगाड़ प्रादि जिस ब्यक्ति के भी लक्षण सिप्य पूछता है युव पहले प्राय एक दोहे में उसका सदाश बताता है और उसके तुरन्त ही बाब कबित प्रादि में उसका उदाहरण प्रस्तुत कर देता है। सदाशात्मक छन्दों में कोई अरसता नहीं है परन्तु उदाहरण-रूप में प्रस्तुत पद्य सुन्दर हैं। इस प्रकार रीतिकाल में जो ऐसी प्राय रीति-काव्यों के निर्माण में ब्यबहृत की गई थी उसी का प्रयोग इस नीति-काव्य में भी दिखाई देता है।

इस काव्य की एक उत्सेक्य बिदोषता यह है कि इसमें प्राध्यात्मिकता की मात्रा अल्पम् है। प्रथम ३०० पद्य नीति-विषयक हैं और अन्तिम केवल २६ पद्य अध्यात्म विषयक। विविध ब्यक्तियों के बर्णन के बिचार से यह काव्य युपाल कवि के 'इम्पति बाक्य बिनास' से कुछ-कुछ साम्य रखता है। परन्तु उसमें अबाब पति-पत्नी में होता है इसमें गुरु-शिष्य में। जयमें प्रत्येक ब्यवसाय के गुण पति बताता है तथा दोष पत्नी और इसमें गुरु ही सिप्य की जिज्ञासा घान्त करने के लिप् अधिक्तर दोषी ब्यक्ति का स्वल्प बिबित करता है जिससे कोय उन दोषों के परिहाराय सभेष्ट रहे। निम्नाकिन्त कुछ विषयों से रचुराम की विषय-ब्यापकता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है— गमबाय उय बातार लबार बातार, बिदेकी बातार कभि के बातार सहरि मिब सड़ाक धूप-मन्तक धूप्यहृदय कोतबाल जुगल लुंड, धूर्त गुप्त दुष्ट प्रगट दुष्ट महादुष्ट आके पैट में बाठ न रहे बड़े बर का ठीकरा रोषती धूर्त पर में मारी बवान गृध्रा बिदगिना कैंठी (गराबी) लुपामस्कग रंदिपुता साहिबादा प्रादि। अत्रत मूषी से स्पष्ट है कि रचुराम ने निज परबिधाय से ऐसे अनेक ब्यक्तियों को नीति काव्य के विषय-रूप में ग्रहण किया है जिनकी बचा प्राचीन संहृत तथा हिन्दी के कवियों में प्राप्त नहीं होती।

^१ दति की कवि रचुराम बिदधित समाबात नाटिक सपुगम्। संवत् १८४६, पद्य मूब २ कुपी सिपयत रायसिंह लिखिम् ॥

रघुपति की अधिकतर रचना सरस तथा भावपूर्ण है। चूंकि अधिकतर दुष्ट लोगों को परित्याग का विषय बनाया गया है और सही के द्वारा नीति की शिक्षाएँ व्यक्ति की गई हैं इसलिए हास्य रस को प्रधानता है। शास्त्र की रचनाएँ रस भी छिटपुट रूप से मूलक दिया जाते हैं।

गुजराती होते हुए भी इन्होंने अपनी रचना धरम, सुबोध प्रकाशपूर्ण प्रकृति में की है। यद्यपि रस पर बड़ी-बड़ी स्वाभाविक प्रभाव भी रक्षित होना है। मुहावरों तथा विदेशी शब्दों आदि का प्रयोग बहुत कम किया जाता है। भाषा को प्रसन्न करने के लिए अनुप्रास तथा शीघ्रा का और व्यंजनों को चमत्कृत करने के लिए उपमा तथा उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग किया गया है। भाव सौन्दर्य इतना अधिक है कि व्यंजनों के अधिक प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ी।

गुणों में से प्रसाद और मार्मिकता का अधिकतम है। अन्य सम्बन्धी दोषों के लिए कवि इतना उत्तरदायी नहीं प्रतीत होता अतः निराला विचार।

सार यह कि 'सभासार' नित्यसम्बद्ध नीतिकाम्य की सुन्दर रचना है और उसके शीघ्रता का प्रधान कारण है—हास्य रस में नीति की शिक्षाओं की व्यंजना। अब रचना के कुछ उदाहरण नीचे—

कही मिस के लक्षण

घासन गहोल दनाय की, घात पराय विल ।

मिलतै मन मिसिपत गही के कहि सहिरी मित ॥^१

उदाहरण

घाय जिहँ पाय तिहँ घासन अपार कर,

मित कहुँ राह में ही बौठ न मिसावेगे ।

पश्य घर लार्क मानु सोप पर्यो पाठ

कहो घाय इहाँ काने करूँ लौकर ले सिपावेवे ।

धरे दिख एक लमी कान है धामार मान,

जानीवे अपुन पाय फिर घर आयवे ।

कर मनुहार ताहि पसरो लकीव पावि

प्यारत न बार ए बरत कम पावेगे ॥^२

१५ चित्तन

चित्तन विक्रम की अठारहवीं शती के जैन कवि थे। उनकी 'चित्तन वाणी' नाम की हस्तलिखित कृति हमें श्रीकान्हर के श्री मोतीलाल पत्रापी के संग्रह में देखने

१ सभासार नाटिका, पृष्ठ १। २०

२ कही, पृष्ठ १। २१

का पत्रपर प्राप्त हुआ।^१ कवि ने ग्रंथ का सनापति-काल सं० १७६१ की विजयपदशमी तिथि है—

‘सतत सतरं स सतते विजेदसमी कौ

ग्रंथ श्री सनापत भई है मानमायनी।^२

इस प्रति की लिपिकार रत्नकरि नाम की जैन महिला थीं जिन्होंने इसे बाबूपर में सं० १९५० में अपने पुत्र किशनदास के अध्ययन के लिए लिपिबद्ध किया।^३ किशन दासजी की प्रति पुण्य है और १७ पत्रों पर लिपिबद्ध है। इसमें केवल १२ कवित्त हैं। रचना के प्रथमोक्त से विहित होता है कि किशन भारतीय साहित्यिक परम्पराओं से ही सुपरिचित न थे इसल कवि भी थे। इन्होंने जैन-प्रिय विषयों का सुबोध धारण और मधुर भाषा में बहान किया है। विदेशी शब्दों और मुहावरों का भी इनकी रचना में प्रभाव नहीं है। रचना माध और भाषा दोनों दृष्टियों से प्रशंसी है। जैसे—

नागनि-सी बेमि कारी बामुरा-सी पादी पारी,

मान्य स समारी चोर गसी टोय टरना।

तन-सर धा भौ बल बोबन सु भव-भय

विष कंडु मुन कु मुनाल मन हरना।

नासा मुक बंत बाध, नाभि क्य कटि सिद्ध

बिमत मुकवि जंज रंज-वंज बरना

अहो मेरे मन मूय पोत बेमि प्यान-हृग

इहै बन छेरि काडू और ठौर बरना ॥^४

१६ मूपरदास

इनके सम्बन्ध में अभी तक इतना ही विहित हुआ है कि ये धारवा निजामी संभ्रमबास जैन थे और इन्होंने विजय की घंटाहूँ घंटाघड़ी के उत्तरार्ध में तीन काव्यों की रचना की - १ पावबादास २ जैनघटक ३ पयसंग्रह। मीथिकास्य की दृष्टि से इनका जैन घटक ही उत्प्रेक्ष्य है।

जैन घटक^५—यद्यपि जैन घटक में १०७ पद्य होने का उल्लेख भी किया

१ प्रति सख्या क २६१

२ किशन दासजी, पद्य १२

३ ‘दंडि की किशन दासजी सनापत संमन् १९६० पत्रे मीठी फामुल बदि ६ बीने सूर्य (विषय) बेमि रत्न करि बामुपर पद्ये गुड की किशन दास जि बाबुनाय पार रनीमार (बही, पुष्पिजा)

४ बही पत्र ७।२७

५ मूपरदास : जैन दास, प्र० पीर सेवा मंदिर, दरियागंज दिल्ली, सं० २००७

गया है। तथापि दिग्धी से प्रकाशित संस्करण में पुरे एक ही पद्य है जो 'गठक' नाम को सार्वक करके है। इस काव्य के प्रथम छोसह तथा अंतिम बीस पद्यों में 'जनों के तीव्रकों की स्तुति-वन्दना तथा जैनधर्म की श्रेष्ठता का बर्णन है। मध्यवर्ती ६४ पद्यों में जैन-नीति का ऐम सरस-सुन्दर पद्य है जिनके अधिकांश को प्रत्येक धर्म का अनुयायी निस्संकोच ग्रहण कर सकता है। काव्य में छहों प्रकार की नीति का सम्मेलन किया गया है। व्यक्तिगत नीति में शरीर की नदबरता तथा ममिमता देह की दुर्ममता बाह्यज में शरीर की निःशस्तता मजुर भापण स्वाध्याय की प्रशंसा धैर्य विवेक संयम आदि की रसाभा तथा मा-त लप्या काम क्रोध आदि की निन्दा का बर्णन है। पारि वारिक सम्बन्धों को भूटा धीर स्वाध्याय बताया गया है तथा परदारविगमन का प्रयत्न निषेध किया गया है। सामाजिक नीति में गुरु-सेवा सज्जन-दुर्मन कुकवि वेभ्यामम निषेध मित्राधिकों की स्वार्थपरायणता प्रमृति इन-गिने विषयों की ही बर्बा दिखाई देती है। आर्थिक नीति में धर्म के महत्त्व का बर्णन नहीं है परन्तु जूधा धीर बोरी का निषेध तथा धान की प्रेरणा लूभ की मई है। प्राणि-नीति में घाघेट, पशु ममि मास मठ आदि के सेवन का धोर विराध किया गया है। मिथित नीति के अतर्गत बिराम्य समय का मुख्य अविठय्य की अनिवायता मरु की अपरिहार्यता आदि का सुन्दर उपदेश है। इस प्रकार यद्यपि विषयों का अधिक विस्तार नहीं है तथापि मानव व्यवहार से सम्बन्धित मुख्य मुख्य सभी विषयों को धोर संकेत कर दिया गया है।

वर्ष-विषयों की दृष्टि से काव्य में कोई विधेयता नहीं है। जन धीर जैनेतर संसृजत-वर्मि इन विषयों पर पर्याप्त मिल कुके ये। भूपरमास निस्त्यग्देह उनसे प्रभावित हुए है। जैसे—

घातुपर्वत नृणां परिनिर्त रात्रौ तज्ज गतनु,
 तस्त्वार्यस्य परस्य कार्यमपरं यात्स्यनुत्तरवपो ।
 दोषं ध्यापिपिपोषपुत्ताहित टेषादिनिर्मांमले
 धीये वारितरपञ्चकारतरे सौमं गुः प्राखिताम् ॥१॥ (मनुहरि)
 सो वर्य घातु ताया सेवा करि देजा त्व
 घायो हो अकारण हा जेपन धिख्य रे ।

१ नाम-प्रस्ताव अत हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (भागी, १९४० ई०) पृ. १७८

२ जयन्तियों की घातु ही एव है जिसमें से घायो हो रात्रों में ही व्यक्तेन हा जाती है। 'य घायो का भी घायो वचन धीर पञ्चमे में निकल जाती है। एव समय योग-योग आदि से गज कु-तों में पौन जाता है। इसलिये, एव ही रात्रों का शान्त पदत इस जेपन में प्राणिनों को गुद प्ती? (मनुहरि प्राकृतयम् पृ. १७१-४९)

आधो भे झनेक रोग मानदुख रदा भोग,
 और हु संयोग केते ऐसे वीत जाय रे ॥
 बायी अय कहा रही साहि तू बिचार सही,
 पारब की बात यही नीके मन साय रे ।
 प्रातिर में बाब ती प्रतासी पर इतने में,
 भाय फंसि फर बीच दोनो समुझाय रे ॥^१ (भूमरदास)

उक्त पद्यों की तुलना से विदित होता है कि कवि ने अपने कवित्त के पूर्वाह्न में तो भर्तृहरि का भाव ग्रहण किया है परन्तु उत्तरार्द्ध में बहु स्वतन्त्र पद्य पर प्रसर हुआ है । इसके विरुद्ध कुछ पद्यों में तो अनुवाद ही कर दिया गया है । जैसे यशिय पदुहिंसा के विरोध में सोमदेव ने लिखा है—

गाह् स्पर्शस्तोपभोगतृपितो गान्धर्षितस्त्व मया ।
 संतुष्टस्तुलमदायोग सततं हर्तुं न युक्त तव ॥
 स्पर्शं यान्ति यत्र स्वया विनिहता यसें मुक्तं प्राणिनो ।
 यसं हि न करोषि मातृपितृभिः पुत्रैस्तथा भाग्यवं ॥^२
 भूमरदास ने उक्त पद्य का हिन्दी रूपांतर इस प्रकार किया है—
 कहे पदु बीन मुन यत के परंपा माहि
 होमत हुदायन में कोन सो यदार्थ है ।
 स्पर्श-जुस में न यही, बेहु मुझे यों न यहाँ,
 भास प्राय यहाँ मेरे यही मन भाई है ॥
 जो तू यह जानत है येव यों यस्तानत है
 प्राय यलो जीव पाव स्वर्ग मुप्तदाई है ।
 बारें बयों न दीर दामें अपने कुदृ ब ही बों,
 मोहि जनि बारें यषयीश की हुहाई है ॥^३

उपर्युक्त पद्यों की तुलना इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि भूमर द्वारा अनुदित पद्य की मौलिक रचना की सरलता से स्पष्ट है । वस्तुतः यह सरलता

१ भूमरदास : अनेक दास, पृष्ठ ११२७

२ अय—दक्षिण का पशु या सर्प से पहला है—“न म स्वयं मुषों के लिए समाहित हूँ और न भने तुम्हने पित्त वस्तु की याचना की है । म तो सरा शिकके बापर भी सतुष्ट रहता हूँ । इसलिए तुम्हारे द्वारा मेरा अय उचित नहीं है । जिस प्राणियों को मुझ दयाय नार बलते हो यदि य स्वर्ग में जाते हैं तो तुम अपने माता, पिता पुत्रों तथा दाम्पत्यों की मरु में दक्षिण बयों माहों देते ? (सोमदेव यशस्तिसक, जननदरु पृष्ठ १८ पर उद्धृत)

धीर भावपूर्वता ही ऐसे गुण हैं जिनसे भूमर-राजक का विशेष महत्त्व है। कुछ ऐसे गिने शौहों को छोड़कर शेष सब पद्य पाठक को मापमग्न या रसहीन करने में समर्थ हैं।

वीरराजक की भाषा साफ़-सुबरी और मधुर साहित्यिक ब्रजभाषा है। उसमें वही कहीं यार सत्ताह, माफिक, गाफिल वगैरि प्रचलित सुबोध विदेशी शब्द भी दिखाई देते हैं। कुछ पद्यों में समर्थ वर्ये रज्जे मुर्खे आदि प्राकृतभाषा शब्दों का भी प्रयोग दिखाई देता है। कुछ एक कड़ियों तथा सोकोकितियाँ भी प्रयुक्त की गई हैं। जैसे—

घ घ असुम्न की घ सियान में, भौंन्त हूँ रज राम कुहाई ।^१

‘रागी बिन रागी के बिघार में यदौई भेव

जैसे भटा पक्ष काहूँ काहूँ को बयारें हूँ ।^२

‘जेतत खेन जितारि गर्व

रहि जाइ बयो शतरंज की बाजी ॥^३

वीरराजक एक मुक्तक काव्य है जिसमें प्रायः तथ्यनिरूपक उपदेशात्मक व्याख्यात्मक और ऐतिहासिक घटियाँ व्यवहृत की गई हैं। एक पद्य^४ में ‘सप्तशत’ शब्दी का भी प्रयोग किया गया है जिस का प्रयोग गोरखनाम की बाणी में हम देख ही चुके हैं। इस काव्य में ३१ तथा ३२ नामांशों का सर्वथा दुर्मिल और मतगम्य सबंधा छप्पय (छिहाभोन्न) मतहृत्कविष्ठ शोहा धीर सोरठा छ वों का व्यवहार किया गया है। शोहों तथा सोरठों की अपेक्षा कवित्त सबंधे धीर छप्पय अधिक सरस है। अनुप्रास तथा काक ही कवि के प्रियतर घलंकार हैं। अन्य घलंकारों का प्रयोग विरल है। प्रसाद तथा माधुर्य पुरों से रचना प्रपूण है।

व्यावहारिक नीति की स्पृहता क रहते हुए भी वीरराजक अपने सरस भाषणों तथा उपदेशों के कारण हिन्दी नीतिकाम्य में विशेष स्थान रखता है। एक उदाहरण नीजिए—

राग उर प्रय श य भयो, सतृजं कय लोमल साज येबाई ।

रांगर विना नर सीप रहे बिसनाधिक सेवन की गुमराई ॥

तत्पर धीर रज रसपाय्य वहा कहिये तिन की निठुराई ।

घ घ असुम्न की घ सियान में भौंन्त हूँ रज राम कुहाई ॥^५

पाद्य

बीरनी—कन्नौज निवासी दूधे ब्राह्मण पाय का पद्य संभव १७२३ कहा जाता है।^६ इनके पद्यों का जो कोई कृत प्राप्त नहीं है परन्तु इनकी पाठनी पीढ़ी क सोमनाथके मगधे हुए सराय पाय या पीथरी सराय नाम के ग्राम में अब तक विद्यमान है।

१. ४ भूदराज, जगदात्मक, पृष्ठ : २४१६४, ८१९८ १३१३२, १८१९९

२. कृते पद्य २४१६४

३. राजनरेण बिनारी : कविता बीसवी भाग १, पृष्ठ ४६९

यह पाँच कम्पनीय रेलवे स्टेशन से पश्चिम की ओर केवल घाय मीन पर बसा हुआ है कुछ लोग इन्हें अहमपुर बिसे के किसी ग्राम का ओर कुछ छपरे का निवासी बताते हैं। इन्हें छपरा-निवासी बताते बानों का कथन है कि घाय की पुत्रवधु कम्पनी की भी कबिता करती थीं और घाय की बातों का लडम भी कर देती थीं। इसीसे छेकर के कम्पनी में जा बसे थे। कहते हैं कि ज्योतिष-ज्ञान से इन्हें विदित हो गया था कि इनकी मृत्यु सरोवर में स्नान करने से होगी। इसलिये इन्होंने तामाब में नहाना ही रखा दिया। परन्तु एक दिन इन्हें कुछ मित्र बसात् तामाब में खीच से गये और वहाँ किनी कमे में बोटी उतार आने से ये डूब गये। उस समय इनके मुख से यह पद्य निकला—

घानत रहा घाय निबु छि । प्रार्थ कस विगासे बुद्धि ॥^१

कृति-परिचय—घाय की सोकोक्तिओं से विदित होता है कि इन्हें हृदि ज्योतिष और नीति का अच्छा ज्ञान था। यद्यपि उनकी अधिकतर रचना बेटी-बाड़ी से सम्बन्धित है तथापि नीति-विषय एक ही के समग्र जो सोकोक्तियाँ प्राप्त होती हैं, उनसे उनके गम्भीर अनुभव का जो ज्ञान परिचय मिल जाता है। वे प्राचीन ग्रंथों से समुचित प्रतीत नहीं होतीं कल कर्णकंठ-परम्परा से प्राप्त और कुछ कवि के प्रारम्भानुभव पर प्रभाव प्रतीत होती हैं। उनमें अधिक साहित्यिक छोटक की लोच निष्पन्न है तथापि स्वास्थ्य कौन भिन्नारी वन जायगे किसे काम में किन्तु व्यक्ति चाहिएँ, तीन निष्पन्न कार्य बार मुबं किन पाँच का नाच प्रबस्यमाबी है सवगमय गार्हस्थ्य समा गिन माता प्रभागिन नारी पाँच मूर्ध ज्ञातियाँ पेदू की मीठ पर न रोये बड़ा बही जो काब सवार, कैसी काट पर न सोये प्रादि विषयों पर स्वामादिक धीति से जो कहावतें रची गई हैं वे उपेक्ष्य नहीं हैं। इनकी भाषा पर पूरबी प्रभाव अनेक स्वार्थों पर लक्षित होता है। बोहा भीपई भीपाई प्रादि छत्र प्रयुक्त विषय हैं परन्तु दो-दो चरणों से भी काम जाता गया है। अभिव्यक्ति के उत्कृष्ट के प्रभाव के कारण भले ही वे सुपठित लोगों को महत्त्वपूर्ण न समें प्राचीण जनता के कठ और खोज का ज्ञानादियों एक रूपार रही हैं और रहेंगी।

घाय और सातबंद—सातबंद की छिनाल पचीसी का परिचय हमने अग्रज दिया है। उसके एक पद्य से मिसठा कुसठा केवल एक पद्य घाय की सोकोक्तिओं से समुचित है—

पर मुछ देज घपरा मुछ गोबे, मारग जाती सटक जोबे ।

गामि मंडल जो दिहुँति विपारै तो छिनाल क्या होल पजाबे ।^२ (सातबंद)

१ रामनपेग त्रिपाठी कबिता कौमुदी, भाग १, पृष्ठ ४६६

२ सातबंद छिनालपचीसी, पृष्ठ १

धीर भावपूर्णता ही ऐसे गुण हैं जिससे शूबर-दातक का विशेष महत्त्व है। कुछ इन्हे गिने दोहों को छोड़कर शेष सब पद्य पाठक को माधमग या रसमील करने में समर्थ हैं।

जैनदातक की भाषा छात्र-सुपरी धीर मधुर साहित्यिक ब्रजभाषा है। उसमें बहो कहीं यार, समाह, माफिक गाफिस बग आदि प्रचलित शुभोप विदेशी शब्द भी दिखाई देते हैं। कुछ पद्यों में सम्ये वप्ये क्वये मुक्के आदि प्राकृतभाष शब्दों का भी प्रयोग दिखाई देता है। कुछ एक कवियों तथा सोकोक्तिमयों भी प्रयुक्त को गई है। जैसे—

अथ अमूमन की अलियान में भीषत है रज राम दुहाई ।^१

‘राखी बिल रागी के बिपार में वड़ीई भव

जैसे भटा बब काहू काहू को बपारें है ।^२

ऐसत सोत जितारि गये,

रहि काइ बपी अतरज की बाजी ॥^३

जैनदातक एक मुक्तक काव्य है जिसमें प्रायः तथ्यनिरूपक उपदेशात्मक व्याख्यात्मक धीर ऐतिहासिक घटिया व्यबहृत की गई हैं। एक पद्य^४ में ‘सप्तवार’ संज्ञी का भी प्रयोग किया गया है जिस का प्रयोग गोरक्षनाथ की बाणी में हम देख ही चुके हैं। इस काव्य में ३१ तथा ३२ भावार्थों का सर्वथा दुर्लभ धीर मतपर्वद सर्वथा छप्य (सिद्धात्मोक्त) समहृत्कवित्त दोहा धीर छोरटा छ बों का व्यवहार किया गया है। दोहों तथा छोरटों की घपेला कवित्त सर्वथे धीर छप्य अधिक सरस है। अमूपाश तथा काक ही कवि के प्रियतर घर्षकार हैं। काव्य घर्षकारों का प्रयोग बिरस है। प्रचार तथा माधुर्य गुणों से रचना प्रयुणं है।

व्यावहारिक नीति की स्पृता क रहने हुए भी जैनदातक काव्यने तरस घाघर्षात्मक उपदेशों के कारण हिन्दी नीतिकाम्य में विशय स्व म ररता है। एक उदाहरण नीजिए—

अथ जई जग अथ भवी, सहों क्य सोगन नाज येबाई ।

सीघ दिना भर सीघ रहे बिसमादिक सेवन बी गुधराई ॥

तापर और रज रसनाम्य, बहा दहिये तिन की मिठुप्राई ।

अथ अमूमन की अलियान में भीषत है रज राम दुहाई ॥^५

घाघ

वीरनी—बन्नीज निवासी दूवे ब्राह्मण पाय का जग सक्त १७५३ कहा पाठा है।^६ इन्हे पूर्वजों का को काई बृत प्राय गरी है। वरतु इनकी बाठनी वीकी के सोन नरक गगाय हुए मरय पाय मा पीपटी सराय नाम के नाम म घब तक विद्यमान है।

१. अमूमन जैनदातक, पृष्ठ : २५१, २५८, २५३, २५४, २५५

२. कृ. पृष्ठ २५३

३. राममरोन सिपाजी कविता बीपुडी भाग १, पृष्ठ ४६६

यह माँव कम्भीज रेसने स्टेसन से पश्चिम की ओर केवल प्रायः मीस पर बसा हुआ है। कुछ लोग इन्हें ऊनपुर बिले के किछी ग्राम का घोर कुछ छपरे का निवासी बताते हैं। इन्हें ऊनपुर-निवासी बताने वालों का कथन है कि बाप की पुत्रवधू कम्भीज की थी कबिता करती थी घोर बाप की बातों का खंडन भी कर देती थी। इसीसे झोंकर वे कम्भीज में जा बसे थे। कहते हैं कि ज्योतिष-ज्ञान से इन्हें विरिठ हो गया था कि इनकी मृत्यु सरोवर में स्नान करने से होगी। इसलिए इन्होंने तामाव में रहना ही त्याग दिया। परन्तु एक दिन इन्हें कुछ मित्र बसात तामाव में खींच ले गये घोर वहाँ किन्हीं क्षणों में जोड़ी बलम जान से य डूब गये। उस समय इनके मुख से यह पद्य निकला—

प्राप्त रहा बाप निबुद्धि । प्रायः काल विनास युद्धि ॥^१

कृति-परिषय—बाप की सोकोचितियों से विरिठ होता है कि इन्हें इति ज्योतिष घोर नीति का प्रकृत ज्ञान था। यद्यपि उनकी प्रविष्टतर रचना खेती-बाड़ी से सम्बन्धित है तथापि नीति-विषय एक ही वे समग्र या सोकोचितियों प्राप्त होती हैं उनसे उनके गम्भीर अनुभव का भी खाना परिषय मिल जाता है। वे प्राचीन पंथों से अनुचित प्रतीत नहीं होतीं कुछ कणकठ-मरम्परा से प्राप्त घोर कुछ कवि के आत्मानुभव पर प्राप्त प्रतीत होती हैं। उनमें प्रकृत साहित्यिक सौष्ठव की लाज निष्कम है तथापि स्वास्थ्य कौन भियारी बन जायगी किस काम में कितने व्यक्ति चाहिएँ, तीन निष्कम काम चार मूर्ख किन पाँच का नास प्रकृतभाषी है सवपमम पार्हस्य धमा गिन माता धनागिन माटी पाँच मूर्ख ज्ञातियाँ वेदू की मीत्र पर न रोये बड़ा बड़ी जो काज सभारै, कसी पान पर न सोये प्रादि विषयों पर स्वाभाविक धीनि से जो बहाराते रची गई हैं वे उपेक्ष्य नहीं हैं। इनकी भाषा पर पूरबी प्रभाव प्रकृत म्पाकों पर समित होता है। दोहा चौपई चौपई प्रादि छन्द प्रयुक्त विवे गए हैं परन्तु खोना चरखों से भी काम चलाया गया है। प्रमिष्यक्ति के उत्कण्ठ के प्रभाव के कारण मम ही वे सुपठित लोगों का महत्त्वपूर्ण न समझे प्राचीन जनता के कंठ और योत्र के वृत्तान्तियों एक शृंगार रही हैं और रहेंगी।

बाप और मासधर—मासधर की 'छिनाम पर्वणी' का परिचय हमने प्रकृत किया है। उसके एक पद्य से निम्नता मुमता कथन एक पद्य का प्रकृत है—

पर मुझ देज प्रपण मुझ गौरव, मारण जानो स्तुते खेरै ।

गामि मंडल जो दिहसि दिपारै, ती छिनाम का इन दन्त है (चरन)।

१ रामनपेय त्रिपाठी कबिता कौमुदी, भाग १, पृष्ठ ४६६

२ मासधर : छिनामपर्वणी, पृष्ठ १

परमस्त देखि अपन मुस गोवे, घूरी कंकन बेसरि टोवे ।

घाँवर टारि के वेर रिप्रावे, अब छिमारि का होस बजाये ॥^१ (घाय)

उक्त दोनों पदों के प्रथम तथा चतुर्थ चरण भाव घोर माया दोनों की दृष्टि से घोर तृतीय चरण भाव-माय की दृष्टि से समान है । द्वितीय चरण दोनों के भिन्न भिन्न हैं । इनने प्राकृत साम्य के होते हुए इन्हें पृथक-पृथक कवियों की कृतियाँ मानना कठिन है । दोनों कवियों के काम भी अभी तक निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है । अनुमान से दोनों ही धर्मसामयिक बताये गए हैं । ऐसी स्थिति में हमारा अनुमान यह है कि यह पद्य सामन्त का ही होगा क्योंकि उसी ने मिहामी नाम की कुसटा के घाँवरण से प्रेरित होकर छिनाम पचीसी की रचना की थी । सामन्त निरक्षर ही घाय से उच्च कोटि के कवि थे इसलिए उनका काम के पद्य से प्रेरणा पाकर छिनाम पचीसी की रचना करना भी युक्तिसंगत नहीं समता । इसलिए ऐसे लगता है कि सामन्त का ही पद्य शोक में बिभूत रूप में प्रचलित होकर माय की कविता में भा मुसा है ।

घस्तु अब माय की कुछ मोकोवित्तियाँ बेकिये—

घाठ कटौती मढ़ा पीरें सोरह मकुनी घाय ।

उसके मरे न रोइये, घर का हरिहर बाय ॥^२

बाय बाँस बिगड़ा बिवा बारी बटा बैल ।

घ्योहर बढ़ई घन बबुर बात मुगो यह छस ॥

जो बकार बारह बसैं सो पुरन पिरहस्त ।

धीरन जो गुप्त बै सवा, घाय रहै असमस्त ॥^३

१८ घाघा हित बुन्दावनदास

पुष्कर के भौड़ ग्राहण बाबा हित बुन्दावनदास (जन्म सं० १७६१) श्रीहृष्य के परममस्त थे घोर शोकप्रवाह के अनुसार एक सात पदों तथा छन्दों के रचयिता । नीतिकाम्य की दृष्टि से इनकी 'कतिहरिज बेनी' एक प्रसिद्धी रचना है । इसकी समाप्ति सं० १५१२ की माय कृष्णा मन्नी को हुई थी—

बदि नौमी तियि माह टारह से बारह बरप ।

कति के बरित अयाह, तिन में हृष्य मजन सकल ॥^४

१ सं० श्रीहृष्य पुस्तक घाय घोर मढ़री की कथापत्तें (प्र० पुस्तक सदन बनारस, पंचम संस्करण) पृ० १२।२३

२ वही पृष्ठ २०।६४

३ वही पृष्ठ २१।७१

४ हित बुन्दावनदास कतिहरिज बेनी (प्र० विद्यालय मोरघर्मदास, बुन्दावन, सं० २००६) पृष्ठ १५।१२३

शासकी ने स्वयं ही स्वीकृत किया है कि कसियुग के जिन प्रभों का व्यासजी ने महाभारत और श्रीमद्भागवत में वर्णन किया है वे प्रकट दिखाई दे रहे हैं।^१ इससे विदित होता है कि बेनी रचना की प्रख्यात उम्हें उक्त प्रभों के अध्ययन तथा समकालीन परिघटियों के प्रबलोकन से प्राप्त हुई। उदाहरणार्थ पत्नी के निम्नलिखित पद्यों पर भागवत का प्रभाव सहज ही देख जा सकता है—

(क) प्रजा हि सृष्टे रात्रन्वेतिपुल्लोईस्सुयर्ममि ।

धाष्टिदम्भवारद्रविराण धास्यन्ति विरिक्ताननम् ॥

सासुसासिनियजीवकसपुष्पाष्टिभोजना ।

धनाभुल्या बिनकनन्ति दुभिसकरपीडिता ॥^२

सोमी निर्दय और डाकू राजा प्रजा की स्त्रियों और सम्पत्ति को अपहृत कर सेंगे जिससे लोग बनपर्वतों में भाग जाएँगे और कद-भूसादि से उदरपूर्ति करा। वे वर्षा के न हान से अकाल और राज-करों के भार से नष्ट हो जाएँगे।

गुण अन्यायी घोर, परदा की पासन तथ्यो।

संदि प्रनोति अघोर, कसि प्रताप हरि ह्या विनु ॥

प्रजा हृपन कंगाम, अग्न बिना बित बिस छिरे।

पुनि पुनि परत अकाल, कसि प्रताप हरि ह्या विनु ॥^३

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार भागवत के द्वादश स्कन्ध के द्वितीय तथा तृतीय अध्यायों में कसियुग के प्रभाव का निरूपण कर तृतीय के अन्त में यह कहा गया है कि कसियुग का गुण यह है कि उसमें भय-नाम के कीर्तन-मात्र से माया हो जाता है उसी प्रकार बेनी के पहल १०२ श्लोकों में कसि का प्रभाव निरूपित कर प्रतिम कुछ श्लोकों में उसका उपसुक्त ही गुण बखिात किया गया है।

बेनी में कुल १३० श्लोक हैं। प्रथम १०२ श्लोकों का अत्युप शरण कसि प्रभाव हरि ह्या विनु है परन्तु १३ श्लोकों का यह कसिगुण संतन सिपी और प्रतिम १५ श्लोकों का मित्त मित्त। जैसे ही सभी प्रकार की नीति का निरूपण इस रचना में दिखाई देता है परन्तु पारिारिक और सामाजिक नीति पर बल अधिक है। बिबाह, पचास सास समुद देवर जेठ गमव आदि के विरुद्ध पत्नी का पति के काम करना पति का माता-पिता से द्यत होकर पुनक रहना तथा सास-समुद, सासा-साथी आदि

१ पृष्ठ, पृष्ठ १४।१२४

२ श्रीमद्भागवत, (गीताप्रेस गोरखपुर), १२।२।८ १०

३ कसि अरिबेनी पृष्ठ ११।११ १२

इसी प्रकार बेनी के पृष्ठ १०।७६, १३।१०६ ३।४ १४।१११ पर कसि का अर्थ अत द्वितीय अर्थ के पृष्ठ १०।१।१४, १२०।३२, ११।८।३२, ११।१।४८ का प्रभाव भी कसित होता है।

से प्रेम करना पत्नी का निरकुस होकर बर बर भ्रमण अधिक सन्तान की उत्पत्ति, उन्हें भ्रूष-नाग दैत्य दम्पती का दुःखित होना आदि बातों का रोचक चित्रण किया गया है। सामाजिक बचाव का बर्तान भी बहुत सच्चा और सुन्दर हुआ है। लोग कपटी की बाणों पर विश्वास करते हैं और सत्यवादी को मारने बीड़ते हैं अगर से मित्रवत् हैं परन्तु हृदय कपट से प्रयुक्त हैं। दुष्टों का सम्मान तथा सज्जनों का अपमान होता है चारों बगलं कर्तव्यव्यवह हो चुके हैं। बर्णसंस्कारों की बहुसता है और गृहबन्धीयों की बिर सदा विप्र आशेट करते हैं। और विषबाएँ शूंगार कण्ठ-उपस्थी बाजारों में समाधि मगाते हैं तो पंच धर्माय-परायण हैं। तनिक से पुष्प का बहुत दिबोरा पीटा जाता है दर्यादि संकटों अनुभूत बातों का उस्नेह किया गया है।

सौमी-सरस व्रजभावा में रबी हुई यह कृति उष्ण वस्त्रनामों के कारण न सही, मुरम पर्यवसान के कारण रोचक बन पड़ी है। कुछ सोरठ श्लोक—

आ कया के बान निगम ब्रवानत कम्य पल ।
ताहि हतत घप्यात, बनि प्रताप हरि कृपा विनु ॥
दस्वी जारौ जेठ, देबर ह्याम बदन करौ ।
सगुर कौन दइ सैठ, कसि प्रताप हरि कृपा विनु ॥^१

इन्हीं की विवेकव्यक्तिका दसौ म मन्त्रि के प्रतिरिक्त नीति के भी कुछ भाव पूर्ण दोहे लिखाई देते हैं। जैसे—

हस पमों लदि पीछरा समुसा भारत चौधि ।
रहौ पुप समय बिचारि क भानि भाग फी लौधि ॥
धौ लौभी निदान घरत नहि बोगहत गुठ इष्ट ।
दरौ फामना सप न नीबू लण्डु ब्यों मिष्ट ॥^२

१६ गिरिधर कविराय

कवि-परिचय—गिरिधर कविराय के जीवन चरित्र के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। विबन्धि मोगर क अनुसार इनका जन्म सं० ७७० ई। के नाम से मात्र अनुमित हाने हैं। इनकी मूढनिया रचना के विषय में यह शोधक विचरती प्रथमित है कि इनका पबोरी दरई न एक ऐसा संग बनाया कि सके पारों पर सगे हुए परा मनुष्य के उस पर सेंटते ही स्वयमन असन मगते थे। राजा ने दरई को बम धनेक तप ममाने का आदेश दिया। दरई की गिरिधर स मटपट थी। उसने मबरी के लिए गिरिधर के आंगन वाले बरी क बूट को मंग लिया। गिरिधर की मनुष्य विषय को जय राजा ने स्वीकृत न किया तब सपत्नीक गिरिधर उस राज्य को

१ कसि चरित्र बली सोरठा २५, २६

२ विवेकव्यक्ति दसौ (सिन्धुनाल गोरपनदास पुस्तकालय, २००६ वि०), दोहा १३६, १४४

ग इधर-उधर भ्रमल करने लगे। कहते हैं, उसी पर्यटन काल में बम्पती ने कुंडलिया
रिग किया और जिन कुंडलियों में 'साईं' शब्द आया है, वे गिरिधर की पत्नी की
सा हैं।

काव्य-विरचय—इनकी रचनाएँ 'कुंडलिया' शीपक से प्रकाशित हो चुकी हैं।^१
पद्य-मध्या पीन पाँच-सी के समग्र है जिन में से साढ़ बार सी के समग्र तो
लिया है और सेप पद्य दोहा छोरठा कवित्त तथा छप्पय छन्दों में लिखे हैं।
ना तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में नीति की तथा द्वितीय में घण्टात्म की
मता है। घण्टात्ममय तृतीय भाग परिशिष्ट-सा प्रतीत होता है। जमें केवल १८
हैं—८ श्लोक ३ कवित्त और ७ छप्पय कुंडलि। एक भी नहीं है। हमें दो कारणों
इस भाग के गिरिधर-कृत होने में संदेह है। प्रथम इसके किसी भी पद्य में गिरिधर
छाप नहीं है। दूसरे इस भाग के एक कवित्त में 'देवीगण' की छाप है—

देवीगण कहे कोई होगहार सोई छू है,

मन में बिचार रैन दिन अनुसर से।^२

सम्भव है किसी सिद्धि कार ने कुछ अपने और कुछ दूसरों के घण्टात्मविषयक
सेकर इसे 'मध गिस्ता' क नाम से गिरिधर के पद्या के अन्त में जोड़ लिया हो और
उसी रूप में प्रकाशित कर दिये गए हों।

धर्म-विषय—इनके काव्य विषय छन्दों के नीति-काव्य के समान हैं परन्तु
वेपदा यह है कि इनका काव्य में ऐहिकता की मात्रा अतों से अधिक है। अविभक्त
में गिरिधर ने शरीर को मन्नागार तथा प्रेम के अधोम्य कहा है^३ और रोय को
में धौप-सेवन की वेपदा यगाजस के पात्र को विषय महत्त्व दिा है—

सब के दया हृदय की पान करे गंपरार।

देहपात सों ना टरे पुनि बुझ कर विचार ॥^४

पोगत मुग, धनीय, गाँजा परस मग हुक्का प्रादि से अपने शरीर तथा
द्वे के बल को विमाहम बलों की। गिरिधर ने अनेक पद्यों में सूब खबर भी है। एक
कानोय का दध्वभिन्न देखने योग्य है—

हुक्का से हुक्कात गई नियम धर्म मयो छूट।

दाम कर्ष सिवो तमातू, गई हिये की पूर ॥

गई हिये को फूट, प्राग को धर-धर बोसे।

मित धर प्राग को भ्राम सोई हुक्कातो बोसे ॥

कह गिरिधर कदिराय' सगे पब यम को बरका।

प्राग प्रायोगे छूट सहाय होवे नहि हुक्का ॥^५

गिरिधर की रचना से स्पष्ट होता है कि वे संस्कृत फारसी और हिन्दी भाषाओं से तथा वे अन्त ज्योतिष व्याकरण आदि विषयों से सुपरिचित थे। ऐसा होते हुए भी उन्होंने भाषा (हिन्दी) से इतनी सरसी फारसी और अरबी भाषाओं में लिखे ग्रंथों की बातों को गनोड़ा कहा है—

गनोड़ा भाषा का कोई अर्थ सरसता का श्लेष ।
कोई गनोड़ा पारसी अथवा पुनि होय ॥
अथवा पुनि होय, गनोड़ा दुर्लभ अरबी ।
यद्भोजन विभ विद्या तत्र ज्यों पाक में अरबी ॥
कह गिरिधर अत्रिण्य यत् समझे कोई शीटा ।
जा करि आतम शाम भसा है सोई गनोड़ा ॥^१

इसका कारण यही समझना चाहिए कि यद्भविद् मनुष्यों के लिए पुस्तकीय ज्ञान का महत्त्व नहीं रह जाता—

अधिक ज्ञानो पुष्य भात बव पार्यं यातो ?^२

पारिवारिक नीति—पारिवारिक नीति के क्षेत्र में इन्होंने गार्हस्थ्य को अग्रता कहा है वयं कि दिन रात बृत्त संन लक्षण आदि की चिन्ता से मनुष्य की विपुल बुद्धि भी नष्ट हो जाती है और मनुष्य आत्मचिन्ता को विस्मृत कर बैठता है।^३ बेटा बेटा माई पिता स्वयं आदि सब मठलक्ष के मार हैं फिर भी इन्होंने विनीतपण प्रकृत आदि के उदाहरणों द्वारा भ्रातृप्रेम तथा पिता-पुत्र सम्बन्धस्थ स्थिर रखने की प्रेरणा दी है।^४ विवाह के परबान् पुष्य का पत्नी से भोज्य माता पिता से भ्यङ्गा, विदुग्ध को छोड़ र समुदाय में जा रहना आदि विषयों पर गिरिधर के पद्य गार्हस्थ्य जीवन का एक वास्तविक ग्रन्थ निश्चय पदा प्रस्तुत करते हैं।^५

साप्ताहिक नीति—गुरु के प्रति यज्ञा बर्णापम तथा स्त्रियों की निन्दा, पंगति का भसा-बुरा प्रभाव बुद्धन चतुषि-मरकार आदि विषयों के प्रति गिरिधर का दुर्लक्षण सर्वो वा-सा ही है परन्तु यथायोग्य व्यवहार और ज्ञान-दान के समय बात-बात पूछ घेन की रचना उनसे विमोक्षण है—

जो तुम्ह को तोला भके, तू भुक्त सेर पधोस
मतेर करे इष्ट तस्मै मर, तू कीत्र हाथ बरिस ॥
कीत्र हाथ बरिस रीति व्यवहारिक ऐसी ।
धत्ता-जंता देय जगत में पुदा लेती ॥

१ ३ गिरिधर अत्रिण्य दुर्लभिया पृष्ठ ४५१२२ ६२१७८, २०१२६२

४ " " " , पृष्ठ ८८१२५७ ६१३

५ " " " , पृष्ठ ६१४, ७१६

कह विरिषर कविराय रोते के संग रोते धो ।
हंसते संग हंस मिलो पुण्य हंस के बोले धो ॥^१

सार्थिक नीति—यद्यपि इहानि

‘तीनों’ मूस उपाधि की तर जोरु जामीन ।^२

कहकर भूमि धीर नारां क समान बन की भी निन्दा ही की है उपाधि पु
पदों में गहस्य के रीत की रक्षा के लिए मन को प्रतिबन्ध कहा है—

कौड़ी वाले सान् को कौड़ी मिले न काम ।

कौड़ी बिना गहस्य का कोई सेव न नाम ॥^३

गहस्य क लिए इन्होंने माष ठा को मृत्यु से भी युग कहा है परन्तु फल
के लिए उसकी अनुज्ञा है । हाँ, फकीर को भी घ न-जस की ही याचना करनी चाहि
धन्य पदावों की गही ।

मिथित नीति—मिश्रित विषयों में मिथित ने आत्मा को परमात्मा से प्रति
समझने तथा आत्मसाक्षात्कार पर बहुत धन दिया है । जीवन की नश्वरता मुक्त हुए
कर्मफल आदि विषय सन्त-शास्त्र के मुख्य ही हैं । इस क्षेत्र में मन्त्र (मत्तान्त्र
का अत्युप ध्यान इनकी अपनी विशेषता है । कारण यह कि मत्तान्त्र म्पित्त आ
मत्त के बाप तथा धन्य मत्त के गुण भी नहीं देख सकता । इसलिये विरिषर ने मन्त्र
को कुकर से भी कुत्सित कहा है धीर उस समय से ऐसे ही बचने को कहा है
पायस कुत्से से । उनके मत्त में परम्बर पीर धीनिया सब मन्त्र के कुत्से हैं मीमा
एक वास्तविक धर्म है ।^४ केदारनाथ यात्रा के कुछ सौदा साधी सिपाही आदि विषय
पर भी इन्होंने कौतुकपूर्ण पद्य रच हैं ।

रस और भाव— इनकी रचना में सार्थिक छटकने वाली बात है कल्पना
धीर भाव की म्यूनता । इसीलिए इनके अधिकांश छन्दों को काव्य न कहकर पद्य म
मानना ही उचित प्रतीत होता है । हाँ कुछ एक धन्योक्तिपूर्ण श्रवण ऐसी हैं
हृदय को प्रभावित करती ही हैं ।

भाषा—भाषा के विषय में इनका कोई विशेष सिद्धान्त नहीं मक्षित होता
यद्यपि इनकी रचनाएँ प्रजभाषा में हैं तथापि उसमें परधी फारसी संस्कृत पंजा
आदि के शब्दों का बृहत् अधिक प्रयोग किया गया है । बेरानी धीर जामीन कवि
ध्यान मार्गों पर धा भाषा पर नहीं । इसीलिए जहाँ प्रसलेष धन्योप्य धराइ सुखे
वियाकरण आदि संस्कृत के लिखित शब्दों का प्रयोग धनकच दिखाई देता है वहीं फला
बटकार पिटर, बिनादर फजीहत कुरमव आदि फारसी-अरबी शब्दों का धीर पर

१ विरिषर कविराय कुंडलिया, पृष्ठ ११०।१२६, २८।१६२

२, ३ " " " , पृष्ठ ८१।१३४ ८५।२४२

४ " " " , पृष्ठ ११० १११, २३६ २३७

कोस प्रादि पंजाबी शब्दों का। कुछ अध्यात्मिक पद्यों में निरिधर से माया से ऐसी क्षिप्रबाह की है जिसे अदृष्टपूर्व ही कहना चाहिए। उनमें जहाँ अनुप्रास की बहुलता है वहाँ अनेक मनीष शब्द भी मह मिले गए हैं। जैसे—

अकस मध्य में अकल हूँ, ना मैं अकल अकल ।
 सकल मध्य में सजल हूँ, ना मैं सकल असकल ॥
 ना मैं सकल असकल, जिस बिस्म में अजिस्म ।
 इस्म मध्य में इस्मइस्म नाहि अजिस्म ॥
 बहु निरिधर कबिराय सकल में सकल अकल ।
 मेरे समुद्र गई पुन्म हो जावे अकल ॥^१

फिर भी इनकी माया की एक विषय । है स्पष्टता और इसीके कारण इनकी अनेक कुंठनियाँ लोगों को कटक्य हैं। प्रतिपाद्य विषयों का अधिकाधिक भोजप्रिय बनाने के लिए इन्होंने लोकप्रचलित शब्दों तथा कहावतों का प्रयोग बहुत अधिक किया है, जैसे—

‘कह निरिधर कबिराय दिले-धो काहे पानी ।’
 अ परो पोसे पीसना कूर पर-पेस जात ।
 ‘कह निरिधर कबिराय बुद्ध जिनका मन बांसा ।
 सो भोयत ब्रह्मानन्द क्योती तिन को संसा ।’
 ‘हाथी मुज सों मीकस्यो, पूछ रही कुछ ज्ये ।
 ‘जो गुड देने से मरे, क्यों कहुर बीजिये गन ।’
 ‘भाये मुस्मा कहूँ तलक, है मसीह तक शोड़ ॥’^२

विषय तथा शैली—निरिधर का समय १५^{वा} शताब्दी के अन्त में ही है और उसमें तथ्यनिरूपक उपदेशात्मक तथा आत्माभिधायक शैलियों की प्रचुरता है। मन्त्रात्मक, धर्मोपदेशात्मक ऐतिहासिक तथा व्याख्यात्मक शैलियाँ भी प्रचुरता की मई हैं परन्तु कुछ एक ही पद्यों में। मन और पास तथा वेद और वीषा के संवाद सुन्दर हैं।^३

छन्द - निरिधर ने अपनी भावामिष्यरचना के लिए जिन छन्दों को लिया है उनका विशेष ऊपर कर दिया गया है। यहाँ इतना ही और कहना है कि इनके अनेक पद्यों में मात्राओं की माया भी ठीक नहीं है जिससे छन्द की गति में बाधा पड़ती है। यहाँ कहीं कुंठनियाँ आरम्भ तो एक छन्द से होती हैं और पर्यन्तिका उसके विद्यत रूप

१ निरिधर कबिराय कुंठनियाँ पद्य ३२१-३२७

२ निरिधर कबिराय कुंठनियाँ, पद्य ११८।३२४

३ निरिधर कबिराय कुंठनियाँ पद्य २३, ११२, २७२, ३६८, ३७१, ३८७

४ निरिधर कबिराय कुंठनियाँ पद्य ३२०-२१ पद्य ८१-८४

से ।^१ एक पद्य में तो धारि धीर श्रुत के दो-दो पद्य दोहा के हैं धीर मध्यम दो पद्य रोमा के ।^२

प्रसकार—गिरिधर का ध्यान न माया को प्रसङ्गत करने की धीर या न भावों को । इसीलिए उनकी रचना में प्रभुगण यमक उपाय उपाय धारि की शीघ्र व्यर्थ है । दृष्टान्तों के प्रयोग कहीं कहीं प्रसङ्ग है परन्तु वे भी प्रतिपाद्य विषय की पृष्टि के लिए ही उपयुक्त हैं प्रसकार उपाय करने के लिए नहीं । हाँ कुछ एक पद्यों में प्रयोक्ति तथा निरुक्ति प्रसकार प्रयोग ही ध्यान आकर्षित कर सते हैं । जैसे—

संहर मटया चाहु गनि बाँठ कहुन रस धोर ।

प्राया ग पुत्र वातरा, ता सों प्रीति न जोर ॥^३ (प्रयोक्ति)

रोह रोहके पादमे ब्रियया जिनका नाम ।

जय धारे छिर रोदये, इह बुद्ध जिनको काम ।^४ (निरुक्ति)^१

गुण—गिरिधर की रचना में प्रसाद गुण प्रधान है और इसी कारण उनकी कुशलियाँ लोकप्रिय बनी हुई हैं । श्लोक तथा माधुर्य की मात्रा पर्याप्त न्यून है । प्रत्येक पद्य प्रहेमिका-श्रेणि काई देने हैं और उनमें प्रसाद की भी स्पृणता है ।

श्लोक—छन्द की गति को अधिकतम बनाने के लिए इन्होंने कहीं-कहीं श्लोक को बहुत मदा रूप दे दिया है । जैसे—

तीनों भूस उपायि की जर जोरु जामीन ।^५

कहीं पर प्रत्येक शब्द भरती क नी दिखाई देत है—

कहु गिरिधर कबिराय धरे यह सच घट तीसत ।

पातुन निगिधिन धारि रहत सब ही के तीसत ॥^६

इसमें धरे यह सब घट तीसत' शब्दों का पुरे पद्य से कोई सम्बन्ध नहीं है, केवल प्रत्यानुप्रास की आवश्यकता पूरी करने को भर दिये गए हैं । कहीं-कहीं पर प्रसंगिक श्लोक भी दिखाई देता है ।^७

संस्कृत-नीतिकाम्य का प्रभाव—यद्यपि इन्होंने ब्रह्मज्ञान के बिना सभी मायाधर्मों के साहित्य को गेड़ा कहा है तथापि व्यावहारिक क्षेत्र में ये भी उनके प्रभाव से मुक्त नहीं रह सके । यह प्रभाव दो क्षेत्रों में सतिज होता है—(१) भाव (२) भाषा ।

(क) भावों का प्रभाव—

दानं भोगो नास्तिस्यी गतधो भवन्ति बिलस्य ।

ये न वदन्ति न मुक्ते कस्य कृतीया गतिर्मवति ॥^८ (मनुस्मृति)

१ गिरिधर कबिराय, कुंडलिया पद्य २०१३८, १५१२६, १८१२६, ७२१२०७, ८१२३४

२ गिरिधर कबिराय कुंडलिया पद्य १५१२५

३ वही, पृष्ठ १०८१२२१

४ अज्ञानप्रसङ्ग पृष्ठ २०१३४

कोस आदि पंजाबी शब्दों का। कुछ अद्वयार्थिक पदों^१ में गिरिधर ने भाषा से ऐसी लिसबाड़ की है जिसे अदृष्टपूर्व ही कहना चाहिए। उनमें जहाँ अनुप्रास की बहुसता है वहाँ अनेक नवीन शब्द भी गड़ लिये गए हैं। जैसे—

अकल मध्य में अकल हूँ, ना मैं अकल अमकल ।
 सकल मध्य में सकल हूँ, ना मैं सकल असकल ॥
 ना मैं सकल असकल, जिस्म जिस्में अदिस्म ।
 इस्म मध्य में इस्मइस्म नाहि अदिस्म ॥
 कह गिरिधर कबिराय नकस में नकल अमकल ।
 मेरे सम्मुख भई गुम्न हो जाये अकस ॥^२

फिर भी इनकी भाषा की एक बिषय । है स्पष्टता और इसीके कारण इनकी अनेक कुंडलिया शोनों को कटक्य है। प्रतिपाद्य बिषयों का अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने के लिए इन्होंने लोकप्रचलित कड़ियों तथा कहावतों का प्रयोग बहुत अधिक किया है, जैसे—

‘कह गिरिधर कबिराय बिकेबो काहे पानी ।’
 ‘अ धरो पीसे पीतना, छूकर धंस-धंस जात ।’
 ‘कह गिरिधर कबिराय बुद्ध जिनका मन खंदा ।
 तो मोम्यत बहानद कटीतो लिज को पंगा ।’
 ‘हायो मुल सों भीरुस्यो पूछ रही कुछ दोष ।’
 ‘जो पुढ देने से मरे क्यों कहुर बीजिये गन ।’
 ‘भागो भुक्सा कहें ततक है मसीर एक बोड़ ॥^३

विमान तथा घोसी—गिरिधर की समय रचना मुख्यतः रूप में ही है और उसमें लघ्वनिरूपक उपदेशात्मक तथा आत्मनिर्भरक दार्शनिकों की प्रचुरता है। संवात्तमक धर्म्यापदेशात्मक ऐतिहासिक तथा व्याख्यात्मक दार्शनिकों भी प्रमुक्त की गई हैं परन्तु कुछ एक ही पदों में। मन और पाज तथा पंड और पोभा के संवात्त मुद्दर है।^४

उन्हें गिरिधर ने अपनी भाषाभिष्यजना के लिए जिन छन्दों को लिया है उनका निर्येय ऊपर कर दिया गया है। यहाँ इतना ही और कहना है कि इनके अनेक पदों में मन्त्रार्थों की संख्या भी ठीक नहीं है जिससे छन्द की गति में बाधा पड़ती है। वहीं-वही कुंडलिया आरम्भ तो एक चरण से होती है और पर्यवसित उसके विद्वत् रूप

१ गिरिधर कबिराय कुंडलिया पद्य ३२१ ३२७

२ गिरिधर कबिराय कुंडलिया, पद्य ११८।३२४

३ गिरिधर कबिराय कुंडलिया पद्य ६३ ११६, २७६, ३६८, ५७१, ३६७

४ गिरिधर कबिराय, कुंडलिया, पद्य ३६०-६१ पद्य ८३-८४

से ।^१ एक पद्य में तो यदि और अन्त के दो-दो कारण बोधा के हैं और मध्यम दो कारण बोधा के ।^२

अलंकार—गिरिधर का ध्यान न माया का अलंकार कामे की ओर था, न भावों को । इसीलिए उनकी रचना में अगुणस यमक उग्रमा उत्प्रेक्षा धादि की खोज व्यर्थ है । वृष्टास्तो के प्रयोग कहीं कहीं अवश्य है परन्तु वे भी प्रतिपाद्य विषय की वृष्टि के लिए ही उपन्यस्त हैं अलंकार उत्पन्न करने के लिए नहीं । हाँ कुछ एक पद्यों में अव्योक्ति तथा निश्चित अलंकार अवश्य ही ध्यान आकर्षित कर लेते हैं । जैसे—

मंजर मटेया बाहु जनि जाँट बहून रस धोर ।

धाय न पूज यासरा ता सों प्रीति न जोर ॥^३ (अव्योक्ति)

रोह रोहके पाइये बिया जिसेया नाम ।

अज धाये फिर रोइये इह सुख जिनको काम ।^४ (निश्चित)

पुन—गिरिधर की रचना में प्रसार गुण प्रधान है और इसी कारण उनकी कुंडलियाँ लोकप्रिय बनी हुई हैं । शोक तथा माधुर्य की मात्रा अत्यन्त मूल्य है । अनेक पद्य प्रहेलिका-से दिखाई देते हैं और उनमें प्रमा की भी मूल्यता है ।

दोष—उस्य की गति को अधिकतर बताने के लिए इन्होंने कहीं-कहीं उग्र को बहुत भद्दा रूप दे दिया है । जैसे—

तीनों मूल अपाधि की, अर जोरु जामीन ।^५

कहीं पर अनेक शब्द भरती के भी दिखाई देते हैं—

कतु गिरिधर कबिराय धरे यह सय घट लीसत ।

पाहुन निशिदिन बारि रहत सब ही के बीसत ॥^६

इनमें धरे यह सब अर्थात् शोकों का पूरे पद्य से कोई सम्बन्ध नहीं है केवल धन्यानुप्रास की आवश्यकता पूरी करने को भर दिये गए हैं । कहीं-कहीं पर अर्थ सरल दोष भी दिखाई देता है ।^७

संस्कृत-नीतिकाम्य का प्रभाव—यद्यपि इन्होंने ब्रह्मज्ञान के बिना सभी भाषाओं के साहित्य को म ठोड़ा कहा है तथापि व्यावहारिक जीवन में ये भी उनके प्रभाव से मुक्त नहीं रहे सके । यह प्रभाव दो क्षेत्रों में सक्षिप्त होता है—(१) भाव (२) माया ।

(क) भावों का प्रभाव—

दानं भोगो मागस्तिवन्नो गतयो धवन्ति विलस्य ।

धो न बहाति न मुञ्चते तस्य तुनीया पतिर्भवति ॥^८ (अनुक्ति)

१ ५ गिरिधर कबिराय कुंडलिया पद्य ५०।१३८, १५।२६, १८।३६, ७२।२०७, ८१।२३४

२ गिरिधर कबिराय, कुंडलिया पद्य १५।२३

३ वही पृष्ठ १०८।३२१

४ सारकाम्यम् पृष्ठ २०।३४

इस धार्मा को गिरिधर ने एक कुडलिया में यों पस्तबिध किया है—

जायो जाय जो जाय रे, बियो जाय सो बेह ।

इन दोनों से जो पचे, सो तुम जानी बेह ॥

सो तुम जानी जेह सिके (किते ?) पुन काम न धाबे ।

सर्व सोक धो बीब पुन पुनि तुम्हे पत्राबे ॥

कह गिरिधर कबिराय घरन ये धन के पायी ।

दान भोग बिम नात्र होत धो बिजौ न जायो ॥^१

संस्कृत के समान प्रारंभी नीतिकारों का प्रभाव भी कहीं तही स्पष्ट दिखाई देता है—

तीनों मूल उपाधि की पर जोक जामीन ।^२

(अ) भाया का प्रनाप

(१) भाग्य फलति सर्वत्र न च बिद्या न च पीठयम् । (संस्कृत सुभाषित)

भा-ग्य सर्वत्र फलत है न च बिद्या पीठय सरस ।^३ (गिरिधर)

(२) 'ध-ग्यमय भोग्यम्यं कर्तं कर्म सुभाषुनम् । (संस्कृत सुभाषित)

ध-ग्यमय भोग्यम्य है, कर्त कर्म सुभाषुन जोय ।^४ (गिरिधर)

कहना न होगा कि उक्त भाषानुहरण की अपेक्षा भाया का अपहरण अधिक सटकता है। कारण महीन कवि प्राचीनों ने परिकल्पित भाव संकेत लेकर उन्हें पस्तबिध प्रीतिन किया ही करते हैं परन्तु भाव के साथ-साथ भाया को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लेना अधिक प्राय सन्नक माना जाता है। अस्तु कुशल यही है कि वह अपहरण अधिक व्यापक नहीं है।

धन्त में इतना ही कथन धर्म है कि यद्यपि हिन्दी के नीति के मुद्रियों में गिरिधर का नाम नहीं रखा जा सकता तथापि वे अपने सरल-स्पष्ट व्यवहार-धिसक पद्यों के कारण धन्त मोक्षिय रह हैं और रहेंगे।

२० दिनय भक्ति

कवि परिचय—जैन मुनि दिनय भक्ति का पहला नाम बागसा या बस्तपाल था। ये सरलपठ के मुनिवर जिनमत्र मूरि की शाखा में ये धीर भक्तिमत्र के धिप्य थे। ये मं० १८८० वि० के मयमग विद्यमान थे। इनके दो ग्रन्थ मिलते हैं—१ दिन नाम मूरि दार्शन २ अग्यानित्र बाबनी। प्रथम ग्रन्थ में जिनमत्र मूरि का स्वयं ही धीर दूनरे में नीति-विनयक प्रयोचितयाँ।

१ २ गिरिधर, कुडलिया पृष्ठ ४४।१२०, ८१।२३४

३ पटी " " ३४।१०२

४ गिरिधर कबिराय कुडलियाँ पृष्ठ ४०।१०६

अभ्योक्ति बावनी^१—बहुमासा के घसरो के क्रमानुसार रचित इस बावनी में ६२ कवित्त-सवये हैं। धारम्भ में दबला गुरु गायु गायु पादि की बन्ता के छह पद्य हैं और उनक बाद साहित्य में प्रचलित देव पद्य पत्नी, सागर नदी, मागबाह पादि पदार्थों पर अभ्यासिणियाँ हैं। बिधाता और रामचन्द्र पर भी अभ्योक्ति रचना की गई है। भावों की दृष्टि से कई महीनता न होने पर भी सभी और भाषा की सुन्दरता के कारण रचना अच्छी बन पड़ी है। उदाहरण-रूप में वास्तव्य देव और युधि से सम्बन्धित दो पद्य उद्धृत किए जाते हैं—

हस्त जैसे होत, ऐसे बुझी काहु धान दब,

बिजाउत धकी मुन एक रग रस में।

बुझ बेजो भेमा हब कादर घसार् सना

बना कहुँ सग फेना ऐसे तो परेस में ॥

ऐसे मिल देत धारे बसेधार सोप जाके

काक घब फोमिला की कहु म बिशेष में।

बसें बेस पसब तें भलो बनबास

परि कहुँ 'बिन' मिल सोड बोड सिख्यो लेख में ॥^२

पहिसे सरोर तेरी धीर मोह-सीरन सें

धारत हुवास सोप गे उतपात के।

बई हरी सधी बड सर हो उजार पुँ

कीच दीच शरि दीये जैसे रस पात के।

ऐसें करे सोक हास तो येँ तु बपास छू फ,

परत मिहास बेत नाम जात-जात के

कहुँ 'बिन' परा तेरे जे हूँ उदगार मुन,

गिने बसें पात यसे धारे सय राव के ॥^३

२१ योगिराज ज्ञानसार

श्रीब्रह्म परिचय—ज्ञानसार श्री का नाम श्रीकानेर के जायस देव की राजधानी जायसू म पाँच मील दूर जेगनेबाम घान में स० १८०१ में हुआ। इनके पिता उदयचन्द्र धासबास जैन थे और माता दीबन देवा। ज्ञानसार श्री का दीसाग्रहण स पूष का नाम नाराण या नाराण (नारायण) था। सवन् १८१२ क तुमिल म ये घाने घाम की स्थाप कर श्रीकानेर में मुनि जिनसाभ मूरि क पाम पहुँचे और उन्होंने इनकी शिक्षा-दीसा का प्रबन्ध किया। ये मुनिजी क माप ६ बय तक बिपरण करते हुए ब्याहरण काम्य क्रोश छन्द धसधार, भागम प्रकरण बीचक पत्रोक्ति आदि बिययों का अध्य

१ अभ्योक्ति बावनी की प्रतिक्रिया श्रीकानेर क प्रथम जैन संघालय में है।

२ ३ अभ्योक्ति बावनी पृ० ५८, ५९

यत करते रहे। संवत् १८२१ में पाउण्ड ग्राम में जब इन्होंने सीता-ग्रहण की तब इनका नाम खानखान रखा गया।

धर्मयत्न के पक्षपात इन्होंने जैनधर्म का अपार धारम्य किया और वेस में दूर-दूर तक यात्रायें कीं। इनकी निष्ठता तथा निस्सृष्टता से राजस्थान के धनक शासक प्रभावित थे। कसा कौमल में भी ये निपुण थे और बहुत सुशर भयंकर लिखा करते थे। कवि लखन राम ने इनके विषय में लिखा है—

कर्म दिग्दर्शनी सौ हुम्बर हुजार जाके
बचक में जात सब, ज्योतिष्य यंत्र मंत्र ली।

इनकी मानुमाया तो राजस्थानी भी परम्पु इन्हें गुजराती प्रथमाया ४ सेरी और सिन्धी भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था।

प्रब परिचय—ज्ञानमार भी ले द्विन्दी राजस्थानी और गुजराती में धर्म यज्ञ भक्ति एवं धामोचना नीति आदि धनक विषयों पर साहित्य रचना की। नीति पर इनके दो ही ग्रंथ हैं—संबोध घटोत्तरी तथा प्रास्ताविक घटोत्तरी। इनके प्रतिष्ठित र्थ ति विषयक इनकी दो पुण्ड्रिकायाँ भी प्राप्त हैं एक जूए पर और दूसरी 'बही और मुनि' पर।

संबोध घटोत्तरी—मुनि जी ने इस काम्य का रचना-काल सं० १८१८ लिखा है—

हुज्यें उपजो रोम्, घट्टार घट्टाबर्न ।
जे-सुम्स तिभि तीज निरमी खरतर नारखु ॥^१

जिस हस्तलिखित प्रति से भी अजरखण्ड नाहटा ने इसका सम्पादन ज्ञान प्रकाशनी में किया है उसे भागपुर निवासी गौड़ ब्राह्मण कालीनाथ ने रत्नमाम में सं० १९४ में सिद्धिबद्ध किया था।^२ राजस्थानी भाषा की इस मुक्तक रचना में केवल १८ श्लोक हैं जिनमें नीच से ताड़ घनपाड़ कंडूल घमार संसार लखर छीर भाग्यहीन जन पूर्व उक्त पुण्य-पापों के परिणाम स्वार्थमय स्नेह ज्ञान ज्ञान तथा मकान संज्ञो घनेक उपयोधी विषयों का प्रतिपादन किया गया है। कुछ श्लोक निस्सम्बद्ध सरस हैं परम्पु घपिकरर श्लोक बरुपना तथा राग-तरव की शून्यता के कारण सुक्ति-भाव है। यथा—

१ अजरखण्ड नाहटा खानखान प्रकाशनी संबोध घटोत्तरी पृष्ठ १८८। सं० १९१३ में बीकानेर में हमने 'ज्ञानमार प्रकाशनी के मूळ बने से पृष्ठ पछारि की तट्या टग्री के अनुसार ही गई है।

२ इति भी संबोध घटोत्तरी कतिपय ज्ञानसारस सं० १९४१ बर्न दिने घ पाड़ मुदि ७ रवि मुर्म भवतु। निरिर्न ब्राह्मण गौड़ कालीनाथ मैनमुन। भागपुर निवासी सिजर्न नगर रत्नमाम मध्ये समाप्त ४० ॥ (बही संबोध घटोत्तरी पुस्त्रिया)

कीड़ा पर कृपास, नासा ईतड नीसरे ।

फठे किर फेठमास, नही पप विन मारणा ॥^१

सबला तणो रानेह मिदला सु सोई मही ।

अविहर सोह जड़ेह, निई कुण नही मारणा ॥^२

यसिये मिय रे वास तिन सुं कबै न सोड़िये ।

असधणिये आवास, नां रहि सकीर्ये मारणा ॥^३

प्रास्तादिक प्रयोक्तरी—हिन्दी भाषा में प्रणीत इस मुक्तक-काव्य का प्रणयन-काल मुनि जी ने सवत् १८८० दिया है—

सत्ता प्रयनमाय बुग एवो प्राप्तास समास ।

संबत आसू मास पुर बिष्म इत बीमास ॥^४

इसमें निःस्पृह नर की निडरता पूर्वकृत कर्मनताप की प्रसन्नता इच्छा से फल की अप्राप्ति तथा अनिच्छा से प्राप्ति आयु की निश्चितता गुण से गुणी की स्वाति का विस्तार पराधीनता से जमीर की हत्या विधीर्ण भ्रुवय का मृदु बचन से उपचार वही बात वड़ों के ही पेट में पचती है आदि नीति के अनेक विषयों का प्रमाणदायी रीति से प्रतिपादन किया गया है । रचना की तीन बातों पर पाठक की दृष्टि आनायास जा सकती है—(क) स्थानीय प्रभाव (ख) आत्मानुभूति (ग) संस्कृत-साहित्य का प्रभाव ।

(क) स्थानीय प्रभाव—निम्नलिखित दृग के दोहे एक राजस्थानी कवि ही लिख सकता है, दूसरा नहीं—

बरपा जल मर बेत सब, ऐंषत अपनी धोर ।

जसे हुटे परतप की कूटत सब बन डोर^५

पिगम की कबितान में, बिगल को न प्रनेष ।

हारिम में फबहुं न हुबे, पंद किरल सो देज ॥^६

(ख) आत्मानुभूति—यस्यी वयं के वय तक पहुँचे हुए कवि को विद्याल तथा गम्भीर सांसारिक अनुभव हो चुका था इस बात का परिचय उनके अनेक दोहों से सहज ही हो जाता है । उन्हीं अनुभवों को मुनि जी ने नतिक तथ्यों के समर्पण में बड़े रोचक दृग से उपग्व्यस्त किया है । जैसे—

बिन बड़े तप हो निम, बाई कठ न मिमल ।

यमक गुज धोरावरी, माता भासा देत ॥^७

मन फाट कुं मुहु बचन, फह्यो फरम उपचार ।

दूक-दूक कर बुझन कूं, टीका देत सुमार ॥^८

१-३ वही, पृष्ठ १८१। ३९, १८८। १०२, १८५। ८८

४ वही प्रास्तादिक प्रयोक्तरी, पृष्ठ २०१। १११। (सत्ता = १ प्रयनमाय = ८, हुग = दो वार (८), प्राप्तास = ० (१८८० वि०) ।

५-८ वही पृष्ठ १८१। ५, १८०। १०, १९०। १५, १९३। ४४

(घ) संस्कृत-साहित्य का प्रभाव—अप्य कवियों के समान जहाँ इन के अनेक दोहों में नीति की कई दिखाएँ तथा वृष्टान्त संस्कृत साहित्य से लिये गए हैं वहाँ इन्होंने संस्कृत के अनेक लौकिक न्यायों—अंधगज न्याय सुबोधमुद न्याय अनाहपाणी न्याय आदि—का भी अपनी रचना में सफल प्रयोग किया है। निम्नांकित दोहों से उक्त कथन का समर्थन हो जायगा—

साहस छोड़ भिन्नत सब या सम सुखो न और ।
मेहामम बुनि गरब मुनि ज्यों बित हरपत मोर ॥^१
कोई कष्ट कोई पछू कहेँ आतमा राय ।
दित मत बिन सब मत कथन अथ पयई न्याय ॥^२

कहना न होगा कि मैथागन पर मयूरतर्तन और विभिन्न व्यक्तियों के ज्ञान की अपूर्णता का संकेत करने के लिए अंधगज-न्याय का उत्कृष्ट संस्कृत-साहित्य में निदान्य सुसम है।

मुनि जी की इस अष्टोत्तरी की भाषा सरल सुबोध प्रजभाषा है। उसमें कहीं-कहीं रेजगारी दरबी, लफो (मझह) एकम आदि प्रचलित बिदेसी शब्द भी प्रयुक्त किये गए हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी कहीं-कहीं दिखाई देता है और दोहों की अधिकतम बनाने के लिए एकाम स्वतः पर शब्दों को बिहृत भी किया गया है। जैसे—

सपु मुख मोटी बात ते, लफो न देखी आल ।
भरणपकठे आच्छी ज्यों पीटी के पाँच ॥^३

उक्त दोहे में 'भरणपकठे' के स्थान पर 'मरणपकठे' रूप दोहे में मात्रा-संख्या को कुछ रखने के लिए किया गया है और पीटी के पक्ष लमना तथा सपु मुख मोटी बात मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं। शब्दासंकारों में भीष्मा का तथा अर्थासंकारों में वृष्टान्त और काव्यमित्य का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। निःसंदेह यह रचना संबोध्याष्टोत्तरी की श्रेष्ठा साहित्यिक कृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अतः न इतना ही कहना बचेष्ट होगा कि उस युग में जब कि अधिकतर नीति कवि बत्तीसी छत्तीसी बाबनी बहलरी और अतक सितकर ही संयुक्त हो जाते थे योदिराज ने दो मुम्बर अष्टोत्तरियाँ सितकर हिन्दी नीतिकाम्य की श्रीशुद्धि में सुलभ सहयोग दिया।

२२ मायूराम (नायिया)

इन कवि का जीवन अरिज अभाँतक अवकाश में है। लोकान्तर में श्री अगारबंद नाहना से इतना ही विदित हुआ कि इनका स्तुत्य-काल सम्भवतः बिनम की उन्नीसवीं

१ २ पही मातापिञ्ज अष्टोत्तरी पृष्ठ १६२।३१, १६७।७१

३ , , , , पृष्ठ १६४। २३

पद्यों का पूर्वाह्निक। बीकानेर के श्री मोतीचंद खजानची के ग्रंथ सप्तह में इनके दो नीतिकाम्य देखने में आए — (१) मिथ्यासार (२) कुंडलिया।

सिद्ध्यासार^१—इस काव्य में कुल १२४ श्लोक हैं परन्तु प्रथम श्लोक के अन्त में 'सास स्याही से दोहो' लिखा है, क्योंकि राजस्थानी में श्लोक दो वाहे का शब्द ही मानते हैं। सब श्लोकों के अन्त में नाबिया और काव्य क अन्त में श्री सिद्ध्यासार प्रथमपद नापुराम इत संपूर्ण' लिखा हुआ है। इनकी 'कुंडलिया' में 'नायक' शब्द विद्यमान है। इस से सिद्ध है कि नापुराम काव्य में धनता नाम नाबिया या नायक लिखते थे। रचना का शब्द 'राजिया क श्लोक' क समान है और कुछ एक दोहों में तो धानचर्यजनक समानता है। फिर भी जब तक नापुराम क काव्य का निश्चित ज्ञान न हो यह कहना कठिन है कि कौन किस में प्रभाविन है।

कासी धरणी कुकप बसतुरी कांटे तुलै ।

सकल बड़ी सुख्य रोड़ा सुस 'राजिया' ॥ (इपागम)

कासी निपट ककर, कस्तुरी भीहो बिर्त ।

साठर निपट सक्य, तुस न टाका नाबिया ॥ (नापुराम)

इन के गुण-शेष गुणों का महत्त्व मूलकी संगति जू से हानि घादि धनेष नीति-विषयों पर इनके श्लोक दिखाई देते हैं। इति लिंगम न है और प्रसादयुक्त है कुछ पद्यों पर संस्कृत की छाया स्पष्ट मन्त्रित होती है। रचना इस प्रकार की है—

कारण गुण नह कोय धीपुण ही भरिभो अन्त ।

हिंक सपति घर होय, नरें सकल जग नाबिया ॥

घड़ियो धोत्रन घाट जड़ियो घट जेपाहर सुं ।

विख गुण को हर बाद नीर न निकल नाबिया ॥

नृकट संगर संजार सिध सुबर सेहल मिली ।

मिसरयो मती मुरार माई मूरय नाबिया ॥^२

कुंडलिया^३—केवल सात कुंडलियों की इस इति का राम नारायण ने पौन सुदी २ सं० ११७७ में लिपिबद्ध किया था। रचना व्रजभाषा में है कहीं-कहीं द्विगम तथा फारसी शब्दों के पिरदमन्द आहिर धादि शब्द भी प्रयुक्त किये गए हैं। कुंडलियों की भाषा प्रवाह और प्रसाद संपूर्ण है। जैसे—

सरका रयिने हक में नाहि चरिये सीस ।

निन प्रति ताड लडाइय बिगरत बिसबा बीस ॥

१ यह संपूर्ण काव्य मोतीचंद खजानची के ग्रंथ सप्तह (बीकानेर) के गुडका सं० ४—१ (१६) के २३४ २४२ पद्यों पर मिलित है।

२ पृष्ठी पत्र २३३६ २३३७ २४२।१४४

३ कुंडलिया मोतीचंद खजानची सप्तह (बीकानेर) के गुडका सं० ४-३ (१) के २०१ २०६ पद्यों पर लिपिबद्ध है।

बिगरत बिसया बोस, हाथ हुंनर नहिं धारै ।
 सोमरत सगा न बोस, ऊँपे पर बज्रहुं न पारै ॥
 बहूत माय कयि बात होत वायु घायी बर का ।
 सोर बातन हू किमें फेर सुपरत गहिं सरदा ॥^१

२३ महाकवि परणपति भारती

कवि-परिचय—मथुरामस के पुत्र परणपति माधुर जगुर्वेदी ब्राह्मण के छोटे जयपुर-अरेस महाराजा सवाई प्रतापसिंह के समाकवि थे। महाराज ने कुछ समय तक इनका शिष्यत्व स्वीकृत कर इन्हें एक गाँव पानकी पयबी तथा 'भारती उपाधि से पुरस्कृत किया था। संवत् १८३२-३० के मध्य में इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थ बनाए जिनमें कुछ मौखिक हैं कुछ प्रकृतित और कुछ संकलित—१ श्रीधर्मपर्व भाषा २ धर्म-पाषण्ड सार ३ मयपञ्चीसी ४ बिरहपञ्चीसी ५ प्रीतिमंजरी ६ धर्मोक्ति काव्य ७ भृंगार हजारा ८ बीर हजारा ९ नवरत्न १० धर्मकार सुधानिधि।^२

धर्मोक्ति बर्णन—श्री मोतीसाम मेनारिया ने जिस 'धर्म को धर्मोक्ति काव्य कहा है सम्भवतः यह 'धर्मोक्ति बर्णन' से अभिन्न है। 'धर्मोक्ति बर्णन' की ओर हस्त लिखित प्रति^३ हम जयपुर के विद्याभूषण पुस्तकालय में मिली उसे विद्याभूषण पुरोहित हरिनारायण जी जी० ए० जी प्ररथा से प० गोपीचन्द्र धर्म ने स० १९९२ वि० में लिखा था। फुल स्लेप आकार के साढ़ छह पृष्ठों पर लिखित प्रति के अन्त में लिखिकार ने यह टिप्पणी दी है—

'इस धर्मोक्ति के केवल इकतीस छंद मिले हो मिले गए। धर्म धमूरा भिना। धर्म की ओर के पय नहीं मिले।'

इस लिखित प्रति में केवल साढ़े तीस धर्मोक्तिगी हैं जिनमें सूर्य चन्द्र सिंह गज साहि बभन एक दशक प्रसस्तुनों के द्वारा राजा तथा उसके सम्बन्ध में धाने जाने वाले धर्म स्यां तर्कों के व्यवहार की सुन्दर रीति से व्यवस्था की गई है। जहाँ बहि ने प्रत्येक पद में धाने नाम की छान सवाई है वहाँ प्रत्येक धर्मोक्ति के पदवाच पद में, एकाध पत्रित में धर्मोक्ति का प्राण्य भी स्पष्ट कर दिया है। यमिग और उर्बेया छन्दों का ही प्रयोग किया है वेता है परन्तु सर्वथा को भी कचित् नाम व ही अभिहित किया गया है। रचना अनुप्रासमयी व्यवस्था में है किमर्क राजस्थानी के जो कुछ गद्य लिखा है ५५ है। इति में प्रसाध धोन तथा माधुर्य तीनों ही गुण विद्यमान हैं। आकार के लिखार भ रचना वा प्रकाशत छान ही है परन्तु कुछ अलि से अच्छा है। यथा—

१ नादिया: दुर्दभिया पत्र २०२१३

२ मोतीसाम मेनारिया राजस्थान का विगत साहित्य पृ० १५४ ३२

३ धर्मोक्ति बर्णन विद्याभूषण पुस्तकालय जयपुर प्रति क्रमांक १३६३

। सूर्यान्वोच्छ्रितयदा ॥

बीपक उजरे सर्फि नेरे ही रङ्गो हो छिवि
जिगनु प्रकाम मास मैल करि हीं ययो ।
पन्व के प्रकाल सर्फि घास हो रही ही नक
घट वधि होत जानि मासि मूब सौं छ्यो ।
भारती बहुत भभरामों सो फिरत बयौं य
घामो ही सर्फि बेवि बोज बिय को ययो ॥
माजि न सर्फि छित घाय के दुर्काने बीरि
एरे तम जानि घब भानु को उदय ययो ॥^१
॥इहाँ सूर्य करिक उच्च मरेउ जानिये
तम करिके छोरे स्थान वारी जानिय ॥१॥

२४ स्वामदास

बंदी के पंडित मज्जाराम मेरठा के भानजे पंडित रामजीबल नामर को पुर्वजों के प्रप-सग्रह म से स्वामदास-कृत 'हित-उपदेश'^१ नामक ग्रंथ प्राप्त हुआ था । उसमें "२ पत्र है और प्रति-मुच्छ्रित सात पत्रों का पुस्तक के धादि में द्रष्टा किए गए तथा सन्धी के मन्दर रंगदार बिज्र है । अक्षर अति सूक्ष्म तथा सुन्दर हैं । पत्रों का आकार ३ × २^१ है परन्तु लिपिबद्ध भाग १। ३ × १ । पुस्तक के दो पत्र सुष्ठ हैं एक इककीमर्बा तथा दूसरा इति भी के व द का । इसलिए यह नही सकते कि ११४ से १२० तक क दोहों में तथा 'इतिथी के बाद क्या सामधी भी । एवं भी समाप्ति के तरह दोहों में एवं रचना का जो इतिहास दिया गया है, उससे विरिक्त हाठा है कि 'हित के बादवाह आसिम घासमगीर' ने प्र-सिद्धि बासे थी छकर पठ -ो याविको (याविकी धारसी ?) भाषा में बढाई और एक का घा स स्वामदास^२ ने सन् १८४२ के माघ मास में बसंत पंचमी का घाम (घोम ?) धार इस ग्रंथ को गवाधीर-रिघत

१ आश्वीकित बख्त, पृष्ठ १११

२ नागरी प्रकाशित पत्रिका के आदर संवत् १८८७ क प्रक में (पृ० १९८— १७६) इस पुस्तक को श्रीरंगजेब का हित-उपदेश कहा गया है परन्तु सन् १८४४ में श्रीरंगजेब मास नही 'तीर्थ शाहू आत्म (आत्म आत्मगीर) का आत्म या और एम्बकतः उम्हों के उपदेशों को इस पुस्तक में लिपिबद्ध किया गया है । (श्रीरामसमर्तः मुण्ड एम्पायर इन इंडिया टॉड ३ बन्ड्स १८४१ ई० पृष्ठ ६६६)

३ ना० प्र० पत्रिका (मान्य १८८७ वि०) पृष्ठ १७ १७१

४ स्वामदास या रीति में समुच्चि चत गो सत । बोहा ८

५. एक घाठ श्री चार के घामे धेदसि घान । सौ संवत् यह आनिए मतिके कर परमल (बोहा ६) ॥

रामरेल तीर्थ भी है पूरा किया ।

यह धर्म साम्प्रदायिक बातों से संबंधित युक्त है और राजनीति भोकाचार तथा धर्म की बातों से युक्त । जिस प्रकार बिपुर नीति में संन्यासम से नीति उपदिष्ट है उसी प्रकार इसमें भी दो बातें हीन बातें धार्मिक धीरेक देकर उपादेय तथा हेय बातों का उल्लेख किया गया है । स्वामी-गुणानु-न्याय के अनुसार 'दो बात' धीरेक क दो दोहे उद्धृत किये जाते हैं—

दोय यस्तु तं जगत् भं प्रति उत्तम क्तु नाहि ।

निश्चय ईद्वय भाव पे क्या जीव के टाहि ॥

है बातम तं प्रथम तर नाही जगत् प्रसिद्धि ।

धर्तकार ममबान तं जग अपकारी बुद्धि ॥^१

विषय के विचार से रचना उपादेय है परन्तु साहित्यिकता की दृष्टि से इसे काव्य न कहकर तुकबन्दी कहना ही अधिक उपयुक्त होगा ।

२५ हुपाराम जारहूठ

तिरिया घालों के कारण हुपाराम का जन्म अपराम के घर में सम्भीसर्षी घाली बिजम के पुर्बर्द्ध में गराही गांव (जोषपुर राज्य) में हुआ था । ये सीकर के राजराजा जदमणसिंह के पास रहते थे जिन्होंने इन्हें ढाली गांव जागीर में दिया था । कहते हैं इन्होंने 'जामक मेसी' नामक और एक धर्मकार-ग्रन्थ रचा था परन्तु ये दोनों धर्मी तक प्राप्त नहीं हुए । इनके बनाये हुए मगमग १७३ छुटकम सोरठे प्राप्त होते हैं जो 'राजिया के सोरठे' नाम से प्रसिद्ध हैं ।

राजिया के सोरठे - प्रसिद्ध भारतीय राजणा राजपूत महासभा धर्मनेर का मत है कि ये दोहे हुपाराम चौहान (राजिया) के हैं जिन का जन्म सं० १=२३ के लगभग मारवाड़ के कुचामण ठिनामे के पुसरी गांव में हुआ था । इसके विपरीत चारणों का मत यह है कि राजिया जबत हुपाराम का लौकर था । जब १८३२ वि० में हुपाराम धर्मनिक रण्य और राजिया की सम्भी सेवा से स्वस्थ हुए तब उन्होंने प्रमत्त होकर राजिया को कहा—तुझे समद कर दूंगा । कहते हैं इसी उद्देश्य से कवि ने मगमग ३०० सोरठों की रचना की थी । जन्म से धार्मिक होने दो सी के मगमग ही उपमस्य है और प्रत्येक सोरठे में राजिया को सम्बोधित किया गया है । श्री मोतीलाल

१ तो गंगा के लट बिसे बरसर गांव गृह्याय ॥ बोहा १२

० वही पद्य १०४ बोहा १, २

३ सं० जगदीश सिंह गृह्योपनिषद् : राजिया के सोरठे प्र० हिन्दी साहित्य मन्डिर, यंटा-घर जोषपुर १९२० ई०

मेनारिया भी इन्हें हुपाराम की रचना मानते हैं।^१ हमारे विचार में ये सोरठे इतने मावपूर्ण तथा सुन्दर हैं कि इन्हें किसी सामान्य सेरक की इति मानने में संकोच होता है इसलिये इन्हें हुपाराम-रूठ मानना ही उचित है।

लगभग एक सतासी तक ये सोरठे राजस्थानी जनता की बिह्ला पर रहे परन्तु पीछे १८८६ ई० में जोधपुर के पुरातत्व विभाग के कमन्डर कर्नल पी० डब्ल्यू० पीसेट ने इन्हें समूहीत तथा अंग्रेजी में अनुदित किया। इन सोरठों में नीति तथा उप देश की बातें विगत भाषा में बड़े मामिल ढग से कही गई हैं। मुजराती सिन्धी इन्हीं भरखी और फारसी भाषाओं के भी अनेक दृष्ट दिखार्ई होते हैं। रचना प्रसार-पूर्ण है। कुछ उदाहरण सीजिये—

मूसा ने भंजार, हित कर बैठा हेकटा ।
सब बाखों संसार, रह न रहणी राजिया ॥^२
कासी धरों कुरूप, कसतुरी काटे तुर्न ।
दानकर बड़ी मुरूप, रोड़ा तुम राजिया ॥^३
भाड़, बोल, मल, मेज, बारज में मेला बसे ।
इसकी मंवरते हेक, रस की बाग राजिया ॥^४

२६ बाँकीदास

जीवन-वर्षिक—भाधिया घाबा के बारण चकितदान के पीर तथा फठहंसिह के पुत्र बाँकीदास का जन्म पंच महा धाम (जोधपुर राज्य) में सन् १८२८ में हुआ था। पन्द्रह वर्ष के बय तक पिता से काव्य-शिक्षा ग्रहण करने के बाद इन्होंने जोधपुर में अनेक गुरुओं से काव्यशास्त्रों का अध्ययन किया—

‘बक इतेपक पुब किये, मितयऊ सर पर कैस।’

इनकी विद्वत्ता तथा गुरुओं से प्रभावित होकर जोधपुर-नरेश महाराज मानसिह ने इन्हें पागीर प्रदान की और इनसे भाषा-साहित्य का अध्ययन भी करल सगे। महाराज ने इन्हें अपनी मुहर पर यह बरखे सुदबाने की अनुज्ञा दी हुई थी—

धीमन मानपरलिपति बहुगुन रस ।

जिन भाषा पुब कीनी बाँकी दास ॥

बाँकीदास संस्कृत फारसी अरब और विगत भाषाओं तथा इतिहास के विषे पस थ। इनकी बारणा-शक्ति मिलसण थी। किसी पद्य को एक ही बार सुनकर तुरन्त मुना देते थ और दो बार सुनकर तो उलटा भी मुना सकते थे। ये निर्भीक स्पष्टवादी धारमयमानी और बानी थे। एक बार इन्होंने महाराज से स्पष्ट कह दिया

१ मोतीलाल मेनारिया राजस्थानी भाषा और साहित्य (प्रयाग, २००८ वि०)

पृ० २१६

२-४ राजिया के सोरठे, पृष्ठ २१।६१ ३२।१३६, १६।६८

या—'ये धाप के कुमार कुपुत्र निकलेगे और हमारा प्रपन्न होगा भठ इन्हें न पका जेया।' जयपुर के महाराजा से निमंत्रण पाकर इन्होंने महाराजा मानसिंह से कहा था—'जिसोकी का राज्य मिसठा हो वो भी धाप बसे स्वामी को त्याग कर नहीं जाना चाहता।' निस्तम्भान होने के कारण इन्होंने अपने मतीबे भाण्डवान को गोब लिया था। संवत् १८६० में ये स्वर्ग सिपारे।

रचनाएँ—इनकी २६ पुस्तकें तथा कुछ स्फुट रचनाएँ बांकीराज-प्रपावती के तीन भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अतिरिक्त इनके १३ ग्रन्थ भी प्राप्त हुए हैं। इनके प्रकाशित ग्रंथ निम्नलिखित हैं—

(१) सूर छत्तीसी (२) धीहउत्तीसी (३) बीरबिनो (४) बचस पञ्चीसी; (५) बाजार बाबनी (६) नीति मञ्जी (७) सुपह छत्तीसी (८) बंसक बाता (९) माबडिया मित्राज (१०) कृपण वर्ण (११) मोह-मर्दन (१२) कुमल मुस चोटिका (१३) बंसबाता (१४) कुकनि बत्तीसी (१५) बिदुर बत्तीसी (१६) मुरबाम भूषण (१७) गंगासहरी (१८) बेहम बस बडान (१९) कायर बाबनी (२०) ममान लखिण (२१) मुजस छत्तीसी (२२) रन्तोप बाबनी (२३) सिद्धराज छत्तीसी (२४) बचनबिबेक पञ्चीसी (२५) कृपण छत्तीसी (२६) हमरो छत्तीसी (२७) स्फुट-संग्रह।

उक्त ग्रन्थों में से ७ १६ १७ १८ २० २३ २६, २७ संस्कृत पाठ ग्रन्थ विविध-विषयक हैं, शेष १९ का सम्बन्ध नीति है।

नीतिविषयक काव्यों का संक्षिप्त परिचय

१ सूर छत्तीसी—३८ दोहों का यह काव्य मुक्तक छत्ती में प्रणीत है। बोहों में बीरों की प्रशंसा, उनकी मोक्ष अत्य-शक्ति, कबच युद्ध बीरवर्ति बीरगति के अनन्तर विमानारोहण अक्षयों का आसिगन कायों की निम्न प्राप्ति का प्रीतिस्वी वर्णन है। बीरवर्ती की धर्मवी सवियों के प्रति गर्वोक्तियां भी बहुत सुन्दर हैं।

१ बांकीराज प्रपावती पहला भाग, भा० प्र० सपा०, काशी, स० १९८१ सुपरा भाग, प्रकाशक, इंडियन प्रेस सिमिटेड, प्रयाग १९३१ ई०, तीसरा भाग प्र०, भा० प्र० सपा, काशी १९३८ ई०

२ ये १३ ग्रन्थ ये हैं—१ इण्डियन अग्निका २ पिण्ड अग्निका ३ अलकार अग्निका ४ मान यजोमदन ५ अग्रकृपण वर्ण ६ वीराजवार्ता संग्रह ७ धी दरवाररी कविता (धी दरवार का कविता) ८ रत्त तथा अलकार का ग्रंथ ९ मुल रत्नकर भाषा का व्याख्या १० महाभाष्य अम्बोडनुवाद ११ नीति का अर्थों का संग्रह १२ ऐतिहासिक कर्ता संग्रह १३ अन्तर्गतिका (बांकीराज प्रपावती भाग, ३, कृषिका, पृष्ठ ३-२)।

२ वीह छत्तीसी—सिंहों के पराक्रम के विषय पर लिखे गए इस मुक्तक-काव्य में ३८ दोहे हैं। कैसरी के बाह्रमस, निर्भीकता, एकाकिता प्रमतिहत गति, मज मर्दन प्रादि की अन्योक्ति छत्ती से पर्यन्त धारम्बी बरुण किया गया है।

३ वीर विमोह—३३ दोहों के इस मुक्तक काव्य की रचना बाकीराम के बीरों के मन में घानव की बद्धि करने के लिए की थी। कवि अधिकतर दोहों में सिंह की बीरता निर्मयता युद्धप्रियता अपन पराक्रम से अनित्य मृगयता प्रादि का बरुण करता है। युद्ध में बीरो के उन्मास कवच अनु सहार तथा दान्यधिक्किस्तकों के उत्कार का भी उल्लेख है। अन्योक्ति छत्ती का प्राधाम्य है।

४ वज्र पञ्चीसी—इस काव्य की रचना कवि ने स० १८८३ म की थी। ३५ दोहों की इस मुक्तक रचना म बरस पर्याप्त श्वेत-धूम के घनेक गुणों का बरुण किया गया है। कव्य अपन सुख की चिन्ता न कर प्रसीम भार उठाता तथा भारी को धीरता है। कव्य घम का प्रवतार है निब वा बाहुन है कामधेनु का बंधन है। काव्य में बरस के निर से उस सेबर का गुणगान है वा अपने सुख-दुख से विमुक्त होकर स्वामी को सुभी करन म सीम रहता है।

५ बातार यात्री—३३ दोहों की इस मुक्तक रचना में दानी मानव की महिमा वर्णित है। इसम धन के अनुसार मण का विस्तार ब ता के देघ म ही निवास का अधिरय बाता ही नात-पिता धीर देवता है मूर्खत्व पर दाता के मुकदाम से बुकबलन बड़े दानी से ही मोक्षना वर्णित है प्रादि विषयों का सविस्तर बरुण किया गया है।

६ नीति मजरी—३६ दोहों के इस काव्य में २७ दोहे १० सोरठे, १ बड़ो दुहो और १ दोहो चुबिरो है। इस काव्य म अनु से सदा सावधान रहन उस पर विस्वास न करने धीर उसका बंधन से संबंध सहार करने की प्ररणा की गई है।

७ बसक पाठा—इस मुक्तक काव्य में केवल १६ पद्य हैं—२८ दोहे और एक सोरठा। बिरकास से प्रबलित ब्रह्मावृत्ति की कुप्रथा से हाने वाली मान बन-

- १ वीरों काय पराक्रियो, मठि वीर-विमोह।
दरसी सुष्ठियां पाबिया, मन में वीरों कीर ॥ (पुनी, भाग १, पृष्ठ ३६।७३)
- २ मट्टारं तैवास्मिं चउनास मन स्वाम।
रुपक बंध बल-रुजो वज्र पञ्चीसी नाम ॥ (वासीरदास प्रम्यावसी, भाग १, पृ० ४५।३४)
- ३ 'बड़ो दुहो' में प्रथम अठ्ठी सोरठे की और द्वितीय, दोहे की होती है। प्रथम और अतुल्य बरुणों में तृत्तकाव्य होता है। 'बेहो चुबिरो' में प्रथम अठ्ठी सोरठे की और द्वितीय सोरठे से होती है। द्वितीय तथा तृतीय बरुण में अन्यानुप्रास रहता है।

स्वास्थ्य का ही हानि का वड़ा ही कुमता हुआ कारण कवि ने किया है। सतीत्य की महिमा का कारण करते हुए कवि ने बेभ्यागामी-मुदरों की धम खबर भी है।

८. मावङ्गिमा मिजाज—जो पुरुष पुरुषत्व को विस्मृत कर सदा घर में मछा या किसी धन्य स्त्री के समीप रहने का कारण स्त्री स्वभाव वाले बन जाते हैं उन्हें माव किया कहा जाता है। कवि ने मुक्तक काम्य न ८८ बोहो में उन्हीं का पुररों का उग्र उपहास किया है जिससे वे बमानेपन को छोड़ फिर से पुरुषत्व को धारण कर जीवन का सङ्गयोग करें।

९. कुरल-नर्पल—घन का सङ्गयोग न करने वाले लोग कुरल कह जाते हैं। जो घनवान् न प्रच्छा घाते-पीते हैं न पहनते छोड़ते हैं जो अतिथि को बेच द्वार बन्द कर मते हैं जो मित्रियों से भी धम छीमने में सकोच नहीं करत जिन्हें 'देना' खरद से हो रूप है उन कनुसों-नखलीपुसों को उनका कमवित्त मुक्त लिखाने के लिए ही बंधीवास न इस पुस्तक के ह्याम्यभ्यांग्यमय मर्मस्पर्शी ४२ बोहों की रचना की है।

१०. मोहमदन—बिबक का प्रभाव का कारण मनुष्य सवार को स्थिर, शरीर को धारक और सम्बन्धियों को सच्चा मानकर अज्ञान में मन्मानी करता रहता है। कवि ने ऐसे लोगों के मोह के मर्दनार्थ तथा प्रभु मरित अमिदमा काम की अपरिहृतता आदि विषयों के प्रतिपादन के लिए इस मुक्तक काम्य के १९ पद्य रचे हैं। पुस्तक में २८ बोहो हैं और एक सौरठा।

११. अयस मुक्त चपेटिका—विद्युत भोग राजार्थ आदिके पास रहकर सकारण या अकारण ही उनके कान भरा करते हैं। कान के अन्धे भोग ऐसे नराधर्मों की बातों से प्रभावित होकर सज्जनों के विरुद्ध हो जाते हैं जिस समाज की हानि होती है। ऐसे कुट्ट पुगसघोरों का लिए यह पुस्तक एक चपट है। कति का नाम तो 'बायनी' मही परम्तु है इसम बाबन ही दोहे। एक-एक बोहो समझार विद्युतों के लिए चपट से कम नहीं है।

१२. बंस-बार्ता—यह एक निहा-काम्य है जो मोभी कपटी धर्मों धरोहर हकम कर जाने वाले इसके बाट रखने वाले कम ठोसने वाले पारद-पुर्ण धोलती बन्धी रखने वाले पसकों में मोम विपकाने वाले अतिथि मोस लेने वाले ध्यापारियों के अहासार्थ रचा गया है। ७७ बोहों के इस मुक्तक काम्य में मधुर भ्यांग्य और उग्र कर्नास्तया दोनों ही विद्यमान हैं।

१३. कुरबि बत्तीसी—इत मुखव-रचना में केवल ३९ बोहो हैं जो उन तुकड़ों को हनी जड़ाने के लिए लिखे गये हैं जो छन्द रस ध्वकार आदि काम्य के विविध उपकरणों से परिचित न होकर भी महाकवियों से ईर्ष्य करत हैं और प्रतिष्ठ-प्राप्ति के लिए बंसी-नीमो रचना किये बिना रह ही नहीं सकते। कही-नही पर कवि ने काम्य का कुपाठ करन बार्तो पर भी छोटे कमे है।

१४. बिदुर बत्तीसी—३६ बोहों के इस काम्य में कवि ने बत्ती-पत्रों

के सहाय स्वभाव व्यवहार रहन-सहन आदि का हास्यव्यंग्यमय विचित्र घोर उनकी संगति से उत्पन्न होने वाले दोषों का उन्मूलन किया है।

१३ कायर बाबनी—१४ दोहों का इन मुक्तक काव्य का रचना-काल कवि ने सं० १८७१ किया है।^१ राजाओं का वाग्दलित्व किन्तु विद्वानों गुरुवीरों आदि में होता है परन्तु कई पादुकार कायर राजाओं की सनापों घोर सनापों में प्रविष्ट हो पाठ है। इस काव्य में जहाँ उन कायरों के स्वभाव आदि का उन्मूलन है वहाँ राजाओं का भी प्ररणा की गई है कि वे विन्द में पीठ नित्त वाले बास कायरों को अपनी सभा, सेना आदि में स्थान न दें। इन में कुछ से भागकर घर में मान बास कायर घोर उसकी पत्नी का सहाय बहुत ही रोचक है।

१६ मुञ्जत छत्तीसी—यस कीबल है घोर धनमया मृत्यु। यस की प्राप्ति बीरता कामधोमता तथा मुञ्जतों में होती है। इन्हीं विषया पर कवि ने इस छत्तीसी के ३८ पदों की रचना की है जिनमें १४ दोहे हैं तथा ४ सोरठ। दृष्टान्त रूप में जहाँ देश-विदेश के उदार जनों का नामोन्मूलन हुआ है वहाँ धनम द्रव्य को धनिक प्रभावशाली बनाने के लिए रोचक तथा भयानक बातों का भी उन्मूलन किया गया है।

१७ सतोप बाबनी—इस कृति की रचना कवि ने सं० १८७८ में की थी।^२ इस बाबनी के १३ पदों में से १६ दोहे हैं घोर १ सोरठ। सतोप का महत्त्व तथा सोम की निन्दा ही इस रचना का उद्देश्य है। इसमें सतोप की उपमागिता निवृत्तिमार्गी लोगों के लिए ही नहीं प्रवृत्तिमार्गीयों के लिए भी सम्यक दिखाई गई है।

१८ बचनपिबेक पञ्चोत्ती—इस रचना में कुल २८ पद्य हैं—२६ दोहे घोर २ सोरठे। रचना का उद्देश्य बाली के सुप्रयोग की शिक्षा देना है। अशुभ असम्य घोर कर्तृनीयस से होने वाली हानियों तथा शुभ सम्प घोर मजुर बाली से अन्य लोगों का सम्यक निरूपण किया गया है। दोहों के अनेक अर्थ साक्षोक्तियों वैसे कुनीसापन किये हुए हैं।

१९ कपल पञ्चोत्ती—२६ पदों की इस कृति में एक सोरठा है घोर दोष

१ एरोतर छठार स सावण दुतिपट स्वैत।

दण्डे धय दसाविदो कायर मुञ्जत निरेत ॥ (दण्डेदास पद्मावती भाग ३, पृष्ठ १६)

२ दृष्टारसे धरंतर मोदी सादण भास।

मुज तेरत सतोप मुरा बरुण यकोरस ॥ (दण्डेदास पद्मावती भाग ३, पृष्ठ ६४)

३ कुछ सोन इस पुस्तक को दण्डेदास कृत नहीं मानते। विस्तार के लिए दण्डेदास पद्मावती भाग ३ की भूमिका के ३६ ६१ पृष्ठ इतिहास।

स्वास्थ्य आदि की हानि का बढ़ा ही चुमता हुआ बरत कवि ने किया है। सतीत्व की महिमा का बर्तन करत हुए कवि ने बेक्यायामी-पुरुषों की सब खबर सी है।

८. मावक्षिया मित्राङ्ग—जो पुरुष पुरुषत्व को बिसृष्ट कर सगा घर में मत्ता या किसी प्राय स्त्री के समीप रहने के कारण स्त्री-स्वभाव वाले बन जाते हैं उन्हें मावक्षिया कहा जाता है। कवि ने मुक्तक काव्य के ८८ दोहों में उन्हीं जापुरुषों का सप्र उपहस किया है। बिससे वे अनानेपन को छोड़ फिर से पुरुषत्व को धारण कर जीवन का सुदुपयोग करें।

९. दुष्ट-वर्षस—घन का सुदुपयोग न करने वाले लोग दुष्टण कहे जाते हैं। जो घनवान् न प्रच्छा साते-मीते हैं न पहनते घोड़ते हैं जो प्रतिधि को देख द्वार बन्द कर भेते हैं जो भिक्षुओं से भी घन छीनने में सकोच नहीं करत जिन्हें 'देना' खय्य स ही क्षय है उन कञ्जुओं-कस्तीबूतों को उनका कर्मकित मुक्त िचाने के लिए ही बाकीबास ने इस पुस्तक के हास्यव्यांग्यमय मर्मस्पर्शी ४२ दोहों की रचना की है।

१०. मोहमदन—बिबेक क प्रभाव के कारण मनुष्य संसार को स्थिर गरीर को दारुत और सम्बन्धों को सञ्जा भागकर अवयत् में मन्मामी करता रहता है। कवि ने ऐसे लोगों के मोह के मर्दान्य तथा प्रभु भक्ति बीनबमा काल की अपरि हायता आदि विषयों के प्रतिपादन के लिए इस मुक्तक-काव्य के ३१ पद्य रचे हैं। पुस्तक में ३८ दोहे हैं और एक छोरठा।

११. कुमल गुल अपेटिका—विद्युत मीम राजाओं आदिक पास रहकर सरकारस या सरकारण ही उनके कान भरा करते हैं। कान के कच्चे लोग ऐसे नराधमों की बातों से प्रभावित होकर सज्जनों के विरुद्ध हो जाते हैं जितने समाज की हानि होती है। ऐसे दुष्ट कुमलघारों के लिए यह पुस्तक एक खप है। कति का नाम तो 'बाबनी' मनी परगु है इसमें बाबन ही दोहे। एक-एक बोहा समभवार विद्युतों के लिए खपत से कम नहीं है।

१२. बस-जार्ता—यह एक निरा-काव्य है जो सोभी कपटी घपमी बरोहर हजम कर जाने वाले इसके बाट रखने वाले कम ठोसमे घाले पारद-गुलं सोखसी डकी रणन वाले पसकों में मीम विपदान वाले धबिक मोस लेने वाले ध्यापरियों के उपहासार्थ रचा गया है। ७७ दोहों क इस मुक्तक काव्य में मधुर ख्यंय और ध्रु कटांस्तया दोनों ही विद्यमान हैं।

१३. कुर्बि बलीसी—दस मुक्तक-रचना में केवल ३१ दोहे हैं जो उन मुक्तकों की हैनी उड़ाने के लिए मिले गये हैं जो अन्य रस धक्कार आदि काव्य के विविध उपकरणों से परिचित न होकर भी महाकवियों से ईर्ष्य करते हैं और प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिए जैसी-जैसी रचना विप बिना रह ही नहीं सकते। नहीं-नहीं पर कवि ने काव्य का दुपाठ बरन बासों पर भी छंदि कमे है।

१४. विदुर दासीतो—३१ दोहों के दस मुक्तक-काव्य में कवि ने दासी-पुत्रों

ससण, स्वभाष, व्यवहार रहन-सहन प्रादि का हास्यव्यंग्यनय विनय और जननी पति स उत्पन्न होने वाले रोषा का उत्सव किया है।

१५. कायर बाबरी—५४ दोहों का इन मुक्तक काव्य का रचना-काल कवि ने १८७१ दिया है। राजार्यों का वास्तविक हिन तो विद्वानों दूरबीरा प्रादि से था है परन्तु कई आदुहार कायर राजार्यों की सनाओं और सनाओं में प्रविष्ट हो जाते हैं। इस काव्य में वहाँ उन कायरों के स्वभाव प्रादि का उत्सव है वही राजार्यों की शरणा की गई है कि वे बिपद में पीठ दिखा जाने वाले कायरों को अपनी समा, ला प्रादि में स्थान न दें। इस में कुछ से भासकर पर में जाने वाले कायर और उसकी ली का संवाद बहुत हा रोपक है।

१६. मुक्त छत्तीसी—यद्य भीषण है और प्रपयस मृत्यु। यद्य की प्राप्ति बोरठा, शनपीमता तथा मुक्तियों की होती है। इन्हीं विषयों पर कवि ने इस छत्तीसी के ३८ पदों की रचना की है जिनमें ३४ दोहे हैं तथा ४ सोछे। इष्टाव रूप में वही देश विदेश के उदार जनों का भाग्य-वेद्य हुआ है वहाँ अपने कव्य की प्रथिक् प्रभाववासी बनाने के लिए रोपक तथा भयानक बातों का भी उत्सव किया गया है।

१७. संतोष बाबरी—इस इति की रचना कवि ने सं० १८७८ में की थी। इस बाबरी के २५ पदों में से ४६ दोहे हैं और ६ सोछे। संतोष का महत्त्व तथा सोम की निम्ना ही इस रचना का उद्देश्य है। इसमें संतोष की उपयोगिता निमित्तमार्थी लोगों के लिए ही नहीं प्रवृत्तिमार्थियों के लिए भी सम्यक दिखाई गई है।

१८. वचनविबेध पञ्चीसी—इस रचना में कुल २८ पद हैं—२६ दोहे और २ सोछे। रचना का उद्देश्य बाणी के सुप्रयोग की निरा बना है। अमुम, असम्प और कटुनाकण से होने वाली हासियों तथा दुम समर और मयुर वाली से अन्य भाषों का सम्यक् निरूपण किया गया है। वीहों के घनेक लड लीकोनित्त्यों जैसे कुमीसापन लिये हुए हैं।

१९. कपण पञ्चीसी—२६ पदों की इस इति में एक सोछा है और दोप

१. एनेतरै छठार से साँवर दुतिपक स्वैत।

दन्ध धंम दन्धारिको कायर नमत निकेत ॥ (दन्धैरात पयापनी भाग ३, पृष्ठ २६)

२. प्रद्वारातै अठवर मोदी पापण मात।

सुख सेरत सतोप मुस करण लीकोवस्त ॥ (दन्धैरात पयापनी भाग ३, पृष्ठ ६४)

३. कुछ नीय इस पुस्तक की दन्धैरात इत नहीं पाएते। विस्तार के लिए दन्धैरात पयापनी भाग ३ की भूमिका के ३६ ६१ पृष्ठ देखिए।

रोहे। इसका विषय यही है जो उपर्युक्त कृष्ण-दर्पण का परन्तु योही नये है और जुटीसे है।

बांकीदास के नीतिकार्य पर एक दृष्टि

उक्त रचनाओं को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१ वैयक्तिक नीति—१ बचन विवेक पञ्चीसी चुमन मुन अपेटिका

३ मूर छतीसी ४ सीहू छतीसी ५ नीरवनी ६ मावडिया मिजाज ७ कायर बावनी ८ सुबस छतीसी।

२ सामाजिक-नीति—१ बैसक बाता २ बैस बाता ३ बुकबि बतीसी

४ बिदुर बतीसी ५ बरन पञ्चीसी।

३ धार्मिक नीति—१ संतोष बावनी २ दातार बवनी ३ कृष्ण-बण

४ कृष्ण पञ्चीसी।

४ मिश्रित नीति—१ नीतिमंजरी २ मोहमदन

उपर्युक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि बांकीदास ने नीति के चार भेदों पर जो वैयक्तिक रचना की है परन्तु पारिवारिक तथा इतर प्राणि-विषयक नीति के सम्बन्ध में किसी स्वतन्त्र ग्रंथ का प्रमाण नहीं मिला। यद्यपि सीहू छतीसी तथा बरन पञ्चीसी में सिहू और बैन के गुण-कर्म-स्वभाव का उल्लेख किया गया है तथापि उनकी रचना का भारत-विक्रम मध्य उनके प्रति व्यवहार विषय का प्रतिपादन न होकर औरता तथा स्वामिसेवा आदि का कारण है। इसी का ही हमने ऊर्ध्व अध्यात्मिक तथा सामाजिक नीति के अन्तर्गत रखा है। पारिवारिक तथा इतर प्राणि-विषयक नीतिकार्यों की उक्त उपेक्षा का कारण योचना भी कठिन नहीं है। हम ऊपर कहे चुके हैं कि बांकीदास निस्संताप थे। प्रायः निस्संताप व्यक्ति ही न सही नीरस हो जाते हैं यह भी सम्बन्धित है। दूसरे उनके उक्त दर्पणों प्रथम तथा सभ्य ऐतिहासिक कार्यों से विदित होता है कि वे उक्त ग्रंथों में साहित्यिक अन्तर्गत के और परिचार की ओर साहित्यिक कितना ध्यान दे पाए हैं यह भी साहित्यिक अन्तर्गत से छिपा नहीं है। इसलिये यदि धर्म कवियों के अपात ही इन्होंने भी पारिवारिक नीति पर एक ग्रन्थ पुस्तक नहीं लिखी तो कोई आश्चर्य नहीं। शीघ्र क्या या मातृभक्षण नियम पर स्वतन्त्र ग्रन्थ की धारणा नहीं जैन शीघ्र कवि से तो ही जा सकती है परन्तु धर्मिय राजा के आश्रित कवि से नहीं। न बांकीदास जैन थे और न किसी जैन मर्यादा के समास। इसलिये उनका इस विषय पर ग्रंथ न लिखना या विषयवाचक नहीं है। परन्तु इसका कारण यह नहीं है कि वे इन विषयों पर निरन्तर ध्यान देते हैं। उनकी रचनाओं में इन विषयों पर अछूट अक्षर से कई अक्षर प्राप्त होते हैं। मावडिया मिजाज में कवि जननी का महत्त्व का वर्णन करता है—

जनमे धीरु जगत में, जलणी रो से धीव।

जिन गुणह पही तनै सह के हए सरीय ॥

पेट परे जायो पछे धरयो मम बोय ।

जिण पारख जगदोन सँ जगसी गरयो लोय ॥^१

प्राणियों पर क्या करने चाहते हैं तो सदा श्री कृष्ण हैं और सबक भाष्य
देना—

धीर हवा घासी जसं उरदासी निब धाय ।

धनदासी लोपो दणु पड़ी मुरासी पाय ॥^२

व्यक्तिक नीति—व्यक्तिक नीति पर कवि न जो पूर्वोक्त पाठ उप लिखे हैं वे
दो यहाँ न विभाज्य हैं—

(क) शारीरिक नीति से सम्बन्धित—(१) बचनबिबेक पञ्चीसी (२) कुगल
मुद्र जपेटिका ।

(ग) धार्मिक नीति से सम्बन्धित—(१) मूर छलीसी (२) स ह छलीसी-
(३) बीरबिनाय (४) मावड़िया मिजाज (५) कायर बायनी
(६) मुजम छलीसी ।

(क) शारीरिक नीति से सम्बन्धित वाच्य—बचनबिबेक पञ्चीसी तथा कुगल-
मुद्र जपेटिका का सम्बन्ध वाच्यद्वारा से है । बचन बिबेक पञ्चीसी में कवि ने कटु-
भाषण तथा गामीदान के और 'कुगलमुद्र जपेटिका' में विनयता के परिचय का प्रथम
प्रेरणा मनोहर ढंग से की है । यथा—

बहणा सपटै गिलपरण रोम सभिस राग ।

दिल मुद्र सान्धल एहूर लै, निबदियो जग नाम ॥^३

सज्जन दायै पासु तिर, सीसा छटिया पासु ।

कुरदल छोड़ै गावु है, प्रीत सरोबर पासु ॥^४

कवि के मत में विनयता के समान कोई पाप नहीं है और इसीलिए वह विनय
का बिजनिमित्त मुद्र भी देखने का प्रतिपद्य करता है । विनय उसी उत्सुकता से मुद्रों
के बातों से मुह्र लगाता है काना-कूमी करता है जिस उत्सुकता से विद्यु माता के
स्वर्गों में ।^५ विद्यु में ता दाँधीप्राय को इतनी प्रबल पूजा की कि के 'बचनबिबेक
पञ्चीसी के पहले गालीदान के उपदेश को बिस्मृत कर बैठे—

पलग सड़ो कीड़ो पड़ो सड़ो सड़ो बुज संग ।

जग बुगलां पी लोमड़ी दान्त मन्नी ल्हूम ॥^६

यह बात ध्यान देने की है कि इन वाक्यों में कवि का दृष्टिकोण धार्मिक

१ दाँधीप्राय संपापसी, मान २ मावड़िया मिजाज पृष्ठ २७७४, ३०१८

२ कही, मोहनरी पृष्ठ ४७३२

३ ४ दाँधीप्राय संपापसी पाग ३ बचन बिबेक पञ्चीसी पृष्ठ ७३६, ७७१२

५-६ " " " " २ कुगलमुद्र जपेटिका पृष्ठ २२१२३, २२१२८

है व्यावहारिक नहीं। यवनविजेक पन्थीसी में ध्वंसर विघ्न पर अक्षय्य भाषण या गाली-दान की यह छूट दिखाई नहीं देती जो बुन्द सत्सई धादि में पाई जाती है।

२ धार्मिक नीति—धार्मिक नीति से सम्बन्धित उपसृत छह काव्य तीन बंधों में विभाज्य है—

(क) बीरता प्रशंसा-विषयक—(१) सूर छत्तीसी (२) सीह छत्तीसी
(३) बीर विनोद।

(ख) कायरता-निन्दा-विषयक—(१) मावड़िया मिजाज (२) कायर बाबनी
(ग) सुयश प्राप्ति-विषयक—(१) सुसुत छत्तीसी।

(क) बीरता प्रशंसा-विषयक काव्य—सूर छत्तीसी सीह छत्तीसी तथा बीरविनोद तीनों ही बीर रस की उत्तम कृतियाँ हैं। सूर छत्तीसी' क बीर स्वामभर्म का प्राण पत्न से पासन कर ज्ञाया हुआ नमक हुआम करते हैं। वे सदाय के समय न ज्योतिबिद से मुहूर्त पूछते हैं और न शकुन की प्रतीक्षा करते हैं। उनके लिए सभी यह सरस होते हैं। वे कबज्य धारण कर तथा साम्पासत्रो से सुसज्जित होकर रणभूमि को खरि से परंमपयी बना देते हैं। उन क युवकीधस को बेककर नारद प्रादि कसहप्रिय मुनिराज हंसते हैं और उन्हें सामुबाद देते हैं। उनकी छातियाँ कपाटों के समान विद्यमान और मुदुङ होती हैं तथा मूँछें भीहों का स्पश करती हैं। ऐसे बीरों की पत्नियों अपने पतिमों की बीरता का अपनी सतियों के सदा सगर्ब बर्णन इस प्रकार करती हैं—

सखी धमीखी, साहिबो, मडममनोहर गात।

महाकाम् मुरात करण, करण पर्यदा घात ॥^१

सखी धमीखी साहिबो निरमं फालो नाग।

सिर राखं मिए सान्प्रम, रीरं सिम्पुराग ॥^२

सीह छत्तीसी तथा बीरविनोद में मुख्यतः निहों के ही गुण-कर्म-स्वभाव के वर्णन के ब्यापक से सिहबन् बीर बनने की प्रेरणा की गई है। सिंह सिधु हो एकाकी हो तो भी बड़े-बड़े हाथियों के झुंडों से भीत नहीं होता सिंहनी का स्वभ्यापी कभी कायर नहीं होता इतर प्राणी मुक्त सिंह से भी भगत रहत हैं सिंह की माँद के पास पड़े हुए मोठियों तथा बस्तुरी की गधि को कोई भी उठाने का साहस नहीं करता लोग गावड़ को सम्मुख देगवर भी नहीं डरते और सिंह के परबिहनों का देता ही न न जाते हैं सिहों के लिए देश-विदेश समान होते हैं सिंह के बल में यवन क बिना किसी का प्रवेश सम्भव नहीं शत्रु-संहार के बाद सिंह गुणपूर्वक किरि-गुना में लयन करता है परन्तु उनका प्रताप बाहर पहरा देता है सिंह पर-पर पर खत वात करता है प म्नु श्रुमान इन कार्य की निगम करते हैं धादि बीरतापूर्ण नीतियों के बर्णन से कवि निर्भीय मानकों को भी उचीच बनान में समर्थ है। यथा—

बाबनी' में शासकों को उपदेश दिया है कि वे जैसे चाटुकार कामरों को न समा में रखें न सेना में क्योंकि वे सफ्ट के समय साथ नहीं देते। उन्हें तो फासे बैल पर चढ़ा कर निवासित कर देना चाहिए क्योंकि वे यत्न और प्रव्यति से ता नहीं भावत, शत्रु को सम्मुख देखकर भाग खड़े होते हैं। शासकों को चाहिए कि वे साधों मूर्खों को लेकर एक पण्डित और साधुओं कायरों को लेकर एक और छोड़ें। इस काव्य में स्वामि-मक्ति पर बहुत बल दिया गया है तथा परती और भगौड़ पति का संवाद तो बहुत ही मार्मिक है। पति को सर्वथा स्वस्थ मीठा देखकर परती व्यागपूर्वक पूछती है कि आप के मूछ नाक सिर घाबि पर तो भाव नहीं मगा। उत्तर में कायर पति कहता है कि वे सब तो स्वस्थ हैं परन्तु भावने समय पगड़ी गिर पड़ी है। तो और संवाद मूंगा। इस पर पति को मञ्जित करने के लिए पत्नी कहती है पगड़ी तो बजाज से लपेट लीये परन्तु प्रतिष्ठा कहाँ से साधोगे—

याप यजाजौ पूछ भी तोले मोल मँपाइ ।

ईश्वर किये दिप कोणसो गुछू हैसा पाइ ॥^१

सत्य करने की बात है कि कायरता की निन्दा के विषय में छापुट का स कई पद्य प्राचीन कवियों के उपसम्भ हो जाते हैं परन्तु इस प्रकार की हान्यम्यमयी सम्पूर्ण रचनाएँ उस समय तक प्रकृतपूर्व हो थीं।

(घ) सुयज्ञ-व्यति विषयक काव्य—इस वर्ग के प्रथम एक ही काव्य है—

'गुजरा छतीसी। इस काव्य में कवि ने यज्ञ के उपासन पर बहुत बल दिया है क्योंकि वही सर्वोत्तम धामरण और रत्न है। यज्ञ-व्यति के साधनों में यद्यपि कवि ने प्रतिज्ञा प्राप्त मयुर भावण शरीर के मोह का त्याग औरता ध्यायण का सम्मान, निरम लारी प्रादि कई गुणों का उल्लेख किया गया है तथापि अधिक बल दानधीनता पर है जो एक राजाभित चारण कवि के लिए अस्वभाविक नहीं कहा जा सकता। कवि ने अन्नक जमदेव पवार विष्णु बेहाबाराणी हातमताई प्रादि देव-विदेव के अनेक यज्ञो दानियों का उदाहरण रूप में उल्लेख किया है। यद्यपि अधिकतर बोद्धे विदेव सरस नहीं हैं तथापि कुछ बोद्धे गुजर हैं—

यसो धन धरतार मन दप जन तरणी रहे न ।

तन फालो विसहर तरणो, कंयुक सेत तहै न ॥^२

पतारी नत धनुन जिना तन पारियां गुहाय ।

नर जीबै नरमोज में, जस धमरापुर जाय ॥^३

शास्त्रिक नीति—शास्त्रिक विषयों पर कवि ने निम्न ११६ काव्यों की रचना की है वे दो प्रकार के हैं—

१ बाबरीराम पण्डितजी भाग ३, कायर धारनी, पृष्ठ २६।३८

२ वही भाग ३ गुजरा छतीसी पृष्ठ ४८।२१

३ वही भाग ३ गुजरा छतीसी, पृष्ठ २१।३१

(क) निःशरणा (ख) प्रशयात्मक ।

(क) निःशरणात्मक काव्य—इस वर्ग के अन्तर्गत कवि के ये चार काव्य आते हैं—(१) बैसक बार्ता (२) बैस बार्ता (३) कुकुरि बसीची (४) बिपुर बसीची ।

१ बैसक बार्ता—इस काव्य में बैस्यार्थों तथा बैस्यार्थियों की निम्ना है और बैस्यप्रसंग से उत्पन्न होने वाले दोषों का सविस्तर वर्णन । संस्कृत में दोमेत्र ने इसी विषय पर समयमातृका की रचना की थी और अमितगति भी सुभाषित उक्त संदोह का एक अण्ड इसे समाप्त कर चुके थे । संस्कृत और हिन्दी के कवियों का ध्यान मुक्कों को वैश्यावास से बचाने की ओर तो आश्रय मया है परन्तु उन भाग्यहीन स्त्रियों की ओर नहीं बिगड़े सामाजिक कुपतिस्थितियों के कारण इस अकर्म्य व्यवसाय को बिबस होकर स्वीकार करना पड़ता है । वस्तुतः उस समय तक लेखकों में तथाविध सुधारक दृष्टिकोण का आविर्भाव ही नहीं हुआ था । अस्तु बांकीदास ने बैस्यप्रसंग से होने वाले तेज बस धाम्य यद्यपि कुछ प्रतिष्ठा स्वास्थ्य आदि के नाश का वर्णन तो सूक्ष्म किया है परन्तु पर्याप्त बोध दितिव्यात्मक है । फिर भी इस काव्य में शृंगार-रस की सुन्दर व्यवस्था हुई है । उद्दीपन के रूप में साबन भूले तीज मोर पपीहे आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है । बैस्यप्राणी व्यक्ति की व्यक्ति मारी का वर्णन तो अत्यन्त ही मार्मिक है । कुछ बोध देसिए—

रतियां दो हन रोप सू सड़ बाबे मह सोब ।

हेम रजत आतर तुबै, पत्तर सोब पत्तीब ॥^१

बैस्यप्राणी की सही पत्नी की पुकार सचमुच हृदय विदीर्ण करने वाली है—

में कीबो साबे मते, नायण तोसू नेह ।

बरा आबें सो बेह बित, बाहू विरह मत बेह ॥^२

२ बैसबार्ता—जैसोदोमेत्र ने विविध व्यवसायियों की वचनार्थों से लोगों को सावधान करने के लिए 'कस्तुरिवास' की रचना की थी । यैस ही बैस्यों से सतर्क रहने के लिए बांकीदास ने बैसबार्ता की । जीवन के लिए धन अनिवाय है और अनोपार्जन का मुख्य साधन है व्यापार । व्यापार यदि सत्यता-मूक क्रिया जाए तो प्रशस्त है परन्तु जैसे व्यापार में लाभ का अधिक अवकाश नहीं रहता । इसलिये प्रायः देखा जाता है कि बमिये हीम ही बहुत पनाह्य बमने के लिए अरिष तथा अपयश के विचार को हाक पर रखकर प्रत्येक उचित-अनुचित साधन का निःसकोच प्रयोग करते हैं—

अप अदस बेज नहीं बेज स्दारप बाप ।

बिन तिम का बलियो रई, बलियो लेख पह्याय ॥^३

एक तो बांकीदास को यह बात बहुत कुपी लगती थी और दूसरे बदायित् उन्हें

१-२ बांकीदास प्रयागजी, भाग २, वैदिक बार्ता, पृष्ठ ५२१-२५२

३ पृष्ठ भाग २, बैस बार्ता पृष्ठ २२३

बाबनी' में पासकों को उपदेश दिया है कि वे बंसे चाटुकार कायनों को न समा में रखें न सेना में क्योंकि वे स्रष्ट के नमस साध नहीं देते। उन्हें तो पासे बंस पर बढ़ा कर निवासित कर देना चाहिए क्योंकि वे घघर्न और अपप्यासि सुंठा नहीं भागत धनु को सम्मुल बेसकर भाग बह होते हैं। धानकों को चाहिए कि वे सासों मूकों को देखकर एक पण्डित और सासों कायनों को देखकर एक वीर धरिषे। इस काव्य में स्वामि भक्ति प बहुत बल दिया गया है तथा पत्नी और भयौड़ पति का संवाद तो बहुत ही मायिक है। पति को सर्वथा स्वस्थ सींग देकर पत्नी व्ययपूर्वक पूछती है कि भाप के मूछ माक सिर घाबि पर तो बाव नहीं लगा। उत्तर में कायर पति कहता है कि ये सब तो स्वस्थ है परन्तु भागसे समय पयड़ी गिर पड़ी है सो और मगबा लूंगा। इस पर पति को सन्वित करने के लिए पत्नी कहती है पगड़ी तो बबाय से खीर लोवे परन्तु प्रतिष्ठा कहीं से साधोमे—

पाप घजाजौ पूछ पी रोले मौस मयाड़ ।

ईन्द्रा छिख दिप छाखतो गुरुं हेला पाड़ ॥^१

सदय वरम की बात है कि कायरता की निरुदा के विषय में छिण्टुट रूप से कई पद्य प्राचीन कवियों के उपसम्प हो जाते हैं परन्तु इस प्रकार की हास्यमयमयी सम्पूर्ण रचनाएँ उस समय तक प्रवृत्तपूर्व ही थीं।

(ग) सुपान-प्राप्ति विषयक काव्य—इस वर्ग के अन्तर्गत एक ही काव्य है— गुजम छत्तीसी। इस काव्य में कवि ने यज्ञ के उपासक पर बहुत बल दिया है क्योंकि यही सर्वोत्तम धामरख और धन है। यज्ञ-प्राप्ति के साधनों में यद्यपि कवि ने प्रतिभा पालन मयुर भाषण धरीर के मोह का त्याग भीरता धन्यायत का सम्मान, निमन सारी घादि कई गुणों का उल्लेख किया गया है तथापि अधिक बल धानधीमता पर है जो एक राजाभिन्न चारण कवि के लिए अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। कवि ने अनेक जगरेब पवार किम्म बहाभाराली हसमताई घादि देउ-बिदेउ के अनेक यथास्वी वागियों का उदाहरण रूप में उल्लेख किया है। यद्यपि अधिकतर सोहे विधेय सरस नहीं है तथापि कुछ दोहे सुन्दर हैं—

मंनो अत अरतार मन्, यप जस तली रहे म ।

तन दाली बिसहर तली, कंयुफ रीत तहै म ॥^२

प्यारी पत घपुनर जिन्ना सत घारियां सुहाय ।

नर जीब नरसोए में जम घमरतनुर जाप ॥^३

सांसात्रिक नीति—सांसात्रिक विषयों पर कवि ने जित पाँच काव्यों की रचना की है वे भी प्रकार के हैं—

१ बाँसीराम उन्नावती भाव ३, कायर बाबनी, पृष्ठ २१।३८

२ यही, भाव ३ गुजम छत्तीसी पृष्ठ ४८।२१

३ यही भाव ३ गुजती छत्तीसी पृष्ठ ५१।३१

(क) निम्नगतमक (ख) प्रससारमक ।

(क) निम्नगतमक काव्य—इस वर्ग के अन्तर्गत कवि के ये चार काव्य आते हैं—(१) वैसक वाता (२) वैस वाता (३) कुकवि बचीसी (४) बिदुर बचीसी ।

१ वैसक वाता—इस काव्य में बेस्यामों तथा बेस्यागामियों की निन्दा है और बेस्याप्रसंग से उत्पन्न होने वाले दोषों का उल्लेख करने का उद्देश्य है। संस्कृत में लोमेश्वर ने इसी विषय पर समयमातृका की रचना की थी और अमितपति भी सुभाषित उक्त संदोह का एक लक्षण इसे समाहित कर चुके थे। संस्कृत और हिन्दी के कवियों का ध्यान मुक्तकों को देना आस से बचाने की ओर तो प्रवृत्त गया है परन्तु उन भाग्यहीन किशोरों की ओर नहीं जिन्हें सामाजिक कुपरिस्थितियों के कारण इस अशुभ व्यवसाय को विवश होकर स्वीकार करना पड़ता है। अस्तु उस समय तक लेखकों में तथाजिव सुधारक-वृत्तिकोश का आविर्भाव ही नहीं हुआ था। अस्तु बाकीदास ने बेस्याप्रसंग से होने वाले तब बल धामु यथा मन कुट्टि प्रतिष्ठा स्वास्थ्य आदि के नाश का वर्णन तो सूक्ष्म किया है परन्तु पर्याप्त बोधो दृष्टिबुद्धात्मक है। फिर भी इस काव्य में अस्वच्छ-रस की सुन्दर व्यवस्था हुई है। बचीपन के रूप में साजन, कूते तीज और पपीहे आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है। बेस्यागामी व्यक्ति की व्यवस्थित मारी का वर्णन तो अत्यन्त ही मार्मिक है। कुछ दोहे वैदिए—

रतियाँ रो तन रोप तुं सड़ जाये नह सोब ।

हेम रजत जातर तुबै, पत्तर सोप पसीब ॥^१

बेस्यागामी की सती पत्नी की पुकार अथमुक्त हृदय विवीर्य करने वाली है—

मैं दौबो सधि मते, नापछ तोसूँ मेह ।

बरा घावें ही बेह जित, बाह बिरह मत बेह ॥^२

२ वैसवाता—लोमेश्वर ने विविध व्यवसायियों की वचनार्थों से दोषों को साबित करने के लिए 'कसाविकास' की रचना की थी वेस ही वैस्यों से उत्पन्न रसने के लिए बाकीदास ने वैसवाता की। जीवन के लिए वन अनिवार्य है और अनौपचारिकता का मुख्य साधन है व्यापार। व्यापार यदि शरयथा-पूर्वक किया जाए तो प्रशस्त है परन्तु वैसे व्यापार में साम का अधिक प्रवृत्त नहीं रहता। इसलिये प्रायः देखा जाता है कि जिनमें वीर्य ही बहुत पनाइय बनने के लिए परिणत तथा अपयय के विचार को शाक पर रखकर प्रत्येक उचित अनुचित साधन का निःसन्देह प्रयोग करते हैं—

अप अययस बेस नहीं, बेस स्वारस बाय ।

बिन तिम कः बलियो रूँ, बलियो सेर बहाय ॥^३

एक तो बाकीदास को यह बात बहुत दुरी लगती थी और दूसरे कदाचित् उन्हें

१-२ बाकीदास अथवाकरी, भाग २ वैसिक वाता, पृष्ठ ५१२१ ५१४१

३ वही भाग २, वैस वाता, पृष्ठ ५११३

कुकवियों का उन्मूल किया है। उद्यम कुकवि एकाग्र वचन मध्यम दोहा और प्रथम पुरा गीत ही पुरा सेता है।^१ उसे प्रथमाद्य छन्द रस प्रसङ्गकार प्रादि की कोई चिन्ता नहीं होती। वह दशिया के द्वार पर भरना दता है और कुछ प्राप्त हुए बिना उद्यमे का नाम नहीं करता। उसका ह्याम भाई हुई पुस्तक के पन्ने ऐसे गिनत-बितत हो जाते हैं जैसे बाज के पंजे में पड़ परेबा के पस। वह परम दर्जे का भूर्ण होता है विगल-कवियों में विगल-कवि बन बैठता है और विगल-कवियों में सम्मूह-कवि। एक और रस्यों की सुन्दर योजना के साथ सुकवि ने कुकवियों पर ऐसे तीखे ध्यय कसे हैं कि उन्हें पढ़कर धातमसम्मा की कुकवि सुकवि-युक्त समा में ठहुरने का नाम न ले। यथा—

दानर ही गिरमज्जता अपस कटणता मीच ।
 बायत तलों कुकंठ से कुकवि जिवाता कीय ॥^१
 प्रीणण ईरानो कटक, कुकवि नावर साह ।
 कायब द्विही बस कटे, रतल सेय बहराह ॥^२
 भाइ पटरस ऊपरा, माडी नवरस मंड ।
 कुकवि यह विष सु कियो प्राचरजा प्रकड ॥^३

कुकवियों की निम्ना पर प्राचीन सम्मूह-कवियों के जो गद्य उपसङ्ग होते हैं, उनका प्रभाव बांसीदास के कुछ दोषों पर स्पष्ट मभित होता है। यथा—

हुठाबाहुप्टानी कतिपयपरानो रचयिता
 जग स्पर्धाकुशेबहू करिना कदयबचसा ।
 भयेरघ श्को वा किमिअ बहुना पापिनि कसी,
 घटानी निर्मानुति भुवनविधातुअ कसह ॥^४
 कबिराजा सु मब कवि, ककस करे प्रविचार
 प्रब जग करता सु प्रपस करसो घट करतार ॥^५

४ बिबुर बलीसी—यह निन्दा रम्य प्रबगुणों व धापार दासी-पुत्रों के विषय में किया गया है। प्रकृत होता है शासविषयक निन्दाकाव्य का नाम बिबुर जैसे विद्वान् नीति-निपुण और धार्मिक मानव के साथ क्यों सम्मूह किया गया। उत्तर यह है कि बिबुर का व्युत्पत्त्यर्थ दो विद्वान् हैं^६ परन्तु प्रथम बार विद्वान् भोग भी विद्या का

१-३ बांसीदास प्रभावली भाग २ कुकवि बलीसी पृष्ठ ७८।११ ७६।३, ८२।३३

४ " " कुकवि बलीसी पृष्ठ ८०।२४

५ सु० १० भा० पृष्ठ ३८।२४। धर्य—कवि हठपूर्वक कुछ पद्य रचने जाता व्यक्ति किसी कुशल कवि से स्पर्धा करने सये तो इस पानी कर्मियुग में प्राज्ञ या कल कोई कुम्हार भी प्रपत्कर्ता से कसह करने लग पड़ेगा।

६ बांसीदास प्रभावली, भाग २, कुकवि बलीसी पृष्ठ ८०।२३

७ विविर्भविच्छिरे पुरम् (पारिनि-प्रप्याप्यायी ६।२।१६२)। माता तु बिबुरो बिबु (प्रवरकोश)।

दुःपयोग कर लीये सादे लोगों को प्रबन्धित परत हैं। यद्यपि यह शब्द धृष्ट के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगा।^१ यह बात तो सर्वविदित ही है कि बिदुर-नीति के कर्ता महात्मा बिदुर दासी-पुत्र थे। इसलिए सम्भव है कि पुनः दासी-पुत्रों के लिए बिदुर शब्द का प्रयोग हमारे कवि के काल में घिंटता या अर्थ में काय होना ही और इस नाम के लिए भी अपना लिया गया हो।

दूसरा प्रश्न यह है कि दासी-पुत्र को समाज में इतना निच क्यों कहा गया है। माया-पत्नी की आशंका नहीं क्योंकि कवि ने कृति के प्रथम दोहे में स्वयं ही यह दिया है—

घिबर बिबर बारी महीं भाबर घिराँ मूस ।

रासे अमलत रंग रा बिल री कुसो कुकूल ॥

अर्थ यह समझना ही कि किसी भी युग में प्रशंस्य नहीं माना गया। उसे प्रशंस्य मानने का अर्थ होगा बुराचार का प्रोत्साहन। बात यह है कि उपरोक्त कु ३ न राजा और अनात्म्य सोम अपनी पत्निया से अलुप्त न होते से और सामान्य अस्तित्व दासियों को भी कामवासना में फँसा सके थे। इस प्रकार अन्धारे बाँस-पुत्र न पिता का नाम बता सकते थे न मोक्ष का। अन्धकार-पूणा की दृष्टि से देखे जान क कारण अज्ञान-अज्ञान्य-अज्ञान्य को अज्ञान ही स्वीकार कर सके थे। बिदुर अज्ञान्य-धीरे से उत्पन्न होने के कारण अपने को अज्ञान्य कहने की आसना तो रखते थे परन्तु दासीवास में उनकी उपमा उन दास-युक्तों से की है जो बाराहों या अज्ञान्य-युक्तों से सम्मिलित होना चाहते हैं—

कुल कभी बाराह कुल शेरस बाँस पुर ।

निमित्ता बाँस क्या महीं गोसा न गंडमूर ॥^२

उच्च अर्थ या परिवार में उत्पन्न होना तो किसी न भी अर्थ में नहीं परन्तु अज्ञान्य अर्थ में अज्ञान्य के कारण बिदुर उपहासास्पद बने गए हैं। उनका परिवार अज्ञान्य नहीं है। बिदुर के मतानुसार बिदुर आवास और ईश्वर होता है वह मोक्ष रत्नना अर्थ में समझता है परन्तु नाम अज्ञान्य-अज्ञान्य रखता है वह अज्ञान्य का अर्थ (कुला) है परन्तु युद्ध में गौ अज्ञान्य है वह अज्ञान्य कारण करते समय तो देख सयाता है परन्तु अज्ञान्य समय पूर्ण दियाता है वह अज्ञान्य से नहीं मानता इह से निमित्त पर ही काम करता है नाम अज्ञान्य नाम अज्ञान्य और अज्ञान्य अज्ञान्य उसके अर्थ अर्थ है। साथ यह कि अज्ञान्य अज्ञान्य और अज्ञान्य-अज्ञान्य के अर्थ में अर्थ अज्ञान्य है। अज्ञान्य ही बिदुरों की होती थी। यद्यपि तो नाम अज्ञान्य कहते हैं अज्ञान्य अज्ञान्य की

१ पी० एन आरटे प्रसिद्ध सप्तम इतिहास विज्ञानरी (अक्टूबर १९२१) पृष्ठ ८२६

२ बीबीराम अज्ञान्य भाग २, बिदुर-वृत्ती पृष्ठ ६०।२०

निरर्भकता का प्रतिपादन किया है तथापि एक उपयोगिता उन्हें भी स्वीकृत करनी ही पड़ी है। वह यह कि उन्हें से तुलना करने पर असम नसल की पहचान हो सकती है। काव्य में यद्यपि कुछ बोहे नीरस भी हैं तो भी अधिकतर पद्य व्यंग्यपूर्ण होने के कारण मनोहर हैं। यथा—

दालनियो असयेसियो मास केसियो भेद ।
 विवरा रे ऐ व्याठरसु दिदा रे ऐ वेव ॥^१
 गोमो बहु यतराविदां विदु ऊठं थडाम ।
 घग में साधी नहूँ बुड़ी पोला माफक गाम ॥^२
 बीपू बानर व्यास बिप यरबम दडक गोल
 ए अतपाइज राअए, ओ उपवेस धमोस ॥^३

इसी काव्य के धनिम दाह से अनुमान होता है कि इसका साध-ही-साध बंगाल में जतीराम की भी रचना की गई थी जिसे किन्नर इस कृति का दुन्हा कहा है^४ और जो आज प्रामाण्य है।

(८) प्रशामात्मका काव्य

इस वर्ग के अंतर्गत बाकीबास की एक ही कृति है—धबल पञ्चीसी। धबल अर्थात् स्वतः बस के असाधारण पुण्य की भार प्राचीन कवियोंका ध्यान भी धारण्ट हुआ था।^५ उन्होंने इसका विषयण नार-धारण्ट सङ्ग-बहुन स्वामिमरित धारि गुणों को देखकर कई स्फुट पद्य रचे थे और उनका ध्यात्र स सबकों को स्वामिमरित का सुन्दर पाठ पढ़ाया था। परन्तु जहाँ बाकीबास ने इस काव्य के विषय स सबकों को स्वामिसवा की सिखा दी है वहाँ उन्होंने स्वामियों का भी सबकों स सद्ब्यवहार करने की प्रेरणा की है। जैसे—

धरतु सरीली धरतु है को छोड़ै के बार ।
 जो भार नलाबिय तेतो खंवरु हार ॥^६
 रब न केरे पुर नहूँ यबता एह धरम्म ।
 राअब क्या र राअहो सीगा हली सरम्म ॥^७
 शिष अहीस जानता धारपाल इत बोय ।
 साइते को रे हुई धबलु न छोटी होय ॥^८

१ बाकीबास प्रयागसी भाग २ विदुरवतीसी पृष्ठ ८५४ भासनिदा असवेसिया
 साककेसिया मारबाइ के अरतीस गीनों के नाम हैं।

२ ३ बाकीबास प्रयागसी भाग २ विदुर वतीसी पृष्ठ ८८१८ १११^३

४ विदुर वतीसी बाँदली जगीरास वर जाड। व्याह पयो वेसाअ में, पूरए प्रेम प्रकृत ॥ बाकीबास प्रयागसी भाग २ विदुर वतीसी पृष्ठ १२१३६

५ सु० १० भा० पृष्ठ २२४-२२५

६-८ बाकीबास प्रयागसी भाग १ पृष्ठ ३८१५ ४-१२७ ४२१०

यद्यपि रचना आधुनिकतमयी है तथापि अभिप्राय के अधिक प्रबल होने के कारण विशेष सरस नहीं।

व्यापक नीतिस्थाप्य—कवि ने व्यापक नीति पर जिन काव्यों की रचना की है वे दो वर्गों में विभाज्य हैं—

(क) प्रसंगस्तम्भ (१) सतोप बावनी (२) बतार बावनी

(ख) निदारम्भ (१) कृपण दर्पण (२) कपण पञ्चोटी

(ग) प्रशान्तस्तम्भ काव्य

संतोष बावनी—संतोष और संतोषियों की प्रसंगा तथा सोम और सोमियों की निंदा ही इस कवि का विषय है जिस पर सस्कृत पामि, प्राकृत और अपभ्रंश सभी भाषाओं में पर्याप्त सिद्धा का फुका का। सोम के कारण मनुष्य दूसरों का गमा काटता है और अपना भी कटवा खट्टा है अस्माच्छादित भी सोमी मग्न होता है और मग्न भी संतोषी घाबत सोम ऐसा विमक्षण मुह है जो अनोपार्जन की अनेक कमाएँ सिद्धा करता है, अर्थात् कुत्कार कर कर भटकर भी उतना साध नहीं पाता जितना भयव्यामी कुत्कार अपने स्वान पर स्थिर रहता हुआ सोम की अग्नि संतोष के बस से ही खात होती है और संतोष सत्संगति तथा चारित्र्य के पटन-प्रवण से उत्पन्न होत है अर्थात् सुंदर उक्तियाँ तो काव्य की सोभाव्यंत्क हैं ही, वे बार्ते विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। प्रथम सुन्दर सौम रूपों का प्रयोग द्वितीय सोमो मनुष्यों की सकटपूर्ण प धारें। नृपत्या के कारण सोम हिम-वृष्टि को अंशकर तथा हिमोन्मादित पर्वतों को सौंभकर भीम भूतान हम्ब, ममन हम्ब तातार धारि देगों से स्पष्टिक बर्षण इम हाथी, अस्फुरी धारि पदाय सात है। अनेक दोहों पर प्राचीन भारतीय कवियों का प्रभाव स्पष्ट लघित होता है और कहीं-कहीं बिदेसी प्रभाव भी। कुछ उदाहरण नीजिए—

मन मज्ज जय सर माहि सोम पास बस कर सियो।

दुरत छुदादल ताहि होय संतोष हरि हमे १^१

एवं जो अटनीम सात हेक गुरताए रँ।

महीं मिक्का है भीम ईठै भेया आटमो ॥^{१२}

पुस प्रवाद संतोष गज जे नर पटा जाय।

जग सासय कूरर जिया सात सछे न लपाय ॥^{१३}

२ बतार बावनी—यह पुरतक मुख्य उत्पीडी संकृत-मुक्त विमती-मुसती है। मुख्य उत्पीडी में कवि ने यश को सद्य मान कर दान को छत्र के प्रदान-नाशन के रूप में बलिष्ठ दिखा है और दत्तम दान की प्ररणा के साथ-साथ देव-विदेय के साथ घाया करी शतम धारि दानी व्यक्तियों का यशोगान अविस्तर किया गया है। अपने समाप्ति मूय को साथ मिय प्रवान करन जाने जामनगर-नरैय अजड़ की प्रगसा कवि ने अन्त दोहों में की है। जैसे—

११ बाकीसात प्रभावभो भाय ३ संतोष बावनी पृष्ठ ३३।१ ३८।२७ ६१।३६

माई पूजा पुत्र जस, जेना जन्म जान ।

बीजी सातुं तिय दम, त्रिम बीज इफ पाम ॥^१

कवि के विचार में माता ही माता पिता और देवता है इसलिए वह इजरात से प्रार्थना करता है कि रोटी काग्न बानों की माटी नीर (मृत्यु) दूर ही रहे—

जय शतार बनारदन विरिपारये गुण गह ।

दमपन रोटी घाटण मोरो नीर मत बेह ॥^२

कवि ने काव्य में दान दाता और प्रतिग्रहीत क सम्बन्ध में अनेक उपयोगी बातें कही हैं जैसे—बाह्यण चारण स्वामी आदि को मोटे भाव्य और मोट मन बानों से ही मायना उचित है मुर्योरय पर दाता के मुखदर्शन से मूस मय, क्लेश आदि मट्ट होते हैं जैसे मिशु को मायना बैसे दानी को देना प्रणया समता है यद्यपि भोग धन प्रिय नहीं हाते अपने हाथों से दान देकर धपना यद्य धपन जानों से मुमना चाहिए अनेमा दान अनेक रोगों का नाशक है उदारता विरि की भाभा पर निमर नहीं है दाता के हृदय पर निमर है दाताओं को दान देते देकर कृपणों के हृदय विवीण हो जाते हैं आदि । इस प्रकार की उक्तियां निस्तन्वेह कवि के मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा तत्कालीन सोचविचारों पर प्रकाश डालती हैं । इस भावपूर्ण रचना के कुछ उदाहरण इष्टम् हैं—

दाता धन जेतो दिव, अत तेतो पर पीठ ।

जेतो गुण सं पामियां तेतो जीमण मोठ ॥^३

मोठो दाता मापियां, सोठो भात्र तेण ।

धीरै सापर पप ठिस, जुड़े अबाहुर अण ॥^४

बनुं न सुको कबर म हातम हुंरो हत्य ।

हातम से उण हत्य सुं अयहइ बंटी अत्य ॥^५

(ग) निम्बात्मक काव्य

१ कृपण बपण—कविराज ने स्वयं ही प्रथ रचना का उद्भव कृति के अन्त में धों स्पष्ट कर दिया है—

अनला भूं अनला तलों अय दिवादण कात्र ।

प्रथ अनला बपण अियो रोध्रंअण कविराज ॥^६

दान प्रशसा के समान कृपण-निन्द्या भी भारतीय नीतिकवियों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है । इस विषय पर अ्यास क्षेमेन्द्र त्रिमूक मूषिगामट, उविगुप्त आदि अनेक कवियों की सुन्दर मुक्तियां संस्कृत-ग्रन्थों में दिखाई देती हैं । परन्तु बांकीदास की कृति के अतिरिक्त पद्य मौखिक हैं प्राचीन काव्यों से प्रभावित नहीं । रचना-हास्य रस से

१-२ बांकीदास प्रयागवासी, भाग १ दातार बाबनो पृष्ठ ३६१-३६२
 ३ ५. " " " " " " पृष्ठ ४६१-२ ५०-१० ३५१-३६
 ४ बांकीदास प्रयागवासी भाग २ कृपण बपण पृष्ठ ३६१-४

यद्यपि रचना सम्बोधितमयी है तथापि अधिपदार्थ के अधिक प्रबल होने के कारण विशेष सरस नहीं।

धार्मिक नीति-काव्य—कवि न धार्मिक नीति पर जिन काव्यों की रचना की है वे दो वर्गों में विभाज्य हैं—

(क) प्रवृत्तात्मक (१) सतोप बाबनी (२) दातार बाबनी

(ख) निवृत्तात्मक (१) कूपण वर्णन (२) कपण पञ्चोत्ती

(ग) प्रवृत्तात्मक काव्य

संतोप बाबनी—संतोप धीर सतोपियों की प्रसंसा तथा सोम धीर सोमियों को निंदा ही इस कवि का विषय है जिस पर सस्कृत पाणि, प्राकृत धीर अपभ्रंश सभी भाषाओं में पर्याप्त भिन्नता का हुआ था। सोम के कारण मनुष्य दूसरो का यत्ना काटता है धीर अपना भी बटवा पट्टा है बरबाच्छादित भी सोमी नमन होता है धीर नमन भी संतोपी धाबठ सोम ऐसा विमिश्रण पुरु है जो बगोपार्जन की अनेक कमाएँ सिखा देता है, अधीर कुम्कुर घर घर मटककर भी उतना साध नहीं पाता जितना भेयपालो कुम्कर अपने स्थान पर स्थिर रहता हुआ सोम की धर्म सतोप के जल से ही दाँठ होती है धीर सतोप सत्संगति तथा धार्मिकों के पटन-ग्रहण से उत्पन्न होता है धार्मिक सुंदर उक्तियाँ तो काव्य की रोमाञ्चक हैं ही, वो बातें विशेष रूप से उन्मुख्य हैं। प्रथम सुम्बर साँग कपुकों का प्रयोग द्वितीय सोमो मनुष्यों की सकटपूर्ण यथाएँ। तृतीया के कारण सोम-हिम-भृष्टि को भ्रतकर तथा हिमोम्भादित पर्वतों को सौंपकर भीन भूदान इसक, यमन इसक तातार आदि देवों से स्फटिक वर्णन इस हाथी कस्तुरी आदि पदार्थ साते हैं। अनेक दोहों पर प्राचीन भारतीय कवियों का प्रभाव स्पष्ट संज्ञित होता है धीर कहीं-कहीं बिदेपी प्रभाव भी। कुछ उदाहरण नीजिए—

मन गज जप सर माहि सोम प्रीस बस कर सिपो।

दुख छुदाएउ ताहि होय संतोप हरि हमे ॥^१

धार्मिको धरतीम सात हेक सुरताए री।

गह्री मिखा है नीम ईछ सेवा धाष्टमी ॥^२

पुत्र प्रताप सतोप पत्र जे नर यटा जाम।

जग सासप दुकर जियाँ सात सऊ न लगाम ॥^३

२ दातार बाबनी—यह पुस्तक गुजरात छत्तीसी से बहूत-मुछ मिसरी-जुलती है। गुजरात छत्तीसी में कवि ने मद्य को लय मान कर शान को उद्य के प्रबान-साबन के रूप में बणित किया है धीर इसमें शान की प्रेरणा के साथ-साथ वैद्य-विद्येय के यात्रा धाया बरुँ हाथम आदि शारी व्यक्तियों का यज्ञोपान सविस्तर किया गया है। अपने समाजिक रूप को सात सिध प्रबान करने वाले आमनवर-नरेय ऊनक की प्रशंसा कवि न अनेक दोहों में की है। जैसे—

माई पृथा पूत बरु, छेत्रा ऊनङ्ग धाम ।

दौपी छातुं सिम इम, सिम बोअं इक धाम ॥^१

कवि के बिचार में दाता ही माता पिता धीर देवता है इसलिए वह धर्मपति से प्रार्थना करता है कि रोटी बटिने वालों की मोटी नोट (मृत्यु) दूर ही रहे—

जग दातार बनारबन गिरिमारी गुण गेह ।

धर्मपत रोटी बाँटला मोटी भीर मत बेह ॥^२ ✓

कवि ने काव्य में दाता, दाता धीर प्रतिग्रहीत के सम्बन्ध में अनेक उपयोगी बातें कही हैं जैसे—प्राणायु चारण स्वामी धादि को मोटे भाव्य धीर मोटे मन वालों से ही माँगना उचित है सूर्योदय पर दाता के मुखदर्शन से भूख भय, क्रोध धादि नष्ट होते हैं जैसे मित्यु को माँगना बसे वाली को बेना प्रच्छा संपत्ता है यक्षप्रिय कोम धन प्रिय नहीं होते, अपने हाथों से दान देकर अपना यश अपने कानों से सुनना चाहिए अकेला दान अनेक रोषों का नाशक है उदात्ता बिल की मात्रा पर निर्भर नहीं है दाता के हृदय पर निर्भर है दाताओं को दान देते देसकर रूप्यों के हृदय विधीय हो जाते हैं धादि । इस प्रकार की उक्तियाँ निस्सन्देह कवि के महावैज्ञानिक अध्ययन तथा तत्कालीन लोकविश्वासों पर प्रकाश डालती हैं । इस भावपूर्ण रचना के कुछ अन्तर्दृष्ट्य हैं—

दाता धन धेतो बिये, जस तेतो बर पीठ ।

धेतो गुन न पाणियाँ, सेतो भीमल मीठ ॥^३

मोटो दाता पाणियोँ, तोटो भाअं तेण ।

जीअं सत्यर बोय दिस, कुई जवाहर बेण ॥^४

क्यू न सुखी कबर मे हातम हुंदो हत्य ।

हातम से उल हत्य नूँ, अपहृङ्ग बाँटी प्रत्य ॥^५

(ख) निन्दात्मक काव्य

१ कृपण बर्णन—कविराज ने स्वयं ही प्रथम-रचना का उद्देश्य कृति के अन्त में भी स्पष्ट कर दिया है—

अनलां मू अनलां तलोँ अय विजादण काज ।

प्रथम अनल बर्णण चियो पीअंअण कविराज ॥^६

दातु-प्रसन्नता के समान कृपण-निन्द्या भी भारतीय नीतिकविओं का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है । इस विषय पर अनेक विद्वान् भूषिणोन्त उक्तिगुण धादि अनेक कवियों की सुन्दर उक्तियाँ संस्कृत-अंग्रहों में विकारि देती हैं । परन्तु बाँकीदास की कृति के अतिशुद्ध पद्य मौलिक हैं प्राचीन काव्यों से प्रभावित नहीं । रचना शास्त्र रस से

१ २ बाँकीदास प्रभावली भाग १ दातार बाँकी पृष्ठ २११-२ ४६१३

३ ५ " " " " " पृष्ठ ४६१२ ५०१३ ५४१३

६ बाँकीदास प्रभावली भाग २ कृपण बर्णन, पृष्ठ ३६१४

प्रपूर्ण है। अनेक दोहों से कवि की सरल कल्पना श्रुति का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है। जैसे—समुद्र-यात्रा में कंबुस के साथ पोत पर न बैठना चाहिए क्योंकि उसने रत्नाकर की पुत्री को पृथ्वी में दृष्टा रखा है। कपण के घर में यमराज के दूतों के बिना कोई भी ब-जगु नहीं जा सकता। सूर चारणों मट्टों और ब्राह्मणों से कहना है कि भाव तो सम्मान से ही संतुष्ट हो जाते हैं। वाम से तो ब्रह्म प्रसन्न होते हैं इत्यदि।

रचना में दो बातें विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। प्रथम कपण-कठ कपाट-वर्षसा और दूसरी कपणों के ती प्रकार। कपण के मत में योपक-एक-बसा है और उससे बचने के लिए ही बिरंघि ने फाटक का रचना की है। नीतिकारों ने सदा ही भाइयों तथा मित्रों को दो बाहु माना है परन्तु कपण दो कपाटों को ही निब बह समझता है। कवि ने कपणों के दो नव भेद विनाये हैं—मीठा सूर हाबर-नाहर सूर जबुक सूर, घाम भूम सूर पर्व-मोस सूर चोड़ सूर उबारिया सूर मन्दाकी सूर बुष्ट सूर और घब सूर। कवि ने एक-एक दोहे में एक-एक सूर का ऐसा भवण दिया है कि पाठक पढ़ कर मोट-पोट हो जाता है। कवि के कुछ दोहे देखिए—

कपण बराटक पापियाँ नाटक कर मिलजज ।
 मुख जापक घाटक करे सब दिन फाटक सज्ज ॥^१
 मंगल सारे मंडिया घामे भापी जाय ।
 मुजस-कुजस न र्भमलै बंजुफ सूर दहाय ॥^२
 बिपो सबर मुशियाँ दुसहू भार्ग तन मन लाय ।
 सुंप बिपो म करे सदन परय विवासी पाय ॥^३
 रत ह्युँ रत जापक रसक जाबे बे कर भेड़ ।
 बनो भंले नय नार ह्युँ नूढ़ कपण सुन भोड़ ॥^४

४ कपण पञ्चीसी—'कपण कपण' ने बाब इस ग्रन्थ पर दृकगत करने से सुरम्य अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ बाँकीदास हस्त नहीं है। उक्त अनुमान के आधार निम्नलिखित हैं—

१ कपण-वर्षण के पश्चात् उही विषय पर कवि को एक भग्य काव्य लिखने की आवश्यकता ही न थी।

२ बाँकीदास के शब्द, बोधा और गीत के अपहारक विविध कुट्टियों का उत्प्रेष कुट्टि-बत्तीसी' में किया है।^१ और-कवियों के निरक कुट्टि बाँकीदास से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे पुरबर्ती कवियों की भाव म या वा अपहारक करेंगे। परन्तु 'कपण पञ्चीसी' के अनेक बाँड़े इस शेष से मुक्त नहीं हैं जैसे—

१ बाँकीदास संपावली भाग २ कपण कपण ३२१० ३८१३७ ३३१२४

४ " " " " पृष्ठ ३७१२

५ " " " " कुट्टि बत्तीसी पृष्ठ ७८११

देव किसी उपमा बिपा से तरप्या सह दोय ।

दुम सरीको दुहिय तु धर न बुजो कोय ॥^१ (ईसरवास)

बरय किसी धोनम बिपा तो घू है छह कोय ।

तो सारीको दुहिय तु धर न बुजो कोय ॥^२ (बांकीवास)

ईसरवास ने जिस दोहे को प्रमुख सम्बन्ध में लिया था उसे यहाँ दृश्य के बिषय में कह दिया गया है। माया का ध हरण तो धप्रत्याख्येय है ही। इसी प्रकार कृपण-पञ्जीसी का निम्नलिखित दोहा पीपा इत है केवल पीपा के स्थान पर पापी कर दिया गया है और एक पांडुक्तिपि न तो पीपा पाठ मिसना भी है—

पापी पाप न कीजिए प्यारा रहिए आप ।

दरली आपो धारती फुल बेडो फुल आप ॥^३

३ काव्य में उपदेष्टात्मक दोहे भी कई हैं^४ यह बात कृपण-दर्पण में दिखाई नहीं देती।

४ कृपण-पञ्जीसी के पाँचवें दोहे में साधन में सुरापान न करने वाले को कृपण कहा गया है। इस प्रकार क निम्न कर्म की प्रस्ता कविराज ने धम्यन नहीं की।

५ इस काव्य के कई दोहों को माया भी बांकीवास की प्रतीत नहीं जाती।

इसके बिपरीत निम्नलिखित कारणों से रचना बांकीवास इत अनुमित होती है—

१ तबयं स सम्बन्धित दूट-दोहा इण-दर्पण में भी है और कृपण-पञ्जीसी में भी—

एक धरग में अपना सुम कई इफ्तार ।

बोमत हरे दकारियो बोमत धम नदार ॥^५

पुत बरण पणईसमो, इबक धीसन्ध धान ।

साधतु विय तुम बतन सो विस्नुत भो भगवान ॥^६

प्रथम दोहे का भाव यह है कि दकार (दान) धम को ह ता है और नदार (दाम निपच) धम को सचित करता है। दूसरे का भावय यह है कि "हमे सन्नीसबे धमर (ध) को सिसें धोर धापे बीसनें धमर (न) को। इस प्रकार निमित्त धम' का परिभ्रमपूर्वक संबन्ध कर।

१ ईसरवास, हरि रत २४

२ बांकीवास प्रंपावसो भाग ३, कृपण पञ्जीसी, पृष्ठ ८४१४

३ " " ' " ' " " पृष्ठ ८६१२१

४ " " ' " ' " " पृष्ठ ८२१६, ८४१२३, ८४१२६

५ बांकीवास प्रंपावसो, भाग २, कृपण दर्पण पृष्ठ ३४१२१

६ " " ' भाग ३, कृपण पञ्जीसी पृष्ठ ८४१२८

२ कृपण-दर्पण में तो नी प्रकार के सुमों का उल्लेख ही किया गया है परन्तु यह नहीं बताया गया कि उनमें से निम्नतम कौन-सा है। इस कमी को कृपण पञ्चीसी का निम्नांकित दोहा पूर्य करता है जो हमारे विचार में बाकीदास का है—

सारा सबतारा मंही घासो पद्म पोण ।

गुंन म बिजावै मंगला बेणो उत्तर दोस ॥^२

प्रस्तुत यह दोहा 'कृपण-दर्पण' से ही सम्बन्धित है और किसी प्रजात कारण से 'कृपण-पञ्चीसी' में लिखा गया है।

३ कृपण के साथ जम-याथा करने का निषेध 'कृपण-दर्पण' में भी किया गया है और कृपण-पञ्चीसी में भी—

बिन्दा न दोषो जमम धर हैको कृण युज हृण ।

महि पंसीमे मांभ में सायर सुना सत्प ॥^३

कौ हू तुंवा बांभियां तुंमा हुंके सत्प ।

गर बूब पड़ती मबी, सायर तरण समरप ॥^३

४ माया और उनमें प्रयुक्त भारी-भरकम सबाब (सबाब = पुष्प), तफाबज (तफाबज = फर्क) आदि विदेशी शब्दों के प्रयोग से कई दोहे बाकीदास प्रणीत ही प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त विचारण से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यह कृति पूर्ण रूप से बाकीदास-कृत प्रतीत नहीं होती। सम्भवतः उनके किसी शिष्य या सम्बन्धी ने कुछ उनके और कुछ अपन बोहे संभूहित कर कृपण पञ्चीसी नाम दे दिया है।

अस्तु दोहे कृती के भी हों इसमें सम्भेह नहीं कि अधिकतर दोहे भावपूर्ण हैं। वहाँ के कृपण की मनोवधा को सुन्दर ढंग से व्यक्त करते हैं वहाँ कवि के कौशल के भी परिचायक हैं। जैसे—

उत्तर नू पामी दहै उर क्यां बड़ो घ घेर ।

उत्तर बिता सुमेर है उत्तर माहि पुबेर ॥^४

कई धरज कमलासया, त्यागां बार न तुजस ।

बिण दिण घो जय छांडस्यर, पख दिन तोसु कज्ज ॥^४

निश्चित भोति—इस रूप के अन्तगत कवि के दो ही संघ आते हैं—(१) नीति मंजरी (२) मोहमर्दन।

१ नीतिमंजरी—इस संघ में राजोपयोदी नीति का ही विशेष रूप से कर्णिक

१ बाकीदास संपादन भाग ३, कृपण पञ्चीसी, पृष्ठ ८७।२७

२ " " भाग २ कृपण दर्पण, पृष्ठ ३३।२४

३ " " भाग ३, कृपण पञ्चीसी, पृष्ठ ८६।२४, ८७।२९

४ " " " " " " पृष्ठ ८७।२६

किया गया है और इसके भी एक संग, धनु के प्रति व्यवहार का। काव्य का सार यह है कि धनु से धपनी तो सावधानता-युक्त रखा बरनी चाहिए और उसका छप कपट से भी सहार करना चाहिए। ध्यान देने की बात है कि 'मूर छत्तीसी' आदि में धनु के प्रति आदर्शात्मक व्यवहार का उल्लेख किया गया था परन्तु यहाँ दृष्टिकोण उदार नहीं है ब्यावहारिक है। धनु राजाओं के ही नहीं होते सामान्य-जनों के भी होते ही हैं अतः काव्य सामान्य रूप से सामान्य-जनों के लिए भी उपयोगी है। इति में बुद्धि-वृद्धि की प्रधानता और कल्पना-वृद्धि तथा रागवृद्धि की न्यूनता है अतएव रचना काव्यात्मिकी दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं है। यथा—

हृण विद्यधर विद्यधर वधौ धाप सुधाय प्रथार ।

विकल्प मार सुह विस्तार री, असमन्त सिधौ उबार ॥^१

दायरा मार दाव सू, मोत बात निरधार ।

पेद द्विदल खोती प्रगट, मूस सं विल धंधार ॥^२

२ मोह मर्दन—इस इति का स्वर सन्त-कवियों के नीति-काव्य क समूह ही है। जब तक घरीर, परिवार अपना धीर उदार से प्यार बना रहता है तब तक मानव मोह के जगुल से मुक्त नहीं हो पाता। इसीलिए कवि ने घरीर को दुःखों रोगों व्यसनों तथा मत्तो का आगार कहा है। वह रसना पर राम और भरा पर नाम रखने की प्रेरणा करता है। शीरता कीति बरा तथा बिल से अन्य धमिमान के त्याग तथा जग तथा धीर विवेक से अनुग्रह रखने की प्रेरणा की गई है। सब सम्बन्धी भूठे हैं इसलिए उनके प्रति प्रेम त्याग्य है। सपति साध नहीं जाती इसलिए उद्यका उद्यह व्यर्थ है। जीव हिमा पाप है क्योंकि धम्य प्राणि में भी प्राण हमारे ही समान मिल है तथा हिमा से दया-धर्म का नाश होता है। काल-रूपी विद्वान से प्राण-रूपी पशु की रक्षा करना प्रसम्भव है। मृत्यु की दृष्टि में कोई भी स्थान धीर व्यक्ति धम्य नहीं है। वह मनुष्य की कृपना पशु बना देती है क्योंकि मृतक भ्रष्टी उठाने वाले चार सम्बन्धियों के साथ पाकों से समान को प्रस्थान करता है। उदार भूटा है और इसका प्रत्येक पयाव शल-शुद्ध शीख हाण जा रहा है। इसे मत्त धपनाओ क्योंकि मुख इससे दूर धीर बुद्ध ही इसके समीप रहता है। इसी प्रकार की वैशाम्यमयी उचितियों से रचना प्रगुण्य है। रचना विधेय सरत तो नहीं है परन्तु धनुक सुन्दर रूपकों और सुन्दर रूप-नार्यों से समृद्ध है। अनेक विद्वसीय धमिमानी दासकों की चर्चा कवि के इतिहास ज्ञान का सम्यक परिचय देती है। सद्वृत्त और द्विती के प्राचीन कवियों का प्रभाव भी अनेक दोहों पर स्पष्ट-मलित होता है। कुछ दोहे दृष्टव्य हैं—

१ श्रीदीदास प्रयागसी भाग १ नीति मञ्जरी, पृष्ठ ६१३

२ "

पृष्ठ ६१२८

तन बुझ नीर तइय रोज जिहम कजड़ी ।
 विसन ससीनुज बाग, घरा बरख ऊतर बजस ॥^१
 बरणी घाई बानियो बंगस री बख बाप ।
 पुबप हूत हूणु पतु भतक दोबो घाय ॥^२

आलोचना

दरबारी नीतिकार्य—बांकीदास के नीतिकार्यों के अध्ययन के समय यह भावना बराबर बनी रहती है कि उनका अधिकतर सम्बन्ध राज-दरबार-से है सामान्य जनता से नहीं। कुगर-मुख चपेटिका की रचना राज-समाजों को पिशुनता के परित्याग की शिक्षा देने के लिए की गई प्रतीत होती है। सूर छत्तीसी सीह छत्तीसी वीरविनोद भावद्विया मिजाज कायर थावनी और बजस पञ्चीसी का प्रथम राज-सेतकों में बीरता और स्वाभिन्निक के भाव भरने के उद्देश्य से किया गया है। सुजस छत्तीसी, बाठार बावनी रूपण बणुण और रूपण पञ्चीसी का उद्देश्य राजाओं प्रायः को रूपणता के त्याग और बदाम्यता के अंधीकार द्वारा मशोबिस्तार की प्रेरणा करना है। इसी प्रकार भीतिमजरी राजमर्वन की बिदुर बत्तीसी निकम्मे लोगों को बरवार से दूर रखने की वैसक बातों तथाकथित धमिजात बर्ष को बेह्याओं से और कुकबि बत्तीसी कुकबियों को राज-समाजों से दूर रहने की शिक्षा देने के लिए रची गई है। देव चार काव्य—बचनबिबेक पञ्चीसी वैस बातों सतोप बावनी और मोहमजन-दरबारी बाठाबगुण से प्रभावित नहीं हैं और सचसाधारण के हितार्थ ही रचे गये हैं। बांकीदास के उक्त १६ काव्यों में कुल ६१५ पद्य हैं और सामान्य जनता के लिए रचित उक्त चार ग्रन्थों में १६८। इस प्रकार काव्य-संख्या तथा पद्य-संख्या दोनों की दृष्टि से बांकीदास के नीतिकार्य का समग्र ८० प्रतिशत भाग मुख्यतः राज-दरबार से सम्बन्धित है और २० प्रतिशत जन-साधारण से। फिर भी इस कार्य को राजनीति विषयक काव्य कहना उचित नहीं क्योंकि यह राज-शासन से इतना सम्बन्धित नहीं जितना कि राज-दरबार से सम्बन्धित कवित्तियों से। यहाँ प्रचारक इतना और कह देना उचित होगा कि यहाँ प्रायः दरबारी कवि तो वे परंतु उनका काव्य मुख्य रूप से साधारण जनता के शिक्षार्थ रचा गया था और बांकीदास का प्रथम उद्यम ऐसे काव्यों का निर्माण था जिससे राजा और राजकवि दोनों का हित हो।

रस और भाव—बांकीदास के नीतिकार्यों की विशेषता यह है कि वे सरस और भावपूर्ण हैं नीरस पद्यों से संप्रभूमान नहीं हैं। उनमें और रस और हास्य रस की प्रधानता है। और रस के दो ही भेदों—मुख्य और शानवीर की व्यवस्था हुई है। शान्त रस तथा संतोष स्वाभिन्निक और विवेक भाव एक एक दृष्टि में प्रधान हैं। देव रस और भाव छिन्नपुत्र रूप से दिखाई देते हैं। निम्नांकित उदाहरण से उनके

काव्यों का रसदृष्टि से वर्गीकरण स्पष्ट हो जाता है—

(क) रस

१ वीर रस

(क) पुरु वीर—मूर छत्तीसी सीह छमीमी वीरविनोर नीति मंजरी ।

(ख) दानवीर—दावार बाबनी वजस छत्ती ? ।

२ हास्य रस—हृषण बर्षण, हृषण पञ्चीसी बैसक बर्ता फायर बाबनी
माबड़िया मित्राज गुगल-मुज-वपटिका बिदुर बत्तीसी कुकवि बत्तीसी वष बार्ता

३ दान्त रस—मोहमदन ।

(ख) भाष

(१) संतोष—सतोष बाबनी ।

(२) श्यामिनिनि—पदस पञ्चीसी ।

(३) विवरु—वषादिवेक पञ्चीसी ।

इन प्रधान रसों तथा भावों के उदाहरण ऊपर उद्धृत पदों में सहज ही देखे जा सकते हैं। स्पष्ट रूप से प्रागुठ कुछ अन्य रसों के उदाहरण निम्नवर्ती पदों में दिये जाते हैं—

कर कर्म्य सोमण छटे, मुज लमराय बोह ।

माबड़िया बुध में मिले पुमतापण रा बोह ॥^१ (मयामक रस)

बस रो गत धदमुठ जिखा सत धारियां गुजाय ।

नर बीज नर लोक में, बस धमरापुर जाय ॥^२ (धम्मुठ रस)

नादक तोषी नार धो मो बुजबायक मार ।

भरलीघर सांभव बडे परली कर पुकार ॥^३ (करख रस)

इसी प्रकार रीति तथा बीमत्स रस के उदाहरण भी वीरता-प्रतिपादक काव्यों में प्राप्त हो जाते हैं परन्तु वास्तव्य-रस का प्रभाव ही प्रतीत होता है। स्वयं निस्संशय होने से वीर रस दरकार बाठाकरण में व्यस्त रहने से ही कदाचित् कवि की इतियों में इस रस का प्रभाव है। ✓

भाषा—उक्त इतियों में प्रौढ़ परिभाषित तथा सख्य विगत भाषा का प्रयोग किया गया है। इनकी रचनाओं में छारसी-भाषी-छम्पों की बिस्मयजनक शक्ति है इसका कारण इनका प्रौढ़ छारसी-ज्ञान तथा छारसी-साहित्य का बिस्तृत अध्ययन है। ऐसा लगता है कि ये काव्य-रचना के समय विदेशी काव्यों के परिहार का यत्न न करते थे और ना बेपी बिदेशी रस मूळ बाठा का निस्संकोच सिद्ध देते थे। हाँ इन्होंने

१ पांकीदास धर्म्यावली भाग २, माबड़िया मित्राज, पृष्ठ १८ १८२६

२ " " भाग ३, गुजस छत्तीसी, पृष्ठ २१३१

३ " " भाग २ पदक बार्ता, पृष्ठ ६१४४

सब कुछ मीर तड़ाग रोज जिहंगम क्यहो ।
 बिसन सखीमुख बाय, घरा परफ ऊतर बचस ॥^१
 बरखां छाठी बामिनो, बयम री बख बाय ।
 पुरख हूत बूखूं पसू अतफ कोमो शाय ॥^२

प्रासोचना

दरपारी नीतिकार्य—बांकीदास के नीतिकार्यों के प्रथमयन के समय यह भावना बराबर बनी रहती है कि उनका अधिकतर सम्पन्न राज-दरबार से है सामान्य जनता से नहीं। सुगन-मुख ज्योतिका की रचना राज-समाजों को विमुक्तता के परिष्कार की शिक्षा देने के लिए की गई प्रतीत होती है। पूर छत्तीसी सीह छत्तीसी वीरविनोय माबड़िया मिनाज कायर बाबली और बबल पन्नीसी का प्रणयन राज-सेवकों में बीरता और स्वाभिमक्ति के भाव भरने के उद्देश्य से किया गया है। सुजस छत्तीसी दातार बाबली कृपल पणल और कृपल पन्नीसी का उद्देश्य राजाओं प्रादि को कृपलता के त्याग और बदायता के प्रगीकार द्वारा यद्योविस्तार की प्रेरणा करना है। इसी प्रकार नीतिमन्त्री धनमर्दन का बिपुर बत्तीसी निकम्मे लोगों को बरदार से दूर रखन की संसक बार्ता तथाकथित धमिजात बय को बेस्याओं से और कुकृषि बत्तीसी बुकबिया को राज-समाजों से दूर रखने की शिक्षा देने के लिए रची गई है। दोष चार काव्य—वचनबिदक पन्नीसी जिस बार्ता सतोप बाबनी और मोहमर्दन-दरबारी वातावरण से प्रभावित नहीं हैं और सर्वसाधारण के हितार्थ ही रहे गये हैं। बांकीदास के लगभग १२ काव्यों में कुल २१५ पद्य हैं और सामान्य जनता के लिए रचित उन चार काव्यों में १२८। इस प्रकार काव्य-संख्या तथा पद्य-संख्या दोनों की दृष्टि से बांकीदास के नीतिकार्य का समय ८० प्रतिशत मात्र मुख्यतः राज-दरबार से सम्बन्धित है और २० प्रतिशत जन-साधारण में। फिर भी इस काव्य को राजनीति विषयक काव्य कहना उचित नहीं क्योंकि यह राज-शासन से इतना सम्बन्धित नहीं जितना कि राज दरबार से सम्बन्धित व्यक्तियों से। यहाँ प्रसन्न-बस इतना और कह देना उचित होगा कि रहस्य प्रादि वैयक्तिक कविताएँ परन्तु उनका काव्य मुख्य रूप से साधारण जनता के हितार्थ रचा गया था और बांकीदास का प्रधान उद्देश्य ऐसे काव्यों का निर्माण था जिनसे राजा और राजकृषि दोनों का हित हो।

रस और भाव—बांकीदास के नीतिकार्यों की विशेषता यह है कि वे सरस और भावपूर्ण हैं और संघर्षपूर्ण नहीं हैं। उनमें और रस और हार्म्य रस की प्रधानता है। और रस के दो ही मन्त्र—पुष्ट वीर और बालवीर की व्यञ्जना हुई है। शान्त रस तथा सतोप स्वाभिमक्ति और विवेक भाव एक-एक कृति में प्रधान हैं। दोष रस और भाव टिन्टून रूप से दिगान्त देने हैं। निम्नांकित कृतिवा से उनके

काव्यों का रसदृष्टि से वर्गीकरण स्पष्ट हो जाता है—

(क) रस

१ वीर रस

(क) युद्ध वीर—मूर छतीसी चीह छनीमी वीरबिनो नीति मंत्ररी । ✓

(ख) दानवीर—दातार बावनी पकस छती ।

२ हास्य रस—इपण दर्पण इपण पन्नीसी ईसक बर्ता कापर बावनी
मावडिया मित्राज कुगल मुल-अपेटिका बिदुर बत्तीसी कुकबि मत्तीसी बस बाती ।

३ शान्त रस—मोहमर्दन ।

(ख) भाव

(१) संतोष—सतोष बावनी ।

(२) स्वामिभक्ति—भवस पन्नीसी ।

(३) विवेक—बक-विवेक पन्नीसी ।

इन प्रधान रसों तथा भावों के उदाहरण ऊपर उद्धृत पद्यों में सहज ही देखे जा सकते हैं। स्पष्ट रूप से प्राणत कुछ अन्य रसों के उदाहरण निम्नवर्ती पद्यों में दिये जाते हैं—

कर कर्म सोयण करे, मुस लतराय बीह ।

मावडिया लुप में मिल पुमतामल रा बीह ॥^१ (मयाजक रस)

कस रो गल अबरुत जिहा सत पारिया सुहाय ।

कर भीय तर लोक में कस धमरापुर जाय ॥^२ (मद्भुत रस)

भायक लीमी मार रो मो कुबबायक मार ।

परणीपर लोवड बरुं परली कर पुकार ॥^३ (कण रस)

इसी प्रकार वीर तथा बीमत्स रस के उदाहरण भी वीरता-प्रतिपादक काव्यों में प्राप्त हो जाते हैं परंतु वास्तव्य रस का प्रभाव ही प्रतीत होता है। स्वयं निस्संतान होने से वीर राज-विरागी बातावरण में व्यस्त रहने से ही क्वाचित् कवि की कृतियों में इस रस का प्रभाव है। ✓

भाषा—उक्त कृतियों में प्रौढ़ परिमात्रित तथा मरुत टिमल भाषा का प्रयोग किया गया है। इसकी रचनाओं में कारुणी-प्राची-शब्दों की निस्सयजनक अधिकता है। इसका कारण इनका प्रौढ़ अश्लील मान तथा कारुणी वाहिर्य का निस्सृत प्रथम है। ऐसा लगता है कि ये काव्य-रचना के समय बिदेसी शब्दों के परिहार का क्लम न करते थे वीर जो वेणी-विदंगी शब्द भूम्य जाता था निस्सकोच सिख देते थे। ही बहूनि

१ यांलीबास प-बावसी भाष २, मावडिया मित्राज, पृष्ठ १८ १८।२६

२ " " भाष ३, मुकस छनीसी, पृष्ठ २१।३१

३ " " भाष २ बैसक बाती, पृष्ठ २।४४

बिदेही शब्दों को उत्तम रूप में रखने का उद्योग नहीं किया। उत्तम वा तत्सम जिस रूप में भी शब्द प्रचलित वा उसी रूप में ले लिया। यथा—

तत्सम शब्द—बीदार बंग लाबदार बवर पिबर मावर प्रादि।

तत्सम शब्द—मफी (नफा) सारप (सारिज) मुमकम दुरवेस (दरवेस)

पौसाक दुसमण बोजग (बोजख) प्रादि।

फिर भी बिदेही शब्दों पर वृत्पाठ करने से विदित होता है कि इन्होंने तत्सम रूप ही अधिक ग्रहण किये हैं। यही बात सफ़ट के शब्दों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है जैसे—मठठा भूतता उपमार प्रकास निरबाह समापठ सत्र (सत्र), सुकन बुकन विवर प्रादि। कहीं-कहीं इन्होंने संस्कृत के सभि-नियम के अनुसार ऐसे सहित रूप बना लिये हैं कि पाठक चौक पड़ता है। जैसे 'न मार्द के स्वाम पर नाने मोर न प्राणों के स्वाम पर नारणों'। ऐसे रूपों का प्रयोग प्रायः पद्य को शब्द का श्रुति से अधिकतर रखने के लिए ही किया गया है।

बाकीबास की भाषा स्वभावतः ही प्रभावशाली है। उसे अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए रुढ़ियों और श्लोकिकियों की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी उनका प्रयोग स्वभावतः ही कहीं-कहीं किया गया है। बिदेही की अपेक्षा स्पेदेही रुढ़ियों और कहावतों ही अधिक प्रयुक्त की गई हैं जैसे—

- (क) स्पेदेही प्रण बाती लेण तुरत घाड़ा बेला पास।^१
 फेहर मूं फुताली करे ली बीला में हाप।^२
 दुर्ध मुवा बिग मुकत नह भे दिन तुबै न प्रोति।^३
- (घ) बिदेही बिन मूं रखनी शक्तियो, बाप तारबंत।^४

काव्य-विषय तथा छन्द—बाकीबास के सभी काव्य मुक्तक श्लोक के अन्तर्गत हैं। इन सब शंभों में मुख्य रूप से दोहा छन्द का ही व्यवहार किया गया है। कहीं-कहीं सौरठा बड़ा दुहा और दुबेरा दुहा भी दिखाई देते हैं जो वस्तुतः दोहे के ही विकृत रूप हैं।

शैली—बाकीबास में मुख्य रूप से तीन शक्तियों का प्रयोग किया है १ तत्समिकरूपक २ हास्यव्यंग्यमयी ३ अम्यापदेवात्मक। इनके प्रतिरिक्त आत्मानुभविक उपदेशात्मक ऐतिहासिक शब्दापठक वाचार्थक संवादात्मक और बूट शक्तियों का प्रयोग भी कहीं-कहीं दिखाई देता है। मर्यादात्मक व्याख्यात्मक बक्का वारहमामा तथा नैतिक उपमानों की शक्तियाँ इनके काव्यों में प्रयुक्त नहीं की गईं। तत्समिकरूपक शैली को प्रत्येक

- १ बाकीबास अम्यावली भाग ३ कापर बाबली पृष्ठ २४।२६
 २ " " भाग १ सौरविरोध पृष्ठ ३३।६३
 ३ " " भाग ३ हजरत पञ्चीसी, पृष्ठ ८२।६
 ४ " " भाग ३ कापर बाबली पृष्ठ १६।३

पृष्ठ पर दिखाई देती है। काव्य-संयोजन की रीति का प्रयोग भाव-द्विधा भिन्नाज आदि निन्दात्मक काव्यों में और प्रस्थापन-वैशाल्य रीति का सीढ़ी-छापीसी, बसत पञ्चीसी आदि में प्रचुरता से किया गया है। उपर्युक्त रीतियों में से अधिकतर के उदाहरण ऊपर प्रसंगबद्ध प्रा ही चुके हैं। कुछ अन्य रीतियों के उदाहरण सजिए—

प्राह प्रत दुप एक नाम जिजा विन नीउरी ।

बात मली धा बरु, राज हूर निज रसण सु ॥^१

(उपवेशात्मक तथा कूट रीति)

सहरयार मीनो भहर, शेरुअस्त गुहाल ।

सुलेमान समतेब नू, ऐस पयो सम फाक ॥^२

(एतिहासिक रीति)

पादावर्तक रीति का उदाहरण नीतिमञ्जरी के ४९ दोहों में प्रयत्नोक्तनीय है जहाँ प्रत्येक खोरे के चतुर्षु चरण पैसां चर बाँधे पिपण' है ।^३

प्रसकार—कवीर, कव्य आदि के नीतिकार्यों में प्रायः यह देखा जाता है कि वे दोहों के एक बस में तो कव्य विषय का उल्लेख करते हैं और दूसरे बस में कृतान्त आदि द्वारा कव्य का समर्पण। इस प्रकार काव्य के विषय और प्रसकार की मात्रा बराबर-बराबर होती है। पाठक अनुभव करता है कि कव्य विषय में स्वभावतः इतनी चर्चित नहीं है कि सहृदय के हृदय में प्रविष्ट हो सके। परन्तु बाकीबास में प्रायः यह बात नहीं बोलो-जाती। इसके दोहों में माबों की इतनी प्रबलता रहती है कि उन्हें प्रसकारों का अवलम्ब लेने की अपेक्षा नहीं रहती। ऐसे लगता है कि इनका काव्य कवि हृदय से सहज सुन्दर रूप में निस्सृत होता है ऐसा नहीं कि पहले कव्य विषय उद्भूत हुआ हो और बाद में कवि ने उन अमकृत करने के लिए उसे गहना पहना दिया हो। बाकीबास के काव्यों में इतने अधिक प्रसकारों का सहज प्रयोग हुआ है कि प्रासोक्त शेष में पड़ जाता है कि किस निशे और किस छोड़। हमारे विचार में ऐसे प्रसकार बिरल ही होंगे जो प्रयुक्त न हुए हों। फिर भी शाश्वतकारों में कृत्यप्राप्त सादानुप्रास समक और बीन्धा की बहुमता दिखाई देती है। प्रसकारों में उपमा, रूप-प्रस्तुत प्रशंसा प्रशस्तिरग्यास उत्पला और दुग्गत के प्रतिरिक्त उदात्त हेतु समुच्चय विनोक्ति विरोधामास निश्चित विभावना निदर्शना आदि का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। यथा—

१ आनन्द-प्रयास' के आदि और अन्त क अन्तर-हटाने पर शेष यथे हुए शब्द (गाल = पाली) को अपनी बिन्धा से दूर रखो।

(बाकीबास प्रथावसी, भाग ३ कव्यविशेष पञ्चीसी पृ० ७७-७८-७९)

२ " भाग २, मोहमदन, पृ० ४४-४५

३ भाग १ नीतिमञ्जरी पृ० ६१-६२

बे नैह सेंपा नू रगो छे कुतो ही जान ।
 बेवे सेंपा नू रगो, साह करे सनमल ॥^१ (भाटातुमास)
 हँसियो बग भासक हुए भसियो सोवए पीत ।
 रसियो गायी रीट नू, कसियो होख फजीत ॥^२ (पुस्यनुमास)
 केहर फुंम विहारियो मजमोती सिरियाह ।
 आले पासा पनव नू, मोमा घोसरियाह ॥^३ (उत्प्रेषा)
 समर ठिनो कर सॉम नू, मस धाय सबइल ।
 मू छ कफा मू दत जिरे ताक कफा बिल माक ॥^४ (विरोधामास)

गुरु—कुछ इने-निने पदों के बिना जिन में कवि ने कूट-शैली का आशय लिया है सर्वत्र प्रसार पुण्ड्र म्यात है। वेप दो गुणों में से मासुर्य की अपेक्षा शोक की भाषा अधिक है क्योंकि अधिकतर कविपदा वीररत्ना-स्यन्दक और दिग्दात्मक हैं तथा इन दोनों में ही शोक स्वभावतः अधिक भा जाता ३।

शेष—बांकीदास उक्त कोटि के कवि थे। उनकी रचना उन दोषों से मुक्त है या सामान्य कवियों में प्रायः दिखाई देते हैं। फिर भी कहीं-कहीं ऐसे स्थल पा जाते हैं जहाँ से पाठक निर्बाध रूप से धार्ये नहीं बढ़ सकता। जैसे—

बैरा रा मीठा बचन, पद मीठा किराय ।
 बे जाबो बे मानियो हुपा कुतल कुराक ॥^५ (घक्रम)

ऐसे स्थलों से भी अधिक धारणितक से स्पष्ट है जहाँ कवि ने अपने दिग्दात्म्यो में मासुर्यो हुएलों शैलियों भादि के सम्बन्ध में नितागत कटु ही नहीं धरनीस भाप का प्रयोग किया है।^६ नहीं-नहीं तो बुज्यात भी अत्यन्त धरनीस हैं। ऐसे अत्यन्त पदों तथा वाक्यों की भासा एक विद्वान् कवि से स्पष्ट में भी नहीं की जा सकती। फिर भी जैसे कबीर-से सत के मुख से भी विरोधियों के प्रति ऐसे अन्ध निरसृत हो ही गये थे वैसे ही स्वभाव से उक्त बांकीदास भी उनका परिहार न कर सके। परन्तु धरनीस बात यही है कि उनके समयग एक सहस्र नीति-पदों में ऐसे पद संयमी दर पितने योग्य ही हैं।

अस्तुल के कवियों का प्रभाव—बांकीदास ने जिन विषयों पर अपने मुक्तक काव्यों की रचना की है वे नहीं नही थे। उन पर प्राचीन कवि बोझी बहुत रचना

- १ बांकीदास प्रभावसी भाग २, शैल बार्ता, पृष्ठ ६८।४३
 २ " " २ संसक बार्ता पृष्ठ २।८
 ३ " " भाग १, सौह छनीसी पृष्ठ १८।३३
 ४ " " भाग ३, कायर बाबली पृष्ठ २६।३३
 ५ " " भाग १, नीति संदरी, पृष्ठ ३६।२३
 ६ " " भाग २, पृष्ठ १६।१६, ३८।४०, ६१।१०

कर ही चुके थे। फिर भी ऐसे स्वयं बिरल ही हैं जहाँ पर उन्होंने प्राचीन कवियों के मारों का अनुवाद मात्र कर लिया हो। जहाँ पर हमके धीरे प्राचीन कवियों के पद्यों में साम्य दिखाई देता भी है, वहाँ पर भी इन्होंने उन से संकेत-मात्र ही लिया है उसका विकास अपनी प्रतिभा के द्वारा ही किया है। जैसे—

(क) मामियेको न सस्कारः सिहस्य क्रियते मुये ।

विष्णुमाञ्जितराज्यस्य स्वयमेव मुणेन्द्रता ॥^१ (भारतवर्ष पठित)

पमर दुर्लभ न सीह सिर, छत्र न धार सीह ।

हायन रा यम सूं हुवो, धी मुपराज प्रबोह ॥^२ (बांकीदास)

जिस प्रकार के नीति नियमक काव्यों की रचना बांकीदास ने की है उसी प्रकार के काव्यों की रचना काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र प्यारहबीं सती में कर चुके थे। दोनों के अनेक पद्यों में कहीं-कहीं इतना अधिक साम्य है कि बांकीदास पर क्षेमेन्द्र के प्रभाव को स्वीकृत करना ही पड़ता है। जिस प्रकार क्षेमेन्द्र ने 'सोमवर्षण' की शीघ्र द्वितीय सर्ग में कवियों पर व्यंग्य कहे हैं उसी प्रकार बांकीदास ने 'बैस वाता' में। जैसे—

क्याविज्यकृततुमासायबनिःशोपरकालव्याजो ।

एते हि विपसधीरा मुष्णन्ति मृदा पनं बरियजः ॥^३

बगो पागडा अजिवां तोला मज्ज तलियाह ।

मुर सूं ही मुररे महीं, दलिक बेत बलियाह ॥^४

इस प्रथम में एक बात धीरे भी ध्यान देने की है। वह यह कि क्षेमेन्द्र ने इसी सर्ग के अनेक पद्यों में कवियों की एक विशेष जाति 'किराट' का विशेष रूप से उल्लेख किया है। बांकीदास ने भी इसी 'किराट' के विकसित रूप 'किराड़' का प्रयोग 'बैस वाता' के अनेक दोहों में किया है—

सोमो अटं प्रविष्ट कृटिल हृदयं किराडामाम् ।^५ (क्षेमेन्द्र)

गोली ली मरुका बसती, तम ली चोर किराड़ ।^६ (बांकीदास)

१ हितोपदेश (निसुधसागर प्रेस बम्बई १९४१ ई०) पृ० ८९

२ बांकीदास प्रयागली भाग १, पृ० २४।२४

३ भारत-व्रज विजय कण्टपूख तराम्, हाय की लड़ा तथा परोहर रक्षा क लहाने से ये दिन में खोरी करने वाले चोर अर्थात् यन्त्रिये लोगों को प्रसन्नतापूर्वक मृतते हैं। (बाणनाला गुच्छा १ पृ० ४३।४)

४ बांकीदास प्रयागली भाग २ पृ० ५२

५ अथ (शास्त्रज्ञों द्वारा परिश्रयत) सोम किराटों के कृटिल हृदय रत में घुल गया।

काव्यमाता गुच्छा १ पृ० ४३।३

६ बांकीदास प्रयागली, भाग २, पृ० ५०।११

कलाविभास के पञ्चम सर्ग में दोमन्त्र ने काव्यस्वों को उदाहरण का विषय बनाते हुए लिखा है कि वे मेघ में घास की लज्जक-सी-रेखा मिटाकर 'सहित' का 'रहित' बना देत हैं—

‘रेखामाप्रदिनाज्ञात् सहितं फुबन्ति ये रहितम् ।’^१

बांकीदास ने इसी गाव को एक बनिये से सम्बन्धित कर दिया है जो ह्याम् को घासायु' बनाकर पमराज को भी घोटा बेकर घरा पर री' आया था—

बफ़तर सब बहर्म् इसो, फियो स्तायु त्ताय ।

घायो पाछो बलक इफ, घमपुर सु क' आय ॥^२

उनके उद्बोधन इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त प्रतीत होता है कि बांकीदास ने कहीं-कहीं प्राचीन कवियों से भाव ग्रहण तो किये हैं परन्तु उनका विकास अपने प्रतिमात्रता से स्वतंत्र रूप में किया है ।

ग्रन्थ में इतना ही कहना पर्याप्त होया कि नीतिकार्यों की सस्या और सरसता की दृष्टि से कोई भी प्राचीन कवि कविराज बांकीदास की समता नहीं कर सका ।

२७ बंतास

नीति का प्रत्याग कवि धर्मीजग बंतास का ज्ञान अभी तक विवादास्पद है । विर्भावह सरोज में इनका जन्म-संवत् १७३४ दिया गया है । इनके जन्मदिन में बंतास का विक्रम मुनो भी पाँचवें या छठे चरण में निरमिष रूप से दियाई देता है । कुछ विद्वानों का अनुमान है कि किसी घनात कवि ने प्राचीन विष्णुमादित्य और बंतास की स्याभा से इन नामों को ग्रहण कर लिया है । दूसरा मत यह है कि बंतास चरकारी (पु'देनबंद) का प्रसिद्ध मणुप्राही और मुद्रवि यदा प्रतापसाहि के समाकवि ने बिनका शासनकाल १८२६ से १८८६ तक था । काम के अतिविचर होते हुए भी इतना तो निश्चित ही है कि बंतास मध्यकाल के एक प्रसिद्ध नीति-कवि थे और उनके छन्द बहुत लोकप्रिय थे ।

बंतास का कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ कुछ स्फुट पद्य ही उपलब्ध हुए हैं । उन पद्यों की स्यादबसी तथा सारों में भी कहीं-कहीं पर्याप्त मेघ है ।^३ यद्यपि बंतास के रच्य विषय सब के जाने-बूझे हुए हैं तथापि उनके छप्पय नीरम नहीं लगते । इस का प्रधान कारण उन की भाषा और शायी की तीन विविधताएँ हैं । प्रथम प्रायः प्रत्येक

१ काव्यमास, पृष्ठ १ पृ० ६०।११

२ बांकीदास संघाबली, भाग २, पृष्ठ ७२।६७

३ ना० प्र० सा० बानी के समाप्तग्रह सं० १३३४।८५६ के पत्र १३० के प्रथम पद्य की कविता कोमुली, भाग १ के पृष्ठ ४६२ पर उद्धृत 'मरे पैत' पद्य से तुलना कीजिए ।

पद्यमें वे किसी-न-किसी संज्ञा विधेयण या श्रुत्या पद का इतनी अधिक बार और इतने सुन्दर ढंग से व्याख्यार करते हैं कि बहु कण्य तथा अन्तःकरण को एक-साथ ही प्रमानित करता है। द्वितीय विधिष्ठता है प्रतिपाद्य विषय को परस्पर विरोधी तथ्यों द्वारा प्रमाणावली बनाना। उष्ण्य के प्रथम चार-पाँच चरणों में तो वे एक ही प्रकार के तथ्यों को मिश्रित करते हैं परन्तु पष्ठ चरण में एक ऐसा तथ्य प्रस्तुत कर देते हैं जो पूर्व तथ्यों का सर्वथा विरोधी होता हुआ हृदय में ठीर की तरह घस जाता है। घसस में बही उनका वास्तविक मध्य विषय होता है। तीसरी विधिष्ठता है विनोक्तियों का सुन्दर प्रयोग। इन विरोधताओं के कारण वे मध्य भागों तथा ऊँची उच्चावच भागों के अन्तर्गत भी लोकप्रिय हो गये हैं। उन्होंने सुशोभ व श्रमाया में तरुण शब्दों को अधिक मान दिया है और सुबारी बेपीर मरं मुसुक दद सायर धानि सरस बिबेदी शब्दा-बन्धी व भी निर्राक प्रयोग किया है। दो उष्ण्य दक्षिण—

राजा घसस होय मुसुक दो सर फरि सार्ये ।
 पंडित चपस होय, समा उत्तर द भार्ये ॥
 हाबो चंदन होय, समर में सुदि जगार्ये ।
 घोड़ा चंदन होय, भयट मजान बेसाय्ये ॥
 ये चारों चंदन भले राया पटित गय तुरी ।
 'बैताल' कहे बिज्ज सुनो छिरिया चंदन प्रति बुरी ॥^१
 समि दिन सुग्री रंग शान यिन छिरि ब सुनो ।
 सुन सुनो यिन पुत्र पत्र यिन तरवर सुनो ॥
 गय सुनो इक बंस ललित यिन सायर सुनो ।
 विप्र सुन यिन बेर और बन पुत्रुय बिहूनो ॥
 हरिनाम भजन यिन संत धर, घटा सुन यिन शामिनी ।
 'बैताल' कहे विक्रम सुनो पति यिन सुनो कामिनी ॥^२

२८. मनरय नाम

कन्नौज-निवासी विगम्बर जैन आश्रम मनरयनाम जी के पिता का नाम कन्नौजीनाम और माता का नाम देवकी था। इनके जन्म-निधन के नाम का तो निश्चित रूप से ज्ञान नहीं है परन्तु इनका साहित्य निर्माण कास बिन्धी उम्मीदनी सती था। सप्तशतक है। इसकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) बीबीस तीपकर का पाठ (सं० १८५७) (२) मेमचन्द्रिका (३) सप्त व्यसन अरि (४) सप्तपि पूजा (५) सितर सम्भेवाचस माहारम्य (सं० १८८६)। उक्त इतियों में स 'सप्तव्यसन अरि' ही हमारे प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्धित है।

सप्तम्यसन धरित—इस कथा-संग्रहात्मक अपूर्ण नीति-काव्य की हस्तलिखित प्रति हमें अमीरज (जिजा-एटा) के जैन विद्वान् श्री कामटा प्रसाद के सौजन्य से देखने को प्राप्त हुई। काव्य के प्रथम २९ पद्यों में जैन तीर्थंकरों का स्तवन है तथा अन्वों के विषय का संकेत है। परन्तु कथाओं में पद्य-सरया इस प्रकार है—

- १ दूत व्यसन कथा (पद्य ३०-१५७)
- २ मांसव्यसन कथा (पद्य १-१५)
- ३ सुरापान व्यसन कथा (पद्य १६-१२६)
- ४ वेदया व्यसन कथा—
 - (क) चाखस कथा (पद्य १-१२८)
 - (ख) मुदत सठ की कथा (पद्य १५३)
- ५ धोरी व्यसन कथा (अपूर्णा) (पद्य १-८५)

छठे और सातवीं कथाएँ जिनका उद्देश्य धारण तथा परदारामियमन की निन्दा या सुप्त हो चुकी है। यद्यपि इस काव्य की रचना जैनधर्म में निहित प्रसिद्ध सप्त-व्यसनों के धारण पर की गई है तथापि यह सबसामान्य के लिए समान रूप से उप-योगी है। पाठकों को उक्त व्यसनों से विमुख करने के लिए कवि ने जिन कथाओं को चुना है वे प्रायः प्राचीन साहित्य से ली गई हैं कवि-कल्पित नहीं हैं। दूत-व्यसन की कथा के लिए कवि ने पाण्डवों के दूत-निमित्त बनबास का मांस-व्यसन की कथा के लिए बरस बेश के कुम्भीपुर के भूपाल नामक राजा के जिह्वासोमपुत्र पुत्र बक के चरित्र का सुरापान की कथा के लिए यादवों के मद्यपान द्वारा मांस की कथा का धीर वेदया-व्यसन की कथा के लिए चाखस तथा बसन्तविसका की कथा का धारण लिया है। पद्यों में कथाएँ अनुवाद रूप में ली हैं। कथाओं के बीच तो प्राचीन पुस्तकों से से लिये गए हैं परन्तु उगका विकास कवि ने अपनी बुद्धि से किया है। कहीं-कहीं पद्यों के नाम भी परिवर्तित कर दिये गए हैं। जैसे चाखस और बसन्तसेना के प्रथम की कथा संस्कृत-साहित्य में सुविद्यमान ही है। यहाँ कवि ने भायिका का नाम बसन्तसेना के स्थान पर बसन्तविसका कर दिया है। विषय की दृष्टि से यह बात भी स्मरणीय है कि यद्यपि कवि का मुख्य उद्देश्य उक्त सप्त-व्यसनों का वर्णन है तथापि अंतर्गत पद्यों में अन्य नीति-विषय या उपस्थित होते हैं कवि उन पर भी निर्बाध रूप से गिलठा है। जैसे जब पाण्डव साहाय्य से सुरक्षित निकल आते हैं तब कवि को पूर्वोक्त पद्यों के महत्त्व पर निरान का अवसर प्राप्त हो जाता है।

रस, भाव—कृष्ण कथाओं के साथ अनेक परिस्थितियों में पढ़कर विविध धार्य-रसायन करते हैं इसलिये अनेक रसों और भावों की सुन्दर व्यञ्जना हुई है। दूत-व्यसन की कथा में कल्याण रस की मांस-व्यसन की कथा में दया भाव की वैश्यानिदा तथा सुरापान की कथाओं में घृणा-भाव की प्रधानता है। परन्तु अनेक छन्द ऐसे भी हैं जो कथन कथा को अग्रसर करने के लिए ही लिखे गये हैं और पाठक को मात्र या रस

बिधाय में मग्न करने में प्रसमय है ।

भाषा शैली—कवि ने काव्य में स्वच्छ मधुर और प्रवाहपूर्ण शब्दभाषा का प्रयोग किया है । बिदेसी शब्दों तथा मृहाशब्दों का प्रयोग न होने के मुख्य ही समझना चाहिए । काव्य में मुख्य रूप से व्याख्यात्मक तथ्यनिर्णयक उपदेशात्मक तथा शब्द-वर्तुल शैलियों का व्यवहार किया गया है ।

संस्कार—शब्दासंस्कारों में क्षेपानुप्रास साटानुप्रास और शीघ्रा तथा ध्वनि-संवागी म हेतु हल्पास्त रूपक और उल्लेख का प्रयोग अधिक किया है ।

छन्द—इस काव्य में मत्स्या दोहा सोरठा चौपाई दिदपटा, अक्षिप्त, छन्द, मनहरन सबैया (कवित्त) गीतिका श्लोक, मारुध, पञ्चि और चासि छन्द का प्रयोग किया गया है ।^१

गुण—रचना में प्रसाद गुण तो मग्न घोट-घोट है माधु और मान भी प्रसंगवत् घनेकर दिखाई देते हैं ।

ध्वनि में सार रूप से यह कह सकते हैं कि मत्स्यात्मक रचना कल्पना-तत्त्व की कमी न होत हुए भी नीति-विषय की एक सुन्दर काव्यरूप है । एक उदाहरण नीचे—

मद्य करै मति भृष्टि मद्य सक्षमा निरवारै ।
मद्य रिताई बुद्ध, मद्य अपयम बिस्तार ॥
मद्य पुष्य को शत्रु मद्य अन्नी जन पीबत ।
मद्य शौकता हरे, मद्य कृतवान म छीबत ॥
मनरंग करै मद्य शोच बुद्ध जे बरान प्रतिमा धनी ।
नहि जात मास ताये कया, 'धनि ते धनि ते' धो मनी ॥^२

२६ रघुनाय

रघुनाय कवि का दुष्ट गजनपञ्चावनी की हस्तलिखित प्रति^३ मागरी प्रचारिणी समा, काशी के याज्ञिक सग्रह में प्रकृत रूप में विद्यमान है । २२ पद्यों की प्रस्तुत प्रति में चूँकि प्रथम पाँच पद भुक्त हो चुके हैं इसलिए १६ से २१ तक ही पद्य प्राप्त हैं । अन्त में परिविष्ट रूप में छठ पद्य और सिद्ध हुए हैं जिनमें यशोध, सिद्ध हनुमान् आदि से कुछ-सहारा के लिए प्रार्थना की गई है । काव्य की पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति कवि रघुनाय बीरचित्त दुष्टादन पञ्चावनी सम्पूर्णं सम्पत् १८८६ ।'

१ विकृता २३ मात्रा का छन्द है जिसमें १३ १० मात्राओं पर धति होती है और धति १४ मात्रा के लक्ष्य छन्द का ही नामान्तर है ।

२ सप्तशतन परित पृष्ठ ३७ । १२५

३ दुष्टगजन पञ्चावनी याज्ञिक सग्रह प्रति-संख्या २१६ । ३६

पुष्पिका में कवि-नाम और संबन्ध के उल्लेख से तथा निष्कार के नाम के प्रभाव से अनुमान होता है कि कवि ने प्रति अपने ही हाथ से लिखी है।

दुष्टों के गुण-कम-स्वभाव का सम्बन्ध में प्रायः सभी नीति-कवियों ने जोड़ा बहुत सिका है और इस विषय में यह कवि भी अपवाद नहीं है। परन्तु इस काव्य की विमलक्षणता यह है कि इसके प्रविष्टर भाग में दुष्टों की निन्दा और उनके प्रमथन की कामना की गई है। निर्धनों व ज़मींदारों जिनके बरियों हुएएँ परोपकार-रहितों और कटुभाषियों को यम-मानमाधो की त्रिभीषिका दिखाई गई है। काव्य के अन्त्यमन से अनुमान होता है कि विषय कवि दुष्टों से कुटी तरह घटाया गया है और इसीलिए वह उन्हें उल्लेखलता घासुगोला यथाधीर गुल धामबात प्रहृषी गणितकुष्ठ अपस्मार मन्दर महामारी भादि अयंरु और कृणित रोगों से पीड़ित होन का घाप देता है। घपना वस न बराने के कारण कवि महावीर हनुमान को भी रामचन्द्र तथा संयता के रूप की दुहाई देकर दुष्ट-विनाश का अनुरोध करता है। इस प्रकार प्रस्तुत कृति एक निन्दा-काव्य है जिसमें कवि ने बाली द्वारा जी का बुझार निकामने से कोई कोर-कसर नहीं हन बी। सुन्दर प्रबाहूपूर्ण अत्रभापा में रचित इस कृति में अनुप्रास तथा उपमाधो का सुकृषिपूर्ण प्रयोग दिगार्द देता है। प्रायः कवित्त सभीया तथा छप्पय छन्दों का व्यवहार किया गया है। निन्दाई की समुद्रि स अनित करणों की मामाधों में ग्युता घिनता के कारण कड़ी-कही गतिमग भी दिखाई देता है। भीमत्स बीर भयागक रधों की अयंमना अरुभी हुई है। रचना में प्रणद तथा भोज गुण का बाहुल्य है। घपने विषय और प्रकार का यह एक ही रंय दियाई देता है। एक संभया बेदिए—

अतं मराल सुः सुपताहस अंर-मनूप अघोर प्यो पावै ।
पनग पाल करे परमान की तं को घडिह भवे करि राय ॥
दीप-दिवारक तामस को गिति जास तितंर कहु मदि रावै ।
दुष्ट को मशन पाल करे ततकारा हि रो न मिटे अभिमारै ॥^१

२० सुधजन

सुधजन का वास्तविक नाम मदापत्र या विरधा पद था। ये अयपुर-निवासी ब्रजभाषा निहासचंद्र जो अष्टमकास (अंन) व तृतीय पुत्र थ। इनका जन्म-संबन्ध तथा वास्तव्यवास का बत सभी तक प्रपचार में प्राप्त है। इन्हन पं० मांजीसास भी से विद्याध्ययन दिया था। ये शीवान अयरधन ने वास मुख्य मुनीन का कार्य करत थ। अंनधन के रंषों के स्वाध्याय में वे विज्ञप रवि गत थ तथा घमोपदेध और अका समाधान में कुशल थे। इनके पार काव्य रंश प्राण टूण है—(१) उत्सार्थशोध (२) सुधजन सधय (३) रंषातिरुकाय (४) सुधजन विधाग।

बुधजग सतसई—नीति-काव्य की दृष्टि से बुधजग सतसई बिद्यप महत्त्व की कृति है। इस पुस्तक की रचना बुधजग ने सं० १२७६ वि० में मृग जयसिंह के शासन काल में की थी—

संजु ठारा सँ बसी एक परस स घाट ।

जेठ दृष्ट्य रवि घण्टमी, हुयी सतसई पाठ ॥^१

रचना के उद्देश्य तथा सार को कवि ने पुस्तक के अन्त में स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है—

भूय सही वारिब सही सही लोक अपकार ।

निर काम तुम मत करी, यही ग्रन्थ की सार ॥

ना फाहू की प्रेरना, ना काहू की घास ।

अपनी मति तीजी पारन, परम्यो परनबिभास ॥^२

द्वितीय बोहे का बरनबिभास पद कृति के नाम के सम्बन्ध में कुछ संदेह उत्पन्न करता है। जैन-साहित्य के इतिहासकारों ने इस रचना का नाम बुधजग सतसई ही लिखा है।^३ कवि ने स्वयं भी सात ही दोहों की रचना का उल्लेख किया है—

कोने बुधजन सात स तुगम तुभापित हेर ।

सुनत पढ़त समर्थ सरय हरें कुनुपि का फेर ॥^४

परन्तु इतने ही आधार पर कृति का नाम 'बुधजग सतसई' मानना अनुचित प्रतीत होता है। सम्भव है कवि ने इनका नाम 'बरनबिभास' ही रखा हो और इतिहासकारों ने ७०० बोहे देखकर सतसई नाम प्रचलित कर दिया हो। पर विचारणीय बात यह है कि बरनबिभास नाम भी बिद्यप शार्ङ्ग प्रवीत नहीं होता। यदि कृति की रचना में कोई बिद्यप बरजग दिखाई देता तो नाम का प्रामाण्य स्वीकार्य होता। परन्तु बुधजग ने रचना को सतसई न कहकर 'बरनबिभास' कहा है। इसलिए जब तक किसी पद के अधिक और पुष्ट प्रमाण न मिलें पुस्तक के नाम में बिद्यप में कोई मत निर्धारित नहीं करना चाहिए।

आकार-प्रकार—सतसई में कुल ७०२ बोहे हैं जो चार बिनागों में निम्नलिखित

१ बुधजग सतसई : (प्र० जन पन्थ रत्नाकर कार्यालय लखनऊ, तृतीयावृत्ति), पृष्ठ ७४।६६६

२ यही, पृष्ठ ७४।७००, ७०२

३ (क) कामता प्रसाद जैन हिन्दी जैन साहित्य (काशी, १९४७ ई०) पृ० १६७
(ख) नेमिचंद्र-श्रावनी : हिन्दी जैन साहित्य परिकीर्तन (काशी, १९४६ ई०) पृष्ठ २१२

(ग) बुधजग सतसई मूमिका पृष्ठ ७

४ बुधजग सतसई पृष्ठ ७४।६६७

रीति से विभक्त हैं—

विभाग	दोहा-संख्या
१ देवानुपग पठन	१००
२ सुमापित नीति	२००
३ उपदेशाधिकार	२००
४ विरागभावना	२०२
योग	७०२

सबत चार विभागों में से देवानुपग सबत अधिक प्रमाण है तो विराग-भावना विरहित प्रमाण। नीति शास्त्र की दृष्टि से सुमापित-नीति तथा उपदेशाधिकार ही विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। सुमापित नीति में तो विभिन्न विषयों का प्रायः कोई विशेष क्रम मिला नहीं होता परन्तु उपदेशाधिकार के बोधे विद्या-प्रवृत्ता मित्रता और संगति पूषा-निषेध मांस-निषेध मद्य-निषेध सिद्धांत की निवा पोरो-निदा और पर-स्त्री संयमनिषेध क्षीपकों में विभाजित है।

वैयक्तिक नीति—प्रायः बौद्ध रचनाओं में सार्वभौमिक सुखों की उपेक्षा ही दिखाई है परन्तु बुधजन ने सुखों से बचने की प्रेरणा ही नहीं की रोग-निवारण के उपायों का उल्लेख भी किया है—

पद्म पत्नी बहु-धीर गो धोपयि बोज प्रहार ।
 क्यों भाभे त्यों मीधिये, कीज बुद्ध परिहार ॥^१
 कोइ मांस, घृत मुर बिये, सुन द्विबन छी डार ।
 बुगरोगी मीबुन तजो, मरी धान अतिसार ॥^२

बान्धवपक नीति में दो बातें विशेषतः ध्यान आकर्षित करती हैं। प्रथम यह कि यादवश्रीबन ईश्वरपुत्र बधम मुत्त से नहीं निकालने चाहिए^३ और द्वितीय यह कि परोपकारक असत्य भी सत्य है—

असत बंन महि बोसिये तारें होत मिंगार ।
 बे असत्य महि सत्य हैं जातें छु उपकार ॥^४

विद्या और विवेक के महत्त्व पर इन्होंने दर्जनों दोहों की रचना की ही है। विद्या की प्राप्ति के उपायों तथा विवेकहीनों के दोषों का भी उल्लेख किया है—

पुस्तक बुद्ध पिरता जपन मिलै सुमान सहाय ।
 तब विद्या पड़िबो बत, मानुष गति परचाय ॥^५
 सीय पूछ बिन बंस है मानुष बिना विवेक ।
 भक्ष्य अमल समझै नहीं, भयिनि भासिगो एक ॥^६

१-४ बुधजन सतसई पृष्ठ, २६।२३८ ३०।२८२, २७।२४६, ७२।६७८

५-६ बुधजन सतसई पृष्ठ ४६।४३० ४७।४३८

इन्होंने बातों के लिए पाँच से सोमहू बप तक की प्रवन्धा को अध्ययन-कास कहा है और उस काम में उनसे साह-प्यार करने का नियम किया है ।^१

वया समा उदारता आदि गुण ग्रहण करने पर बकि ने जहाँ नहीं दोहे रहे हैं वहाँ मन को चिन्ताओं से मुक्त रखने का एक सुन्दर योग भी प्रस्तुत किया है—

हुल्लर हाय प्रनामसौ पड़ियो फरियो नीर ।

सौल पंच निपि ये अग्रय राते र्हो लकीर ॥^२

पारिवारिक नीति—यद्यपि विराग भावना में कबि ने पुत्र-कलम को मूठा और परिवार को ठग तथा मधुर मापण डाय मानापहारक कहा है तथापि 'सुभाषित नीति' में अनेक उद्योगी बातों का उत्सव किया है । माता पिता की सेवा तथा पति व्रत पर तो सभी नीति कबियों ने बोझा-भरत मिला है परन्तु दुषजन के भाई के प्रति पुत्र और पत्नी से नौ अधिक प्रेम^३ तथा मानजे के प्रति सावधानता का भी उन्सेक किया है—

जिज भाई निरगुन भली पर गुादुग जिहि दाम ।

धांगन तव गिरफ्तन जहनि टाया राज घाम ॥^४

बिधा बय कुनिय कौ करे सुगुब अग्रपर ।

साय मदायी मानजा, खोसि देख अविचार ॥^५

सम्भवत मानजे के प्रति सतकृपा की यह भावना हमारे समाज में इसमिए है कि वह दूसरे कुम का होता है । इनके अतिरिक्त शाब्दिक में पत्नी के मिशन का मन के पुत्र के अधिकार में बस जान को तथा मानजे के बहु-भाषीन हो जाने को तो मरने से भी बुरा कहा है ।^६

सामाजिक नीति—पाठिवर पर ता प्रायः सभी रीति-कबि बस बैठे हैं परन्तु पत्नीव्रत पर विशेष बस जैन-दृष्टियों की विशेषता है । उन्ही के अनुसार दुषजन ने भी सामाजिक यौन पवित्रता की रक्षा के लिए परदारामिगमन तथा बेभयागमन के नियम पर अनेक भाव-पूर्ण दोहे रचे हैं—

अपनी परतय देखि क अछा अपने बई ।

ताता ही पर नारि का कुसी होत है मई ॥^७

होन धीन तै लीन हू, सेतो अ द विनाय ।

सनी एरदस मंगला बती रोप सगाय ॥^८

यद्यपि धारम्भ में जैनधर्म जात-नात का विरोधी या तथापि धीरे-धीरे जाति-बंग और कुम का विचार हममें भी प्रबल होता गया । सुन्दर-गुणोग्य स्त्री के सम्बन्ध में नीतिकारों ने स्त्रीरत्न 'दुष्टुमादपि' बहुर उदारता का जो परिचय दिया था

उसका बुधजन ने सामाजिक मय के कारण नियम कर दिया है—

बरण्ये कुल की धामिका एष्य कुरुप न कोय ।

कपी अरुसी परसतां हीम कहे सब कोय ॥^१

गुरु और शिष्य गुरु का महत्त्व सभी गृहागतों का सम्मान, अत्यन्त मायावी जन प्रीति के छह साधन भग्य जन, विवकार्य जन मित्रता संगीत आदि विषयों के प्रतिरिक्त इन्होंने सिद्धाचार-सम्बन्धी बातें भी कही हैं—

बो हँसता पानी पिमें बसता सार्वे खाग ।

हे अतरापत घात जो सो सठ डीठ प्रमान ॥^२

प्राक्क नीति—यद्यपि बुधजन ने जनजन्म सम्माग तथा दाखिध-जन्म अपमान का घनक बोहों में सविस्तर उल्लेख किया है तथापि इन्होंने बोरी, अम्माम बुधा आदि साधनों से घन-संग्रह को बहुत गहरा कहा है। इनके मठ में बित्त के लिए नीति का भी त्याग निरान्त समुचित है—

नीति सजै मति सत पुवष जो घन निर्म करोर ।

कुल तिय घने न कंचनी भुगतं विपवा घोर ॥^३

इतर-प्राखि-विषयक नीति—प्राण सब को प्यारे होते हैं और अहिंसा जीवों का मुख्य सिद्धान्त है इसलिये बुधजन ने मास मक्षण तथा आच्छेद का प्रबल निषेध किया है। इनके प्रतिरिक्त मदिग-याग के प्रत्याध्यान के ये हेतु प्रस्तुत किये गये हैं कि उसके नश में मनुष्य गोप्य बातें प्रकट कर बैठा है सुम-सुम भूत गनियों में धिर पृतां से मुल अन्वता है और मय निर्माण में होन वाली हिंसा के पाप का भावी बनता है।^४

मिदिया नीति—उद्यम प्रससनीय है परन्तु देव के समक्ष उसकी काम नहीं गसती।^५ उसमें बहु धन्ति नहीं कि उद्यमी को मुल बिद्या आयु घन आदि स प्रसन्न कर सके। पूर्वजन्म क कर्म इतने प्रबल हैं कि सिन्धु जब गम में होता है तभी से उसके लिए ये बस्तुएँ निरिबत हो जाती हैं—

मुज बुज बिद्या आयु घन, कुल घन बित अदिफार ।

साब गर्म में अचतरं, बैह परी जिहि बार ॥^६

अन्य विषयों में राजनीति धर्म की सर्वोच्चता प्रति की सर्वत्र त्याग्यता, समय की प्रबल धकित हानिकर स्थानों का परिहार आदि अनेक विषयों का उल्लेख उतराई में दिखाई देता है।

१-२ बुधजन उतराई पृष्ठ १५।१३६, २८।२६०

३ " " पृष्ठ ३५।३१८

४ " " पृष्ठ २०।४६७, ४६८, ४७

५ " " पृष्ठ २१।१८६, १८९

६ " " पृष्ठ २७।२४६

सतसई पर एक दृष्टि—सतसई के नीति-सम्बन्धी प्रयोगों पर दुकपाठ करने से विदित होता है कि कवि न जन प्रिय विषयों का ही उल्लेख हीं किया, सामान्य नीति की भी अनेक उपयोगी बातें समाविष्ट की हैं। इस प्रकार वय प्रदर्शन की दृष्टि से कवि की महत्ता में कोई सन्देह नहीं है। परन्तु इस रचना में जो बात सब से अधिक खटकती है वह है सरलता का अभाव। बृन्द सतसई में भाषा की आख्या तथा हृष्टान्तों की उपयुक्तता इस कभी को कम कर देती थी। परन्तु प्रस्तुत सतसई के अधिकांश दोहों का किसी प्रकार भी वाक्य कहल का साहस नहीं होता। ऐसे मगता है कि सामान्य बातें सामान्य रीति से कही जा रही हैं। अधिकांश दोहों में न भाषा में बिरोध अमरकार है न अर्थ में। दुष्टान्तों का प्रयोग तो हुआ है परन्तु थोड़े ही दोहों में। इस प्रकार रचना का नीति-काव्य की अपेक्षा नीति की पद्यावली कहना अधिक सुविशस्यत प्यंक्ता है।

भाषा—सतसई में ब्रह्मभाषा प्रयुक्त की गई है परन्तु कहीं-कहीं उसमें राजस्थानीयन का गया है। जैसे—

प्रातां पीतां सोमतां करतां सब व्योहार ।

यनिफा पर बसिबो करं करतज करं असार ॥^१

ऊरसी आदि में उद्भव रूप—इन्तर माधिका जिहाज पुस्त्याज दजार कृषमी आदि की कहीं-कहीं व्यवहृत हुए हैं। एकाप स्थल पर 'एकजुठ' अम रूप भी मिलता है जिनमें धरबी-हिन्दी का मिश्रण मखित होता है। प्रायः वा भाषा में छोट-छोट प्रचलित सपत्न रूपों का ही प्रयोग किया गया है परन्तु कहीं-कहीं पर्युपचित दया भिलाप आदि अन्य कुछ छटकते-जे हैं। कृशियों तथा मुहावरों का प्रयोग का दिष्टाद देखा है परन्तु बहुत कम।

बहते बारि परबार कर, फेरि न सार्ने बारि ।^२

सेता पांज पसारिये सेती सांजी सार ॥^३

असंकार—सतसई न दोनों ही प्रकार के असंकार विद्यार्थि दत्त हैं। अष्टासंकारों में देवानुप्रास कृत्यनुप्रास भीष्मा और मानुप्रास का और अर्थासंकारों में उभमा अष्टासंकार अर्थांतरस्याम रूपक असासंकाय उल्लेख तुल्ययोगिता आदि का और उभयासंकार में समृष्टि का प्रयोग अधिक दृष्टिमत् होता है। यथा—

सम्भारामार—

गिरि गिरि प्रति मानिक नहीं बन बन धरन नाहि ।^४ (बीष्मा)

मुपर रामा में जो लसें, अने राजत भूप ॥^५ (छन्दानुप्रास)

पन सन पुन सन धरम सन, सन दय भौंउ दयाय ।^६ (मादानुप्रास)

१ १ बुधजन सतसई, पृष्ठ २११७७६, २२१२१७, २८१२६१

२ १ यही पृष्ठ २८१२६४, २११२८६, ४०१७४२

बुराचारि सिय कमहिनी, किकर कूर कठोर ॥^१ (बृत्त्यनुप्रास)

प्रचलितकार—

बकवत हित उद्यम करें जे हैं चतुर विलेखि ।^२ (उपमा)

सत्य बीप बाती क्षमा सील तेस सखीय ॥^३ (रूपक)

भसा किये करि है बुरा बुजबन सहज मुगाय ।

पय पायें विय बेत है, फरणी महा बुझवाय ॥^४ (वृष्टान्त)

जैसी संगत कीजिये तैसा हूँ परिनाम ।

तौर यहूँ ताके तुरत भाना त जे नाम ॥^५ (प्रपञ्चरन्यास)

यह बात ध्यान देने की है कि उपमा वृष्टान्त प्रादि प्रसङ्गों से युक्त बोधे

प्रतिक्रमण पूर्ववर्ती काव्यों से प्रभावित हैं गोमित्र नहीं ।

उपमाप्रकार—

मीतिवान मोसि न लजे सहै भुज्ज पित्त त्रास ।

ज्यों हंसा मुक्ता बिना बनसर करे निवास ॥^६

(भावानुप्रास संक्रान्तानुप्रास वृष्टान्त की संसृष्टि)

बिमान छन्द शाली—समग्र रचना मुक्तक बोधों में ४ और छन्द शास्त्र की

वृष्टि से बोधे प्राय निर्बोध हैं । सामान्यतः तथ्यनिरूपक शैली का प्रयोग प्रचुर है ।

अपवेषात्मक तथा शब्दावर्तक शैलियाँ बिलंब ही होती हैं परन्तु बहुत कम । चाणक्य-

मीति के समान पशु-पक्षियों से शिक्षा-ग्रहण की शैली का व्यवहार खूब किया गया है ।

मुख-बोध—प्रकार ही रचना का प्रधान गुण है । मासुय और भोज की भाषा

मूल है । छन्द को निर्बोध बनाने के लिए कहीं-कहीं शब्दों को विकृत कर दिया गया

है जैसे—

गूढ़ मईबुन घट अफल संग्रह सबे निवान ॥^७

इस वक्त में एक भाषा की शमी को पूर्ण करने के लिए 'मईबुन' को 'मईबुन

बना दिया गया है । कुछ शब्दों पर व्युत्पत्तिक्रम बोध भी दिखाई देता है जैसे—

'मतिमान' के स्थान पर 'मतिवान' ।^८ कहीं-कहीं पर अमयुक्तत्व बोध भी वृष्टियुक्त

होता है जैसे—

धयो कबा अयमान निज भाबे नाहि विचित्र ॥^९

इस वक्त में विचित्र का प्रयोग बुद्धिमान् के अर्थ में किया गया है । परन्तु ये

सब सामान्य स्थिति हैं जिससे संबंधा मुक्त रहना कवाचित् किसी भी कवि के बंध न

गईं । मुख्य बोध या मीरसठा है जिसके कारण विषय की वृष्टि से उत्पन्न होती हुई

भी रचना अन्य-सततई के समान लोकप्रिय न हो सकी ।

१-२. सुमजल सतसई पृष्ठ २७।२३१ १७।२३२ २२।२००, १२।१०४, १४।३१६

३- , , पृष्ठ ३१।३२०

७-८. पृष्ठ १७।२३४, १७।२३४ १७।२३७

३१ बाबा बीनदयास गिरि

बीनद-परिचय—गोसाईं बीनदयास का जन्म काशी के पाय बाट मुहम्मद में सं० १८३६ वि० की बसन्तपक्षमी के दिन पाठक-कुस में हुआ था। इनके प्रजातनामा जनक इन्हें केवल पाँच-छह बय के बय में महन्त कुशागिरि को छीपकर स्वर्ग सिधारे। इनके मठों के स्वामी कुशागिरि के तीन शिष्य थे—बीनदयास गिरि स्वयंवर गिरि और रामदयास गिरि। ऋणी गुरु के गोसोकवास पर उनकी प्रधिकतर सम्पत्ति तो गीसाम हो गई और बाय के लिए शिष्यों में क्रमहू प्रारम्भ हो गया। बीनदयास को दुःखित वेस प्रमेठी-नरेश ने उन्हें अपने यहाँ निमन्त्रित किया परन्तु स्वतन्त्रता-प्रिय बीनदयास ने—

पराधीनता बुझ मझा, सुख जग में स्वाधीन।

सुधी रमस सुक बन पिपे, कनक पीधरे बीन ॥^१

कहकर काशी से बाहर जमा उचित न समझा और जीवन भर वहीं रहे। बीनदयास शब सयासी थे परन्तु साम्प्रदायिक संकीर्णता से सबबा मुक्त। ये सत्सङ्ग और हिन्दी के प्रभू विद्वान् थे। हिन्दी-काव्य के प्रति रुचि इनमें मारतम्बु भी के पिता बाबू गोपाराधर की संगति से उत्पन्न हुई थी। बाबा की प्रत्यन्त सरस-स्वभाव विनोद प्रिय दमानु सञ्चरिष, मुणुग्राही तथा आत्मामिमानी व्यक्ति थे। ये स्वयं कभी किसी से कुछ मांगते न थे इसलिए काशी-नरेश आदि समृद्ध जन मुण्ड बप से इहे सहायता भेज दिया करते थे। इनका स्वर्गवास सं० १९१५ में हुआ था।

काव्य-परिचय—गिरि भी ने निम्नलिखित काव्य-ग्रन्थों की रचना की—

(१) दृष्टान्त तरमिखी (सं० १८७६) (२) अनुगम बाग (सं० १८८८) (३) बिराम्य विनेष (सं० १९०६) (४) प्रयोक्ति-कल्पद्रुम (सं० १९१२) (५) विद्वज्जाब नवरत्न। 'बीनदयास गिरि ग्रन्थावली' में इनकी 'प्र-योक्ति-माता' भी संकलित है परन्तु इसे 'प्र-योक्ति कल्पद्रुम' का पूर्ववर्ती सक्षिप्त संस्करण ही मानना चाहिए। 'शिबसिंह सरोज' में 'बागबहार' को भी इन्हीं की रचना बताया गया है परन्तु यह ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ।^२ बाबू ब्यामसुन्दरदास का मत है कि 'बागबहार' 'अनुगम बाग' का ही दूसरा नाम है। अस्तु, उपर्युक्त पाँच ग्रन्थों में नीति-काव्य केवल दो हैं—दृष्टान्त तरमिखी और प्रयोक्ति कल्पद्रुम और वहीं यहाँ पर हमारे विवेच्य हैं।

दृष्टान्त तरमिखी—२०९ दाहों की इस कृति का रचना-काल सन् १८७६ है—

त्रिपि मुनि बसु सति सास ने प्राप्तुन मात प्रकास।

प्रतिपद मयल विरस को शीघ्रो गुण्य विकास।^३

१ सं० दयानुन्दर दास बीनदयास गिरि ग्रन्थावली, (पा० प्र० सं० काशी, १९७६ वि०) पृ० ७७।५३

२ शिबसिंह-सरोज, पृष्ठ ३९३

३ बीनदयास गिरि ग्रन्थावली, दृष्टान्ततरमिखी पृष्ठ ६०।२०६

गिरि जी ने अपनी इस प्रथम कवि को केवल बीस रुपये के मूल्य में बुद्धि का मन धोने तथा पकड़ता और तापों को लुप्त करने के लिए मिला।^१ नीति-काव्यों में प्रायः प्रायः सामान्य विषयों के प्रतिरिक्त इसमें अनेक ऐसी बातों का उल्लेख है जिनकी कवि सँधी साती है— जैसे दुजन को विपत्ति से मत बचाओ सोय पुनीत जन की नहीं मरिना जन की पुना करते हैं। सुरूप का भी समुल के समान सम्मान होता है। नाम मन्त्रा गुम्बर रक्षना चाहिए, समस व्यक्तियों की बुद्धि तथा पास-आस लोक विरुद्ध होती है। मूत्र के समस विहाय धनान्त हो जाता है। परती-अत पराधीनता और स्वाधीनता सांग सुसाध्य वस्तु की अपेक्षा कु-साध्य को अधिक महत्त्व देते हैं। मनुष्य अपना शेष न देकर दूसरों को अपनायी ठहराते हैं। सज्जन दूत भरणना हिनकारिणी होती है। कार्य की सम्पन्नता प्रम और लोभ पर निर्भर है, बड़े या छोटे पर नहीं इत्यादि।^२ इससे सिद्ध है कि गिरि जी पिसे-पिसे विषयों पर ही लिखकर सतुष्ट हो जाने का मन्त्रित न था। यह अपनी साधारण समवेक्षण-शक्ति और प्रखर प्रतिभा सँ ऐसी बातों को भी अपने काव्य का विषय बनाने में समर्थ थे जो सामान्य कवियों से प्रायः उपेक्षित रह पाती हैं।

दृष्टान्त तरंगिणी का अध्ययन करते समय इसके अनेक दोहे भाव व। वृष्टि से परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। यह भाव इस कारण सँ और भी अधिक राटकारी है कि वे दोहे साध-साध विचार देते हैं जैसे—

द्वै असीत धों धुमि करे निमरा मुनसि सघात ।

यहु तिन तँ गुन घटन तँ, कृंजर बांधे बात ॥

यहु दुजन के मिसन सि, हाति बसी की नाहि ।

पूय जम्दुजन तँ नहीं केहरि नाते बाहि ॥^३

परन्तु आपातत विचार के बाद हमें इस शेष के लिए कवि को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। सगर म दोनों बातें सत्य दिनाई देती हैं। कभी अनेक निर्बल व्यक्ति संश्लिप्त होकर सज्जन को पराजित करने में सफल होते हैं और कभी विफल। नीति-कार दोनों घटनाओं को सत्य मानकर उनका उल्लेख करना अपना कर्तव्य समझता है। इसके पदवाच्य यह कर्तव्य पाठकों का रह जाता है कि वे अक्षर-विशेष पर विचार कर लें कि उस समय पर सगठन सफलतादायक होगा या विफलताजनक।

दृष्टान्त तरंगिणी का भाषा प्रायः शुद्ध परिष्कृत और व्यवस्थित है। विनेयी शब्दों का प्रयोग विरल है। कहीं-कहीं पर लोकोक्तियों का प्रयोग भी दिनाई

१ बीन अपना गिरि प्रपावनी दृष्टा तरंगिणी, पृ० ६ । १२०४

२ कहीं कहीं १० १४ १८ १९, ८४ १२३ ४० ४५, ६८ ९० १४६ १३९

३ पृ०, पृष्ठ ०६ । दोहा ४४ ४५, और दो श्लोक पृष्ठ ८५। १३४ ५

देता है जो भाषा की अनिर्व्यञ्जना शक्ति तथा प्रभाव का ब्यक्त है। जैसे—

स्वान् अन्तर को देखि न करे परस्पर शेष।

दुर्ग गता घनु मुनय को जका जिजे पत्तम।

पूरन मम मरतो ग्हीं ज्यो घन गरतम हार।^१

समाहार गुण भी इहकी भाषा की एक उल्लस्य विनिष्ठा है जैसे—

इक बाहर इक भीतर इक मुन बुह बिति पूर।

रोहण पर एग त्रिविधि ब्यो बे जगल अगूर ॥^२

एराय ही स्थल एसा है जहाँ सिय या कृति-मन्त्र की पुष्टि दिखाई देती है जस निम्नलिखित बोहों में हाल का स्त्रीनिग में और 'अक्ष' क साप घाना' का प्रयोग—

सप्रियत देदी सोर में समरप हूँ की हार।

ओक्य देहरि जारा हर, तजि क राम गुसाप ॥^३

अये शौगम एन के पुन ए एग न्तय।

घना घार जसरति को गहि कोळ कर राया।^४

इसी प्रकार एक मोह में मात्रा-संग्या को ठीक रखने लिए इहेनि 'समीप' को 'तामीप' कर लिया है।^५ सम्कृत क अर्थात्तन क फलस्वरूप कुछ समस्त धीर विपद्य रूप भी कहीं-कहीं विद दे जाते हैं जस—अक्षमन्तर अक्षर र आदि। अमवान् के अर्थ में अतमान' का प्रयोग भी अशुद्ध है।^६

विधान तथा शयो—बृष्टान्त परमिणी बाहाय्य मुक्तक-ग्रन्थ है। प्रायः दोहे के पूर इस में प्रथिय घ विषय का उल्लेख रहता है धीर उत्तर वस में निहित हृष्टान्त द्वारा उसकी पुष्टि की जाती है। एकाय स्थान पर बृष्टान्त पहल है और प्रतिपाद्य पीछे यथा—

जैसे घूम प्रभाय ते गगन न होत मसीन।

तथा सुसगति पाय क मनिम न होहि प्रसीन ॥^७

पहले हों या पीछे हृष्टान्त अत्यन्त सुन्दर है और विषय को हृदयमम कराने में पूरा समर्थ। इसके अतिरिक्त पर्यों में अर्थात्तन घंसी प्रयुक्त की गई है; उपरोक्तमक तथा ऐतिहासिक संज्ञायों का व्यवहार बहुत ही कम दिखाई देता है।

अर्थकार और गुण—उपशमकारों में से अज्ञानुप्रास तो प्रायः प्रत्येक पद्य में दिखाई देता है और अरयनुप्रास तथा बीप्सा कहीं कहीं। अर्थसंकारों में बृष्टान्त अर्थान्तरन्यास तथा काव्यनिग का प्रयोग बहुत है। कम तुल्ययोगिता विनोक्ति आदि भी कहीं-कहीं प्रयुक्त किय गये हैं। रचना प्रसाद गुण से ओल्लसित है पाकुर्य तथा शोच विरम है।

१ शौनरयान गिरि प्रंदायनी, पृष्ठ ८१।१००, ८१।१०२, ८१।१२८

२-४ " " , पृष्ठ ८१।१५४, ८०।१३, ८१।१३४ ८१।१३२ ७६।७६

७ शौनरयान गिरि प्रंदायनी, पृष्ठ ८१।१४४

प्राचीन कवियों का प्रभाव—कबीर रहीम बून्द और दीनदयाल के दोहों में पर्याप्त सादृश्य दृष्टिगोचर होगा है। इस सादृश्य का कारण गिरि जी द्वारा हिन्दी-कवियों का भाषापरहार नहीं है मूलस्रोत की एकता है। कबीर ने तो संस्कृत-कवियों के पद्यों को संस्करण में धर्म-सहित चुना ही होगा परन्तु रहीम बून्द और दीनदयाल संस्कृत के बिद्वान् थे। मूल संस्कृत-पद्यों के साथ इन कवियों के दोहों की तुलना करने पर भी हम उपर्युक्त ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं जैसे—

दीने दीने न माणिक्य मोहितक न गजे गजे ।

सायजो न हि सबंध चम्बर न एने बने ॥^१ (बाणक्य)

सिंहों के सेहूँके नहीं हंसी की नहि पात ।

मातों की नहि बोरियाँ साबु न चले जमात ॥^२ (कबीर)

सामु र्है नहि सरल पल कवि धम र्है बसामि ।

बन बन पदन होहि नहि गिरि गिरि मानिक जानि ॥^३ (गिरि)

संस्कृत के दोहों में माणिक्य मोती साबु और चन्दन की दुर्ममता का उल्लेख है। कबीर ने मोती और चंदन के स्थान पर तो सिंह और हंस शब्द रख दिये हैं। दोष दो पदार्थ यथापूर्व रहने लिये हैं। गिरि जी ने संस्कृत-दोहों के तीन पदार्थ लिए हैं—साम चंदन और माणिक्य। कबीर ने माणिक्य के स्थान पर 'भास' कर दिया था परन्तु गिरि जी ने 'माणिक' ही से लिया है। अब बून्द के दोहे से तुलना कीजिए—

माता रामः पिता बरी येन बासो न पाठितः ।

न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये यको यवा ॥^४ (बाणक्य)

बसुर समा में कूर नर, सोमा पावत नहि ।

जैते बट सोमित नहीं हंस-भंडसी नहि ॥^५ (बून्द)

नहि पढ़ायो पुत्र कैं सो पितु यको धमाय ।

सोहत सुत तो बुध-समा, ब्यों हंसन में काय ॥^६ (गिरि)

बाणक्य ने बासक को पिता न बिसाने वाले माता-पिता को साबु और घस अक्षिजित बासक को हंसों के मध्य में बबले के सदृश कहा था। बून्द ने अपने दोहे में माता-पिता का नाम तक नहीं लिया। दोष विषय पूरबन् रहने दिया। गिरि जी ने माता

१ बाणक्य नीति, पृष्ठ २।२

२ कविता कौमुदी भाग १ पृष्ठ १६।७४

३ दीनदयाल गिरि प्रत्यावसी पृष्ठ ८४।१४०

४ बाणक्य नीति, पृष्ठ २।११

५ सतसई सप्तक पृष्ठ ३०४।२३१

६ गिरि प्रत्यावसी, पृष्ठ ८२।११२

को बोधी ठहराना अनुचित समझा और पिता को ही अपना ठहराया तथा 'बपुसे' के स्थान पर काम कर दिया। उक्त उद्धरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम पिरि की हिंदी-कवियों से नहीं संस्कृत-कवियों से प्रभावित हैं। दूसरी कबीर बुद्ध धारि की अपेक्षा से कम मौलिक हैं। इनका कारण सम्भवतः यह है कि बुद्ध, खीम धारि की रचनाएँ प्रौढ़ अवस्था की कवियाँ हैं और दुष्कान्त-तरंगिणी नवयुवक कवि की।

अन्त में इतना ही कहना सम्यक्त होगा कि दुष्कान्त-तरंगिणी निस्संदेह एक सुन्दर मूर्त्तिकामी रचना तो है परन्तु उस भाव तथा कल्पना का विषय उत्कृष्ट न होने के कारण इसे उत्तम काम्य की कोटि में रखना कठिन है।

अन्योक्ति-कल्पद्रुम—इस काम्य की रचना कवि ने दुष्कान्त-तरंगिणी के ३३ वप बाध सं० १११२ में की—

कर छिति निधि सति साम में माय मास सित पञ्च ।

तिथि बसंत कुत पंचमी रवि बासर सुम स्वच्छ ॥^१

ऐसा समय है कि कवि को दुष्कान्त-तरंगिणी से सतोप नहीं हुआ और उसने काम्य-कला में प्रौढ़ता प्राप्त करने के पश्चात् पुनः उची विषय पर एक सुकाम्य रचना की बीड़ा उठायी जिसमें उसे स्तुत्य सफलता मिली।

यह काम्य चार भागों में विभाजित है जिन्हें कवि ने 'कल्पद्रुम' नाम की शीर्षक करने के लिए साक्षात् नाम से अभिहित किया है। प्रत्येक शाखा के अन्त में दोहे तथा गद्यवाक्य में कवि ने अपना तथा शाखा का उल्लेख किया है। जस —

यह अन्योक्ति सुकल्प द्रुम साखा प्रथम वपानि ।

बिरभी बीनव्यास गिरि कवि छिन्नवर सुप्रधानि ॥^२

'इति श्री काशीवासी बीनव्यास गिरि विरचित अन्योक्ति-कल्पद्रुम प्रथम शाखा समाप्ता।' प्रथम दो शाखाओं में व्यावहारिक विषयों का अधिक उल्लेख है तो अंतिम दो में आध्यात्मिक विषयों का।

व्यय विषय—पूर्वोक्त पदविषय मोति में स बाबा जी ने वैयक्तिक सामाजिक धार्मिक और मिथित नीति पर ही अधिक लिखा है; पारिवारिक तथा प्राणिविषयक नीति उपेक्षित-सी है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि शास्त्रकाल में ही जनक विहीन तथा विरक्त हो जाने के कारण उन्हें माता-पिता अपत्य-कसत्र धारि के विषय में कृतवन्त-निर्वेद करने की नहीं सुभी।

व्यक्तिगत नीति—वैयक्तिक नीति के अन्तगत इन्होंने शरीर की मीरोगता शीर्षानु धारि के सम्बन्ध में नहीं लिखा क्योंकि सम्भ-कवियों के समान इन्हें भी संसार एक स्वप्न की सपना और इसके पलाय कामद के फल से अधिक मूर्खान् नहीं प्रतीत

यह भी स्मरण कराया गया है कि वे कुकबियों को ही प्राप्य हैं कुकबियों को जिससे सत्काव्य का ही विकास हो।^१ गुणियों को यह सिद्धा भी गई है कि कठकमासा का शवरी-नगरी में घाटर नहीं होता- उदार और धनी स्वामी ही सेव्य कपण निर्धन और कपटी नहीं मुठ से पसायन उचित नहीं भ्रमर-कठ उपेक्षा से एक की मानहानि नहीं होती इत्यादि। शीतव्याप्त के मठ में यद्यपि सांसारिक सोग-दुःख के साथी नहीं तथा बिबेकहीन होने के कारण सरस का नहीं, कृटिम का घाटर होने है तथापि उनके साथ प्रेम-पूर्वक रहने का ही उद्योग करना चाहिए।^२ बख-ब्यवस्था-संभालन-सम्भालन करने की इन्होंने आवाश्यकता नहीं समझी तो भी शक्ति पर इन्होंने प्रयोजित निष्ठी है उससे अनुमित होता है कि वे ऊँच-नीच के भेद को सर्वथा नैया-मिट करने के पदापाठी न थे।

यहाँ एक बात धीर भी उल्लेख्य है। वह यह कि इन्होंने पाँच (बाह्य) धिय बनिक (बैद्य) मानी कुसास दरजी प्रादि धनेक व्यवसायियों पर ममोरम-न्योक्तिर्था रथी है प म्नु समझी रचना का उद्देश्य किसी को उच्चावच कहना नहीं, व्यवसाय-विशेष से प्राप्य शिक्षा की ओर संकेत है। जैसे—

हे पाँडे यह बात को, को समुझे या ठाँव ।
इते न कोऊ हैं सुभी यह ग्वारन को गाँव ॥
यह ग्वारन को पाँव, नाँव महि सुये बोलैं ।
बसै पमुन के सग घ ग एँडे करि डोल ॥
घरन शीतव्याप्त, छाँछ भरि लीजै माँडे ।
कहा कशो इतहास सुने को इत है पाँडे ॥^३

स्त्रियों के सम्बन्ध में इनकी नीति संकीर्ण ही है। वे उन्हें धारणा की वास्तविकता में बाधक तथा जिय की बल्सी कहते हैं। इन्होंने प्रम-गण में पढ़ने वाले प्रत्येकायों का बहुत ही सरस बर्णन प्रमपत्रक के पाँच सर्गों में किया है और वास्तविक प्रेम-सी भी कहा है जिसका निर्वाह अंत तक किया जा सके। यद्यपि परपदा-निर्वाह के लिए आठक के प्रेम की अनन्यता का बर्णन इन्होंने भी किया है तथापि धारम-सम्मान की माया की अधिकता के कारण वे एक-पक्षीय प्रेम की सपना नहीं कर सके—

ई तो मामत लोहि नहि ते कित भयो उरस्य ।
नहि बीपहि कसु बरब बयों, जरि-जरि मरै पतंग ॥^४

धार्मिक नीति—दान के बिना मान और धन नहीं मिलता कुपाय को दान-दाना अनुचित है अंजन सदमी के अधीन होकर अययन नहीं, उसका उत्सर्ग करके यद्य

१ शीतव्याप्त गिरि : प्रंपावसी प्रयोचित कव्यभूम, पृष्ठ २१५।१८
२ " " " " " " पृष्ठ २४२।१ २३१।१
३ " " " " " " पृष्ठ २२६।६५

सेना चाहिए। संपत्ति-भ्रम पर बर्ष प्रमुक्त है। वाद्यक्य में मोम प्रच्छा नहीं कृपण बनी विकार्य है। प्रादि सुन्दर प्राधिक नीतियाँ इनके पद्यों में विकीर्ण हैं। उत्पन्न भर्ष को माया और माया को ठगिनी मानते हुए भी और संन्यासी होत हुए भी इनका अपर्युक्त नीतियों का प्रतिपादन इनकी व्यावहारिक बुद्धि का परिचायक है।

जीव-व्या पर इन्होंने अधिक नहीं लिखा परन्तु मेढक और मयूर की ग्रन्थों कितनों में बीजहिंसा तथा प्रमथ्य मसण का सुन्दर ङंग से विवेचन कर दिया है।^१

निश्चित नीति—निश्चित नीति क प्रथमतः धाडम्बरमय नाम से सावधान रहने की तथा बड़ नाम की अपेक्षा मनुष्य के पुराणों की और अधिक ध्यान देने की अपेक्षा कई कुण्डलियों में भी गई है। काव्य में पुरुषार्थ पर विवेचन बस कहीं भी दिखाई नहीं देता। भाव्य समय का फेर तथा बुरे दिनों का बर्णन अनेक पद्यों में किया गया है। प्रभु ही सब नाच मचाने वाला है। हम तो उसके हाथ की दारमटी (कठपुतली) मात्र हैं—

तेरी है कष्ट गति नहीं, बाप और को मेस।

करे कपट पर भोट में, बड़ नट सब ही खेत ॥^२

बस मन में प्रभु-बधता इतनी पंठी हुई है तो उत्साहपूर्वक उद्योग करने की विज्ञा सेखनी से निकल ही कैसे सकती है? ऐसी बधा में सवार के कर्षों को वारि संयत और उसकी बस्तुओं को कायव का फूल मानने वाले संन्यासी कवि ने यदि अपनी बस्तुओं की संभाल कर रखने तथा सांसारिक भोगों को पारा-सा बलने की भी अनुमति दे दी तो उस पर्याप्त ही समझना चाहिए।^३

इस प्रकार इनके नीति के प्रतिपाद्य विषयों में सत्ता और गृहस्थों की नीति का बिलक्षण मिश्रण है। इसका कारण है उनका मठाभीषण का जीवन। मठकारी होने के कारण वे संसार व सम्पत्ति का मोह उर्धवा त्याग भी न सकत थे परन्तु तात्किक दुष्टता उनकी निरपेक्षा से भी अपरिचित न थे। इसी कारण उनके काव्य में ऐहिकता और प्राध्यात्मिकता दोनों ही का सुन्दर मिश्रण है। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ता है कि नीति के उपदेशों में उनकी बट्टि व्यावहारिकता और स्वार्थ सिद्धि की अपेक्षा साधन पर कुछ अधिक टिकी हुई है।

रस और भाव—अभ्योक्ति ब्रह्मदुर्म' अत्यन्त सरस और भावपूर्ण रचना है। वाद्यक्य के प्रतिरिक्त सभी रसों के उदाहरण इसमें प्राप्य हैं। अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार भाव और तथा कल्ल की व्यंजना अधिक हुई है। वाद्यक्य भ्रमर गुणव प्रादि की अभ्योक्तियों में शृंगार के संयोग तथा विप्रसन्न दोनों भेदों के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। प्रायः शृंगार की व्यंजना सुन्दर संयत रूप में हुई है। उक्त

१ बीनव्याज गिरि गुणवती अभ्योक्ति ब्रह्मदुर्म पृष्ठ २०१, १७० २२१, १६०

२ " " " " ' पृष्ठ २३४, १२३

३ " " " " ' २३४, १२३ २३४, १२५ २०७, १२५

ईपत् स्फुटता अतुर्गं शाय्या के कुछ पदों में ही दृष्टियत होती है परन्तु वहाँ भी वह, एकान्त्र कृष्णमिया को छाड़कर वहीं भी अचञ्चिकर दशा को नहीं पहुँची। 'विधि की करमी' में हास्वरस^१ की, बुरे दिनों के बहण म करस रस^२ की, तुर्ग^३ तथा शत्रिय^४ की अन्वोक्तिवो म बीर रस की सुकर की अन्वोक्ति में बीमरस रस^५ की तथा वेद्य, रजक दास्तटी आदि की अन्वोक्तियों में शान्त रस^६ की सामु ब्यजना हुई है। रसों की अपेक्षा भावों का क्षत्र वहीं अधिक विस्तृत है। सारी रचना में पुष्पिकात्मक पदों का छोड़ एक भी ऐसा शब्द न मिलेगा जो एक या दूसरे भाव से प्रोत प्रोत न हो। समा निबेद भूति उशरता स्वतंत्रता अरथागत रसा कतमता परोपकार आत्म सम्मान विवेक नम्रता प्रम सहिष्णुता निष्कपटता विबोध नामक भाव अन्य भावों की अपेक्षा अधिक व्यञ्जित किये गए हैं।

भाषा—इस काव्य की भाषा कोमल मधुर तथा स्वच्छ है। कठोरताजनक टक्षण तथा अयुक्त अक्षरों का प्रयोग बहुत ही कम दिनाई देता है। दृष्टान्त-तर्पितरणी की अपेक्षा विवेकी अन्व इसमें कुछ अधिक दिपाई देते हैं परन्तु ही वे सब प्रचलित, जैसे—शेरा बहादुर कीमत सही ऐश आदि। अरुद अरबी-आरसी के हों या अरुद के इन्होंने उनके उत्तम रूपों की आशा तदुभय रूपों का ही अधिक प्रयोग किया है जैसे—छान (छान) मिरियासि (मीरास) कागव (कागव) दासक (दासक) कठजन (कठजन) लठकाम (लठकाम) कृठारप (कृठारप) ब्रह्म ड (ब्रह्मड) गमानि (गमानि)। संस्कृत के उत्तम शब्द प्रायः इन्होंने नहीं रखे वहाँ उनके तदुभय रूप देने से छन्द की गति में विकलता घाम की सम्भावना थी। अक्षरों तथा सोकोक्तियों का प्रयोग इस काव्य में दृष्टान्त-तर्पितरणी की अपेक्षा अधिक है। जैसे—

- (क) लक्ष्मियाँ — 'हूँ हूँ वन के फूल मूल मति तु गुनि राया।'
 'हूँ लसमय पल के अताव ए कापव के फूल।'
 'पछतैहूँ री अठ कत द्विप बारि बिसोई।'^१
- (घ) सोकोक्तिर्या—'अरने बीतरदास कहीं कारिक कहीं केसर।'
 'तो तैं बहुत कठोर जोर इन अने अयावे।'

१	बीतरदास गिरि गुन्दावसी, अन्वोक्ति अन्वयुक्त	पृष्ठ २४७-२४०
२	" " " "	'पृष्ठ २४४।५६
३	" " " "	'पृष्ठ २०६।५२
४ ५.	" " " "	'पृष्ठ २३०।७६ २३२।२
६	" " " "	'पृष्ठ २६१।८०
७	" " " "	'पृष्ठ २३२।६ २३४।६ १०
८.	बीतरदास गिरि गुन्दावसी अन्वोक्ति अन्वयुक्त	पृष्ठ २३४।१२, २०७।५६ २३४।१५

परलक्ष को तब साथ न चाहिये निबद्ध कर छेदन ।
 घर की छाए बुझाय सब बाहिर बुझाये ।
 'यह कामर की घोबरी निकरो घन बजाय ।'
 'बार बिना यह चाँदनी फिर घपियारी रैन ।'^१

विषय तथा छन्द—धर्मोक्ति-कल्पद्रुम मुक्तक काव्य है और इसमें भाषिक तथा बालिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है—

(क) भाषिक छन्द—बोहा कुंडलिया

(ख) बाली-वृत्त—वगलाठी सबैया मासिनी ।^२

काव्य में कुल २७२ पद्य हैं जिनमें से २४७ पद्य कुंडलिया १३ बोहा २ कवित्त २ मासिनी और ५ सबैया छन्द में निबद्ध हैं । दृष्टांत-तरमिणी की रचना से सम्भवतः इन्हें समुच्च हो गया था कि दोहे-से सम्पादन छन्द में नीति-काव्य की रचना में विधेय सफलता नहीं मिल सकती और इसीलिए इन्होंने अपनी धर्मोक्तिमयी कवि के लिए मुख्यतः कुंडलिया का आश्रय लिया जिसका सफल प्रयोग गिरिधर राय इसी प्रकार की रचना के लिए पहले कर ही चुके थे । इसी सम्बन्ध में सक्ष्य करने की एक बात यह भी है कि सबैया छंद में जो पाँच पद्य इन्होंने रचे हैं वे सब के सब प्रेम विषयक नीति के हैं । चूंकि नीति-काव्य में अधिकतर रचनाएँ प्रेम-विषयक तथा कवित्त सबैया छन्दों में हुई इसलिये इस काव्य में प्रेम-नीति के लिए सबैया का प्रयोग उत्कामीन साहित्यिक कवि का ही प्रभाव माना जा सकता है । छन्दशास्त्र की दृष्टि से पद्य निर्माण है और धर्मत्यानुप्रास भाषिक को अधिकतर रखने के लिए कवि को छन्द में ठोड़ मरोड़ की आवश्यकता नहीं पड़ी ।

धर्मी—इस काव्य में मुख्य रूप से धर्म्यापदेशात्मक धैर्य का व्यवहार किया गया है जिसका प्रयोग संस्कृत तथा हिन्दी के धार्मिक कवि चिरकास से करते आए थे । परन्तु इसका तो स्वीकृत करना ही पड़ता है कि जो काव्यनायक इनकी धर्मोक्तियों में प्रस्तुत हुआ है वह हिन्दी-नीतिकाम्य में धर्म्य अप्राप्य है । तथ्यनिरूपक और उपदेशात्मक धैर्य का प्रयोग भी कुछ हम-गिने पद्यों में दिखाई देता है । गिरि धी ने एक धर्म्य विलक्षण धैर्य का व्यवहार भी किया है जिसे सम्बोधनात्मक धैर्य कह सकते हैं । इन धैर्य का उपदेशात्मक धैर्य से कुछ भेद है । उपदेशात्मक धैर्य में तो व्यक्ति-विधेय को विधेय प्रकार का व्यवहार करने की शिक्षा दी जाती है परन्तु इन धैर्य में काम अपेक्षा को ही सम्बोधित कर उसके स्वरूप का वर्णन किया जाता है तथा जहाँ को विधेय नीति धर्म्यापदेश की शिक्षा दी जाती है । जैसे—

१ धीमदवास गिरि धर्म्यापदेशी, धर्मोक्ति कल्पद्रुम पृष्ठ २४०।३३ २४०।३४,
 २०।३२ २३।२७ २३।२८ २२।६४

२ कुंडलिया शु पलाठी मुजह शु बोहा वृत्त । हरें सबैया मासिनी मिति पंचामृत
 चित्त । " " " " पृ० २५।७८)

जिहि मन तें उबभव भयो जिहि वस जग में सुर ।
 तिहि निस्ति दिन जारत अहो बुसह कोप गति दूर ॥
 बुसह कोप गति दूर, पड़ो कृतघन जग मों ही ।
 प्रथम बहुत है घाप, बहुरि बाहूत सज को ही ॥
 बरने बीम दयास, कोप । तू सुनि सज जन तें ।
 अजस होत जनि बहै भयो उबभव जिहि मन तें ॥^१

असंकार—असंकारों की दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। प्रायः प्रत्येक पद्य उभयासंकार के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। कारण जगभग सभी पद्य अन्योक्ति-रूप में रचे गये हैं और अन्योक्ति अप्रस्तुतप्रवृत्ता नामक अर्थासंकार का ही सारूप्यनिबन्धना नामक भेद है। इस दृष्टि से इसमें अर्थसंकार का ही प्राधान्य है। इसके अतिरिक्त अर्थसंकारों में से ऐकानुप्रास वृत्त्यनुप्रास यमक दोष और बीप्सा का तथा अर्थासंकारों में से उपमा विरोधाभास अपहृति अतिशयोक्ति रूपक निदर्शित विषम सूक्ष्म मुद्रा व्याजस्तुति धादि का भी प्रयोग अनेक स्थलों पर किया गया है। वृष्टान्ततरंगिणी तथा अर्थोक्ति कल्पद्रुम^१ के असंकार प्रयोग की धारणाभूत मनोवृत्ति में भी अन्तर सक्षित होता है। जहाँ पूर्वोक्त ग्रंथ में असंकार प्रयोग का मुख्य उद्देश्य नीति के कथन को स्पष्ट और समृद्ध करना है वहाँ अपरोक्त कृति में काव्य को अलंकृत करना। कुछ पद्य तो कवि ने असंकार प्रयोग में अपनी कुशलता प्रदर्शित करने को लिखे हैं।^२ पर कुछस है कि ऐसे पद्यों की संख्या अधिक नहीं। अन्योक्ति के उदाहरण ऊपर उद्धृत पद्यों में सुलभ हैं कुछ अन्य उदाहरण भीचिप—

अर्थसंकार—

गाहक गाहक घिना बसाहक ह्रीं तू बरका^३ (ऐकानुप्रास तथा वृत्त्यनुप्रास)

सखि सखि ताल प्रसून सून मोहत ता मणीं ॥^४ (बीप्सा यमक)

रूपहि धार उचित है नहीं पुनि को हेय ।

अंतर पुन को ग्रहण करि, किरि किरि बीदन दैय ॥^५ (यय्यस्येय)

अर्थसंकार—

सुनिये सुप विवेक तुम वासुदेव अबतार ।

किय मन पितु वासुदेव को धंयन ते उदार ॥^६ (रूपक)

बरने बीम दयास कुंठ मिस तो अस छाये ॥^७ (कंधवापहृति)

सारस हैं, सारस म हैं त, तें रस म हंस ॥(विरोधाभास)^८

१ वीनदयास गिरि प्रयागसी अर्थोक्ति कल्पद्रुम, पृ० २३१।४२ और भी बेलें पृ० २३०-२३४

२ घड़ी पृष्ठ २३६-२३८

३-८. वीनदयास गिरि प्रयागसी, पृ० २०२।३५, २२३।५२, २५६।६३, २५३।५१, १२६।१२, २०३।४२

मुख—अभ्योक्तिरूपम् में प्रसाद माधुर्य तथा श्लोक तीनों ही गुण विद्यमान हैं परन्तु शब्द की अपेक्षा प्रसाद तथा माधुर्य बहुत अधिक है। माधुर्य को स्थिर रखने के लिए कवि ने कर्णकट्टु अक्षरों तथा शब्दों के परिहार का निरन्तर ध्यान रखा है।

शेष इस तरह सुन्दर रचना में भी कुछ स्थलों पर श्रुतसंस्कृति शून्यपदत्व, धाम्नीत्य आदि शेष दिखाई देते हैं। जैसे—

‘सब की छमत्त गुनाह नाह तुम सब के भूतन ॥’

‘बच्चो आपसी भाव्य अहो मुक्ता मुष्य देख्यो ॥’

उक्त शरणों में ‘मुनाह तथा ‘भाव्य को स्त्रीलिंग माना गया है, यद्यपि श्रुत-संस्कृति शेष है।

बीने ही खोरत अहो इन सब खोर न धीर ।

इन समीर से अंध । तुम राजम रहो पा डोर ॥^१

उक्त दोहे में ‘अपाट’ पद की शून्यता होने के कारण शून्यपदत्व शेष है।

पति के द्विग अति खार पी मार मयन के जान ।

जानत सब बिभिचार तब पुनत न नाह सुखान ॥^२

उपर्युक्त दोहे में गंभारी भाषा का प्रयोग होने के कारण धाम्नीत्य-नामक शेष शेष है। एकाम स्थल पर पुनश्च शेष भी विद्यमान है।^३ परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे कठकने वाले स्थल अत्यन्त अल्प हैं और अतएव उपेक्ष्य हैं।

संस्कृत का अभ्योक्ति काव्य और अभ्योक्तिरूपम्—इस बात का उल्लेख ऊपर कर ही चुके हैं कि संस्कृत-साहित्य में अभ्योक्ति खेती में पर्याप्त नीतिकाम्य की रचना हुई है जिसमें से कुछ स्वतन्त्र शब्दों के रूप में और कुछ स्रुत पदों के रूप में संग्रहणों में प्राप्त होता है। संस्कृत के अभ्योक्ति-काव्य से अभ्योक्ति-रूपम् की तुलना करने पर निम्नलिखित पाँच बातें दृष्टिगत होती हैं—

(क) अभ्योक्ति रूपम् में अनेक परंपरागत अपस्तुतों का श्वाय ।

(ख) कुछ नवीन अपस्तुतों का उपादान ।

(ग) अपस्तुत और प्रस्तुत की समानता ।

(घ) अपस्तुत की समानता में प्रस्तुत का विषय-विस्तार ।

(ङ) अपस्तुत की समानता होने पर भी प्रस्तुत विषय का संकोच ।

(च) अनेक अपस्तुतों का श्वाय—यद्यपि अभ्योक्ति रूपम् में सूर्य, चण्ड

१ बीनरपास गिरि संवादनी, अभ्योक्ति रूपम् पृष्ठ १२८, १२९, २२१, २२२

२ " " " " पृष्ठ २०४, २०७

३ " " " " पृष्ठ २४८, २५१

४ " " " " पृष्ठ २२७, २२६ की २२२, २४८ से

तुलना कीजिए

५. प्रस्तुत प्रथम पर ७१ पृष्ठ देखिए

पृथ्वी जस समुद्र पवत सिंह गद हंस अमर चमन रसान गेदा गुमान बाह्यण
 सभिय धारि अणक ऐसे अमस्तुतों पर अयोचितया रची गई हैं जिनका उल्लेख तसूत
 अयोचित काव्य में बिजमान हैं तथापि हार कुंडन भवस रासम राम सीता तनिक
 म्याम अमरय गदाभ मठ बिभ्य गगा घोण मरुत खडोत बस्तुरी तुसा प्रादि
 अनेक पदाय ऐसे भी हैं जिनकी गिरि जी न उपहा की है। परन्तु इस उपेक्षा क लिए
 गिरि जी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि संस्कृत-साहित्य में भी उन्मुख
 अमस्तुतों का उल्लेख किसी एक ही काव्य में नहीं मिलता। हाँ 'कल्पद्रुम' नाम को
 देखते हुए यदि हम इति का साकार कुछ बढा होता तो अधिक सफत था।

(घ) नीन अमस्तुतों का उवाचान—गिरि जी न कुछ ऐसे अमस्तुतों पर भी
 अयोचित-रचना की है जिनका उल्लेख प्रायः तसूत अयोचित काव्यों में इतिहास
 नहीं होता जय—पांड गदमनी चंग उदायक चौरर जिमाही छैन परिहाति न
 पाहक बजनी प्रादि। इनके प्रतिगिक्त इन्होंने अयोचित कल्पद्रुम की अतुल्य पाया
 के आरम्भ में पयिक विषयक त्रिन २३ अंग्य-ठियों की रचना की है वे सामिकता की
 इष्टि से हिन्दी के नीतिकाम्य में अनुक्रम ही बही जायेगी।

(ग) अमस्तुत तथा अस्तुत की समानता—अयोचित कल्पद्रुम में मेघ अमर
 कोकिल बुध प्रादि पर त्रिन अयोचितयों की रचना हुई है उनमें अनेक ऐसी हैं जो
 अस्तुत तथा अमस्तुत दोनों इष्टियों से संस्कृत की अयोचितयों से प्रभावित हैं। छिद
 भी गिरि जी की भाषा और रीति में कुछ ऐसी नवीनता और सरसता है कि वे स्वतन्त्र
 काव्य-सी ही प्रतीत होती हैं अनुवाद-सात्र नहीं जैसे—

पत्थावा शिरसा न केन विभुतः पृथ्वीभृता मम्यतत्
 तस्मिन् मन्वति राठुरा बभक्ति सोपप्रयीक्षलुवि ।
 पयोते स्फुरितं तमोभिर्परित तापमिदम्भुम्भितम्
 पूढवतिपतमा किमत्र करवे कि कि न क्यवेष्टितम् ॥^१ (मुं७)
 सीने आमा आपनी हे अम्यक आपार ।
 रोसं बरगाम प्रगटि क तम कुछ बनी अजार ॥
 तम कुछ बसो अनार निवापर पात्रि रहे हैं ।
 भूत दीप जघोन उलूक बिरात्रि रहे ह ।
 धरने दीग रमान फोन्तद कोट्टु दीने ।
 कद हूँ हो हरि उरप तुम जिन मोन्त मनीने ।^२

१ भावार्थ—हाय ! गिरिजी की उठों को सभी पवतों ने तिर पर धारण किया था
 उस त्रिलोकी के नेत्र-रूप मुख के राठुप्रदान होने पर अमर, शिवा, बुध, कुण्ड,
 पत्नी प्रादि स्वच्छन्द गिहार करने लगे। (अमस्तुत पक्षेण सूक्तिमुत्पादनी,
 खंडी १६२८ ई०, पृष्ठ ६३)

२ शीतलवास गिरि प्रयागसी, अयोचित कल्पद्रुम, पृष्ठ १६८२०

हमारा धनुमान है कि गिरि जी की कुंडलिया मुझ की अयोध्या से प्रभावित परन्तु कुंडलिया में धायव को इस प्रकार परिवर्तित कर दिया गया है कि वह वृद्ध प्रतीत होती है। मुझ के पक्ष में इस बात पर कुछ प्रकट किया गया है कि इसी तेजस्वी गणेश के हृत्प्रभ हो जाने पर अथवा राम ऊबल मन्त्रा रहे हैं। परन्तु, कुंडलिया में अयोधियों के उद्गम दृष्टियों का उल्लेख कर प्रतापी पृथ्वीपति से प्रकट हो कर अक्षयवत की प्रार्थना की गई है। इस प्रकार ऐसी भेष ही नहीं किया गया अर्थात् पात्रानों में भी वृद्धि की गयी है।

(घ) अग्रस्तुत की समानता में प्रस्तुत का विषय विस्तार—अयोध्या अयोध्या में अनेक कुंडलियाँ इस प्रकार की भी हैं जिन का अग्रस्तुत तो संस्कृत की अयोधियों के समान है परन्तु प्रस्तुत भिन्न है। जैसे पवन को अग्रस्तुत बना कर संस्कृत में जिन अयोधियों की रचना की गई है उनमें उससे अलग गौरव को नदी में डुबाने की बुझों का उद्गमन न करने की प्रतीति दीपक को न दुग्धन की कस्तुरी की मुग्ध की पामरी तक न पहुँचाने की तथा अथवा धूमि को पर्वत शिखरों पर न आने की प्राप्ति तो की गई है परन्तु इस प्रकार की कल्पना द्वारा दिनों के फेर न बल अथवा अन्त तक हमारे देखने में नहीं आया—

जहाँ परि पीत पराप पट वर सम फियो बिहार ।
तिहि यन पवन जती मयो, रमत रमाये छार ॥
रमत रमाये छार, धोर धोपम इव भागे ।
हुप में मधुकर सजा, संग सब ही तजि भाये ॥
बरन 'बीनब्यास' र्हो छबि कुसुमाकर भरि ।
हुसह ययो समीर रम्यो पठ पीरो जहँ परि ॥^१

(ङ) अग्रस्तुत की समानता होने पर भी प्रस्तुत विषय का संकोच—हम अभी ऊपर कह चुके हैं कि संस्कृत की अयोध्या अयोध्या में अग्रस्तुतों की संख्या बहुत कम है। परन्तु जिन अग्रस्तुतों को गिरि जी ने ग्रहण भी किया है उन पर भी इसी विस्तृत रचना नहीं की जितनी कि संस्कृत के कवियों ने की है। उदाहरणार्थ, संस्कृत-कवियों ने भृगुशर पर रची गई अयोधियों में सिंह के पराक्रम, स्वयमेव भृगुशरता बाह्यव में भी तेजस्विता गज की विद्यमानता में मृगों पर अनाक्रमण अथवा सिंह शाक की पीरता आत्मात्र सिंह धिपु का छाह, विपति में भी अथवा संकल्प अथवा मृत्यु पर तुच्छ पशुओं की उच्छ्वसता सिंह तथा भ्रमान की भावों पर सम्य पदाथों में अन्तर आदि अनेक बातों की बर्चा की है। परन्तु, गिरि जी ने अन्तर पर एक ही कुंडलिया सिखी धीर उसमें भी सिंह की अराज्य पशुता के उन्मोघ से बाह्यव अथवा विद्यता को ही प्रतिपादित किया है।^२ माना कि एक विरक्त

१ गुभायित रात्रभाङ्गागर, पृष्ठ २४५, प्रवित्तुनगापकी, पृष्ठ १८

२ बीनब्यास गिरि प्रपात्राठी अयोध्या-अयोध्या, पृष्ठ ११६।१४, २२८।१०

की रक्षा के विषय बहान की प्राणा न रखना ही उचित है तथापि सिंह के सम्बन्ध में एक ही धन्योक्ति रची जाय और उसमें भी उसके सहज पराक्रम की उपाधा की जाय, यह कुछ वैधता नहीं।

वीरव्यास और हिन्दी-कवि—यद्यपि धन्योक्ति-कल्पद्रुम पर सङ्कत के धन्योक्ति-सम्बन्ध का ही प्रभाव अधिक है तथापि इसकी कुछ धन्योक्तियों पर कबीर तथा बहारी का भी यत्किञ्चित् प्रभाव सक्षित होता है। कबीर का प्रभाव ता उन पद्यों में अधिक दिखाई देता है जिनमें गिरि-श्री ने दान्त तथा शूमार का मिश्रण करत हुए शायके का मोह छोड़ समुदाय जाने पति स धन्य प्रेम करने और पातिव्रत के आसन की धिखा की है और बिहारी का प्रभाव प्रमद प्रादि की धन्योक्तियों पर। अस्तु यह विस्मरण न करना चाहिए कि वीरव्यास अपनी सङ्कता के कारण धन्योक्तियों की रचना करते समय मात्र में ऐसा परिवर्तन कर देते हैं कि उन पर माया-हृदय का शेष आरोपित करने का साहस नहीं होता। पूर्ववर्ती कवियों के कुछ शब्दों का वाक्यांशों से ही उस प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है। निम्नलिखित उदाहरणों से हमारे कथन का समर्थन हो जायगा—

(क) घुँघट का पद खोज रे तोहँ पीय मिसेँने ।

घट-घट में बहु छाई रमता कटुक बचन मत बोल रे ॥

धन जोवन को गरब न कीज, झूठा वँबरेंग खोज रे ॥^१ (कबीर)

तरे ही अनुकूल पिय किन बिनबँ प्रिय बोलि ।

घट में घटपट मति करे घुँघट को पद बोलि ॥

घुँघट को पद बोलि, बैरि भासन की सोभा ।

परम रम्य बुपगम्य बासु छवि लखि जग सोभा ॥

बरण 'वीर इयाज' कपट तवि रहु प्रिय नेरे ।

बिमुख करावनि हार तोहि सतमुख बहुतेरे ॥^२ (गिरि)

(ख) मासी धावत बैरि कं, कसियाँ करीं पुकार ।

पूसी-पूसी बुनि लिये, कासि हमारी बार ॥^३ (कबीर)

इहि प्रसा घटक्यौ रहै प्रति गुलाब के मूल ।

हुइ हँ बरि बरगत कटु, इन कायि के फूल ॥^४ (बिहारी)

स पल एक मुपय प्रसि, धपनो माणि न भूम ।

सँ है साँस सबेर में बहु मासी यह फूल ॥

१ कविता कौमुदी भाग १, पृष्ठ १७७

२ वीरव्यास गिरि प्रयासनी, पृष्ठ २४१।३४

३ कविता कौमुदी भाग १ पृष्ठ १३७।३३

४ कविता कौमुदी, भाग १, पृष्ठ ४००।१००

बहु माली यह फूल कितने दिन सौंठव धायो ।
 फूले कूसे सेत बन्नी सब सोर मघायो ॥
 बरने 'बीन ब्याल' लाल सधि फंसे न है छल ।
 सगी घाय में धाय, भाय रे संघहि नै पल ॥^१ (गिरि)

ग्रन्थ में इतना ही कथन पर्याप्त होगा कि ग्रन्थोक्ति-कल्पद्रुम विषय की व्यापकता भावों की भाविकता भाषा की व्यञ्जकता तथा पद्यविन्यास की मनोहरता के कारण हिन्दी-नीतिकाम्य की उत्तम रचना है और इसी के कारण गिरि जी नीति-कवियों की प्रथम पंक्ति में विराजमान हैं ।

३२ गुपाल कवि

गुपाल कविराय ने 'वंपतिबाधय विनास' के प्रारम्भिक पद्यों में धपना जो परिचय प्रस्तुत किया है उस से विदित होता है कि इनके पूर्वज कुंगराज राम परम प्रतापी कवि थे । उनके तनुज मुरसीधर के यशस्वी पुत्र धनस्याम कहीं बाहर से आकर बुन्दावन में रहने लग पड़े । धनस्याम के पुत्र प्रवीनराम कवि हुए जिन्होंने पितास्य रस प्राप्त और कार्तिक एकादशी माहात्म्य नामक ग्रंथों की रचना की । इन्हीं प्रवीनराम के गृह में गुपाल कवि का जन्म हुआ । गुपाल बुन्दावन में ही रहते थे और द्विजों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे । पं० रामचन्द्र शुक्ल ने धपने इतिहास में लिखा है कि योपाल कवि ने बसन्त मिय के 'नक्षत्रिस' पर एक टीका भी सं० १८६१ में लिखी थी^१ सम्भव है, ये योपाल कवि हमारे गुपाल कवि से अभिन्न हों क्योंकि 'वंपति बाधय विनास' का रचना-काल (सं० १८८३)^२ उक्त टीका के रचना-काल के समीप ही है ।

वम्पति बाधय विनास—इस काव्य की पांडुलिपि जयपुर के पुरातत्व मन्त्रि में सुरक्षित है ।^३ ५२ पद्यों की इस पुस्तक का लिपि-काल सं० १९३२ है ।^४ कवि ने पहले मुख-मुख-विषयक को पद्य रच कर कुशल कवियों को दिखाए और अन्त में प्रोत्साहित हो कर पाठकों के बुद्धि-विकास के लिए इस काव्य को रचा—

तित की आशा पाय में, कीना ग्रंथ प्रकाश ॥

बहुत सुनत या के सब होइ बुद्धि परकाश ॥^५

बुद्धि के प्रकाश के लिए जो काव्य रचे जाते हैं वे प्रायः विषेय सरस नहीं होते

१ बीन ब्याल गिरि ग्रंथावली पृष्ठ २०६।५५

२ हि० सा० ६०, पृष्ठ २०६

३ टारु स विख्यातिया पुष्पों अग्रहण मास

वंपति बाधय विनास को तय कीनीं परयास ॥ (वंपति बाधय विनास पत्र २।१२)

४ क्रमांक २२६२, पत्र-संख्या ५२, आकार ८२ × ९६

५ ५- "संस्कृत १९३२ आदिपत्रकपालकथा ६ गुरो अयासासि लिखित इच्छागढ़ मध्य"

६ वही, पृष्ठीका ।

७ वही पत्र १।६

परन्तु मुगल कवि ने इस काव्य को दम्पति के संवाद का मं विद्य कर विनाय सरस बना दिया है। पति पत्नी-संवाद के लिए बिदेग जाने का इच्छुक है। पत्नी के प्रश्न पर पति धन धनी-व्यवसाय के मुद्दों का उत्तर देना है और फिर पत्नी उस व्यवसाय के दोष प्रकट कर देती है। इस प्रकार समाज के अनेक दोषों के सामने का बतान करता है और माया उनका प्रत्याख्यान करती है। इस प्रकार का वाक्य-विभास में समय व्यतीत होता जाता है और वे दाम्पत्य-विभास का सुख भी अनुभव करत पाते हैं—

भारि निवेद कियो बजिगार की प्रीतम जो करनी यहारयो ।
 प्यार ही प्यार में प्यारी प्रवीन मैं बाबुरोस पिय की फिरमायो ॥
 रैन बिना बिदुरे नहि मकह भोसविस्तात करे मन भायो ।
 राइ गुनास की पास ही राय के कोयो मसी अदनी मन भायो ॥^१

यह काव्य २१ प्रबन्धों में विभक्त है और प्रत्येक प्रबन्ध अनेक बर्णों में। प्रबन्धों में बर्णों की संख्या म्युनाधिक है जैसे कसह प्रबन्ध में कसह कसह पचीनी' नामक एक ही बर्ण है और राज प्रबन्ध में २१। कवि दृष्टि की व्यापकता विस्मयावह है। जहाँ उसने बिअ-योजन प्रबन्ध में बेदास्ती व्याकरणी ज्योतिषी विद्य पुरोहित आदि के गुण-दोषों की बर्णा की है वहीं प्रथम प्रबन्ध में गण्डिया महुसा छिनरा छिनारी सोडेबाजी बूटनी आदि को भी विस्मृत नहीं किया। जहाँ अपद्-प्रबन्ध में काव्य यौवन तथा बाल्य के गुण-दोषों का बरण है वहीं परमार्य प्रबन्ध में मन्वा भक्ति निर्गुन उपासक आदि का। काव्य के सहज प्रबन्ध राज प्रबन्ध फिरंगी प्रबन्ध आदि हीयकों से कुछ अलग हा सकता है कि इनमें शासन-सम्बन्धी नीरस विषयों का प्रतिपादन हागा। परन्तु बात एसी-ही नहीं है। बन्तुत इन में विविध राज-मन्त्रियों के व्यवसायों के गुण-दोषों का ही उल्लेख किया गया है ताकि पाठक जिस भी व्यवसाय में पड़ हायि न उठाए—

ईपति मान्य बिलास की पई मुने पित लाय ।
 बजगारन के करत ही हार न धारै हाय ॥^२

चूंकि हिन्दी में पुरीत नीति-विषयों का बिलगा व्योदेवार बलुन इस काव्य में किया गया है धन्य किस्ती में नहीं अतएव उचित प्रतीत होता है कि संपूर्ण विषय-सूची को यहाँ उद्धृत कर दिया जाय। जहाँ इस में मुगल कवि का विगत अनुभव तथा सूक्ष्म परीक्षण का परिचय प्राप्त होता है वहीं इस बात का भी प्रमाण मिल जाता है कि किन्हीं कवियों ने उन तन्मानीन विषयों का भी अपने काव्य को परिधि में समाहित कर लिया या जिन पर मुगल कवि प्रायः मौन थे।

१ वही पद्य १।१२

२ वही पद्य २।२७

बम्पति-वाक्य-विनास की विषय-सूची^१

१ प्रथम प्रबन्ध	६ पोसठ के	१२ ध मंया तिलकिया
१ मंयासाधारण	६ मय के	१२ पुरामद
१ कबिबस	६ हुमास के	१२ रोबीनां
१ मनीषारो वर्युन	६ चरस के	७ मंभिर प्रबंध
१ बंध प्रयोग	७. हुक्का के	११ गुसाई के
१ ग्रंथ प्रबंध	७ पानि तमापू के	११ मट्टन के
१ प्रथम समय	७ गजि के	११ मयिकारी
१ पुरय बचन	१. वेत प्रबंध	११ शिरकार के
१ धन मुचहुप	७ चौफर के	११ फौजदार
२ प्रदेश प्रबंध	७ सतरज के	१४ मडारी के
२ प्रदेश मुपहुप	८ गजफा के	१४ पुजारी के
२ पुरय विना के	८ सठोप के	१४ रसोइया के
२ वदान के	८ रुजमार के	१४ छरीवार के
२ उत्तर के	८ घर के	१४ कोतवास के
२ परबम के	९ मित्र राजपार प्रबंध	८. संत प्रबंध
३ मित्र बंस प्रबंध	१ बैदास्ती	११ महताई
३ बराठ के	८ ब्याकरनी	११ महठ को बेसी
३ बेटा को ब्याह	१ ओतिछी	११. महठ की बेसी
३ बेटी को ब्याह	१ मिथ के	११ संतन को
३ समझाने के	१० बंस के	११ नांगान को
४ समुहार के	१० पडिठाई	११ परमहंस
४ मित्रमानी के	१० बरिठाई	११ सिद्ध को
४ तीरथ जात्रा	१० माटपने के	११ तपस्वी
४ बरसन जात्रा	१० सिपाई के	११ बिरबज
५ कपाफीउन	११ रासचारी	११ फकीर के
५ मेला-तमासा	११ गजया बजबैया	११ ओगीराज
५ राषारी के	११ भिपारी	११ जलो क
धमम प्रबंध	११ प्रोहिठाई	११ स्वान पति के
५. पांग के	११ गहुनाई क	११ मोडा नाम
५. सफीम के	११ चौबैन	११ संजोनी

वैदिककाल का नीति-काम्य]

१८. जला करिषो	२४ मन्त्री क	१२ ब्रह्म प्रबन्ध
१८. गहम्प्री	गामदात्र	३० बनिषी के
१८ बह्मपारी	सहृबदिनामी	३० बनित्र के
१८ बानप्रस्थ	२८ बक्षीय	• बहु बनित्र
१९ मन्वासी	२९ मम्म क	३१ मही के
२ सहर प्रबन्ध	२९ मूर्खीर	३१ हाठ के
१९ मिरदागी	३ चौबदार	३१ फिराने के
१९ पोकदागी	३२ ह्मकारो	३१ बहुर गति के
१९ मुहम्मदागी	२९ भाऊन के	३० गाम के बोहरे
१९ जुमन्गी	२९ दोडा के	३० सदनिया
• जानि चौबर	३६ गुमाम के	३० घाडुत्र
२० बह्मग क चौपर	२९ पबास के	३० चौहरी
• पचन कौ	२९ पिमनांन	३० कोटी के
२० जमीदारी	२९ गडनाम क	३३ भूँदियारो
२० इजाजदारी	२७ मुत्ता क	३३ दनासी
२१ गेनी क	२७ ह्मीम के	३३ कुघानदायी
२१ पटबारी	२७ क्यामज	३३ कलाबसू
२१ बानुपीछ	२७ मोनी के	३३ तमोली
२१ तहमीबदर	बखादार	३६ गंधी क
२१ आमनी	३१ छिरंगी प्रबन्ध	३३ रकानि प्रबन्ध
२२ महन्गी क	२७ छिन्गी क	३४ सराष्टी
२२ ग्बारन क	२८ भात्र क	३४ दजात्री
३० राम प्रबन्ध	२८ बानदार	३४ परबुना
२२ गजा क	२८ बनरासी	३४ पमागठ
२२ खिमा क	२८. बमानार	३५ हुसबार्
•३ मुमहंगी मुपाह्व	२९ परमट	३५ बसरट
खामदार	२९ दिमानी कौ	३४ जाति प्रबन्ध
२३ बखसी क	नामिम	३ मुनार
२३ फौरदार	२९ फौरदारो की	•५ दरजी
२३ चौबदारी	नामिष	३६ रंगरेत्र
२३ दतानई	२९ पबार्द के	३६ मानी
•४ पत्रानपी	२९ जेनघान के	३६ कूत्रे
२४ छिनह्मगी	३० पावरी के	३६ कटेरे
२४ दाना दण	३० बहु पावरी क	३६ पोरिया

हम्पति-वाक्य विज्ञान की विषय-सूची^१

१ प्रथम प्रबन्ध	६ पौसल के	१२ ब मयातिलकिया
१ मंगलाचरण	६ मय के	१२ पुष्पामय
१ कविवर्य	६ हुमास के	१२ रोबीना
१ मनीषारी वरुण	६ भरस के	७ मंदिर प्रबंध
१ ग्रंथ प्रयोजन	७. हुक्का के	१३ मुसाई के
१ ग्रंथ प्रबंध	७ पनि तमापू के	१३ मट्टन के
१ ग्रंथ समय	७ गन्नि के	१३ मधिकारी
१ पुरव बचन	१. वेत्त प्रबंध	१३ सिरकार के
१ बन सुपहुप	७ जोफर के	१३ फौजदार
२ प्रदेश प्रबंध	७ छतरंज के	१४ मंडारी के
२ प्रदेश सुपहुप	८ बंजफा के	१४ पुजारी के
२ पूरब दिशा के	८ सतौप के	१४ रसोइया के
२ वदान के	८ रजगार के	१४ छरीछर के
२ उत्तर के	८ घर के	१४ कोतवास के
२ पश्चिम के	९ विप्र बजमार प्रबंध	८. संत प्रबंध
३ मित्र वेत्त प्रबंध	१ बेचान्ती	१३ महंताई
३ बरात के	८ ब्याकरनी	१३ महत की बेसी
३ बेटा को ब्याह	८ जोतिषी	१३ महत की बेसी
३ बेटा को ब्याह	८ मिथ के	१३ संतन को
३ समझाने के	१० बेष के	१३ नागात को
४ समुदाय के	१० पबिताई	१३ परमहंस
४ मित्रमानी के	१० बदिताई	१३ छिड़ को
४ तीरथ यात्रा	१० भाटपने के	१३ तपस्सी
४ दरसन यात्रा	१० भिपाई के	१३ बिरबउ
५ कथाक्रीडन	११ रासवारी	१७ फलीर के
५ मेला-समाधा	११ पदया बजबैया	१७ जोबीराज
५ छबाठी के	११ भिपारी	१७ जती क
४ धर्मस प्रबंध	११ प्रोद्दिताई	१७ खांन पति के
५. भाग्य के	११ पट्टमाई क	१७ मोहा भाष
५ प्रपीन के	१२ जीवेन	१७ संजोमी

१८. बेसा करिबो
 १८ गृहस्ती
 १८ बहूषारी
 १८ बातप्रस्य
 १९ सन्यासी
 २ सहूर प्रबंध
 १९ गिरदागी
 १९ घोकरारी
 १९ मूहस्नेहारी
 १९ पुत्रमेवारी
 २० जानि चौधर
 २ अमूठग का चौधर
 २० पञ्च की
 २ जमीनारी
 २० इजारदारी
 २१ खेती के
 २१ पटबारी
 २१ कानुगोह
 २१ तहसीलपर
 २१ जामनी
 २२ सहृणों के
 २२ ग्वारन के
 २० राक्ष प्रबंध
 २२ राजा के
 २२ विमान के
 २३ मुमहांगरी मुमाहृष
 रसासदार
 २३ मकसी के
 २३ फौजदार
 २३ फौजदारी
 २३ दरोगाई
 २४ पञ्जानची
 २४ छिमहारी
 २४ दाना दल
- २४ मनी के
 गार्जदाब
 सहजदिमानी
 २४ मक्रीम
 २५ मस्म के
 २५ मूरबीर
 २५ चौबदार
 २३ हसकारो
 २५ भाऊन के
 २६ योजा के
 २६ युमान के
 २६ पबास के
 २६ विममान
 २६ गडमान के
 २७ मुस्मा के
 २७ हुकीम के
 २७ कसामत
 २७ मोदी के
 चदाबार
 ११ किरपी प्रबंध
 २७ फिगंगी के
 २८ नात्र के
 २८ जानवार
 २८ अपराधी
 २८ जमावार
 २९ परमट
 २९ शिमानी की
 मासिध
 २९ फौजदारी की
 गालिध
 २९ मपाई के
 २९ बेसजाने के
 ३० पाकरी के
 ३० बहु पाकरी के
- १२ बीस्य प्रबंध
 ३० बगिया के
 ३ बगिज के
 ३ बहु बगिज
 ३१ मंडी के
 ३१ हाठ के
 ३१ किराने के
 ३१ गहुर गति के
 ३२ गान के बोहरे
 ३२ सबैगिया
 ३२ भाइत
 ३२ बीहरी
 ३२ बोठी के
 ३३ हूँडियारी
 ३३ दमाली
 ३३ बुकानवारी
 ३३ कलाबतू
 ३३ तमोली
 ३४ मंधी के
 १३ रकानि प्रबंध
 ३४ सराफी
 ३४ मजाबी
 ३४ परशुना
 ३४ पसाळ
 ३५ हलवाई
 ३५ कसेरट
 १४ जाति प्रबंध
 ३५ सुनार
 ३५ परजी
 ३६ रंभरेज
 ३६ मासी
 ३६ कुंजरे
 ३६ कइरे
 ३६ कोरिया

३७ बड़ई	४१ मंगा के	६५ दाटा के
३७ मुहार	४१ फराम के	४६ सूम के
३७ सगतरास	४२ रबाला	६६ सपूत के
३७ राज-मजूर	४२ सगारि बिधौसी	४६ वेटा के
३७ बिभकार	१६ अममापम	४६ देगी के
३८ लेसी	४२ पंजिया	१८ परमारण के
३८ सका के	४२ मजुबा	४७ नवधा भक्ति
३८ नाऊ के	४२ किसानी	४७ निर्गुन उपासक
३८ राजक	४३ भबैया कचक	४७ बड़ा उपदेश उपासना
३८ मस्नाह	४३ छिनरा	४७ स्त्री के सुप
३८ महतर	४३ छिनारि	१८ बसहा प्रबन्ध
३८ स्वपथ	४३ सौदेबाजी	४७ कसह पधीसी
३९ अमम कज्यार	४४ कुटनी	२० साति रस प्रबन्ध
३९ जुगली	१७ अगत प्रबन्ध	४८ कबि पछितानि
३९ मसपरा	४४ बासापस्या	५० करणाटक
४० उषकका	४४ तरुनावस्था	२१ अग्य फल स्तुति प्रबन्ध
४० धौर	४४ बुढावस्था	५० ज्ञान उपदेश
४० सवार	४४ गुम के सुपहुप	५१ कसि प्रभाव
४० हृदयमादे	४५ सस्कृत गुम	५१ फलस्तुति ।
४० डिम्मचारी	६५ भाया गुन	इति सूची सम्पूर्णम् ।
४१ बेसरम	४५ फारसी इलम	
४१ क्षेपीपोटा	४५. हुरमत के	

नीति के स्वनिदिष्ट छह भेदों की दृष्टि से विचार करने पर विरिक्त होता है के अतिरिक्त इसमें प्राणिनीति के बिना पाँचों प्रकार की नीति का अस्मैस विद्यमान है, अर्थात् प्राधान्य प्राणिक नीति का है। वैयक्तिक नीति में बात्यादि व्यवसायों का अन्वय प्राणीक नीति से संस्कृत भृगु भाषा गुण पारसी इलम आदि विषयों का साहित्यिक नीति से धौर गुण सुक-नुक का आत्मिक नीति से है। पारिवारिक नीति के अन्तर्गत बेटा बेटी सपूत स्त्री के सुप आदि का अस्मैस है। सामाजिक नीति में बेटे का बिबाह, बेटी का बिबाह समधिमाना बड़ाचारी गृहस्थी ज्ञानप्रसन्न धौर संन्यासी के अतिरिक्त वैश्य पूत्र आदि से सम्बन्धित पद्य रचे जा सकते हैं। धार्मिक विषय में इति में अधिष्ठात नीति कवियों के समान पद्य के सुक-नुक प्राणी रूपण आदि की ही चर्चा नहीं की प्रायः उन सभी व्यवसायों को बिना दिया है जिनके द्वारा तत्कालीन लोग अपना निर्वाह किया करते थे। कृति के छठ से सत्तर सोराहवें प्रबन्ध तक का विषय विविध व्यवसायी है जिनकी कथा री से भी अधिक है। कवि ने व्यवसाय-मात्र

को प्रशसनीय नहीं कहा है। कुछ व्यक्तियों को अपम तथा कुछ को प्रथमापम माना है। जैसे कुगर्भी मसखरा उचकका खोर, मबार हगमजावे बेसरम सेखीखोरा खाला सगई-बिचौसी आदि के काय अपम रोजपार कहे गये हैं। उक्त प्रबंधों की बर्ग-सूची पर दुरुपात करने से ऐसे दर्जनों विषय दिखाई देते हैं जिन पर प्राचीन कवियों ने कुछ सिद्धता उचित नहीं समझा। संस्कृत के ग्रन्थों में वैश्य कायस्थ नापित आदि के सम्बन्ध में कुछ स्फुट पद्य भ्रम ही मिस आएँ परन्तु फिरगी नाबर, पानेशार, अपरासी जमादार आदि परबर्तों विषयों पर तो सिद्धता अवश्य ही था। निम्नित नीति में ज्ञान उपदेश तथा कसिमुग के प्रभाव से सम्बन्धित पद्यों को बिनाया जा सकता है।

यह काव्य सरल मधुर, प्रवाहपूर्ण रचनापा में लिखित है। अर्थासंकारों की अपेक्षा दम्भालकारों का अमत्कार कहीं अधिक है। अनुप्रास कवि का सबसे प्रिय प्रसकार है और प्रत्येक पद्य में उसकी सुन्दर छटा देनी जा सकती है। विधान की दृष्टि से रचना को प्रथम-मुक्तक कहा जा सकता है। जहाँ दंपती के मवाद रूप में होने के कारण यह कुछ प्रथ-वाचक है जहाँ प्रत्येक पद्य अप की दृष्टि से अपन आप में पूर्ण होने के कारण मुक्तक है। प्रायः कवित्त सबैया और बोहा छन्दों का प्रयोग किया गया है। छार यह कि विषय भाव नापा सभी दृष्टियों से यह एक सुन्दर ऐतिकाम्य है। निदसंनार्थ कुछ पद्य दिये जाते हैं—

(क) आप आप लोग घर यठे ही तिरामे हाप,
 टंटे धी किमाइ के सु उठत चुपस को
 मुकवि "गुपाम" इत उत में विपाय धप
 करि कें करेजी माल मारत चुपस को ।
 राति दिन ब्रम्ह सरदार में रहति बर,
 माग्यो करै लोग ऐसी बसो न मुगत को ।
 आमें छलछिद्र कजू परत मबल सरा,
 यातें यह भसौ रजिगार है चुपस को ।

(ख) सब ही बी पा में जोटी पढ़नी परति बात
 कहैं पुरदार बर यपे तन छीजिये ।
 पारी गरा ब की बहु कोसत रहत लोग,
 पामसे में जाइ कें विपारि काम बीजिये ।
 बाहर भए में यह दिपरत हाल या तें
 कह्य "गुपाम" मेरी बात हि पतोजिये ।
 भूप रहि बीजिय कि बिग साइ पीजिये,
 वें बुति बजगार चुपस को कहि बीजिये ।

२७	वर्द्ध	४१	मंगा के	४५	बाटा के
२७	कुहार	४१	हराम के	४६	सुम के
३०	संगतरास	४२	गवासा	४६	सपूत के
३०	राज-मञ्जरु	४२	सगाई बिजौसी	४६	बेटा के
३७	बित्रकार	१६	प्रथमायम	४६	बेनी के
३८	तेसी	४२	गंडिया	१८	परमारण के
३८	सका के	४२	मकुवा	४७	नवधा भक्ति
३८	माऊ के	४२	किसयी	४७	निर्गुन उपासक
३८	राजक	४३	मवेया कपक	४७	ब्रह्म उपदेश उपासक
३९	मल्पाह	४३	छिनरा	४७	स्त्री के सुप
३९	महतर	४३	छिनारि	१९	कमहा प्रबन्ध
३९	स्वपथ	४३	लौडवाजी	४७	कमह पचीसी
३९	प्रथम राजपार	४४	हुट्टनी	२०	सति एत प्रबन्ध
३९	जुगसी	१७	जगत प्रबन्ध	४९	कवि परिभाषा
३९	मसपरा	४४	बामावस्था	५०	करणाष्टक
४०	उषकका	४४	उषनावस्था	२१	प्रथम पञ्च स्तुति प्रबन्ध
४०	पीर	४४	बुद्धावस्था	५०	ज्ञान उपदेश
४०	सवार	४४	गुन के सुपसुप	५१	कलि प्रभाव
४०	हरामबादे	४५	सस्कृत गुन	५१	फलस्तुति ।
४०	डिम्बकारी	८५	भाषा गुन	इति सूची सम्पूर्णम् ।	
४१	बेसरम	४५	फारसी इमम		
४१	सेपीपोर	४५	हरमत के		

नीति के स्वनिश्चित छह श्रेणियों की दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि यद्यपि इसमें प्राणिनीति के बिना पौषों प्रकार की नीति का उल्लेख विद्यमान है, तथापि प्राधान्य धार्मिक नीति का है। वैयक्तिक नीति में बाल्यादि धर्मस्वार्थों का सम्बन्ध प्राणिक नीति से संस्कृत गुरु भाषा गुरु पारसी इमम धार्मिक विषयों का मानसिक नीति से और गुरु सुक्त-गुरु का धार्मिक नीति से है। पारिवारिक नीति के अन्तर्गत बेटा बेटा सपूत स्त्री के सुप धार्मिक का उल्लेख है। सामाजिक नीति में बेटे का विवाह, बेटा का विवाह समन्विताना ब्रह्मकारी गृहस्थी ज्ञानप्रस्थ और संन्यासी बित्र शयिय, वैश्य भूत धार्मिक से सम्बन्धित पद्य रने या करने हैं। धार्मिक विषय में कवि ने धार्मिक नीति कवियों के समागम धर्म के सुक्त-गुरु बानी कृपस धार्मिक की ही शर्मा नहीं की प्रायः उन सभी व्यवसायों को मिला दिया है बिना द्वारा उल्लेखनीय भोग भोग निर्वाह किया करते थे। कृति के छोटे से लेकर छोटाहमें प्रबन्ध तक का विषय विविध व्यवसायी है बिना ही संन्यासी से भी धार्मिक है। कवि में व्यवसाय-भाष

३५ मानिकदास

ये ग्रहमदाबाद के विद्वान् पाटीशार से परन्तु पीछ छापु बनकर उज्जैन से जा बसे थे। मिश्रक-बुधों ने इनकी पाँच पुस्तकों का उल्लेख किया है—सम्तोप-सुरतब, सत्संग प्रभाव राम-रघापन कविस प्रथम, आत्मविचार।^१ इनने सम्तोप-सुरतब की हस्तलिखित सटीक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के याज्ञिक संग्रह में विद्यमान है।^२ पुस्तक की रचना सम्भवतः ऐतिहासिक में हुई होगी क्योंकि पुष्कर-राज-राणीतवास व्यास ने इसे सं० १६१६ में अधिकारी बालमुकुन्द के अध्यक्ष के लिए सिपिबद्ध किया था।^३ पुस्तक में कुल १११ दोहे हैं। श्री मरुच तथा श्री राम को प्रणाम करने बाद कवि ने रचना का उद्देश्य यों लिखा है— प्रथम मन की पूरणकामता की सिद्धि के अर्थ पूर्णकाम रूप सम्तोप ताके निरूपण के अर्थ पूरण काम करण बारे ईश्वर ताको नमस्कार करिये हे। कहना न होगा कि दोहों की टीका भी कवि ने इसी प्रकार के पण्डिताद पद्य में की है। सामान्यतः बोहे साधारण कोटि के हैं और उनमें कहीं-कहीं गविम तथा मात्राओं की न्यूनताधिकता भी दिखाई देती है। कुछ दोहे बैसे—

ज्यों वातु के साथे तें, भूय प्रति बढ़ती जाय।
 त्यों इष्ट अर्थ के लाभ तें, बढ़े तुम्हा को काय ॥
 भूल है तन की तनक सी, मन की भूल महान।
 अथ बिम (१) सों न सिद्ध, मिटें न अमृतपान ॥^४

३६ मनराम

जीवन-परिचय—मनराम का जीवन चरित अभी तक अन्वकार में है। 'मनराम-विलास'^५ नामक एक काव्य हमें अजपुर में ठोमियों के जैनमन्दिर में देखने का अवसर मिला था। उसके प्रायः सभी पद्यों में 'मनराम' की छाप है परन्तु अन्तिम दोहे से प्रतीत होता है कि मनराम-इत मनराम प्रकाश' स इसका संग्रह किसी विहायीबास ने किया था।

१ मिश्रक-बुध, अनुर्व भाग, सं० १६६१ पृष्ठ ३३०

२ प्रति की सक्या १७ अ। ४३ है। प्रति पूर्ण है और ३६ पत्रों पर सिद्धित है

३ इति श्री मानिकदास विरचित सुत्तब नामक पुस्तक सम्पूर्णम् सबत् १६१६ आगाढ़ कवि १ गुरौ दिने सिपिबद्धत रंजीतदास व्यास पुष्करराजराजीय व्यासेन, पठनाथ श्री अचिारी बालमुकुन्दस्य। (बही, पुष्कर)

४ सम्तोप सुरतब, पृष्ठ १३।४०, २१।७३

५ पण्डित-सक्या ३६५, पद्य १०, आकार १२ × ३६

३५ मामिकदास

ये ग्रहमयाबाव के बिद्वान् पाटीदार ये परन्तु पीछे साधु बनकर उग्रैन में जा बसे थे। मिमङ्गलुषों ने इनकी पाँच पुस्तकों का सम्लेष किया है—सन्तोष-सुरतर्ष सत्संग प्रभाव राम-रघायन कवित प्रपञ्च आत्मविषार।^१ इनके सन्तोष-सुरतर्ष की हस्तलिखित सटीक प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के मासिक संग्रह में विद्यमान है।^२ पुस्तक की रचना सम्भवतः ऐतिकास में हुई होगी क्योंकि पुष्करणी-राष्ट्रीय रंगीनदास व्यास ने इसे सं० १९१६ में अधिकारी वासमुकुन्द के अध्यक्ष के लिए लिपिबद्ध किया था।^३ पुस्तक में कुल १११ दोहे हैं। थी गणेश तथा श्री राम की प्रणाम करने बाद कवि ने रचना का उद्देश्य यों लिखा है— प्रथमम मन की पूरखकामता की सिद्धि के धर्म पूर्णकाम रूप सन्तोष ताके निरूपण के धर्म पूरख काम करणे बारे ईश्वर ताको नमस्कार करिये हे। कहता न होमा कि दोहों की टीक भी कवि ने इसी प्रकार के पण्डितारू गद्य में की है। सामान्यतः दोहे साधारण कोटि के हैं और उनमें कहीं-कहीं पठिमप तथा मानाधों की न्यूनाधिकता भी दिखाई देती है। कुछ दोहे बैसे—

ध्यों धातु के धाये लें, मूय धति बढ़ती जाय।
 त्यौं इष्ट धर्म के नाम लें, बढ़े सुखा की काय ॥
 मूख है तन की तनक सी, मन की मूख महान।
 जगत बिन (१) छौं न भिटे, भिटे न अपूतपान ॥^४

३६ मनराम

जीवन-परिचय—मनराम का जीवन-चरित अभी तक धन्यकार में है। 'मनराम-विज्ञास'^५ नामक एक काव्य हमें जयपुर में ठोसियों के भवनमन्दिर में देखने का अवसर मिला था। उसके प्रायः सभी पद्यों में 'मनराम' की छाप है परन्तु अन्तिम दोहे से प्रतीत होता है कि मनराम-हूठ मनराम प्रकाश से इसका संग्रह किसी बिहारीदास ने किया था।

१ मिमङ्गलुषु बिनोद अतुर्म भाग, सं० १९९७, पृष्ठ १३०

२ प्रति की संख्या १७ प। ४३ है। प्रति पूर्ण है और ३६ पद्यों पर लिखित है

३ इति श्री मामिकदास विरचित सुरतर्ष नामक पुस्तक सम्पूर्णम् सन्तु १९१६ आशाङ्क कवि १ गुरी दिने लिखित रंगीनदास व्यास पुष्करणीराष्ट्रीय व्यासेन, पटनाय श्री अधिकारी वासमुकुन्दस्य। (यहो, पुष्पिका)

४ सन्तोष सुरतर्ष पृष्ठ १३।७७, २१।७३

५ वेष्म-संख्या ३९५, पत्र १०, आजार १२×३३

मरे ब्रित्त में ऊपची, पुन मनराम प्रदास ।

सोबि बीन ए एकठे कीए बिहारीदास ॥^१

यद्यपि कृति का रचना-काल अज्ञात है तथापि काव्य की वनादत और लिखाई से प्रति पुरानी प्रतीत होती है । रचना के १६ वें पद्य में कवि ने जैन कवि बनारसीदास का स्मरण किया है—

‘बनारसी दास सौ प्रखलि करे मनराम,

बाकी बानी सुन कं प्रकास होत म्याल की ॥

जैनों में बनारसी दास नाम के दो हिन्दी कवि हुए । प्रथम आगरा के प्रसिद्ध अचार्य बनारसी दास जो तुलसीदासजी के समकालीन थे और दूसरे ‘भक्तिव्यसल चरित’ के रचयिता बनारसीदास जिनकी उक्त कृति का लिपिकार सं० १८२२ ई । एमारी समरु में मनराम का संकेत आगरावासी बनारसीदास की ओर है जिनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई थी इसलिए मनराम को रतिकालीन कवि ही माना जा सकता है अधिक प्राचीन नहीं ।

कृति-परिचय—मनराम बिसाल में केवल २६ पद्य हैं जिनमें दोहा सर्वथा इच्छीसा सर्वथा बलीभा सर्वथा देईसा कुम्भसिया और बरित्त (सर्वथा) चम्बों का प्रयोग किया गया है । गुण-ग्रहण अक्षयुण-त्याग क्रोध सोभ परोपकार, धात्मस्वाभा की मन्दा जूषा पीबववा स्त्रीनिम्बा आदि जैनों के प्रसिद्ध ग्रिय विषयों की अधिक पद्या है । इस पर भवृ हरि के नीति-शतक तथा बरग्य-सतक का प्रभाव अधिक सरित्त हाता है । इस विषय में कवि ने सरय कह कर अपनी विनम्रता यों व्यक्त की है—

जुगति पुराखी बूढ करि किये कबित्त बनाय ।

कष्ट न मेसी पाठि की, अलहु मन बच काय ॥^२

यद्यपि भावों के लिए कवि प्राचीनों का आशी है तो भी उन्हें सुन्दर हृदयान्तों से उपर्णित करने में उसने विशेष कौशल दिखाया है । काव्य में सामान्य ब्रजभाषा का व्यवहार हुआ है जिसमें कहीं-कहीं राजस्थानी के भी शब्द दिखाई देते हैं । एकाध पद्य में कवि ने शब्दों के आघार पर अमत्कार साने का भी उद्योग किया है । कसा की दृष्टि से रचना मुक्तिकाव्य में पद्यगीय है । कुछ उदाहरण देना—

होत धार दुघ धान मुए, सज्जन मन अहस्ताद ।

सयन गारि तन धायनी भोजन करत शुबाद ॥^३

‘बीन’ एक पर अर्थात् लहि ‘हीन’ कहावत नाम ।

‘धौर’ सीस लखित भए ‘बीर’ होत मनराम ॥^४

१ मनराम बिसाल, पद्य २६

२ “ , , पद्य २४

३ ४ “ , पद्य २०, १९

सिधु के साथ नहीं तिम की कणु नग्न होठ तिरु सौ ग राजादे ।
 सोई निरहित गुदन पुबपत लौं धपतो धग विघारै ॥
 तैसै धर्माग सोमबदनि कीं निम संपति करुं निजर न धारै ।
 है मनरान महंत धरजिन्, तिरु का नाग दिपि दरसाय ॥^१

३७ मूर्खमेव शीपर्द

प्रायः सभी भारतीय नीति-कवियों ने विद्वाना का नाप-साप मूर्खों का भी उल्लेख किया है। विदुर नीति के प्रथम अध्याय के श्लोक श्लोकों में मूर्ख-जनों का उल्लेख उल्लेख पाया जाता है।^१ मनुस्मृति के नीतिशास्त्र का प्रारम्भ ही मूर्खों के वर्णन से होता है।^२ पाणि प्राकृत तथा अपभ्रंश के नीति पद्यों में भी मूर्ख-वर्णन कई स्थानों पर किया गया है।^३ हिन्दी में भी मूर्खों को शिक्षा दान के लिए मूर्खानिहार मूलम-काण्ड मूल-बहारी धारि पुस्तक गद्य में उल्लेख्य होती है। हिन्दी-मञ्ज में ऐसी रचनाओं की परम्परा बुद्धि रास च प्रारम्भ होकर चार सिद्धामण रास सभा सौ सील तथा धन्य बुद्धि रासों के रूप में चलती आई है।^४ मूर्खमेव शीपर्द उसी परम्परा के उत्कर्षत प्राणी है और बाकानेर के समय जैन ग्रन्थालय में एक जैन मुठने^५ में संकलित है जो लगभग आई सी वर्ष पुराना है।

मूर्खमेव शीपर्द, में केवल ८१ पद्य हैं। प्रारम्भ में तीन तथा अन्त में चार दोहे हैं और मध्य में ३४ चौपद्याँ। प्रारम्भिक दोहों में कवि ने बुद्धि-विस्तार तथा सुपुण प्रकाश को रचना का उद्देश्य बताया है। कवि ने उद्यम के बिना धन चाहने वाले बेट्या के वचन पर विस्वास करने वाले अपने धन को त्याग कर दूसरे की धांधला रखने वाले पराधीन होकर धरुकार करने वाले तथा इनी प्रकार के धन्य लोगों को मूर्खों में परिगणित किया है। बाँट निस्सन्देह सिद्धांत है परन्तु विषय तथा अभिव्यक्ति में विशदता के अभाव के कारण रचना पद्य-कोटि में ही गलुमीय है। कहीं-कहीं तो संस्कृत के श्लोकों का शब्द-शब्द अनुदित कर दिया गया है। जैसे नाचयण पण्डित का वचन है—

धापुवित्त गृह्णितं मन्मथपुनमेपमम् ।

तापो दानापामार्गं य मव धीप्यानि धनत ॥^६

- १ मन राम जिनास, पद्य ४१
- २ विदुर नीति प्रथम अध्याय, श्लोक ३५ ४४
- ३ मनुस्मृति गणकन्यम् पृष्ठ १६
- ४ प्रस्तुत प्रकाश का द्वितीय अध्याय देखिये।
- ५ 'महभारती' (पिमाती धनवरी १२५५ ई०) में भी धरुकार मल्लिका का 'मूल मेव शीपर्द' शीर्षक निरुद्ध देखें।
- ६ पुटका सं० २६ पद्या०
- ७ हितोपदेश (निर्णयसागर प्रेस दम्ब, १२४६ ई०) पृष्ठ ५३१३१

घाट बिल गृहछिन्न तप मधुन श्रीयव बाण ।

संय प्रकास सुड मर महत धनै अपमान ॥^१

रचना साधारण राजस्थानी भाषा में है और अनेक शीघ्र्या हतवृत्तत्व से युक्त है। एक उदाहरण नीचे—

भुजापण्ड हूइ चाही मार, परामोन कर अहकार ।

अनभुत प्रम्व अकारुं रुइ, प्रगट अर्थ गोपये सुड ॥^२

३८ श्रीयाविनोव चरित्र

यद्यपि इस अज्ञात-कर्मक कथाकाव्य का रचना-काल अज्ञात है तथापि इसमें तो शन्देह नहीं कि यह सं० १६०० के पूर्व की रचना है। इसकी ओ स० १६१३ की हस्तलिखित प्रति हमने उदयपुर के साहित्यसम्मान विद्यापीठ में देखी, उसकी प्रति सिपि संवत् १६०० में राजभीम जी सूरजमल की हस्तलिखित प्रति से की गई थी।^३ कथा की शैली पद्य-रत्न के समान है, कथाओं के मध्य में से अल्प कथाएँ उद्धृत होती जाती हैं।

समाजीत नाम का एक पूर्वदेखीय चित्र राजा भोज की समा में थाता है। भोज उससे प्रश्न करते हैं और यह उन के उत्तर प्रस्तुत करता जाता है। जैसे नृप के मुखों के सम्यग्य में भोज के प्रश्न के उत्तर में चित्र कहता है—

राजा होय म मार बस आकर बस न होय ।

जमी राजा पन बस परे ती राजनीत नही कोय ॥^४

यह काव्य चित्रों को पाठिपठ की शिखा देने के उद्देश्य से लिखा गया है। इसकी एक कथा इस प्रकार है—

धीपाल नाम का एक गृहस्थ धरनी पत्नी से कहता है कि सूरत नगर में जब माल साहू नाम का एक धनी निवास करता था। जब वह व्यापार के लिए विदेश में गया तब पीछे उसकी कुलटा पत्नी कोठवाल के साथ भोगविभास में मग्न हो गई। जब व्यापारी प्रभुत धनोपार्जन के पदधातु लौटा तब वह पत्नी के चरित्र की परीक्षा के लिए भिक्षु-रूप में वहाँ छिप गया। जब रात को कोठवाल उसके घर न पहुँचा तो वह धाबी रात के समय दरवाजे मह में कोठवाल के दरवाजा पहुँची। अन्त में जब

१-२ मुराँ मिर शीपदी, पद्य ३८, ८

३ इति श्री श्रीयाविनोव चरित्र तन्मूर्णम् धार्तायाम् । शीघ्रतं राजभीम जी सूरजमल समस्त १६०० रा, पोत पदि १ पुष्करार; तिन प्रति तौ प्रतिनिधि कर्ता असकल-तिहू शीघ्रतं स्वस्थान कुरापद, ता० १६१३३६ वि० २०१३, अत्र पुस्तका ६ (साहित्य साधना की प्रति की पुष्पिका)

पति ने उसका कुक्ष्य प्रकट कर दिया तो भीत-सम्बन्ध द्वारा गिर कर मर गई ।

रचना राजस्थानी-निहित ब्रजभाषा में है । शृंगार-से विषय को भी सरल बनाने में कवि को सफलता नहीं मिली ।

पंच बाहा-बीपाई शब्दों में है परन्तु बीच-बीच में अष्ट संस्कृत के श्लोक भी बिद्यमान हैं । जैसे—

क्यावती समो तपो क्यसेनो च भवती ।

क्यरमा समो नार न भुतो न भवोसती ॥^१

रचना इस प्रकार की है—

कई महेश पुनी अब जान, पत्नीयता री बड़ी घोषान ॥

एक पत्नीदुता दसौ तप कयो तिन पी सरस छहर जययो ॥^२

यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से कृति का कुछ अति महत्त्व नहीं है तथापि इससे इतना वांछित हा ही जाता है कि रीतिकान्त में स्त्रियों को सम्भारण की शिक्षा देने के लिए तथा पुरुषों को स्त्रियों के नायाबी परिणम साधन रखने के लिए एक काव्यों की रचना की प्रवृत्ति का प्रभाव न था । कर्तने की आवश्यकता नहीं कि स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसी कथा-कहानियों की प्राचीन कथा-साहित्य न कमी नहीं है ।

३१ दासार सूर नो संवाद

इस पुस्तक के कर्ता का नाम अभी तक प्रकाश है । इसकी हस्तलिखित प्रति बिछका लिपिकान्त सं० १८८८ ई बमपुर के पुरातत्त्व मन्दिर में सुरक्षित है ।^३ काव्य में केवल २५ पद्य हैं जिन में छप्पय पठारि घोर डूहा छन्दों का प्रयोग किया गया है । दाता को अपनी बनाव्यता का घोर सूर को अपनी बीरता का अधिमान है । दोनों ही अपनी-अपनी ब्येच्छता सिद्ध करने के लिए इतिहास-सुराण आदि से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । जब वे किसी समझौते पर नहा पहुँचते तब 'दाया तिनक' सर्पासिद्ध के पास निर्लम्बाय जाते हैं जो दाता को सूर से उत्तम निर्णीत करता है । राजस्थानी भाषा में रचित वीर रस की यह रचना प्रबन्धी रोचक है । दो पद्य नीचे—

प्रथम बाठार यहै —पति घागें त्रिहुं भयल राइ घर हस्त पसारै ।

छरल ईइ कपीयो कय्य तन हुत उतारै ।

पीरोवन तन बिहुर दियो बिप्रहु निहारै ।

मपि कनोत सीखान भो सिय सररा मारै ।

१ वही पृष्ठ २५

२ वही पृष्ठ १३

३ पतार सूर नो संवाद मुद्रक का प्रकाश १९२२, संपाद ६८

भाउ बिस गृहलिङ्ग तप मीपुन श्रीपय बाण ।

मत्र प्रकाश मूढ नर महत धनै अयमान ॥^१

रचना साधारण राजस्थानी भाषा में है और अनेक शीपइयाँ हस्तकृतत्व से दूषित हैं। एक उदाहरण नीचे—

बूझापुछ हुइ चाही नार परामीन करै अहकार ।

अनभुत प्रग्व मसाले रुइ, प्रगट अर्य घोपय मूढ ॥^२

३८ श्रीयाविनोद चरित्र

यद्यपि इस अज्ञात-जन्तु के कथाकाम्य का रचना-काल अज्ञात है तथापि इसमें तो सन्देह नहीं कि यह स० १६०० के पूर्व की रचना है। इसकी ओ स० १६१३ की हस्तलिखित प्रति हमने उदयपुर के साहित्यसम्मान विद्यापीठ में बेबी, उसकी प्रति लिपि संवत् १६० में राजमीम जी सूरजमल की हस्तलिखित प्रति से की गई थी।^३ कथा की संजी पच-तन्त्र के समान है कथाओं के अन्त्य में से अन्य कथाएँ उद्भूत होती जाती हैं।

समाजीत नाम का एक पूर्वदेसीय विप्र राजा भोज की समा में जाता है। भोज उससे प्रश्न करते हैं और वह उन के उत्तर प्रस्तुत करता जाता है जैसे, नृप के पुछों के सम्बन्ध में भोज के प्रश्न के उत्तर में विप्र कहता है—

राजा होय न नार बस आकर बस न हीय ।

क्यों राजा मन बस परै तो राजनीत नही कोय ॥^४

यह काम्य स्त्रियों को पातिव्रत की शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखा गया है। इसकी एक कथा इस प्रकार है—

श्रीपाल नाम का एक गृहस्थ घरनी पत्नी से कहता है कि मूठ नगर में जब मात साह नाम का एक घनी लिबास करता था। जब वह व्यापार के लिए बिरेल में गया तब पीछे उसकी कुसटा पत्नी कोठवास के साथ भोगविहास में मग्न हो गई। जब व्यापारी प्रभुत बनोपार्जन के पक्षपात् छोटा तब वह पत्नी के चरित्र की परीक्षा के लिए प्रियुक्त-शैप में कही छिप गया। जब रात को कोठवास उसने घर न पहुँचा तो वह माजी रात के समय घरके मेढ में कोठवास के घर पर पहुँची। अंत में जब

१-२ मूण मेर छोपई पय ३८ ८

३ इति श्री श्रीयाविनोद चरित्र सम्पूर्वम् पण्यपिन् । श्रीधीलं राजमीम जी सूरजमल समस्त १६० रा पीत पति ६, सुफकार तिम प्रति सों प्रतिनिधि कर्ता अतवात-चित्त रसोग्यो स्वरयाम पुरापड ता० १६।४।१६ दि० २०१३, बंभ सुरता ६ (साहित्य संस्थान की प्रति श्री पुष्पिका)

४ श्रीयाविनोद चरित्र साहित्यसंस्थान उदयपुर की प्रति, पृष्ठ १।१६

पति ने उसका कुकृत्य प्रकट कर दिया तो भीत-सन्निवृत्त होकर गिर कर मर गई।

रचना राजस्थानी-मिथिल व्यवसाय में है। शृंगार-सं विषय को भी सरस बनाने में कवि को सफलता नहीं मिली।

पंथ दोहा-धौपाई छन्दों में है परन्तु बीच-बीच में अष्ट संस्कृत के श्लोक भी विद्यमान हैं। जैसे—

रुपापत्नी समो मयी रूपसेनो छ मपती ।

रुपरमा समो मार न भुतो न मयीसती ॥^१

रचना इस प्रकार की है—

रहै महस पुनी भय जान, पतोयता री बड़ी धीरान ॥

एक पतीवृता यती तप क्यो तिन धी यन्त सह्र उपयो ॥^२

यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से कृति का कुछ अधिक महत्त्व नहीं है तथापि इससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि रीतिकाम में स्त्रियों को सम्भारित की शिखा देने के लिए तथा पुरुषों को स्त्रियों के नायाबी चरित्र से सावधान रखने के लिए ऐसे काव्यों की रचना की प्रवृत्ति का प्रभाव न था। कहने की आवश्यकता नहीं कि स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसी कथा-कहानियों की प्राचीन कथा-साहित्य में कमी नहीं है।

३३ दातार सूर नो सवाद

इस पुस्तक के कर्ता का नाम अपनी तक प्रस्ताव है। इसकी हस्तलिखित प्रति जिसका सिपिकास सं० १८८८ है बनपुर के पुरातत्व मन्दिर में सुरक्षित है।^३ काव्य में केवल २५ पद्य हैं जिन में छप्पय पद्यों पर धीर ब्रह्मा कर्मों का प्रयोग किया गया है। दाता को अपनी बवान्यता का धीर सूर को अपनी बोरता का अभिमान है। दोनों ही अपनी-अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए इतिहास-पुराण आदि से उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। जब वे किसी समझौते पर नहीं पहुँचते तब 'राया तिमर' रायसिंह के पास निर्णयार्थ जाते हैं जो दाता को सूर से उत्तम निर्णीत करता है। राजस्थानी भाषा में रचित धीर रस की यह रचना अच्छी शौक है। जो पद्य नीचे—

प्रथम दातार फई - वसि प्रगो त्रिं भयल राह धर हस्त पसारे ।

परण इह अप्पीदी कदध तन हुंत उतारे ।

धीरोवन तन बिह्र विमो द्विप्रकृ मिकारे ।

मयि कपोत सौबांन धी सिब सरण मारे ।

१ वही, पृष्ठ २५

२ वही पृष्ठ १३

३ ग्यार सूर नो सवाद, पुस्तक का क्रमांक ११२२, प्रकाशक ६८

यह समा कृति इत अमरा अहि सुर नर मो उचरै ।
बातार परबै दोसियो कबल मुम्ह लग बड़ करै ।^१

य सुर बाक्यम्—संबा राबल राम अम्ह पटमास पढाए ।

पारब पाब बुरभोपना बतबास भभाए ।

कामबबन अम्हसे बीया हरि बडह पयसणा ।

अरा सिधु अिधुपाल सो तो प्राति माहि समासा ।

बासपर बीतो अिहुं भुक्ख गयी सामर सरखे हरि ।

फहै सुर बातार न तो मो किती परादरी ॥^२

२ नीतिग्रन्थों के अनुवादक ऋषि

उपरोक्त मूल ग्रन्थों के प्रतिरिक्त रीतिकाम में अनेकों कवियों ने नीति के अनेक प्रख्यात ग्रन्थों के अनुवाद भी प्रस्तुत किये । उन अनुवादों में से कुछ अथ में कुछ अथ में और कुछ गद्यपद्य-मिश्रित । अूँकि हमने प्रस्तुत प्रबन्ध में गद्यमयी कवियों की अर्था नहीं की अतएव यहाँ भी ऐसी ही रचनाओं का परिचय दिया जायगा जो पद्यमयी हैं अथवा पद्य प्रधान ।

अपसिंहबाब—इन्होंने संवत् १७८२ में सारंगड़ कोट के मन्त्री बाबू देवकीगन्दन की आसा से हितोपदेश का अनुवाद 'हितोपदेश के कथा' नाम से किया । अनुवाद उपाय बनाअरी चौपाई, दोहा तोमर अवेमा पदरिका आदि छन्दों में है । अनुवाद की हस्तलिखित अलिखित प्रति नामरीप्रचारिणी समा काशी के पुस्तकालय में सुर अंत है ।^३ कहीं-कहीं संस्कृत के श्लोक भी दिये गये हैं अिनकी असारी अनेक अमुद्ध है । अनुवाद साधारण है और उसकी भाषा इस प्रकार है—

अपसिंहबाब पुराण में अजग अ्यास के अोय ।

पर अकार जो पुण्य है, परतुअ पाप अु होय ॥^४

अयनसिंह—अरतरगण्ड के मुनि अयनसिंह या अयनअ ने संवत् १७८६ में अिजमपुर अर्थात् बीकानेर के महाराज अनुपसिंह के पुत्र अानसिंह के आदेश से अर्थात् हरि की अतकमयी का अवेमा-अड अनुवाद किया । इस अनुवाद की हस्तलिखित प्रति हमें बीकानेर के अनुप संस्कृत पुस्तकालय में मिली ।^५ अनुवाद के पूर्व अूमिका-अय में अनु हरि का संक्षिप्त अूताअ गद्य में किया हुआ है अनुवाद में अर मूल श्लोक हैं नीचे हिन्दी के पद्य । अनुवाद की भाषा सुन्दर है परन्तु अनुवाद कहीं कहीं अ्यासा की अतक अेता है । अिस—

१ २ बातार सुर मो संवाद पृष्ठ ८७।१ ८७।२

३ अमासंगुह अं० १६६।४७८

४ हितोपदेश के अथा पद्य ४३

५ प्रति सरया ८३ । इसकी एक प्रति पुरातन अरिह, अयनुर, में भी अिद्यमान है, अनांक ३६७४

मूस— बुभुक्षं परिहृत्यो विद्ययात्सङ्गतोपि सन् ।

महिना भूयित सप विमती न भयंकर ॥^१

भनुवार— पर के गुन पेयत ह्येय पर वगोई करे बिल घहर पीब ।

सट बीर बहै हट बुद्धि प्रहै बोट कसै करो पुनि तो नहौं रोमै ।

यस ऐसे कोऊ गुन है बु टऊ मनि भूयित नाय राँ संग न बीबै ।

अव यौं बु विचारि न छारि कै दूर से भी निह टा मुय छार ही बीबै ॥^२

हृष्य कवि— विहारी के पुन-रूप म प्रसिद्ध भापुर पीथ हृष्य कवि ने महा

राजा जयसिंह के मन्त्री राजा प्राया मस्त के प्रादेश से बिहारी सतराई के अतिरिक्त

बिहुरलीति की टीका भी लिखी—

राजा प्राया मस्त की प्राय्या अति हितु जानि ।

बिहुर प्रजागर हृष्य कवि प्राया कहूँ भी बजानि ॥^३

संवत् १७२२ में रचित इस टीका की पूर्ण प्रति ७२ पत्रों पर मिलिबद्ध है ।

इसमें बोहा पदरि सोरठा बबिल रोता प्रादि अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है ।

बिहुरलीति में तो प्राठ ही अध्याय हैं परन्तु बुभुक्ष के इतिहास क उल्लेख से इसे

महाध्यायी बना दिया गया है । टीका तो सुपर है परन्तु पद्य प्रस्तुत नहीं की गई ।

अनेक मूस पद्यों का आशय एक-एक भाषापद्य में संगृहीत कर दिया गया है, जिसे

मूस की कई बातें सूँ गई हैं । अस्—

मूस भौपो हर्ष्यश्च बर्षश्च ह्री स्तम्भो मान्यमानिता ।

यमर्षान्नात्यकरोन्ति स ये पंडित उच्यते ॥

यस्य हृर्यं न आनन्ति मर्गं वा मन्वितं परे ।

कृतमेवास्य जानन्ति, स र्षं पंडित उच्यते ॥^४

टीका— सा के मन की हृर्य मंत्र कोऊ नहि जानै ।

मयो काम सब बेयि प्रगट सय जपत बजानै ॥

मान्य प्राय कै मानि गरब मन म नहि साबै ।

ए मन्वितन लच्छियं नाग पंडित बु बहारे ॥^५

हारका माय सारस्वती (मट्ट)— 'हितोपदेश भाषा प्रथमीममल' की रचना

मट्ट जी ने कुम्भवा-भिरामणि पदवीसिंह के प्रादेश सं संवत् १८२८ में की । 'हितोप-

१ दासकभ्रमम् पृष्ठ २४१४२

२ भर्तृहरिसांख्य भाषा, सबैयास्य पत्र ११।२६

३ बिहुर प्रजागर भाषा, भागती प्रचारिली समा काशी, याज्ञिक संग्रह सं० २४।७-
(मिफिकाल सं० १६२३) पत्र ७२

४ बिहुरलीति पृष्ठ ६।२२ २३

५ बिहुरप्रजागर भाषा, पत्र १७।१४

देख" के इस पद्यमय अनुवाद की प्रतिनिधि संवत् १८८१ में रामनाथ ने की और उस प्रति से पुरोहित हरिनारायण भी ने सं० १९१२ में प्रतिनिधि कराई, जो जयपुरीय विद्याभूषण पुस्तकालय में सुरक्षित है।^१ अनुवाद पूर्णतया पद्य में है जिसमें दोहा, चौपाई कवित्त तथा सबैया छन्दों का प्रयोग किया गया है। अनुवाद में साहित्यिक छोटक तो सहित गहरी होठा परन्तु मूल के भावों की सुरक्षा सावधानता से की गई है। संस्कृत के जो श्लोक कहीं-कहीं उद्धृत हैं उनमें सिपिकारों के प्रमादबध नहीं मूर्ते दिताई देती है। अनुवाद का निदधान देखिये—

मूल— "यस्मिन् नीयति दीप्यति बहवः स तु जीवति ।

यस्योपि हि न क्वचि ज्ञोदधोवरपुरणम् ॥"

अनुवाद— 'जा के नीयत बहु जिये रहे जीवई एह ।

बकहू कहा न खेच सीं जबर भरे वन येह ॥"

दीप्यन्त— इन द्वारा प्रसूदित 'पंचास्यान' में पांच कथासंग्रह हैं—मित्रनाथ सुहृदनेद विग्रह सग्न्य तथा लक्ष्य-प्रणाथ । इसकी हस्तलिखित प्रति^२ वीकानेर के प्रभूखंडेय पुस्तकालय में सुरक्षित है जिसमें १४८ पत्र है । इसे महारत्ना सवाई राम ने वीकानेर में सं० १८४४ में फत्तोभी क विमलसी के पुत्र परमहंसी के अध्यक्षद्वारा लिखित किया था । प्रथम गद्य-पद्य-मिश्रित ग्वालेरी भाषा में है और बूहा छोरठा छप्पय और कवित्त छन्दों में है । अनुवादक मूल के भावों की रक्षा पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक कर पाया है परन्तु वह पद्य भी अत्यन्त सम्यक्स्थित है । अनुवाद का एक उदाहरण नीचा—

दानेकसायोच्छदि परोदार्यस्य दक्षजन्म् ।

सखस्य मोचनं धारत्रं यस्य नास्त्यग्य एव सः ॥४

सजके भेद पु संय है पड़े घन्य कछु नाहि ।

से ऊ अ धरे पुदप है सब संतार जुग माहि ॥४

अज्ञानिय—जयपुर-नाथ सवाई प्रतापसिंह ने सं० १८३२ में मधुहरि के तीनों पद्यकों क अनुवाद नीतिमंजरी शृंगारमंजरी तथा रीराग्यमंजरी नाम से प्रस्तुत किये । इनकी हस्तलिखित प्रतियां राजस्थान से बाराणसी तक अनेक पुस्तकालयों में प्राप्त होती हैं और अनुवाद की साफप्रियता का पुष्ट प्रमाण है । अनुवाद भाव-रक्षा और भाषा का सुश्रवता दोनों दृष्टियों से सफल है भावों में हरछर बहुत ही कम हुआ है । उदाहरण —

१ यस्ता सं० १२ प्रतिनिधि का 'ज्याफ' ११७२

२ जितोपदेय भाषा प्रमूनीभाषा पृष्ठ २४।१६ ८७

३ प्रति सं० ४२।१६

४ जितोपदेय (निरामलापर प्रथम बन्ध १९४६), पृष्ठ ३।१०

५ पंचास्यान पत्र २।६

मूस— शानि द्विषतमूसरो गन्तियायना फानिमी,
सरो विगतवारिजं मुपनमतरं स्वाहृते ।
प्रनुर्पनपरारण सततदुर्गति सखयो,
मुपांगगगत एसो मन्ति सप्त शल्पानि मे ॥^१

अनुवाद—
छीको है सनि दिपस की कानिनि जोवनहीम ।
मुहर मुन अष्टर विगा, सरपर पदम टोन ॥
सरपर पकज-टोन, होइ प्रम सोमी वन की ।
दिन जु कपटी होय नृपति दिन यास रत्नम की ।
ये सार्थो ई सत्य मरमछेवन या की की ।
ब्रजनिधि इमको देवि होत मेरो मन पीजे ॥^२

पद्मराम—चन्दनराम या पद कवि म स० १८६० में 'प्रनोत्तरी विरहभ्रमणमदन' की रचना की। इसकी हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सग्रह में सुरक्षित है।^१ कृति का नाम कुछ भ्रामक है क्योंकि यह भर्मदासमूर्ति प्रणीत सम्बुद्ध के विरहभ्रमण-मदन का अनुवाद नहीं यदि—

विद्यापति गुणमुनि रचित सुख्याती में होइ ।

प्रनोत्तरमणिमासिदा ताको सारक होइ ॥^२

प्रनोत्तरमणिमासिका का सार है। ४१ पदों की इस कृति में कृदभिया तथा सबया का प्रयोग अधिक है। बीच-बीच में बोहा तथा मोरठा छन्द भी हैं। दाहों की अपेक्षा सबया-रचना सुन्दर है। यथा—

सबैया— कौन जु ठौर छादा करिये, भय कानन हुस्तर जो अंधियारी ।
सोदापदा ये क्याअ भधानक ता म टिलो है तवा अविपारो ॥
कौन मुबामु दहा कबिअर विपति त्हाइ करे सृचारी ।
मस्तपिना पुनि कौन कही जोई परिपालक धीर मुरारो त^३

जम्बेराम—श्री मोतीकास मेगारिया ने इसके द्विध 'राजनीति काण्ड' का उद्देश्य किया है सम्बद्ध उसी का नाम 'भाषा काण्ड' भी है। भाषा काण्ड

१ शाक्यपन् पृष्ठ २६।४३॥

२ मा० प्र० स० के शास्त्रि सग्रह में स० ३२७।३६ की हस्तलिखित कीटिकारी की प्रति। चन्द्रनिधि प्रधापती (मा० प्र० पृ लाजी, स० १२६०) में तानों धारकों के प्राणु प्रकाशित हो चुके हैं।

३ प्रति-संख्या ३०२१।१२१२

४ प्रनोत्तरी विरहभ्रमणमदनम् पद ४७

५ " " ४०

६ मोतीकास मेगारिया राजस्थानी भाषा धीर साहित्य, पृष्ठ २३०

बेध' के इस पद्यमय अनुवाद की प्रतिभियि संघर्ष १८८१ में रामभाज वै की धीर उद्य प्रति से पुरोहित हरिभारामण की ने सं० १९१२ में प्रतिभियि कराई जो जयपुरीय विद्याभूषण पुस्तकालय में सुरक्षित है।^१ अनुवाद पूर्वतया पद्य में है जिसमें दोहा, चौपाई कवित्त, तथा सवैया छन्दों का प्रयोग किया गया है। अनुवाद में साहित्यिक सीष्ठन जो सक्षित नहीं होता परन्तु मूल के भावों की सुरक्षा सावधानता से की गई है। संस्कृत के जो झोठ कठो-कठो उद्धृत हैं जगमें निधिकारों के प्रमाणस्य नहीं भूमें दिखाई देती हैं। अनुवाद का निदर्शन देखिये—

मूल — “अस्मिन् जीवति जीवन्ति बहुः स तु जीवति ।

यजोति कि न कृतं यंघोऽसोदरपुरसम् ॥”

अनुवाद— “जा के जीवत बहु जिय, यह जीवई एह ।

बधू कदा न जीव सी, उदर भरे वन गे ॥”

दोहा— इन द्वारा अनुदित ‘व्याख्या’ में पांच व्यासग्रह हैं— निमज्जाम सुहृदमेव विग्रह सगिष तथा मध्य प्रणय । इसकी हस्तलिखित प्रति^२ बीकानेर के धनुरसंस्कृत पुस्तकालय में सुरक्षित है जिसमें १५८ पद्य हैं। इसे महात्मा सवाई राम ने बीकानेर में सं० १८४४ में फ़ौजी के विमलसी के पुत्र धमइसी के अध्यक्षतामें लिपिबद्ध किया था। उक्त गद्य-पद्य-मिश्रित व्यासेयी भाषा में है और दूहा छोरठा छप्पम और कवित्त छन्दों में है। अनुवादक मूल के भावों की रक्षा पद्य की संयोजन गद्य में अधिक कर पाया है परन्तु वह पद्य भी धारण्य अध्यक्षस्थित है। अनुवाद का एक उदाहरण नीचे—

धनेकससयोच्छदि परोरात्रस्य इंसकम् ।

राईस्य सोचनं धारुं यस्य नस्त्यन्य एव त् ॥”

सजके मेन नु संघ हैं पड़े पश्य कहु माहि ।

ते इ च धरे पुत्रय हैं सब संसार नुम माहि ॥”

अनियि— जयपुर-मंघ सवाई प्रतापसिंह ने सं० १८३२ में भवुंहरि के तीनों पद्यों के अनुवाद नीतिमञ्जरी शृंगारमञ्जरी तथा वैराग्यमञ्जरी नाम से प्रस्तुत किये। इनकी हस्तलिखित प्रतियां राजस्थान से बाराणसी तक धनक पुस्तकालयों में प्राप्त होती हैं और अनुवाद की लोकप्रियता का पुष्ट प्रमाण है। अनुवाद मात्र-रथा और भाषा की सुरक्षा दोनों दृष्टियों से यत्न है भावों में हेरफेर बहुत ही कम हुआ है। उदाहरण—

१ मस्ता सं० १२ प्रतिभियि का फ़र्माक, १९७२

२ द्वितीयदेश भाषा अष्टोत्तमस, पृष्ठ ३४।१६ ८७

३ प्रति तात्पा ४२।८।६

४ द्वितीयदेश (निरामतागर प्रेत धर्मई १९४६), पृष्ठ ३।१०

५ वंदाव्यान पत्र २।६

मूस— शशी विषसपुसरो गलितायीवना फानिमी,
सरो विगतधारिजं मुपननशरं स्वाहृते ।
प्रनुषगपरापरण सततदुर्यति सखमो,
मर्षामणगतं पत्तो मयसि सप्त दास्यानि मे ॥^१

अनुवाद—
छोटी है मसि दिपस ली, फानिमि कोवन-हीन ।
मुन्दर मुत्र अण्डर बिना सरपर पवन छीन ॥
सरपर पंकव-छीन, होइ प्रभ सोमो मय की ।
नित्र जू कपटी होय मृपति द्विग दास पवन ली ।
ये सार्तो ई सत्य मरमहदन या ली की ।
वजनिधि इन्को देपि होत मेरो मन पीजे ॥^२

धर्मरत्न—बन्धनराम या “पंद कवि न म० १८६७ में ‘प्रनोत्तरी
विदग्धमुत्तममदन’ की रचना की । इसकी हस्तलिखित प्रति गांगरी प्रचारिणी सभा
काशी के सग्रह में सुरक्षित है ।^३ इति का नाम कुछ भ्रान्त है क्योंकि यह धर्मदासपुरि
प्रणीत संस्कृत के विदग्धमुत्तममदन का अनुवाद नहीं अपितु—

विधानसि मुचमुनि रक्षित सुखायी में दोह ।

प्रनोत्तरमणिमासिपा साको सारक होइ ॥^४

‘प्रनोत्तरमणिमासिरा’ का सार है । ४६ पदों की इस इति में कृत्रिमिया
तथा सवया का प्रयोग अधिक है । बीच-बाच में दोहा तथा जोरटा छन्द भी हैं । बोहों
की अपेक्षा सबैया-रचना मुन्दर है । यथा—

सबैया— कौन मु ठौर तथा हरिये भव फामन हुस्तर जो ध दिपारी ।
लोदाबदा ये व्दाप्र भयानक ता म रिपी है करा धरिपारी ॥
कौन मुवमु दहो कबिचंद बिपति रहाइ परे सहचारी ।
मस्तपिता पुमि कौन कही जोई परिपालक और मुतरपी ॥^५

धर्मरत्न—श्री मोतीसाम भारारिया न इनके प्रिप्त ‘राजनीति-व्याख्यान’ का
उल्लेख किया है गम्भरत उसी का नाम ‘भाया काण्डिक’ भी है । ‘भाया काण्डिक’

१ शतकत्रयन् पृष्ठ २३।४२॥

२ मा० प्र० म० के याचि सग्रह में सं० ३३७।३६ की हस्तलिखित नोतिपत्रकी प्रति । वजनिधि ग्रन्थावली (मा० प्र० प० शशी, सं० १६६०) में सार्तो धर्मो के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं ।

३ प्रति-संख्या ३०२६।१६१६

४ प्रनोत्तरी विदग्धमुत्तममदन पृष्ठ ४७

५ " " " " ४०

६ मोतीसाम भारारिया राजनीति-व्याख्यान, पृष्ठ २३०

की हस्तलिखित प्रति अजमेर के विद्याभूषण पुस्तकालय में सुरक्षित है।^१ कवि ने इसकी रचना सं० १८७२ में अजमेर-नरेश बिनयसिंह के आदेश से की थी। २४६ पदों के इस अनुवाद में दोहे को मुम्मम छंद तथा द्विपद्य कहा गया है। अनुवाद सुन्दर है। यथा—

मूल—बुद्धा भार्या शठ मित्रं भूयश्चोत्तरदायकः ।

सतर्पे च मुहे दासो, मृत्पुरेव न संशयः ॥^२

अनुवाद—तिय बुद्धा घद मित्र सठ, भूत उत्तर देवाल ।

सतर्पसहित धा दो सदन, दित्त कास ही कास ॥^३

विष्णुगिरि—प्रजातकामीन गोसाईं विष्णु गिरि ने मधु तथा बृहद् आणव्य-नीति के बोहों तथा छोरठों में अनुवाद किये आ बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय में बिद्यमान हैं।^४ अनुवाद ३६ पदां पर लिखित है और पच्छा है। इस प्रति के आणव्य-नीति के पाठभेदों का भी कुछ पता चल जाता है। प्रति सबन बर्बदेव के प्रतिपादक पद्य का पाठ आज इस रूप में है और सार्धक है—

अति क्येण यी सीता अति पेरेंण रावणः ।

अतिरामाद् बसिर्वडो, ह्यति सर्वेभ बण्येव ॥^५

परन्तु गोसाईं जी की प्रति में श्लोक इस प्रकार है—

अति रूपवती सीता अति गर्वीव रावणः ।

अतीव बलवान् रामो लंका येन दार्य पता ॥^६

इस श्लोक का अर्थ कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है। परन्तु यह भी नहीं कह सकते कि गोसाईं जी ने स्मृति-मात्र से ही इसका उक्तरूप में उल्लेख कर दिया होगा क्योंकि नायरी प्रचारिणी सभा के साहित्य-संग्रह में अविधित-कामीन देवमुनिवृत्त अनुचरणार्थ (अनुआणव्य) में उक्त श्लोक निम्नांकित रूप में लिखाई देता है—

अति ल्ये हरी सीता अति परबे च रामता ।

अति हनी मही रामो सका जैनसियंपरी ॥^७

अस्तु गोसाईं जी के अनुवाद की तुलना में देवमुनि-वृत्त अनुवाद जैसा कि निम्नांकित उद्धरणों से स्पष्ट है नगण्य है—

१ प्रयाग १३४८

२ आणव्यनीति पृष्ठ ३।२

३ भाषा पाण्डित्य पद्य ३

४ प्रयाग हिन्दी ४२३।१

५ आणव्य नीति पृष्ठ १४।१२

६ मधु आणव्य नीति शास्त्र, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, पद्य ३।२

७ साहित्य संग्रह सं० ३२३।२१ पद्य २।२

सीम हरी प्रति क्य तें, हुन राबण प्रति गर्बे ।
 प्रति बस राघव तक सौ नगर बन्धो लय सर्व ॥^१ (विष्णुमिरि)
 सीम हरी प्रति क्य ये इस सिर गये कु मात ।
 बरजोधन मये धमिमान ये प्रति बरजी लय बात ॥^२ (देवमुनि)

धनुबादा की सखता या नीरसता मूसप्रथा की सरसता या नीरसता पर भी निर्भर होनी है और धनुबादा के काव्य-कौशल पर भी। नीति-ग्रन्थों के धनुबादकों में प्रायः आणव्य नीति हितोपदेश पद्यतन्त्र भर्तृहरत नीतिघटक विदुरनीति आदि का आशय लिया है जो काव्यत्व की दृष्टि से उत्तमकाव्यों में परिलिखित नहीं होते। दूसरे, जिन विद्वानों ने उपर्युक्त ग्रन्थों के धनुबाद का योजा उठाया उनमें से अधिकतर काव्यकौशल-विहीन थे। यही कारण है कि अधिकतर उपर्युक्त धनुबादों की मुकाम्य करने में सरोच होता है। तो भी धनुबादका जो जनता में नीति की उत्तम बातें बोझ बहुत रोचक ढंग से प्रसारित करने का प्रयत्न बना ही उचित है।

३ शृंगारी कवियों का नीतिराज्य

पीछे उन कवियों और काव्यग्रन्थों का विवरण दिया गया है जिनका मुख्य विषय नीति था। अब रीतिकाल के कुछ ऐसे कवियों पर भी बहुरूपता कर लिया जाए जिनका प्रधान विषय शृंगार था। इस कवि दो वर्गों में विभाज्य है। प्रथम वर्ग बना प्रति बिहारी बनारस ग्वाल आदि कवियों का है जिन्होंने सामान्य रूप से शृंगारिक रचनाएँ कीं। द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत कामर मतिराम देव भिक्षारीदास, पद्माकर आदि कवि आते हैं जिन्होंने आचार्यत्व की दृष्टि से रीति-काव्यों का प्रणयन किया। प्रथम वर्ग के कवियों की रचनाओं में नीति के पद्य स्वतंत्ररूप से दृष्टिगत होते हैं और द्वितीय वर्ग के कवियों की कृतियों में रीति-विषयों के सङ्ग्रहों के स्पष्टीकरण के लिए उनकी रचना की गई है। परन्तु वे नीति-पद्य स्वतंत्र ही या सङ्ग्रह से प्रस्तुत उनमें कवियों के मुख्यरूप से शृंगारी होने के कारण कोई बिधायक अन्तर मसित नहीं होता। यहाँ पर इतना और स्मरणीय है कि इनके शृंगारी कवियों में धर्म धर्म्यात्म आदि विषयों पर भी स्वतंत्र पद्य तथा स्तुत पद्य रच हैं। कचवदास की विमान पीठा देव की अगद्वान-पञ्चीषी पद्माकर का प्रबोध-पञ्चाषा आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। इनमें भी कहीं-कहीं नीति के सुन्दर पद्य सिगाई देव हैं परन्तु वह इन कवियों का प्रधान स्वर नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये धर्म या पद्य भोग विमोह का जीवन व्यतीत करने के बाद मानो परचात्ताप के रूप में प्रणीत हुए हैं। इन ग्रन्थों की नीति यहाँ अन्त तथा अन्त कवियों की नीति से अधिक सादृश्य रखती है वही शृंगारिक रचनाओं की नीति का स्वर भिन्न है। यहाँ मुख्यतः शृंगारिक रचनाओं में

१ धनुषसङ्घट्ट पुस्तकालय, दिल्ली ४२११, पन् ३१२

२ याज्ञिक सङ्घ सं० ३२११११, पन् २१२

समय पाइ के उप धन मिलत सबैई धाइ ।

बिलसत न जानै याहि जो समथ मए पछताइ ॥^१ (रसनिधि)

बाणी के सुप्रयोग के विषय ग इन कवियों की लेखनी विशेषरूप से स्पष्ट रही है। सत्य भाषण का महत्त्व^२ प्रखपासन की प्रशंसा प्रतिभा मन की गहरी कटु भाषी के मुख में मृगमद रश्मि का प्रौचित्य रक्ष्य-भोपन आदि बाणी विषयक नीतियों का अनेकप्र उल्लेख दिखाई देता है। जैसे

कस्तुरी अपि नाभि बिधि, वाहि बियो मुग मोच ।

भे बिधि होउ तो बहि परी, जस बीमन के पीछ ॥^३ (वास)

सबजन मुख मीठे बचन, सहज न कहत बनगव ।

सबो कौन मुगन्य कौ भँवरन देत सिखाय ॥^४ (कुसुपतिमित्र)

उचित व्यवहार के लिए लोगों के हार्थिक भावों से परिचित होना नितान्त आवश्यक है परन्तु भोग प्राप्त मन की बात बिह्वल तक नहीं घाने देते। ऐसे प्रवचनों पर नीतिमान् मानव उनके नेत्रों से ही हृत्पथ भाव को भांप जाते हैं क्योंकि भावों के नाम की सार्थकता मनोगत भावों के प्राच्यमान में ही है—

जौ कसु उपकृत धाइ उर सो बे घाँसेँ देत ।

रसनिधि भाँसेँ नाम इन, पामी घरण समेत ॥^५ (रसनिधि)

शृंगारी कवि सरस्वती के प्रारम्भिक के धीर उसी की सेवा द्वारा जीविकोपार्जन करते थे। इसलिए इनकी कृतियों में बिद्या धीर साहित्य की बहु उपेक्षा दिखाई नहीं देती जो अधिकतर सन्त कवियों की रचनाओं में हम देख ही चुके हैं।

बिद्यारीवास के शब्दों में अनेक सम्बन्धी हमारी उतनी हितसाधना करने में समर्थ नहीं, जितनी एकाकिनी बिद्या कर देती है—

मित्र क्यों मेह निबाह करै, कुसुनारि म्हा परलोक मुबारन ।

संपति बान को साहित्य क्यों, गुब लौगन सौं गुब प्यान पसारन ॥

बास जू आसन सी यमहाइनि मालु सी है बहु कुसनिवारन ।

या जग में बुभिकंतन को बर बिद्या बड़ी म्ति क्यों हितकारन ॥^६

अन्त्याय बिद्याओं की अपेक्षा कवियों का ध्यान काव्य-कसा की धीर जाना स्वामाजिक ही है। यही कारण है कि इनकी कृतियों में काव्य-कसा की मूरि मूरि

१ सतसई सप्तक, रसनिधि सतसई, पृष्ठ २२३।६२६

२ सं० निधबन्धु देवमुपा (लज्जक, सं० २००३) पृष्ठ २४।१२

३ बिद्यारीवास काव्य भिखय (वेनपेडियर प्रेस प्रयाग, १९३७ ई०) पृष्ठ १५६।२६

४ कुसुपति मित्र रसरक्ष्य त्रितीय वृत्तांत पद्य २१॥

५ सतसई सप्तक, रसनिधि सतसई पृष्ठ १९६।३४४

६ बिद्यारीवास; काव्यभिखय, पृष्ठ ७८।३२

प्रशंसा दिखाई देती है। परन्तु उसमें प्रवीणता प्राप्त करने के लिए कठोर साधना अपेक्षित होती है। जो लोग साधना के अभाव में कहीं की हट कहीं का रोड़ा, मानमती ने 'कुम्हा जोड़ा' के अनुसार तुकड़न्ती करके ही सुकवियों की समता करने का साहस करते हैं उनकी बात जी ने लिखी उड़ाई है—

बुगनु भानु के धामे जती बिधि आपनी बोलिन्हु को मुन पैहै ।
 माकियो जाइ जयापिय सों उड़िबे की बड़ी-बड़ी बस्त बलैहै ॥
 हास अबै तुक जोरनहार कपिाह ज्यारन की तरि पहै ।
 ही करतारहु सों श्री कुम्हार सों एक बिना भ्रमरो वनि पैहै ॥^१

दिसासी नरेशों तथा सामन्तों के आश्रित रहने वाले इन रसिक कवियों की श्रृंगारिक रचनाओं में यदि काम की कुरसा कम ही दिखाई देती है तो कोई आश्चर्य नहीं। परोपकार तथा नम्रता की प्रशंसा और सोम तथा अधिमान की निन्दा अनेकत्र की गई है।^२ स्वभाव की अपरिवर्तनशीलता तथा गुणों के महत्त्व का वर्णन कई कवियों ने किया है। आत्मसम्मान की रक्षा की भावना भी अनेक कवियों ने व्यक्त की है परन्तु इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि गीरज का अत्यधिक ध्यान रखने पर कुम्हा-प्राप्ति की भी सम्भावना है। यथा—

(क) पर घब डोलत बीम सुँ जनु जनु जापतु जाइ ।
 बिदे सोम-बसमा बसनु सपु पुनि पको लजाइ ॥^३ (बिहारी)

(ख) प्यास सहत पी लक्ष्म नहिँ औषध घाटनि पान ।
 गज की गदबाई परी, गज ही के गर आन ॥^४ (रसनिधि)

पारिवारिक नीति—श्रृंगारिक कवियों की कृतियों का वातावरण साम्प्रत्य परिव्रता के अनुकूल नहीं दिखाई देता। जिस विसासमय समाज का यहाँ विस्तृत वर्णन किया गया है उसमें स्त्रियाँ घोर पुरुष अपने ही परिवार में सम्गुप्त नहीं हैं। वे अनेक उपायों से पारिवारिक मर्यादाओं को भंग कर कामवासना की तृप्ति के लिए उद्योगशील हैं। ऐसे वातावरण में भी कुछ इस यही है कि श्रृंगारी कवि विसासी सामन्तों के आश्रय में रहते हुए भी स्वकीया प्रेम की प्रशंसा परकीया-प्रेम की विषमता तथा कणिका प्रेम की यहाँ कहीं-न-कहीं कर ही देते हैं। जैसे—

गुप्त सपत्ति संतप्त सुपत्ति, स्पष्टिया सुख संभोग ।
 परकीया उपपत्ति दिपति, सपुसुख गर्भबियोग ॥

१ भिप्यारीदास, काम्यनिरुप, पृष्ठ ८३।७५

२ भिप्यारीदास प्रभावतो प्रथम खंड (भा० प्र० स० काशी, सं० २०१३), रस सारंग, पृष्ठ ८०।१५२

३ बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ ६७।१५१

४ सतबाई सप्तम, रसनिधिसतबाई, पृष्ठ २२३।६५६

प्रगट भवे परकीय अथ, सामान्या को संग ।

यम हानि यम हानि मुज, बोरो बुल इकंग ॥^१ (देव)

तत्कालीन परिस्थितियों में पुरुषों को स्त्रियों से प्रेम करने का उपदेश देने की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि वे तो पहले ही कामाच हो रहे थे। आवश्यकता थी तो उन्हें स्त्रयुता से बचाने की बिसय में क्रमदर के बर के समान स्त्रियों के संकेत पर गर्तन न करने लयें। इसी विषय में कुक्षपति का कवन है—

तिय दज होह न अतुर नर ते कुर्मप तिहुं भोक ।

फूमठ कामिनि पग परस, आनस्य मयम अशोक ॥^२

पत्नी के वीस सौन्दर्यादि गुणों तथा जीवन की सायकता रसी बात में निहित है कि उसका पति उससे परिनुज रहे। देव की सती नायिका को यों वीस देती है—

बारिये दस बड़ी घतुरै हो दके गुल देव बड़ीये बनाई ।

सुम्बरै हौ सुम्बरै हो समोनी ही सीस भरो रस अय सनाई ॥

राज्यहू बनि राजरुमारि अहौ, सुरुमारि न मानौ मनाई ।

नेसिक नाह के नेहू विना अकपूर हूँ अहै सबे बिकमाई ॥^३

असे सुन्दर व्यक्ति या वस्तु के प्रति प्रेम या सोम का स्फुरण स्वाभाविक है वैसे ही प्रिय व्यक्ति को सुन्दर रूप में देखने की इच्छा सहज है। इसी इच्छा के फल स्वरूप कमी-कमी पति अपनी प्रियतमा का प्रशंसा भी करने लगता है। परन्तु जब अग्य लोगों के असंकरण के बाद वह प्रिया के चरणों में महावर तक लगाने को उद्यत हो जाता है तब पत्नी अत्यधिक सम्मान की मागना की भी अपेक्षा कर पति की प्रतिष्ठा की भग नहीं होने देती। निम्नलिखित कवित्त द्वारा सेनापति इसी पारि वारिक मर्यादा की रक्षा की स्मृजना करते हैं—

फूमन सौं वाल की बनाई गुहौ येनी राज

आल बीनी बेरी मुगन्द की अक्षित है ।

अङ्ग-अङ्ग भूयन पगाइ अबमयन अ

धीरी निज कर के लबाई अक्षि हित है ॥

हूँ के रस दस जब बीजे सौं अह्वार के

सेनापति त्याग पहौ चरन लक्षित है ।

भूति हाम नाम के लगाइ रही अक्षिग सौं,

कही मानपति यहू अक्षि अगुक्षित है ॥^४

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं इन काव्यों का वातावरण प्रायः पातित तथा

१ देव प्रेनारय, दोहा ७-८

२ कुक्षपति नियम रसदृश्य, तृतीय बुताग ८७ ११८

३ निघण्टु, वैशुषा, पृ० १४८।२३४

४ सेनापति कवित्तरत्नाकर, द्वितीय तरंग, पृष्ठ ४३।३६

हिंसि निंसि जाने तासों निंसि के जनाबे हेत
 हित को न जाने तासों हितु न विसाहिये ।
 होय मगकर तापे हुनी मगकरो कोबे,
 सयु छु बरु जो तासों सयुता निबाहिये ।
 “बोधा कवि” नीति को नबेरो यही माति ग्रहै,
 प्राप को सराहै ताहि प्रापहु सराहिये ।
 बाता कहा सूर कहा सुम्बर सुजान कहा,
 प्राप को न जाहै ताके वाप को न जाहिये ॥^१

इन वाक्यों में स्त्री का नापीत्व मातृत्व आदि की दृष्टि से तो प्रायः कोई सम्मान सजित नहीं होता परन्तु स्वकीया परकीया व सामान्या नायिका के रूप में उसके रूप-सौन्दर्य के वर्णन से प्रायः सभी काव्यग्रन्थ प्रपूर्ण हैं। जब तक वह यौवन सुमन रूप-सावध से युक्त है और कवि तथा उसके आश्रयदाता भी युक्त नहीं होते तब तक वह मदन की बाड़ी फूलों की भासा करुण की पाप आदि विशेषणों से सम्मानित की गई है। परन्तु उसके सजित-यौवना तथा इसके अरुण हो जाने पर वही नारी परमार्थ-मय में कष्टक-रूप हो जाने के कारण छाया-ग्रहिणी राक्षसी से कम प्रतीत नहीं होती। परन्तु स्मरण रहे कि शृंगारी रचनाओं में उसका अप्यरा-रूप राक्षसी रूप की अपेक्षा कहीं अधिक चित्रित किया गया है। क्रमशः दोनों का एक-एक उदाहरण नीचे—

सोभा सब जोवन की, निधि है मुहुलता को
 राबे नय नारो नारो मदन की बारी है ॥^१ (सेनापति)
 या भव-पारावार को, जसेधि पार को जाइ ।
 सिय-छवि छाया-ग्रहिणी, प्रसे दीक्षीं धाइ ॥^२ (विहारी)

तत्काल दोनों ही रूप माय नहीं हैं प्रथम में वह वासना-भूति का साधन मात्र है और द्वितीय में मोक्षमाग की बाधिका। पार्श्वस्थ के प्रमों का सम्यक निर्वाह करने वाली और तप त्याग तथा दामा आदि गुणों से समन्वित सती स्त्री की ओर इन कवियों का ध्यान कम हा गया है।

यद्यपि शृंगारी कवियों का प्रम-वर्णन पति-पत्नी तक ही सीमित न रहने के कारण और समाज में व्यभिचार का परोक्ष प्रचारक होने के हेतु गई ही कहा जायगा तथापि उसमें प्रम के विभिन्न पक्षों पर जो सुन्दर काव्य रचना हुई है वह प्रम-विषयक नीति की दृष्टि से उपेक्ष्य नहीं। उस से प्रमी धीरों को कई सुन्दर शिक्षाएँ

१ कविता कोशुको, भाग १, पृष्ठ ५१९।८

२ सेनापति कवित्तरत्नाकर, प्रथम तरंग, पृष्ठ ३।१३

३ विहारी रत्नाकर पृष्ठ १७८।४३३

प्राप्त होती है— जैसे— प्रमथ पर बसना तलवार की चार पर बसना है प्रेम में बर्न तथा जातपात की बाधा नहीं पड़नी चाहिए प्रारम्भ किये हुए प्रेम को सोकराज या प्राणभय के कारण प्रथमी ही छोड़ना अनुचित है, पापासुहृदय प्रियतम से किया हुआ प्रेम दुःखदायक होता है जिससे प्रेम हो जाय वह सवोप होता हुआ भी प्रिय सपता है सम्भ प्रमी को चुन्नी करना उचित नहीं आदि। इन्हीं नीतियों से सम्बन्धित कुछ पद्य दृष्ट्य हैं—

(क) “कवि बोवा” बनी घनी नेजहु ते घड़ि तापे न चित्त डरापनो है ।
यहु प्रेम को पंच करान महा तरवारि की धार पे पावनो है ॥^१

(ख) जगत भौ सुभात कहा हिण्डू भौ मुसलमान,
जाते कियो मेहु फेर ताते भजगो कहा ।
या तो रंग काहू वे न रंगिये सुजान प्यारे
रंगे तो रंगेई रहे फेर तगनो कहा ॥^२ (ग्यास)

(ग) उयं सोप जस सेत है, जिना उयं कुछ रेत ।
कठिन कुहं विधि कमल फौ, करे मीत सौं हेत ॥^३ (रसनिधि)

चूँकि शृंगारी कवि प्रायः राजाओं आदि के प्राण्य में रहते थे इसलिए इन्हें स्वामी तथा सेवकों के सम्बन्ध में बहुत कुछ देखने-सुनने का अवसर समाया ही मिल जाया था। इन विषय की आत्मामृत्ति इनके अनेक काव्यों में प्रचुर मात्रा में दिखाई देनी है। पराधिन प्यवित प्रायः “बा-सा रहता है, उस अनक खरी-खोटी भी सुननी पड़ती है पर श्रुत होने की आशंका भी उसक मन में बराबर बनी रहती है इसलिए इन कवियों में परमुखापेक्षा की निन्दा ही की है। मित्रारीवास जस स्वतन्त्र भृग के भाग्य की यों सदाहता कर्म है जिसे जीवननिर्वाह के लिए पराया मुँह नहीं टाकना पड़ता—

काहू धारत को न पखरूँ निहायों मुच,
काहू के न आवे दीर्ये को नेन तियो ते ।
काहू को न रिम कर काहू क रिये ही जिन,
हरो तिम अस्तन बस्तन छोड़े तियो तें ।
“बस्त” निज सेपक सखा सौं अति दूर रहि,
सूई सुय भूरि को हरय पूरि रिपो तें ॥
सौयत मुदधि जाकि जोबतो सुदधि भाग्य
बन्धय कुरंग कहु कहा तन तियो तें ॥^४

१ कविता-जीनुयो, भाग १, पृष्ठ २१२।१

२ " " " " , २३२।२

३ सतसई सप्तम, रसनिधि सतसई, पृष्ठ २२५।६७२

४ मित्रारीवास काव्यनिर्घण, पृष्ठ १२४-२६

छवरपूति के निमित्त पर-सेवा निस्सन्देह निम्न कर्म है। परन्तु सब पर-सेवा की क्या-हृष्टि एक-सी नहीं पड़ती। इसलिए बिबसत्त कभी-कभी सेवा-वृत्ति स्वीकार करनी ही पड़ती है। ऐसी दशा में सेवक का यह कर्तव्य हो जाता है कि स्वामी की उक्त-मन से सेवा करे और स्वामी पर कुछ सकट या पड़ने पर उ का साथ न छोड़े आवश्यक हो तो प्राण-त्याग करने में भा संकोच न करे—

बड़ा भयो जो लखि परत दिन हस कसुमिस्त माहि ।

समुन्नि बेलि भन भैं मनुप ए गुलाय के प्राहि ॥^१ (विक्रमसिंह)

साथ ही प्रायःदाता की आज्ञा के समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह विवेक-सूय्य न हो क्योंकि अधिवेकी राजा प्राधितों के गुणदोष की परीक्षा में प्रसमर्थ होन के कारण गुणी सेवकों के हृदय में शून्य के तुल्य सटका करता है। धनानन्द के मत में तो ऐसे हृदयाघ स्वामी की सेवा स्वप्न से भी अच्छी नहीं—

मही घुब सम गने, हंस-जग मेव न जाने ।

कोकिल काक न जान, कांच मनि एक प्रमाने ॥

बभ्रन-डाक समान राम-कपी सम तोने ।

बिन विवेक गुन-बोप मुकु-कवि ध्यौरि न बोले ॥

प्रेम भेम हित बतुरई के न बिचारत नेहु मन ।

सपने हूँ न बिसदियै दिन दिन दिन “धनानन्दन”^२ ॥

जो भोग मृग्यों से कड़ा परिभ्रम कराते हैं जो गुणी का धनादर और निर्भुण का भ्रान्त करते हैं जो निर्बय तथा स्वार्थी हैं, जो प्रादम्बरमय जीबन व्यतीत करते हैं परन्तु प्राधितों की प्रावक्ष्यकताएँ पूर्ण नहीं करते उनकी इन कवियों ने अपनी ध्याय्य मयी उचितियों और प्रत्योक्तियों द्वारा कृप खबर ली है। जैसे—

(क) पावक मैं बलि प्रांच भगे न, बिना छत जाड़े कि पार दे पाये,

भीत सों भीत, धनीत धनीत सों, दुबज सुभो, सुज मे पुज पाव ।

जोगी हूँ प्राठ हु बाम जगै, धर नामनि कामनि सों मनु साबे ।

प्राधिसो प्राधिसो सोधि सबे फरा हस्य कर तव मुख फहाबे ॥^३ (देव)

(ख) भीछन बरख ध गूर धरि, मूत मूत फस धूर ।

तबिर- सुक सेसर पयो, मई प्रास-धकचूर ॥^४ (विक्रमसिंह)

(ग) बड़ा भयो “मन्तिरान” हिय औ पहिरी नन्य भास ।

सास मोल पावे गहौं पास गुंज की मास ॥^५

१ सतसई सप्तक, विक्रमसतसई पृष्ठ ३६८।३२६

२ सं० विश्वनाथ प्रसाद, ‘धनानन्द’ सुभाषित पृष्ठ २१।२८३

३ मिश्रकण्ठु : देवसुधा पृष्ठ २७।२३

४ सतसई सप्तक : विक्रमसतसई, पृष्ठ ३६८।३३६

५ “ ” मन्तिरान ” ” १२०।४९

समान में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी उच्च बातियों के लोग भा थे और नीच बातियों के भी । इन कवियों ने इन काम-भूसक भेदों को प्रथम नहीं दिया । इनमें यह संकीर्णता दिखाई नहीं देती जिसे कुम्भनवाच ने एक पद में यों व्यक्त किया है—

जिनको मृग देखे बुझ उपजत तिनको करिषे परी समान ।^१

साम्प्रदायिक तथा जातीय भेद भावों को ये दूर करने के ही पक्षपाती प्रतीत होत हैं—

(क) हिन्दू में क्या धीर है, मुसलमान में धीर ।

साहिब सक्का एक है, व्याप रहा सब धीर ॥^२ (रसनिधि)

(घ) हू अपने रज-धौस ही ते, तिनसे हू सबै छिति टार सै छाड़े ।

एष-सै देखू बछू न दिसैतु ज्यों एठै उन्हार कुन्हार के भाड़े ।

सापर उष को नीच दिचारि, घुषा बकि पाब दड़ावता भाड़े ।

बेदन मूढु कियो इन बूनु, कि धूनु अपासन पावन पाड़े ॥^३ (देव)

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कवियों की नीति बात-पात और साम्प्रदायिक भेदभाव के विषय में सत कवियों ने समान ही है । परन्तु इनका सात्पर्य यह नहीं कि ये समाज के सभी लोगों को सर्वथा समान समझते थे । इनकी दृष्टि में मनुष्यों के गौरव या शोच का कारण उनकी समृद्धि, वदायता तथा धर्म गुरुओं का भाव या प्रभाव था । इस आधार पर भेद भाव को स्वीकार कर इन कवियों ने नीति के अनेक छन्द रचे हैं । जैसे—

धति प्रयासु धति धीररी गरी कूप राव बाढ़ ।

सो ताको सापर जहाँ, जानी प्यास बुझाह ॥^४ (बिहारी)

रहा मनो जी सिर पयो, फाहू तुम्हें कर भाव ।

भोरपता विन धीर तुम, जहाँ न रहीं नाब ॥^५ (रसनिधि)

अधिकतर शृंगारी कवियों का व्यवसाय ही काव्य-निर्माण था । काव्यकरता में बौद्धस प्राप्त करने के पश्चात् य धनी-मानी नरेश-सामन्तों की शोच में निकसते थे और उन्हीं के आधिष्ठ रहकर सुलभुषक जीवन व्यतीत करके दल्लुफ़ थे । कई भाव्य धासी कवियों को उदार आश्रयदाता मिल जाते थे और कई कम में व्यथ ही इतर उद्यर मारे मारे फिरते थे । अनेक आश्रयदाता ऐसे ही होत थे जिन्हें हीरे और फरर को पहचान नहीं थी । उनके यहाँ मुकवियों का तो सम्मान नहीं होता था परन्तु कृक-

१ रामचन्द्र सुयत हि० सा० ६० पृ० १७८

२ सतार सप्तम, रसनिधि सप्तमई, पृ० १७८।६७

३ विषयसु बेबनुषा पृष्ठ २१।२

४ तामा तपक बिहारी सातमई, पृष्ठ २२।४११

५ " " रसनिधि सप्तमई पृष्ठ २२२।६४१

कवियों की घण्टी आबभगत की जाती थी। कहीं पर गुणी कवियों के पहुँच जाने पर सामान्य तुककों की उपेक्षा कर दी जाती थी तो कहीं पर अगुणत भोग तुककवियों की आबहेमता कर देते थे। ऐसी परिस्थितियों से प्ररिष्ठ होकर इन अंगुणी कवियों ने गुणी, निर्गुण और अगुणतों के विषय में पर्याप्त और सुन्दर सूक्तियाँ रची हैं। जैसे—

कर लै, स्रंघि, सराधि हूँ रहे सवे पधि मौनु ।

गंभी अथ गुसाव लै, गवईं पधुणु पौनु ॥^१ (बिहारी)

न्यायी कष्ट फल मोठी विचारिक, बुरि लै दीरे राध लसचाने ।

हाय लै चाधि लै राधि बपी निसबादिन सोलिस सख अलपाने ॥

'बास लू' गारुक पीनहो म लौगहो लू गारुक बीहो पगारि बुकामे ।

रे अङ्क जेहरी गाँव मंदारे में कौन नयादिर के पुन बाने ॥^२

बुद्ध मन सोल मिभाइ लै पुन इकठे कर हिर ।

ये गौड़ अथ दाबरे पड़े नाब में छेर ॥^३ (रसनिधि)

महि कामस गुन जामु को सो तिहि निरत चाइ ।

गज मुक्ता लजि लै अथम गुंजा सेत जठाइ ॥^४ (विभक्तिसिंह)

इन कवियों ने सज्जन और दुर्जन के भेद के विषय में भी खूब लिखा है। दुर्जन असंगति के प्रभाव से भी नहीं सुधरत, वे अरुणागत को भी विदबासभात द्वारा मार बासते हैं वे दुष्टता का परिस्थाप कर दें तो भी उनसे अनिष्ट की सम्भावना बनी रहती है, चादि विषयों पर इनकी सुन्दर सूक्तियाँ प्राप्त होती हैं। एसा होते हुए भी और सज्जनों के अनेक गुणों की प्रशंसा करते हुए भी अपनी प्रसन्ननीय व्यावहारिक दृष्टि के कारण ये कवि सौजन्य में अति का नियम ही करते हैं क्योंकि अगत में पूजा कुरों की और उपेक्षा सज्जनों की होती है जैसे—अंगम में रया बक बूझों की और काट-छांट सरल बूझों की ही की जाती है। अस्तु इस विषय में अविभक्त कहकर मिलायी राध का ही एक कवित्त उद्धृत करना पर्याप्त होगा जिसमें उन्होंने रिक्त पाश्चात्तमी का प्रथम सेकर सज्जन और दुर्जन दोनों के ही स्वभाव का सक्षप में बर्णन कर दिया है—

सुजस बनावे मपतन ही से प्रेम करे,

पिया अति ऊबरे भक्त हरि नाम हूँ ।

दोन के दुजन बेरी आपनो सुजन सखे,

विप्र पाप रख लन मंग मोहूँ पाम हूँ ।

१ बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ २५७।६२४

२ मिसाहीरास प्रयादली प्रथम रांड रससारांग, पृष्ठ ८०।३४३

३ सतसई सप्तक, रसनिधि सतसई पृष्ठ २२२।६४८

४ ,, विभक्तसिंह पृष्ठ २६८।३६३

जग पर बाहिर है बरन निबाहि रहै,
बेब बसन ते सहल बिसराम हूँ ।

'बस जु' पताये जे बसजबन के काम हूँ,
समुझि देखो एहँ सब सबजन के काम हूँ ।^१

धार्मिक नीति—धर्म के विषय में इन कवियों का दृष्टिकोण सम्य-कवियों के सर्वथा विपरीत है। यद्यपि सम्पदा-जग्य दोषों की इन्होंने जपेक्षा नहीं की तथापि सम्पत्ति के महत्त्व को इन्होंने मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। सम्पदा से प्राप्त प्रतिष्ठा तथा उसके प्रभाव के कारण सम्य धर्ममार्गता का सुन्दर पुरय देव में इस प्रकार विनिवृत्त किया है—

संपत्ति में एँठि बँठि चौतरा मरालत के,
बिपत्ति में रँहि बँठे पाय सुनसुनिया ।
जेतो सुक संपत्ति इतोई सुक विपत्ति में
संपत्ति में निरजा विपत्ति परे बुनिया ।
संपत्ति ते बिपत्ति बिपत्ति हू ते संपत्ति है,
संपत्ति श्री बिपत्ति बराबर के गुनिया ।
संपत्ति में काय काय बिपत्ति में भाय भाय,
काय काय भाय काय देखी सब बुनिया ॥^२

बस एक मनुष्य भीविठ है सब एक तन और पेट की भाबरयकताएँ उसे किसी न-किसी रूप में विन्यासस्त रहती ही हैं। इन्हीं धार्मिक भाबरयकताओं की पूर्ति के लिए वह विविध वेप धारण करने पर विवश हो जाता है। वेब जीवन में धर्म की धनिकार्यता और कतिपय वेपों का यों कारण करत है—

कहूँ जोगी भेष के जगाजत जगत कर्तू,
सन्वासी बन्हाय सठ सयासी ठगो फिर ।
बैरागी के रूप कर्तू बंगम बनूय रह,
स्वाय हू बनाय संय रंग जगदी फिर ।
दुपा छोम छीन कर्तू पंडित प्रजीत कर्तू
कर्तू हरि रंग हीन तापम तपो फिर ।
सौम की तापेट काम प्रीय की बपेट पेट,
पेट की चपेट सयें बेटक भयो फिर ॥^३

परन्तु जहाँ सारी मनुष्य को विभिन्न शिक्तियों से मुक्त करने में समर्थ है, वहाँ हम बात की भी सम्भावना विद्यमान रहती है कि मनुष्य उसके धार्मिक के कारण धनिकार्य और मय क गत में गिरकर जीवन को गल्ट भ्रष्ट कर बैठे। इतलिय

१ कविता कीमूरी, भाग १ पृष्ठ ४०९।१

२ ३ बेबातक जगद्वान पञ्चोसी पृष्ठ १७ २४

ये कवि पाठकों को इस धोर भी सतर्क रहने की प्रेरणा करन स नहीं भूकते—

अद्भुत या मन को तिमिर मो पै कहीं न जाय ।

ज्यों ज्यों मनिमन अगमगत त्यों त्यों अति अविद्या ॥^१ (मतिराम)

कनक कनक तैं सौयुगी, मादकता अविद्याय ।

जहि जाएँ बीराइ इहि पाएँ ही बीराइ ॥^२ (बिहारी)

कई अविद्याकी सोग धनमय्य को ही जीवन का उद्देश्य बना बैठे हैं । न के अछटा खाते पहनते हैं और न जीवन को सुख-सुविधाओं से सम्पन्न करते हैं । उनकी दृष्टि सलपति और करोड़पति बनने पर ही बेगिअ रहती है । ऐसे लोगों को बिहारी यों मगुर अपदेण देते हैं—

मीत स मीति गनीत ह्य, जो परिये पगु मोरि ।

जाएँ करबे जो बुरे, तो मोरिये करोरि ॥^३

अर्थात् करोड़पति होना भी बुरा नहीं परन्तु उरकी अवेला भी जीवन-स्तर तथा प्रतिष्ठा को ऊँचा रक्षना नहीं अष्ट है ।

उदाहरण की प्रवृत्ति तथा कृपणता की निन्दा इन राजाभित कवियों का अत्यन्त प्रिय विषय था । ये अपनी कविता द्वारा इस बात की प्रेरणा करते रहते थे कि जिनके पास सम्पत्ति हो उन्हें गुणियों की संगति से मुण-भारण तथा यत्नोपाजन अवश्य करना चाहिए ।^४ जो सोग सम्पत्तिधामी होकर भी सत्कार्यों में मन का सम्म्यय न करते थे, उनका निर्मम परिहास करने में इन कवियों ने विशेष निपुणता दिखाई है असे—

अति सरयस्व है हिरस्व करि रासे बिन्दु

अति अरु ताकी अत अडि सरसात है ।

संकर की सीस है के रायन अने संकर न,

मयो तिहुँ पुर को अरुकर विजात है ।

“अस कवि” राम र विभीषण को संकराअ,

तोर सई संक आकी अजो अंक घात है ।

सुमन की नाय अतहुँ पै पाटि कूव जात,

दान्य की नबला पहाइ अडि अत है ॥^५

इतर-आखि-विषयक नीति—ये कवि प्रायः उन राजाओं तथा सामन्तों के आशय में रहते थे जो युद्ध आशय आदि में अगत रहा करते थे । इसलिये इनक

१ सतसई सप्तक, मतिराम जासई पृष्ठ १२२।६४

२ बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ ८२।१२२

३ " " " १२८।४८१

४ कविता कोमुदी, भाग १, पृष्ठ ५१२।६

५ सं० अदिबिकर अासरत्नावली प्रयाग १२४५ इ०, पृष्ठ ४५।७६

शृंगारिक काव्यों में तो ग्रहिणा जीवदया भादि पर विशेष बल सञ्चित नहीं होता, परन्तु इनकी आध्यात्मिक कृतियों में इन विषयों का प्रभाव नहीं है। ऐसा होते हुए भी इन विषयों के वर्णन की जो प्रभुरता जैन कृतियों में हम देख सके हैं वह यहाँ दृष्टिगत नहीं होती। जीवदया तथा मूरता-नन्दा के विषय में इनके कुछ पद्य इष्टम्भ हैं—

भीता कसक कसाव को, कहि हिसाव कहूँ फौन ।
कसके हिये कसाय जो, छुरी पसारि फौन ।
होते जो मैं असत कहूँ, सदा पाम के बान ।
एहन न बेते बे-बरब फाहूँ लग में पाम ॥^१ (रसनिधि)

प्राणिमान के मन पर मोह का दतना बना आवरण छाया हुआ है कि अपने माणों को अत्यन्त प्रिय भागठा हुआ भी अन्य जीवों के प्राण सेने में संकोप नहीं करता—

घाने कहावत है अग में जग खान नहीं कम फाति छरी जो ।
आपुन काल के जाल पयी अरब वाहत और भी राखिरी को ।
बेव गु बीरत डुरि ल मीच मयीच न देखत मीच रिरी को ।
होँ तपीँ स्वाम को स्वाम बिभी को बिभी तक बुहा जो बुहा रिरी को ॥^२(बिध)
मिथित भीति—इन कवियों ने निरस-देह अपनी आध्यात्मिक रचनाओं में ही नहीं शृंगारी रचनाओं में भी कई स्थलों पर अहंता को सत्य और संसार को मिथ्या कहा है। जैसे—

(क) तुम भर कम मेमर सिद्ध कीर तू काहे को होत समाने ।
घात तिये यहि कहे मैं हूँ बहुत मूखे निरसत गये विमलाने ॥^३ (मिथारीदास)
(ख) मैं समुझ्यौ निरभार यह अनु काँचो दाँच ली ।
एकै कपु अहार, प्रतिबिम्बित सखिमनु ज्यौ ॥^४ (विहारी)

तथापि इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वे यहाँ के आभोद प्रभोद तथा भोग विनाश को हेतु समझते थे। बरतुत इनका मन तो ऐहिक विषयों में ही अधिक रमता या उपर्युक्त प्रकार के पथ तो इन्होंने निर्णय भाग धाम्तरस भादि के उदाहरणों के रूप में ही लिये प्रतीत होते हैं। कुछ एक कवि ऐत भी हैं जिन्होंने स्वयं, गरक मोय भादि का मसीन उड़ाते हुए इसी लोक में उतरी विद्यमानता का प्रतिपादन किया है। वेदावदास के शब्दों में वेद्योक्त मुक्ति का स्वरूप यह है—

१ शतसई सप्तक, रसनिधि घासई पृष्ठ २२३।६७८, ६७९

२ बेपनासक, अग्रहर्षन दक्षिणी पद्य १५

३ मिथारीदास अम्बावती पद्य १, रासाराज, पृष्ठ ८०।३४१

४ बिहारी रासाकर पृ० ७८।१८१

पश्चित्त पुत सपुत सुधी पतिनी पति-श्रेय-वर-पत्न भारी ।
 पाने सये गुन मार्ग सब बन पानबिषाम क्या करपारी ॥
 'केसव' रोगनि ही सों वियोग संशोय सुभोगन सों मुञ्चकारी ।
 साँव कहै अण माहि नहै बस मुनित यहै बहूँ देह विचारी ॥^१

इसी प्रकार केसवदास ने उस मनुष्य को नरकस्थ कहा है जिसका बाह्य कुपासी जाकर भोर, भित्त बपस भिन्न मतिहीन स्वामी रूपण धीर भोजन पराधीन हो ।^१ बाह्य उत्तम पक्षो को धयबाध के रूप में भी रक्षीकत किया जाए तथापि इस बाध का प्रतिवेध तो बठिन हो है कि केसवदास ऐहिक सुखपुण्य जीवन को स्वर्ग से धीर दुःखपूर्ण जीवन को नरक से कम न मानते थे । महाकवि देव की तो स्वयं-नरक पाप पुष्य श्राद्ध-तर्पण पुनर्बन्ध आदि में कोई भास्वा ही नहीं थी । वे तो इनमें भास्वा रखने बासों तथा इनका प्रचार करने बासों को स्पष्ट द्वा-वा में ही मुक्त धीर कपार कहते हैं—

(क) पापु न पुण्य न मर्क न स्वर्ग मरो सु मरो फिरि कोमे जुनायो ।
 गुद ही देह पुरामन याधि सबारनि लोग मसे भुरकायो ॥

(ख) जीवत तो बरा भूत मुनौत सररि महा धरक्य हरे को ।
 एसी बसायु बसायुन कौ बुधि सायन बैत सरिय मरे को ॥^२

स्वाप्त भी उसी जीवन को भ्रष्टा समझते हैं जिसमें मनुष्य जाए पिए, भूमे फिरि धीर यवेष्ट आमोद प्रमोद में मग्न रहे क्योंकि बार बार तो जन्म नहीं मिलता—
 दिया है पुत्र ने पुत्र पुसी फिरि ग्यात कयि,
 दाव पिघो बेब सेय धही एह भाता है ।
 भाये परबाना पर बसे न बहाना इहाँ,
 नकी फिरि जाना फेरि घाना है न जाना है ॥^३

जहाँ स्वाप्त कवि ने सुखमय जीवन के लिए व्यय से कुगनी या कम-से-कम सबार्थ प्राय सुन्दर नारी बिद्वान् की संगति आदि को^४ आवश्यक ठहराय है वहाँ रस निधि हुक्के को नी विस्तृत नहीं कर पाये हैं, क्योंकि वह सन्धा सगा अतिवम हाँस तक साथ देता है—

हुक्का सों कहु जौन प, दात निपण्णो दात ।
 पापी स्वाप्ता छूत है सगी स्वात के पाप ॥^५

१ केसव ग्रन्थात्मो लम्ब १, उपनिषदा, पृष्ठ १२२।३०

२ " " " " " १२२।३४

३ वैकुण्ठा, पृष्ठ २२।११, १०

४ कविता पौमुखी नाग १, पृष्ठ २६३।१४

५ कविता कौमुखी, नाग १, पृष्ठ २२३।१०

६ सप्तमं तप, भाषि सप्तमं, पृष्ठ २२०।६ २

मृत्यु कल्पियुग समय का फेर भवसर का महत्त्व आदि विषयों पर इन कवियों के विचार जैसा कि निम्नलिखित उद्धरणों से स्पष्ट होता है प्राचीन कवियों के समान ही हैं—

(क) या जग धीब यये नहि भीपु व, से उपच ते यही मे मिताने ।

जय कुरुष्य गुनी निगुनी से जहाँ एनमे स तहाँई किन्ताने ॥^१ (देव)

(ख) देखो कसिबू के राजनीति को समझो यह,

यासो कियो धाय हर एक की प्रकृत में ।

जानबान वारे पालपाल लिए बौध्न हे

तान गान वारे बडे धोबत महल वै ॥^२ (ग्यालकवि)

(ग) मरत प्यस्त पिजरा पर्यो सुभा समय के फेर ।

धारब वै है बोलियतु बाइतु बलि की बेर ॥^३ (बिहारी)

(घ) चिन झोसर म सुहाई तन चबन स्याबै गार ।

झोसर की नीकी भवे मोठा सी सी वार ॥^४

माध्य तथा पुरुषार्थ दोनों ही विषयों पर इन कवियों ने कविता की है परन्तु अष्टक की बसबता में जिनकी धारणा विकारी होती है पुरुषार्थ में रतनी नहीं। ऐसे लगता है कि बरिफ कास के पश्चात् उद्योग में विषयास का क्रमशः ह्रास होता गया। जहाँ वेर तो कहते हैं कि—

कृत में बहिरसे हस्ते ज्यो में सध्य आहित ॥^५

वहाँ केसबदास पचाकर आदि कवि कल्पियुग में ही नहीं चारों युगों में भाग्य की प्रबलता को इन सन्धों में स्वीकृत करते हैं—

(क) दानि कियो दतिराज बँयो कर सुसी के सुन क्यात बसी है ।

काम पर्यो जय, कास पर्यो संकि, सेय बरे बिय हासाहसी है ॥

दिबुमप्यो बिना कापी मप्यो कहि ॥केसव इन्द्र सुधासि बसी है ।

राम हू की हरी रायत वाम धरूँ जुग एक अरिष्ट बसी है ॥^६

(ख) हानि भव भाग ज्यान बोपन प्रकीपन हू

भोग हू विवोप हू संवोप हू अवार है ।

१ देवगुप्ता पृष्ठ ३५३७

२ कपिला दीमुडी भाग १ पृष्ठ ५३२७

३ बिहारी रत्नाकर, पृष्ठ १७६१४३३

४ कतसः कपल घटनिधि कतसः पृष्ठ २२०१६२१

५ अर्थ-वेरे बहिर हाथ में पुदवाप है धीर वाम में दिव्य—(अपवचन ७३५०८)

६ केसवर्षयाजी लई १ कविप्रिया पृ० १२६१५४

कौम बिन कौम छिन कौन घरी कौम ठौर,

कौन जाने कौम को कहां पाँ होनहार है ॥^१ (पद्याकर)

इसी प्रकार प्रदुष्ट के भय से बरपराने वाले इन कवियों का विश्वास यह था कि मिर्जोम मेगी शोम रहित पर्यंत शोकपरा-हीन तपस्वी भयक यह मिच्छकपट स्नेह, भक्तिक वष धनहीन विद्या धामस्व-गम्य दूत निम्पसन दूत और नीरोग कामा इष्ट अन्न के पुरोपाय से प्राप्त नहीं होती पुत्रवशित पुण्या क प्रणय से ही मिलती है ।^२

इन विषयों के प्रतिरिक्त द्विराज्य मे प्रजा के दुस्सह दुःख^३ न्याय क सस्त्र से जनता का बचीकरण^४ राजा पाप और रोग द्वारा निर्बल का ही दमन^५ नई वस्तु का पुरानो होना और पुरानी का नई बना रहना^६ जिसके विना क्या शोमा नहीं देता^७ भिक्षुकार्य कायं^८ प्रादि अनेक विषयों का न काव्यों में मूर्खर पीति से बर्णन किया गया है । उदाहरणार्थ निम्नांकित सर्वेषा इष्टम्^९ है जिससे बच्चदास ने अनक गह्रां बातों का उल्लेख किया है—

पाप की तिद्धि सदाबिभ दृष्टि पुकीरत कायमी प्राप कही की ।

दुख्य को दान जु सुतक र्हाग जु बासी ली संतति सतत खेकी ॥

बेटी को मोहन, भूयन राठ को केसय प्रीति सदा, पर-ती की ।

भूम में लाज बया अरि ली अद घान्हन वाति सों भीति न भीकी ॥^{१०}

संक्षिप्त प्रान्तोचना

पूर्वदर्शी कवियों का प्रभाव—उपयुक्त विवरण तथा उद्धरणों से स्पष्ट है कि मृगारी कवियों का नीतिकार्य मात्रा में अधिक न होवा हुआ भी अपने ऐहिक दृष्टिकोण तथा सरसता के कारण समाप्य है । भय इसकी मौलिकता पर भी दृष्टपाठ कर लिया जायदा। इस में सन्देह नहीं कि इन मृगारिक कवियों के स्पृष्ट नीति-दर्शों में धारमाणुभूति की मात्रा प्रत्यधिक है तथापि इस बात का प्रत्याख्यान सम्भव नहीं कि इन्होंने संस्कृत तथा हिन्दी के पूर्ववर्ती कवियों से भी सहायता ली है । जैसे—

(क) संस्कृत-कवियों का प्रभाव—प्रतिक्रम मृगारी कवि संस्कृत के विद्वान् थे और उन्होंने संस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया था । साथ ही यह भी स्मरणीय

१ पद्याकर पद्यामृत, प्रबोधपद्यासा पु० २३१

२ मिजादीबात काव्यनिर्णय, पु० १६१।२१

३ दिहारीरत्नाकर पु० १४८।३५७

४ दुसपति निम्न रस रहस्य, द्वितीय वृत्तान्त, पद्य ३०

५ दिहारी रत्नाकर, पु० १७६।४२६

६ सं० देवारामाय पुस्त : कवियों की श्की, मतिराम पु० १४१।१०

७-८ केदारप्रत्याबन्धी, पं० १, कविप्रिया, पु० १६०।३, १६०।२, १७४।७७

है कि सुकवि होने के नाते वे दूसरों के भावों तथा भाषा को ज्यों-का-त्यों ग्रहण करना भी उचित नहीं समझते थे। यही कारण है कि इनके स्फुट नीति-वचनों में वहाँ कहीं पूर्ववर्ती कवियों से कुछ भाव लिये गए हैं वहाँ इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि उनके पद्य अनुवाद-भाष्य ही न बन जाएँ। जैसे किसी सरकृतकवि की सूक्ति है—

न सा समा यय न सन्ति बुद्धाः बुद्धा न ते ये न बरन्ति धर्मम् ।
 धर्मो न न धर्म न नास्ति सत्यम् सत्यं न तत्तच्छ्रमतानुविष्टम् ॥^१

केचनदास ने इसी पद्य के भाव को कमालकार के उदाहरण में एक सबदे में कुछ प्रकार उपन्यस्त किया है—

सोचति सो न समा जह्ये बुद्ध न, बुद्ध ग ते नु पश्ये कस्यु नाहीं ।
 ते न पश्ये पित सायु न सापित, बीह ब्या न द्विपे स्मि माहीं ॥
 सो न ब्या धु न धर्म धरं धर, धर्म न सो जह्ये दान बुपाहीं ।
 दान न सो जह्ये साध न केतव, साध न तो नु बसे उम साहीं ॥^२

दोनों पद्यों की तुलना से स्पष्ट विरिध होना है कि केचनदास कुछ सीमा तक भाष्य और भाषा दोनों में संस्कृत-कवि के प्रामाणी हैं। परन्तु केचनदास ने अपने भाष्य को यथा बुद्ध धर्म और सत्य तक ही सीमित नहीं रखा सबैय म विद्या, दबा दान धारि का भी समावेश कर दिया है।

हिन्दी-कवियों का प्रभाव—हिन्दी-कवियों का प्रभाव तीन प्रकार का है—

(क) भावों का प्रभाव (ख) भाष्य तथा भाषा का प्रभाव (ग) शैली का प्रभाव। प्रमथ-शैली का एक-एक उदाहरण नीचे—

(क) भावों का प्रभाव

बिगरी बरत धर्म नहीं साध करे तिम कोय ।
 “रहिमन” फाटे बुज को मये न साधन होय ॥^३
 कोटि-कोटि मतिराम” कहि अतन करो सब कोइ ।
 फाटे मन धर बुप में नेह न कमल होइ ॥^४

उपर्युक्त शैली की तुलना से स्पष्ट है कि मतिराम ने अपने बाहों में रहीम के श्लोक के ‘साध’ के स्थान पर ‘कोटि कोटि’ कर दिया है और ‘बुप’ तक ही अपने को सीमित न रखाकर ‘मन’ को भी साथ संयुक्त कर दिया है। इस प्रकार मतिराम ने रहीम में संकेत सेकर उसको विस्मृत और अधिक स्पष्ट कर दिया है।

१ धर्म—यह समा ही नहीं भित्त में बुद्ध म हों, ये बुद्ध ही नहीं दो धर्म का उपवेश न हैं यह धर्म हो नहीं जिसमें तय न हो और यह सत्य ही नहीं जिसमें टप दिख-मान हो। (मु० २० भा० पृष्ठ १७४।८८४)

२ केचनदासवाणी, लखन १, कविप्रिया, पृ० १६०।३

३ ल० बजरामदास, रत्नमञ्जरी, पृष्ठ १४१।३३

४ सतसई सप्तक, मतिराम सतसई पृष्ठ १२२।७०

(स) भाव तथा भाषा का प्रभाव

रहिमन छोटे मरन सौ होत बड़ी नहि काम ।

कड़ी बरामो गा बने सौ पूहे के काम ॥^१

कसे छोटे नरमु तँ सरत बड़नु के काम ।

मड़यी बरामो जात क्यों कहि बूहे के काम ॥^२ (बिहारी)

बिहारी ने अपन बोहे में उर्कप सामे के लिए दो मुक्तियों का प्रयोग किया है। प्रथम 'बड़ों' के स्थान पर 'बड़न' कर देने से छोटे नरम के साथ विरोध स्पष्टतर हो गया है और दोहे के प्रभाव में बृद्धि हो गई है। द्वितीय 'सौ पूहे के काम से' को कमी बराम के मड़े जाने की सम्भावना हो नी सफ़ाई है परन्तु एक बूहे के काम से तो बिकाल में भी प्रसन्न है। ऐसा होये हुए भी यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भाव और भाषा दोनों के बिचार से बिहारी स्पष्टतरया रहीम के सामाये है।

(ग) दाँसी का प्रभाव—बस तो तब निरूपक अर्थात् धारमक धारि दसियों का प्रयोग इन कवियों ने पूर्ववर्ती कवियों के समान किया ही है तथापि जो दाँसी विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है वह है नविक उपमानों की दाँसी जिसे गोस्वामीजी ने 'रामचरित-मानस के विष्किन्धा-काण्ड में विद्यप रूप से प्रयुक्त किया है जैसे—

बरपाहि कसर भूमि निगरार्य । जया नबहि बुप बिद्या पार्य ।

बूब धयात सतुहि गिरि कैसै । दस के दबन सन्त सह जैसै ॥^३

नदाबिन् सन्ही स प्ररणा सेकर इन कवियों ने भी कही-कहीं इस दाँसी का प्रयोग किया है। जैसे—

बुगराई गिरि जानु है कंकम कामिनि पाहि ।

उपदेस म ठहरात ज्यौ, बुरजन के जर माह ॥^४ (मतिराम)

सोच तँ रूप कुमक है मुनक हास निताप गये घर बाम ज्यों ।

मेह घटे जिमि जोति बिया सति की टबि देनत ही रधि घाम ज्यों ॥

भोन तँ धर्म दड़ाई दगीति ते होते सनह बिदेस विराम ज्यों ।

नैक बियोग में हो तम प्यापी को छीन हूँ जात है सौम के घाम ज्यों ॥^५

निष्कर्ष—रीतिकालान्त शृंगारी कवियों की साहित्यिक विद्यपताओं के सम्बन्ध में इतना अधिक लिखा जा चुका है कि हम उसका पुनरावृत्ति करना समीचीन नहीं समझते। हाँ उपसहार रूप में उनके नीति-काव्य की प्रमुख बिद्यपताओं की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक प्रतीत होता है—

१ रहिमन बिसाल पृष्ठ १२।१८२

२ बिहारी रत्नाकर पृष्ठ ५२।१३१

३ रामचरित मानस मूसगुण्डा (गीता प्रेस गोरखपुर, सं० २०।१३), पृष्ठ ४३४

४ सतसई सप्तक, मतिराम सतसई पृष्ठ १३०।१०२

५ कृतपत्रि निघ्न रसवृत्त्य अष्टम मुतागत, पृ० १७

१ इन कवियों के शृंगारी काव्यों में घीर, बुद्धि तथा धारणा तीनों के विकास पर उचित बल दिया गया है।

२ इनमें पारिवारिक जीवन की प्रशंसा दुष्टिगण होती है और पारिवारिक जीवन के सुखों के भोग की प्रशंसा मिलती है।

३ प्रेम-विषयक नीति का बहुत उचित स्वर दिया गया है।

४ इन कवियों में मुक्त, कुकवि, मुकविता, कुकविता आदि पर विशेष रूप से बल दिया है।

५ राजाओं तथा सामन्तों को गुणवाही बनने और कृपयता का परिचय करने की प्रेरणा पर्याप्त मात्रा में है।

६ प्रायः बल भय जाति आदि से अलग भेदभाव को दूर करने की प्रेरणा की गई है।

७ स्त्री का महत्त्व तो वर्णित है परन्तु वह स्त्रीत्व के कारण नहीं नोभ्यात्व के कारण है।

८ इन कृतियों में सामुदायिक जीवन की अपेक्षा ऐहिक जीवन को सुखी बनाने पर बल अधिक है।

९ कुलस कवियों की कृति होने के कारण यह नीति-काव्य अधिकतर नीति रचनाओं की अपेक्षा कहीं अधिक सरस व चाकपूर्ण है।

१० ये रचनाएँ मुक्तक-शैली में ही हैं। प्रायः कवित्त सभा, बोझा घीर छप्पय छन्दों का प्रयोग दिखाई देता है।

११ इनमें प्रायः परिष्कृत ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है जिसमें सरस, प्यारी शक्ति के शब्दों की सन्ध्या भी पर्याप्त है।

१२ इन काव्यों की भाषा अशुद्ध है और इसमें अनाम्बान प्रसार, माधुर्य और शोक तीनों ही कुछ दुष्टिगण होते हैं।

१३ इन कवियों की कृतियाँ स्वतन्त्र नीति-काव्यों के रूप में न होती हुई भी अधिकतर स्वतन्त्र नीति-काव्यों की अपेक्षा अधिक कविरसपूर्ण हैं।

(४) सग्रह-ग्रन्थों में नीति-काव्य

रीतिकाम में नीतिक तथा अनुवादात्मक रचनाओं के साथ-साथ संग्रहग्रन्थों के संकलन की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रायः सभी संग्रहग्रन्थों में बने शृंगार आदि विषयों के अनेक संग्रहों के साथ-साथ नीतिकवियों के उत्तमोत्तम पद्यों का संग्रह भी पर्याप्त दिखाई देते हैं। कभी-कभी तो उन में ऐसे कवियों के पद्य भी दिखाई देते हैं जिनके नाम तथा कृतियों से इन अज्ञात होते हैं। ऐसे नीतिविषयक संग्रहों को प्रायः शास्त्राधिक संग्रह भी कहा गया है। पंडितराज अय्याय ने 'नामिनी विज्ञान' के नीतिविषयक अन्वयापदेशिक प्रथम विज्ञान को शास्त्राधिक विज्ञान नाम से

अभिहित किया है। मम्मवत तभी से इस शब्द का प्रयोग नीतिविषयक कविता के लिए होने लगा है। प्रस्तु शिष्यवृत्तमात्र के लिए दो-आर मीति-संग्रहों का उल्लेख पर्याप्त होगा।

बीकानेर के अनूप संस्कृत पुस्तकालय के एक संग्रह में अनेक कवियों के नीति पद्य संगृहीत हैं जिन में सेच और चम्पन मुख्य हैं।^१ इसी गुटके में बिहारीसहस्र भी संगृहीत है जिस का निधि-काव्य सं० १७४४ दिया गया है। यद्यपि संग्रह पौने तीसरी बर्य प्राचीन है। इसके दो दुर्लभ पद्य नीचे दिये जाते हैं—

घायत ही घायर नहीं डेढ़ी भोग कराइ।

‘सेठ’ सहा न चाइये जो कंधन परसाइ ॥

“मयुसूत्रम” छोड़ टूटिस तू, सरल करो मति हैत।

नेकु धनुष के जुरत ही, जान प्रात हर भेत ॥^२

फोर्ट बिलियम कासेम के प्राध्यापक पं० महेशुलाल ने भी संवत् १८७० में ‘समाविज्ञास’ नाम से नीति-काव्यों का संग्रह किया था। कापी की नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित इस संग्रह के प्रारम्भिक १५ बोहे तो भक्ति-विषयक हैं और बाद में क्रमशः बृन्द् रहीम रसनिधि आदि के बोहे संगृहीत हैं।^३ इस संग्रह में बोहे छोटे, कुंडलिया बरब धरिस्स छप्पय सबैया पहैसी मुकरी सभी कुछ विद्यमान हैं।

उक्त सभा में ही ‘गुणगजनामा’^४ शीर्षक संग्रह भी सुरक्षित है जिसे सं० १८८७ में बगन्नाथ ने संकलित किया था। इसमें कबीर बाबू रज्जब आदि की नीति तथा उपदेशविषयक साक्षियों का संग्रह है।

अमपुर के पुरातत्व मन्डिर में प्रास्ताविक बोहरा^५ नाम से एक ग्रन्थ संग्रह विद्यमान है जिसमें बृन्द्-सतसई के ७६ तथा स्फुट छन्द ७१ हैं। स्फुट छन्द हितोपदेश आदि के पद्यों के अनुवाद प्रतीत होते हैं। उनकी भाषा राजस्थानी है और प्रसारी पर्यन्त असुद्ध है। जैसे—

गीत बिनोद बिजास रस पखीन बीह सहत।

के मित्रा के कसह करि मुरप बीबस परमंत ॥^६

१ संग्रह-संख्या ७२१७२ क; पन्ना ११२ १३०

२ " " ११२१५ ११५११

३ समासंग्रह सं० ४४२१३२७। “समाविज्ञास” प्रथम बार तो संगृहीत के जीवन-काल में और द्वितीय बार १९४६ में प्रकाशित हुआ था।

४ समासंग्रह सं० २५२११४७६

५ काव्य ४८०६

६ " " पन्ना २१५

कहना न होमा कि उक्त दोहा हितोपदेश के एक दोहे का विप्लव अनुसार है।^१
 इस संग्रह का संपदन-काल १६ वीं शती अनुमित किया गया है।

पुस्तकालय मन्दिर का ही एक अन्य संग्रह भाषा की विविधता की दृष्टि से उल्लेख्य है।^२ चारपत्तों के इस संग्रह में केवल ६३ पद्य हैं जिनमें अधिकतर दोहे हैं। अनेक दोहे सम्मन के हैं और अनेक प्रजातन्त्र न। कुछ दोहों की भाषा ऐसी है जिसे न हिन्दी कहते बनता है न संस्कृत। जैसे—

एतन् विचारे बसति काको, अमृत भोजन मप्यति।

पद्पते पतुर बेदाम्ब स्व स्वभाष न मुंबति ॥^३

अधिकतर पद्य रामस्वामी भाषा के हैं। यथा—

सीत सरीरा आभरण सौजन भारी अग।

मुव मङ्गल साभा अचरु बिन तंबोले रंघ ॥^४

इस संग्रह का भी निपिकाल १६ वीं शती है।

अरी पर और उनी अताम्बी का कवित्व प्रसंगिक^५ शीर्षक एक अन्य संग्रह भी सुरक्षित है जो अपनी सरसता के कारण उल्लेख्य है।^६ इस पत्रों पर निपिकाल प्रस्तुत संग्रह में १३० पद्य हैं जिन में अधिकतर कवित हैं और कुछ छण्ड। कुछ कवित बेबीदास के हैं और कुछ मकरन्द प्रादि अन्य कवियों के। कवियों के आत्म-सम्मान, सरदारों की शरणता नीति का महत्त्व कवियों की बीरता आदि पर अनेक सुन्दर पद्य इसमें संकलित हैं। हास्य रस का एक अंग-पूर्ण कवित देखिए—

साधन नु मत देत ब्रह्मन मुमेर देत

रिम भांग रोय देत कहीं धीं करुतु हैं।

वाहि ताहि कुप देत बीच परे बया देत

साधन कीं बोल देत म्याग न नरुत हैं।

घर मांझ गारी देत रन मांझ पूठ देत

सांझ कीं कियारी देत एसे निबहुत हैं।

एते पर कहेँ राम भैया नरु देत नाहि

भया नु तो घाटेँ आम बैबोई करत हैं।^७

१ हितोपदेश पृष्ठ १२।१

२ अर्थात् ४६१२

३ " पत्र १

४ " पद्य ११७

५ राष्ट्र अर्थात् २३१८, आकार ६३ × ४"

६ " पत्र १।६

इन संप्रहों के द्वारा यहाँ हम जयदेव, प्राननाथ, जयदेव प्रभात, जयसेरी बुद्धिसेन, कुम्भम, प्रभुज, तिहास, जैन पुत्री, भरणी आदि अनेक कवियों के नामों से परिचित होते हैं। यहाँ हमें इनके अत्यन्त मधुर काव्यों के रसास्वादन का भी अवसर प्राप्त होता है। इन संप्रहों में जो पद्य नीतिविषयक प्राप्त होते हैं उनसे संप्रह-कारों की मनेवृत्ति पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। यद्यपि इनमें नीति के प्रायः सभी विषयों का उल्लेख छिटपुट रूप से मिला जाता है तथापि इनमें राजममार्गों में पिशुनता करने वालों की निन्दा, कृपण राजाओं तथा सरदारों को उपास्य तथा उन पर व्यंग्य-सूचक सपदा कर्कशा गारी, राजाभय से बहिष्कृत कवियों की लीला, बृहन्नोरों और काव्यस्वों की गर्हा तथा की महिमा, कवि का प्रभाव कवियों का आत्मसमाप्त, राजाओं पर कवियों का सहज दावा, सेवकों में योग्यतानुसार कार्य वितरण न करने वाले राजाओं की क्रुद्धता, बुरों की कामुकता विधि की विवेकहीनता आदि में विद्ये गए बेकार पदार्थ निकालने सेवक वगुणा भक्ति सूचक जयमान की निन्दा अथवा पंथों की प्रशंसा तथा बुरों की निन्दा कवि के बिना समा का प्रीकापन आदि विषयों की चर्चा अधिक है। यह बात विशेष रूप से उल्लेख्य है कि जो गीरसता प्रायः अनुवादात्मक कृतियों में दिखाई देती है उसका यहाँ प्रभाव है। कारण यह है कि इन संप्रहों में प्रायः निम्न कवियों के पद्य संगृहीत हैं वे अस्तुत ऐसे कवि थे जो मात्र या रस में मग्न होकर काव्यरचना करते थे सामान्य पंडित मुनि या शोक-हितैषी न थे जो विशेष योग्यता के न रहते हुए भी आराध्य-नीति हितोपदेश आदि का अनुवाद करने पर कन्ठबद्ध हो जाते थे। इसमें सन्देह नहीं कि मात्र भाषा रस प्रसकार आदि सभी वृत्तियों से संप्रहों का नीतिकाम्य प्रघंसनीय है।

(५) फुटकर नीति कवि

१ अकमल या अक—इनकी 'दीनबलीसी जयपुर के गुरुकरण मंदिर में सुप्रसिद्ध है। रचना का तिथिकाल संवत् १७२१ है। १४ कुंडलिया छन्दों की इस राजस्थानी भाषा की रचना का विषय है, लीला जिसमें पातिव्रत और पत्नीव्रत दोनों ही समाविष्ट हैं।

२ प्रवीण कदिराय—इनका जन्म संवत् १६६२ था। संप्रह-ग्रंथों में इनके नीति के स्फुट सुन्दर पद्य प्राप्त होते हैं। इनकी वास्तव रस की कविता भी अच्छी है।

३ महेश मुनि—इनकी 'प्रसर बलीसी' की रचना संवत् १७२५ में जयपुर में की गई थी। प्रति प्रथम जैन प्रवासन कीकाल, में विद्यमान है। प्रति-मत्या ८१११ है और कुल दोहे १४। अंशमात्रा यम से रचित दोहों में गण छन्द पाठ्य के दि से दूर रहने की प्ररणा की गई है।

४ भरणी कवि—इनका जन्म संवत् १७०८ में हुआ था। उनके नीति के दोहक कवित्त नागिदास द्वारा में श्लेष्य है।

५. लक्ष्मीवत्सलम परिण उपाम्नाय—इनकी “कवित्त बावनी” में कुल ५८ छन्दय हैं जिन्हें संवत् १७४१ में वेसूडा ग्राम में उपाम्नायजी के शिष्य मुनि हीरा मन्त्र ने लिपिबद्ध किया था। राजस्थानी में रचित इस कृति में भाव-महिमा मञ्जा-महत्त्व आदि पर सुन्दर पद्य हैं। सम्भवतः ये लक्ष्मीवत्सलम बही है जिनका विवरण प्रमुख नीति-कवियों में किया जा चुका है।

६ महाराज असवस्तसिंह—माण्ड्या के प्रसिद्ध महाराज असवस्तसिंह ने अठा सौवीं शती के पूर्वार्ध में प्रबोध चंद्रोदय नाटक का सुन्दर अनुवाद किया।

७ जयम्नाय—इन्होंने ‘गुरुमहिमा’ नाम की एक पुस्तिका संवत् १७६० में रची जिसे अग्रूप सस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर में रखा। हस्तलिखित प्रति की सन्ना ६३/६५ क है। ४९ पत्तों की यह चौपाई प्रधान रचना पद्मपुराण के गुरुगीता नामक संवर्ष क आधार पर रची गई है। कृति में गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा तो प्रकट की गई है परन्तु रचना साहित्यिकता से दूर्य है।

८ गद्दू—राजस्थानी के इस कवि क स्फुट नीति-छन्द संग्रह-ग्रंथों में देखे जाते हैं। इनका रचना-काल संवत् १७७० के लगभग है।

९. प्रसन्न पुष्प पाप—किसी अज्ञाता-नामा जैन कवि की यह रचना जयपुर के काले छावनों के मन्दिर [गुटका संख्या ८२ (क)] में सुरक्षित है। लिपि-काल संवत् १७७२ है और पद्य सन्ना २९। बोहा चौपाई में लिखित इस रचना में प्रबोधचर शैली प्रयुक्त की गई है। वैभव्य शैल्यात्मक दारिद्र्य आदि के कारणों के विषय में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

१०. प्रेमचन्द—इनकी ‘मृत्यु महोत्सव पञ्चीसी’ का लिपिकाल सं० १७७८ है। दो पत्रों पर लिखित इस रचना में १७ दोहे तथा ८ चोखे हैं। मृत्यु सुख का कारण है क्योंकि जीव पुराता पर त्यागकर नश-गृह में प्रविष्ट होता है मही इस रचना का विषय है। हस्तलिखित प्रति बीकानेर के समय जैन संवत्सम में सुरक्षित है।

११. अमरसी—अमरसिंह की ‘गुरुबेला नी चडबड’ का रचना-काल तो विदित नहीं परन्तु लिपिकाल १८वीं शती निर्धारित किया गया है। इसकी हस्तलिखित प्रति (अंशक १४४२) जयपुर के पुरातत्व मन्दिर में विद्यमान है और १७ पत्रों पर लिपिबद्ध है। रचना प्रबोधचर शैली में है। पहेलियाँ तथा नीति विषयक सुभाषित सामान्य राजस्थानी भाषा में लिखे हैं।

१२. भीम—इनकी ‘सप्त ब्यसन दूहा कुंडनिया’ पुरातत्व मन्दिर जयपुर में सुरक्षित है। प्रति का अंशक २२१७ है और लिपिकाल १८वीं शती। राजस्थानी की इस रचना में मांस मदिरा आदि सप्त ब्यसनों का निषेध किया गया है।

१३. नागरीदास—इनके ‘इस्कचमल की हस्तलिखित प्रति बीकानेर में मोनीचन्द राजानधी के पुरतत्व-संग्रह (गुटका सं० ३) में देखी। ४५ दोहों की उस संग्रं प्रति में अमरसिंह की नीति पर अज्ञानता में सुन्दर दोहे हैं जिनमें दारसी-दरसी’

के शब्दों की भी कमी नहीं।

१४ मुनि मान—मुनि जी की सबसे 'मानवावनी' की प्रति बीकानेर के समय अम प्रयाग में सुरक्षित है। इस प्रति को धोषूरा ग्राम में भवाचर्य म सं० १८१२ में सिपिबद्ध किया था। इसी सेबक मित्र पुत्र आदि नीति के प्रचलित विषयों पर रचित सामान्य छवि है।

१५ बारहूतड़ी—किसी प्रहात जैन कवि की एक बारहूतड़ी' काये छावड़ों के मन्दिर (जयपुर) में सुरक्षित है। सन् १८१४ म सिपिबद्ध इस पंडित रचना में कुल २४ पद्य हैं जिनमें मोह मान सोम पाप आदि छ मन्त्र की प्ररणा अनुप्रासमयी मापा में ही गई है।

१६ सातबन्दर—१८ की घटी क उत्तरार्ध म उक्त नाम के तीन जैन कवि हुए हैं। छिनाल पञ्चीसी' तथा 'मूरख सोलही सम्मन्त उस सातबन्दर की हैं जिसका बीजा नाम सातबन्दर था। छिनाल पञ्चीसी की २५ चौपाइयों में कुलटाओं के और मूरख सोलही' क सोमह चाम्दारण छन्दों में भूसों के मन्त्रों का उल्लेख है। दोनों की प्रतिमा बीकानेर क समय जैन प्रयाग में सुरक्षित हैं।

१७ वसवतीवास—वसम सम्प्रदाय के अनुयायी कृष्णवतीसी ह्य कवि ने १६ की घटी के पुर्वाध में संस्कृत के प्रबोधप्रोद्य नामक का विविध छन्दों में सुन्दर अनुवाद किया था।

१८ उम्मेहराय—जयपुर राज्य में हर्षुतिया ग्राम क बासी उम्मेहराय का जन्म सं १८० में हुआ और निधन सं० १८७८ में। इनकी सम्प्रदाय' नाम की नीति छवि जयपुर के विद्यानूपण पुस्तकालय में विद्यमान है। ३५ पादाकुल छन्दों को इस पुस्तिका की कवि ने वसवन्त नृप के लिए रचा। नीति के साधारण विषयों का सामान्य रीति से उल्लेख किया गया है।

१९ धीतार—इनकी उपदेश सप्तरी' जयपुर के पुरासल मन्दिर में सुरक्षित है। राजस्थानी की इस रचना में बाउ'व्य इति विषयता तथा सन्तान की स्वार्थ परता का करुणानन्द चित्रण है। रचना का सिपि काल म० १८३८ है और अंशक २२१३।

२० धनान्दराण—दरठरयण्ड के बाबक अमृत धम के विषय सामान्यरूप का रचना-काल म १८६६ से १८७२ तक है। इनकी 'हित-विद्या दार्शनिक' बीका नेर के समय अम प्रयाग में सुरक्षित है। बलीसी' के आदि तथा अन्त में एक-एक सवया है और मय में ३१ वाहे। इति-संयम विषयनिम्न अमंकार लुप्या आदि पर रचित इन पंजी में वही-वह। गार्हिनिक माना भी विद्यमान है।

२१ रत्नसोविन्द—अम्बरन बासी तथा निम्बरक सम्प्रदाय क अनुयायी श्री रचित गोविन्द म सं० १८६५ में कसिभुग राया की रचना की। १६ कवितों की इस रचना म कसि-रचित दोषों का उल्लेख है और उनसे प्राण के लिए धी गार्हिन के

३. सक्तीबल्लभ गणेश उपाध्याय—इनकी 'कवित्त बावनी' में कुल १८ छन्द हैं जिन्हें सब १७४१ में वेसुड़ा ग्राम में उपाध्यायजी के शिष्य मुनि हीरा नन्द ने लिपिबद्ध किया था। राजस्थानी में रचित इस कृति में भाव-महिमा सज्जा-महारव आदि पर सुन्दर पद्य हैं। सम्भवतः ये सक्तीबल्लभ बही हैं, जिनका विवरण प्रमुख नीति-कवियों में दिया जा चुका है।

४. महाराज जसबल्लसिंह—मायादाइ के प्रसिद्ध महाराज जसबल्लसिंह ने अठा रत्नी शरी के पूर्वाह्न में प्रबोध भद्रोदय नाटक का सुन्दर अनुबाह किया।

७. जगन्नाथ—इन्होंने 'गुरुमहिमा' नाम की एक पुस्तिका सब १७६० में रची जिसे अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में देखा। हस्तलिखित प्रति की संख्या ६३/६५ क है। ४६ पदों की यह चौपाई प्रधान रचना पद्मपुराण कं गुदगीता नामक सबम के आधार पर रची गई है। कृति में गुरु के प्रति अग्रिम श्रद्धा तो प्रकट की गई है परन्तु रचना साहित्यिकता से सूय है।

८. मधु—राजस्थानी के इस कवि के स्पष्ट नीति छन्द संग्रह-ग्रंथों में संके जाते हैं। इनका रचना-काल सब १७७० के लगभग है।

९. प्रसन्न पुष्प पाप—किसी अज्ञात-नामा जैन कवि की यह रचना जयपुर के कासे छाबड़ों के मन्दिर [गुफा संख्या ८२ (क)] में सुरक्षित है। लिपि-काल सब १७७२ है और पद्य संख्या २६। दोहा-चौपाई में निबद्ध इस रचना में प्रदोषर र्शनी प्रयुक्त की गई है। वैभव्य वैद्यात्म्य बारिद्वय आदि के कारणों के विषय में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर दिया गया है।

१०. प्रेमदास—इनकी 'मृत्यु महोत्सव पञ्चीशी' का लिपिकाल सं० १७७८ है। दो पदों पर लिपित इस रचना में १७ दोहे तथा ८ सोरठे हैं। मृत्यु सुख का कारण है क्योंकि जीव पुराता बर त्यागकर मर-मूह में प्रविष्ट होता है यही इस रचना का विषय है। हस्तलिखित प्रति बीकानेर के समय जैन संघासय में सुरक्षित है।

११. अमरती—अमरतीसिंह की 'गुरुभेसा नी बडबड' का रचना-काल तो विदित नहीं परन्तु लिपिकाल १८वीं शती निर्धारित किया गया है। इसकी हस्तलिखित प्रति (क्रमांक १४४२) जयपुर के पुरातत्व मन्दिर में विद्यमान है और १७ पदों पर लिपिबद्ध है। रचना प्रदोषर र्शनी में है। पहेलियाँ तथा नीति विषयक सुभाषित सामान्य राजस्थानी भाषा में निबद्ध हैं।

१२. भीम—इनकी 'सप्त ब्यसम दूहा कुंडलिया' पुरातत्व मन्दिर, जयपुर में सुरक्षित है। प्रति का क्रमांक २२१७ है और लिपिकाल १८वीं शती। राजस्थानी की इन रचना में मांस मद्य आदि सप्त ब्यसनों का निषेध किया गया है।

१३. भागरीराज—इनके 'इस्कचमन' की हस्तलिखित प्रति बीकानेर में मोतीबाग राजानजी के पुस्तक-संग्रह (गुफा सं० ९) में देखी। ४५ दोहों की इस गृह्य प्रति में प्रमादिपद्य नीति पर अग्रमाया में सुन्दर दोहे हैं जिनमें धारसी-धरसी'

के सङ्गों की भी कमी नहीं।

१४ मुनि मान—मुनि भी की सर्वथा 'मानपावनी' की प्रति बीकानेर क समय बन प्रयास में सुरक्षित है। इस प्रति को भीमराज राज में मयापत्त म सं० १८१२ में विपिष्ट किया था। स्थायी सेवक मित्र पुत्र आदि मीति क प्रबलित विषयों पर रचित सामान्य हति है।

१५ बाण्डूकी—हिन्दी प्रजात जन कवि की एक 'बाण्डूकी' काय छापडों के मन्दिर (जयपुर) में सुरक्षित है। सन् १८१४ म विपिष्ट इस छवि रचना में कुल २४ पद्य हैं जिनमें मोह नाग सोम पाप आदि स सदन की प्रग्गा अनुप्रासमयी माया में की गई है।

१६ सासबन्द—१८ की कवी क उत्तरार्ध में उत्पन्न नाम क तीन जन कवि हुए हैं। छिनाम पञ्चीती' तथा 'मूरख सोमही सम्मन्न उस सासबन्द की हैं जिसका दीक्षा नाम मानबन्धन था। छिनाम पञ्चीती की १४ शीपाद्यों में कुलट्यों के और 'मूरख सोमही' के सोमह बाम्नायण छन्दों में मूर्खों के सङ्गों का उल्लेख है। दोनों की प्रतियाँ बीकानेर क समय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित हैं।

१७ ब्रह्मकालीदास—बम्पन सम्प्रदाय के अनुयायी बृहन्नवानासी इस कवि ने १६ की पठो के पूर्वार्ध में संस्कृत के प्रबोधप्रोद्य मात्त का विविध छन्दों में सुन्दर अनुवाद किया था।

१८ उम्मेदराय—जयपुर राज्य में हर्षोत्तिपा नाम क बागी उम्मेदराय का जन्म सं १८०० में हुआ और निधन सं० १८७८ में। इनकी 'सन्तोषम' नाम की शीति हति जयपुर क विद्याभूषण पुस्तकालय में विद्यमान है। ३५ पादाहुसक छन्दों की इस पुस्तिका को कवि न ससम्पन्न रूप के लिए रखा। शीति क साधारण विषयों का सामान्य शीति न उल्लेख किया गया है।

१९ शीतार—इनकी उपरोक्त 'सप्तरी' बम्पुत्र के पुरातन मन्दिर में सुरक्षित है। यन्मपानी की इस रचना में बार्डन्य प्रतिष्ठ दिव्यता तथा मन्त्रान की स्वार्थ परता का करगाननक चित्रण है। रचना का तिथि प्राप्त सं० १८३८ है और क्रमांक २२१३।

२० जनाङ्गनास—अरतरमण्ड क बाणक समृद्ध बम के शिष्य रामान्याय का रचना सन सं० १८ २ न १८७२ तक है। इनका 'हित-गिता शत्रिसका' बीकानेर क समय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित है। 'बसीती' क आदि तथा अन्य में एक-एक सर्वथा है और समय में ३१ दाह। इगियत्रयम विषयविन्ना धर्मकार कृष्णा आदि पर रचिा इन कवी में नहीं-रहा। साहित्यिक कामा भी विद्यमान है।

२१ रत्नोद्दिम्ब—मन्त्रान दासी तथा मित्रक सम्प्रदाय क अनुयायी श्री रत्नोद्दिम्ब सं० १८६५ में 'कविजुग रासो' की रचना की। १६ कवित्तों की इस रचना म कवि प्रतिष्ठ दासों का उल्लेख है और उनस दास क लिए भी शोदिम्ब स

प्राप्त की गई है।

२२ शिवभास कृते—शिवसिंह सराज में इनका जन्म संवत् १८१६ दिया गया है और जन्म-स्नान डौनियावेरा। इन्होंने नीति विषयक स्फुट सुन्दर पद्यों की रचना की थी।

२३. बेयावह या बेबा पाठे—इनके तीन नीति-ग्रंथ प्राप्त हैं—टाममधुबुध्, गुरसीप और सास गह का झगड़ा। प्रथम बा तो जयपुर के कासे छावकों के मन्दिर में सुरसिंह हैं और अन्तिम वहीं के ठोमियों के मन्दिर में। डालमधुबुध् में धन्धकूप तथा मधुबुध् की प्रसिद्ध कथा १६ पद्यों में लिखी है। गुरसीप के १३ पद्यों में नीति की सामान्य बातें हैं। सास-गह का झगड़ा का विषयकाल सं० १८७२ है और विषय नाम से ही स्पष्ट है।

२४ सूरत—इनकी बाराहपड़ी जैन की बाराहपड़ी के नाम से भी प्रसिद्ध है और राजस्नान के अनेक पुस्तक-संस्करणों में प्राप्य है। जयपुर के पुरातत्व मन्दिर (क्रमांक १४०३) की प्रति में ४२ पद्य हैं और वहीं के छावकों के मन्दिर की अन्तिम प्रति (गुटका सं० ३२) में ७६। प्रमुक्त छन्द को अधिकसित कुम्भिया कह सकते हैं क्योंकि बोहे के अतुंग चरण को रोसा के धारम्भ में बोहराया गया है परन्तु कुम्भिया के समान प्राथम तथा अन्तिम छन्द समान नहीं हैं। विषय स्पष्ट व्यसन प्रावि है। गुटके का निरिक्ता सं० ८८० है।

२५ बीबो सीवी (श्रुति)—जयपुर के पुरातत्व मन्दिर में सुरसिंह इनकी कथा बनीसी (क्रमांक २०२९) दो पद्यों पर १२वीं शती में लिखित की गई थी। परमाठी परबन्ध परनिदा प्रादि से बचने के उपदेश वर्णनाभा क्रम से दिये गए हैं। भाषा राजस्थानी है।

२६ पारपीबास—इनकी बाराहपड़ी जयपुर के पुरातत्व मन्दिर में विद्यमान है। १२वीं शती में लिखित इस कृति का क्रमांक १८२८ है और भाषा राजभाषा। कुल पद्य ३२ हैं जिनमें साम्यत्व-रहित जैन उपदेश हैं।

२७ बलारस सुन्दर दास—प्रजातकासीन इस कृति की बाबनी' धीकानेर के समय जन संभावय में सुरसिंह है (प्रति सं० ८०७२)। तीन पद्यों की अन्तिम प्रति में २८ पद्य (छन्द कविता तथा सर्वे) हैं। गुणों से महत्त्व माता का गौरव मुद्-महिमा प्रादि विषयों पर अन्धे पद्य हैं।

२८. मुरसीबास—प्रजातकासीन मुरसीदास का सिंहसत-सत-सार बीकानेर के धनुर सन्त पुस्तकालय के मन्त्रा सं० १९०१९० में सुरसिंह है। ३९ पद्यों की प्रति में ७ दोहू २६ शीतलानी और ३ सोरठे हैं। उत्पत्तिकाव्य वाटकर नामा परधन तथा परन्तो का स्वान सत्संगति मानक इष्यों का विषय प्रादि इनके अन्तर्गत विषय हैं। जोधपुर के बागोत्रा नामक स्थान में मोहिन्द राम ने इसकी प्रतिलिपि की थी।

२९ मिद या गोप कवि—शिवसिंह सराज तथा मिथ बगुधों ने इनके पुस्तक

बोहा कवित्त छप्पय वहेसी घादि का उल्लेख किया है। जिबसिह सराज तथा हन्म सिक्किन संग्रह-ग्रंथों में इनके नीति के कुछ पद्य प्राप्त होते हैं। जिनमें धरसर का महाक प्राणियात्र की गणोपता घादि का वर्णन है। कवि-समय अभी तक यथात है।

३० सममानशात विरधनी—इस प्रजातन्त्रमिद कवि न ननु हरि एणक का कवित्तों में सुन्दर अनुवाद किया था।

३१ वानरिण—इन प्रजातन्त्रमीन कवि न आगार नाति का मोदये प्रत्यय तक भाषा में अनुवाद किया।

रीतिकालीन नीतिक्राव्य की समीक्षा

कर्म-विषय—उन्नु का विवरण से स्पष्ट है कि नीति-विषयक रितनी नीतिक कर्म-कारणक सहायक तथा न्यून रचनाएँ रीतिकाल में की गईं। उनी प्रायोगिक युग के किसी प्रायः काल में नहीं। उनका विषय-क्षेत्र इतना व्यापक है कि देखकर आश्चर्य होता है। पूर्वोक्त छह प्रकार की नीति में इतना ही विषयक नीति का छोटा सनी पर अनेक स्वतन्त्र नीतिक काव्य इस काल में प्रतीय हुए। परन्तु वह भी सबथा उपेक्षित नहीं रही। फिर यह बात भी नहीं कि नीति के विभिन्न प्रकारों में परंपरागत बातों का ही उल्लेख किया गया हो। देव और काम के अनुसार मध-मध कसम्पों व व्यवहारों का वर्णन इस काल की कृतियों की उत्तम्य विच्छिता है।

व्यक्तिगत नीति—यद्यपि वारिरीक स्वास्थ्य दीर्घानु घादि पर इस काल में भी कोई स्वतन्त्र-काव्य विद्यार्थ नहीं देता तथापि काया की वह उन्सा भी प्रबल नहीं होती जो प्रायः जैन बौद्ध तथा भक्तकवि करते प्राय थे। साथ करने की बात है कि जैन बुधजम ने सतसर्ग में स्वास्थ्य-रक्षा के विविध उपचारों का वर्णन किया है। विरिधर कविराय भी काया की स्वस्थता रचना चाहते हैं परन्तु उनकी प्राप्ता योगधियों की अपेक्षा मुग्धरिता के समित पर अधिक है। निराल के बस राम की अपेक्षा कृम स्वयं बसबात बनकर काव्यसिद्धि करन की प्ररणा करत हैं। भूषों की धायकता मुक्त-भी-बदन में नहीं अपितु योगोनाशन उपकार, प्रण-वासनादि मुहर्यों में है। सुन्दर रूप भी उत्तम गुणों के समान समाम्य होता है।

घादि काल तथा मकिककाल में व्यक्तिक नीति के विषयों पर किसी स्वतन्त्र-काव्य की रचना नहीं हुई परन्तु रीतिकाल में समापित दाधीनास में बचनविदेक पन्थीसी तथा कुलसुख कवित्तों को काव्य प्रस्तुत किये। राजसमासु होन के कारण के दिगुनों की बुधानों के सम्मर् परियित प और बाली के कविकक व्यवहार का महारय भी गृह अनुभव करत थे। इसलिये उन्हीं इस कृतियों में बहुमानव गामी-गान तथा पान्य के विरुद्ध पूर लिखा। ध्यान देन की बात है कि यहाँ नितान्नीन कवि धान बघार का नहीं नू बघार पाय का उल्लेख देत प वही रीतिकालीन कवियों न

अबसर पर कुछ झूठ भी बोल देने की शक्त के सत्यवत् मापण की यथार्थ कथन के समय वाच्यम बन जाने की हानि से बिगड़ी बात को वाणी द्वारा सँवार लेने की तथा बिदीरुं हृदय का उपचार मधुर वाणी से करने की प्रेरणा की है। और आश्चर्य तो यह है कि जैन कवि बुधजन न परोपकारार्थ प्रसत्यभाषण को भी सत्य कह दिया है।

मानसिक नीति के क्षेत्र में बिद्या धारि के महत्त्व पर कोई स्वतन्त्र कृति इस काल में भी दृष्टिगत नहीं होती। सासबब की मूर्ख छोटीही' तथा अज्ञातकृत 'क मूल भद्र चौपई' में लोकव्यवहार से अपरिचित लोगों का ता निवेद्य कर दिया गया है परन्तु बिद्या उसके साथ विद्वान् धारि पर विशेष नहीं लिखा गया। फिर भी यह बात स्मरणीय है कि रीतिकामीन अधिष्ठार काव्यों में छिटपुट रूप से बोधी-पने और पाण्डित्य की प्रशंसा ही अधिक संक्षिप्त होती है। बुद्ध तथा बुधजन में बिद्या-सम्बन्धी पनेक उपयोगी बातों की चर्चा अपनी सतसदियों में की है। यद्यपि श्रेया भयवती बास भूमरदास धारि जैन कवियों ने शृंगारी काव्यों के प्रणयन की निघ तथा गिरिधर कविराय ने ब्रह्मज्ञान से रहित विभिन्न मापाओं के ग्रंथों को गपोड़ा' कहा है तथापि अधिष्ठार कवियों ने बिद्या की प्रशंसा विगत-दिग्गज की सुसना धूम-मस्तक बन्धित की निम्बा वाली रोटी से बुद्धि का मास बेवानुकूल भाषरण की स्तुति धारि विषयों पर पर्याप्त रचना की है। इस प्रकार हम देखते हैं कि युग के ऐहिकता प्रवाह तथा अनेक कवियों के राजाभिषेक होने के कारण रीतिकामीन नीतिकार्यों में बिद्या का महत्त्व ही अधिक प्रदर्शित किया गया है और वह प्रायिक अपेक्षा बिसाई नहीं देती जो धारि काल तथा भक्तिवाद में सुसम है।

धार्मिक नीति पर प्रचुर पुस्तकों का प्रणयन किया गया। मन तथा इन्द्रियों के बसीकरण पर श्रेया भयवतीबास ने 'मन बलीसी' और 'पंचेन्द्रियसबाद' की पुष्प और पाप के विनेक पर अज्ञात कवि ने प्रसन्न पुष्पपाप की गोपासजानक ने पुष्प रातन' की बीरता की प्रशंसा पर बांकीबास ने 'सीहृच्छतीसी' 'मूरच्छतीसी' तथा 'बीर विनाय की कायछा की छुस्ता पर इसी कवि ने 'कायर बाबनी' और 'माबकियामिजान' को कीर्ति प्राप्त पर गोपाल जानक ने 'कीर्ति-रातक' की और बांकीबास ने 'मुबछछतीसी' की और प्रेम पर बेबीबास ने 'प्रेमरत्नाकर' मायटीदास ने 'इत्कचमन' और केसीबास ने 'शोक-बलीसी' की रचना की। काम बोवादि के बसीकरण पर जैन कवियों ने छिट पुट रूप से बहुत लिखा है परन्तु स्वतन्त्र ग्रंथ बांकीबास-कृत 'मोहमर्दन' ही उपलब्ध होता है। तथ्य करने से बात है कि काम बमादि विषयों पर तो अधिक स्वतन्त्र रचनाएँ जैन साग्यों की हैं और बीरता कायरता सुयस धारि विषयों पर राजाभिषेक पनेक दर्जिया की। प्रसन्न-पपयक नीति के प्रतिपादन में अमर और बमसादि के पु ले प्रस्तुत ही मूलाय नहीं हुए। सुयस और पत्रम समुद्र तथा बडबागल के उपमान भी प्रस्तुत विद्ये गए हैं। इनके प्रतिरिक्त मतमर्कट प्रह्लाचर्यमहत्त्व निरिषेकता के पाँच उपाय धारि विषयों पर शृंगार पद भी बहुत दिशाई देते हैं।

पारिवारिक नीति—इस काम की अधिकतर कृतियों में पारिवारिक धीबन प्रायः हीय नहीं माना गया। यद्यपि धीबन म उपदेश गतरी में सन्तान की स्वार्थ परता का उल्लेख किया है तथापि अकर्मक न धीबनबलीमी म पातिव्रत और पत्नीवत की और मुरलीदास न विद्वत्त सतमार में गार्हस्थ्योपयोगी अनेक सुन्दर नीतियों की चर्चा की है। चाचा हिनहुम्नावनदास ने कविचरित्र बगी में मयुक्तपरिवार प्रया की प्रशंसा की तथा देवापाण्डे ने 'साम-यज्ञ का म्मटा में एक परपरजन्त पारिवारिक समन्या का प्रथमा चित्रण किया है। इन स्वतन्त्र कृतियों के प्रतिरिक्त अनेक उपयोगी पारिवारिक नीतियों का उल्लेख ना महीं-यहाँ किया गया है। उदाहरणार्थ पृथ्वी हत्या की निन्दा, विवाह क परवान् पुण्य का माता पिता स बन्धु और अनुदास बानों से प्रय साइ स सतान का विगाइ तथा ताइना मे सुधार मानक के प्रति मत्तना की प्रामत्तकता, पत्नी तथा पुत्र की अन्धता मो भारी की स्नेहनात्रता, मास-अनुर वेदर मनदादि के विरुद्ध पत्नी का पति क काज करना, बाइरम में पत्नी की मृत्यु, धन का पुत्राधीन तथा मोक्षन का बन्धुओं के अधीन होना मृत्यु स भी दुःखर पर की पू म हाति बासी पेशी द्वारा पिता की बाइ बुल्लदुल्ल गृहस्थी की अवेला मृगमभारण की अण्टता इत्यादि। तात्पर्य यह कि उन अनेक बातों के प्रति गृहस्थों को सतक कर दिया गया है जिनके कारण गृहस्थी प्रायः नरकमयी बन जाया करती है।

सामाजिक नीति—रीतिकामीन सामाजिक नीति निम्नलिखित बगों में विभाग्य है—(१) मुकबि और कुकबि (२) स्वामी और सेवक, (३) दुष्ट और धामु (४) विद्वान् और मूर्ख (५) गुरु और शिष्य (६) स्त्री (७) बग जाति-पात (८) फुटकर।

१—मुकबि और कुकबि यद्यपि इस विषय पर बंकीदास की 'कुकबि बलीखी' के प्रतिरिक्त कोई स्वतन्त्र काव्य तो दिखाई नहीं देता तथापि फुटकर पदों की सन्धा पर्यप्त है। इसके दो कारण हैं एक तो यह कि रीति-काल में काव्य प्रया यन की गिशा का विविक्त प्रचार होता था इसलिए कुशल कवियों के कार्यों में कुकबियों की मही अदित्तर्ण सुरी तरह अन्वडी थी। दूसरा अनेक मुकबि राजाधों की समायों म रहने थ और उनक निर्वाह का साधन ही कबिता थी। इसलिए फुटकर कवियों का सामन्त-अमाधों में समावृत्त हाता और उनका उपेक्षित रह जाना उनक जीबन-मर्गा का प्रान बन जाता था। इस विषय की रचनाधों में निम्नलिखित प्रकार क भाव मिनन है—*कविगणों का अकारणों पर अह्न दाया है*। हाण पर कबित रचना अन्त म पञ्चासत स्यानाबिक है मुकबि क वि । मना की कर्षे पाना महीं कवि नीति क विरथा होत है। अनेक पदों म उन कवियों का मीन भी अन्त हाता है जिन्हें अविन गुणपाता क अन्त में अन्त-अन्त अण्टना पडता था।

२ हाणी और सेवक इस विषय पर भी बंकीदास की हा कवि अन्त पत्नीखी अन्तप हाती है जिनके अन्त सुान की अन्त-अन्तों से अन्तों का अन्त

भक्ति की सुंदर सीस दी गई है। इसके प्रतिरिक्त अनेक कवियों ने ऐसे पर्याप्त फुट-कम पद्य रचै हैं जिनमें गुणग्राही स्वामी की प्रशंसा श्रुतिमा चाकरों की निन्दा सेवकों में कायों का मधायोम्य विवरण निर्गुण स्वामी को रिझाने के उपाय राजदरबारों में म्याप्त विद्युनता भावि का सुवर वर्णन किया गया है।

३. दुष्ट घोर सामु दुष्टों घोर मच्छों पर नीतिकाम्य की म्युनाधिक रचना तो प्रत्येक काल में होती रही है परन्तु स्वतन्त्र पद्य का निर्माण रीतिकाल में ही दिखाई देता है। रघुनाथ की 'दुष्ट गहन पचावती' रघुराम के समासार नाटिक' तथा गुणम कवि के दम्पतिकाम्य प्रस्तास में विविध दुष्टों का विवरण सविस्तर देगा जा सकता है। परन्तु स्मरणीय बात है दुष्टों के प्रति व्यबहार में परिवर्तन। वहाँ भक्तिकामीन कवि दुष्टों को दामा करने को या चुपचाप उासे दूर हट जान की उत्तम नीति समझते थे वहाँ ये कवि उाकी ताडना से परापाती है तथा उन्हें अनर प्रकार के अभिसाप भी देते हैं। इनके मत में विपदग्रस्त दुष्ट की रक्षा धनीति है। इन काव्यों में पापही साधुओं के वभाव की प्ररणा की गई है तथा सच्चे साधुओं की परीक्षा के साईस निरूप भैया भयवतोबाध में बाईसपरीक्षा" में वर्णित किये हैं।

४. विद्वान् घोर मूर्ख इय काल में मूर्खों के विषय पर जालंधर ने "मूरता-घोसही" तथा किसी अज्ञात-नामा कवि ने 'मूर्ख नेव शीपई' नामक या छोटी-छोटी पुस्तकें तो रिली हैं परन्तु विद्वानों के महत्त्व पर कदाचित् धात्मविनयन को धनुचित मानते हुए उाहोंने भीन रहना ही उचित समझा। फिर भी उक्त काव्यों गुरु सेवा की पड़बड़ कुकवि बसीसी भावि पुस्तकों से विद्वानों तथा मुकवियों की प्रशंसा व्यमित हो ही जाती है। बिद्या घोर विद्वानों के महत्त्व के विषय में स्फुट पद्य तो अनेक काव्यों में देखे जा सकते हैं।

५. गुरु तथा शिष्य गुरु-महिमा के विषय पर भक्ति-काल में स्फुट पद्यों की रचना ही नहीं हुई थी 'सद्गुरु महिमा मोसानी' पुस्तक भी लिपी या छुपी थी। धारा तो की जाती थी कि रीतिकाल में गुरु के प्रति बटिकोण में भेद हो जायया सद्गुरु पूज्य माने जायेंगे घोर कुगुरु उपेदय। परन्तु अगमनाथ की 'गुरु महिमा' के प्रबलानन से विदित होता है कि गुरु चाहे कामी बोधी सोधी, कपटी घोर लंपगी भी हो तो भी शिष्य उक्त हरि से हीन न माने उमकी अटगनी बातों का भी प्रत्यास्याग न करे उसका नून खान घोर अरणामूठ पिये। शिष्यों के विषय में कोई स्वतन्त्र काव्य या दृष्टिगत नहीं होता परन्तु 'गुरुसेवा की अदयद' में मूढ़ या मूय्यपुस्तक की पुस्तक पढ़ाने का निरूप घोर स्फुट पद्यों में पात्रानुसार बिद्या-नाम का उध्योग कई नातिजाव्यों में किया गया है।

६. स्त्री पापे हम कर कुंठे हैं कि श्रुमारी कवियों ने, भोग्या होने के कारण स्त्री की पर्याप्त प्रशंसा की है परन्तु स्त्री होने के नाठ उतने महत्त्व पर कई स्वतन्त्र काव्य इस बात में मझा निन्दा गया। अंत मुनिमा तथा गिरिधर कविराम में अाप्यात्म मार्त

में बिम्बरुप होने के कारण स्त्री को निरा कहा है। धर्मशास्त्रों के "वीरविमोच पत्रि" में एक कुसटा की कथा है जो रहस्य प्रकट हो जाने पर धातुबास कर लेती है। सात बन्द में 'दिनास पम्बोसी' में उन हाव-भावों का उत्प्रेष किया है जिनके द्वारा कुप रिप नामिनियां मुग्ध और कामुक बनों को अपनी घोर भ्रातृपथ धरती हैं। वांकी दास ने 'वैसक वार्ता' में बन्ध्याया के प्रेम की अभिव्यक्तियों का उत्प्रेष करते हुए धर्यागमन के दोषों का सविस्तर बखान किया है। तात्पर्य यह कि पातिव्रत और पतिव्रता के प्रसंगा विषयक स्फुट पद्य तो उपलब्ध होते हैं परन्तु स्वतन्त्र काव्य एकभी नहीं दिखाई देता।

७ धर्म-व्यवस्था और जातिपाति नीतिकवियों ने ब्राह्मणों और क्षत्रियों के विषय में तो किसी स्वतन्त्र काव्य को रचना नहीं की परन्तु सूर छत्तीसी सीह छत्तीसी घोर-विमोच प्रादि उपयुक्त पद्य शत्रिय-विषयक ही हैं। जहाँ इन काव्यों में शत्रियों की वीरता की प्रशंसा है वहाँ बाँकीदास-कृत 'वैसवार्ता' में परमों की उनके कपट पूरा बखान व्यापार के कारण धर्त्यधिक यहाँ की गई है। क्षत्रियों के व्यवसायों की चर्चा तो "वैपतिवाचय बिसास" में सूच की गई है परन्तु स्वतन्त्र काव्य एक भी दिखाई नहीं देता। प्रसन्नता शत्रिय और दासी के समोप से प्राप्त बिदुरों को जो बर्णनकर, कायर और बुद्ध होकर भी शत्रियों में परिगणित किये जाने की अभि-लाषा रखते हैं वांकीदास ने 'बिदुरवलीली' में चाड़े हावों मिया है। जैन कवि जम्म मूलक बणव्यवस्था का विरोध करते हैं परन्तु हिन्दू नीतिकवियों को उसमें धास्या दिखाई देती है। जात-पात के मूढ से जैन कवि भी मुक्त दिखाई नहीं देते। जहाँ संस्कृत 'वि बन्ध्यायर्ल दुष्कुसावयि' कह कर सुबप और सुपुण कन्या को कही से भी सेने के समर्थक से वहाँ कुबजन बजित कुल की बासा से ब्याह का निषेध करते हैं। इसी प्रकार गिरियर कविराम भी जहाँ ब्रह्म के जिज्ञासुओं के लिए बर्णमम विवेक की आवश्यकता नहीं समझते वहाँ ज्ञान-मान के समम जात बरन और कुल का विचार कर लेने की प्रेरणा करते हैं।

कुठकर सामाजिक नीति पर सिद्धित उपयुक्त पद्यों के प्रतिरिक्त अनेक सामाजिक विषयों पर छिटपुट रूप से पद्य भी रचे गय। उदाहरणार्थ कायस्थ-निन्दा मुग्धी कसाई की कलम सुपनों की स्तुति कुपनों की वृत्ता बिन्न रसोहर की यहाँ, मूर्ख के समझ बिज्ञान की विवपता समय की शान-शास की सोक-विप ीतता कुल्ल नामों की बाँधनीयता तथा धारम्बरमय नामों का परिस्वाग ह्यापीनता परापीनता घहरी मित्र पभाबिगाइ कँडी (छरावी) घर में भारी प्रपान रोबवी सुरत प्रादि। मुपास कवि के वैपतिवाचय-बिसास तथा रपुताम के समासार माटिब' से सङ्ग ही अनुमान किया जा सकता है कि सामाजिक नीति के क्षेत्र में भी य नीति-कवि पूणत जागरक थे।

धार्मिक नीति—अन्य कवियों का तो कहना ही क्या इस बाग की जैन गृहम्यों

घोर मुनियों द्वारा रचित कृतियों में जैनी विषय का महत्त्व मुक्तकंठ से स्वीकृत किया गया है। मनोरसविषय प्रनालत कृषि, वाणिज्य तथा वनाकौशल द्वारा होती है और इन तीनों ही पर स्वतन्त्र रचनाएँ इस काल में प्राप्त हैं। कृषि के विषय में चाप की पञ्चात्मक सोझिनयो प्रसिद्ध ही हैं। सुबदेव ने वाणिज्यनीति में धन की प्राप्ति और रत्ना के उपायों का सञ्चालन उल्लेख किया है। गुपाल कवि के वस्त्र-विनायकविनायक में दर्जनो ध्वजसार्थों के मुकुटोपयोगों की धरत रीति से प्रकट किया गया है। भारद्वाज और प्रयसा की बात यह है कि इस ऐतिहासिक प्रधान काल के कवियों ने भी धन को धर्म पूरा पूरा प्राप्ति अनुचित उपायों से प्राप्त करने की प्रवृत्ति प्रामः नहीं की। जहाँ कई स्वर्णों पर बलवत्त विस्थापनों का उल्लेख भी किया गया है वहाँ संतोष की प्रयसा म योकीदास ने 'सन्तोषबाबनी' तथा मानिकदास ने 'सन्तोष तरतठ' नाम की स्वतन्त्र काव्यकृतियों की रचना की है। जो बनाइय होकर भी धन की सुख-सुविधा के लिए न ध्यय करते हैं और न धन-पुम्प द्वारा धन की सहायता, उन्हें इस कविमोनि पुरी तरह कोसा है। बाकीनास के कृष्णवर्ण तथा 'कृष्णवर्णी' म कृष्णों का स्व उपहास किया गया है तथा उन्हीं की 'दातार बाबनी' में दानियों की प्रचुर प्रयसा है। किसी धनार्थ कवि ने 'दातार धूर मी सबाब' में दानी को धीरों से भी खेच सिद्ध किया है। इन स्वतन्त्र काव्यों के प्रतिरिक्त धन न देने के दुष्परिणाम याचक-निष्ठा धन प्राप्ति के लिए क्वचित् अनुचित उपायों का प्रयोग उग्र सबाब, बिनेकी और कतिपय क बागी धन ही सर्वोत्तम गुण बूझकोटी, नीमठ के अनुसार बरकठ, जीर्ण-धीर्ण वस्तुओं के दानी उपवास तथा बिरेचन क बाद तुभादान करनेवासे ध्यक्ति प्राप्ति धार्मिक विषयों पर भी बहुत मानिक काव्य रचना स्पुट पद्यों के रूप में प्राप्त होती है। इससे सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक कवियों की दृष्टि धन-सम्बन्धी विषयों पर धनायास ही जा पड़ती थी।

इतरप्राप्ति-विषयक नीति—जैन कवियों की कृतियों में बीबकया मांसमहाण तथा प्रायेणिक का प्रकृत निषेध होता स्वाभाविक है। राजपूत मरेशों के प्राथित हिन्दू कवियों ने इस विषय पर प्रायः मौन धारण ही उचित समझा है। इन विषयों पर कोई स्वतन्त्र काव्य तो प्रकृत नहीं होता ममरंपमास के 'सप्तध्वजसत परित' भीम की 'सप्तध्वजसत बूहा-कुंभिया' मूरत की "बारहपुत्री" धारि में स्पुट पद्य वर्णित किर्गाई देते हैं। मुरा मंगि धधीम चरय पोस्त, हुबका गाँवा धारि मादक रभ्यों के दोष भी प्रकृत क बयों में स्पुट पद्यों के रूप में लिखे हैं।

विपिन नीति—ऐतिहासिक नीतिकार्यों में देव काल वन, प्राण्य सधार धनुन प्योतिप मूर्यु धर्म परमोकादि धनेक विषयों की चर्चा की गई है। धूमि क उपायों का भी उल्लेख किया गया है और निवास-योग्य स्थान का भी। प्रवास के मुक्त-मुक्तों की भी चर्चा उपलब्ध होती है और मदनूमि में वर्णित धन के लिए होड़ की भी। धन-विषयक नीति में जहाँ समय के मूल्य का स्वीकार किया गया है वहाँ धनधर

के महत्त्व को भी। सत्ययुग से लेकर कर्मियुग पर्यन्त धर्म और सत्य प्रमदा क्षीण होते जाते हैं, इस परंपरागत भावना का स्थाय ये कवि भी नहीं कर सके। चाचा हित वृन्दावनवासी की 'कर्मिपरिम कर्मि' तथा रचिकगोविन्द के "कर्मियुग रासों" में धार्मिक पारिवारिक तथा सामाजिक दुरीतियों का कारण कर्मियुग कहा गया है और उनसे रक्षा के लिए कृष्ण का आह्वान किया गया है। आदिवास तथा भक्तिवाद की अपेक्षा इस काल में भाव्य की निरवत उदम पर बाकीदास ने धर्म के बीता-परक काव्यों में अधिक बल दिया है। गोपाल ज्ञानक ने 'कर्मघातक' में धर्म को धर्म के अधीन भी कहा है परन्तु कर्म रेखा की प्रमात्रनीयता को स्वीकार किया है। धर्म्य पद है कि उद्योग और पुरपात्र के महत्त्व की जितनी अधिक भावा इस युग से प्रपक्षित की उतनी समित नहीं होती। परम्परा से तो साम्यवाद प्राप्त था ही पताशियों की राजनीतिक पराधीनता भी उसे प्रकृष्ण रकने में सहायक हुई हो तो आश्चर्य नहीं। सांसारिक सुख भोगों की जितनी प्रेरणा शृंगारिक कवियों में है उतनी हिन्दू नीति कवियों में नहीं। धर्म नीति-कवियों में तो उसकी मात्रा और भी कम है। एक भी ऐसा पद्य दिखाई नहीं देता जिसमें जीवन की प्रबधि को अनिश्चित मानकर दीर्घजीवी बनने की प्रेरणा की गई हो। जो भी कुछ रोगोपचार किये जाते हैं वे बुद्ध-निवारण मात्र के लिए हैं। आयु तो न जिस भर पटती है और न राई भर बढ़ती है। शृंगारिक कवियों की अपेक्षा इनमें ईश्वर धर्म और परमोक्त में धारणा अधिक है परन्तु परिहास के रूप में दिखाता की गईं मुझे इन्होंने पक्षवद कर ही की हैं। महात्त्व के लोप और 'महात्वी' लोगों की, महत्त्वता का जो संतन गिरिधर कविराय ने किया है वह तो अनुपम ही माना जायगा। बाकीदास की 'नीतिमंजरी' में 'राजनीति' प्रधान है परन्तु सामान्य लोगों का भी उससे "धर्म के प्रति इत का जवाब परपर" से देने की तथा उसे जैसे-जैसे परास्त करने की प्रेरणा प्रनायास ही प्राप्त होती है। पकून और परसित-उद्योतिप में जैसा विरवास आदिवास और भक्तिवाद में अमनिक जायसी तुमसीवास धारि की रचनाओं में पाया जाता था वैसा ही इस काल में महात्वी की कहावतों में देखा जा सकता है परन्तु धर्म कवियों में वह अपेक्षाकृत कम है।

धर्म विषय के प्रसंग में अन्त में इतना ही कहना सम्येष्ट होगा कि यद्यपि रीति कासीन नीतिकवियों में आदर्श व्यवहार के पक्ष भी विद्यमान हैं तथापि इस काल की प्रमुख विशेषता है व्यावहारिकता की अधिकता जो निम्नांकित प्रकार की नीतियां से स्पष्ट हो जाती है—सरल और बुद्धि में मिसाप नहीं होना धर्म उपाय-बल से प्रेरण्य है प्रति प्रविष्टता प्रनादर का कारण है बसवात् नियम या संहार धर्म है सोबाप बाध से बचना ही उचित है। घुरे स भी कमी हित हो ही जाता है यहाँ जायो यहाँ से सौट कर आ सरो निवस क पाष उद्घुष्ट मुण का होना आपरि-जनक होता है मसाई का फल भी बुरा हो पाया है। जैसे-जैसे स्वार्थ सिद्ध करना चाहिए तथा-सम्भव किसी को दृष्ट न करना चाहिए मूढ़ ही सज्जन दुर्जन में समदर्शी होत है-

निस्तेज व्यक्ति की प्रकृति होती है। उन्नति कठिन है और प्रगति सहज।
कहना न होगा कि इस प्रकार के ऐहिक विषयों की बहुलता तत्कालीन सामाजिक
परिस्थितियों और कवियों की आस्थाभूमि का ही परिणाम है।

रस और भाव—रसों और भावों की व्यंजना की दृष्टि से भी रीतिकारण
अधिकतर रचनाएँ उन्मुख नहीं हैं। यद्यपि बाल्यकाल रस को छोड़ सभी रसों की व्यंजना
हुई है तथापि प्रमुख स्थान हास्य और और भाव्य रस का है। बांकीदास ने
कृष्ण-गङ्गीसी तथा रूपखण्डस्य में रूपकों को सांकेतिक मित्राङ्ग में स्त्री-स्वभाव के
पुरुषों को कुकवि बत्तीसी में कुकवियों को कायर बानगी में भीरुओं को और बँस
बाता में बँसों की हास्य का आनन्दन बनाया है। गुणालकवि ने वंशतिबाधपरिहास में
विभिन्न धर्म व्यक्तियों को रघुराम में समासारनाटिक में विभिन्न दुर्जनों तथा
सहरी मित्र को बाबा हितवृत्तात्मक दास ने अतिचरित्र केमी में और देवप्राण में सास
बहू का भगवा म भरथेड़ बहू को उपहासास्पद चित्रित किया है। और रस के भेदों
में से बुद्धवीर तथा दानवीर की व्यंजना ही अधिक दिखाई देती है। बांकीदास की
मूरच्छतीसी सीहछतीसी और और भिमोद में तथा गोपाल जानक के और छत्रक में
बुद्धवीर सम्यक व्यंजित हुआ है। बांकीदास की बातारजागनी तथा मुञ्ज-छत्तीसी
और भद्रातनामा कवि के दानारमूर गो सबाद में दानवीर धर्म्य प्रस्तुत
हुआ है। शीतदास गिरि गिरिपर कविराय तथा जन सेवको में दान्य रसका
आधिनय है। रघुनाथ की दुष्टदहन पञ्चावली में रौद्र रस तथा बांकीदास
की बीरदाम्यक कृत्यों में रौद्र भीमत्त्व अद्भुत और भयानक रस की अतिव्यक्ति
यत्र-यत्र हुई है। भावों में से जसदास, भगवतीदास गिरिपर कविराय आदि
की रचनाओं में निरंज बार्हस परीसा में धृति शेषक बत्तीसी छीसबत्तीसी
प्रेमरमाकर आदि में रति सम्योप बाबनी सतोप-मुरठक आदि में सम्योप वंशत्रिय
संवादादि में ईर्ष्या गुरु महिमा में गुरुभक्ति और धर्म-गङ्गीसी में स्वामिभक्ति आदि
भाव मुख्य अभिव्यक्त हुए हैं।

गुण-बोध—इस काल की नीति विषयक रचनाएँ प्रसाद छोड़ और माधुर्य
तीनों ही गुणों से मुक्त बिलस्य देखी हैं। प्रसाद तो प्रायः सार्वभिक है। बांकीदास
गोपालजानक रघुनाथ आदि की रचनाओं में भोज तथा शीतदास गिरि भैया भगवतीदास
भूकरदास गुणालकवि आदि की रचनाओं में माधुर्य की मात्रा पर्याप्त है। नीति के
कुट्टर कवियों में प्रमुख कवियों की अपेक्षा इन गुणों की ग्युतता है। प्रमुख कवियों
में तो अपनी रचनाओं को यथा-सम्भव शास्त्रीय दोषों से मुक्त रखने का उद्योग किया
है। परन्तु कुट्टर कवियों में हठवृत्तत्व अधिक-अदत्त ग्युतपदत्व आदि बोध यत्र
उप पाये ही जाते हैं।

भाषा—रीतिकालीन नीतिकवियों की कृतियाँ दो भाषाओं में प्राप्त हैं—उच्च
भाषा और राजस्थानी। शीतदास गिरि भूकर दास भगवती दाम रघुनाथ आदि

राजस्थान से बाहर रहन बात कवियों की इतनी ब्रजभाषा में है। राजस्थान-बासी वृन्ध देवीदास आदि कुछ कवियों ने अपनी रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखीं और बांकीदास नाथिया कृपाराम आदि ने राजस्थानी में। महमूदस्लम भर्मसिंह आदि जैन मुनियों की रचनाएँ राजस्थानी और ब्रजभाषा दोनों में प्राप्त होती हैं। उनकी पिगल-रचनाओं में भी राजस्थानी का पुट बिद्यमान रहना है। राजस्थान के कवियों की इतियों में विशेषतः राजाधित कवियों की इतियों में छारसी घरबी आदि के मछो (गछा) सारख (सारख) पोसाक आदि तद्भव शब्द अग्यभ्रांतीय शब्दों की इतियों की अपेक्षा कुछ अधिक ही मदिता होते हैं। राज-दरबारों में यवन-संस्कृति का प्रभाव ही इसका कारण प्रतीत होता है। कुछ मुनिया की भाषा में उक्त देघाटन के कारण पञ्जाबी आदि के भी शब्द दुष्प्रियत हत हैं। एण रमन दरण आदि के स्थान पर एणु इरम इरम आदि में इतिव ब्रजनों का प्रयाग नी राजस्थान के कवियों की रचनाओं में पंदाति की परम्परा के अनुसार लिखाई दता है। अधिकतर कवियों ने अपनी भाषा को मुख्य ही रचन का मल किया है परन्तु कई कवियों ने बीच-बीच में हास्यास्पद टूनी-पूटी संस्कृत के श्लोक भी रचि य हैं। प्रमूल कवियों की भाषा साधु सुवर्ण तथा सुगठित है परन्तु अधिकतर फटकर कवियों में भरती के तथा बिहृत शब्द भी अनकन देखे जा सकत हैं। सुगत कवियों ने भाषा को प्रमविप्यु बनाने के लिए इतियों और शोन्नोचितों का नी पधमम्ब ग्रहण किया है।

काव्य-विधान—यद्यपि इस काल में रदुराम-वृत्त 'समासार माटिक' नाम से दुरम काव्य का प्रामाण देता है परन्तु प्रामुनिक दृष्टि से यह काव्य काव्य ही है। प्रथम-अग्नोदय नाटक के अनुसार इत्ये गये परन्तु वे अग्यरमप्रधान हैं। नीति की रूप रचनाएँ तीन वर्गों में विभाज्य हैं—१ मुक्तक २ प्रयत्न ३ निबन्ध।

१ मुक्तक-काव्य—इस काल में नीति-विषयक जो रचनाएँ प्रस्तुत की गईं उनमें सस्या और कवित्व की दृष्टि से मुक्तक का ही स्थान स्पष्ट है। जसजान भैया मपजरीदास बुन्द भर्मसिंह गोपाल जानक भूपरदास पिरिखर कवियान मणुपति आरती कृपाराम बारूठ बांकीदास सुबजन दीनदयान आदि के नीति-मुक्तक हमारे साहित्य के भीरवक हैं। अगुत नीति की बात इतल मामिक रूप से मुक्तक में कही जा सकती है, कथाविद् इसी रूप से प्रम-पराय्य में नहीं। नीति-विषयक प्रबन्ध-काव्य की रचना भी असम्भव तो नहीं परन्तु बसा प्रतिभाशाली यदि इस रूप में कोई बिछाई मनी देता। अस्तु मुक्तकों के रचयिताओं ने अपनी रचनाएँ संघ-रूप में कीं और सगुहृत पदों की सरया के अनुसार उन्हें पञ्चीसी दशोसी छतीसी बावनी-पंचावनी, सतरी बहत्तरी चतुर मट्योत्तरी (१०८ पदों की रचना) और सतसई नाम दिये। पद्य, कथा आदि की सस्या के अनुसार इतियों का नामकरण भारत में शिरकाम से प्रचलित है। ससितापञ्चकम् गंगाष्टकम् स्थानदशकम् बीरवि-तिवका सिहासन-शक्तिविका, बीरपञ्चाविका सुवत-सप्तति नीतिपठकम् गहा-सतसई आदि

संस्कृत और प्राकृत की रचनाएँ इसी प्रकार की हैं। इन्हीं के अनुकरण पर नीतिकाम्य-कार्तों ने भी अपनी पञ्चीसी बत्तीसी छत्तीसी बाबनी सतस्र आदि की रचना की। परन्तु स्मरण रहे कि ऐसे संप्रहों में पद्य म्यूनाधिक भी दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ योगानन्द आनन्द के पूर्वोक्ति चारों सतस्रों में से किसी एक की भी पद्य-सत्या स्वनाम की सार्पक नहीं करी।

१ प्रथम काव्य—इस वर्ग के अन्तर्गत गुणानन्द कवि के दासि बाबय विभास रघुनाथ के 'समासार नाटिक मन्तरग सास क सप्तम्यसम परिश' और अनासककृक श्रीवाकिलोद परिश' को रखा जा सकता है। ये द्वितीय प्रकार तथा प्रथम की दृष्टि से निम्नलिखित निबन्धनात्मक से उत्तम हैं।

२ निबन्ध काव्य—भैया भगवतीदास का 'पंचेन्द्रिय संवाद', देवा बहू का 'हाम मयु बूँव', और सास-बहू का झगड़ा' आदि रचनाएँ इस वर्ग के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं।

सामान्य रूप से कह सकते हैं कि प्रथमात्मक और निबन्धात्मक रचनाओं की अपेक्षा मुक्तक रचनाएँ अधिक कविस्वपूर्णा और प्रभविष्णु हैं परन्तु उपर्युक्त संपत्ति-बापय विभास और 'समासार नाटिक' अपवाद-स्वरूप हैं।

शैली—रचनाओं की संख्या के समान ही शैली की दृष्टि से भी नीतिकाम्य पूर्ववर्ती कामगुण की अपेक्षा अधिक सम्पन्न हैं। इसमें निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग दृष्टिगत होता है— १ सध्वनिक २ उपदेशात्मक ३ ऐतिहासिक ४ सव्यावृत्त ५ सस्यात्मक ६ संवासात्मक ७ कथात्मक ८ रूपक काव्य शैली ९ अग्याप देशात्मक १० व्याख्यात्मक ११ सम्बोधनात्मक १२ व्यंग्यात्मक १३ कवका शैली।

इसमें से प्रथम चार शैलियों के निदृश्य तो बुद्ध योगानन्द आनन्द आदि कवियों की रचनाओं में सुप्रसिद्ध हैं। स्वागदास के हितोपदेश में संस्यात्मक शैली, गुणानन्द कवि के संपत्तिबाबयविभाग में संवासात्मक शैली मन्तरगसास के 'सप्तम्यसम परिश' में कथात्मक शैली, भगवतीदास के 'पंचेन्द्रियसंवाद' में रूपक शैली बाबनीबास की 'सीह छत्तीसी' में अग्यापदेशात्मक शैली दीनदयाल मिश्र के अयोक्ति कल्पद्रुम' में संबोधनात्मक शैली बाबनीबास की 'कृपण पञ्चीसी' में व्यंग्यात्मक शैली मूरत की 'बाहू पढ़ी' में कवका शैली आदि का प्रयोग सहज ही देखा जा सकता है। प्रायः इन सभी शैलियों का म्यूनाधिक प्रयोग संस्कृतादि प्राचीन भाषाओं में नीतिकाम्य में देखा जा चुका है। आश्चर्य तो यह है कि इन कवियों का पत्रहृ तिथि सप्तवार आदि शैलियों में उचित को संघ शमी ठर हमारे देखने में नहीं आया।

उद—रीतिज्ञानी नीति कवियों ने मुक्तक बोधा गोरठा कवित्त उभया, अग्या और अन्धिया उन्धों का प्रयोग किया है। चौगई श्रीबोसा जिनगी मासिनी बाप पत्रि आदि उन्धों का भी कहीं-कहीं प्रयोग दिखाई देता है। अधिकतर प्रयोग मासिक उन्धों का ही लिया गया है परन्तु रघुनाथ म मासिनी' पण्डानुत का भी व्यब-

हार किया है। कई कवियों ने एक-एक कृति में अनेक छन्दों का व्यवहार किया है कई ने एक-एक कृति में एक ही छन्द का। जैसे, धर्मसिंह की छप्पय बाबनी में केवल छप्पय छन्द प्रयुक्त किया गया है तो 'सनसार माटिक' में अनेक छन्दों का। फिर कई कृतियों के नाम से छन्दों में भ्रम होने की भी सम्भावना है क्योंकि काल और प्रदेश के कारण छन्दों के नाम भी परिवर्तित हो चुके हैं। उदाहरणार्थ लक्ष्मीवत्सल उपाध्याय तथा बिनहृप (असराज) की कवित्त-बाबनियों में छप्पय का प्रयोग दिखाई देता है। पृथ्वीराज रासो में 'छप्पय' के स्थान में 'कवित्त' का प्रयोग देख ही चुके हैं। इसी प्रकार बिनहृप की मातृका-बाबनी में सर्वप्रथम को कवित्त तथा अनेक कवियों की रचनाओं में कवित्त को इकतीसा सर्वप्रथम कहा गया है। धर्मसिंह की कुंडलिया-बाबनी में कुंडलिया की समाप्ति पर सानवें चरण के रूप में प्रथम चरण के कुछ छन्दों की धावृत्ति टेक के समान की गई है। इससे अनुमान होता है कि कुंडलिया के सत्वर पाठ के पश्चात् प्रथम चरण को दोहराया जाता होगा। गोपाल 'जातक के कीर्तिघटक' में मत्स्यागुप्रास औबोसा ८ चारों चरणों में न होकर, केवल प्रथम और द्वितीय में तथा तृतीय और चतुर्थ में है। बांकीदास ने नीतिमञ्जरी में 'बड़ो बूहो' और 'दोहो तुबैरी' का भी प्रयोग किया जिनके सदास्य बांकीदास के विवरण में दिये जा चुके हैं।

असकार—क्योंकि नीति-कवियों का मुख्य उद्देश्य भावोन्मेष नहीं पाठकों के मन पर नैतिक धर्मों को प्रकट करना होता है इसलिए इनकी रचनाओं में धर्मास चारों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। तो भी अनुप्रास ताटानुप्रास बीप्सा तथा ममक का व्यवहार यत्र-तत्र दिखाई देता ही है। धर्मास चारों में से दृष्टान्त और धर्मोक्ति का प्रयोग धर्मों की अपेक्षा बहुत अधिक हुआ है क्योंकि दृष्टान्त-समर्पित नीति अधिक हृदयघाही हो जाती है और धर्मोक्ति व्यंग्यात्मक के विशेष परम्परा से हृदय को तुरन्त आह्वानित कर देती है। जैसे तो अधिकतर कृतियों में दृष्टान्त और धर्मोक्तियाँ यत्र-तत्र दिखाई देती ही हैं परन्तु मयबतीदास की दृष्टान्त-मञ्जरी बृन्द सतसई और दीनदयाल की दृष्टान्त-तरंगिणी में दृष्टान्तों की तथा गणुपति भारती के धर्मोक्ति-वर्णन बांकीदास की सीह-रुतीसी और धवल-मञ्जरी तथा दीनदयाल के कल्पद्रुम में धर्मोक्तियों की छटा देखते ही बनती है। दोष धर्मास चारों में से अपना रूप उल्लेख, धावृत्ति दीपक निदर्शन और धर्मास-न्यास का प्रयोग अधिक दिखाई देता है।

रीतिशाली नीति-काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

- १ नीति के जितने कवि इस काल में प्रस्तुत हुए उतने न प्रादि काल में न मिलें काल में।
- २ नीतिविषयक अतिनी मौलिक, अनूचित उपहारमक तथा रफु कृतियाँ इस काल में प्रस्तुत की गईं उतनी किसी अन्य काल में नहीं।
- ३ इतर प्राणिकविषयक नीति को छोड़कर सब प्रकार की नीति पर अनेक

स्वतंत्र काव्यों का प्रणयन किया गया।

- ४ धार्मिक स्वास्थ्य रागनिवारणार्थि पर स्पष्ट बल दिया गया तथा बाह्य मोक्ष पर स्वतंत्र काव्यों की रचना हुई।
- ५ बीछा काव्यता की प्रति प्रग और समय पर अनेक कव्यों का निर्माण हुआ।
- ६ पारिवारिक जीवन उपेक्ष्य नहीं रहा, काव्य बन गया।
- ७ स्वामी सेवक सुकवि और भुक्तवि पर धर्मव्यतिकर रचना हुई।
- ८ कुष्ट जन उपेक्ष्य और काम्य नहीं रहे लड़कन और अभिषारों के पात्र बने।
- ९ शूदारी कवियों को छोड़कर प्रायः सभी कवियों का जन्मभूतक बर्तमानवस्था तथा जात-पात में विश्वास पाया जाता है।
- १० वेत्सावृत्ति तथा कुम्हटाव्य के विरोध में तो काव्य सिद्धे गये परन्तु स्त्री के महत्त्व का परिचायक कोई स्वतंत्र काव्य दिखाई नहीं देता।
- ११ धन के महत्त्व को मुक्त कण्ठ से स्वीकृत किया गया परन्तु धर्मव्यतिकर जगहों से उसके अपायजनक प्रायः निषेध किया गया।
- १२ वदन्वयता की प्रसंसा तथा कृगणता की निन्दा पर कई काव्य प्रणीत हुए।
- १३ मांस सुरा शष्पीम आदि मावक इव्यों का अराजावित कवियों विसे पत-जन कवियों ने उग्र शण्डन किया।
- १४ भारती की अपेक्षा वृष्टि व्यवहारिकता पर अधिक केंद्रित रही। देश काम पात्रादि को देख कर उचित व्यवहार की शिक्षा दी गई।
- १५ उद्यम के महत्त्व का तो पर्याप्त बलन किया गया परन्तु भाव्य को अभिसूत करने की शक्ति उस में नहीं दिखाई गई।
- १६ जैन कवियों की अपेक्षा अज्ञान कवियों ने सांसारिक सुखों को अधिक भोग्य कहा।
- १७ शकुन, ज्योतिष कसिपुत्र आदि के प्रमाण में प्रात्या इस काल में भी लीए नहीं हुई।
- १८ प्रमुख कवियों की रचनाएँ प्रायः सरल और भावपूर्ण हैं तथा उन में हास्य, वीर और शान्त रस प्रभुत हैं।
- १९ अधिपतर रचनाएँ अजभापा और राजस्वामी में की गई। कुछ एक रचनाओं में गुजराती पंजाबी आदि के भी अस्व-दिशमान हैं।
- २० यद्यपि प्रयोग और निबन्ध रूप में भी काव्य-रचना हुई तथापि प्राप्राप्य मुक्तक रचनाओं का ही है।
- २१ अधिपतर रचनाएँ पञ्चीसी दहीसी छत्तीसी आदि के रूप में की गई परन्तु छन्दों की संख्या घटकर सामानुसारिणी नहीं है।
- २२ भाव्य छन्दों की अपेक्षा बोधा घोटा कवित्त, सर्वथा उल्लय और कृत्रिमता

सम्बों का प्रयोग बहुत अधिक किया गया ।

२३. अन्य धर्मकारों का जो प्रयोग हुआ ही बृष्टान्त और सम्बोक्ति पर जो स्वतंत्र काम्यों की भी रचना हुई ।
२४. सप्तवार और पञ्च-तिथि रीतियों के प्रतिष्ठित प्रायः पूर्वोक्त सभी रीतियाँ व्यक्त की गईं । सम्बोधनात्मक धर्मी तो इसी काल में दिखाई दी ।
२५. ऐहिकता की प्रधानता के कारण सामान्य जनो के लिए नितना उपयोगी इस काल का नीतिकाम्य है, उतना किसी अन्य काल का नहीं ।

पूर्ववर्ती नीति-काव्य का हिन्दी-नीतिकाम्य पर प्रभाव

प्रायः प्रत्येक साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्यों का किसी-न-किसी रूप में अनुभाविक मापा में ऋणी होता है। जहाँ यह पूर्ववर्ती साहित्यों से भाव मापा शैली, छन्द अलंकार आदि कई कार्यों ग्रहण करता है, वहाँ परवर्ती साहित्यों को अपनी अनियम विरोधताओं से प्रभावित भी करता है। हिन्दी का नीति-काव्य भी उक्त नियम का अपवाद नहीं है। यह भाव मापा, रस अलंकार विधान शैली और छन्द सभी कार्यों में पूर्ववर्ती साहित्यों का बोझ-बहुत ऋणी है ही।

(१) भाव—वैयक्तिक नीति के क्षेत्र में वैदिक तथा संस्कृत-नीतिकाम्य में शरीर की पवित्रता दीर्घायु स्वास्थ्य तथा धात्म-रसा पर बहुत बल दिया गया है। सपत्ति पत्नी और पुत्री का परित्याग करके भी अपनी रक्षा की प्रेरणा की गई है। पानि प्राकृत तथा अथर्ववेद के नीति-काव्यों में प्रायः शरीर को मसिन दुर्गन्धमय और मस्कर बहाकर उसकी उपेक्षा पर ही बल दिया गया है। हिन्दी नीतिकाम्य इन दोनों ही विचारों से प्रभावित है। शीर-काम्यों के रचयिताओं ने यस की तुलना में शरीर को गण्य कहा है। भक्तिवाद के अधिकतर कवियों ने काम्या को कम्युचित और मरकर कह कर उसकी उपेक्षा पर बल दिया है और नीति-काव्य कवियों ने उसे स्वल्प तथा विद्युत् बना कर सुख भोगने की प्रेरणा की है।

मानसिक नीति के क्षेत्र में भी इसी प्रकार का प्रभाव भेद दृष्टिगत होता है। जहाँ वैदिक तथा संस्कृत-नीति-काव्य विद्या-माहात्म्य का बयान करते-करते नहीं बल्कि और अन्तः को निरखर रखते कामे जनकों को वीर्य और शत्रु कहते हैं वहाँ भारत सासात्कार पर अत्यधिक बल देने वाले प्राकृत व अथर्ववेद के कवि पोषी-विद्विषों की उपेक्षा ही हितकर समझते हैं। इस क्षेत्र में हिन्दी-सन्त-जति प्राकृत तथा अथर्ववेद कवियों के अधिक ऋणी हैं और अन्य कवि संस्कृत-नीतिकाम्य के।

धार्मिक क्षेत्र में सम्भ्रितता और संपुणों के महत्त्व पर उपर्युक्त सभी साहित्य सहमत हैं। हिन्दी-नीतिकाम्य इस क्षेत्र में उक्त सभी साहित्यों का समान रूप में ऋणी है।

२ पारिवारिक नीति—पारिवारिक नीति के क्षेत्र में मसपि हिन्दी के पूर्ववर्ती सभी साहित्यों में माता-पिता को पूज्य उनकी धात्रा को निरोधाय, यद्दिन भायों को र्नेह-मात्र तथा पत्नी को जीवन-सदा कहा गया है तो भी पानि आदि के नीतिनाम्य

में इन नयी सम्बन्धों को मोक्ष-मार्ग का वापक और बन्धन कह कर घातसाधना की ही धमस्कर माता है। हिन्दी का पारिवारिक नीतिकाम्य अधिकांश में पाप्मि आदि से ही प्रभावित है। वह इन सम्बन्धों को उत्कृष्ट मूला मानता हुआ भी इनके निर्वाह की यत्नपूर्वक प्रेरणा करता है। शौरकाव्य रामदास्य तथा रीतिकामीन काव्यों में पारिवारिक कर्तव्य निर्वाहने की प्रेरणा अधिक दिखाई देती है।

२ सामाजिक नीति—वैदिक नीतिकाम्य तो युष्मन्-कर्मनुसार वर्ण-व्यवस्था मानना और जारों बलों से प्रेम करने की शिक्षा देता है परन्तु परवर्ती सम्पूर्ण काव्य में वर्ण-व्यवस्था उत्तरोत्तर जगमग होकर जात-जात का रूप धारण कर गई। ब्राह्मण घटपन्त पूर्य हो गये तथा शूद्र घटपन्त हुए और प्रकृत। जगम से अंध-नीच मानव के सिद्धांत का अन्तर्गत पाप्मि तथा प्राकृत नीतिकाम्यों में उपलब्ध होता है। अंध-नीच-नीति काव्य में फिर जात-जात अपना फिर उठाती हुई वृष्टिगोचर होती है। हिन्दी के सामाजिक नीतिकाम्य में बोना ही विचारधाराएँ मसिध होती हैं। नायों तथा सन्तों के जगम-मूषक भेद भाव का तीव्र अन्तर्गत किया ता तुमसी आदि ने जगम मूषक व्यवस्था तथा अंध-नीच का पुनः प्रतिपादन। कर्म-प्रधान और जन प्रमान दोनों ही विचार धाराएँ का प्रभाव हिन्दी-नीति-साहित्य में मग-उग मसिध होता है।

स्त्री का स्थान—वैदिक नीति-काव्य में स्त्री सम्मान्य थी परन्तु उत्तरोत्तर उनका आदर कम होता गया। संस्कृत-नीति-काव्य की अपेक्षा भी उत्तम मान पाणि प्रकृत तथा अंध-नीच म मूषक हो गया। कारण पाप्मि आदि के साहित्य अधिकांश जगम्य प्रवण शीघ्र-भेद कवियों द्वारा रचित हैं और आध्यात्मिक साधनाओं में बाधक होने के कारण मारी उनमें निघ मानी गई। हिन्दी नीति-काव्य में भी मारी का स्थान स्पृहणीय नहीं है। रीतिकामीन शृंगारी-काव्य में उत्तम रूप-भाषण की प्रशंसा तो बहुत है परन्तु वहाँ वह भोग-सामग्री के रूप में प्रशंसा की पाप बनी है देवी के रूप में अद्वेष नहीं।

देश्य—देश्य-प्रथा विरकास से भारतीय समाज का एक कर्तक रही है। पापु बस धन प्रणिष्टा आदि का नाशक होने के कारण बर्यागमन का अंश उप विरोध संस्कृत प्राकृत आदि भाषाओं के नीति-कवियों ने किया। वही ही अधिकांश प्रायः समूह हिन्दी-नीतिकाम्य में भी हुई। यह बात धूसरी है कि वही-वही उनस धनक कर्ताओं की शिक्षा ग्रहण करने की भी प्रेरणा दिखाई देती है। बलाकि उनका धनक कर्ताओं में कुशल होता अधिकांश फामा जाता था।

गुरु—आध्यात्मिक और लौकिक पद प्रदर्शक हान के कारण गुरु और आचार्य भारतीय समाज में मदा ही विनिष्ट स्थान तथा सम्मान के अधिकांश रहे हैं। इरी कारण संस्कृत पाप्मि आदि के नीतिकाम्यों में उन्हें धनकन अत्यंत पूज्य कहा गया है। अक्षर ज्ञान के दाता गुरु की अरोदा आध्यात्मिक रहस्य अद्वैत कराने वाला मुक्त अद्वैत माना गया है। हिन्दी-नीतिकाम्य न गुरुपूजा की परम्परा का अन्तर्गत काव्य। गरा।

परन्तु इसमें गुरु को वहीं तो मगवान् के समान मान्य कहा गया है और कहीं उससे भी अधिक पूज्य।

राजा—प्राचीन भारत में राजा बंध-सम्मानुगत भी होते थे और प्रजा द्वारा निर्वाचित भी। वैदिक काव्य में नायकों को तेजस्वी तथा भुली राजा निर्वाचित करने तथा उसे सहयोग देने की शिक्षा मिलती है। अत्याचारी राजाओं को सिंहासन-स्थित करने के उन्मेष भी उपसम्भ होते हैं। परन्तु जहाँ शासक बंध-सम्मानुगत होते थे, वहाँ प्रजा को उनका दाहर-सम्मान करने की प्रेरणा ही दिखाई देती है क्योंकि राजा वेपथियों के बंधों से निर्मित माना जाता था। उससे कुछ दूर रहने में ही भय माना जाता था क्योंकि भूय कास एक को ही कबलित करता है परन्तु क्षुपित गेज समग्र बस का ही उन्मेष कर देता है। अधिकतर हिन्दी-साहित्य की रचना विदेशीय स्वच्छन्द शासकों के काल में हुई जब 'राजा कर धो स्याव' की उक्ति परित्याग होती थी। अतः उससे राजाशासक के पास पर विशेष बस दिया गया। शासक की निरंकुशता के कारण उस पर विस्वास न करने की शिक्षा भी दी गई।

४ आर्थिक नीति—वैदिक काव्य में धन की उपादेयता की बार-बार प्रतिबन्धित हुई है परन्तु पापावित धन को मष्ट करने की उपास भावना भी मक्षित होती है। संस्कृत-नीति-काव्य में धन की प्रशंसा की तो प्रचुरता है परन्तु सपारजन रख रख्य मादि न बुझकर होने से कहीं-कहीं उसे निन्द्य भी कहा गया है। पालि, प्राकृत और अपभ्रंस में कहीं-कहीं धन की प्रशंसा भी है परन्तु धार्म्यात्मिक उन्नति में बाधक होने के कारण वह प्रायः व्यक्त-रूप ही माना गया गया है। इन दोनों विचारधाराओं से प्रभावित हिन्दी नीति-काव्य में धन की प्रशंसा और निन्दा दोनों ही मिलती हैं। अर्थिककाल के कवि जहाँ सम्पदा की निन्दा करते नहीं बचाते वहाँ ऐतिहासिक कवि प्रायः इसका भूलागम करते ही दिखाई देते हैं। लक्ष्मी की अक्षता और भाषना को निम्न करने में हिन्दी के नीति-काव्यकार पूर्ववर्ती साहित्यकारों से प्रभावित हैं।

५. इतर प्राणि विषयक नीति—वैदिक काव्य में भी प्राणि उपमोहो प्राणियों को रक्षा तथा सर्व प्राणि हातिकारक जीवों की हिंसा की प्रेरणा मिलती है। प्राणि मान को भिन्न की ओर से देखने का उपदेश भी विद्यमान है तो युद्ध में शत्रु-संहार भी वर्ण्य कहा गया है। संस्कृत-नीति-काव्य में मांस को मांस-वर्जक कहकर अनिवायता की धारणा न मानव-जीवन के सुख को उनके जीवन से अधिक मूल्यवान् भी बताया गया है। पालि, प्राकृत आदि के साहित्यों में जीव-ध्या विधेय कर्तव्य, अहिंसा परम धर्म तथा मांस मरण्य धारण्य निन्द्य हो गया है। हिन्दी का अधिकतर नीति काव्य इस धर्म में पालि आदि से ही विशेष प्रभावित है।

६ निर्धित नीति—निधित नीति के क्षेत्र में वैदिक काव्य उद्यम का ही प्रसंगक है माप्यता का नहीं। परन्तु परवर्ती संस्कृत-काव्य में उद्यम की प्रशंसा होते हुए भी धर्म की अपरिहार्यता पर भी बस दिया गया है। धातरय-परिस्थान तथा शत्रुघोष की

प्रख्या पाणि धादि के नीतिकार्य में बहुत उपसम्प हाठी है परन्तु "माय की समिट रेखा' का उल्लेख उनमें भी कम नहीं है। सामाजिक तथा धार्मिक विषयताओं का कारण पूर्ववृत्त कर्म माना गया है। सत्कार के निम्न नरकर और त्याग्य होने का विशेष उल्लेख कविक साहित्य में नहीं है। परन्तु परवर्ती उल्लेख पाणि धादि के साहित्यों में यह नाबना बढ़ती गई है और सांसात्तिय मय्य दन मान मय है। स्पान और कास के महारक का निम्नरा संस्कृतादि के नीतिकार्य म यत्र-तत्र उपसम्प होता है। हिन्दी नीतिकार्यों पर इन सनी बाणों का बाडा-बहुत प्रभाव निम्नन्ह मरित होता है।

इसक पठितिकरु नैतिक मुविचार समान रूप स संस्कृत प्राकृत और हिन्दी भाषाओं में उपसम्प हात है और बरबस यह मानने की प्रख्या करत है कि एक मुन्दर विचार को विभिन्न भाषाओं क कवियों ने उल्लेखर ह्य तक पहुचान का साम्य उद्योग किया है। अस मानने से मनुष्य ह्यका पडता है इस नैतिक ठम्य को कवियों ने विद्वानुसामन की कथा द्वारा यों व्यक्त किया है—

पात्रता हि पुरुषस्य मूह्यतः पाशनापप्रितमेन तथा हि ।

सद्य एवं मन्नामपि नि-उर्धमिनो मरति पाप्सितुनिष्ठम् ॥^१

यनि मयमत्यणि मनुन्दरा सगुई ह्य्या सोइ ।

पइ इच्छु पडतराउ देहु म मगगु रोइ ॥^२

सांगे धम्ये एम पर, दिनी करी पडि काम ।

रोन पग बमुना फरी, सळ बापर्म भाय ॥^३

(७) भाषा—हिन्दी क नीति-कवि नापा क धम में भी पूर्ववर्ती साहित्यों के सामाठी है। इनक नीतिकार्यों में स एसे सकडों पद्य प्रस्तुत किये जा सकडे हैं जिनकी भाषा पर संस्कृतादि प्राचीन भाषाओं की समिट छाप बिचार्ई देती है। उगाहरणाय—

(क) बवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ।

समुद्रमयनाम्नेमे दूरिल्लनी हरो विदम् ॥^४ (धमात कवि)

नाम्य सवत्र फलत है, न च विद्या पौरुष सरत ।

हरि हर निम सापर मयो हररी मिम्यो परत ॥^५

(गिररर कविराय)

(ख) रिपडा संकुडि मिरिय जिम इरिय पत्तद निवारि ।

द्वितित पुत्रइ पंमुत्तर, निरिउ पाड पसारि ॥^६ (धोमप्रम)

१ सुभाषित रत्नाकर, पृष्ठ ७१।२४

२ पुरानी हिन्दी पृष्ठ १७४।६२

३ रहिमन दिमास पृष्ठ १२।१४६

४ मु० २० भा०, पृष्ठ ६१।१०

५ गिरिधर कविराय कृडासया पृष्ठ ३६।१०२

६ हि० बा० पा०, पृष्ठ ४१०।१११

घबसी पटुप दिप्रारि के, करतय करिये दौर ।

तेते एच पसारिये बेती मंत्री दौर ॥^१ (बृज)

(८) रस - कवि का कौशल मय-विषय को रसपूर्ण वा भावपूर्ण ढंग से कहने में ही होता है। अच्छी बात भी नीरस और सामान्य ढंग से कही जाय तो उक्ति-भाव राखी है काव्य नहीं बन पाती। यही कारण है कि प्राचीन नीति-कवियों ने निम्न नैतिक उक्तिओं को सरस बनाने का भरसक उद्योग किया था। हिन्दी-कवियों पर इन की सरस अभिव्यक्ति का प्रभाव निम्नांकित उदाहरणों से स्पष्ट सिद्ध होता है। उक्तव के महाकवि माधवीर रस की अभिव्यक्ति में करते हैं—

पावजलं यदुत्पाय भूभूमिभिरोहति ।

स्वस्वादेवाकमाने प्रिय बेहिनस्तद्वरं रजः ॥^२

मिट्टी को भी पानी से डूकराओ तो सिर पर सवार हो जाती है। अपमान को चुपचाप सह लेने वाले से तो मिट्टी ही खोच है। इसी भाव को बृज ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

हीन बानि म बिरोधिये, बहु ती तम दुस्तराय ।

रसहु ठेकर मारिय, लड़े सीत पर प्राम ॥^३

अपमान-काव्य में काया-वर्णन में बीभत्स रस की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। कबीर ने सम्भत उम्हीं भावों को परंपरा से ग्रहण किया होगा। जैसे—

माखनु बेहु होइ बिलि-विद्वतु । सिरेहि लिमखन हउउह पोदतनु ।

पतहो पोदतनु परिप्रहि भोयसु । बाहिहि मपरस त्ताखहो भायणु ॥^४

(स्वयंभू)

'कबीर' कहा गरबिनी, घाम सपेदे हउउ ।

हूबर ऊपर छत्र सिदि ते भी बैता खउउ ॥^५

(९) शलंकार—शालंकारों के क्षेत्र में भी पूर्ववर्ती नीति-काव्यों ने हिन्दी के नीति-काव्य को कम प्रभावित नहीं किया। यह प्रभाव शालंकारों में ही अधिक दृष्टिगत होता है। जैसे शालंकार की श्लेषा गुणवत्ता की महत्ता एक संस्कृत कवि ने यों व्यक्त की है—

गुणैर्दत्तगुणां धाति लोच्यंगसदसंस्थित ।

शातादीनिजराउङ्क काफ कि गठकामते ॥^६

१ शतसई सप्तम, बृज सतसई पृष्ठ २२८।१८

२ त्रिगुणान-बच शप २।४६

३ शतसई सप्तम-बृज शतसई पृष्ठ ३२१।४२२

४ हिन्दी-काव्यपारा, पृष्ठ १२२

५ कबीर संग्रहावली, पृष्ठ २१।११

६. सु० १० भा०, पृष्ठ ६१

ऊँचे बडे ना सहे, गुल बिन बड़पन छोड़ ।

वेठे बैसा तितर पर, बायस पकड़ न होइ ॥^१ (वृद)

दोनों पद्यों में अथ म्तरन्यास क्रमकार है और बाक-मठक के दृष्टान्त द्वारा प्रतिपाद्य का समर्थन किया गया है ।

दुसगति क कारण होम वाले दुलों के नाश तथा विपत्तियों के प्रायमन का वर्णन जोइ दु ने इन प्रकार किया है—

मरसाहल एातलि गुण जह ससग्य असहि ।

महसाखव साएहें मिलिज, सें पिहियइ ग्रसहि ॥^२

दादा बीन दयास गिरि ने गुण-भाद्य का स्थान मान-हानि को लेकर उरी प्राग्वार को इन छन्दों में लिया है—

गीच सय ते सुजन को मानि-हानि ह्वं जाय ।

रोजु कुटिल के सय तें सही अघिन बन घाय ॥^३

(१०) काव्य विभाग— हिन्दी का पूर्ववर्ती नीतिकाम्य चार बर्गों में विभाज्य है—

१ गबग्य २ मुक्तक ३ निबन्ध-मुक्तक ४ पद ।

१ प्रबन्ध— इस बग के अन्तर्गत हम संस्कृत प्राकृत्यादि की उन कथाओं को सेते है जो नैतिक शिक्षा के लिए ही लिखी गईं उदाहरणार्थ महाभारत के शान्ति पत्र के मरसास्यास तथा कपोतार्यान और प्राकृत की ज्ञानपत्रमी कथा आदि । हिन्दी में ठगुरयो का वृषखचरित्र ज्ञान कवि का सतवती सत आदि रचनाएँ इस बग में मन्निवेश्य हैं ।

२ मुक्तक—संस्कृत में तो बाल्यय-नीति नीतिद्विष्टिका आदि अनेक स्वतंत्र नीति-काव्य उपलब्ध होते हैं परन्तु पाणि प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में एक भी नहीं । संस्कृत में मुक्तक रचनाएँ दो प्रकार की दिखाई देती हैं । प्रथम में तो एक ही कवि के विभिन्न-विषयक मुक्तक बिना किसी तम के संगृहीत रहते हैं और दूसरे में अनेक कवियों के नीति-सुभाषितों का संग्रह होता है । बाल्यय-नीति प्रथम बोटि के अन्तगत आती है तो बरहज की सूक्ति मुत्तायमी द्वितीय कोटि में । हिन्दी में वृद सससई मुचजग सतसई आदि प्रथम बर्ग के अन्तर्गत आती हैं तो रीतिज्ञान के संग्रह-धया के नीतिपद्य तृतीय बर्ग में । हिन्दीकवियों को इस प्रकार की रचनाएँ करने की प्रेरणा संस्कृत से ही प्राप्त हुई ।

३ निबन्धमुक्तक—निबन्ध मुक्तक उक्त रचनाओं को कहा गया है जिनमें प्रत्येक छन्द स्वतंत्र अर्थ भी रखता है और सम-विषयक अर्थ पद्यों के साथ विभिन्न रूप में सम्बन्ध भी रहता है । इस प्रकार की रचनाओं के दो रूप हैं । पहला एक ही

१ सतसई सप्तपद, मुन्द सतसई, पृष्ठ १००।१६८

२ हिन्दी काव्यधारा, पृष्ठ २४८

३ शोमदयास गिरि प्राग्धावली, पृष्ठ ७६।१७

विषय पर सम्पूर्ण ग्रन्थ, जैसे संस्कृत के मोहमुद्गर उपदसन प्रादि। हिन्दी में बाकीदास की सूर छत्तीसी कायर वावनी प्रादि इसी कोटि की रचनाएँ हैं। दूसरा एक ग्रन्थ के विभिन्न परिच्छेदों में विषयों के अनुसार श्लोक-संग्रह जैसे बम्म पद, नीतिसतक बज्जामन प्रादि में। हिन्दी में भी भूषर का जैन सतक रज्जब की संवागी प्रादि ऐसे कई नियम-सुबतक विद्यमान हैं।

४ पर—भारतीय साहित्य में पदों की रचना सर्वप्रथम अपभ्रंसकाल में हुई। छंदों में जिन पदों की रचना की उनमें से कई पद नैतिक विषयों के हैं। अपभ्रंस की पररचना की इस प्रकृति का प्रभाव कबीर सूर तुलसी प्रादि पर भी पड़ा।

इस प्रकार काव्य-विधान की दृष्टि से भी पूर्ववर्ती नीति-काव्यों का हिन्दीनीति काव्य पर प्रभाव स्पष्ट सिद्ध होता है।

(ख) शैली—प्रथम पन्थ के द्वितीय अध्याय में हम कत चुके हैं कि हिन्दी के पूर्ववर्ती नीति-काव्यों में प्रायः तथ्यनिरूपक उपवेशात्मक आत्मनिर्भरक समावात्मक, प्र-नोतरात्मक ऐतिहासिक कथारत्मक संस्मात्मक ध्यारधारत्मक धर्म्यापवेधिक हास्य म्यंम्यारत्मक और मारहू लड़ी शैली का प्रयोग दिखाई देता है। हिन्दी के नीति काव्य पर भी जैसा कि द्वितीय पन्थ में देखते आये हैं प्रायः इन सभी शैलियों का ग्युनाधिक प्रभाव पड़ा ही है।

(घ) छन्द—छन्दों की दृष्टि से भी हिन्दी-नीति-काव्य पर जितना प्रभाव अप भ्रंस-नीति-काव्यों का पड़ा है उतना संस्कृत प्राकृत प्रादि का नहीं। संस्कृत में तो प्रायः बणकुत्तों का प्रयोग होता था और प्राकृत में गाना का। हिन्दी में अविन्यर प्रयोग दोहा चोरठा, छप्पय कवित्त सर्वया, कुब्जसिया और भीपाई छन्दों का किया गया है। इनमें से कवित्त और कुब्जसियों को छोड़कर दोष सभी छन्द कभी-कभी कुछ परिवर्तित रूप में अपभ्रंस से ही लिये गये हैं।

इस प्रकार हम देरते हैं कि भाव, भाषा रस, अलंकार शैली छन्द प्रादि सभी क्षेत्रों में हिन्दी का नीति-काव्य पूर्ववर्ती भाषाओं से प्रभावित है। परन्तु यह प्रभाव पानि और प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत और अपभ्रंस का अधिक पड़ा। कारण जिस गुण में हिन्दीसाहित्य की रचना हुई उसमें संस्कृत का ही पठन-पाठन मत्यधिक होता था और हिन्दी की जयनी होने के कारण हिन्दीकवि विद्यपत जैन कवि अपभ्रंस के साहित्य से परिचित होना भी भाव-यक समझते थे।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

धार्मिक विकास—पूर्ववर्ती अध्यायों के परिशीलन से हिन्दी में नीतिकाम्य के विकास का सहज ही परिचय हो जाता है। आदिकाल में नीति का कोई स्वतन्त्र काव्य प्राप्त नहीं होता। नीति के जो कुछ पद्य उपलब्ध होते हैं वे धार्मिक मनोविनोदात्मक या वीरता-व्यङ्ग्य काव्यों में ही। भक्ति-काल में हम नीति के कुछ स्वतन्त्र काव्य दिखाई देते हैं परन्तु उनमें धार्मिक नीति की भाषा भी पर्याप्त है। हाँ धरद्वारी दरबार के कवियों ने नीति-विषयक 'फुल' पद्यों की रचना पर्याप्त मात्रा में की। इसी काल में संस्कृत के कुछ नीति-ग्रन्थों का अनुवाद भी किये गये। नीति काव्य की दृष्टि से रीतिकाल सुवर्णयुग है क्योंकि यिज्ञानी धार्मिक और सुन्दर नीति-काव्य-रचना इस काल में हुई उतनी पूर्ववर्ती कालों में नहीं हुई। इस प्रकार हिन्दी में नीतिकाम्य का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है मद्दक-स्फुटि-रूप से नहीं।

मूर्च्छाकन—नीतिकाम्यो का उद्देश्य ऐस आचार व्यवहार की संग्रह रीति से शिक्षा देना है जिसमें मनुष्यों का ऐहिक जीवन सुखी समृद्ध और गौरवपूर्ण बन सके उन बातों का उपदेश बना नहीं जिससे उद्यम स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो। जो नीति-काव्य इस उद्देश्य की सिद्धि में जितना धार्मिक सहायक है वह उतना ही धार्मिक सफल समझा जायगा और विपरीतावस्था में विफल। इस दृष्टि से समग्र हिन्दी-नीति काव्य को सर्वथा सफल या विफल कहना उचित नहीं होता क्योंकि विभिन्न कालों और प्रकृतियों के कवियों ने धर्म-धर्मन प्रकार की कृतियाँ प्रस्तुत की हैं।

नाय-काव्य—उक्त निष्कर्ष पर कसने से नाय-पद्य नीति काव्य का कोई विशेष महत्त्व प्रतीत नहीं होता। यद्यपि उसमें पवित्र आचरण धारण-सम्पन्न और धार्मिक सामंजस्य आदि के विषय में कुछ उपयुक्त बातें धरद्वय सिद्धित हैं तथापि वह ग्राह्य स्त्री और धन-सम्पत्ति का घोर विरोध करता है। इस नीति पर आचरण मनुष्य जाति के लिए फलदायि सामुदायिक रूप में अयत्नरही नहीं माना जा सकता। उपर कला की दृष्टि से भी उक्त नीति-काव्य का कोई मूल्य नहीं।

वीर-काव्य—वीरगाथाओं का नीति-काव्य मात्रा में धर्म होता हुआ भी अपनी ऐहिक दृष्टि के कारण महत्त्वपूर्ण है। वह भूमि धन स्त्री स्वतन्त्रता यद्यत् आदि की काम्य कह कर जीवन को मानव-युक्त स्वीकृत करने की प्रेरणा करता है। परन्तु उसमें कृति यह है कि दर मुषानन वेत्या-मनन बहुशली-विबाह श्रुत शकुन,

ज्योतिष, कर्मयोग अथवा भविष्य, यज्ञ-मंत्रादि कुप्रथाओं तथा मिथ्या विद्वानों का सम्बन्ध नहीं करता। तथापि शीघ्रसे प्रपूर्ण होने और जीवन-संघर्ष के लिए प्रोत्साहित करने के कारण यह प्रचलनीय है।

मल्लिकार्जुन प्रमुख नीति-कवि— तुलसीदास देवीदास ज्ञानकवि बनारसीदास आदि मल्लिकार्जुन प्रमुख नीति कवियों के नीति-काव्यों में भ्रम और नीति का मिश्रण दिखाई देता है। जहाँ इनमें भास आदि सुख भूषण स्तंभ व्यभिचार वेदना-गमन आदि व्यसनों का उद्घन किया गया है वहाँ स्वाम्य विद्या यथा-प्राप्ति रूपसीत-संयोग हिन्दू-मुस्लिम-सामंजस्य सज्जन-दुर्जन उपहासास्पद बन मैत्री रक्षा के उपाय अति आदि कवियों पर सुन्दर भाषणों रचनाएँ की गई हैं।

अकवरी दरबार के कवि— गहरि रहीम गंग आदि कवियों के नीति काव्यों का ऐहिक दृष्टिकोण और धारमानुभूति के कारण महत्त्व बहुत अधिक है। अपने समकालीन प्रमुख नीति-काव्यों की अपेक्षा दरबारी वातावरण के कारण इनमें ऐहिकता अधिक और धार्मिकता कम है। इनमें दूरठा युगोपार्जन विद्यामहत्त्व स्वामिभक्ति सम्मानपुर्ण जीवन कुसीन शीघ्र छोड़े मासकता नित्या धनदाय से गौरव-भाष भूषण आदि पर पर्याप्त सिला गया है। पराधीनता के कारण ये कवि भास मदिरा आदि का उद्घन नहीं कर सके। कसा की दृष्टि से भी इनकी रचनाएँ सुन्दर हैं।

संत कवि—सन्तों का नीति-काव्य सामान्य गृहस्थों के लिए विशेष उपयोगी नहीं। संसार को सेमल-मुमन के समान गिस्तार शरीर और विद्या को उपेक्ष्य तथा कर्म और कामिनी को कुत्सित समझने वालों की नीति जन-साधारण के लिए कितनी उपयोगी हो सकती है यह बहम की आवश्यकता नहीं। यद्यपि इन्होंने जन्ममूसक बर्णव्यवस्था जात-जाति अंध-नीच हिन्दू-मुस्लिम-सामंजस्य को दूर कर समता का सुन्दर उपदेश दिया है और मिथ्या विद्वानों का सम्बन्ध किया है तथापि इनकी नीति पाठक को संसार की ओर प्रवृत्त नहीं करती उससे निवृत्त ही करती है। कदित्त की दृष्टि से भी इनका अधिकतर इतियाँ उपेक्ष्य ही हैं।

पृथ्वी कवि—यद्यपि सन्तों का समान सुकियों का भी प्रधान अर्थ प्रभु प्राप्ति ही है तथापि इनकी प्रम-कथाओं के नीतिकार्य का मुख्य सन्तों के काव्य से अधिक है। कारण इनमें शरीर जीवन जीवन सुखभोग गठन-पाठन धर्म स्त्री की बह उपेक्षा लक्षित नहीं हाँ जो सन्त-काव्य में सुमन है। यद्यपि इनमें भाषणाद शङ्कन ज्योतिष, दाहू-दोना यज्ञ-मन्त्रादि में विद्वान लक्षित होता है तथापि भय साहय पुत्र सक्त्य, शिष्यता आदि उन गुणों पर भी पर्याप्त सिला दिया गया है जो सज्जन जीवन के साधन हैं। इनका दृष्टक काव्य तो सन्तों का समान ही है परन्तु प्रम-कथाओं का नीति-काव्य उगता है ० हजता और माहितिक सौष्ट्य दोनों दृष्टियों से उत्तम है।

राम कवि—यद्यपि इस काव्य का मुख्य उद्देश्य शत्रुण राम की भक्ति का प्रचार है नीति-निष्ठा नहीं तथापि पारिवारिक जीवन को स्वगम्य बनाने के लिए इस काव्य

का महत्त्व सम्पूर्ण हिन्दी-नीति-काव्य में अद्वितीय है। इसमें सत्य-रचन प्रतिमा-वासन बेद धारण के प्रति अज्ञा माता-पिता पत्नी पति तथा अन्य पारिवारिक कर्तव्य आदि से सम्बद्ध नीति का वरुण द्रुह्य सुन्दर ढंग से किया गया है। जम्म-मूलक बर्तुम्यवस्था अश्रुन-ज्योतिष्य ठेक-नीच कमियुग प्रभाव आदि में बिष्वास रक्ता हुआ भी यह काव्य अपनी सुन्दर पारिवारिक नीति तथा काव्य-सौष्ठव के कारण महत्त्वपूर्ण है।

कृष्ण कवि—नीति काव्य की दृष्टि से कृष्ण-काव्य का कोई विशेष महत्त्व नहीं। उसमें धाराधर्मों के सुखमय जीवन का तो सरस बर्णन किया गया है परन्तु धाराधर्मों के लिए धर्म और सांसारिक सुख त्याग्य माने गये हैं। यौ की पूज्यता तथा प्रेम-विषयक नीति का बर्णन पर्याप्त है। पारिवारिक तथा सामाजिक मर्यादाओं की उपेक्षा और जीवन में साफल्यदायिनी नीति की कमी के कारण सरस होता हुआ भी कृष्ण-काव्य नीति-काव्य की दृष्टि से विशेष उपयोगी नहीं।

रीतिकाल का नीति काव्य—नीति-काव्य की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का रीति काल अद्वितीय है। इन काल की प्रमुख विशेषता है नीति-काव्यों में धार्मिकता का प्राण-अभाव और ऐहिकता का प्राधान्य। जितने धर्मिक और जितने सरस नीति कवि इस काल में उत्पन्न हुए उतने न पारिकाल में न मणिकाल में। सदाभीरुस्तन बृह् अर्भसिंह देवीदास भुवरदास गोपारा जानक गिरिधर कबिराय बाकीदास मनरंजसास रमुराम गणपति भारती बुधजन दीनदयालविरि गुणाम कवि आदि के नाम नीति काव्य के इतिहास में अमर रहेंगे। इन कवियों ने राजकुमारों की शिक्षा व्यवहारों में सफलता युक्ति के विकास तथा मोक्षार्थ के लिए जिन पञ्चीसी बत्तीसी बाबनी, पञ्चाबनी सत्तरी बहुतरौ पठक सतसई तथा कथा-काव्यों आदि की रचना की उनमें बान्ना-सन्मितीपदेश का अपूर्व समावेश है। इस काल में पश्चिम नीति पर स्फुट पक्षों या स्वतन्त्र नीति-काव्यों का प्रणयन हुआ। जहाँ वीरों स्वाभिमतों दानियों आदि का प्रचारा में स्वतन्त्र काव्य रहे गये वहाँ कायों कृत्यों मानदियों बेरयाधों और कुमटाधों की निम्न पर भी। कृषि-नीति और बाण्ड्य-नीति पर तो रचनाएँ हुई ही विविध व्यक्तियों व व्यवहारों के सुण-दोषों पर रचुराम और गुणाम कवि ने जो रचनाएँ कीं वे हमारे विचार में विषय-बैबिध्य की दृष्टि से अद्वितीय हैं। यह भी स्मरणीय है कि उक्त प्रमुख नीति-काव्यों की अधिकतर रचनाएँ सरस और भावपूर्ण हैं सुन्दरन्वी मात्र नहीं।

इसी काल की शृंगारी कृतियों में विद्या मुकवि कुकवि गुणपाही मूय स्वामा आदि पर पर्याप्त रचना हुई। मात्रा में अल्प होता हुआ भी यह स्फुट काव्य सरसता से श्रोत-श्रोत है क्योंकि अधिकतर राजाभित शृंगारी कवि नीति-कवियों की अनेका काव्य-कला में अधिक निपुण थे।

सार रूप में यह सत्य है कि वीरकवियों भक्तिवासीन प्रमुख नीति-कवियों अक्षरी बरबार के कवियों मूफी प्रेमकथाकारी रामकवियों और रीतिकालीन प्रमुख

नीतिकवियों का नीतिकाम्य भाषों सग्यों कृष्णकवियों फुटकर कवियों तथा धनुवाबकों की धरदेशा धर्मिक उपयोगी और सुन्दर है ।

तुलनात्मक मुद्र्यांकन—प्रथम अष्ट के द्वितीय अध्याय में हम देख चुके हैं कि हिन्दी में नीति-काव्य का आरम्भ होने के पूर्व संस्कृतदि भाषाओं के अधिकतर नीति-काव्य की रचना हो चुकी थी । अब अन्त में यह देख लेना भी अनुचित न होमा कि उन भाषाओं के नीतिकाम्य की तुलना में हिन्दी के नीतिकाम्य का क्या स्थान है । यह तुलनात्मक अध्ययन पाँच सोंकों के मोचे किया जा सकता है—(क) परिमाण (ख) वर्ण विषय (ग) मौलिकता (घ) उपयोगिता (ङ) काव्यसौष्ठव ।

(क) परिमाण—परिमाण की दृष्टि से यदि हिन्दी के नीति-काव्य की तुलना कोई पूर्ववर्ती नीति काव्य कर सकता है तो संस्कृत का ही । डॉ० भोलाभाष तिवारी ने अपने प्रबंध में संस्कृत के साठ प्रमुख नीतिकाम्यों की सूची दी है ।^१ सम्भव है, साधारण नीतिकाम्यों को छोड़ देने से यह संख्या छौं तक पहुँच जाए । हमने द्वितीय अष्ट में हिन्दी के १११ कवियों की १३३ कृतियों का विवरण दिया है जिनमें से ५१ कवि और १०१ काम्य प्रमुख हैं । इस प्रकार कृति-संख्या की दृष्टि से हिन्दी और संस्कृत के नीतिकाम्य लगभग समकक्ष ही हैं । पारमिक दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण पारमि प्राकृत और अपभ्रंश में ऐहिक नीति का कोई स्वतन्त्र काम्य प्रणीत ही नहीं हुआ । फिर भी पारमि के अन्तर्गत और अपभ्रंश के सावयवममदोहा उपदेश-रहायन रास, संवममंजरी आदि के कुछ अर्थों को नीतिकाम्य क धन्यंत मान सकते हैं । ऐसी दृष्टि में इनकी हिन्दी के नीतिकाम्य से तुलना का विचार ही व्यर्थ है ।

(ख) वर्ण विषय—वर्ण विषय की दृष्टि से भी हिन्दी का नीतिकाम्य संस्कृतादि के नीतिकाम्यों की धरेशा धर्मिक व्यापक और समृद्ध है । इसके दो कारण हैं । प्रथम यह कि हिन्दी इन सब से परवर्ती भाषा है और इसके अधिकतर नीतिकाम्यों को पूर्व-वर्ती भाषाओं के नीतिकाम्यों के अध्ययन का धन्यतर सहज सुलभ था । इसलिये ऐसे विषय विरल ही हैं जिन्हें हिन्दी कवियों ने अनुदित या म्युनामिक परिवर्तित रूप में हिन्दी में अनन्तर न किया हो । ितीय जिस काल में हिन्दी के नीतिकाम्य की रचना हुई उसमें केवल भारतीय संस्कृति का ही प्रचार नहीं था बरन् बहु भारत धरन और योरप की संस्कृतियों के मिश्रण का सुग था । इसलिये हिन्दी नीतिकाम्यों में ऐसे विषय भी अनायास समाविष्ट हो गये जिनका बर्णन प्राचीन नीतिकाम्यों में असम्भव था । यही पर लक्ष्य करने की बात यह भी है कि संस्कृत के नीतिकाम्य में केवल-केवल उपदेश, समयमातृता कसावितात बरंस्तर जैसे काम्यों की कमी है जो नीति के विविध विषयों पर ही प्रणीत हुए हों । अधिकतर रचनाएँ तो नीतिगतक धर्मोक्तसतक धार्मि नामा से ही की गई हैं जिनमें प्रायेक कवि ने अपनी विविध-विषयक नीति विषयों को समूहित कर दिया है । यद्यपि हिन्दी में दसी बँग पर बसीठी, छठीठी,

बाबनी भावि की रचना भी पर्याप्त हुई है तथापि बचन विवेकपञ्चीली शुगलमुख अपेष्टिका, रूपगुण-संवाद सुरसलीली बीरघटक कीर्तिसतक माण्डिया मित्राज कायर बाबनी भादि दर्जनों काव्य विधिष्ट विषयों पर लिखे गये हैं।

(ग) नीतिकला—प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड में हम अनेक स्थानों पर दिखा चुके हैं कि जहाँ प्रत्येक काम और प्रकृति के कवि कुछ बातों के लिए संस्कृति के नीतिकार्यों के श्रेणी हैं वहाँ उन्होंने अपनी अनुभूति पर्यवेक्षण तथा परिस्थितियों से प्रेरित होकर भी संकटों नहीं बालें लिखी है। उदाहरणार्थ भादिकास में जब विदेशी आक्रान्ताओं या पड़ोसी घासकों से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा आवश्यक थी तब कवियों ने मातृभूमि की रक्षा स्वतन्त्रता की महत्ता धनु-संहार यद्यस्वी जीवन स्वामिधर्म और बीरगति के महत्त्व पर बहुत बल दिया। जब कवियों ने अनुभव किया कि हिन्दू और मुसलमान दोनों को यहीं रहना है तब उन्होंने राम-रहीम के ईत नामिक प्रसहिष्णुता असुस्पता पाति-पाति शोका-नूस्ता बाह्याङ्गवर, इराम-हसास भादि का उग्र खण्डन कर राम रहीम की भक्ति पवित्र जीवन मानव-मान की एकता और परस्पर प्रेम का प्रचार किया। ऐहिकतामय रीति-काल में कवियों का ध्यान परमार्थ से हटकर ऐहिक जीवन को सुखी-समृद्ध बनाने की ओर गया। अतएव कवि की दृष्टि मार्ग से उत्तरकर व्यवहार पर केन्द्रित हो गई। इसीलिए विविध व्यवहारों और व्यवसायियों का जितना विस्तृत वर्णन इस काम में दिखाई देता है उतना अन्य किसी काम में नहीं। दुष्ट मजन पंचावनी सास बहु आ मगडा, रम्यति बाणय-विनात भादि काव्य उक्त दृष्टिकोण के ही परिणाम हैं।

(घ) उपयोगिता—हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि लोक-व्यवहार की दृष्टि से हिन्दी के विभिन्न कामों तथा प्रकृतियों के नीतिकार्य वा मूल्य पृथक-पृथक हैं। जो महत्त्व बीरकवियों भक्ति तथा रीतिकाल के प्रमुख कवियों अकबरी दरबार के कवियों और राम-कवियों के कार्यों का है वह प्रार्थों का नहीं। फिर भी सामूहिक रूप से कह सकते हैं कि लोकोपयोगिता की दृष्टि से हिन्दी-गीति-काव्य की समानता वैदिक संस्कृत और अथर्ववेद के ऐहिक तथा सिद्धसाहित्य ही कर सकते हैं। पाति और प्राकृत के नीतिकार्य तथा अथर्ववेद के वैदिक काव्य नहीं। कारण बीड़ों तथा जनों की रचनाएँ धार्मिक अधिक हैं ऐहिक कम। एक अन्य कारण से भी हिन्दी का नीतिकार्य पाति भादि के नीतिकार्यों की अपेक्षा अधिक उपयोगी है। धातु का वैज्ञानिक युग धार्मिकता का नहीं नीतिकला का है। अधिकतर सोया का ध्यान इसी जीवन को सुखी-समृद्ध बनाने की ओर है क्योंकि परमोक स्वर्ग तरक मोदादि में धात्या की ही कमी हो गई है। इसीलिए हिन्दी के रीतिकामीन व्यावहारिक नीतिकार्य का जो महत्त्व हमारे लिए हो सकता है वह अधिकतर पाति प्राकृत और अथर्ववेद की रचनाओं का नहीं।

नीतिकवि प्रायः समकामीन परिस्थितियों को देखाकर ही नीतिकार्यों के प्रण-

यन में प्रगसर होते हैं। इस दृष्टि से भी प्राचीन भाषाओं के नीतिकार्यों की अपेक्षा हिन्दी-नीतिकार्यों का महत्व अधिक है क्योंकि हिन्दू-मुस्लिम छूत-छात आदि की कई समस्याएँ आज भी सगमय उसी रूप में विद्यमान हैं जिस रूप में सतकवियों के काल में थीं। इस उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी यह बात बड़ी जित्त है कि उसमें मनुष्य के कर्तृत्व की स्वतन्त्रता का अधिक उल्लेख नहीं हुआ। प्रमुख कवि भी प्रायः भाषण को विवादा के हाथ की कठपुतली स्वीकार करते हैं। उद्यम की प्रशंसा भी विद्यमान है परन्तु भाष्य का ह्रास अधिक प्रबल प्रतीत होता है। वह सरसाह प्रायः दृष्टि मोचर नहीं होता जो बुरे दिनों को अच्छे दिनों में परिवर्तित कर सके। कमिकाल में पापों के धार्मिक्य की भाष्यता न भी नीतिकार्यों का पीछा नहीं छोड़ा। जब से कति युग आरम्भ हुआ है तभी से वैयक्तिक पारिवारिक और सामाजिक विषयमात्र उल्लेख हो गई है और जब तक यह समाप्त न होया तब तक उन कसहकसेओं का पर्यवसान भी इन कवियों को असम्भव ही दिखाई देता है। परन्तु इन बातों के लिए इन कवियों पर बोपापोपण बुरा है। जो विचार संस्कृति में सहलाब्धियों से जन्मे घाते हैं उनका सर्वथा परित्याग अत्यन्त दुष्कर होता ही है।

(६) काव्य-सौष्टव्य—प्रथम सप्तक के प्रथमाध्याय में हम कह चुके हैं कि नीति की रचनाएँ समयसमय रूपमातरण बुद्धि-उत्पत्ति, शब्दार्थ-बदलाव और व्यंग्याय की प्रचलता मौल्यता या अभाव के कारण उत्तम, मध्यम या अन्तर काव्य प्रकृति सुकित या अशुभ-भाष्य मानी जाती है। इस दृष्टि से जब हम संस्कृत पाणि प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के नीतिकार्यों पर दृष्टाव करते हैं तो विदित होता है कि सभी भाषाओं में सब प्रकार की रचनाएँ म्यूनातिक मात्रा में विद्यमान हैं। तथापि, तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर जितना काव्य-सौष्टव्य संस्कृत के नीतिकार्यों में सकिता होता है उतना किसी अन्य भाषा में नहीं। इसका मुख्य कारण सरक्य नीति-कवियों की म्यूत्तन्ता ऐहिकता और मोनिकता है। उन्होंने अपनी अधिकतर रचनाएँ भाषण मात्र होकर की हैं और अपने भाषों की अभिव्यक्ति परिलक्ष्य भाषा विभिन्न शैलियों विविध छन्दों तथा उपयुक्त अकारों की सहायता से की है। संस्कृत की नीति रचनाओं के संस्कृत काव्य-सौष्टव्य का अनुमान इस तथ्य से भी सहज ही किया जा सकता है कि वहाँ पाणि आदि में विद्युत नीति का एक भी स्वतन्त्र काव्य उपसम्भ नहीं होता और हिन्दी में भी अन्वेषितमयी नीति-कवियाँ बो-चार ही हैं यहाँ संस्कृत के अन्वेषितमयी नीतिकार्यों की संख्या बीस के लगभग है। पाणि का नीतिकार्य निरसरेह अपनी सुन्दर उपमाओं और दृष्टांशों के कारण प्रख्यात है किन्तु यह उद्यम सरक्य रूपमातरण, और परिमाण की मूनता के कारण उद्यम को स्थायी आहारा प्रदान करने में असमर्थ है। प्राकृत का नीतिकार्य भी यद्यपि अभिव्यक्ति की सरसता, भाषा की सुन्दरता और अकारों की सुन्दरता के कारण प्रख्यात है तथापि अपनी अल्पविराणता के कारण संस्कृत का समकक्ष नहीं हो सकता। धार्मिक अर्थों में

समाविष्ट अथवा अथवा अधिकांश नीतिकाम्य तो विशेष सरस नहीं परन्तु जो ऐहिक नीतिकाम्य स्फुट पद्यों के रूप में अत्यधिक प्रचलित हैं, उसकी सरसता अमूल्य और प्रभावशालिता में कोई संदेह नहीं है। परन्तु ऐसे सरस नीति-पद्यों की संख्या अत्यल्प है, इसलिये अथवा अधिकांश नीतिकाम्य भी संस्कृत की समता करने में अक्षम है। हिन्दी का नीतिकाम्य यद्यपि रचनाओं की मर्यादा, परिमाण विषय-वैविध्य और उपयोगिता की दृष्टि से संस्कृत के नीतिकाम्य से कम नहीं तथापि यह मानना ही पड़ता है कि विशेष प्रतिभाशाली कवियों की कमी के कारण वह संस्कृत नीतिकाम्य के समान सरस अमूल्यपूर्ण और प्रभावशाली नहीं बन सका। फिर भी यदि प्राकृत और अथवा अधिकांश नीतिकाम्यों से तो वह प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ ही है।

निष्कर्ष—अन्त में हिन्दी के नीतिकाम्य के विषय में संक्षेपतः हमारी धारणा यह है कि जहाँ वह परिमाण की दृष्टि से विपुल, विषयों की दृष्टि से व्यापक, मीमांसा की दृष्टि से प्रसन्ननीय और उपयोगिता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है वहाँ कला की दृष्टि से भी उसका अधिकतर भाग उपेक्ष्य नहीं है। अनेक ही उसका अधिकांश राग अल्प अल्प-अल्प और अल्प-अल्प की अल्प-अल्प के कारण उत्तमकोटि के नाट्य में परिणामीय न हो तो भी उसका पर्याप्त अथवा अधिकांश नीतिकाम्य की मध्यम या अथवा अधिकांश नीतिकाम्य की कोटि में आते हैं। ऐसे पद्यों की संख्या अधिक नहीं है जो नितांत अथवा अधिकांश नीतिकाम्य की कोटि में आते हों

यन में अपसर होते हैं। इस दृष्टि से भी प्राचीन भाषाओं के नीतिकार्यों की अपेक्षा हिन्दी-नीतिकार्यों का महत्त्व अधिक है क्योंकि हिन्दू-मुस्लिम, छूत-छात आदि की कई समस्याएँ प्रायः भी समान उसी रूप में विद्यमान हैं जिस रूप में सतकवियों के काम में थीं। इस उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी यह बात बड़ी चिरत्य है कि जसमें मनुष्य के कर्तृत्व की स्वतन्त्रता का अधिक उत्सव नहीं हुआ। प्रमुख नबि भी प्रायः मानव को विधाता के हाम की कठपुतली स्वीकार करते हैं। उद्यम की प्रसंसा भी विद्यमान है परन्तु भाग्य का हाथ अधिक प्रबल प्रतीत होता है। वह उरसाह प्रायः दृष्टि मोघर नहीं होता जो घुरे दिनों को अन्धे शिमों में परिवर्तित कर सके। कलिकास में पावों के आधिक्य की मायता ने भी नीतिकार्यों का पीछा नहीं छोड़ा। जब से कसि युग आरम्भ हुआ है तमी से बर्बन्धित पारिवारिक और सामाजिक विपमताएँ उत्पन्न ही गई हैं और जब तक वह समाप्त न होया तब तक उन कसहबसों का पर्यवसान भी इन कवियों को असम्भव ही दिखाई देता है। परन्तु इन बातों के लिए इन कवियों पर बोपायेण बूबा है। जो विचार संस्कृतादि में सहस्राब्दियों से बसे आते हैं उनका सर्वथा परित्याग अत्यन्त दुष्कर होता ही है।

(क) काव्य-सौष्ठव—प्रथम अध्याय के प्रथमाध्याय में हम कह चुके हैं कि नीति की रचनाएँ रामतत्व, कस्यनातत्व, बुद्धि-तत्व, सव्यार्थ-बसत्कार और ब्यव्यार्थ की प्रपातता मौलता या अभाव के कारण उत्तम, मध्यम या अधर काव्य अथवा सूक्ति या पद्य-भाव मानी जाती है। इस दृष्टि से जब हम संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी के नीतिकार्यों पर ब्रूपात करते हैं तो विदित होता है कि सभी भाषाओं में सब प्रकार की रचनाएँ ग्युमाधिक मात्रा में विद्यमान हैं। तथापि, तुमनात्मक दृष्टि से विचार करने पर जितना काव्य-सौष्ठव संस्कृत के नीतिकार्य में सदित होता है उतना निधी अल्प मात्रा में नहीं। इसका मुख्य कारण संस्कृत नीति-कवियों की व्युत्पन्नता, ऐहिकता और नीतिकता है। अर्जुने अथनी अधिकतर रचनाएँ भाव-भग्न होकर की हैं और अपने भावों की अभिव्यक्ति परिरक्षित भावा विभिन्न छंदियों, विविध छंदों तथा उपयुक्त अकारों की सहायता से की है। संस्कृत की नीति-रचनाओं के उत्कृष्ट काव्य-सौष्ठव का अनुमान इस तथ्य से भी सहज ही किया जा सकता है कि जहाँ पालि आदि में विपुल गीति का एक ही स्वतन्त्र काव्य उपभ्रंश नहीं होता और हिन्दी में भी अत्यधिकतमी नीति-कवियाँ दो बार ही हैं जहाँ संस्कृत के अगापेक्षिक नीतिकार्यों की संख्या बीस के अल्पम है। पालि का नीतिकार्य, निरसनेह अथनी सुष्कर उपभाषों और दृष्टान्तों के कारण प्रत्यात है किन्तु बहु उग-तण कस्यनातत्व, और परिमाण की ग्युतता के कारण उदय को स्थायी आह्लाक प्रदान करने में असमर्थ है। प्राकृत का नीतिकार्य भी अथवि अभिव्यक्ति की सरमता, भाषा का गुरुभारता और अकारों की गुरुतरता के कारण अताप्य है तथापि अथनी

समाविष्ट उपभ्रष्ट का अधिकांश नीतिकाम्य तो बिरोध सरस नहीं परन्तु जो ऐहिक नीतिकाम्य स्पष्ट पक्षों के रूप में धन्यविषयक ग्रन्थों में बिकीर्ण है, उसकी सरसता जमत्कार और प्रमत्तबिष्णुता में कोई सन्देह नहीं है। परन्तु ऐसे सरस नीति-पक्षों की संख्या घट्यम्ब है इसलिये उपभ्रष्ट का नीतिकाम्य भी संस्कृत की समता करने में अधस्त है। हिन्दी का नीतिकाम्य यद्यपि रचनाओं की मन्दा, परिमाण विषय वैविध्य और उपयोगिता की दृष्टि से संस्कृत के नीतिकाम्य से कम नहीं तथापि यह मानना ही पड़ता है कि बिरोध प्रतिमाशानी कवियों की कमी के कारण यह संस्कृत नीतिकाम्य के समान सरस जमत्कारपूरण और प्रमत्तबिष्णु नहीं बन सका। फिर भी पासि प्राकृत और उपभ्रष्ट के नीतिकाम्यों से तो यह प्रत्येक दृष्टि से श्रेष्ठ ही है।

निष्कर्ष—धन्त में हिन्दी के नीतिकाम्य के विषय में सक्षेपतः हमारी धारणा यह है कि जहाँ यह परिमाण की दृष्टि से विपुल, विषयों की दृष्टि से व्यापक, नीति कता की दृष्टि प्रशंसनीय और उपयोगिता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है जहाँ कसा की दृष्टि से भी उसका अधिकतर भाग उपेक्ष्य नहीं है। मने ही उसका अधिकांश राग तत्व कल्पना-तत्व और व्यंग्यार्थ की अप्रधानता के कारण उत्तमकोटि के काव्य में परिगणनीय न हो तो भी उसका पर्याप्त अंश काव्य की मध्यम या अधर कोटि में सहज ही रखा जा सकता है। ऐसे पक्षों की संख्या अधिक नहीं है जो नितान्त अकाव्य की कोटि में आते हों

प्रथम परिशिष्ट

हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची

- अक्षर बत्तीसी महेश मुनिः प्रथम जैन ग्रंथालय बीकानेर
 अक्षर बाबनी जयपुर के तेरहपयियों के मन्दिर में
 अयोक्ति बाबनी विनय मन्थिः प्रथम जैन ग्रंथालय, बीकानेर
 अयोक्ति बल्लभ महाकवि गणपति भारती विद्यासूयण पुस्तकालय जयपुर
 इस्कचमन नागदीवास मोतीचन्द राजानधी का संग्रह बीकानेर
 ईसर शिक्षा : ईसर; पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
 जईराज रो हूहा : जईराज; प्रथम जैन ग्रंथालय, बीकानेर
 जगदेव बत्तीसी : जगदेव (जिनहर्ष) प्रथम जैन ग्रंथालय बीकानेर
 जगदेव शतक : हेमराज; बधीचन्द जैन का मन्दिर जयपुर
 जगदेव सत्तरी श्रीठार पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
 कनका बत्तीसी बीबी श्रुति पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
 कन छत्तीसी : प्रथम मुन्दर; पुरातत्व मन्दिर जयपुर
 कन बत्तीसी : प्रथम जैन ग्रंथालय बीकानेर
 कनशतक : गोपाल ज्ञानक ना० प्र० सं० काशी
 कनि चरित्र : बान कवि अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर
 कवित्त बाबनी जसरज पुरातत्व मन्दिर जयपुर
 कवित्त प्रसंगीक पुरातत्व मन्दिर जयपुर
 किरन बाबनी : किरन मोतीचन्द राजानधी का संग्रह बीकानेर
 कीर्ति शतक गोपाल ज्ञानक ना० प्र० सं० काशी
 कुंडलिया साङ्गम मोतीचन्द राजानधी का संग्रह बीकानेर
 कुंडलिया बाबनी : धर्मतिह; प्रथम जैन ग्रंथालय बीकानेर
 कृष्ण चरित्र : ठकर सी दिगम्बर जैन मन्दिर बम्बई
 कृष्ण बाबनी प्रथम जैन ग्रंथालय बीकानेर
 लला छत्तीसी : प्रथम मुन्दर पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
 लुभ सोन दबा शतक दास छाबड़ों का मन्दिर जयपुर
 लुभ धेसा जी पण्डित पुरातत्व मन्दिर, जयपुर
 लुभ मरिमा जगन्नाथ शर्मा संस्कृत पत्रकारिता बीकानेर

पिहसत सत सार मुरभीवास अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर
 छप्पय बाबनी धर्मसिंह समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 छिनात पञ्चीसी सासचम्ब समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 छोहन बाबनी : छोहन मूल करण पांडे का मन्दिर, जयपुर
 जगद्गुरु पञ्चीसी : देव हस्तलिखित प्रति डॉ० मणेश के पास
 जाल मयबुंद देवा बह्य (देवा पांडे) काले छाबड़ों का मन्दिर जयपुर
 बलभीस तप भावना संवाद पुरातत्व मन्दिर जयपुर
 बुहा बाबनी मन्मी बलभ समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 बैबरातक : प्रति डा० मणेश के पास
 द्विपंचासिका समाहंस (जेम) मूलकरण पांडे का मन्दिर, जयपुर
 धर्म बाबनी धर्मसिंह समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 पंच बड़ाई : ना० प्रा० स० काशी के संग्रह स० १३१४। ८३६ में संग्रहीत
 पंचाख्यान (अनुबाह) देवीचन्द अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर
 पंचेन्द्रो बेसी ठरु सी बभीचम्ब का मन्दिर, जयपुर
 पुष्य छत्तीसी : समय सुन्दर पुरातत्व मन्दिर जयपुर
 पुष्य घातक : मोपात जालक ना० प्र० स० काशी
 प्रज्ञोत्तरी विद्वत्प मुज्जमंडन (अनुबाह) चन्देराम (चन्द कवि) ना० प्र० स०, काशी
 प्रसन्न पुष्य पाप काले छाबड़ों का मन्दिर, जयपुर
 प्रास्ताविक बौहवा पुरातत्व मन्दिर जयपुर
 प्रेम तरंग देव हस्तलिखित प्रति डॉ० मणेश के पास
 प्रेम रत्नाकर : देवीवास विद्याभूषण पुस्तकालय जयपुर
 कुट्टक पद्य : धर्मसिंह समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 बाह्यबड़ी : अज्ञात कवि काले छाबड़ों का मन्दिर जयपुर
 बाह्यपड़ी : सूरत पुरातत्व मन्दिर जयपुर
 बाह्यसड़ी पारपीवास पुरातत्व मन्दिर जयपुर
 बाबनी बखारस मुम्बरदास समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 भर्तृहरिसूक्त भाषा सर्वमान्य नयनसिंह अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर
 भाषा आणिस्य (अनुबाह) : चन्देराम विद्याभूषण पुस्तकालय, जयपुर
 मातृका बाबनी जसराम समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 मूरत सोलही सासचम्ब समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 मुत्सु महोत्सव पञ्चीसी प्रेमचन्द समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 रंज घट्टती शिवराज मूर्ति समय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 रस रस्य कुसपति मिश्र
 रामभोति के कवित्त देवीवास ना० प्र० म० काशी याज्ञिक संग्रह

कृष्णगुण संवाद नाम (?) धनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर
 लघुबहारगार्ड (सपुष्पाख्य धनुषादि) देवमुनि ना० प्र० स०, काशी यात्रिक संग्रह
 लघु तथा वृद्ध भाण्डव्य तौलिगास्त्र (धनुषादि) विष्णुगिरि धनूप संस्कृत पुस्तकालय
 बीकानेर

पारम्भिकी बोद्धा नेरूपन्वी बड़ा मन्दिर जयपुर
 विष्णु प्रजागर भाषा (धनुषादि) : कृष्णकवि ना० प्र० स० काशी, यात्रिक संग्रह
 पीर ब्रह्म गोपाल भानक ना० प्र० स० काशी
 प्रीत धर्तीसी धर्मम (धनुष) धूलकरण मन्दिर जयपुर
 सप्तह प्रथम (स० १२१। १२) ना० प्र० स० काशी
 सप्तह सं० २५२१। १५७६ ना० प्र० स० काशी
 सप्तह सं० ४४१। १२७ : ना० प्र० स० काशी
 संग्रह सं० ७२। ७२ क० : धनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर
 सप्तह कर्मन्त ४११२ पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर
 सं० य लसीसी समय सुन्दर, पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर
 सत्सर्ती सत्त भानकवि धनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर
 सत्सोपबोध जम्बेराम विद्याभूषण पुस्तकालय जयपुर
 सप्त ध्यसन हृदा कृन्डलिया भीम पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर
 समारात नादिक रघुराम मोतीचन्द राजानवी का संग्रह, बीकानेर
 सर्वेया सापयो बामभन्द धर्मय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 सर्वेया सावनी : सप्तमीवस्त्रम धर्मय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर
 सर्वेया मानवावनी : मानमुनि धर्मय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 सासी यात्रिक धनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर
 सात बडू का म्मडा देवाब्रह्म ठोसियों का मन्दिर, जयपुर
 सिद्ध्या तार नाबूराम (नाथिया) मोतीचन्द राजानवी का संग्रह, बीकानेर
 सिद्ध्या सागर : जानकवि धर्मय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर
 सीरामण वाम (?) पुरातत्त्व मन्दिर जयपुर
 सुनामित पावा स्त्रीक : मिपाठी
 स्फुट पद्य बँतास ना० प्र० स० काशी के समा-संग्रह में
 स्फुट पद्य संग्रह : सर्वदास धर्मय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 हित-जनेदा स्वामदास ना० प्र० प० सावण १९८७ वि०
 हित-निगाहा इतिहास : समा कस्याण; धर्मय जैन ग्रन्थालय बीकानेर
 हितोपदेश के कथा (धनुषादि) : जयतिहदास ना० प्र० स० काशी, समा-संग्रह
 हितोपदेश भाषा प्रथो मंगल (धनुषादि) इतरकानाय सरस्वती मठ विद्याभूषण
 पुस्तकालय जयपुर

द्वितीय परिशिष्ट^१

प्रमुख प्रकाशित ग्रंथों की सूचियाँ

(क) संस्कृत

अथर्व वेद (सायण भाष्य)

आर्यासिंहशास्त्री निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९३४ ई

शार्वेह (सभाष्य) अरविंद आधुनिक पाठकी

ऐतरेय ब्राह्मण आनन्दाम्बु पूना १९३१ ई०

कनिष्ठिदंडन काम्यमात्रा गुच्छक ३

कान्तिदास प्रयासि उ सीताराम अतुर्बेदी काशी २० १ वि०

काम्यप्रकाश मम्मटः शौचम्बा विद्या भवन १९५५ ई०

काम्यानुशासन बागमट द्वितीय निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९१५ ई०

काम्यानुशासन हेमचन्द्र त्रिणयनानन्द प्रेस बम्बई १९३४ ई०

काम्यासंस्कार मामह शौचम्बा संस्कृत शीरिज काशी १९०५ वि०

काम्यासंस्कार सुत्रवृत्ति बामन कमकता १९२२ ई०

कुमारसम्भब : कामिदास

कौटिलीय अर्थशास्त्र सं पान दासनी मैसूर १९२४ ई०

अश्वमेध जयदेव शेमाड़ी लाल एंड सस काशी १९२४ ई०

अश्वमेध भारत : निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९३० ई०

आणव्य नीति अर्थशास्त्र पोर्बर्न पुस्तकालय मद्रास प्रथम संस्करण ।

आणव्य राज्य सूत्र आर्य प्रकाशन मंडल दिल्ली

आणव्य सूत्र : कौटिलीय अर्थ शास्त्र के परिशिष्ट में मसूर १९२४ ।

अश्वमेध अश्वमेध नीति अर्थशास्त्र शौचम्बा संस्कृत शीरिज काशी १९४० ई०

अश्वमेध शौचम्बा संस्कृत शीरिज यनारस १९३२ ई०

नाट्य शास्त्र भरतः शौचम्बा संस्कृत शीरिज, काशी

निरुक्त : यास्कभाष्ये बम्बई संस्कृत एंड प्राइमरी शीरिज १९१० ई०

नीतिनंदनी : डा द्विवेदी एरिहर मंडल काठ भरत काशी १९३३ ई०

पंचतंत्र पंडित पुरुषोत्तम, काशी १९२२ ई०

१ कई पुस्तकों के प्रकाशकों का परिचय प्रथम पृष्ठ पर दिया हुआ है ।

बुठ चरित प्रसन्नभाव

अथर्व गीता (सप्तम्य) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६ ई०

भाग्य महापुत्राल यीता प्रेस गोरखपुर

भामिनी बिनास : सं० जगन्नाथ, पूना १९३८

मनुस्मृति : श्रीराम संस्कृत सीरिज, बनारस, १९३५ ई०

महाभारत, भाग ३, (उद्योग पर्व) विनयासा प्रेस पूना, १९३१ ई०

मुष्पोपदेश ब्रह्मणः काव्यमाता पुष्प ८, निर्णयसागर प्रेस, १९३१ ई०

पुत्राराजस (सटीक) : निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९३६ ई०

मेघ ब्रुत कामिबास

पञ्चस्तोत्रक पम्पु सोमदेव

रघुवंश कामिबास

रस रंयापर जगन्नाथ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९४७

रामायण (सिद्धक-सहित) निर्णयसागर प्रेस, १९३० ई०

रोकोक्ति मुक्तावली काव्यमाता पुष्पक ११ १९३३ ई०

पावस्यस्य कोस १८७३ ई०

पिक्रमांशुदेव चरित : ब्रह्मणः ज्ञानमन्त्र संज्ञासय काशी, १९७८ वि०

बिबुर नीति गीताप्रेस गोरखपुर २०११ वि०

व्याख्यान-भासा सं० अभ्युत्थानम् साहोर १९२७ ई०

वातकत्रयम् भारतीय विद्या भवन बम्बई, १९४६ ई०

शुभ नीति (सटीक) बेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई, १९८२ वि०

शंक्ति महाभारत सं० सी० बी० बेंच बम्बई, १९१२ ई०

साहित्य दर्पण विनयासा बाबुस्यस्य संज्ञा कसकता १९४६ ई०

सुभाषित रत्नसंग्रहाण निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९३३

सुभाषित रत्नसंग्रहोद्घमिठमति निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९०९

सुभाषित रत्नाकर गोपालभारायण एच० को बम्बई १९१३ ई०

सूक्तिमूर्त्तिसूत श्रीधरदास प्र० मोदीनास दगारपी दास साहोर, १९३३

सूक्तिमुक्तावली जगहण घोरेपुंठस इन्स्टीट्यूट बड़ौदा १९३८ ई०

शोध रत्नावली : गीताप्रेस गोरखपुर २०११ वि०

श्रियोपदेश : निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९४९ ई०

(स) पाणि

शुद्धपाठ (सटीक) प्र० महाबोधि सभा, सारनाथ

पम्पुच पम्पु० मधुपकिशोर, महाबोधि सभा सारनाथ १९९३ वि०

शिवान्त शूल पम्पु० विष्णु रचितमा बर्दी घोड विहार सारनाथ, १९५० ई०

शुगनिपाठ प्र० महाबोधि सभा सारनाथ

(ग) प्राकृत

- अर्थमागधी कोश मुताबकद १९३० ई०
 अर्थमागधी कोश रत्नकंद १९२७ ई०
 कन्न वही हिन्दी प्रथमलाकर कानासय बम्बई १९४० ई०
 क्यूरमंजरी राजकोशर निलयसागर प्रेस बम्बई, १९४९ ई०
 गाथा सप्तशती निलयसागर प्रेस बम्बई, १९३३ ई०
 बहमुहबहो (सितुवच) निलयसागर प्रेस बम्बई १९९२ ई०
 नारण्यभमी कथाभो भारतीय विद्या भवन बम्बई, १९४९ ई०
 पाण्डु सङ्ग्रह महाकवि हरमोचिन्द वास कसकता १९८७ वि०
 प्राकृत व्याकरण हेमचन्द्र मोतीलाल बुद्धा भी पूना १९२८ ई०
 प्राकृत शुभाषित संग्रह सं० बी० एम० साह सूरत १९३२
 मुसाबार बट्टकेर जैन प्रथमासा समिति बम्बई
 सुक्ति सतोत्र भमनास जैन मित्र मङ्गल रत्नमान वि० १९९६

(घ) अपभ्रंश

- अपभ्रंश काव्यत्रयी शेरिएटस इन्स्टीट्यूट बङ्गोला १९२७ ई०
 अपभ्रंश पाठावली गुजरात बनेकुलर सोसाइटी अहमदाबाद १९३२ ई०
 कौटिलिता डा० बाबुराम सक्सेना इंडियन प्रेस प्रयाग १९८६ वि०
 पाण्डुबोहा रामसिंह करवा १९३३ ई०
 संदेशादासक भारतीय विद्या भवन बम्बई २००१ वि०
 सावय धम्म रोहा देवसन सं० हीरासास जैन करवा

(ङ) हिन्दी

- अदरकी दरबार के हिन्दी कवि : डा० सरजूप्रसाद भद्रनाथ लखनऊ, सं० २००७ वि०
 अणुभै बाली स्वामी रामचरण साहयुग १९२२ ई०
 अनुराग बांसुरी नूर मुहम्मद हि० सा० सं० प्रयाग
 अपभ्रंश रूपरत्न जयन्ताप राय शर्मा पटना १९९८ वि०
 अपभ्रंश साहित्य डा० हरिबच कोल्हट भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली २०१६ वि०
 अतनी आम्हूतबद्ध सं० सी० ए० इण्डियन फर्न्दाबाद २००६ वि०
 ऐतिहासिक काव्यसंग्रह प्र० संकरदास शुभैयज नाहटा सं० १९९४ वि०
 कबीर धम्पावली ना० प्र० सं० काशी १९४७ ई०
 कबीर बचनावली ना० प्र० सं० काशी, सं० २००३ वि०
 कसिबतिप्रवेनी चाचा हितवृन्दावनदास बुन्नावन सं० २००९ वि०
 कर्पित रत्नाकर सेनापति

- कविता कौमुदी (भाग १) लक्ष्मीनारायण प्रकाशन, बम्बई १९५४ ई०
- कवितासमी गा० तुलसीदास
- कविमों की झंझी छात्रहितकारी पुस्तकमाला प्रयाग १९४८ ई०
- काव्यनिरणय मिथ्यारीदास बेसवैडियर प्रेस प्रयाग १९३७ ई०
- 'कुंमनवास' विद्या विभाग, कांकरोली २०१० वि०
- कुंडलिया निरिचर कविधाय; बेकटेडपर स्टीम प्रेस बम्बई, २००६ वि०
- केशवप्रत्यासनी (भाग १, २) हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग १९५४, १९५५ ई०
- केशवप्रवरत्न सं० भगवानदीन रामभाषमण सास, प्रयाग १९८६ वि०
- पुत्रो की हिन्दी कविता गा० प्र० स० काशी २०१० वि०
- गोरखचानी प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग २००३ वि०
- गोराबाबल की कथा प्रयाग स० १९९१
- 'गोविन्दबानी' विद्याविभाग कांकरोली २००८ वि०
- ग्वालरत्नावली सं० कविकर प्रयाग १९५४ ई०
- 'घनामन्द' बालीविद्यालय प्रेस बभारस, २००६ वि०
- माघ और मङ्गरी की कहानियाँ सं० श्रीकृष्ण शुक्ल पुस्तक सदन बनारस
- अनुर्भवास : विद्याविभाग कांकरोली २०१४ वि०
- विद्यावली ना० प्र० स० काशी १९९२ ई०
- छंदसिद्धा : पं० परमेश्वरामन्द साहू १९४१ ई०
- छोतस्वामी विद्याविभाग कांकरोली २०१२ वि०
- जायसी के परवर्ती हिन्दी सुप्री कवि और काव्य डॉ० धरसा शुक्ल लखनऊ, २०१३ वि०
- जायसी प्रयावली सं० रामचन्द्र शुक्ल काशी २००६ वि०
- जायसी प्रयावली सं० डा० माताप्रसाद गुप्त प्रयाग १९५२ ई०
- जनकक : भूवरदास बीरसेवा मन्दिर, दरियागंज दिल्ली २००७ वि०
- जगन्नाथ प्र० अन्धामम इलाहा १९९२ ई०
- जगन्नाथ प्रयावली सं० धररामन्द नाहटा बीकानेर २०१३ वि०
- जिदम में बीररत्न डा० मोतीसास मेनारिया हि० छा० सं० प्रयाग २००३ वि०
- जुपर बाबली पद्मनाभ समय जैन प्रन्थासय बीकानेर
- जुगसी और जनका काव्य : राममरेण निपाठी; दिल्ली, १९५१ ई०
- जुगसी प्रयावली (जुसय सड) ना० प्र० स० काशी २००४ वि०
- जुगसी और जनका साहित्य डा० विमलाकुमार जैन
- जुगसी सतसई सरस्वती धंधार, पटना १९२६ ई०
- जुगसी मुक्तिमुखा : सं० विद्योगी हृदि साहित्य सेवासदन बनारस १९८६ वि०
- जुगन्नाथ प्रयावली बाबाजी संस्करण १९२३ ई०

- शीनदयामगिरि प्रयागवती ना० प्र० सा० काशी १९७६ वि०
 दैवमुपा सं० मिथव-पु लखनऊ २००५ वि०
 शोहाबती गो० तुमसीदास गीताप्रेस, गोरखपुर; स० २००० वि०
 मन्मदास धन्वाबती सं० अजरामदास
 निर्धारवातक घदार धनग्य ना० प्र० पत्रिका वर्ष ३२ अंक १।
 पंचामृत प्र० स्वामी सकमी राम ट्रस्ट जयपुर १९४८ ई०
 परमानन्द सागर बिद्या विभाग कांकोरी
 परशुराम सागर उदय कार्यालय उदयपुर
 पयालूर पंचामृत स० विद्वजनाथ प्रसाद काशी १९९२ वि०
 पूर-रीराज रासो (भाग १) साहित्य सस्वान उदयपुर सं० २०११
 पेमप्रकाश वरकत उम्साह पेमी (कक वरस दिल्ही १९८३ ई०)
 प्राकृत विमला डा० सरयुप्रसाद अग्रवाल लखनऊ २००९ वि०
 वपनागी श्री बाणी जयपुर, सं० १९९३
 बनारसी विमला सं० अजरामास कस्तूरचन्द्र जयपुर २०११ वि०
 बांकीबाग धन्वाबती (भाग १ ३)
 बिहारी रत्नाकर प्रथकार प्रकाशन बनारस १९३१ ई०
 बोधालदेव रासो ना० प्र० स० काशी सं० १९८२ वि०
 बुयला रत्नाई जैन प्रथरत्नाकर कार्यालय धम्वाई (शृतीयावृत्ति)।
 धृष्ट द्विगदी कोटा ज्ञानमंडल काशी
 प्रह्लाद विमला भैया भगवतीदास प्र० जैन बुक डिपो शोसापुर १९२६ ई०
 भारतीभूषण अजु मदास केडिया भारतीभूषण कार्यालय, काशी १९८७ वि०
 भिष्मारीबाग धन्वाबती ना प्र० स० काशी स० २०१३ वि०
 भूयस धन्वाबती हिन्दी मदन साहौर १९३८ ई०
 मस्तिराम रत्नावती भारतवासी प्रेस प्रयाग १९४३ ई०
 लियवन्धु विनोद मिथवन्धु
 मोरनाई श्री परावती सं० परशुराम अतुबेदी हि० सा० स० प्रयाग, २०११ वि०
 रत्नाबती सं० नाहरसिंह सोसकी सं० १९९५ वि०
 रसद्वानि बाणीविद्यालय बनारस
 रक्षिमन रत्नावती सं० मयाशंकर सं० १९८३ वि०
 रक्षिमन विमला : सं० अजरामदास रामनारायण साम, प्रयाग १९८७ वि०
 राजस्वाग का विमल साहित्य डा० मोतीलाल मेनारिया उदयपुर, १९३२ ई०
 राजस्वानी भाषा की र साहित्य मोतीलाल मेनारिया हि० सा० सं० प्रयाग २००८
 राजिया के सोरटे कृपाराम बारहठ; दिन्धी-सा हेत्य मान्दर जोधपुर १९२७ ई०

रामचन्द्रिका केद्यबास

- रामचरितमानस (मुद्रका) पीठाप्रेस, गोरखपुर सं० २०१३ वि०
 रामचरित में रसिक सम्प्रदाय डा० मयवती प्रसाद सिंह ममरामपुर, २०१४ वि०
 रीतिकाम्य की भूमिका तथा वेब धीर उन्की कविता डा० लगेन्द्र, दिल्ली, १९४९ ई०
 यस्मिन्म्य भीति मुसदेव धात्रुमिक प्रेस दतिया, १९५२ ई०
 विषय पत्रिका यो० कुसलीदास पीठाप्रेस, गोरखपुर सं० २००७ वि०
 विवेक पत्रिका बैल्टि भाषा हितकृन्वावनवास; मूल्यावन २००९ वि०
 धीरकाम्य उदयगारायण त्रिबाही प्रयाग १९४८ ई०
 दीरसतसई सुयमत्स प्र० बंगास हिन्दी मम्बळ कसकता, २००५ वि०
 बैरिक् साहित्य रामगोविन्द प्रिबेरी १९३० ई०
 म्पतायासो प्र रावाकिशोर मूल्यावन १९९४ वि०
 म्जनिपिष्म्यावली महाराजा प्रठापसिह; ना० प्र० सं० काशी सं० १९९०
 म्जनितास प्रजबासीदास बैरटेवर प्रस मम्बई १९६४ वि०
 शिर्षसिह सरोक ममरकिशोर प्रस सजनक अतुर्ब संस्करण
 संक्षिप्त दृष्टीराज रासो : डा० हजारीप्रसाद इलाहाबाद १९३९ ई०
 संदिप्त रामस्वयमर रघुपञ्चसिह; ना० प्र० सं० काशी, १९८१ वि०
 सज बाहु धीर उन्की बाणी : हिमाम प्रेस बनिया
 संन्यानी सप्रह (भाग २) बैसबेडियर प्रस, इलाहाबाद १९३८ ई०
 संतयासी सं० बियोपी हरि १९३८ ई०
 सन्तमुपासार सं० बियोपी हरि सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली १९५३ ई०
 सतसई सपक : सं० इयाममुन्दरदास हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग १९३१ ई०
 साहित्यसास्त्र का पारिभाषिक ग्रन्थकोष धामाराम एण्ड सन्स दिल्ली १९५५ ई०
 सिद्धांतसतनाकर : मिम्बार्क सोबमम्बस, मूल्यावन २ १३ वि०
 सिद्धसाहित्य डा० ममवीर भारती प्रयाग १९३५
 सुन्दरसार : सं० इयाममुन्दरदास ना० प्र० सं० काशी १९२८ ई०
 सुन्दररनावली : सं० सत्यप्रिय भारतवासी प्रेस प्रयाग
 सुदीकाम्य संप्रह : सं० परपुराम अतुर्बेरी
 सुरराम चरितावली पीठाप्रेस गोरखपुर, सं० २०१४
 सुरसागर : सं० मन्दसारे बाजपेयी ना० प्र० सं० काशी
 तेककवाली : (हिदामुत्सिन्धु के साथ मुद्रित)
 हम जगद्गुरु काथिमसाह ममरकिशोर प्रेस, सजनक, १९९७ ई०
 हनुमनाटक : हयययम, बैरटेवर मुद्रणालय मम्बई, १९४९ ई०
 हम्पररासो : ना० प्र० सं०, काशी, २००५ वि०
 हितामूत्सिन्धु : हित हरिबंघ मूल्यावन २००९ वि०

हिन्दी काव्य धारा (हि० का० धा०) राहुम साकरपामन किताब महल प्रयाग,
१९४२ ई० ।

हिन्दी के कवि और काव्य सं० गणेशप्रसाद द्विवेदी १९२९ ई०

हिन्दी के विकास में अग्रदूत का योग नामवर्षिह प्रयाग १९४२ ई०

हिन्दी के सपुत्र डॉ० सूर्यकान्त साहोब १९४२ ई०

हिन्दी जन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास कामठाप्रसाद जैन काशी १९४७

हिन्दी धान साहित्य परिचयिका (भाग १, २) भारतीय ज्ञानपीठ काशी १९३९ ई०

हिन्दी भोतिककाव्य डॉ० भोभानाथ द्विवेदी प्रयाग १९५० ई०

हिन्दी पुस्तक साहित्य हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग १९४२ ई०

हिन्दी प्रेमपाषाण कालसंग्रह सं० गरामप्रसाद द्विवेदी प्रयाग प्रथम संस्करण

हिन्दी प्रेमपाषाण काव्य डॉ० कमलसुन्दरदास अजमेर १९५३ ई०

हिन्दी दान्त सागर : ना० प्र० सं० काशी

हिन्दी साहित्य डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी (दिल्ली १९४२ ई०)

हिन्दी साहित्य रामसुन्दरदास प्रयाग १९५१

हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र सुक्ल ना० प्र० सं० काशी २००९

हिन्दी साहित्य की भूमिका डॉ० हजारीप्रसाद वर्मा, १९४८ बि०

(घ) पञ्जाबी

अन्वसाहस (भाग १) प्र० अनाहर्षिहृ हजारीप्रसाद अमृतसर

अन्वसाहस मुह गोविन्दसिंह; अमृतसर २०१३ बि०

(ङ) अंग्रेजी

एम्बालोकी ऑफ लिटिकल सेइंस डॉ० अमरनाथ म्हा प्रयाग १९३१ ई०

एसेन्ट इण्डिया धार० सी० मजूमदार, १९५२ ई०

एविकस ऑफ इण्डिया ई० डब्ल्यू० हाफिन्स येन युनिवर्सिटी प्रेस यू० एच० ए०

ए शार्ट हिस्टरी ऑफ एविकस धार० ए० पी० राबर्स, लन्दन

श्रीदिसीय अर्थशास्त्र (अ प्रोजे अनुबाह) अनु० धामधारी मयूर १९२९ ई०

पीतारुहस्य (अ प्रोजे अनुबाह) अनु० भास्कर सीताराम पुना १९३९ ई०

पासि-ईंग्लिश डिक्शनरी धार० डेविड्स सगन १९२५ ई०

पुरातनिक इंडिया ऑफ डिग्रेडम भारतीय विद्या भवन, बम्बई, १९४७ ई०

प्रविकस संस्कृत इण्डिया डिक्शनरी सं० बी० एच० फारटे बम्बई, १९२१ ई०

अवबन्गीता (अ प्रोजे अनुबाह) डॉ० रामकृष्ण सगन १९४९ ई०

मुगल एम्पायर इन इंडिया श्रीरामचर्मा खन्ना ३ बम्बई १९४१ ई०

हिन्दू पासिटी के० पी० पापसवान बयभोर १९२५ ई०

हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर बिन्दुनिहल भाग २

हिस्टरी ऑफ ब्रह्मसिद्ध संस्कृत सिट्टेचर एम० कृष्णन् प्राचार्यर १९३७ ई०
 हिस्ट्री ऑफ संस्कृत सिट्टेचर ए० बी० कीम १९४८ ई०
 होसी बाइबल

(ख) पत्र-पत्रिकाए

भारतोपना दिल्ली
 जर्नल ऑफ डिपार्टमेण्ट ऑफ सेटर्स (जे० डी० एस०) कलकत्ता यूनिवर्सिटी, भाग
 २८, ३०
 राजस्थान भाषी
 राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की दोक (भाग १४)
 राजस्थानी प्र० राजस्थानी साहित्य परिषद् कलकत्ता
 नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी
 हस्तलिखित ग्रन्थों की शोज मा० प्र सभा, काशी २००९ वि०



सकेत-सूची

एच० एस० एस० हिस्टरी ऑफ संस्कृत सिट्टेचर (कीम)
 एच० सी० एस० एन० हिस्टरी ऑफ ब्रह्मसिद्ध संस्कृत सिट्टेचर (कृष्णामाचार्यर)
 ए० सी० एस० एंभालोजी ऑफ क्रिटिकल सेइस (धरनाभा झा)
 जे० डी० एस० जर्नल ऑफ डिपार्टमेण्ट ऑफ सेटर्स (कलकत्ता विश्वविद्यालय)
 मा० प्र० प० नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी ।
 मा० प्र० स० नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।
 पी० डब्ल्यू० डब्ल्यू० पुराणिक वेड्स ऑफ बिज्जम (बम्बई)
 सु० १० भा० सुभाषित रत्न भाषागार (बम्बई)
 हि० का० घा० हिन्दी काम्यधारा (राहुल साहस्यार)
 हि० सा० सं० हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

अनुक्रमणी

(क) ग्रन्थकार

अ

अकमल या अकू ६११ ६१७

अक्षर अनन्य ४८६, ४८७

अभ्युत्थानन्द २५६, २७७

अप्यय दीक्षित ६०

अभ्युक्त खमान ११३

अमरसिंह ६१२

अमित गति ६७

अमृत कवि २८६

अयोध्यासिंह उपाध्याय ३६३

अर्जुनदास केडिया २२ ३०

अरबजोष ५२

आ

आनन्द बर्बल २० २७ ६१

आसम ३२७ ३२६-३३१ ३३६

इ

इकबाल अलीसाहू ३४

ई

ईसर २६०

ईसर दास ५३७

उ

उर्वराज २०५-२११

उमेश राम ५८७-५८९, ६१३

उसमान ६२४, ६३२ ६३३, ३३०

३४६ ३४७

ए

ए० बी० कीम ३६, ३८ ६६ ७०

ए० ई० एकिली ३२७

क

कच्छना ११४

कबीर २२१ २६२ ३०७ ३०९ ३१३

३१४ ३१६ ३१८ ३६३ ३६५,

४४८ ५६०, ५७१, ५६४, ६२२

६३४

करनेस २८६

कन्हैया ५६

कादिर २८६

कामिदास ७ ५३ ५५, ६३ ६४, ६१,

६४५ ६४७, ६६६ ६७७ ६४६

कामिम साहू ३३३ ३३७ ३४०, ३४२,

३४५ ३४७

कियोर दास ४२३ ४३५, ४३८, ४४६

किसन ४६६, ४६७

कुंतक २४, २६

कुमन दास ४४२

कुसपति मिश्र ५६१ ५६३

कुसल धीर २४१ २४३

कुमुद बेन ६६

इपाधाम ५१५ ६२३

इपाधाम बारहट ५१८ ५१९

बेदारनाम गुप्त ६०५
 केदारबास १७६ ३६० ३६७ ३७२
 ३७९ ३८२ ३८६ ३९१ ४०१
 ४०४, ४०६ ४०९ ४१३, ४१९ ४२०
 केदारबास जैन ४८९
 केसीबास ५७८ ६१६
 कौतुहल ३२०
 लभा कम्पाण ६११
 धमाहम या धेम २६०
 सोमेन्द्र ६८ २४४ २४५
 स
 कुसरो १३९ १४१
 ग
 गंग २६३ २७०, ३२१ ३३६
 गङ्ग ६१२
 गणपति धारणी ५१६ ५१७, ६२३
 ६३३, ६३७
 गणेश प्रसाद द्विवेदी ३२२
 गरीबबास ३०९
 गिरिजाप्रसाद धानन्द १९
 गिरिधर कविराय ५०४ ५१० ६१५
 ६१६, ६१८ ६१९, ६२१ ६२३
 ६३१ ६३७
 गीत कवि ६१४
 गुणाम कवि ५७२-५७७ ६१८ ६२०,
 ६२२ ६२४ ६३७
 गुणाधर १४
 योगानन्द जानक ४८९ ४९४ ६१६,
 ६२१ ६२४, ६२५, ६३७
 लपनाथ १३०
 रोमान १४४ १४५ १४६ १६८
 १७० १७४

मोक्षनाथ ३९
 गोविन्दसिंह २९६
 गोविन्द स्वामी ४४२ ४४२, ४४३
 ग्वाल ५९६
 घ
 गाय ५००-५०२
 ङ
 ङङ ११२
 ङग्र गोमिन् ६६
 ङदन राम ५८७
 ङदरदाई १४५, १४५, १६०, १६६,
 ३८६
 ङग्रोसर बाजपेयी १४४, १४७
 ङतुर्बास ४२८
 ङरदास २९५, २९६ २९९, ३०२,
 ३०८ ३०९
 ङणाय ९, ६५, ५६०
 ङाठुङ सोयाणी ११२
 चिन्तामणि ५९०
 छ
 छीत स्वामी ४३४, ४४५
 छीहस १८५ १८७
 ज
 जगनिक १४३ १४५, १४७, १४०,
 १५१ १५७, १६२ १६५, १६८,
 १७५ १७९
 जगन्नाथ २१ ३२, ७१ ७३ ६०८,
 ६१२, ६१९
 जगन्नाथ दास रत्नाकर ५९०
 जन हृद गण ९३
 जगद्वन मठ ५९
 जमात २८९

अनुक्रमणी]

जयचन्द १४२
 जयदेव २० १२१
 जयवस्त्रम ८८
 जयसिंह दास १८४
 जसूरण ६८ ६९, ७२, ७३, ७७
 जसुराम (जिनहप) ४५९ ४६१ ६२२
 ६२३ ६२५
 जसवन्तसिंह ६१२
 जालकवि २११ २१७, ३४७, ३६१
 ६३३, ६३६
 जालसत २५
 जायसी ३२० ३२४ ३३३ ३३७ ३३८
 ३४० ३४९, ३५० ३५३ ३५५
 ३६१ ६२१
 जिनबल मूरि ११० ११४, ११६, १२४
 जिन रंग मूरि ४८५
 जिनहर्ष देवें 'जसपज'
 जितरवर मूरि ९३
 जीवो रीपि ६१४
 जोइन्दु ६३३
 जोष राज १४४ १४५, १५२, १५४
 १५७, १६३ १६६, १६७, १७०
 जानघार (योगिराज) ५११ ५१४
 ७
 ठकरसी १८३ ६३३
 ४
 ठारिङ्ग २४
 ७
 धानसेन २८८
 दिहुयण संयमु १२०
 दुलसी दास १२ १८७ १९८, ६४४
 ६६५ ६६७-६८३; ३८५-३८९

३९१-३९३, ३९६ ४०१ ४०३,
 ४०७ ४०८ ४१० ४११ ४१३,
 ४१५ ४१७-४१९ ४२३, ४३७
 ४४९ ६३६
 निवित्रम मट्ट ५७
 ६
 दक्षिणा मूर्ति ७०
 दाहू २९२ ३०० ३०१
 दीन दयाल गिरि ५५७ ५७२ ६२२-
 ६२८ ६३३ ६३७
 दीन वरदेव ३५५
 दुस्ता जी १४४ १६४
 देव ५९३ ५९८ ६००
 देवमणि ६१५
 देवमुनि ५८८ ५८९
 देवसेन ११४
 देवा ब्रह्म या देवपाय्ठे ६१४ ६१७,
 ६२२, ६२४
 देवी पत्र ५८६
 देवी दास २०१ २०५ ४८७-४८९,
 ६१६, ६२३ ६३६, ६३७
 घा शिवेरी ११ ७०
 झारकानाथ सरस्वती मट्ट ५८५ ५८६
 झारका प्रसाद १४९ १५१
 ७
 धनव पात्र ७०
 धन पास १०६ ११७
 धनेरवर मुनि ६३
 धम बीर नारसी १२०
 धर्म सिंह ४८१ ८८५ ६२३, ६२५,
 ६३७

न

मण्ड दास ४२४ ४२६, ४२८ ४२९,

४३४, ४३५, ४३७, ४३८, ४३६

मय नन्दी १०६

मयमसिंह ५८४ ५८५

मरपति मास्के १४३ १४९, १५४ १७५

मरहुरि २४८ २५६ ६३६

मरायणदास २८९

नामरीबास ६१२ ६१६

नाष्टुराम (नाबिया) ५१४ ५१६ ६२३

नानक २९६ २९९ ३०७

नामवेव २९२, ३०१

नामवर्धसिंह १०९

नारायणबास पंडित ३४९, ४१७ ४७९

५४५

निसार ३४०, ३४२

नीलकण्ठ शोषित ७० ७१

नूरमुहम्मद ३२१, ३२२ ३२४ ३२५

३२९, ३३० ३३५, ३३८ ३४०-

३४३ ३४५, ३४६, ३४८ ३५०,

३५२

प

पट्टप मट्ट ४४७

पपनाम १८२

पपाकर १६३ १६४ १६८ १७०

५९४

पपानन्द ६०

परमानन्द दास ४२६ ४३० ४३३

४४४

परमेरकरानंद ३६०

परगुराम चतुर्वेदी ३६०, ४३९ ४४१

४५२

पसदू २९४, २९७ २९८, ३००, ३१६-

३१८

पारपीवास ६१४

पाणिनि ३

पी० डब्ल्यू० डब्ल्यू ७४

पीताम्बर वल बडव्यास ३७५

पुष्प दंत १०६, १२० १२४

प्रवरसेन ८९, ९०

प्रवीण कविराम ६११

प्रेमचन्द ६११

ख

खपना २९३

खनारपीबास २१७-२२९, २८६ २८८, ६३६

खरकत उत्सा पेमी ३५३ ३५५, ३६०

खिकीवास ५१९ ५४६ ६१५ ६१७,

६१९ ६२५, ६३४, ६३७

खीत २३७-२४०

खानुराम सचरीना ८२

खानचन्द १११ ४८६

खिहापी १२ २७ ४८० ४८१, ५७१,

५९० ५९१, ५९४ ५९५, ५९८,

५९९ ६०१

खुशराम १८८

खुशजन जैन ५५० ५५६ ६१५, ६१६,

६२३ ६३७

खुल्लेदाह ३५४ ३६१

खैतान ५४६ ५४७

खजरलदास ६०६

खया २५८-२६३

खया छाहा १११

म

मगदछ प्रह्ला ५६९

मगवती वास ४६३ ४६५, ६१५, ६१८,

६२२-६२४ ६२५

मगवानवास निरंजनी ६१५

मट्टि स्वामी ३४

मङ्गुरी ३७८ ६२१

भरत २३ २६

भरमी कवि ६११

भर्तृहरि १० ३६ ६७ २०४ ४४६

४७६, ४८८ ५०६

भल्मट ७१

भबभूति ८ ६४

भामह १६ २३ २६

भारवि ८

भास ३

भिकाारीवास ३६१, ३६२ ३६६

भीम ६१२ ६२०

भूभरवास ४६७-५०० ६१६ ६२२

६२३ ६३४ ६३७

भूपर १३६, १७४ १७६

भोजराज २०, २४ ६१ १०० ११२

भोजालास तिकापी ६३८

म

मंभन ३२८

मठिराम ६०१

मनरयनास ५४७-५४९, ६२० ६२४,

६३७

मनराम ३७६ ३८१

मनु ३७७ ४३३

मनोहर कवि २८६

मम्मट १६, २४ २६, २८

मयूर ३२०

मयूक वास ३०४ ३०७, ३०८ ३११

महान्व १११

महापात्र मरुहरि २४८ २५७

महीनर ४

महेषदास २३८ २६३

महेस मुनि ६११

महेश्वर मूरि ६३, ६४ १०२ ११०

माध ८ ३४ ६३२

माम १४४ १५६ १६१ १७६

मामिक दास ३७६, ६२०

मागरेट स्मिथ ३३६ ३४०

मिषबाणु ३६३

मीराबाई ४२६ ४३०, ४३३ ४३४,

४३८ ४४८

मैज ३६६

मुनिमान ६११

मुनि समय सुन्दर २८६

मुरलीवास ६१४ ६१७

मैषिनीधारण मुण्ड २६

मोतीनास मेनारिया ३८७

य

योगीण्डु १०६, ११४, ११६, १२४

र

रघुनाथ ५४६ ५५० ६१८ ६२२

रघुराज सिंह ३७०, ३८१, ४०८ ४१३

रघु राम ४६४ ६१८ ६१६ ६२३

६२४ ६३८

रज्जव २६४ ३१३ ६३४

रत्नबाब १४

रत्नावती १६६ २ १

रत्नचान ४२७, ४३०

रत्ननिधि ३६१, ५६२, ३६६ ५६८

५६६

न

नाथ दास ४२४ ४२६ ४२८, ४२९,
४३४ ४३५, ४३७ ४३८ ४३६

नय नन्दी १०६

नयनसिंह ३८४ ३८२

नरपति मास्तू १४३, १४९, १४४ १७५

नरहरि २४८ २३६, ६३६

नरमणदास २८९

नागवीरास ६१२ ६१६

नाझुराम (नायिया) ६१४ ६१६, ६२३

नागक २६६, २६९ १०७

नामदेव २६२, ३०१

नामवर्धसिंह १०९

नायबणदास वंशित ३४९, ४१७, ४७९,
४४५

नितार ३४०, ३४२

नीलकण्ठ बीरियत ७० ७१

नूरमुहम्मद ३२१, ३२२ ३२४, ३२५

३२९, ३३० ३३५, ३३८, ३४०

३४३, ३४५, ३४६ ३४८, ३४०,

३५२

प

पट्टप भट्ट ४४०

पपनाम १८२

पपाकर १६३ १६४, १६८ १७०,
३६४

पपानन्द ६०

परमानन्द दास ४२६, ४३० ४३३,
४४४

परमेस्वरानन्द ३६०

परगुराम कतुबेरी ३६० ४१९, ४४१
४५२

पसदू २६४ २६७, २६८, ३००, ३१६-

३१८

पारपीदास ६१४

पाणिनि ३

पी० डब्ल्यू० डब्ल्यू ७४

पीठान्तर पद्य बहध्यास ३७५

पुष्प बत १०६, १२०, १२४

प्रवरसेन ८९, ९०

प्रवीण कवियोग ६११

प्रमथन्द ६११

स

सपना २६३

सनारधीदास २१७ २२९, २८६ २८८, ६३६

सरकठ उस्ता 'पीमी' ३५३ ३५५, ३६०

साँकीदास ५१९ ५४६, ६१५ ६१७,
६१९ ६२५, ६३४ ६३७

सालि २३७-२४०

साम्भूराम सक्तीना ८२

सालचन्द १११, ४८६

सिंहारी १२ २७ ४८० ४८१, ५७१

५९० ५९१ ५९४ ५९५, ५९८

५९९, ६०१

सुल्कराम १८८

सुभजन जैन ५५० ५५६ ६१५, ६१६,
६२३ ६३७

सुल्फेदाह ३५४ ३६१

सैताम ५४६ ५४७

सजरतलदास ६०६

सहा २५८ २६३

सहा साहा १११

स

समयसत्र ग्रहण ५६९

भगवती दास ४६३ ४६५, ६१६ ६१८
६२२-६२४, ६२५

भगवानदास निरंजनी ६१५

भट्ट स्वामी ५४

भट्टी ५७८ ६२१

भच्छ २३ २६

भरमी कवि ६११

भट्ट हरि १० ५६ १७ २०४ ४४६
४७६, ४८८ ५०६

भस्मट ७१

भक्तभूति ८ ६४

भामह १६, २३ २६

भारवि ८

भाष ३

भिक्षारीदास ५६१ ५६२ ५६६

भीम ६१२ ६२०

भुवराज ४६७-४७०, ६१६ ६२२
६२३ ६३४ ६३७

भूपण १५६, १७४ १७६

भीमराज २० २४, ६१ १०० ११२

भोमानाथ विद्यापी ६३८

म

ममन ३०८

मन्तिराम ६०१

मनरंजनाथ ५४७-५४८, ६२०, ६२४,
६२७

मनराम ५७६ ५८१

मनु ३७७ ४३३

मनोहर कवि २८६

मन्मट १६ २४ २६, २८

मधुर ३२०

मधुसूदास ३०५ ३०७, ३०८ ३११

महेश्वर १११

महापात्र महाहरि २४८ २५७

महीशर ४

महेशदास २२८ २६३

महेश मुनि ६११

महेश्वर मूर्ति ६३ ६४ १०१ ११०

माघ ८ ५४ ६३२

मान १४४ १५६ १६१ १७६

मानिक दास ५७६, ६२०

मायरेट स्मिथ ३३६ ३४०

मिथबभु ३६३

मीराबाई ४२६ ४३० ४३३ ४३४,
४ ८ ४४८

मुंज ३६६

मुनिमान ६११

मुनि समय मुन्दर २८६

मुरलीदास ६१४ ६१७

मैथिलीचरण गुप्त २६

मोदीसात मेतारिया ५८७

य

योगीशु १०६ ११४ ११६ १२४

र

रघुनाथ ३४६ ३५० ६१८ ६२२

रघुनाथ सिंह ३७०, ३८१ ४०८ ४१३

रघुनाथ ४६४ ६१८ ६१६ ६२३
६२४ ६३८

रजक २६४ ३१३ ३३४

रत्नकाय १४

रत्नाबनी १६६-२०१

रसदान ४२७ ४३०

रविमि ५६७, ५६७ ५६६ ५६८,
५६६

न

नान्द दास ४२४ ४२६ ४२८ ४२९,
४३४, ४३५, ४३७ ४३८, ४४६

नय गन्वी १०६

नयमसिंह १८४, १८५

नरपति मास्ह १४३ १४९ १५४ १७५

नरहरि २४८ २५६, ६३६

नरामणदास २८९

नागरीदास ६१२ ६१६

नाबुराम (नाबिया) ५१४ ५१६ ६२३

नानक २९६, २९९ ३०७

नामदेव २९२, ३०१

नामवरसिंह १०९

नारामणदास पंडित ३४९, ४१७, ४७९,
५४५

निसार ३४०, ३४२

नीमकण्ठ शीखिठ ७० ७१

गुरमुहम्मद ३२१, ३२२ ३२४ ३२५
३२९, ३३० ३३५, ३३८ ३४०-
३४३ ३४५, ३४६, ३४८ ३५०,
३५२

प

पट्टप घट्ट ४४७

पघनाम १८२

पयाकर १६३ १६४, १६८ १७०
५९४

पघानन्द ६०

परमानन्द दास ४२६, ४३० ४३३
४४४

परमेशचरण ३६०

परुराम चणुवैरी ३६० ४३९, ४४१
४५२

पसट्ट २९४ २९७ २९८, ३००, ३१६-
३१८

पारपीदास ६१४

पाणिनि ३

पी० डब्ल्यू० डब्ल्यू ७४

पीठाम्बर वल बडव्यास ३७३

पुष्प बंठ १०६, १२०, १२४

प्रवरसेन ८९, ९०

प्रवीण कविराम ६११

प्रेमचन्द ६११

ब

बपना २९२

बमारसीदास २१७ २२९, २८६ २८८, ६३६

बरकत उल्ता 'पेमी ३५३ ३५५, ३६०

बांकीदास ५१९ ५४६, ६१५ ६१७,
६१९ ६२५, ६३४ ६३७

बाँन २३७-२४०

बाबुराम सनसैना ८२

बासचन्द १११ ४८६

बिहारी १२ २७, ४८० ४८१, ५७१,
५९० ५९१ ५९४ ५९५, ५९८,
५९९ ६०१

बुक्कराम १८८

बुधबन जैन ५५० ५५६ ६१५, ६१६,
६२३ ६३७

बुल्लेसाह ३५४ ३६१

बैताल ५४६ ५४७

बजरत्नदास ६०६

बहा २५८ ०६३

बहा साहा १११

म

मगदल महाराज ५६९

मगधती वास ४६३ ४६५, ६१६, ६१८,
 ६२२-६२४ ६२५
 मन्वानदास निरञ्जनो ६१५
 मद्रि स्वामी १४
 मङ्गरी ३७८ ६२१
 मरुत २३ २६
 मरुमी कवि ६११
 मरुहृरि १० ३१ ६७, २०४ ४४६
 ४७१, ४१८ ३०१
 मस्म ७१
 मन्मूति ८ ६४
 मासह ११ २३ २६
 मासधि ८
 माघ ३
 मिश्रादीवास ५११ ५१२ ५१६
 मीम ६१२ ६२०
 मूषादास ४१७-४००, ६१६ ६२२,
 ६२३ ६३४ ६३७
 मूपण १५१, १०४ १७६
 मोक्षराज २०, २४ ११ १०० ११२
 मोक्षानाय विद्यारी ६३८
 म
 मञ्ज ३२८
 मधिराम ६०१
 मनरमवास ३४७-३४१ ६२०, ६२४,
 ६३७
 मनराम ३७१ ५८१
 मनु ३७७ ४३३
 मनोहर कवि २८१
 मम्मट ११ २४ २६, २८
 मयूर ३२०
 मयूक दास ३०५, ३०७, ३०८ ३११

महषण १११
 महापात्र मरुहृरि २४८ २५७
 महोषर ४
 महेशदास २५८ २६३
 महेश मुनि ६११
 महेश्वर मूरि १३, १४, १०२, ११०
 माष ८ ५४, ६३२
 मान १४४ १५१ १६१ १७६
 मानिक वास ३७१, ६२०
 मागरेट स्मिथ ३३६, ३४०
 मिश्रवाधु ३१३
 मीराबाई ४२६ ४३०, ४३३, ४३४,
 ४३८ ४४८
 मूक ५६१
 मुनिमान ६१३
 मुनि समय सुम्बर २८१
 मुरलीदास ६१४ ६१७
 मेघिनीचरण पुण्ड ९१
 मोतीनास मेनारिया ५८७
 य
 योगीशु १०१ ११४, १११, १२४
 र
 रत्ननाथ ५४१ ५५०, ६१८ ६२२
 रघुराज सिंह ३७०, ३८१, ४०८ ४१३
 रघु राम ४१४ ६१८ ६११, ६२३
 ६२४ ६३८
 रज्जव २१४, ३१३ ६३४
 रत्नचन्द्र १४
 रत्नाबती १११ २०१
 रसपाल ४२७, ४३०
 रसनिधि ५१७, ५१२ ५१६ ५१८
 ५११

	न
नन्द बास ४२४	४२६ ४२८ ४२९,
४३४, ४३५, ४३७	४३८ ४३९
य मन्वी १०६	
यमसिंह ५८४	५८५
रूपति मासू १४३	१४६, १४४ १४५
रुद्रि २४८	२४९ ६३६
रामलुदास २८६	
रामरीवास ६१२, ६१६	
राधुराम (माबिया)	५१४ ५१६ ६२३
रामक २६६, २६६	३०७
रामदेव २६२, ३०१	
रामधरसिंह १०६	
रामलुदास पंडित ३४६,	४१७ ४७६,
५४५	
रमसार ३४०, ३४२	
रीतकण्ठ दीक्षित ७०	७१
रुरमुहम्मद ३२१, ३२२	३२४, ३२५
३२६, ३३० ३३५,	३३८ ३४०
३४३, ३४५, ३४६,	३४८, ३४०,
३४२	
	प
मट्ट मट्ट ४४७	
मघताम १४२	
मघाकर १६३	१६४ १६८ १७०
५६४	
मघानन्द ६०	
मघानन्द बास ४२६,	४३० ४३३,
४४४	
मघसेखानद ३६०	
मरपुराम मधुपेदी ३६०	४३६, ४४१
४४२	

पल्लव २६४, २६७	२६८, ३००, ३१६
३१८	
पारपीबास ६१४	
पाणिनि ३	
पी० डम्पू० डम्पू ७४	
पीताम्बर दत्त मधुवास ३७५	
पुष्प दत्त १०६, १२०	१२४
प्रवरसेग ८६, ६०	
प्रवीण कवियाम ३११	
प्रेमचन्द ६११	
	म
मपना २६३	
मनारपीबास २१७-२२६,	२८६ २८८ ६३६
मरकत उत्सा 'पेमी	३५३ ३५५, ३६०
मौकीबास ५१६ ५४६,	६१५ ६१७,
६१६ ६२५, ६३४	६३७
मान २३७-२४०	
माकुराम सख्तना ८२	
मासचन्द १११, ४८६	
मिहारी १२ २७, ४८०	४८१, ५७१
५६० ५६१, ५६४	५६५, ५६८,
५६६ ६०१	
मुष्कराम १८८	
मुष्कराज शैल ५५० ५५६, ६१५	६१६,
६२३ ६३७	
मुस्सेबाह ३५४ ३५१	
मुस्तास ५४६ ५४७	
मनारपीबास ६०६	
महा २५८ २६३	
महा धाहा १११	
	म
मघदत्त मरहणा ५६६	

भगवती दास ४६३ ४६४ ६१६, ६१८,
 ६२२-६२४ ६२५
 भयवानदास तिरंजनी ६१५
 महि स्वामी ३४
 भद्रुती १७८ ६२१
 भरत २३ २६
 भरभी कवि ६११
 भद्रुहरि १० ३६ ६७ २०४ ४४६
 ४७६, ४८८ ५०६
 भक्त ७१
 भक्तभूषि ८ ६४
 भामह १६ २३ २६
 भारवि ८
 भास ३
 भिखायीदास ५६१, ५६२ ५६३
 भीम ६१२ ६२०
 भूषणदास ४६७-५००, ६१६ ६२२
 ६२३ ६३४ ६३७
 भूपण १५६, १७५ १७६
 भोजराज २०, २४, ६१ १०० ११२
 भोजानाथ ठिकारी ६३८
 म
 मम्मल ३२८
 मधिराम ६०१
 मनरामदास ४४७-४४८, ६२० ६२४,
 ६३७
 मनराम ५७६ ५८१
 मनु ३७७ ४३३
 मनोहर कवि २८६
 मम्मट १६ २४, २६, २८
 मधुर ३२०
 मधुक दास ३०५, ३०७, ३०८, ३११

महामन्द १११
 महापात्र नरहरि २४८-२५७
 महीश्वर ४
 महेशदास २५८ २६३
 महेश मुनि ६११
 महेश्वर सूरि ६३ ६४ १०२, ११०
 माध ८ ५४ ६३२
 माम १४४, १८६ १६१ १७६
 मानिक दास ५७६ ६२०
 मागरेट स्मिथ ३३६, ३४०
 मिश्रबन्धु ५६३
 मीराबाई ४२६ ४३० ४३३, ४३४,
 ४३८ ४४८
 मुञ्ज ५६६
 मुनिमान ६१३
 मुनि समय मुन्दर २८६
 मुरलीदास ६१४ ६१७
 मेघिमीचरण गुप्त २६
 मोतीनाथ मेनारिया ५८७
 म
 योगीश्वर १०६, ११४, ११६, १२४
 र
 रघुनाथ ५४६ ५५० ६१८ ६२२
 रघुराम सिंह ३७०, ३८१ ४०८ ४१३
 रघु राम ४६४ ६१८ ६१६ ६२३
 ६२४ ६३८
 रत्नक २६४, २१३ ६३४
 रत्नचन्द्र १४
 रत्नावती १६६ २०१
 रत्नानि ४२७ ४३०
 रत्ननिधि ५६१, ५६२ ५६६ ५६८
 ५६६

१. एक मोक्ष ६१३ ६२१
 रक्षिण देव ४३२, ४३७
 रक्षीम ३१, २७० २८२, ४८० ६३६
 राजसेखर ६१

राज समुद्र २४० २४१
 राजा टोकर मम २३७-२५८
 राजा बीरबल २३८ २६३
 राजेन्द्र द्विवेदी १८
 राममोक्षिण द्विवेदी ४२
 रामचन्द्र भुक्त ३२१ ३६८
 रामचरण २६८ ३०३ ३०७
 रामचिह्न मिश्र ३०
 राम पाणिबाद ८६ ६०
 रामसिंह १०६, ११४
 रामानन्द ३७३
 राहुम साहस्रपायन १०६
 राट १६, २४

स

सदमण गण्ड ६३
 सङ्गी नाटयण बास चौहारी ३७३
 सङ्गी वास्तव ४६३ ४६७ ६ २ ६२३
 ६२३ ६३७
 सखम देव १०७
 सस्वमान ६०६
 सात क्रमि २४३-२४५
 सातचन्द्र ३०१ ६१७ ६१४ ६१६
 ६१८ ६१६

श

शङ्कर सुन्दरदान ६१४
 शङ्कर ६२
 शस्त्रामदेव ७२ ०४१

शाकपतिराज ८६ ६०
 शाकट १६ २०
 शाकिन्ध (शाकिण) २३५ २३६
 शासन २० २४
 शास्त्रीकि ४, ५, ४१७
 शिटरनिन्द ८३
 शिर्कर्मसिंह ५६७, ५६६
 शिष्यानाथ १६
 शिष्यापति ११३
 शिनयनन्द १११
 शिपिनशिवादी द्विवेदी १४३
 शिममकुमार जीम ४००
 शिमल सूरि ६३
 शिल्पण ५६
 शिदबनाथ २०
 शिवनाथ मिश्र ५६०
 शिष्णुगिरि ३८८ ३८६
 शीरबल १११
 शीरेखर ७२
 शुभ १३ २२ ३२, ४६७-४८१, ५६०,
 ६१५ ६१६ ६२३ ६२४, ६३२,
 ६३६ ६३७
 श्याम (महर्षि) १७०
 श्याम ४२३ ४३१ ४३३, ४३५, ४३७,
 ४४०, ४४२ ४४३, ४४७ ४४८
 ४५१
 श्रवणिनि ३८६ ३८७
 श्रवणसी बास ४३१, ६१३
 शिवान्त शैतिल ६६
 श

श

शकराचार्य ६१, ६२, ६७ ४६७

धाम् ५७
 धार्गभर ७२ ३१३
 धिवलाल बुके ६१४
 धीनाथार्य ६३
 धूमक ६२, ६१
 धेख मनी ३२६, ३३३ ३३४, ३४४
 धेख फरीद ३६३
 धीवर पास ७२
 धी सार ६१३ ६१७
 धी हर्ष ८ ५४

स

समय सुन्दर मणि ६२ ६३, २८६
 सारदार हकवान धनीघाह ३३६
 सार फिलिप सिङ्गनी २४
 सारका सुलत ३२२
 सारहपा ११४ १२१
 सायलुआचार्य ७२
 सिस्हृण ६६
 सुलदेव ४६१ ४६२ ६२०
 सुनीति कुमार जटर्षी १२१
 सुन्दर दास २२६ २३५
 सुन्दर पाण्ड्य ६६
 सुप्रभाचार्य १०६
 सुमित्रा मन्वन पन्थ २६
 सुबन १२८ १५६ १६४
 सुर फियोर ३७७ ३८१
 सुरत ६१४, ६२० ६२४
 सुरवाण १२ ३६८ ३६६, ३८३,

३८८, ३९१ ४०६ ४२१, ४२५,
 ४२६, ४३३ ४३८ ४४० ४४१,
 ४४७, ४४८ ४४२, ४८०, ६३४
 सूर्य मत्स १४७ १४६, १५३, १५६
 १५७, १६२ १६४ १७१ १७७
 सेनापति ५६३ ५६५
 सेबक ४३२
 सोमदेव ११ ३७
 सोमप्रभाचार्य ६३ १०८ ११७ ४६०
 ६३१
 सोनेरवार ६२
 स्वाम दास ३१७-३१८ ६२४
 स्वयंभू १०६ १०७, ११४ ११६, ११७,
 १२५, ६३२

ह

हृष्ट २३
 हर पोबिन्ध पास १४
 हरिकवि ७३
 हरियेव १०८
 हानी बसी ३६३
 हित कुम्भावन दास ५०२ ५०४, ६१७,
 ६२१, ६२२
 हित हरि बंध ४२४
 हवम राम ३६६ ३८२, ३८६, ४ २,
 ४०६, ४१६
 हेम चन्द्र १६ ६६, ६१, ६३, ६४, ६७
 १००, १०१ १०७ ११२, ११८
 १२३
 हेमराव २८६, ४६२

शुक गोविन्द ६११ ६२१
 शुक देव ४३२, ४३७
 श्रीम ३१, २७० २८२, ४८० ६३६
 रामसेखर ११
 राम समुह २४० २४१
 राजा टोडर मल २३७-२३८
 राजा बीरबल २३८ २३९
 राजेश्वर द्विवेदी १८
 रामगोविन्द द्विवेदी ४२
 रामचन्द्र मुक्ता ३२१, ३६८
 रामचरण २६८ ३०१, ३०७
 रामवहिन मिश्र ३०
 राम पाणिनाद ८६, ९०
 रामसिंह १०६ ११४
 रामानन्द ३७५
 राहुम साहूत्पायन १०६
 रघु १६ २४

स

सारण मणि ६३
 सारमी नारायण बास पीहारी ३७३
 सारमी बल्लभ ४६३ ४६७ ६ २, ६२३
 ६२५ ६३७
 सारम देव १०७
 सारमूमास ६०६
 सारम कवि २४३ २४५
 सारमचन्द्र ३०१, ६१३ ६१४ ६१६
 ६१८ ६१९

श

शारदा सुन्दरदास ६१४
 शुकदेव १२
 शरमादेव ७२ २४८

शाकपतिराज ८६ ९०
 शाकपति १६ २०
 शाकम्ब (शाकम्ब) २३३ २३६
 शारम २० २४
 शास्त्रीकि ४, ३ ४१७
 शिटरनिद्रा ८३
 शिक्कामासिह ३६७ ३६६
 शिवाणाम १६
 शिवापति ११३
 शिवयचन्द १११
 शिवितविहारी द्विवेदी १४३
 शिवलकुमार जेठ ४ ०
 शिवम सुदि ६३
 शिवल्ल ३६
 शिवनाम २०
 शिवनाथ मिश्र ३६०
 शिवल्लुमिदि ३८८ ३८६
 शीरचन्द्र १११
 शीरचन्द्र ७२
 शुभ १३ २२ ३२, ४६७-४८१, ६६०,
 ६१५ ६१६ ६२३, ६२४ ६३२,
 ६३३ ६३७
 श्याम (महापि) १७०
 श्याम ४२५ ४३१ ४३३, ४३६, ४३७,
 ४४० ४४२ ४४३, ४४७ ४४८,
 ४५१
 शुकगिनि ३८६ ३८७
 शुकवासी बास ४३१ ६१३
 शुकान्त द्विवेदी ६६

स

संकराचार्य ६१, ६२, ६७, ४६७

शंभू १७
 शोषिकर ७२, ३१३
 शिवसाज दूबे ६१४
 श्रीलाचार्य ६३
 शूद्रक ६३, ८१
 शिव मनी ३२६, ३३३, ३३४, ३४४
 शिव फरीद ३६३
 शीबर दास ७२
 श्री शार ६१३ ६१७
 श्री हर्ष ८, १४

स

समय सुन्दर शशि ६२, ८३, २८६
 सरदार इन्द्रबाब धर्मीबाह ३३६
 सर किशिन सिङ्गनी २४
 सरला सुमल ३२२
 सरहपा ११४ १२१
 सायणभार्य ७२
 सिस्त्रण ६६
 सुबदेव ४६१ ४६२ ६२०
 सुनीति कुमार षट्ठी १२१
 सुन्दर दास २२६-२३३
 सुन्दर पाण्ड्य ६६
 सुप्रभाचार्य १०६
 सुमित्रा मन्जन पन्थ २६
 सुवन ११८ ११६ ११४
 सूर किशोर ३७७ ३८१
 सूरत ६१४, ६२० ६२४
 सूरदास १२, ३६८ ३६६ ३८३

३८८, ३६१, ४०६ ४२१, ४२५,
 ४२६, ४३३ ४३८ ४४०, ४४१,
 ४४०, ४४८, ४५२, ४८०, ६३४
 सूर्य मन्थ १४७ १४६, १४३, १४६
 १४७, १६२ १६४ १७१ १७७
 सेनापति ४६३ ४६४
 सेवक ४३२
 सोमदेव ११ ३७
 सोमप्रभाचार्य ६३ १०८ ११७, ४६०,
 ६३१

सोमेश्वर ६२
 स्वाम दास ४१७-४१८, ६२४
 स्वयम्भू १०६ १०७, ११४ ११६, ११७
 १२१, ६३२

ह

हंट २३
 हर गोविन्द दास १४
 हरिकवि ७३
 हरिदेव १०८
 हामी बली ३६३
 हित कुन्दावन दास १०२ १०४, ६१७,
 ६२१ ६२२
 हित हरि वध ४६४
 हरम राम ३६६ ३८२, ३८६, ४०२,
 ४०६ ४१६
 हेम चन्द्र १६, १६, ६१ ६३, ६६, ६७,
 १००, १०१ १०७, ११२, ११८,
 १२५
 हेमचन्द्र २८६, ४६२

(स) प्राय

अ
 अक्षर वनीसो १ १
 अक्षुर्भ वाणी २५८ १ ३ ३००
 अक्षुर्भपद ५, ३५ ५०, ३५८ ६०५
 अर्थ अथवा २१८
 अक्षुर्भ उपदेश २३०
 अक्षुर्भ रंभुरी ३०२ ३३५ ३३६ ३५०
 ३५२ ३५३ ३५० ३५२
 अक्षुर्भ बाग ३३७
 अक्षुर्भपदेश वाक्य ७१
 अक्षुर्भ कल्पक्रम ३३७, ३३९ ३७२ ३२५
 ३२३
 अक्षुर्भ वाक्य ३११
 अक्षुर्भ वाक्य ५१६ ५१०
 अक्षुर्भ वाक्य ७२
 अक्षुर्भ काव्यवनी १२५
 अक्षुर्भ वर्ण ११६
 अक्षुर्भ पाठवनी १२० १२१
 अक्षुर्भ स हिरय १०८ १०६ १२१
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ६३, ६४ ३५५, ३५७
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ७२
 अक्षुर्भ २३३ २३७
 अक्षुर्भ वाक्यवनी १५

अक्षुर्भ वाक्यवनी २१९
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ३
 अक्षुर्भ वाक्यवनी १५२ १५१ १५३
 १५६ १५९ १६२ १६५ १६८
 १७५, १७८ १८०
 अक्षुर्भ
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ३७६
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ५६
 अक्षुर्भ वाक्यवनी १५८ १५०—१
 अक्षुर्भ
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ३२१ ३२५ ३३६ ३५५,
 ३५६ ३५८
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ६१२ ६१६
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ३३६
 अक्षुर्भ
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ३५
 अक्षुर्भ वाक्यवनी २५२ २५३
 अक्षुर्भ वाक्यवनी २०५ २०६
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ५३६
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ५६२
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ६१३, ६१७
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ११३, ११६ ११८ ६३८
 अक्षुर्भ
 अक्षुर्भ वाक्यवनी ३३ ३७ ३८, ३९, ४१,

ए

एष० एस० एम्० ५६ ५८ ५९ ७०

ऐ

ऐतरेय ब्राह्मण ५२

ऐन एपोलोनी फार पोएडी २४

ओ

ओरिजन एंड डिवेलपमेंट आफ वगासी
सोवत्र १२१

क

कस बहो ८९ ९०

कचका बनीसी ११४

कठोपनिषद् ५३, ८४ १२६

कपा कर्मसावली ३५८

कपा कोष प्रकरण ९३

कबीर प्रयागसी २९५ ५९६ २९९

३०१ ३०४ ३०७ ३११ ३१२

४४८ ६३२

कबीर बचनानुगत ३१०

कबीर बचनानुगत २९२-२९९ ३०२

३०३ ३०६ २११ ३१३ ३१४

३१६ ३१७ ३१९

करकण्ड चरित ३२०

कच्छणा मजूरी ६२

कर्पूर मजरी ९१ ९५

कर्म बनीसी २४१

कर्म पाठक ४९१-४९२ ६२१

कसा बिलास ५४५, ५४६ ६३८

कसि चरित बली २१७-२४० २०२

५०४ ६१७ ६२१ ६२७

कसिबुग रासा ६१३ ६२१

कसि बिलास ५४५

कल्याण मन्विर स्ताव २ ६

कवित प्रबन्ध ५७९

कवित बावनी ४६१ ६१२ ६२५

कवित रत्नाकर ५९३

कविता कौमुदी १५३ १५५ २२१

२५५ २६३ २६७ २८४ ३०४

३६३ ६८ ३-६ ४४८ ४८०

५४६ ५६७ ५६० ५७१ ५९०

५९४ ७९६ ९० ६०३ ६०४

कवितावली ४०७ ४१८

कवियों की मूर्तिकी ६०५

कबीन्द्र बचन समुच्चय ७२

कायम रासी २११

कायर बावनी ५२३ ५७६ ५४०-५४४,

६१६ ६२२ ६३१, ६३९

कामीबास हुबारा ६११

कामेश करेट एस्तेज १९

काव्य दर्शन ३०

काव्य निगम ५९१ ७९७ ५९६ ६०५

काव्य प्रकाश १९, २४ २९

काव्यमाया ५५, ५७ ५९ ६२ ६९,

७०

काव्यादास ९५

काव्यानुवाचन १९ ९१ ९७ ९९ १०१

काव्यासकार १९, २३

काव्यासकारसूत्रद्वितीया -

किरातार्जुनीय ८ ५३

कि न बावनी ४९६ ४९७

कीर्तिमता ११३

कीर्ति पाठक ८९१ ६१९ ६२५, ६३९

कुबजि बलासी ५०७ ५०४ ५२९

५३० ५३६ ५४० ५४१ ६३३

(स) ग्रन्थ

प्र

धार बनीसी ९ १
 धारमै काएँ २४८ ३ ३ ३०७
 धारबये ४, ३५ ४० ३४८ ६०४
 धर्य कमावक २१८
 धर्मभूग उपदेश २३
 धर्मगग बेमूरी ३२२ ३३३ ३३६ ३४०
 ३४२ ३४३ ३४० ३४२
 धर्मगग बाग ५३७
 धर्म्यापनेय घटक ७१
 धर्म्योक्ति कम्मट्टम ३३७, ५६१ ५७२ ६२४
 ६२५
 धर्म्योक्ति भावनी ५११
 धर्म्योक्ति भाग ५१६ ५१७
 धर्म्योक्ति घटक ७२
 धर्मभ्रंश काम्यत्रयी १२४
 धर्मभ्रंश दर्पण ११६
 धर्मभ्रंश पाठावली १२० १२१
 धर्मभ्रंश स हित्य १०८ १०६ १२१
 धर्मिजान धाट्टममम् ६३ ६४ ३४३ ३४७
 धर्मिगिगार्थ विभाषण ७२
 धर्मिण २३५ २३७
 धर्ममागधी कोण १४
 धर्मगज्जासी बी भित्ति ३४०

धर्मफ लाँ की पेड़ी २११
 धर्म्यायी ३
 धर्मसी धर्महलण १४२ १५१ १५३,
 १५६ १६१ १६२ १६५ १६८,
 १७५ १७८ १८०
 धा
 धारम विचार ५७६
 धार्या सप्तधरी ५६
 धार्या १४८ १५०—१
 धा
 धार्यावली ३२१ ३२४ ३३६ ३४५,
 ३४६, ३४८
 धाक भमग ६१२ ६१६
 धास्मिक सूक्तिग ३३६
 धा
 धार रामपरित ६४
 धारिम-कर्म-सुबाह २४२-२४३
 धार्यग य ब्रूहा २०५ २०६
 धार्यग बनीसी ४५६
 धार्यग घटक ४६२
 धार्यग सतरी ६१३ ६१७
 धार्यग रसायण ११३ ११६ ११८, ६३८
 धा
 धार्यग ४ ३५ ३७ ३८, ६६ ४१,
 ७४, ३७३

ए

एक० एस० एम० १६ १८ १९ ७०

ऐ

ऐतरेय ब्राह्मण ४२

ऐन एपोलोनी कार पाएड्री २४

ओ

ओरिजन एण्ड डिबेसपमैण्ट घाफ बगाली
सोबेज १२१

क

कस बहो ८९ ९०

कनका बबीसी ६१४

कठोपनिषद् ४६, ८४ १२६

कथा कंभलाबती ३४८

कथा बोध प्रकरण ९३

कबीर प्रयागवासी २९५ २९६ २९९

३०१ ३०४ ३ ७ ३६१ ३६२

४४८ ६३२

कबीर बचनानुसू ३१०

कबीर बचनानुसू २९२-२९९ ३०२

३०३ ३०६ ३११, ३१२ ३१४,

३१६ ३१७ ३६५

करकण्ड खरिज ३२०

करुणा सहये ६२

कर्पूर मन्त्री ९१ ९५

कर्म बलीसी २४१

कर्म पाठक ४९१—४९७ ६०१

कला विद्या ४४५, ५६६ ६३८

कसि खरिज बेसी २३७-२४० ५००

२८४ ६१७ ६२१ ६००

कसिबुप रामो ६११ ६०१

कसि बिहम्मन ७०

कन्याय मन्त्रि स्तोत्र २-६

कवित्त प्रबन्ध १७९

कवित्त बाबनी ४६१ ६१२ ६२५

कवित्त रत्नाकर १९३

कविता कौमुदी १५३ १५५ २२१,

२५५ २६३ २६७ २८४ ३०४

३६३ ३६६ ३-६ ४४८ ४८०

५६६ ५४७ ५६० ५७१ ५९०

५९४ ५९६ ६०० ६ ३ ६०६

कवितावला ४०० ४०८

कवियो कौ मन्त्री ६०५

कवीन्द्र बचन समुच्चय ७२

कामम रासो २११

कामर बाबनी १२३ १२६ १६०—१४४,

६१६ ६२२ ६३८ ६३९

कालीराज द्वारा ६११

कालेज करेट एसेज १९

काव्य दण्ड ३०

काव्य निगम ५९१ ५९७ ५९६ ६०५

काव्य प्रकाश १९, २४, २९

काव्यमाणा ५५, ५७ ५९ ६२, ६९,

७०

काव्यापम ९५

काव्यानुगायम १९ ९१ ९७ ९९ १०१

काव्यासकर १९, २३

काव्यासनागमूत्रकृति ०

विगतार्जुनीय ८ ५३

कि न बाबनी ४९६ ६९७

कीर्तियत्रा ११७

कीर्ति घन ६९३ ६१६ ६०५ ६३९

कुतबि बनीसी ५-७ ५ ६ १०९

५३० ५३९ ५६० ५४१ ६२२

कुण्डलिया २०२ २१० २१३ २१६ ६३१
 कुण्डलिया बाबनी ४८३ ४८४ ६२५
 कुमार पास भरित ६३ ६४ १०६
 कुमार पास प्रतियोग ६३ ११७
 कुमार संभव २३
 कुम्भलघास ४३६, ४४२ ४४२
 कुवलय माला ३२०
 कृष्ण परित्र १८३ १८४ ६३३
 कृष्ण दण्ड २२२ २२४ २३४—२३८
 २४० २४१, ६२०, ६२२
 कृष्ण पञ्चीसी २२३ २२४ २३४,
 २३६—२३८ २४० ६२० ६२२
 ६२४
 केन्दव प्रभातसी २६४, ६०३—६०६
 केन्दव पण्डित १७६ १७७
 केन्दव पावनी ४८६
 कीर्तिस्मारकसारथ ६
 ख
 कुण्डली की हिन्दी कविता १४० १४१
 ग
 गंगाधर ६२३
 गङ्गा मुकुमास पापाई २११
 गङ्गा संहिता ४०
 गङ्गा म्या घटी ८० ६६ ६७ १००
 गङ्गा सङ्गीत ६२ ६३
 गङ्गा सङ्गीत २३
 गीता चरम ६
 गीतावली ३८६
 गुण पादना ०२
 गुर सीप ६१४
 गुप्त-बैतानी पद ६१२, ६१८
 गुर महिमा ६१३, ६१८

गोरख वाणी १३२ १३६
 गोविन्द स्वामी ४४२, ४४२
 गौड़ मय ८६, ६०
 ग्रन्थ साहब २६२, ३०६
 ग्रिहसत सत सार ६१४, ६१७
 ग्वास रत्नावली ६०१
 घ
 गाय और भङ्गरी की कहावतें २७८
 ङ
 ङण्डु मय दास ४२८ ४३०, ४३६ ४३६,
 ४३२
 ञ
 ञामोक्त २०
 ञाम्-भारतम् २८
 ञर्पटमञ्जिका ४६७
 चाणक्य नीति ६ ६५, ६६ ७४ ७५,
 ७६ ८१ ३५०, ४०० ४१६ ४७८
 ४६०, ४८८, ६११ ६१५, ६३३
 चाणक्य सूत्र ६
 चिन्तावली ३ ४ २३२, ३३७ ३४६,
 ३४७
 चुगल मुक्त चण्डिका २२२ २२४, २२५,
 २४० २४१ ६१३, ६३६
 चुनडी १११
 चौबीस ठीककर का पाठ ४४७
 चौबीसी २४६
 चौर पंचायिका ६२३
 छ
 छन्द विद्या ३६०
 छन्दस्य बाबनी ४८४ ६२५
 छान्दोग्योपनिषद् ८० १०८
 छिन्नास पञ्चीसी २०१ ६१३ ६१६
 छीत स्वामी ४२२ ४३४, ४४५

श्रीहंस बाबनी १८३ १८७
 अ
 बसहुर चरित्र १०६ १२० १२४ ३२०
 पाठक निदाम कथा १०८
 बापसी के परबर्ती हिन्दी सूफी कवि और
 काव्य ३२२, ३२४ ३२६ ३२८
 ३३१ ३३३ ३३५ ३३७ ३४३
 ३४६ ३४८ ३५४ ३५७ ३६१
 बापसी ग्रन्थावली ३०१ ३२३ ३२६
 ३३० ३३२ ३३८, ३४८ ३५१
 ३५३-३५७ ३६१
 बिन सहायनाम २८३
 बीब मन करछ संगान कथा १०८
 बे०डी०एम० १०४ ६
 बैन पाठक ४८७-५०० ६३४
 बाम बीप ३३३
 बाम पञ्चमी कथा ८३ ८४ ६३३
 ब
 बिमल में बीर रस १४७ १६४
 बीफम घाफ ऐम एम्बे घाफ ड्रामेटिक
 पोएट्री २४
 बूमर बाबनी १८२
 ब
 बाम मनु बुन्द ६१४ ६२४
 ब
 ब्याय कुमार चरित्र १०६ ६२०
 बामि एाह चरित्र १०७
 ब
 बर्क बितावनी २३१
 बर्दिठ महाचरित्र चरित्र १०६
 बुमसी और उनका साहित्य ४००
 बुमसी प्रपावनी ३७४ ४०२ ४०६,
 ४११ ४१३, ४१८ ४४८
 बुमसी खलावनी ४१२ ४१५

बुमसी सतसई ३६८ ३७० ३७२ ३७४,
 ३७८ ३८८ ३९० ३९२ ३९५
 ३९७ ४०३ ४०४ ४०७ ४१२
 ४१५ ४१८ ४२३
 बुमसी साहित्य खलाकर ४१७
 बुमसी सुनि सुभा ३६६ ३६८ ३७०,
 ३७४ ३८३ ३८९ ४०४ ४११,
 ४१२ ४१४
 बेषू कठिया २१८ २१८
 बीचिरीय उपनिषद् ३२२
 बीया बिनोद चरित्र ८८२ ३८३ ६१८
 ६ ४
 ब
 बन्ति बाबय बिकाश ५७२ ५७७ ६१८-
 ६२० ६२२, ६२४ ६३८
 बर्बसमन ६८ ६३४ ६३८
 बराम प्रथ २८६ ३०१
 बरामुक्त बध ८८ ९०
 बराम कथक ८१
 बातार बाबनी ५२१ ५२४ ५३४,
 ५४० ५४१, ६२० ६२२
 बातार मूर मो संबाव ५८६ ५८४ ६२०,
 ६२२
 बीन दयाल गिरि प्रपावनी ३५७-३७२,
 ६३३
 बीक बलीसी ५७८ ६१६
 बी मिस्टिकम फिलासफी भाष्य मुष्टीजरीन
 इन्जुम मरली ३२२
 बुट मरम पञ्चमी ३४८ ३५० ६१८,
 ६२२ ६३८
 ब्रह्म बाबनी ४६६, ४६७
 इप्याम ठरगिणी ५३७-५६१ ६२३
 इप्याम पञ्चमी ४६३ ६२३

देव सुधा ५६१ ५६३ ५६७ ६०३
६०४

देवघातक ६०० ६०२

देवीदास जी रा कवित्त २०१ २०५

देव्यपराय कामायण स्तोम ६२

दोहा कोस ११४ ११५

दोहावली १८७-१९८ ४१८

दोहावली वा सतसई २७१

घ

घम्मपद ८२-८७ ६३४ ६३८

घर्म कामनी ४८२-४८४

घमस पञ्चीसी ५२१ ५२४ ५३३,
५४० ५४१ ६१७ ६२२ ६२५

घम्यामोह २० २७ ६१ ६२३

ग

गन्ध दास प्रयावली ४२२ ४२४ ४२८
४२९ ४३२ ४३४ ३८ ४४६,
४५२

गस जम्बू ५७

गस रत्न कवित्त २१९ २२१

गस रस पद्यावली २१८

गाटक समय सार २१८

गाटघदास्त २३

गाण पञ्चमी कहाधो १०२

गप भासा २१८

गदस १७१

गर्धार घटक ४८७

गैलि टिपिटिका ६६ ६३३

गीति पद्य संग्रह ६०९

गीति मंत्ररी ११ ७० ५२१ ५२४,
५३८ ५४१ ५८६ ६२१ ६२५

गीतिवाक्यामृत ११

गीति घटक १०, ६२३ ६३८ ६३८

गेम जन्त्रिका ५४७

गीतघ चरित ८, ५४

ग्यास वधकम् ६२३

ग

गजस चरिय ६३, १०६, १०७

गंजसग्य ११ ८१

गजास्थान ३८६

गजेन्द्रिय चरित २२९ २३०

गजेन्द्रिय संवाय ४६३ ६१६ ६२२,
६२४

गजिन्दी बेनी १८३ १८३

गजाकर गंजासृष्ट १६३ १६५, १६६,
१६८, १७० ५६० ५६४, ६०५

गजावत ३२० ३३९

गजावती ३२०

परमात्म प्रकाश ११५ ११९ १२४

परमानन्द दास ४३०

परमानन्द सागर ४२६ ४२९ ४३४,
४३९ ४४० ४४४ ४५२

परसु राम सागर ४२४ ४३९, ४४१,
४४३ ४५०-४५२

पस्तक २९

पादस सह महत्त्वानी १४

पाहुड़ बोधा ११४

पुष्प घटक ४६२ ४६३ ६१६

पुष्पाण ४९ ५२

पुष्पानिक बर्द्धन घाफ विम्बम ४९

पुरानी हिन्दी ६३६

प्रताप कइ यद्योभूषण १९

पृथ्वीराज रावो १४५, १४६, १५२, ६२३

प्रकाश विद्यामणि ११२

प्रबोध ज्योतिष ६१२ ६१३

प्रबोधतर मासा २४१

प्रस्तोतरी ६७
 प्रस्तोतरी विदग्ध मुक्त मञ्जन ३८७
 प्रसन्न राचन ४१६
 प्रसन्न पुष्पपाप ६१२ ६१६
 प्राकृत पंगन ११२ ११८
 प्राकृत सप्तण ११२
 प्राकृत व्याकरण ११९ १२३
 प्राकृत सुमापित संग्रह ८९ ९५, ९७

१०२

प्रास्ताविक मध्योत्तरी २ ३ ५१४
 प्रास्ताविक बोध ६०९
 प्रास्ताविक फुटकर कविता २२२ २२४
 प्रीष्टेस दु शोक्तपीयर २३
 प्रेम तरंग ५९३
 प्रेम प्रकाश ३३३ ३३५ ३५७, ३६०

३६१

प्रेम रत्नाकर ४८७ ६१६ ६२२
 प्रेमावली ३२०

फ

फुटकर पद्य ४६४ ४६३ ४८४

ब

बपना जी की बाणी २९३
 बनारसी विभास २१८-२२९
 बार्सि परीसा ४६४ ६१८ ६२२
 बाँकी बास ग्रन्थावली ३२० ३४६
 बाह्य सङ्गी ६१३, ६१४ ६२० ६२४
 बामावबोध २४१
 बिहारी रत्नाकर ३९० ३९२, ३९४
 ३९५ ३९९ ६०१ ६०२ ६०५,

६०७

बिहारी सतसई ३९८ ६०४ ६०९
 बीची २४१

बीतस देव रासो १४३, १४६, १४९,
 १५४ १७२

बुद्ध चरित ३२
 बुधनन विभास ३३०
 बुधनन सतसई ३३०-३३६, ६१३, ६३३-
 बुद्धारम्भकोपनिषद् १०८
 बुद्ध हिन्दी कोष १४

म

ममबद्ध बोधा ६ ४९, १७०, ४१७

मट्टि काव्य ३४

मर्तुहरि सतक माया ३८३, ६१३

मस्तक सतक ७१

महिस्समत कथा १०६ १०७, ११७

मायकत ३१, ७३ ४१७ ४४७ ३०१

मामिनी विभास ७१ ७३

माखी मूयक १०

माया चाक्षिप ३८७, ३८८

मिसारी बाब इन्वारी ३९२, ६०१

मूयक ग्रन्थावली १४९, १५२, १५९,
 १६४, १७४

मम विषयक सतक ३१०

न

नतिराम सतसई ३३७ ३०१, ६०९
 ६०७

ननु मातली ३२८ ३३९

नन बलीली ४३३-४३४, ६१६

ननराम विमल ३३३-३३४

ननुस्मृति ८१ ८५, ८७ १४९ ३०८
 ३३३ ३३४ ३३५ ४७३

नन्य इन्वारी ३३३

ननय बुद्ध ३३३

ननय पण्डित ३३३

गहा पुष्प खरित २३

गहामाख ४ ३, ४३ ४६, ८१, ४१६,

१३३

गावुका बावनी ४५६ ४६० ६२३

गायबानन काम कंदसा ३२७ ३२६

गान बावनी ६१३

गामती माधव ८

गवड़िया मिजाज ३२२, ३२४ ३२७,

६१६ ६२२ ६३६

भेरगावती ३२०

भेय्यग्यु विनोद ३७६

मीरा बाई की पदावली ४२२ ४२६

४२६ ४३०, ४३३ ४३४, ४३६

४३८ ४४० ४४८

मुगवावती ३२०

मुग्धोपवेश ६६

मुग्धरोपनिषद् १२६

मुहावादय १३

मूरत सोलही ६१३ ६१६ ६१६

मूर्त भद्र चौपार्ई ३८१ ३८२ ६१६,

६१६

मुलाचार ६२

मूच्छकटिकम् ६३ ६१

मृत्यु महोत्सव पञ्चीसी ६१२

भेयद्रुत ३३ ४४६

माहम मर्दन ३२२ ३२४ ३३६—

३४१ ६१६

मोड़ मुद्गर ६३४

य

-यजुर्वेद ३३ ३७ ३८ ४१ ३६६

७३

यजुस्त्वितक जम्बू ३८

र

रय बहसरी ४८३

रयुवण ७ ३३ ३६६, ३७७

रत्नावली १६६ २०१, ३२०

रत्नावली मधु घोहा संपद १६६-२०१

रमण सेहरी कहा ६३

रसज्ञानि ४२७, ४३०

रस रंगायर २१ ६१

रस निधि सतसई ३६१ ३६२ ३६८,

३६६ ६०७ ६०४

रस रहस्य ३६३ ६०३ ६०७, ६३१

रहितन विभास २३ ३१ २७२ २८२,

२८४ २८३ ६०६ ६०७, ६३१

रहीम रत्नावली २७१

राज विभास १६१

राजस्थानी भाषा धीर साहित्य ३८७

राजिया के घोरठे ३१८ ३१६

रामचरित्रका ३६७ ३७१ ३७३ ३७६

३८२ ३८७ ३६० ३६१ ३६२,

३६७-३६६ ४०१ ४०३ ४०६,

४०८ ४१० ४१३ ४१३ ४२०

रामचरित मानस १२ ३१, ३६५-३८३

३८५ ४०४, ४०७-४१३ ४१७

४१६ ४३७ ६०७

रामचरितावली ३६८, ३८३ ३८८

राम भक्ति में चरित्र सम्प्रदाय ३७३

३७७ ३८१

राम रसायन ३७८

रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ ३७३

रामायण ४ ४३ ४५ ११४ ११६

११७ १२३ ४१६ ४१७

रिठउसुमि खरित १०६

प गुरुण एवाव २४३ २४२, ६३६
वाक्य १४३

स

तस्य आणयन नीति शास्त्र ५८८

मसिता पञ्चकम् ६२३

सोकोक्ति मुक्तावली ७०

ख

अक्रोक्ति प्रीति २६

अचल विवेक पञ्चपीठी ३२३ ५०५ ५४०,

५४१ ६१५ ६३६

अज्जास्य ८८ ६३४

आगमटासंकार २०

आत्म-पल्प कोश १३ १४

आणिक्य नीति ४६१

आहु २४६ २५१

आर करी बोहा १११

आस्मीकि रामायण के रामायण

आसववता ३२०

अिक्रम सतसई ५१७ ५१६

अिक्रमांक वेव अरित ३६

अिदुर भीति ५ ४७-४६, ७६ ५८१,

५८३

अिदुर प्रजापर भाषा ५८५

अिदुर बसीसी ५२२ ५२४ ५२६

५३१ ५४० ५४१ ६१६

अिनय पत्रिका ३४५ ३६८ ३७३

४१० ४११

अिरर उद्गरी १४४

अिवक वितावली २३१

अिवेक पत्रिका वैसी ४२३ ५०४

अिववनाय नवरात्र ३५७

अीर काम्य १४४ १४७, १५४ १५६

१६८, १७० १७१ १७२

अीर विनोद ३२१ ३२२ ३२३

३४२ ३४३ ६

अीर विद्यार्थिका ६२३

अीर सतसई १४७-१६६, २०० २०१

१६२ १६३ १७३ १७४

अीर सतक ४६ ४६१ ४६२

अुन्य विनोय सतसई ४६५

अुन्य सतसई २२ ६ ३ ४

अैरिच साहित्य ४२

अव पादि के मे

अैराग बोम २३१

अैराग्य दिनेस ३५७

अैराग्य मन्त्री ३८

अैरक पार्थ ३ १ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १०

५४१ ६१६

अैर पार्थ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४०

५४१, ६१६

अ्यास्यान भाषा ३५

अ्यास बाणी ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

अतः अयम् ७१ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

अतः अयम् ७१ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

अतः अयम् ७१ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

अतः अयम् ७१ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

अतः अयम् ७१ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

अतः अयम् ७१ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

अतः अयम् ७१ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

अतः अयम् ७१ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००

शिवायराज शमापण स्तोत्र ६१
 शिवुपासि बध ८ ५४ ६३२
 शील बलीसी २४१ ६११ ६१७ ६२२
 शुक सप्तति ६२३
 शुक नीति १०
 शृंगार मञ्जरी २८६
 शृंगार घटक ५६

स

साक्षि पृथ्वीगर्भ रासी १४८
 साक्षि महाभारत ४६ ४७
 साक्षि राम स्वयंवर ३७० ३७१
 ३८१ ३८२ ३८०, ४०३ ४०८
 ४१३ ४१४
 संत बाबू और उनकी बाली २६२
 २६७ ३१६
 संत बाली २६६ ३०० ३०७ ३०६
 ३१० ३१४ ३१६
 संत सुभा सार ११५ २६४ २६६ ३००
 ३०३ ३०२, ३०८ ३०६ ३११
 ३१३, ३१६ ३१८
 संतोष बाबनी ५२३ ५२४ ५३४ ५४०
 ५४२, ६२० ६२२
 संतोष मुच्छर ३७६ ६२० ६२२
 सद्योप रासक ११३
 सद्योप सप्तोत्पद्य ५१२ ५१३
 संयममञ्जरी ११० ६३८
 सरस्वत सामाजिक ४३०
 सरस्वती सत २१२ २१३ ६३३
 सरस्वती रासक १२ १३ २२ २७ ३२
 ४६८ ८८१ ५६० ५६६ ५६६
 ६०१ ६०४ ६०६ ६०७ ६३२ ३
 सारंगदेव ६१३
 सारंग्य प्रभाव ३७६

सङ्कलि कर्णामृत ७२
 सङ्कल महिमा मीसामी २३० ६१८
 सपनावता ३२०
 सप्तपिपुत्रा ५४७
 सप्त ध्यसन करिण ५४७ ५४८ ६२०
 ६२४
 सप्तध्यसन ब्रूहा कुम्भलिया ६१३ ६२०
 समासागर नाटक ४६४ ४६६ ६१८,
 ६१६, ६२२ ६२४ ६२५
 समलभातृका ६८ ६३८
 सरस्वती कंठामरण २० ६१ ६६ ११२
 सरह पा १०४ १०५
 सर्वांग ६६४
 सर्वथा बाबनी ४६६ ४६७ ४८६
 साकेत २६
 साक्ष्य भम्म पोहा १०६ ११५ ११८ ६३८
 सामान्य भाषा विज्ञान ८२
 सास बहु का भगडा ६१४ ६१७ ६३६
 साहित्य दर्पण ०, ६१ ६२२ ६२४
 साहि यथास्थ का पारिभाषिक धर्म कोष
 १८
 सिपालसुतम् ८३
 सिंहासन इतिविषया ६२३
 सिद्ध्या सार ५१५
 सिद्ध साहित्य १२०
 सिद्ध हीम यशदानुपासन ११२
 सिद्धान्त कौमुदी ३
 सिद्धान्त रत्नाकर ४२३ ४२४ ४३२,
 ४३५—४३८ ४४६ ४५१ ४५२
 सिध्या सागर २१२ २१३ २१७
 सीतामण्य भाष २६०
 सीह छलीसी ५२१ ५२४—५२६ ५४०

सुबल छतीसी १२३ १२६, १२८ १४०
 ६६६ ६२२
 सुबान हित १६७
 सुसलण खरिउ १०६
 सुगमा खरिउ ४३२
 सुन्दर सार २२६—२३५
 सुपासबनाय खरिउ ६३
 सुभापित रत्नभाण्डागार ७४ १०२
 १०३ १६३ १६६ २०८ ३१४
 ३२६ ३४५ ३५० ४४७ ५७०
 ६०६ ६३१ >
 सुभापित रत्न संशोह ६७, ६८
 सुभापित रत्नाकर ३१३ ६३१
 सुभापित सुयामिनि ७२
 सुभापितावली ७२, ७३
 सुमति नाम खरिउ ६३
 सुर सुन्दरी खरिउ ६३
 सुमूठ २२४
 सुमित्र कर्णामूठ ७२
 सुमिठ मुक्तावली ६८ ६६ ७२ ७७
 २४४ २८६ ४६० ५६६, ५७०,
 ६३३
 सुमित्र सरोज ८६ ६६—१०० १०३
 सुकी काम्य संग्रह ३६० ३६१ ३६३
 सुखन रत्नावली १५८ १६४ १६६
 सुर छतीसी १२० १२४—१२६ १४०
 ६३४ ६३६
 सुर वास ४४१
 सुर पञ्चरत्न ४२८ ४३०, ४३१
 सुर राम खरिटावली ३६६ ३६०,
 ३६१ ४०६
 सुर सागर १२ ४२१—४२६ ४२६,
 ४३१ ४३३, ४३६, ४३८, ४४०—
 ४४४ ४४७ ४४०

सेव्यसेवकोपदेश ६८ ६३८
 मौन्दरातन्द १२
 स्टडीज इन प्रती मिस्त्रिजिगम ३३६
 स्फुट पत्र संग्रह २०५, २०६ २११
 स्वप्नवसववसम् ६३
 ह
 हंस जवाहर ३७३ ३४० ३६५ ३४७
 हनुमानाटक ३६६ ३८२ ३८६ ४०२
 ४०६
 हम्मीर रातो १४४ १४५, १५२, १५५
 १६३ १६६ १७० १७८, १७६
 हम्मीर हठ १४४ १४५
 हाटावली ७३
 हित उपदेश ५१७—५१८
 हित धिक्का वात्रिसका ६१३
 हितामृत सिन्धु ४३२, ४३५ ४४३—
 ४४५ ४५२
 हितोपदेश ११ ३४६, ४१६, ४१७,
 ४७६, ५८१, ५८७, ६०६—
 ६११, ६२४
 हितोपदेश कथा ५८४
 हितोपदेश भाषा ५८५—५८६
 हिन्दी काम्य वाचा १०६, ११६ ११६,
 ६३१-
 हिन्दी के कवि श्रीर काम्य ३०७
 हिन्दी प्रेम वाचा काम्य संग्रह ३२२, ३२७
 ३२६—३३१, ३३६, ३४०—
 ३४२
 हिन्दी सङ्घ सागर १४
 हिन्दी साहित्य १३०
 हिन्दी भाषा इण्डियन मिटरेकर ८३

